सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय

२८

(अगस्त-नवम्बर १९२५)

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मन्त्रालय

सितम्बर १९६८ (आश्विन १८९०)

निदेशक, प्रकाशन विभाग, दिल्ली – ६ द्वारा प्रकाशित
और शान्तिलाल हरजीवन शाह, नवजीवन प्रेस, अहमदाबाद–१४ द्वारा मुद्रित

भूमिका

प्रस्तुत खण्डमें १ अगस्तसे २२ नवम्बर १९२५ तककी सामग्री आ जाती है। इस अवधिमें गांधीजीने बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश और कच्छका दौरा किया और अनेक परिषदों और सभाओंमें भाषण दिये। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी पटनामें जो बैठक हुई, स्वराज्य-दल उससे पुनःप्रतिष्ठित हो गया और कांग्रेसकी राजनीतिक हलचलें बढ़ गईं। आर्थिक मामलोंपर अधिक जोर दिया जाने लगा, उदाहरणके लिए अखिल भारतीय चरखा संघकी स्थापना और चरखेके अधिक संयोजित तथा व्यापक उपयोगके द्वारा स्वदेशी आन्दोलनका बढाया जाना।

सामाजिक क्षेत्रमें गांधीजी अस्पृश्यता-निवारण और गोरक्षाके लिए सही पद्धतियाँ अपनानेपर जोर देते रहे। वे जहाँ-कहीं भी गये, उन्होंने महिलाओं, विद्यार्थियों और शिक्षक, कांग्रेस-कार्यकर्त्ता और मिल-मजदूरों, कट्टर-पंथी हिन्दुओं, सुधारकों और ईसाई मिशनरियों — सभी वर्गोंके लोगोंसे विचार-विनिमय और बातचीत की।

देशकी समूची राजनीतिक परिस्थितिका मुकाबला करनेके खयालसे वे रचनात्मक कार्यक्रम और लोगोंमें विचार-प्रचारपर जोर देते रहे। वे मानते थे कि लोगोंको अपनी अवस्थाकी प्रतीति करानेके लिए उनके बीच लगातार काम करना आवश्यक है। (पृष्ठ १४३-४४) राज्य-सचिव लॉर्ड बर्कनहेडने जो ठेस पहुँचानेवाला व्याख्यान दिया था, गांधीजीकी रायमें उसका एकमात्र उत्तर था: "अधिक काम।" एकता सम्मेलनके बारेमें भी उन्होंने यही कहा कि "ज्यों ही मुझे लोगोंमें देशकी वर्तमान जरूरतोंके आगे अपने व्यक्तिगत या दलगत विचारोंकी परवाह न करनेकी एक आम प्रवृत्ति दिखाई देगी, त्यों ही मैं सबसे आगे बढ़कर ऐसा सम्मेलन बुलाऊँगा।" (पृष्ठ १६३)

२२ सितम्बरको पटनामें अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी जो बैठक हुई, उसमें सारे अधिकार स्वराज्य-दलके हाथों सौंप दिये गये। इसके बाद गांधीजीने कांग्रेसके दोनों पक्षोंके सम्बन्धोंका नियमन करनेके लिए एक सीधा-सादा सूत्र निश्चित कर दिया: "जहाँ-कहीं दोनों दलोंके लोगोंकी संख्या बराबर-बराबर हो, वहाँ असहयोगियों अथवा अपरिवर्तनवादियोंको चाहिए कि वे पूरा अधिकार स्वराज्यवादियोंको दे दें और यदि वे स्वयं किन्हीं पदोंपर हों तो उन्हें छोड़ दें। जहाँ अपरिवर्तनवादियोंका भारी बहुमत हो वहाँ वे स्वराज्यवादियोंके काममें रुकावट न डालें और अपनी अन्तरात्माके अनुकूल, जहाँ बन पड़े, वहाँ उनकी सहायता करें।" (पृष्ठ २७१) संविधानमें मताधिकारको और अधिक व्यापक बनाना पटना-बैठकका दूसरा महत्त्वपूर्ण परिवर्तन था। इसके कारण कांग्रेसमें और अधिक लोगोंका शामिल होना सम्भव हो गया; कांग्रेस अब अनिवार्य रूपसे एक राजनीतिक संगठन बन गया, जिसे स्वराज्य-दलके माध्यमसे अपना काम करते रहना था (पृष्ठ ३७०)। कांग्रेसके इस परिवर्तित रूपमें अपने स्थानके

विषयमें गांधीजीने कहा : "जहाँ सम्भव होगा वहाँ अपने वचनके अनुसार मैं स्वराज्य-वादियोंकी सहायता करूँगा। किन्तु कांग्रेसके कार्यक्रमकी रचना तो पण्डित मोतीलाल नेहरूसे सलाह-मशविरा करके श्रीमती सरोजिनी देवी ही करेंगी।" (पृष्ठ ४५४)। गांधीजीको इस राष्ट्रीय संस्थाके अन्तिम स्वरूपके विषयमें कोई सन्देह नहीं था : "कांग्रेस चाहे जितनी लोकतान्त्रिक हो, उसमें कोई हर्ज नहीं। लेकिन लोकतन्त्रका मतलब दम्भ और अहंकार, लोगोंसे सेवा प्राप्त करनेका परवाना तो नहीं होना चाहिए। पंचोंकी वाणी परमेश्वरकी वाणी तभी हो सकती है, जब वह ईमानदारी, बहादुरी, नम्रता, विनय और आत्मत्यागकी वाणी हो।" (पृष्ठ ४८१)

इस अवधिमें स्वदेशीकी भी अधिकाधिक मीमांसा हुई। गांधीजीने कहा कि भारत किसानोंका देश है और उसमें करोड़ों व्यक्ति चारसे छः महीनोतक बिना किसी धन्धेके बैठे रहते हैं और इसका फल होता है आलस्य। "काहिल कौमको स्वराज्य हरगिज नहीं मिल सकता। काहिली विनाशका कारण है . . . यह काहिली हमारा महारोग है। हमारी कंगाली उसका लक्षण है।" (पृष्ठ १४३) खाली बैठे हुए लोगोंको कोई न कोई ऐसा काम दिया ही जाना चाहिए जो उनके साथ-साथ समाजको भी लाभ पहुँचाये। चरखा ही ऐसा काम देनेमें समर्थ साधन हो सकता है (पृष्ठ १४४)। किन्तु चरखेका महत्त्व इतना ही नही है। "उसका पैगाम है— सादा जीवन; मानव-जातिकी सेवा करना, औरोंको हानि न पहुँचाते हुए जिन्दगी बसर करना, धनी और निर्धन, मजदूरों और मिल-मालिकों, राजा और रंकमें अटूट [प्रेम] सम्बन्ध उत्पन्न करना। स्वभावतः यह बृहत्तर सन्देश सबके लिए है।" (पृष्ठ १९७)

स्वदेशीकी भावनामें संकीर्ण देशभक्तिकी कोई बात नहीं थी। गांधीजीने कलकत्तेकी एक सभामें विद्यार्थियोंसे कहा : "स्वदेशीको, जो-कुछ पहलेसे मौजूद है उसे, बचाकर रखनेकी वृत्ति ऐसी विवेकयुक्त है जो हमारे राष्ट्रीय जीवनमें निहित सारी उत्तम चीजोंको कायम रखेगी और साथ ही आधुनिक संसारमें जो-कुछ श्रेष्ठ है, पाश्चात्य सभ्यतामें जो-कुछ श्रेष्ठ है उसे भी ग्रहण करके अपने भीतर पचाती जायेगी, किन्तु बेशक उसका छिछला अनुकरण नहीं करेगी। इस तरह हम आज जितने अच्छे हैं, उत्तरोत्तर उससे अधिक अच्छे होते जायेंगे।" (पृष्ठ १४०)

जब श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुरने (परिशिष्ट ५) यन्त्रोंके विरोध और चरखेके समर्थनको लेकर गांधीजीके दृष्टिकोणकी आलोचना की, तो गांधीजीने 'यंग इंडिया' में अपने दृष्टिकोणको विस्तृत रूपसे सामने रखा : "दो टूक आलोचनाएँ पढ़कर तो मुझे खुशी होती है। . . . मशीनोंका अपना स्थान है, और अब इन्होंने अपने पाँव जमा भी लिये हैं। किन्तु जिस हदतक मानवीय श्रम अनिवार्य है, उस हदतक मशीनोंको उस श्रमका स्थान नहीं लेने देना चाहिए।" (पृष्ठ ४४२-४५)। व्यक्तिगत ईर्ष्या-सम्बन्धी दोषारोपणके सम्बन्धमें गांधीजीने कहा, "जहाँ हमारे मतभेद बुनियादी नहीं हैं— और ऐसे मतभेदोंको बतानेकी मैंने कोशिश की है—वहाँ कविगुरुकी दलीलमें ऐसी कोई बात नहीं है जिसको स्वीकार करते हुए भी मैं चरखेके विषयमें अपनी स्थिति कायम

न रख सकूँ। चरखेके सम्बन्धमें उन्होंने जिन बातोंका मजाक उड़ाया है, उनमें से बहुतसी तो ऐसी हैं जो मैंने कभी कही हीं नही हैं। मैंने चरखेमें जिन गुणोंके होनेका दावा किया है, कविगुरुके प्रहारोंसे उन गुणोंकी सचाईपर कोई आँच नही आई है।" (पृष्ठ ४४६)। उन्होंने यह भी कहा, कि कवि जानते हैं कि मैं उनका जो आदर करता हूँ, वह हमारे मतभेदोंके बावजूद है।

पटना कांग्रेसकी बैठकमें जिस अखिल भारतीय चरखा संघकी स्थापना की गई थी, उसका समर्थन करते हुए गांधीजीने कहा कि. . . "संघ सेवाके लिए है, अधिकारके लिए नहीं।" (पृष्ठ ३०१)। उनके लेखे इस प्रकारके संगठनमें अधिकार अथवा नेता-गिरीकी स्पर्धाके लिए कोई गुंजाइश ही नही हो सकती।

यात्राओंके दौरान गाधीजीके सामने साम्प्रदायिक समस्याका उल्लेख भी बार-बार किया जाता रहा। उन्होने प्रायः यह भी सलाह दी कि इन दोनों बड़े समाजों-को सर्वसामान्य रचनात्मक कार्यक्रममें लगे रहकर एक-दूसरेके समीप आना चाहिए (पृष्ठ १६२)। और साथ ही उन्हें मस्जिदके सामने बाजा बजाने आदि विवादास्पद सिद्धान्त-सम्बन्धी बातोंमें सिद्धान्तको छोड़े बिना किसी हार्दिक समझौतेपर पहुँचनेकी कोशिश करनी चाहिए। (पृष्ठ ३८३)

धर्मके प्रति गाधीजीकी दृष्टि बराबर तर्कसम्मत और समाजके हितसे ओतप्रोत रही। गोरक्षाके विषयमें लिखते हुए उन्होंने कहा: "मैं तो ऐसा मानता हूँ कि धर्म-मात्रमें आर्थिक, राजनीतिक इत्यादि विषयोंका समावेश है। जो धर्म शुद्ध अर्थका विरोधी है, वह धर्म नही है; जो धर्म शुद्ध राजनीतिका विरोधी है, वह धर्म नही है। दूसरी ओर धर्म-रहित अर्थ त्याज्य है। धर्म-रहित राजसत्ता आसुरी है। अर्थ आदिसे अलग धर्म नामकी कोई वस्तु नहीं है। व्यक्ति अथवा समाज धर्मके सहारे जीवित रहता है, और अधर्मसे नष्ट होता है। . . .यदि गोरक्षा शुद्ध अर्थके विरोधमें हो तो उसका त्याग किये बिना कोई चारा नही है। सच तो यह है कि उस स्थितिमें हम यदि गोरक्षा करना चाहेंगे भी तो वह असम्भव सिद्ध होगी।" (पृष्ठ १६७)

अस्पृश्यता-निवारणके विषयमें उन्होंने यह समझ लिया कि केवल व्याख्यानबाजी-से कुछ नही होगा: "अगर प्रचार-कार्यके पीछे पंचमोंकी स्थिति सुधारनेके लिए ठोस कामका बल न होगा, तो प्रचारसे कोई लाभ नही होगा।" (पृष्ठ १७७)। राँचीमें बोलते हुए उन्होंने कहा: "इसी अस्पृश्यताने भारतीयोंको सारे संसारमें अस्पृश्य बना दिया है। आपको इन अस्पृश्य भारतीयोकी दशा देखनी हो तो दक्षिण आफ्रिका जाइए, आपको मालूम होगा कि अस्पृश्यता क्या चीज है।" (पृष्ठ २०५)। उन्हें इस बातका इत्मीनान था कि अस्पृश्यताका जो रूप समाजमें प्रचलित था वह हिन्दू-धर्मका अनिवार्य अंग हरगिज नही था। "हमारी आजकी अस्पृश्यतामें केवल अज्ञान और क्रूरता है। अस्पृश्यताको मैं हिन्दू-धर्मकी विकृति मानता हूँ। इससे धर्मकी सुरक्षा नहीं होती; बल्कि उसकी गति रुक जाती है।" (पृष्ठ ३६३-६४)

शिक्षकोंसे बातें करते हुए उन्होने विदेशियोंके प्रभुत्वको हमारे अपने बीचकी कमजोरी बताया। "स्वराज्यका मतलब है सरकारी नियन्त्रणसे—चाहे वह विदेशी

सरकारका नियन्त्रण हो या राष्ट्रीय सरकारका—मुक्त होनेके लिए सतत प्रयत्न करते रहना। अगर स्वराज्य होनेपर भी लोग अपने जीवनके हर विषयकी व्यवस्थाके लिए सरकारके ही मुखापेक्षी बने रहेंगे तो वह स्वराज्य-सरकार एक निस्सार चीज ही होगी।" (पृष्ठ ३५)। "स्वराज्य कुछ आसमानसे तो नहीं टपक पड़ेगा। इसके लिए धैर्य, कठिनाइयोंको झेलते हुए अडिग रहने, अथक परिश्रम और साहस तथा परिस्थितियों और परिवेशकी सही पहचान तथा पकड़की आवश्यकता होगी।" (पृष्ठ १२३)

गांधीजी भारतकी स्वतन्त्रताको व्यक्ति और समाजके नैतिक उत्थानका कारण मानते थे और वे यह भी मानते थे कि हमारे ऐसे स्वराज्यका संसारकी गतिविधि-पर भी असर पड़ेगा। २८ अगस्तको कलकत्तेमें बोलते हुए उन्होंने कहा: "मैं अपने देशकी आजादी इसलिए चाहता हूँ कि दूसरे देश हमारे आजाद देशसे कुछ सीख सकें। जिस प्रकार आज देश-भक्तिका यह तकाजा है कि व्यक्तिको परिवारके लिए मरना चाहिए, परिवारको गाँवके लिए, गाँवको जिलेके लिए, जिलेको प्रान्तके लिए, प्रान्तको देशके लिए, उसी प्रकार मैं अपने देशकी आजादी इसलिए चाहता हूँ कि उसकी शक्ति और साधनोंका उपयोग मानवताके लाभके लिए हो सके।. . ." इसी अविस्मरणीय भाषणमें उन्होंने भारतकी राष्ट्रीयता सम्बन्धी अपनी मान्यताके विषयमें कहा: "मेरा राष्ट्र-प्रेम यह है कि हमारा देश आजाद हो सके; इसलिए आजाद हो सके कि जरूरत पड़े तो मानव-जातिकी रक्षाके लिए सारा देश मर मिटे। इसमें किसी जातिसे घृणा करनेकी गुंजाइश नहीं है। मेरी कामना है कि हमारी राष्ट्रीयता ऐसी ही हो।" (पृष्ठ १३७)

इस अवधिमें देशके बाहर भी गांधीजीके सन्देशके प्रति लोगोंकी दिलचस्पी बढ़ने लगी थी। यूरोप और अमेरिकासे विभिन्न समस्याओंके विषयमें उनकी राय जाननेकी इच्छासे पत्र आते रहते थे। पत्र-लेखकोंको उत्तर देनेके साथ-साथ गांधीजीने 'यंग इंडिया' में भारत और यूरोपमें हिंसाके समान आधारके विषयमें भी लिखा: "इसमें सन्देह नहीं कि यूरोपके लोगोंको राजनीतिक सत्ता प्राप्त है, किन्तु स्वराज्य नहीं। उनके आंशिक लाभके लिए एशिया और आफ्रिकाकी जनताका शोषण किया जा रहा है; किन्तु उधर वे स्वयं लोकतन्त्रके नामपर शासक वर्ग या शासक जाति द्वारा चूसे जा रहे हैं। इसलिए मूलतः वे भी उसी रोगसे ग्रस्त जान पड़ते हैं, जिसने भारतको जर्जर बना रखा है। अतः ऐसा लगता है कि इसके लिए भी उसी उपचारका प्रयोग किया जा सकता है। यदि तमाम छद्म आवरणोंको हटाकर देखा जाये तो स्पष्ट हो जायेगा कि यूरोपके जन-साधारणका शोषण भी हिंसाके बलपर ही होता है।" (पृष्ठ १५६)

यूरोप और अमेरिकाके यात्रा-सम्बन्धी निमन्त्रणोंका गांधीजीने अपने स्वभावा-नुकूल उत्तर दिया: "मेरी देश-भक्तिमें सामान्यतः सारी मानव-जातिका हित समाविष्ट है। अतएव मेरी भारत-सेवामें सारी मनुष्य-जातकी सेवाका अन्तर्भाव हो जाता है. . . यदि मुझे अमेरिका और यूरोप जाना ही हो तो अपनेको शक्तिमान बनाकर जाना चाहिए, न कि अपनी कमजोरीकी हालतमें. . . मेरा मतलब देशकी कमजोरीसे है।"

(पृष्ठ १९५)। अपनी शक्तिकी सीमाकी इस प्रतीतिके कारण ही उन्होंने डा० अन्सारीकी तार द्वारा की गई उस प्रार्थनाको अस्वीकार कर दिया जिसमें उन्होंने दक्षिण सीरियाके मामलेको लेकर लीग ऑफ नेशन्सके हस्तक्षेपकी बात कही थी। उन्होंने १२-११-१९२५ को 'यंग इंडिया' में लिखा: "किसी निवेदनके पीछे जब-तक नैतिक अथवा भौतिक बल न हो, तबतक मैं निवेदन करना बेकार मानता हूँ। नैतिक-बल निवेदकोंके कुछ करनेके संकल्पसे, निवेदनको सफल बनानेके लिए कुछ त्याग-बलिदान करनेके निश्चयसे, उत्पन्न होता है। यहाँतक कि बच्चे भी इस प्राथमिक नियमको जानते हैं। अपनी बात मनवानेके लिए वे खाना-पीना छोड़ देते हैं, रोते-चिल्लाते हैं, और शैतान बच्चे तो, माँ अगर उनकी आग्रहपूर्ण माँगें पूरी न करे तो उसे मारनेमें भी नहीं हिचकिचाते। जबतक हम लोग इस नियमको समझकर इसपर अमल करनेके लिए तैयार नहीं हैं, तबतक किसीसे थोथा निवेदन करनेका परिणाम अधिक बुरा नहीं तो इतना तो होगा ही कि दुनिया कांग्रेसपर हँसेगी और हम-पर भी।" (पृष्ठ ४५७)

गांधीजीको अपनी सीमाओंकी सम्यक् प्रतीति थी। उन्होंने कहा: "मैं तो सिर्फ सत्यका अन्वेषक हूँ—निस्सन्देह मानवीय पूर्णताको प्राप्त करनेके लिए प्रयत्नशील हूँ और निरन्तर प्रयास करते रहनेसे हममें से हरएक व्यक्ति इस पूर्णताको प्राप्त कर सकता है।" (पृष्ठ ७१)। उन्होंने यह भी कहा कि मैं अपनेको किसी दल-विशेषका नहीं मानता और न यही मानता हूँ कि मेरा कोई दल है—भले ही इसका कारण सिर्फ यही हो कि मैं देखता हूँ कि मेरा रुख और मेरी स्थिति अक्सर बदलती रहती है। वैसे मैं इन परिवर्तनोंको अपना लगातार विकास ही मानता हूँ (पृष्ठ ९२)। वे अपने जीवनको हमेशा "कार्यमें लगे रहनेके कारण. . .आनन्दमय" मानते थे (पृष्ठ २८१)। उन दिनों जो घटनाएँ हो रही थीं, वे उन्हें निराशाजनक मानते थे। उन्होंने डा० अन्सारीको लिखा: "जहाँतक नजर जाती है, वहाँतक जो-कुछ देखता हूँ, उसको सोचकर मेरा मन दु:ख और क्लान्तिसे भर उठता है; और जब मैं अपने अन्तरके उस क्षीण स्वरको सुनता हूँ तो अपने चारों ओर प्रज्वलित ज्वालाके बावजूद आशान्वित होकर मुस्करा उठता हूँ।" (पृष्ठ ४५५)। यही वह शक्ति थी जो उन्हें सदा बल देती रही।

आभार

प्रस्तुत खण्डकी सामग्रीके लिए हम साबरमती आश्रम सरक्षक तथा स्मारक न्यास और संग्रहालय, नवजीवन ट्रस्ट और गुजरात विद्यापीठ ग्रन्थालय, अहमदाबाद; गांधी स्मारक निधि और संग्रहालय, नई दिल्ली; राष्ट्रीय अभिलेखागार (नेशनल आर्काइव्ज ऑफ इंडिया,) नई दिल्ली; श्री छगनलाल गांधी, अहमदाबाद; श्री नारणदास गाधी, राजकोट; श्री नारायण देसाई, बारडोली; श्रीमती राधाबहन चौधरी, कलकत्ता; 'ए बंच ऑफ ओल्ड लेटर्स', 'कृष्णनाथ कालेज सेन्टेनरी कामेमोरेशन वॉल्यूम', 'गांधीजीकी छत्रछायामें', 'बापुना पत्रो – मणिबहन पटेलने', 'बापुना पत्रो – सरदार वल्लभभाईने', 'बापुनी प्रसादी' और 'महादेवभाईनी डायरी' पुस्तकोके प्रकाशकों तथा निम्नलिखित समाचार-पत्रों और पत्रिकाओंके आभारी हैं : 'अमृतबाजार पत्रिका', 'आज', 'इंग्लिशमैन', 'नवजीवन', 'फॉरवर्ड', 'बॉम्बे क्रॉनिकल', 'मॉडर्न रिव्यू', 'यंग इंडिया', 'लीडर', 'सर्चलाइट', 'हिन्दुस्तान टाइम्स' और 'हिन्दू'।

अनुसन्धान और सन्दर्भ सम्बन्धी सुविधाओंके लिए अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी पुस्तकालय; गांधी स्मारक संग्रहालय, इंडियन कौंसिल ऑफ वर्ल्ड अफेयर्स, पुस्तकालय, सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालयका अनुसन्धान एवं सन्दर्भ विभाग, नई दिल्ली, साबरमती संग्रहालय और गुजरात विद्यापीठ ग्रन्थालय, अहमदाबाद तथा श्री प्यारेलाल नैयर, नई दिल्ली और कागजपत्रोंकी फोटो-नकल तैयार करनेमें सहायताके लिए सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालय, नई दिल्लीका फोटो-विभाग हमारे धन्यवादके पात्र हैं।

पाठकोंको सूचना

हिन्दीकी जो सामग्री हमें गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मिली है उसे अविकल रूपमें दिया गया है। किन्तु दूसरों द्वारा सम्पादित उनके भाषण अथवा लेख आदिमें हिज्जोंकी स्पष्ट भूलें सुधार दी गई हैं।

अंग्रेजी और गुजरातीसे अनुवाद करते समय उसे यथासम्भव मूलके निकट रखनेका पूरा प्रयत्न किया गया है, किन्तु साथ ही भाषाको सुपाठ्य बनानेका भी पूरा ध्यान रखा गया है। जो अनुवाद हमें प्राप्त हो सके हैं हमने उनका, मूलसे मिलाने और संशोधन करनेके बाद, उपयोग किया है। नामोंको सामान्य उच्चारणके अनुसार ही लिखनेकी नीतिका पालन किया हैं। जिन नामोंके उच्चारणके बारेमें सशय था उनको वैसा ही लिखा गया है जैसा गांधीजीने अपने गुजराती लेखोमें लिखा है।

मूल सामग्रीके बीच चौकोर कोष्ठकोंमें दिये गये अंश सम्पादकीय हैं। गांधीजीने किसी लेख, भाषण आदिका जो अंश मूलसे उद्धृत किया है वह हाशिया छोड़कर गहरी स्याहीमें छापा गया है। भाषणोंकी परोक्ष रिपोर्ट तथा वे शब्द जो गांधीजीके कहे हुए नही है, बिना हाशिया छोड़े गहरी स्याहीमें छापे गये हैं। भाषणों और भेंटकी रिपोर्टोंके उन अंशोंमें जो गाधीजीके नही है, कुछ परिवर्तन किया गया है और कही-कही कुछ छोड़ भी दिया गया हैं।

शीर्षककी लेखन-तिथि दायें कोनेमें ऊपर दे दी गई है; जहाँ वह उपलब्ध नही है वहाँ अनुमानसे निश्चित तिथि चौकोर कोष्ठकोंमें दे दी गई है और आवश्यक होनेपर उसका कारण स्पष्ट कर दिया गया है। जिन पत्रोंमें केवल मास या वर्षका उल्लेख है उन्हें आवश्यकतानुसार मास या वर्षके अन्तमें रखा गया है। शीर्षकके अन्तमें साधन-सूत्रके साथ दी गई तिथि प्रकाशनकी है। गांधीजीकी सम्पादकीय टिप्पणियाँ और लेख जहाँ उनकी लेखन-तिथि उपलब्ध है अथवा जहाँ किसी निश्चित आधारपर उसका अनुमान किया जा सका है वहाँ लेखन-तिथिके अनुसार और जहाँ ऐसा सम्भव नहीं हुआ है वहाँ उनकी प्रकाशन-तिथिके अनुसार दिये गये हैं।

साधन-सूत्रोंमें 'एस० एन०' संकेत, साबरमती सग्रहालय, अहमदाबादमें उपलब्ध सामग्री, 'जी० एन०' गांधी स्मारक निधि और संग्रहालय, नई दिल्लीमें उपलब्ध कागजपत्रोंका और 'सी० डब्ल्यू०, सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय (कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी) द्वारा संग्रहीत पत्रोंका सूचक है।

वे जीवन-सम्बन्धी पाद-टिप्पणियाँ जो पहलेके खण्डोंमें दी जा चुकी ह सामान्यत: इस खण्डसे नहीं दी जा रही है।

सामग्रीकी पृष्ठभूमिका परिचय देनेके लिए मूलसे सम्बद्ध कुछ परिशिष्ट दिये गये हैं। अन्तमें साधन-सूत्रोंकी सूची और इस खण्डसे सम्बन्धित कालकी तारीखवार घटनाएँ दी गई हैं।

विषय-सूची

चित्र-सूची

१. भेंट : 'इंग्लिशमैन' के प्रतिनिधिसे

[१ अगस्त, १९२५से पूर्व]

'इंग्लिशमैन' के प्रतिनिधिके पूछनेपर श्री गांधीने कहा कि मैं नहीं जानता कि लॉर्ड लिटन और देशबन्धु दासके बीच जो वार्ता चल रही थी, उसे समझौता-वार्ता समझना ठीक है या नहीं। इतना ठीक है कि एक मध्यस्थके माध्यमसे दोनोंके बीच कुछ वार्ता चल अवश्य रही थी। उस वार्ताके विषय क्या थे, इसकी मुझे कोई ठीक, वास्तविक और पुष्ट कर सकने योग्य जानकारी नहीं है। अलबत्ता, शायद मोटे तौरपर मैं उसके रुझानसे वाकिफ था, मगर उसे जाहिर करना लाभदायक और उचित नहीं है।

श्री गांधीने यह भी कहा कि पण्डित मोतीलाल नेहरूने स्वीकृति और हस्ताक्षरके लिए कोई पत्र मुझे नहीं भेजा है।

[अंग्रेजीसे]
इंग्लिशमैन, १-८-१९२५

२. पत्र : रेवरेंड ऑलवुडको

१४८, रसा रोड
कलकत्ता
१ अगस्त, १९२५

प्रिय मित्र,

मुझे आपके साथ मुलाकात और थोड़ी देर बातचीत करके सचमुच बड़ा आनन्द हुआ था। आपका पत्र पाकर भी मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। वहाँ बैठकमें[1] मैंने जो-कुछ कहा था, वह मेरे हालके अनुभवोंपर आधारित था।

मैं जानता हूँ कि विभिन्न धर्मोंके प्रति अधिक उदार तथा सच्चा दृष्टिकोण रखनेवाले व्यक्तियोंकी संख्या बढ़ती जा रही है। उस बैठकमें जिस सहिष्णुताके साथ मेरा भाषण सुना गया, वह इसका प्रमाण है। किन्तु जेलमें कुछ अपरिचित मित्रों द्वारा मुझे जो साहित्य भेजा गया था और लगभग प्रति मास देश और विदेशके ईसाई मित्रोंसे मुझे जो पत्र प्राप्त होते रहते थे, वे मेरे कथनकी सचाईको प्रदर्शित करते हैं। जहाँतक पादरी हैबरके प्रार्थना-गीतका[2] सम्बन्ध है, आप शायद यह स्वीकार करेंगे कि किसी व्यक्तिका अपनेको अधम और अपवित्र समझना एक बात है, किन्तु संसार द्वारा उसे वैसा घोषित किया जाना दूसरी बात है।. . . आगस्टीन अपनेको सबसे बड़ा पापी समझते थे, किन्तु संसार उन्हें सन्त कहता है। मैं कितना बड़ा

१. देखिए खण्ड २७, पृष्ठ ४४९-५५।
२. देखिए खण्ड १३, पृष्ठ ३७९।

पापी हूँ, इसका वर्णन करनेके लिए तुलसीदासको भाषामें प्राप्त सारे विशेषण हलके मालूम होते थे। संसार उन्हें भी सन्त समझता है। और अन्तमें पता नहीं, आपको मालूम है या नहीं कि ईसाई साहित्य समिति (क्रिश्चियन लिटरेचर सोसाइटी) द्वारा श्री मर्डक और ऐसे ही अन्य लोगोंकी नितान्त असन्तुलित विचारों तथा खयालोंसे भरी पुस्तक-पुस्तिकाओंकी बिक्री अब भी जारी है। यदि आप केवल देशी भाषाओंके उस ईसाई साहित्यके बारेमें जान लें, जो हजारों पर्चों और पुस्तिकाओंके रूपमें बाँटा जा रहा है, तो आप शायद समझ जायेंगे कि मेरे कथनमें कितना सार है। इन बातोंसे मुझे चोट केवल इसलिए पहुँचती है कि मैं जानता हूँ कि ये जिन ईसामसीहके नामपर कही और लिखी जाती हैं, उन्हीके उपदेशोंको झुठलाती हैं। इस सबसे मुझे इसलिए भी दुःख होता है कि भारतीय ईसाइयोंको ऐसे ही अज्ञानपूर्ण उपदेश मिलते रहते हैं और वे अपनी सरलताके कारण इन्हें ही ईश्वरीय सत्यके रूपमें आत्मसात् कर लेते हैं, और फिर उन लोगोंसे घृणा करने लगते हैं जो कभी उनके मित्र, साथी और सम्बन्धी थे। आपको शायद मालूम नहीं है कि जिस मुक्त भावसे मैं समाजके निचले तबकेके हिन्दुओं और मुसलमानोंसे मिलता-जुलता हूँ उसी भावसे इस तबकेके भारतीय ईसाइयोंसे भी मिलता-जुलता हूँ। मैं ये बातें तर्कके रूपमें नहीं कह रहा हूँ, बल्कि आपको यह बतानेकी गरजसे कह रहा हूँ कि मैंने उस बैठकमें जो-कुछ कहा था, वह पूर्ण रूपसे वस्तु-स्थितिकी जानकारी और प्रेमके आधारपर कहा था। मैं वहाँ सेवाभावसे प्रेरित होकर गया था और यह पत्र भी मैंने उसी भावसे लिखा है। आपके सदाशयतापूर्ण पत्रकी सबसे बड़ी कद्र मैं इसी तरह कर सकता हूँ। कृपया उन मित्रोंको भी मेरी याद दिलायें जो आपके साथ थे।

मैंने यह पत्र बोलकर लिखाना समाप्त किया ही था कि एक दूसरे ईसाई भाईका पत्र पढ़ा। ये भाई भारतीय हैं। यह पत्र बहुत लम्बा है। किन्तु यहाँ आपके पढ़नेके लिए मैं उसके दो अंश उद्धृत करनेका लोभ संवरण नही कर सकता। वे अंश इस प्रकार हैं:

> (१) कल कलकत्तेमें हुए ईसाई धर्म-प्रचारकोंके सम्मेलनमें आपका भाषण सुनकर मुझे बड़ी निराशा हुई। मैं हमेशा यही मानता रहा हूँ कि आप ईसा मसीहके सच्चे अनुयायी हैं, किन्तु कल रात आपने जो-कुछ कहा, उससे मेरा हृदय बिलकुल टूट गया है। जब आप ऐसा कहते हैं कि ईसा मसीह केवल एक महान् शिक्षक थे और कुछ नहीं, तब समझमें नहीं आता कि मैं आपको "सत्यका अन्वेषक" कैसे मानूँ। यह कितने खेदकी बात है कि आप-जैसा श्रेष्ठ और सुसंस्कृत व्यक्ति कहे कि ईसा मसीह मात्र एक शिक्षक थे। उस हालतमें तो मुझे कहना होगा कि या तो आपने ईसा मसीहके उदात्त जीवनका अध्ययन उसका मर्म जाननेकी दृष्टिसे और प्रार्थनापूर्वक नहीं किया है या फिर गम्भीर पूर्वग्रहके साथ किया है।
>
> (२) ईसाई धर्मेतर धर्मोंके ऐसे कुछ प्रमुख व्यक्तियोंने, जिन्हें सत्यान्वेषी समझा जाता है, यह कहा है कि चैतन्य, बुद्ध, मुहम्मद, कृष्ण और ईसा ये

सब समान हैं। यह बिलकुल ही बेकारकी बात है। जो लोग अज्ञानमें ही सुख मानते हों, वे भला सत्यको जाननेका प्रयत्न क्यों करेंगे? ऐसे लोगोंको अपने-आपको सत्यका अन्वेषी कहनेका कोई अधिकार नहीं है। उन्हें तो सत्यका दुश्मन कहना चाहिए। सत्य तो सत्य ही है, इसमें जरा भी समझौता करनेकी गुंजाइश नहीं है। मैं एक क्षणके लिए भी यह विश्वास नहीं कर सकता कि एक सच्चा हिन्दू ईसाई भी माना जा सकता है या एक सच्चा बौद्ध हिन्दू माना जा सकता है अर्थात् किसी भी धर्मका सच्चा अनुयायी किसी भी दूसरे धर्मकी परिधिमें आ सकता है। समझमें नहीं आता कि कलकी बैठकमें आप ऐसा किस तरह कह पाये। आप जैसा उत्कृष्ट, सुशिक्षित और अनुभवी व्यक्ति इस प्रकारकी सरासर गलत बातें कैसे कह सकता है?

हृदयसे आपका,

[पुनश्च :]

जब पत्र टाइप हो चुका तब मुझे उक्त प्रार्थना-गीतकी एक नकल मिली। उसे साथ भेज रहा हूँ। आप देखेंगे कि श्री हैबर उन पंक्तियोंमें केवल गैर-ईसाइयोंके बारेमें ही कह रहे हैं। यह प्रार्थना-गीत अब भी साधारण [ईसाई] भजन-पुस्तकोंमें है। मैंने दक्षिण आफ्रिकाके गिरजाघरोंमें अकसर उसका गायन होते सुना है।

मो० क० गांधी

[रेवरेंड ऑलवुड
बैरकपुर]

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० १०६४८) की फोटो-नकलसे।

३. पत्र : एक मित्रको[1]

१४८, रसा रोड
कलकत्ता
१ अगस्त, १९२५

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। यदि किसी आदमीके अहातेमें जंगली जानवर आते रहते हों तो वह उन्हें गोलीसे मारनेमें दोष नहीं मान सकता। इसे अपरिहार्य हिंसाकी श्रेणीमें रखा जायेगा और यह आवश्यकताके आधारपर न्यायसंगत माना जायेगा; किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि जिस व्यक्तिको अहिंसाका भरपूर और स्पष्ट दर्शन हो गया है उसके लिए अपनी जमीनमें जंगली जानवरोंका आने देना अथवा उनके

१. नाम ज्ञात नहीं हो सका।

द्वारा मारा जाना ठीक ही माना जायेगा। अहिंसा कोई जड़ सिद्धान्त नहीं है; वह हमारी अपनी आत्मासे सम्बन्धित एक निजी मामला है। इसके अतिरिक्त सारी दुनियाके विपरीत सम्पत्तिका स्वत्व अहिंसाधर्मके अनुकूल नहीं है। जो व्यक्ति अन्तिम-सीमातक अहिंसाके सिद्धान्तका अनुसरण करना चाहता है, उसके लिए तो संसारमें कोई ऐसी वस्तु है ही नहीं, जिसे वह अपनी कह सके। उसे अपनेको सम्पूर्णके साथ एक कर देना होगा, और इस सम्पूर्णमें साँप, बिच्छू, शेर, भेड़िये आदि सभी शामिल हैं। ऐसे अहिंसक लोगोंके उदाहरण मौजूद हैं जिनकी अहिंसाको जंगली जानवरोंने भी स्वीकार किया है। हम सबको उस स्थितितक पहुँचनेकी कोशिश करनी होगी।

आपके दूसरे प्रश्नका भी यही उत्तर है। कीटाणुओं और कीड़ोंको मारना हिंसा है, किन्तु जिस प्रकार हमारे शाक-सब्जी खानेमें भी हिंसा है (क्योंकि इनमें भी प्राण है), फिर भी हम उसे अपरिहार्य हिंसा मानते हैं, उसी प्रकार कीटाणुओंके जीवनके सम्बन्धमें भी हमें वही भाव रखना होगा। आप देखेंगे कि आवश्यकताके इस सिद्धान्तका यों तो इतना अधिक विस्तार किया जा सकता है कि मनुष्यको खा जाना भी उचित ठहराया जा सकता है। जो आदमी अहिंसामें विश्वास रखता है वह सावधानीके साथ ऐसे सभी कामोंसे दूर रहता है जिससे किसीको चोट पहुँचती है। मेरा यह तर्क केवल उन लोगोंके लिए है, जो अहिंसामें विश्वास करते हैं। मैं जिसे आवश्यकता मानता हूँ वह सार्वभौम आवश्यकता है; इसलिए यह उचित नहीं है कि अहिंसाका पालन एक खास सीमासे आगे किया जाये। इसलिए शास्त्र या रूढ़ि केवल कुछ मामलोंमें ही हिंसाकी अनुमति देते हैं। इसीलिए नियमसंगत होनेके साथ-साथ यह प्रत्येकके लिए अनिवार्य भी है कि वह इस अनुमति और ढीलका जहाँतक सम्भव हो, कमसे-कम उपयोग करे। सीमाका उल्लंघन नियम विरुद्ध है।[1]

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० १०५९५)की फोटो-नकलसे।

१. पत्रमें गांधीजीने अपने हाथसे कुछ संशोधन किये हैं।

४. भाषण : लो० तिलककी पुण्यतिथिके अवसरपर[1]

कलकत्ता
१ अगस्त, १९२५

महात्मा गांधीने हिन्दीमें भाषण देते हुए कहा, बाल गंगाधरने भारतको महामन्त्र दिया कि 'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है।' स्वराज्यसे उनका मतलब था भारतके करोड़ों मेहनतकशोंके लिए स्वराज्य। मेरे दिमागमें इस आह्वानका अर्थ बिलकुल स्पष्ट है : यदि आप भारतकी जनताके लिए स्वराज्य प्राप्त करना चाहते हैं तो आपको उसे चरखे और खद्दरके जरिये प्राप्त करना होगा और अपनेको भारतके करोड़ों गरीबों व बुभुक्षितोंके साथ एक कर देना होगा। यदि आप वास्तवमें लोकमान्यकी स्मृतिसे प्रेरणा लेना चाहते हैं और यदि आप वास्तवमें गरीबोंके लिए स्वराज्य चाहते हैं तो यह बूढ़ा लगातार समय-असमय जिस एक चीजकी रट लगा रहा है, आप उसे सुनें और चरखेको अपनाएँ। आप आजसे ही प्रतिज्ञा करें कि आप विदेशी कपड़ेका त्याग करके घरमें कते और हाथसे बुने स्वदेशी कपड़ेको अपनायेंगे।

महात्माजीने भाषण जारी रखते हुए कहा कि अभी कुछ ही दिन पहले आपने लॉर्ड बर्कनहेडके वक्तव्यके उत्तरमें ब्रिटिश मालके बहिष्कारकी घोषणा की थी। इसकी सफलतामें मुझे सन्देह है। यद्यपि मैं सिद्धान्ततः बहिष्कारके विरुद्ध हूँ, फिर भी यदि आप लोग ब्रिटिश कपड़ेका बहिष्कार करें तो मुझे प्रसन्नता होगी। आप लोग पिछले चार वर्षोंसे अपने नेताओंकी सलाहपर चलनेमें असफल रहे हैं; आपमें से सबने अभीतक चरखे और खद्दरको नहीं अपनाया है। किन्तु, आप चाहें तो आजसे ही अपनी भूलका मार्जन करनेके लिए विदेशी वस्तुओंके त्याग और स्वदेशीके प्रयोगकी गम्भीर प्रतिज्ञा ले सकते हैं।[2]

[अंग्रेजीसे]
फॉरवर्ड, ४-८-१९२५

१. गांधीजीने लोकमान्य बाल गंगाधर तिलककी पुण्य-तिथिके अवसरपर अल्बर्ट हॉलमें आयोजित इस सभामें हिन्दीमें भाषण दिया था। जे० एम० सेनगुप्तने अध्यक्षता की थी। मूल हिन्दी भाषण उपलब्ध नहीं हैं।

२. इसके बाद गांधीजीने कालेज स्क्वेयरकी एक बहुत बड़ी सभामें भी भाषण दिया था; यह भाषण उपलब्ध नहीं है।

५. नये आचार

देशबन्धुके देहावसानपर जो सभाएँ आदि हुई थीं, उनमें बहुत-सी जगहोंपर लोगोंने आम तौरपर सभाओंमें होनेवाली बातोंके अतिरिक्त कुछ ऐसी नई बातें भी कीं जो उन्हें वहाँ उपयुक्त मालूम हुईं। बंगालमें कई स्थानोंपर कीर्तन हुए थे, कहीं-कहीं गरीबोंको भोजन कराया गया था, और कहीं-कही लोगोंने स्नानादि करके धार्मिक क्रियाएँ भी सम्पन्न कीं। काठियावाड़के चाड़िया नामक गाँवमें यह तिथि[1] निम्न प्रकार मनाई गई थी :

१. प्रभुसे प्रार्थना की गई कि दिवंगत आत्माको शान्ति मिले और भारतको उनके-जैसे दूसरे देशबन्धु प्राप्त हों।

२. कुत्तों और गौओंको लड्डू खिलाये गये।

३. उस दिन चरस और हल नहीं चलाये गये।

४. ऐसा निश्चय किया गया कि हरएक किसान अगले सालके लिए अपने घरकी जरूरतके लायक अच्छी कपास जमा कर ले।

दूसरी कई जगहोंमें लोगोंने उपवास किया और सूत भी काता। ऐसी नवीनताएँ स्वागतके योग्य हैं। ऐसे प्रसंगोंको, हमें जो शुभ प्रवृत्तियाँ सूझें और जो दिवंगतको मान्य रही हों, उन्हें आगे बढ़ानेका निमित्त बनाना, मृत व्यक्तिके प्रति हमारे प्रेमकी सबसे अच्छी निशानी है।

चरस और हल नही चलाना जीव-दयाका द्योतक है। चौमासेको छोड़कर बाकी सब दिन हम बिना विचार किये चरस वगैरा प्रायः चलाते ही रहते हैं। इससे वास्तवमें लाभके बदले हानि ही होती है। जहाँ हर हफ्ते एक दिन विश्राम करने और नौकरों तथा जानवरों — दोनोंको विश्राम देनेका रिवाज है, वहाँ लोगोंने खोया नही पाया ही है। अतः, महापुरुषोंके देहावसान-जैसे अवसरोंपर चरस वगैराको बन्द रखकर नौकरों, पशुओं आदिको विश्राम देना, यह एक शुभारम्भ है।

झूठी दया

लेकिन कुत्तों और गायोंको लड्डू खिलाना झूठी दया है। हमें लड्डू अच्छा लगता है, इसीसे गाय और कुत्तेको भी अच्छा लगेगा या उनके लिए लाभदायक होगा, ऐसा माननेका कोई कारण नहीं। पशुओंका स्वाद विगड़ा हुआ नही होता। जब मनुष्य-मनुष्यके स्वादमें भेद है तो पशुओके और हमारे स्वादमे तो होगा ही। किसी अंग्रेजको लड्डू दें तो वह उसे फेंक देगा; हममें से भी बहुत-से लोगोंको मीठी चीजें पसन्द नहीं आतीं। भारतमें ही मद्रासमें लोग रोटी और पंजाबमे भात नहीं खाते। तब फिर गाय और कुत्तेको लड्डू खिलानेका क्या मतलब है? गायें और कुत्ते

१. सम्भवतः १ जुलाई, १९२५; देशबन्धु दासके श्राद्धकी तिथि।

लड्डू खा जाते हैं, इससे यह सिद्ध नही होता कि उन्हें लड्डू खिलाना ठीक है। दुबले पशुओंको घास देनेमें दया है। लेकिन, गाँवोंमें तो दुबले पशु होने ही नहीं चाहिए। कुत्तेको खाना देनेमें दया नही है। यह तो मेरी समझमें केवल नासमझी ही है। यह तो नीद बेचकर जागरण —वेकार की चिन्ता — मोल लेना है। हम कुत्तेको गलत तरीकेसे सहारा देकर उनकी संख्या बढ़ने देते हैं और फिर उन्हें लावारिस छोड़कर भूखों मरने देते हैं। कुत्ते तो सब पालतू ही होने चाहिए। आवारा कुत्तोंका अस्तित्व हमारे पाप या अज्ञानकी निशानी है। अहमदावादके लोग अपने यहाँके लावारिस कुत्तोको एक जगहसे दूसरी जगह छोड़ आते हैं और इस तरह दया-धर्मका पालन करनेका दावा करते हैं। दया-धर्मपर तनिक-सा विचार करके देखें तो मालूम होगा कि नामकी दया करते जानेमें दोहरी क्रूरता और हिंसा है। एक तो इन कुत्तोको उनके वातावरणसे निकाल बाहर करनेकी हिंसा, और दूसरे, ऐसे कुत्तोंको पकड़कर गरीब गाँवोके पास छोड़ देनेसे गाँववालोके साथ हिंसा। समझदार लोगोंको धार्मिक न्यायकी वृत्तिसे विचार करके आवारा कुत्तोंके उपद्रवसे छुटकारा पानेका उपाय ढूँढ़ना चाहिए। ऐसे काम तो तभी हो सकते हैं जब जातीय पंचायतें दया-धर्मका सूक्ष्म मनन करे। अगर आप ऐसा नही करते तो आखिर वह समय आनेवाला है जब धर्महीन सत्ताधारी लोग उतावले होकर कुत्तोंको मारना शुरू कर देंगे। तात्कालिक उपाय तो यही दिखाई देता है कि कुत्तोके विशेषज्ञोंकी देखरेखमें उनके लिए पिंजरापोल खोले जायें।

एक सामान्य बातकी चर्चा करते हुए मैं बहुत गहराईमें उतर गया। लेकिन कुत्तोंको लड्डू खिलानेका प्रस्ताव पढ़कर मेरे सामने साबरमती आश्रममें आवारा कुत्तों द्वारा मचाये जानेवाले उत्पातका दृश्य साकार हो उठा और इसलिए मैंने पंचोंकी जानकारीके लिए जीव-दयाके विषयमें कुछ विचार पेश किये।

लेकिन हमारे यहाँ तो जैसे दुबले और निराश्रय जानवर हैं वैसे ही दुबले और निराश्रय मनुष्य भी हैं। उन्हे इस दशामें जीवित रखनेमें पुण्य मानकर हम अपने सिर पापका पुंज इकट्ठा कर रहे हैं।

पिछले हफ्ते मैं सूरी गया था। मैं गरीबोंका सेवक माना जाता हूँ, इसलिए सूरीके गण्यमान लोगोंने मेरा खयाल करके वहाँ कंगालोंको भोज दिया था। मेरी गाड़ी पहुँचनेके समय ही उन्होंने भोज रखा था। रास्तेमें दोनों ओर खानेके लिए बैठे गरीबोंकी कतारोंके बीचसे मुझे मोटर गाड़ीमें बैठाकर ले जाया गया। मैं बहुत लज्जित हुआ, और अगर अविनयका भय न होता तो मैं वहाँसे उतरकर भाग जाता। खानेके लिए बैठे हुए गरीबोंके बीच मोटरमें विराजमान उनका यह उद्धत सेवक भी खूब रहा! इसके सम्बन्धमें मैंने सूरीकी सभामें अपना कुछ रोना रोया। ऐसा ही दृश्य मैंने कलकत्तेमें एक पुराने धनाढ्य कुटुम्बके यहाँ देखा था। वहाँ मुझे देशबन्धु स्मारकके लिए चन्दा माँगनेके लिए ले जाया गया था। इस कुटुम्बका महल 'मारबल पैलेस' के नामसे जाना जाता है, और यह बना हुआ भी संगमरमरका ही है। मकान भव्य और देखने लायक है। इस महलके प्रांगणमें हमेशा गरीबोंको सदा-

व्रत दिया जाता है। वहाँ उन्हें पका हुआ अन्न परोसकर खिलाया जाता है। मुझे अपनी यह उदारता दिखानेके निर्दोष मन्तव्यसे और मुझे आनन्द देनेके शुभ हेतुसे मालिकोंने मुझको ठीक उनके जीमनेके समय बुलाया था। मैंने बिना विचारे हाँ कह दिया था। लेकिन, वहाँका दृश्य देखकर मैं सूरीसे भी ज्यादा दुःखी और व्याकुल हुआ। जीमनेवालोंके बीचसे मुझे मोटरमें तो नहीं ले जाया गया। लेकिन मैं जहाँ भी जाऊँ वहाँ मेरे पीछे लोगोंकी टोली तो रहती ही है। यह सारी टोली उन खाने-वालोंके बीचसे होकर निकली। बेचारे खानेवालोंको उनके पैर तो छू ही जाते। कुछ देर तक उन बेचारोंका खाना भी बन्द रहा। अगर उनकी आत्माने मुझे फिर भी आशीर्वाद दिया हो तो उनका संयम और उनकी उदारता धन्य है। कहाँ धूल-भरा आँगन और कहाँ बर्फ-जैसा सफेद वह ऊँचा महल! मुझे तो ऐसा ही लगा कि यह महल गरीबोंका उपहास कर रहा है, और मेरे अन्तरमें यह भाव जगा कि उनके बीचसे होकर बड़ी लापरवाहीसे चलनेवाले वे गरीबनवाज भी उस उपहासमें शामिल हैं!

लोगोंको इस तरह खिलानेमें क्या पुण्य हो सकता है? मुझे तो भावनाके बिल-कुल शुद्ध होते हुए भी इसके अविचारपूर्ण और अज्ञानमय होनेके कारण इसमें पाप ही दिखाई दिया। ऐसे सदाव्रत देशमें जगह-जगह चलते हैं। इससे गरीबी, आलस्य, पाखण्ड और चोरी आदि दोष बढ़ते हैं। कारण, बिना मेहनत किये खानेको मिल जाये तो मेहनत क्यों करें, जिन्हें ऐसा सोचनेकी आदत पड़ गई हो वे लोग आलसी और फिर कंगाल बन जाते हैं। निठल्ला आदमी घर घालता है, इस न्यायके अनुसार ऐसे गरीब लोग चोरी आदि सीखते हैं, और स्वयं अपने प्रति जो अन्य अनाचार करते हैं सो अलग। इन सदाव्रतोंका अन्तिम परिणाम तो मुझे बुरा ही दिखाई देता है। धनवान लोगोंको अपनी दानशीलताके विषयमें यह विचार अवश्य करना चाहिए कि उसके उपयुक्त पात्र कौन हैं। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि सभी दान पुण्य नहीं हैं। बेशक, लूले-लंगड़ों अथवा बीमारीसे पीड़ित अशक्त लोगोंको सदाव्रत देना ठीक है। लेकिन उन्हें खिलानेमें भी विवेक होना चाहिए। हजारोंके सामने तो अशक्य-लाचार लोगोंको भी न खिलाया जाये। उन्हें खिलानेके लिए एकान्त, शान्त और अच्छी जगह होनी चाहिए। असलमें तो ऐसे लोगोंके लिए विशेष आश्रम होने चाहिए। हिन्दुस्तानमें ऐसे इक्के-दुक्के आश्रम हैं भी। अशक्त-लाचार लोगोंको खिलानेकी इच्छा रखनेवाले दानी गृहस्थोंको चाहिए कि वे या तो ऐसे अच्छे आश्रमोंको पैसा भेज दें, या जहाँ ऐसे आश्रम न हों वहाँ आवश्यकतानुसार उनकी स्थापना करें।

अशक्त गरीबोंके लिए कोई काम भी ढूंढ़ना चाहिए। जिस साधनसे लाखोंका उपकार हो सके, वह साधन तो केवल चरखा ही है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २-८-१९२५

६. गुजरातका क्या कर्त्तव्य है?

शायद कुछ लोगोके मनमें प्रश्न उठता होगा कि मैंने पण्डित मोतीलालजीको जो पत्र[1] लिखा है, उसका अर्थ है गुजरात क्या करे। स्वराज्यवादी दल कांग्रेसपर कब्जा कर ले, इसका मतलव क्या हुआ? क्या गुजरात भी अपना मत वदल दे? अथवा गुजरातकी प्रान्तीय कमेटीको क्या करना चाहिए?

सवसे पहली वात तो यह है कि मैंने केवल अपने विचार ही प्रकट किये हैं। किसीकी ओरसे अथवा किसीके साथ कोई इकरारनामा नही किया है। मुझे पूरी आशा है कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी वैठकमें[2] सभी सदस्य आ सकेंगे और तव वे स्वतन्त्र भावसे अपना मत व्यक्त करेंगे तथा जो प्रस्ताव स्वीकार करेंगे वही ठीक माना जायेगा।

किन्तु मान लीजिए, सदस्यगण मेरे मतको स्वीकार कर लेते हैं। तो इसका इतना ही अर्थ हुआ कि कांग्रेसके प्रस्तावके अनुसार कांग्रेसमें राजनैतिक मामलोंको उठानेपर जो रोक लगी हुई थी वह समाप्त हो जायगी। कांग्रेसके प्रस्तावके कारण स्वराज्यवादियोंको अभी चुप रहना पड़ता है। मेरी सलाह मंजूर हो जानेपर वे अपनी वात कह सकेंगे। देशवन्धुके निधनके कारण और लॉर्ड वर्कनहेडके भाषणके उत्तरमें मैं ऐसा कौन-सा काम करूँ जो केवल मैं ही कर सकता हूँ? राजनैतिक मामलोको फिलहाल कांग्रेससे अलग रखनेकी कल्पना मेरी ही थी। जो इकरारनामा हुआ था वह भी सिर्फ मेरे और स्वराज्यवादी दलके वीच ही हुआ था। उसे इस वन्धनसे मुक्त करनेका कार्य तो मैं ही कर सकता हूँ। इसके वाद अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी जैसा चाहे, कर सकती है। अगर इस कमेटीके सदस्योंकी एक खासी वड़ी संख्या भी मेरी सलाहका विरोध करे तो वह मेरे पास ही रखी रह जायेगी।

मेरी सलाहको माननेका अर्थ इतना ही हुआ कि जिन प्रान्तोमें स्वराज्यवादियोंकी संख्या अधिक हो उन प्रान्तोंमें वे प्रान्तीय कमेटियोंकी मार्फत राजनैतिक विषयोसे सम्वद्ध अपने मनके प्रस्ताव प्रस्तुत कर सकते हैं, और उनपर चर्चा कर सकते हैं। जहाँ समितिमें गुजरातकी तरह अपरिवर्तनवादी अधिक होंगे वहाँ इस परिवर्तनका वहुत असर नही पड़ेगा। ऐसी जगहोंमें भी मैं स्वराज्यवादी दलको जितना हो सके, उतना मजवूत वनाना पसन्द करूँगा। यह कैसे सम्भव हो सकता है, सो मैं वंगालमें वैठा-वैठा नही वता सकता। हम देखते हैं कि इस दलका असर अंग्रेज अधिकारियोंपर पड़ता है। उस असरका सदुपयोग करना हमारा धर्म है। इस दलमें वहुतेरे स्वार्थ-त्यागी स्त्री-पुरुष हैं और उनके मनमें देशभक्ति भी पूरी-पूरी है। ऐसे स्त्री-पुरुष चाहे किसी

१. खण्ड २७, पृष्ठ ४१२-१३।

२. यह बैठक २२, २३ और २४ सितम्बर, १९२५ को पटनामें हुई थी।

दलमें हों, वन्दनीय हैं। सबको अपने स्वतन्त्र विचार रखनेका अधिकार है। यह अधिकार रक्षणीय है।

कांग्रेसके द्वार किसीके लिए जबरन बन्द नहीं रखे जा सकते। जबतक हम शिक्षित वर्गमें खादी और चरखेके सामर्थ्यपर विश्वास उत्पन्न नहीं कर पाते, तबतक चरखेको प्रमुख स्थान मिल ही नही सकता। मेरा लिहाज करके या मुझे कांग्रेसमें बनाये रखनेके लिए चरखेको स्थान देना निरर्थक है। चरखेको स्थान देना तो तभी शोभा दे सकता है जब उसपर शिक्षित वर्गकी श्रद्धा हो अथवा वह वर्ग चरखावादियोको स्थान देना चाहता हो। स्वराज्यवादी दलके सदस्योंकी सभामें किसीने चरखेको हटानेका विचार तो नहीं किया है। यदि वे हटाना चाहते तो भी मैं उसपर सहमत होनेके लिए तैयार था; परन्तु वे लोग तो इस बातको सुनने तकके लिए तैयार न थे। उन्हें इस बातपर पूरा सन्तोष था कि जो लोग न कातें वे पैसा दें। खादी पहननेकी शर्तको भी निकालनेके लिए वे तैयार नही थे। यदि स्वराज्यवादी स्वतन्त्र रूपसे इस हदतक भी सोचते हों तो मैं इसे खादीकी बहुत बड़ी उन्नति मानता हूँ।

स्वराज्यवादी और अपरिवर्तनवादी, इन शब्दोंका प्रयोग ही बन्द हो जाना चाहिए। विधानसभाओंमें जानेवालोंकी सख्या हमेशा बहुत कम रहेगी। सभी लोग तो उनमें जा नही सकते। इसलिए उसका विरोध करनेका कोई कारण मुझे इस समय दिखाई नहीं देता। यदि विधानसभाओंमें न जानेवाले लोग यहाँ बाहर अपने कामसे *सविनय अवज्ञाका वातावरण तैयार कर सकें तो वे [स्वराज्यवादी] अपने*-आप वहाँसे निकल आयेंगे या फिर विधानसभाओंमें रहकर ही यथाशक्ति मदद करेंगे। और अगर वे सविनय अवज्ञाकी मुखालिफत करेंगे तो हमें उनका विरोध करना पड़ेगा। परन्तु स्वराज्यवादी सविनय अवज्ञाका विरोध करेंगे, इसकी मैं कल्पना भी नहीं कर सकता।

सविनय अवज्ञाका रहस्य समझनेवाले लोग तो चौबीसों घंटे चरखेका ही गुणगान करेंगे। इसीसे मैंने यह सुझाव दिया है कि जो स्थान आज स्वराज्यवादी दलको प्राप्त है वही चरखेको मिले, अर्थात् कांग्रेसकी छत्रछायामें एक चरखा संघ स्थापित हो, जिसका कार्य हो केवल चरखे और खादीका प्रचार करना। सदस्यताका सूत भी वही संघ एकत्र करे और अपने पास रखे। यह संघ अपना स्वतन्त्र विधान बनाये। यदि इस तरह कार्य हो तो दोनों प्रवृत्तियाँ एक-दूसरेसे टकराये बिना चलेंगी और एक-दूसरेकी सहायक होंगी।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २-८-१९२५

७. टिप्पणियाँ

दादाभाई शताब्दी

आगामी ४ सितम्बरको दादाभाई नौरोजीकी जन्म-शताब्दी है। भाई भरूचाने हमें समयपर इस बातकी याद दिलाई है। दादाभाईको हम स्नेहसे भारतका पितामह कहते थें। उन्होंनें अपना जीवन भारतको समर्पित कर दिया था। दादाभाईने भारतकी सेवाको अपना धर्म बना लिया था। भारतके दीन-दु.खी जन उनके मित्र थे। हमें भारतकी दरिद्रताके प्रथम दर्शन दादाभाईने ही करवाये थे। उन्होंने जो आँकड़े तैयार किये थे उन्हें आजतक कोई गलत साबित नही कर सका है। दादाभाईने हिन्दू, मुसल-मान, पारसी, ईसाई आदिके बीच कोई भेद नहीं माना था। उनकी दृष्टिमें तो सब भारतकी सन्तान थें और इसी कारण वे सब समान रूपसे उनकी सेवाके पात्र थे। हम देखते है कि उनकी दो पौत्रियोंका स्वभाव ठीक उनकी तरह ही है।

इस महान् भारत सेवककी जन्म-शताब्दी हम किस तरह मनायेंगे? सभाएँ तो करेंगे ही। लेकिन केवल शहरोंमें नही बल्कि सभी ऐसे गाँवोंमें जहाँ कांग्रेसकी आवाज पहुँच सकती है। उन सभाओंमें हम क्या करेंगे? दादाभाईकी स्तुति? यदि केवल स्तुति ही करनी हो तब तो हम भाट-चारणोंको बुलाकर उनकी कल्पनाशक्ति तथा वाणीके निर्झरका उपयोग करके बैठे रह सकते हैं। यदि उनके गुणोंका हम अनुकरण करना चाहते हैं तो उनके गुणोंपर प्रकाश डालना और अपनी अनुकरण-शक्तिको आँकना होगा।

दादाभाईने भारतकी दरिद्रता देखी और हमें यह सिखाया कि उसकी औषध स्वराज्य है। लेकिन स्वराज्य प्राप्त करनेकी कुंजीकी खोज करनेका काम वे हमें सौंप गये। दादाभाईकी प्रसिद्धिका मुख्य कारण उनकी देश-भक्ति है। वे देश-भक्तिमें लीन ही हो गयें थे।

हम जानते हैं कि स्वराज्य प्राप्त करनेका सर्वोत्तम साधन चरखा है। भारतकी दरिद्रताका कारण यह है कि उसका किसान सालमें छः महीने बेकार बैठा रहता है और हालाँकि किसानको ऐसा विवश होकर करना पड़ता है, लेकिन यदि यह विवशता अर्थात् आलस्य हमारा स्वभाव हो जायें तो फिर इस देशकी गुलामीसे मुक्ति नही हो सकती; इतना ही नहीं वह इससे पूरी तरह बरबाद हो जायेगा। इस आलस्यको दूर करनेका एकमात्र उपाय चरखा है। इसलिए चरखेकी प्रवृत्तिको उत्तेजन प्रदान करनेकी दिशामें किया गया प्रत्येक कार्य दादाभाईके गुणोंका अनुकरण है।

चरखा अर्थात् खादी, चरखा अर्थात् विदेशी वस्त्रका बहिष्कार, चरखा अर्थात् गरीबोंके झोंपड़ोंमें साठ करोड़ रुपयोंका पहुँचना।

अखिल भारतीय देशबन्धु स्मारकका उद्देश्य भी चरखा प्रचार ही है। इसलिए उस दिन इस कोषके लिए चन्दा इकट्ठा करना भी दादाभाईकी जयन्ती मनानेके समान है। इससे उस दिन लोग मिलकर विदेशी वस्त्रका सर्वथा त्याग करने, केवल हाथकते सूतकी खादी पहनने और नियमित रूपसे कमसे-कम आधा घंटा कातनेका

दृढ़ निश्चय करें तथा खादी प्रचारके लिए पैसा इकट्ठा करें। जो स्वयं कपासकी खेती करता है वह अपने उपयोगके लायक कपास अलग रख ले।

लेकिन जिन्हें चरखेका नाम अच्छा नही लगता उनका क्या हो? उनके लिए मैं क्या उपाय बतला सकता हूँ? जिन्हें स्वराज्यका नाम अच्छा नहीं लगता उनसे शताब्दी मनानेकी बात किस तरह कही जाये? उन्हें स्वयं कोई उपाय सोच लेना चाहिए। मेरा सुझाव तो सार्वजनिक है और मैं इतना ही कर सकता हूँ। यदि कोई व्यक्ति अन्य गुणोंकी शोध करके उनका अनुकरण करना चाहे तो एक अलहदा बात है। इस तरह किसी दूसरे तरीकेसे शताब्दी मनानेका उसे हक है। अथवा यदि स्वराज्यवादी शहरोंमें कुछ विशेष कार्यक्रम रखना चाहें तो अवश्य रखें। मैं तो केवल वही कह सकता हूँ जिसे ग्रामीण और नागरिक, वृद्ध और बालक, स्त्री और पुरुष, हिन्दू और मुसलमान सब कोई कर सकते हैं।

यदि हम मेरे सुझावके अनुसार दादाभाईकी जन्म-शताब्दी मनाना चाहते हैं तो हमें आजसे ही तैयारियाँ शुरू कर देनी चाहिए। हम आजसे ही उसके लिए चरखा चलायें, आजसे ही हम उसके निमित्त खादी तैयार करें, और स्थान-स्थानपर ऐसी सभाएँ करें जो हमें और देशको शोभा दें।

अखिल भारतीय देशबन्धु स्मारक

इस स्मारकके कोष-सम्बन्धी परिपत्रपर अभीतक हस्ताक्षर लिये जा रहे हैं। कवि गुरुके हस्ताक्षर प्राप्त होनेसे मुझे स्वाभाविक रूपसे आनन्द हुआ है। उम्मीद है कि पाठकोंको भी होगा। मैंने उन्हें विशेष रूपसे यह सन्देश भेजा था कि परिपत्रमें जिस श्रद्धाकी चर्चा की गई है, चरखेके बारेमें उन्हें वैसी ही श्रद्धा हो तो वे हस्ताक्षर करें; अन्यथा नही। मुझे जब यह लगा कि अखिल भारतीय स्मारक चरखा और खादीके सम्बन्धमें ही होना चाहिए तब मैंने उस विचारको सर्वप्रथम कवि गुरुके आगे ही रखा था। उस बातको, आज जबकि मैं यह लेख लिख रहा हूँ, आठ हफ्ते हो गये हैं। उन्होंने तभी सम्बन्धित परिपत्रपर हस्ताक्षर करनेकी बात स्वीकार कर ली थी। इस परिपत्रमें जिस व्यक्तिको चरखे और खादीपर श्रद्धा न हो अथवा जो स्मारकके सम्बन्धमें इसे ठीक न मानता हो, उससे हस्ताक्षर लेनेका आग्रह रखा ही नहीं गया है। परिपत्रपर सिर्फ श्रद्धालुओंके हस्ताक्षर लेनेकी बात थी; इतना ही नही बल्कि यह भी निश्चय था कि यदि देशबन्धुके खास अनुयायी स्मारकको इस प्रकार नापसन्द करेंगे तो स्मारकको चरखा और खादी प्रचारका स्वरूप प्रदान नही किया जायेगा। हम सामान्य रूपसे परिपत्रपर जिनके हस्ताक्षर करनेकी अपेक्षा रखते हैं यदि वे सब भी निःसंकोच भावसे उसपर हस्ताक्षर न करें तो यह आग्रह भी हमने नहीं रखा है। इसी तरहसे स्मारककी स्थापना की जानी चाहिए। मैं जानता हूँ कि चरखा और खादीकी उपयोगिताके बारेमें मतभेद है, उसे देशबन्धु-जैसे महान् नेताके स्मारकमें एकान्तिक स्थान प्रदान करनेकी बातको एकाएक बहुत सारे लोग स्वीकार नहीं कर सकते। लेकिन मुझे तो देशबन्धुके प्रति एक साथी और मित्रके रूपमें अपना धर्म निभाना था और अखिल बंगाल स्मारकके सम्बन्धमें यदि मुझे स्वतन्त्र रूपसे

विचार करना होता तो मैं निश्चय ही अस्पताल आदि पसन्द नहीं करता। बहुत सारे अस्पतालोंकी आवश्यकताको मैंने कभी स्वीकार नही किया है। लेकिन यदि मैं स्वतन्त्र होऊँ तो क्या करूँ, इसका तो विचारतक मैंने अपने मनमें आने नही दिया। देशबन्धु द्वारा बनाया गया ट्रस्ट मेरे सामने था और मेरा सम्पूर्ण मार्गदर्शन उससे हो जाता था। इसलिए मैंने, यदि उनके अनुयायी पसन्द करें तो स्मारकका हेतु उसीके अनुसार स्थिर करनेको अपना धर्म समझा और तदनुसार दस लाख रुपया इकट्ठा करनेकी दृष्टिसे ही मैं अब बंगालमें हूँ। हालाँकि ट्रस्ट एक वर्ष पूर्व बना था; फिर भी मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि उसमें जो विचार प्रकट किये गये हैं, देशबन्धुके वे ही विचार अन्ततक कायम थे। क्योंकि मकानपर जो कर्ज बचा रह गया था उसके लिए पैसा इकट्ठा करनेके लिए उन्होंने मुझसे मदद माँगी थी। चरखा और खादी सम्बन्धी उनके अन्तकालके विचारोंको जितनी अच्छी तरह मैं जानता हूँ, कहा जा सकता है कि उतनी अच्छी तरह उनकी पत्नीके अलावा कदाचित् और कोई व्यक्ति नही जानता। परिपत्र निकालते समय मैंने पहले श्रीमती बासन्ती देवीके विचार जान लिये थे। उसी तरह देशबन्धुके परम सखा और सहयोगी पण्डित मोतीलालजीके विचार और बादमें देशबन्धुके खास अनुयायियोंके विचार भी जान लिये थे। परिपत्र निकालनेका निश्चय इन सब लोगोंके विचार जाननेके बाद ही मैंने किया। इस स्मारकका कार्य मेरे लिए विशेष रूपसे अनुकूल है, इतना मुझे स्वीकार करना चाहिए। स्मारकका कार्य मेरे अनुकूल है, फिर भी पाठक मानेंगे कि उसकी सफलताके सम्बन्धमें मैं तटस्थ हूँ। अखिल बंगाल स्मारकके सम्बन्धमें ऐसा नही कहा जा सकता। उसे सफल बनानेके लिए मैं जबर्दस्त प्रयत्न कर रहा हूँ। यह भेद सकारण है। चरखेकी शक्तिके बारेमें लोगोंमें मतभेद है, किन्तु मुझे उसमें अटूट श्रद्धा है। इसलिए तत्सम्बन्धी स्मारकके निर्माणमें खीचतानसे काम नहीं चल सकता। यदि चरखेमें शक्ति है और भारतको उसके प्रति सच्ची श्रद्धा है, तभी मैं देशबन्धुके नामसे उसके लिए द्रव्य पानेकी इच्छा रखूँगा। इसीसे जितना सन्तोष मुझे कवि गुरुके हस्ताक्षरोंसे हुआ है उतना ही सन्तोष मुझे भारतभूषण पण्डित मालवीयजीके हस्ताक्षरोंसे हुआ है। मैंने भाई जवाहरलालसे कहा है कि वे अन्य लोगोंसे भी हस्ताक्षरोंके लिए कहें।

अब यह देखना बाकी है कि इस स्मारकके लिए गुजरात कितना चन्दा देता है। मुझे उम्मीद है कि गुजरात अपने लिए शोभनीय रकम देगा। उससे स्मारककी भी श्री वृद्धि होगी।

हमें उम्मीद है कि 'नवजीवन' के पाठक और खादी-प्रेमी चन्दा उगाहे जानेकी राह न देखकर अपना चन्दा स्वयं भेज देंगे। प्राप्तिकी स्वीकृति 'नवजीवन' में प्रकाशित होगी। यह प्रार्थना केवल गुजरात अथवा हिन्दुस्तानमे रहनेवाले 'नवजीवन' के पाठकोंसे ही नहीं है बल्कि देशके बाहर रहनेवाले पाठकोंसे भी है।

जात-बिरादरीकी स्थिति

मारवाड़ी भाइयोंका कलकत्तेमें सम्मेलन हुआ था। उसमें वे मुझे ले गये थे। वहाँ केवल जाति सुधारकी ही बात थी और उससे सम्बन्धित अनेक प्रश्नोंपर चर्चा

की गई थी। ऐसी स्थितिमें मैं क्या कहता? मैंने सुधारोंके बारेमें बोलनेके बदले मुख्य रूपसे बहिष्कारके सिद्धान्तकी बात उनके सम्मुख रखी। मैं जानता था कि बहिष्कारने उनमें भयंकर स्वरूप धारण कर लिया है और उसके कारण कटुता फैल गई है। चूँकि यह बात हिन्दू-मात्र पर लागू होती है, इसलिए इस भाषणका सार मैं यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ।[1]

बहिष्कारके शस्त्रका सदुपयोग तभी होता है जब वह शुद्ध मनुष्योंके हाथोंसे हो; नहीं तो वह निरी हिंसाका स्वरूप धारण कर लेता है तथा उपयोगकर्त्ता एवं जिसके विरुद्ध उसका उपयोग किया जाता है कदाचित् उसके लिए भी नाशकारक सिद्ध होता है।

आजकल हम बहिष्कार करनेके योग्य नहीं रह गये हैं। यदि एक पिता अपनी उस पुत्रीका विवाह करे जो दस वर्षकी उम्रमें विधवा हो गई हो तो उसे, उस बालिकाको एवं उसके साथ विवाह करनेवालेको जाति बहिष्कृत करनेमें पुण्यकी क्या बात है? जो लोग अनीतिपूर्ण आचरण करते हैं, जो खुले आम व्यभिचार करते हैं, मांस-मदिराका सेवन करते हैं, उन लोगोंको जाति बहिष्कृत नहीं किया जाता। जो मानसिक व्यभिचार करते हैं उनके साथ क्या व्यवहार किया जाता है? तात्पर्य यह कि जबतक हम लोग शुद्ध नहीं हैं तबतक कौन किसका बहिष्कार करने योग्य है? कोई भी नहीं।

बहिष्कारका परिणाम यह होता है कि इससे एक नई जातिका निर्माण हो जाता है। हम आज जिन्हें 'तड़' कहते हैं वे कल जातियाँ बन जायेंगी। इसलिए इस युगमें जहाँ जातियोंका संकर हो रहा है, बहिष्कार सर्वथा अनिष्टकारक है।

वर्णाश्रम धर्म है, जातियाँ धर्म नहीं। वर्णाश्रमकी रक्षा इष्ट है, जातियोंका नाश अभीष्ट है। इसके लिए सुधारकोंको प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। हम चाहे जो करें, इस तरहके सुधारोंका होना रोका नहीं जा सकता। क्योंकि हिन्दूधर्ममें बहुत मलिनता आ गई है और आज सभी दिशाओंमें जागृति हो रही है।

समझदारीकी बात यह है कि सुधारको धर्मका स्वरूप दिया जाये। जहाँ ऐसा जान पड़े कि सुधार ठीक नहीं है, बहिष्कार तो वहाँ भी अनिष्ट-रूप ही है।

मारवाड़ी कौम बुद्धिमान है, साहसी है। उसने भारतवर्षका उपकार और अपकार दोनों ही किये हैं। मित्रके रूपमें अपकारकी बात भी सुनाना मेरा धर्म है। ईश्वर उसे उससे बचाये और उसका कल्याण करे।

जिनका बहिष्कार किया जाये उन्हें चाहिए कि वे मर्यादामें रहकर विवेकपूर्वक कटुताको फैलनेसे रोकें और अपनी नीतिपर दृढ़ रहें। बहिष्कारके विषयमें मैंने यही कहा।

दानमें विवेकशीलता

मैंने मारवाड़ी भाइयोंकी दान-वृत्तिकी प्रशंसा करते हुए दानमें विवेककी आवश्यकताकी बात कही। कार्नेगी अरबपति हो गये हैं। उन्हे बिना विचारे पुस्तका-

1. देखिए खण्ड २७, पृष्ठ ४२७-२९।

लयोंकी स्थापना करनेका शौक था। इसपर स्कॉटलैंडके अध्यापकोंने उन्हें सावधान रहनेकी चेतावनी दी थी और कहा था कि उन्हें विशेषज्ञोंकी सलाह लेकर दान करना चाहिए। दानवीरोंको दान देनेमें विवेक बरतनेकी सलाह देना और उनका उसको ध्यानमें रखना जरूरी है। सब तरहके दानसे पुण्य ही होता है, ऐसा माननेका कोई कारण नहीं है। मारवाड़ी भाई सच्चे गोरक्षक हैं। वे उस काममें खूब पैसा खर्च करते हैं लेकिन उसमें भी वे हमेशा विवेकसे काम नहीं लेते। यदि गोरक्षामें कोई समर्थ है तो वे मारवाड़ी भाई हैं क्योंकि गोरक्षाके लिए मुख्य रूपसे धन और व्यापारी-बुद्धि होना जरूरी है। ये दोनों उनके पास हैं। यदि इनका विवेकपूर्वक उपयोग हो तो विशाल पैमानेपर सच्ची गोरक्षा हो सकती है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २-८-१९२५

८. कांग्रेसमें सविनय अवज्ञा

'नवजीवन' में हम कई बार देख आये हैं कि जिसे हम अपना शत्रु मानते हों अथवा जो हमें अपना शत्रु मानता हो सविनय अवज्ञा केवल उसीके खिलाफ नहीं बल्कि जिन्हें हम अपना मित्र अथवा बुजुर्ग समझते हों उनके खिलाफ भी की जा सकती है। आज कांग्रेसके सम्बन्धमें इसका प्रयोग करनेका समय आ गया है। कांग्रेस-के संविधानमें जो सुधार आवश्यक हैं, वे अन्यत्र दिये गये हैं। परन्तु, सामान्यतः अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीको ये सुधार करनेका अधिकार नहीं है। ये सुधार संविधानमें परिवर्तन करके ही किये जा सकते हैं। ऐसा करनेका अधिकार कांग्रेसको ही है। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीको जो अधिकार दिये गये हैं, यह अधिकार उनमें नहीं आता। इसके लिए कमेटीको अपनी असाधारण सत्ताका उपयोग करना पड़ेगा। इस असाधारण सत्ताको दूसरे शब्दोंमें कानूनके प्रति सविनय अवज्ञा कहा जा सकता है। प्रसंग आनेपर ऐसी अवज्ञा करनेका अधिकार सबको और सब संस्था-ओंको है, यही नहीं, बल्कि वह उनका धर्म हो जाता है। मैंने जो सुधार सुझाये हैं, यदि हम उनकी आवश्यकता मानते हों तो इस समय हमपर इस धर्मके पालनका दायित्व आ चुका है। कांग्रेसकी बैठकमें तो इस बातकी चर्चा अवश्य होनी चाहिए। दूसरेका काता हुआ सूत मोल लेकर देनेका नियम बंद होना ही चाहिए; क्योंकि इस शर्तसे कताई की दिशामें कोई लाभ नहीं हुआ; इतना ही नहीं, दम्भ और असत्यकी वृद्धि हुई है। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी यह आवश्यक परिवर्तन न करे तो वह धर्मच्युत मानी जायेगी; क्योंकि इस तरह देशके दो-चार मास व्यर्थ जायेंगे। यदि देशबन्धुका अवसान न हुआ होता और लॉर्ड बर्कनहेडने जो भाषण दिया है, वैसा न दिया होता, तब तो शायद इस विषयमें मतभेदके लिए गुंजाइश रहती; पर अब नहीं है। हो सकता है, कमेटीके कुछ सदस्य तात्कालिक आवश्यकताको स्वीकार न करें। उस हालतमें उन्हें सविनय अवज्ञा करनेका अधिकार नहीं है; और इसलिए मैंने अपना यह

मन्तव्य स्पष्ट कर दिया है कि कमेटी ऐसा परिवर्तन तभी कर सकती है जब इस बातमें कमेटीकी पूरी नहीं तो लगभग पूरी सहमति हो।

ऐसे परिवर्तनकी आवश्यकता ही सविनय अवज्ञा करनेका पर्याप्त कारण नहीं हो सकती। जिसके खिलाफ सविनय अवज्ञा करनी हो, उसे भी इससे लाभ पहुँचना चाहिए। यहाँ तो, इस शर्तका पूरा-पूरा पालन होता है; क्योंकि इन परिवर्तनोंकी आवश्यकता कांग्रेसके लाभके लिए है। दूसरी शर्त यह है कि अवज्ञा करनेवालेके मनमें द्वेषभाव न होना चाहिए। यह शर्त तो इसके नाममें ही आ जाती है, क्योंकि विनय द्वेषका विरोधी है और जहाँ कांग्रेसकी भलाईकी कामना की गई है वहाँ द्वेष कहाँसे हो सकता है? यह लेख मैं इसलिए नहीं लिख रहा हूँ कि मैं किसीसे उसकी इच्छाके खिलाफ ऐसा कहलाना चाहता हूँ कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीको संविधानमें परिवर्तन करना ही चाहिए। इसमें भी सब स्वतन्त्रतापूर्वक अपनी-अपनी विचार-बुद्धिका प्रयोग करें। जिन्हें ऐसा लगे कि विधानमें इस तरह परिवर्तन करनेसे लाभके बजाय हानि ही अधिक होगी तो परिवर्तनकी आवश्यकता स्वीकार करते हुए भी उनका फर्ज है कि कमेटीकी मार्फत परिवर्तन करनेका विरोध करें। सविनय अवज्ञा किसीके कहनेसे नहीं होती, न होनी चाहिए। सविनय अवज्ञा तो तभी होनी चाहिए जब वह खुद ही किसीको अनुकूल मालूम हो; तभी वह शोभा भी दे सकती है, तभी वह सम्भव भी है। कारण, जो बात हमें पटती नहीं उसे करनेकी शक्ति भी हमारे अन्दर नहीं होती और सविनय अवज्ञाकी सफलताका आधार तो केवल स्वशक्तिपर ही है।

इस लेखका मुख्य हेतु यह दिखाना है कि सविनय अवज्ञा किन परिस्थितियोंमें हो सकती है। मैं अपनेको सविनय अवज्ञाका शास्त्री मानता हूँ। मैं मानता हूँ कि उसकी खोज भी मैंने स्वतन्त्र रूपसे की है और मैं अपना यह धर्म मानता हूँ कि उसकी प्रासंगिकता, उसकी मर्यादा आदि समय-समयपर बताता रहूँ। परिवर्तन हो या न हो, इसके विषयमें मैं तटस्थ हूँ। इतना ही नहीं, मैं मानता हूँ कि यदि सब लोग अपनी-अपनी स्वतन्त्र निर्णय-बुद्धिका उपयोग न करेंगे तो हमें इस परिवर्तनसे हानि ही होगी। जो अपनेको मेरा अनुयायी मानते हैं, उनपर ये विचार विशेष रूपसे घटते हैं। मुझे अन्ध-भक्ति पसन्द नहीं है। उससे मुझे तीव्र अरुचि है। अन्ध-भक्तिसे स्वराज्य नहीं मिल सकता, और मिले भी तो वह टिका नही रह सकता। इसलिए मैं अपने अनुयायियोंकी भी बुद्धिको अपनी बात जँचाकर और इस तरह उन्हें अपने पक्षमें लेकर ही उनसे काम लेना चाहता हूँ। यदि हम उपर्युक्त परिवर्तन सोच-समझकर करेंगे और उनपर ईमानदारीके साथ अमल करेंगे तो मैं उससे बहुत अच्छे परिणाम उत्पन्न होनेकी आशा रखता हूँ।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २-८-१९२५

९. एच० डब्ल्यू० बी० मोरेनोसे बातचीत

कलकत्ता
४ अगस्त, १९२५

श्री गांधीने हाल ही में आंग्ल-भारतीयोंकी एक सार्वजनिक सभामें कहा था[1] कि आंग्ल-भारतीयोंको यूरोपीयोंकी नकल नहीं करनी चाहिए; इसके विपरीत उन्हें तो वेशभूषा भी भारतीय ढंगकी अपनानी चाहिए और सभी राजनीतिक बातोंपर भारतीय दृष्टिकोणसे गौर करना चाहिए। डा० मोरेनोने इस प्रकारके कथनके औचित्य-पर आपत्ति की और कहा कि आंग्ल-भारतीय बिलकुल शैशव-कालसे ही अंग्रेजी वेश-भूषा पहनते हैं और अंग्रेजी भाषा बोलते हैं। यही उनकी परम्परा है और वे उसका सम्मान करते हैं।

श्री गांधीने उत्तर में कहा कि मुझे गलत समझा गया है। मैं इतना ही चाहता हूँ कि आंग्ल-भारतीय यूरोपीयोंकी नकल न करें। आंग्ल-भारतीयोंकी अपनी एक अलग ढंगकी वेश-भूषा है। इसी प्रकार मुसलमानोंकी वेश-भूषा भी अलग ढंगकी है। किन्तु मेरा मतलब किसी खास ढंगकी वेश-भूषासे नहीं था। मैं यह जानता हूँ कि आंग्ल-भारतीय एक हदतक यूरोपीय रहन-सहनके दर्जेका अनुसरण करते हैं, किन्तु मुझे नापसन्द तो यह चीज है कि वे अपनी हैसियतसे बाहर जाकर यूरोपीयोंके समान होनेका झूठा दिखावा करते हैं, और अधिकांश मामलोंमें इसका परिणाम यह होता है कि उनका दिवाला निकल जाता है। मेरा मतलब विशेष रूपसे इस समाजके उस बहुसंख्यक वर्गसे है, जिनकी आर्थिक स्थिति किसी तरह अच्छी नहीं कही जा सकती। मेरा आशय ऊपरके तबकेके लोगोंसे नहीं था, जो इस समाजके साधारण लोगोंके साथ किसी भी बातमें मिलते-जुलते नहीं हैं। मैं चाहता हूँ आंग्ल-भारतीय सब चीजोंको भारतीय दृष्टिकोणसे देखें। यदि मेरा सुझाव गलत भी हो तो मैं इसका निर्णय समाज-पर छोड़ता हूँ, क्योंकि अपनी स्थितिका ठीक-ठीक ज्ञान स्वयं उसीको है।

[अंग्रेजीसे]
फॉरवर्ड, ७-८-१९२५

१. देखिए खण्ड २७, पृष्ठ ४५८–६६।

१०. भाषण: ईसाइयोंकी सभामें[1]

कलकत्ता
४ अगस्त, १९२५

सभापति महोदय और भाइयो,

महोदय, आपने अभी कहा कि केवल भारतीय ईसाइयोंकी सभामें भाषण देनेका शायद यह मेरा पहला अवसर है। यदि आपका मतलब यह हो कि अपने वर्तमान दौरेमें मुझे यह सौभाग्य पहली बार मिला है, तो आपने ठीक ही कहा। किन्तु यदि आपका मतलब यह हो या बोलते समय यह रहा हो कि मैं जबसे दक्षिण आफ्रिकासे लौट कर भारतमें आया हूँ, तबसे यह सौभाग्य पहली ही बार यहाँ प्राप्त हो रहा है तो मैं कहना चाहूँगा कि १९१५ में भी एक बार मैं केवल ईसाइयोंकी सभामें बोला था।[2] किन्तु भारतीय ईसाइयोंसे मेरा सम्बन्ध तो १८९३ से रहा है, उस वर्ष मैं दक्षिण आफ्रिका गया था; वहाँ मैंने भारतीय ईसाइयोंका एक विशाल समाज पाया। मुझे यह देखकर सुखद आश्चर्य हुआ कि उन तमाम ईसाई युवकों और युवतियोंकी अपने धर्ममें गहरी निष्ठाके साथ-साथ अपनी मातृभूमिके प्रति भी उनमें वैसी ही श्रद्धा थी; और जब मुझे मालूम हुआ कि इनमें से अधिकांश नवयुवकों और नवयुवतियोंने भारतको कभी देखा भी नहीं है तब तो मुझे और भी अधिक प्रसन्नता हुई। उनमें से अधिकतर नेटालमें पैदा हुए थे; और कुछ मॉरिशसमें पैदा हुए थे; क्योंकि सबसे पहले मॉरिशससे ही स्वतन्त्र भारतीय प्रवासियोंका पहला जत्था दक्षिण आफ्रिका पहुँचा था। उनमें से अधिकतर गिरमिटिया माता-पिताओंकी सन्तान थे। गिरमिटिया भारतीय वे थे, जो एक अनुबन्धके अन्तर्गत नेटालके गन्नेके खेतोंमें कमसे-कम पाँच वर्षतक काम करनेके लिए गये थे। इस अनुबन्धको अवधिकी समाप्तिसे पहले तोड़ा नहीं जा सकता था। इस अनुबन्धको गिरमिट भी कहा जाता था, इसलिए वे गिरमिटिया भारतीय कहलाते थे। स्वर्गीय सर विलियम हंटरने[3] उनकी स्थितिको लगभग गुलामीकी स्थिति कहा था। मैंने इसका उल्लेख यह बतानेके लिए किया है कि हमारे इन भाइयों और बहनोंको दक्षिण आफ्रिकामें क्या-क्या कठिनाइयाँ और निर्योग्यताएँ झेलनी पड़ती थीं और किस प्रकार उन्होंने उन कठिनाइयोंपर काबू पाया और उन कठिनाइयोंके बावजूद अपने जीवनको ऐसे सुन्दर ढंगसे गढ़ा कि आज वे बहुत अच्छे-अच्छे और प्रतिष्ठाजनक धन्धोंमें लगे हुए हैं। इनमें से कुछ लोगोंने तो इंग्लैंडमें शिष्टजनोचित आधुनिक शिक्षा भी प्राप्त की है। इनमें से कुछ स्टोर-कीपर हैं और कुछ इससे छोटे धन्धोंमें लगे हुए हैं। इन बहादुर

१. गांधीजीने एल० एम० इंस्टिट्यूशनमें भारतीय ईसाइयोंकी इस सभामें "मानव-भ्रातृत्व" (ब्रदरहुड ऑफ मैन) विषयपर भाषण दिया था। विधान परिषद्-सदस्य एस० सी० मुकर्जीने सभाकी अध्यक्षता की थी।

२. देखिए खण्ड १३, पृष्ठ ६७।

३. सर विलियम विल्सन हंटर (१८४०-१९००), भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी ब्रिटिश समितिके सदस्य।

युवकोंने बोअर युद्ध तथा जुलू विद्रोहके अवसरपर सरकारको अपनी सेवाएँ अर्पित की थीं। उनमें से कुछका मेरे अपने घरमें पालन-पोषण हुआ था। इनमे से कमसे-कम दो बादमें बैरिस्टर बने।[1] इस तरह आप समझ सकते हैं कि भारतीय ईसाई समाजके साथ मेरे सम्बन्ध कितने घनिष्ठ रहे हैं। मैं नही समझता कि उस देशमें एक भी भारतीय ईसाई है, जिसे मैं नहीं जानता और जो मुझे नही जानता। इसलिए आज "मानव-भ्रातृत्व" पर भाषण देनेके लिए आपके सामने उपस्थित होनेका अवसर पाकर मुझे बहुत प्रसन्नता हो रही है।

हमारे इन देश-भाइयोंको जैसी निर्योग्यताएँ झेलनी पड़ती हैं, वैसी निर्योग्यताओं-का भार सहन करनेवाले लोगोंके लिए यह समझना अत्यन्त कठिन है कि "मानव भ्रातृत्व" जैसी भी कोई वस्तु हो सकती है। यदि आप समाचारपत्र पढ़ते हैं और भारतके बाहर चारो ओर जो-कुछ हो रहा है उसमें अगर आप कोई दिलचस्पी रखते हैं तो आप शायद जानते होंगे कि दक्षिण आफ्रिकामें वहाँकी सरकार भारतीयोंको निकालकर बाहर करनेकी कोशिश कर रही है या जैसा कि यहाँ अंग्रेजोंके एक समाचारपत्रने लिखा है, उन्हे भूखों मारकर देशसे बाहर निकलनेपर मजबूर किया जा रहा है; और जिनको इस तरह भूखों मारनेकी योजना की जा रही है उनमें कई वे नौजवान भी शामिल हैं, जिनकी अभी मैंने चर्चा की। यह बात अन्तमें होकर रहेगी अथवा नही, और भारत सरकार इसकी स्वीकृति देगी या इसे सहन कर लेगी यह देखना अभी शेष है। किन्तु जिस सन्दर्भमें मैं आपके सामने इस बातका उल्लेख कर रहा हूँ वह, जैसा कि मैंने अभी आपको बताया, यह है कि इस प्रकारके लोगोंके लिए भ्रातृभावका अर्थ समझ सकना बहुत कठिन है; और फिर भी मेरे आपके सामने भ्रातृभावपर इस तरह बोलनेका कारण यह है कि तनाव तथा कठिनाईके ऐसे समयमें ही मनुष्यकी भ्रातृत्व भावनाकी कसौटी होती है।

मुझे अकसर अपनी प्रशसामें बहुत-सी बातें सुननेको मिलती हैं। लेकिन वे मुझ-पर कोई प्रभाव डाले बिना मेरे मनसे इस तरह निकल जाती हैं जैसे बत्तखकी पीठ-पर से पानी। लेकिन, महोदय, आपने इस समय मेरी जो प्रशंसा की है, मेरा जी उसे स्वीकार करनेको होता है। आपका विचार है कि मानव-भ्रातृत्वपर बोलनेका यदि किसी व्यक्तिको अधिकार है तो, कमसे-कम, मुझे वह अधिकार मिलना चाहिए; मैं भी यही सोचता हूँ। मैंने बहुत-से अवसरोंपर अपनेको परखकर यह जाननेकी कोशिश की है कि क्या मेरे लिए अपने उत्पीड़कके प्रति घृणा करना — मैं प्रेम करना नही कह रहा हूँ — सम्भव है। मुझे अत्यन्त ईमानदारीके साथ किन्तु पूरी नम्रतासे यह कहना होगा कि मुझे इसमे सफलता नहीं मिली; मुझे ऐसा एक भी अवसर याद नहीं जबकि मुझे किसी भी व्यक्तिके प्रति घृणाका अनुभव हुआ हो। मैं ऐसा कैसे बना, मैं नही जानता। मैंने तो जीवन-भर जैसा आचरण किया है, वही आपको बता रहा हूँ। इसलिए यह वास्तवमें शब्दश: सच है कि यदि कोई ऐसा व्यक्ति है, जिसे कि मानव-भ्रातृत्वपर बोलनेका अधिकार है तो कमसे-कम मुझे वह अधिकार अवश्य है।

१. एल० डब्ल्यू० रिच, जेम्स गॉडफ्रे और जॉर्ज गॉडफ्रे; देखिए खण्ड ५, पृष्ठ ३१६।

भ्रातृत्वका अर्थ ऐसे लोगोंके प्रति हमदर्दी या प्रेम जाहिर करना अथवा मित्रताका हाथ बढ़ाना नहीं है, जो कि बदलेमें आपसे प्रेम करें। यह तो मोल-तोल करना है। भ्रातृत्व सौदेबाजीकी चीज नहीं है। और मेरा दर्शन, मेरा धर्म मुझे सिखाता है कि भ्रातृत्व केवल मानव-जातितक ही सीमित नहीं है अर्थात् यदि वास्तवमें हमने भ्रातृत्वकी भावनाको हृदयंगम कर लिया है तो निम्न स्तरके प्राणी भी उसकी सीमामें आ जाते हैं। ३० या ३५ वर्ष पूर्व इंग्लैंडमें लोकोपकारक संस्थाओं द्वारा कुछ पत्रिकाएँ प्रकाशित की जाती थीं। मुझे याद है कि ऐसी एक परोपकारी संस्थाकी ओरसे प्रकाशित होनेवाली किसी एक पत्रिकामें मैंने कुछ सुन्दर छन्द पढ़े थे। उनका शीर्षक शायद 'बैल मेरा भाई' (माई ब्रदर ऑक्स) था। उनमें लेखक आकर्षक ढंगसे यह बताता है कि जो लोग साथी मानवोंसे प्यार करते हैं, उनके लिए अपने साथी प्राणियोंसे भी प्यार करना किस प्रकार एक आवश्यक कर्त्तव्य है। साथी प्राणियोंसे, यानी मनुष्यसे निम्नस्तर प्राणियोंसे। इस विचारने मुझे अत्यन्त प्रभावित किया। उस समय मैंने हिन्दू धर्मके बारेमें बहुत कम पढ़ा था। मैंने अपने आसपाससे, अपने माता-पितासे या दूसरे लोगोंसे उसके जो तत्त्व हृदयंगम किये थे, उतना ही मैं उसके बारेमें जानता था। किन्तु मैंने उन छन्दोंमें निहित सत्यके तत्त्वका अनुभव अवश्य किया। लेकिन मैं आज भ्रातृत्वके इस बृहत्तम स्वरूपपर नहीं बोलना चाहता। मैं अपनेको केवल मानव-भ्रातृत्वतक ही सीमित रखूंगा। इस विषयकी चर्चा मैंने यह समझानेके लिए की है कि यदि हम अपने दुश्मनोंसे भी प्रेम करनेके लिए तैयार नहीं हैं तो हमारा भ्रातृत्व एक उपहासकी वस्तु ही है। दूसरे शब्दोंमें, जिसने भ्रातृत्वकी भावनाको हृदयंगम कर लिया है, वह अपने बारेमें किसीको यह कहनेका मौका नहीं दे सकता कि उसका भी कोई शत्रु है। लोग भले ही ऐसा सोचें कि वे हमारे दुश्मन हैं, लेकिन हमें उनके इस गुमानको अस्वीकार कर देना चाहिए। मैंने लोगोंको यह गुमान करते सुना है। इसलिए मैं "गुमान" शब्दका प्रयोग कर रहा हूँ। अब प्रश्न उठता है कि जो अपनेको हमारा दुश्मन समझते हैं, उनसे प्रेम करना कैसे सम्भव है। अभी कल ही और कल ही क्यों, मुझे तो लगभग प्रति सप्ताह मेरी इस बुनियादी आस्थाके प्रतिवादमें, हिन्दुओं, मुसलमानों और कभी-कभी ईसाइयोंके भी पत्र मिलते रहते हैं। यदि लिखनेवाला हिन्दू है तो वह मुझसे पूछता है, "जो गाय मुझे जीवनके समान प्यारी है, उसकी हत्या करनेवाले मुसलमानसे मेरा प्रेम करना कैसे सम्भव है? या लिखनेवाला ईसाई है तो वह पूछता है, "उन हिन्दुओंसे प्रेम करना कैसे सम्भव है जो कि उन लोगोंसे, जिन्हे वे अछूत कहते हैं, इतना दुर्व्यवहार करते हैं और जिन्होंने अपनी जनसंख्याके पाँचवें भागको पद-दलित कर रखा है?" और यदि लिखनेवाला मुसलमान है तो वह मुझसे पूछता है, "ऐसे हिन्दुओंके साथ भ्रातृत्व या मैत्रीका व्यवहार करना कैसे सम्भव है जो पशु और पत्थरकी पूजा करते हैं?" मैं इन तीनोंसे कहता हूँ, "यदि आप उन लोगोंसे, जिनका आपने उल्लेख किया है, प्रेम नहीं कर सकते तो मेरे लिए आपके भ्रातृत्वकी कोई कीमत नहीं है।" लेकिन आखिर इस रुखका अर्थ क्या है? क्या इससे कायरतापूर्ण भय या असहिष्णुता प्रकट नहीं होती? यदि हम सबको

ईश्वरने बनाया है तो हमें एक-दूसरेसे क्यों डरना चाहिए या उन लोगोंसे घृणा क्यों करनी चाहिए जो हमारे जैसा विश्वास नहीं रखते? इसपर कोई हिन्दू मुझसे पूछ सकता है, जब कोई मुसलमान ऐसा काम करे जो कि मेरे लिए अत्यन्त घृणास्पद है तब क्या मुझे बैठे-बैठे उसे देखते रहना चाहिए? मेरे भ्रातृत्वका यही उत्तर है कि "हाँ।" मैं इतना और जोड़ता हूँ कि "आपको अपनी कुर्बानी करनी होगी", या उन शब्दोंमें, जिन्हें आपने अभी सुना है, कहूँ तो यह कि आपको ईसाकी तरह शूली-पर चढ़ जाना चाहिए। आप जिसे प्यार करते हैं, यदि आप उसका बचाव करना चाहते हैं तो आपको बिना मारे मरना होगा। मुझे इस प्रकारकी घटनाओंके निजी अनुभव हैं। यदि आपके पास खुशीके साथ कष्ट-सहनका साहस है तो आप पत्थरसे-पत्थर दिलको भी पिघला देंगे। आप ऐसे व्यक्तिके विरुद्ध हाथ उठा सकते हैं, जिसे आप बदमाश समझते हों, किन्तु यदि वह आपपर हावी हो जाये, तब आप क्या करेंगे? तब क्या वह बदमाश आपपर विजय प्राप्त करनेके कारण और अधिक भयानक नहीं हो जायेगा? क्या इतिहास यह नहीं बताता कि प्रतिरोधके कारण ही बुराइयाँ बढ़ती हैं? इतिहासमें इस प्रकारके भी उदाहरण हैं कि लोगोंने अपने ऐसे प्रेमके बल-पर, जिसकी सीमामें सभी आ जायें, भयानकसे-भयानक व्यक्तियोंको भी अपने वशमें कर लिया है। किन्तु मैं यह स्वीकार करता हूँ कि इस प्रकारके अप्रतिरोधके लिए उस सैनिकसे ज्यादा साहसकी जरूरत है जो दुश्मनपर एकके बदले दो प्रहार करता है। मैं यह भी स्वीकार करता हूँ कि यदि किसी व्यक्तिके मनमें दुष्टके प्रति प्रेम नहीं बल्कि गुस्सा है तो उसे कायरोंकी तरह मरनेसे डरकर बैठे रहनेकी अपेक्षा पापीसे खुल्लमखुल्ला लड़ लेना चाहिए। कायरता और भ्रातृत्व दोनों विरोधी शब्द हैं। मैं जानता हूँ कि संसार उस बुनियादी स्थितिको, जिसे मैंने आपके सामने रखनेकी कोशिश की है, स्वीकार नहीं करता। मैं जानता हूँ कि ईसाई यूरोपमें अप्रतिकारके सिद्धान्तका मजाक उड़ाया जाता है। आजकल मेरे पास सम्पूर्ण यूरोप और अमेरिकासे अनेक मित्रोंके कितने ही मूल्यवान् पत्र आते हैं। कुछ पत्र-लेखक मुझसे अप्रतिकारके सिद्धान्तको और अधिक विस्तारसे प्रतिपादन करनेके लिए कहते हैं। कुछ अन्य लोग मुझपर हँसते हुए मुझसे कहते हैं कि "आप भारतमें ऐसी बातें करें, यह बिलकुल ठीक है, किन्तु आप यूरोपमें ऐसा करनेका साहस न करें।" कुछ दूसरे लोग मुझसे कहते हैं कि "हमारा ईसाई-धर्म तो हमारी कमियोंको ढँकनेका प्रयत्न-भर है; हम ईसाके सन्देशको नहीं समझते; वह सन्देश अभी हमतक पहुँचा ही नहीं है; यह कार्य तो अभी शेष है कि कोई उसे हमें इस तरह समझाये कि हम उसे समझ सकें।" ये तीनों ही स्थितियाँ लेखकोंके अपने दृष्टिकोणसे कमोवेश सही हैं। किन्तु मैं आपसे यह कहनेका साहस करता हूँ कि जबतक हम इस बुनियादी स्थितिपर नहीं आते, तबतक इस संसार-के लिए शान्ति नहीं है और तबतक भ्रातृत्वका नाम लेना पाखण्ड है। ऐसी भी स्त्रियाँ और ऐसे भी पुरुष हैं जो पूछते हैं, "क्या प्रतिकारसे दूर रहना मनुष्यके लिए सम्भव है?" मैं कहता हूँ, यह मनुष्यके लिए सर्वथा सम्भव है। अबतक हमने अपनी मानवताको पूरी तरह पाया नहीं है, हमने अपनी गरिमाको जाना नहीं है।

यदि डार्विनपर विश्वास किया जाये तो हम बन्दरकी सन्तान हैं, और मुझे डर है कि हमने अभीतक अपनी इस मूल स्थितिको नहीं छोड़ा है।

स्वर्गीया डा० एना किंग्सफोर्डने अपनी एक पुस्तकमें एक बार लिखा था : "मैं पेरिसकी सड़कोंपर चलती हूँ तो मुझे ऐसा लगता है कि मैं अपने सामने मनुष्य-रूपमें विभिन्न प्रकारके शेर और साँप देख रही हूँ।" वे कहती है कि इन जानवरोंका केवल शरीर ही मनुष्यका है, और कुछ नहीं। मनुष्यको अपनी सम्पूर्ण सम्भावनाओंकी ऊँचाईतक उठनेके लिए सर्वथा निर्भय होना आवश्यक है। ऐसा वह अपनेको सिरसे पाँवतक शस्त्र-सज्जित करके नही, बल्कि अपनी आन्तरिक शक्तिका विकास करके ही कर सकता है। क्षत्रिय वह है जो खतरेसे सामना होनेपर भाग खड़ा नहीं होता; वह नही, जो प्रहारके बदले प्रहार करता है। 'महाभारत' में भी कहा गया है कि क्षमा वीर पुरुषका भूषण है। मैंने सुना है कि स्वर्गीय जनरल गॉर्डनकी यादमें जो प्रतिमा खड़ी की गई है उसमें मूर्तिकारने उनके हाथमें तलवार नही, केवल एक छड़ी दी है। इसे एक सुन्दर कला-कृति माना जाता है। यदि मैं मूर्त्तिकार हुआ होता और मुझे इस मूर्तिके निर्माणका आदेश मिलता तो मैं जनरल गॉर्डनके हाथमें छड़ी भी नहीं देता। मैं उनकी ऐसी मूर्ति बनाता जिसमें वे अपने दोनों हाथ जोड़े, अपनी छाती आगे किये हुए सम्पूर्ण विनयके साथ दुनियासे यह कहते हुए दिखाई देते कि "यह रहा जनरल गॉर्डन! जो कोई भी अपना वर्छा चलाना चाहे, आये, और मुझपर अपना वर्छा चलाये। मैं सर्वथा अडिग भावसे, प्रतिकारमें अपना हाथ उठाये बिना, उसे सहनेके लिए तैयार हूँ।" सैनिकका मेरा यही आदर्श है, और ऐसे सैनिक पृथ्वीपर पैदा हुए हैं, जिये हैं। ईसाई-धर्मने निःसन्देह ऐसे सैनिक पैदा किये हैं और इसी प्रकार हिन्दू धर्म और इस्लामने भी पैदा किये हैं। मेरे विचारमें यह कहना सत्य नहीं है कि इस्लाम तलवारका धर्म है। इतिहास इस बातको प्रमाणित नही करता। किन्तु मैं अभी आपसे व्यक्तियोंके उदाहरणोंकी ही चर्चा कर रहा हूँ, और जो बात व्यक्तियोंके सम्बन्धमें सत्य है, वह राष्ट्र या व्यक्तियोंके समूहके सम्बन्धमें भी सत्य हो सकती है। मैं यह स्वीकार करता हूँ कि ऐसा एकाएक नही हो सकता। यह तो एक सुदीर्घ विकास-प्रक्रियाके परिणामस्वरूप ही सम्भव हो सकता है। जब पीढ़ी दर-पीढी अनेकानेक महापुरुष हमारी आँखोंके सामने अपने जीवनमें इस सत्यको चरितार्थ करके दिखायेंगे तो उनका प्रभाव हमपर अवश्य पड़ेगा। क्वेकरोंका इतिहास ऐसा ही है। टॉल्स्टॉयकी कृतिमें वर्णित दुखोबर लोगोंका भी इतिहास ऐसा ही है। मुझे नहीं मालूम कि कनाडा जानेके बादसे ये लोग अपने मूल संकल्पका कहाँतक अनुसरण कर रहे हैं; लेकिन यह तो है ही कि उन्होंने एक समग्र समाजके रूपमें अप्रतिरोधका जीवन व्यतीत करके दिखाया है। इसलिए मैं अनुभव करता हूँ कि जबतक हम अपने जीवनमें मानव-भ्रातृत्वके इस बुनियादी तथ्य द्वारा शासित नही होते तबतक हम इस पवित्र शब्दकी अवमानना ही करते रहेंगे।

इस समय मैं जिस दृष्टिकोणका खण्डन कर रहा हूँ, वह यह है कि मनुष्य एक वर्गके रूपमें कभी उस अवस्थातक नही पहुँच पायेगा जब उसका काम प्रति-प्रहारके

बिना चल सके। यूरोपके, बल्कि भारतके भी, कुछ अच्छेसे-अच्छे लेखकोंका दृष्टि-कोण यही है। लेकिन, इस दृष्टिकोणसे मेरा बुनियादी मतभेद है। मेरा कहना तो यह है कि जबतक मनुष्यको ऐसी शिक्षा नही दी जाती जिससे वह प्रति-प्रहार करनेसे अपनेको रोक सके तबतक वह अपनी सम्पूर्ण सम्भावनाओं, अपनी सम्पूर्ण गरिमाको चरितार्थ नही कर सकता। हम इसे पसन्द करे या न करे, हम बरबस उसी दिशामे जा रहे है। लेकिन अगर हम मजबूरन उस दृष्टिकोणको अपनानेके बजाय, उसे खुशीसे स्वीकार कर लें तो यह हमारे लिए श्रेयकी बात होगी। और आज मैं आप लोगोंसे यही सौभाग्य, इस विचारको स्वेच्छासे व्यावहारिक रूप देनेका सौभाग्य, प्राप्त करनेका निवेदन करने आया हूँ। सच तो यह है कि मुझे ईसाई श्रोताओंके सामने इस विषयपर बोलनेकी आवश्यकता नही होनी चाहिए थी; क्योंकि जब मैं प्रति-प्रहार न करनेकी बात कहता हूँ तो कुछ भाई ऐसा कहने लगते है कि आप तो ईसाई है। उन्हे क्या पता कि इस चीजके लिए मुझे हिन्दुओं और मुसलमानोंकी ही तरह ईसाइयोंको भी समझाना पड़ रहा है। मुझे तो ऐसे ज्यादा ईसाइयोंकी जानकारी नही है जिन्होंने इस चीजको अपने जीवनके एक स्थायी नियमके रूपमें स्वीकार कर लिया हो। मैं जिन अच्छेसे-अच्छे ईसाइयोंको जानता हूँ, उनमें से भी कुछ लोग यह स्वीकार नही करते कि ईसा मसीहकी यही शिक्षा है। लेकिन मैं तो मानता हूँ कि ईसा मसीहकी शिक्षा यही है। उनका कहना है कि यह सन्देश सारे संसारके लिए नही, सिर्फ उनके बारह शिष्योंके लिए था। अपनी बातके समर्थनमें वे 'न्यू टेस्टामेन्ट' के कुछ अंशोंको उद्धृत करते है। अहिंसाको अपना जीवन-सिद्धान्त बनानेके विचारके विरोधियोंका कहना है कि इससे तो हम सिर्फ कायरोकी जाति ही तैयार कर सकते है, और अगर भारत प्रति-प्रहारके त्यागका सन्देश अपनाता है तो उसका विनाश निश्चित है। इसके विपरीत आपके सामने मैं जो बुनियादी दृष्टिकोण रख रहा हूँ वह यह है कि अगर भारत इस दृष्टिकोणको नही अपनाता तो उसका और उसीके साथ संसारके समस्त राष्ट्रोंका विनाश निश्चित है। भारतको एक महाद्वीप ही समझिए, और जब यह शक्तिके सिद्धान्तको अपना लेगा — जैसा कि लगता है, आज यूरोपने कर रखा है — तो यह भी ससारके कमजोर राष्ट्रोंका शोषक बन बैठेगा। फिर सोचिए कि दुनियाके लिए इसका क्या मतलब होगा।

मैं अपनेको राष्ट्रवादी कहता हूँ और इसमे गर्वका अनुभव करता हूँ। मेरी राष्ट्रीयताकी सीमामें सारी सृष्टि समाहित है। इसमे मानवसे निम्नतर प्राणी भी शामिल है। इसमें संसारके सभी राष्ट्र शामिल है, और अगर मैं सारे भारतको इस सन्देशके सत्यकी प्रतीति करा सकूँ तो भारत सारी दुनियाके लिए वैसा ही कुछ बनकर सामने आयेगा जिसकी प्रतीक्षा दुनिया बड़ी आतुरतासे कर रही है। मेरी राष्ट्रीयतामें सारे संसारके कल्याणका विचार शामिल है। मैं नही चाहता कि भारत दूसरे राष्ट्रोकी भस्म-राशिपर खड़ा होकर अपना उत्थान ढूँढ़े। मैं नही चाहता कि भारत एक भी मनुष्यका शोषण करे। मैं भारतके शक्तिशाली होनेकी कामना इसलिए करता हूँ कि वह दूसरे राष्ट्रोंको भी अपनी शक्तिसे अनुप्राणित कर सके। आज संसारका और

कोई राष्ट्र, यूरोपका एक भी राष्ट्र, ऐसा नहीं कर रहा है। वे दूसरे राष्ट्रोंमें शक्ति नहीं भरते। हमें उनसे कोई शक्ति प्राप्त नहीं हो रही है। वस्तु-स्थिति ही कुछ ऐसी है कि ऐसा करना उनके लिए असम्भव है; और यही कारण है कि मैंने यह अडिग स्थिति अपना रखी है कि जिस विधान, जिस रचनाका आधार पशु-बल हो, उसमें मैं शरीक नहीं हो सकता।

राष्ट्रपति विलसनने अपने सुन्दर चौदह-सूत्री सिद्धान्तकी चर्चा करनेके बाद अन्तमें क्या कहा था, आप जानते हैं? उन्होंने कहा था, "अगर आपसमें शान्तिसे रहनेका हमारा यह प्रयास विफल होता है, तब तो अन्ततः हमें अपने शस्त्रास्त्रोंका सहारा लेना ही पड़ेगा।" मैं इस बातको बिलकुल उलट कर ऐसा कहना चाहता हूँ: "हमारे शस्त्रास्त्र विफल हो चुके हैं। अब हमें किसी नई चीजकी खोजमें लग जाना चाहिए, और इस सिलसिलेमें हमें प्रेम और सत्यरूपी ईश्वरकी शक्तिको आजमा कर देखना चाहिए।" उसे पा लेनेके बाद हमें और किसी चीजकी जरूरत नहीं रह जायेगी। भक्त प्रह्लाद की कथा है। हो सकता है, वह कपोलकल्पित कथा ही हो। लेकिन मेरे लिए वह ऐसी नहीं है। वह मुश्किलसे १२ वर्षका बालक था। उसके पिताने उससे ईश्वरका नाम न लेनेको कहा। प्रह्लादने कहा, "उसके बिना मैं नहीं रह सकता, वह मेरा जीवन है।" इसपर उसके पिताने कहा, "दिखाओ मुझे कि तुम्हारा ईश्वर कहाँ है।" एक गरम लाल लौहस्तम्भकी ओर इशारा करके प्रह्लादसे उसने कहा कि इसे गले लगाओ। और हाँ, उस स्तम्भमें ईश्वर था। श्रद्धा और भक्तिसे भरे प्रह्लादने उसे गले लगा दिया। उसका बाल भी बाँका नहीं हुआ। अगर हम भ्रातृत्वको चरितार्थ करना चाहते हैं तो हममें प्रह्लादका प्रेम, प्रह्लादकी आस्था और प्रह्लादका सत्य होना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, १५-८-१९२५

११. टिप्पणियाँ

केरल उदासीन नहीं

केरल प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीके नये मन्त्री यह सूचित करते हुए कि इस समय केरलमें प्रथम दर्जेके १२२ और दूसरे दर्जेके ५२ कांग्रेस सदस्य हैं, कहते हैं: "केरल कांग्रेसके आह्वानके प्रति उदासीन नहीं है।" यह सूचना प्रकाशित करते हुए मुझे बहुत खुशी हो रही है। मुझे भरोसा है कि इस तरह जो कार्य शुरू हुआ है, वह निर्बाध रूपसे जारी रहेगा।

एक होनहार युवकका दुःखद अन्त

कुछ समय पहले एक गम्भीर-सा अंग्रेज नौजवान शुएब कुरैशीका परिचय-पत्र लेकर मेरे पास आया। उसका नाम हैरिस था। उसने बिना किसी औपचारिक भूमिकाके तुरन्त कहा कि मैं एक भारतीय-साथीके साथ एक विशिष्ट दार्शनिक समस्याकी खोजके उद्देश्यसे कुछ समयके लिए भारत आया हूँ। उसने तेजीसे मेरे साथ चर्चा शुरू

कर दी। अपना आशय स्पष्ट करनेके लिए मुझे विशेष दलील देनेकी आवश्यकता नही पड़ रही थी। प्रश्नोत्तरका सिलसिला बहुत तेजीसे चल रहा था, फिर भी मैंने देखा कि उस समय मैं उसे जो चन्द मिनटोका समय दे सका, उसमें उसकी ज्ञान-पिपासाको शान्त नही कर सका। इसलिए मैंने उससे कहा कि यदि वह चाहे तो फिर मिल सकता है। इस सुझावको उसने बड़ी कृतज्ञतासे स्वीकार किया। अगली बार वह अपने मित्र और सहकर्मी वसन्तकुमार मलिकके साथ आया। मैं हैरिसकी लगन, बुद्धि और वैचारिक प्रमाणिकतासे काफी प्रभावित हुआ। इस बार भी मेरे पास जितना समय था, उसमें वह अपनी जिज्ञासा शान्त नही कर पाया। मैंने उसे एक और मुलाकातका वचन दिया। मैं उसकी प्रतीक्षामें था, तभी मुझे यह दुःखद समाचार मिला कि हैरिस दुनियामें नही रहा। उसके साथी वसन्तकुमार मलिकने उसकी मृत्यु और उसके जीवनके सम्बन्धमें जो दर्दनाक विवरण भेजा है, उसका सार नीचे दे रहा हूँ:[1]

मैं हैरिसके मित्रों और कुटुम्बियोके प्रति समवेदना प्रकट करता हूँ। महान् विचार एक बार उत्पन्न होनेके बाद कभी नष्ट नही होते, और हैरिस अपने विचारों-के माध्यमसे जीवित रहेगा। हैरिस-जैसे अज्ञात और विनम्र कर्मयोगी अपने पूर्ववर्ती साथियोंके कामको जारी रखते ही हैं। उनको हमारा शतशः प्रणाम।

साम्राज्यके परिया

हम साम्राज्य-व्यवस्थामें अपने दर्जेके उचित स्थानको भूल न जायें, कदाचित् इसीलिए हमें कभी इंग्लैंडसे, कभी दक्षिण आफ्रिकासे या ऐसे ही किसी दूसरे मुकामसे इस बातकी लगातार याद-दिहानी मिलती रहती है कि हम क्या हैं। भारत-मन्त्री हमें "ब्रिटेनकी तलवारकी तेज धार" की याद दिलाते हैं। महामहिम सम्राट्की भारत-स्थित सेनाके प्रधान अपनी सोची-समझी राय देते हुए कहते हैं कि हम जिस बातको अपना लक्ष्य बनाकर चल रहे हैं वह "अप्राप्य" है। इधर दक्षिण आफ्रिकी संघके एक मन्त्री श्री मलान हमें बताते हैं कि यूरोपीयों और हिन्दुस्तानियोंमें समानता हो ही

१. यह विवरण यहाँ नहीं दिया जा रहा है। इसमें श्री हैरिसके शानदार विद्यार्थी-जीवनका हाल देते हुए बताया गया था कि ऑक्सफोर्डके बेलियल कालेजका यह छात्र, सिवा एक परीक्षाके, सदा प्रथम स्थान प्राप्त करता रहा। श्री मलिकने उनके भारत-आगमनका उद्देश्य बताते हुए लिखा था कि एक बार लोटस क्लबमें किसी विषयपर वादविवादका आयोजन किया गया था। श्री हैरिससे श्री मलिककी मुलाकात वहीं हुई थी। इसके बाद श्री हैरिस श्री मलिकके एक दार्शनिक शोधमें शामिल हो गये और उसी शोधके सिलसिलेमें भारत आये थे। शोध करनेवालोंका विचार था कि अपनी परम्पराओंसे आजके मनुष्यका सम्बन्ध टूट गया है। जिस प्रकार आजकी संस्थाओंकी उपयोगिता कबकी समाप्त हो चुकी है और अब उनमें शान्तिके लिए कोई नई व्यवस्था और जीवनके लिए कोई नया आदर्श प्रस्तुत करनेकी क्षमता नहीं रह गई है, उसी प्रकार हमारा जीवन भी विशृंखलित हो गया है। स्पष्ट है कि जबतक मानव-समाजमें कोई अधिक सुसम्बद्ध और सौम्य व्यवस्था नहीं आ जाती, तबतक सच्ची शान्ति और चैन नहीं है। अतएव, ये शोधकर्त्ता किसी ऐसी नई विचार-प्रणालीका प्रतिपादन करना चाहते थे जो सन्देहवादसे त्रस्त मानवताको त्राण दे सके और जीवनको पुनः शृंखला-बद्ध कर सके। किन्तु, यह शोध-कार्य पूरा होनेसे पहले ही श्री हैरिस मलेरियाके शिकार हो गये और उसीसे उनका देहान्त हो गया।

नहीं सकती; और वे वहाँके भारतीय निवासियोंको अगर मिटा न देंगे तो उनकी स्थिति ऐसी कठिन बना देंगे कि उन्हें दक्षिण आफ्रिकासे भागना ही पड़ेगा और उनकी हालत ऐसी करके छोड़ेंगे कि वे फिर समानताका नाम नहीं लेंगे। शहरका कोना उनके रहनेकी उचित जगह है और शारीरिक श्रम ही उनका उचित कार्य-क्षेत्र है। अर्थात् हमें दुनियाकी दलित जाति बनकर ही रहना है। परन्तु इस बुराईका उल्लेख करनेसे उसका निराकरण नहीं हो जाता। "कोई परिया अर्जी न दे" यह स्थायी सूचना-पट्ट तो मानो साम्राज्यके हर सचिवालयमें लगा हुआ है। सवाल यह है कि अब करें क्या? फीरोजशाह मेहताको तो मेरा दक्षिण आफ्रिका जाना ही पसन्द नहीं था। उनका कहना था कि जबतक भारतमें हमारा हक नहीं मिल जाता तबतक दक्षिण आफ्रिकामें कुछ नहीं हो सकता। लोकमान्यने भी इसीसे मिलती-जुलती बात कही थी — "पहले स्वराज्य प्राप्त कर लो, फिर और बातें अपने-आप हो जायेंगी।" यही उनका सूत्र था। परन्तु स्वराज्य इस बातपर निर्भर करता है कि भारत कुल मिलाकर कितनी शक्तिका परिचय देता है। आज हमारा मूल मन्त्र यही है कि भीतरसे, बाहरसे सब ओरसे काम करो, प्रयत्न करो। यह कशमकश, यह व्यथा बहुत दिन चलनेवाली है, लेकिन आवश्यक प्रसूति-पीडाके बिना नया जन्म नहीं होता।' इस अनिवार्य जीवनदायी, जीवन-पोषक साधनाके बिना हमारा काम नहीं चल सकता, यद्यपि यह साधना अतीव कष्टकर है। दक्षिण आफ्रिकावासी हमारे देशबन्धुओंको अडिग भावसे अपनेतईं अधिकसे-अधिक कोशिश करनी चाहिए। यदि उनके अन्दर वह पुरानी प्रतिरोध शक्ति और संगठन है और यदि वे समझते हों कि समय आ पहुँचा है तो वे आगे बढ़ें और कष्ट-सहनकी शूलीको गले लगायें। हाँ, इस बातका निर्णय उन्हें स्वयं करना है कि वे इसके लायक हैं या नहीं और इस कष्टके समुद्रमें गोता लगानेकी ठीक घड़ी आ गई है या नहीं। यह तो वे जान ही रखें कि भारतका लोकमत उनके साथ है। पर वे यह भी समझ लें कि यह लोकमत ऐसा है जो उन्हें सहायता देनेकी शक्ति नहीं रखता है। इसलिए उन्हें कष्टों और कठिनाइयोंको झेलनेकी खुद अपनी शक्ति और क्षमतापर तथा अपने पक्षकी सहज न्याय्यतापर ही निर्भर रहना है।

एक देश-सेवकके कष्ट

देश-सेवामें दुःख उठानेवाले एक सेवकका हाल सुनिए:

क्या आप देशके लिए दुःख भोगनेवाले एक व्यक्तिके निर्धन और क्षुधा-पीड़ित परिवारकी कुछ सहायता करेंगे? आप हमारे पूज्य नेता स्वर्गीय देशबन्धु दासके स्मारकके लिए लाखों रुपये आसानीसे एकत्र कर सकते हैं पर आप मेरे कुटुम्बवालोंके भरण-पोषण तथा देहातमें चरखा-प्रचारके लिए कमसे-कम ५,०००) देकर मेरे दरिद्र परिवारकी सहायता नहीं कर सकते। यदि आप पूज्य . . . [यहाँ कुछ नाम दिये हुए हैं] को दो शब्द मेरे लिए कह देंगे तो मुझे निश्चय है कि ५,०००) नहीं तो २,०००) अवश्य मिल जायेंगे। आपने मुझे लिखा है कि कपड़ा बुनना शुरू कर दो और हर महीने १५ रुपये कमाओ। मैं बुनना नहीं जानता। आपका सूत्र है, "काम नहीं तो खाना नहीं।" क्या आप मुझे

ऐसा कोई काम देंगे जिससे मुझे कमसे-कम १०० रुपये मासिक मिलें? क्या आप मुझे डेपुटी मेयर (उप महापौर) या चीफ एक्जीक्यूटिव ऑफिसर (मुख्य कार्यपालक अधिकारी) से कह कर कलकत्ता निगममें कोई अच्छी जगह नहीं दिला सकते?

यह पत्र हमारे यहांके औसत नवयुवककी मनोवृत्तिका परिचायक है। हजारों नवयुवकोंको ३० रुपये मासिकपर गुजर करना है। पर ये दु:खी देश-सेवक १०० रुपये मासिक या कमसे-कम २,००० रुपये एक मुश्त चाहते हैं। दोनों निवेदनोंमें कोई सम्बन्ध नही है; परन्तु इस आशासे कि वे मजूर हो जायेंगे, पत्र-लेखकने उन्हे बहुत सहज भावसे लिख भेजा है। ऐसी आकांक्षाको पूर्ण करना असम्भव है। कलकत्ता निगम बेकारोंके लिए नौकरी खोजनेका साधन नही बनाया जा सकता। वास्तवमें देखा जाये तो सरकारी महकमोंमें और खानगी दफ्तरोंमें पहलेसे ही जरूरतसे ज्यादा नौकर भरती हैं। इसलिए इसका उपाय यह है कि एक तो हम देशकी गरीबीका ध्यान रखते हुए अपनी आकाक्षाओंको कम करें और, दूसरे, रोजगारके लिए नये क्षेत्र खोजें। कृत्रिम जरूरतें कम कर दें, सामाजिक कुप्रथाओको नमस्कार कर लें। यह रिवाज कि पूरे घरके लिए एक ही आदमी कमाये, हालाँकि घरके दूसरे लोग भी कुछ-न-कुछ काम करने लायक हों, मिटा देना चाहिए। तब ३० रुपये महीनेपर सन्तुष्ट रह सकना सम्भव हो जायेगा। बगालके कितने ही नवयुवकोंने अपने विचारोंको नये रूपमें ढाल लिया है और वे ३० रुपयेमें गुजर कर रहे हैं, जब कि वे पहले प्रति माह चार-पाँच सौ रुपयेतक कमाते थे। रोजगारका जो एकमात्र साधन सैकड़ों युवकों और युवतियोंको काम दे सकता है, वह है एक सुसगठित खादी सेवा संगठन। मै आशा करता हूँ कि मैंने जिस अखिल भारतीय चरखा संघके विषयमें सोच रखा है, वह शीघ्र ही स्थापित हो जायेगा। मै यह भी आशा कर रहा हूँ कि अखिल भारतीय देशबन्धु स्मारकमें भी लोगोंकी ओरसे यथेष्ट द्रव्य मिलेगा। अतएव रोजगारकी तलाशमें लगे तमाम ईमानदार स्त्री और पुरुष अगर कुशल बुनकर नही तो, सिद्ध हस्त धुननेवाले और कातनेवाले बनकर रोजगार पानेकी अपनी योग्यता सिद्ध करें। उनसे यह नही कहा जायेगा कि आप सूत कातकर और कपड़ा बुनकर पेट भरे, बल्कि उन्हे खादीके उत्पादन और बिक्रीके काममे लगाया जायेगा। परन्तु इस संगठन-कार्यके लिए यह जरूरी होगा कि संगठन-कर्त्ताओंको धुनाई और कताई तथा कपासको बुनने लायक अच्छे सूतका रूप देने तककी तमाम प्रक्रियाओंका सही-सही ज्ञान हो।

सार्वजनिक जीवनमें डराने-धमकानेके तरीकेका प्रयोग

दक्षिणसे एक सज्जन लिखते है:[1]

अगर यह खबर सच हो और मुझे लगता है कि सच ही है, और अगर इस बातमें तनिक भी सचाई हो कि पत्र-लेखक द्वारा बयान की गई गुंडागर्दी एक आम बात

१. यह पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने एक साथी सार्वजनिक कार्यकर्त्ताके पीटे जानेका उदाहरण देकर लिखा था कि "राजनीतिक मतभेदोंको सुलझानेके लिए डराने-धमकानेके तरीकेके आम हो जानेका खतरा पैदा हो गया है"।

हो गई है तो यह बहुत दुःखका विषय है। इससे तो उसी शक्तिकी जड़ें मजबूत होती हैं जिसके खिलाफ वे गुंडागर्दी करनेवाले लोग और हम, दोनों लड़ रहे हैं। मेरे पास दोनों पक्षोंके लोगोंके पूरे नाम और पते मौजूद हैं और मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं कि जिन लोगोंको इस वाकयेकी जानकारी है, वे इनका अनुमान लगा लेंगे। लेकिन, मेरा उद्देश्य कुकृत्य करनेवालोंकी कलई खोलना नहीं है। मैं तो इन कुकृत्योंका पर्दाफाश करना चाहता हूँ सो इस आशासे कि इनकी पुनरावृत्ति न हो। जिम्मेदार लोगोंको इस बुराईका इलाज करना चाहिए और इसे इस प्रारम्भिक अवस्थामें ही जड़मूलसे समाप्त कर देना चाहिए।

पुष्पहार या माला?

मैंने भारतके अनेक हिस्सोंमें, लेकिन विशेषकर बंगालमें, अतिथियोंका स्वागत करते हुए उन्हें सच्ची स्वदेशी मालाओंके बजाय बड़े-बड़े पुष्पहार पहनानेका रिवाज देखा है। मेरा खयाल है, चूँकि पुष्पहार मालाओंसे ज्यादा कीमती होते हैं, इसलिए पुष्पहार अर्पित करना लोग अधिक गौरवकी बात मानते हैं। ये पुष्पहार पश्चिमसे आई हुई चीजें हैं। जहाँतक मुझे मालूम है, इनका उपयोग ताबूतको सजानेके लिए किया जाता है। फूल तारमें गूँथे जाते हैं और यह तार अकसर बड़ा कष्टकर होता है। मैं भी एक भुक्तभोगी हूँ। अत्युत्साही प्रशंसकों द्वारा जबरदस्ती पहनाये गये हारोंके तारोंसे मुझे कई बार तकलीफ हुई है। चुभनेके डरसे हारको हाथमें ले जाना भी मुश्किल होता है। और चूँकि हार कड़ा होता है, इसलिए मेरे खयालसे उससे व्यक्तिकी शोभा बढ़नेके बजाय घटती ही है। इसके विपरीत धागेमें सुन्दर ढंगसे गूँथी हुई माला गलेसे झूलती हुई लटकती रहती है और उससे कोई कष्ट नहीं होता। क्या स्वागत समितियाँ आगेसे इस बातका खयाल रखेंगी?

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ६-८-१९२५

१२. क्या मैं अंग्रेजोंसे घृणा करता हूँ?

९ जुलाई, १९२५ के 'यंग इंडिया' में 'त्यागका शास्त्र' नामक मेरा लेख[1] प्रकाशित हुआ था। उसके नीचे दिये अंशके रेखांकित वाक्यपर कुछ आदरणीय अंग्रेज भाइयोंने आपत्ति की है:

> मैं बिना किसी झिझकके कहता हूँ कि सिवा पारस्परिक त्यागके इस दुखी देशके उद्धारकी कोई आशा नहीं। हमें तुनकमिजाज नहीं बनना चाहिए और सूझबूझको एकदम तिलांजलि नहीं दे देनी चाहिए। किसीके लिए त्याग करनेका अर्थ उसपर अनुग्रह करना नहीं है। प्रेम-प्रदत्त न्यायका नाम त्याग और नियम-प्रदत्त न्यायका नाम दण्ड है। प्रेमीकी दी हुई वस्तु न्यायकी मर्यादासे

1. देखिए खण्ड २७, पृष्ठ ३६१-६३।

बहुत आगे जाकर भी हमेशा, जितना वह देना चाहता है, उससे कम होती है; क्योंकि वह और अधिक देनेके लिए उत्सुक रहता है और उसे इस बातका अफसोस होता रहता है कि उसके पास देनेको और नहीं बचा। यह कहना कि हिन्दू लोग अंग्रेजोंकी तरह पेश आते हैं उनको बदनाम करना है। हिन्दू यदि चाहें भी तो ऐसा नहीं कर सकते और मैं कहता हूँ; खिदरपुरके मजदूरोंकी पशुताके बावजूद, हिन्दू और मुसलमान, दोनों एक ही नावमें बैठे हुए हैं। दोनोंकी अधोगति हो रही है। असलमें उनकी हालत प्रेमियों-जैसी है — उन्हें उस हालतमें आना ही होगा — वे चाहें या न चाहें।

ये भाई समझते हैं कि यह वाक्य लिखकर मैंने अंग्रेजोंके साथ भारी अन्याय किया है, क्योंकि वे कहते हैं कि इसमें जो निन्दा गर्भित है वह तमाम अंग्रेजोंपर लागू होती है। इस वाक्यका ऐसा अर्थ लगाया जा सकनेका मुझे दु:ख है। मेरा यह आशय हरगिज नही था। मैं उन मित्रोको इस बातका यकीन दिलाता हूँ कि सन्दर्भसे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि मेरा उक्त कथन सारे अंग्रेज समाजपर लागू नहीं किया जा सकता। उदाहरणके लिए, उसे सी० एफ० एन्ड्रयूजपर लागू नहीं किया जा सकता, जिन्होंने भारतके लिए अपना सब कुछ अर्पित कर दिया है।

मुसलमानोका इल्जाम यह था कि हिन्दू लोग मुसलमानोंको उसी तरह दबाने और गुलामीमें रखनेकी कोशिश कर रहे हैं जिस तरह कि अंग्रेज लोग हिन्दू और मुसलमान दोनोंको दबाकर गुलामीमें रखते आये हैं। इसमें उनका आशय निस्सन्देह अधिकांश हिन्दुओं और अंग्रेजोंसे था। उद्धृत अंशमे मैंने यह दिखलानेकी कोशिश की थी कि यदि हिन्दू मुसलमानोंको दबाना चाहें भी तो उनके पास शक्ति नही है। यदि मेरी उक्ति एक वर्गके रूपमें सिर्फ उन अंग्रेजोके लिए ही हो जो कि हिन्दुस्तानमें रहते हैं तो उन्हें इसपर आपत्ति नही है; सो इसलिए नही कि वे इस हदतक भी मेरी रायको ठीक मानते हैं, बल्कि इसलिए कि वे जानते हैं कि वर्षोंसे मेरी यही राय रही है; और इसलिए मेरे ऐसा कहनेपर उन्हें कोई ताज्जुब नही होता। पर उन्हें ताज्जुब इसलिए हुआ कि उन्होंने समझा कि मेरी भर्त्सना तमाम अंग्रेजों और उन तीन मित्रोंपर भी लागू है जो कि ईमानदारीके साथ अपनी शक्ति-भर भारतकी सेवा करनेकी कोशिश कर रहे हैं। उनको लगा कि वह वाक्य घृणा और क्रोधसे प्रेरित होकर लिखा गया है। सच बात तो यह है कि वह वाक्य लिखते समय मेरे मनमें न तो घृणा भाव था न रोष ही। मैं तो अब भी यही मानता हूँ कि उस वाक्यमे ऐसा अर्थ नही निकलता, लेकिन अगर निकलता हो तो यही कह सकता हूँ कि मैं अंग्रेजी भाषा लिखना नही जानता, क्योंकि वह मेरी मातृ-भाषा नही है और मैं स्वीकार करता हूँ कि उसकी बारीकियोंपर मेरा अधिकार नही हो पाया है। मैं मानता हूँ कि मैं दुनियाके किसी प्राणीसे घृणा कर ही नही सकता। एक दीर्घ संयम और साधनाके फल-स्वरूप मैंने कोई चालीस सालसे घृणा करना छोड़ दिया है। मैं जानता हूँ कि यह एक भारी दावा है, फिर भी मैं इसे पूरी नम्रताके साथ पेश करता हूँ। पर हाँ, मैं बदीसे, वह जहाँ कही हो अवश्य घृणा करता हूँ। मैं उस शासन-प्रणालीसे घृणा करता हूँ जिसे अंग्रेजोने भारतवर्षमें,

स्थापित किया है। एक वर्गके रूपमें भारतस्थित अंग्रेजोंकी धौंस जमानेकी प्रवृत्तिसे मुझे घृणा है। जिस प्रकार मैं अस्पृश्यताकी उस गर्हित प्रथासे, जिसमें आज करोड़ों हिन्दुओंका हाथ है, घृणा करता हूँ उसी प्रकार भारतके निर्मम शोषणसे भी मुझे तीव्र घृणा है। परन्तु जिस प्रकार मैं धौंस जमाने और अपनेको ऊँचा माननेवाले हिन्दुओंसे व्यक्तियोंके रूपमें घृणा नहीं करता उसी प्रकार जिन अंग्रेजोंमें यह बुराई है उनसे भी मैं घृणा नहीं करता। मैं हर तरहके प्रेमपूर्ण उपायोंसे ही उनका सुधार करना चाहता हूँ। मेरे असहयोगका मूल घृणामें नहीं, प्रेममें है। मेरे व्यक्तिगत धर्मका कड़ा आदेश है कि किसीसे घृणा मत करो। मैंने बारह सालकी उम्रमें अपनी एक पाठ्यपुस्तकसे यह सरल परन्तु भव्य सिद्धान्त सीखा था। उसमें मेरा विश्वास आजतक बना हुआ है, बल्कि दिन-दिन और भी गहरा होता चला जा रहा है। मुझपर उसकी धुन सवार है। अतएव जिन अंग्रेजोंने इन भाइयोंकी तरह मुझे गलत समझा हो, उन सबको मैं यकीन दिलाना चाहता हूँ कि मैं कभी अंग्रेजोसे घृणा करनेका पाप न करूँगा; भले ही मुझे १९२१ की तरह उनसे तीव्र संघर्षमें ही क्यों न उतरना पड़े। वह लड़ाई अहिंसात्मक, स्वच्छ और सत्यमय होगी।

मेरा प्रेम परिमित नहीं है। ऐसा नहीं हो सकता कि मैं अंग्रेजोंसे घृणा करूँ और हिन्दुओं या मुसलमानोंसे प्रेम करूँ। कारण यदि मैं हिन्दुओं और मुसलमानोंसे सिर्फ इसलिए प्रेम करूँ कि उनका रंग-ढंग मुझे अच्छा लगता है तो जिस क्षण बुरा लगने लगेगा — और किसी क्षण बुरा तो लग ही सकता है — उसी क्षण मैं उनसे घृणा करने लग जाऊँगा। जो प्रेम प्रेम-पात्रकी अच्छाईपर निर्भर करता है वह तो सौदेबाजीकी चीज हो गई। सच्चे प्रेममें स्वके सम्पूर्ण त्यागकी वृत्ति होती है और उसमें प्रेमी प्रेम-पात्रसे कोई अपेक्षा नहीं रखता। वह एक आदर्श हिन्दू पत्नी, जैसे कि सीता, के प्रेमकी तरह होता है। रामने सीताकी अग्नि-परीक्षा ली, फिर भी वे रामके साथ पूर्ववत् प्रेम करती रहीं। उन्होंने उस परीक्षाको सहर्ष स्वीकारा, क्योंकि वे जानती थीं कि वे क्या कर रही हैं। उनका आत्म-यज्ञ उनकी किसी दुर्बलतासे नहीं, बल्कि शक्तिसे उद्भूत था। प्रेम संसारकी सबसे बड़ी शक्ति है, और फिर भी जितनी विनय उसमें है, उससे अधिक विनयकी कल्पना नहीं की जा सकती।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ६-८-१९२५

१३. शैतानका जाल

एक उत्कट खादी-प्रेमीके पत्रका निम्नलिखित अंश पाठकगण चावसे पढ़ेंगे :

खादीमें मेरी आस्था है। इसके हेतुको मैं सूर्यके प्रकाशकी भाँति स्पष्ट देखता हूँ। यह जीवनमें सादगी भरती है और इस तरह उसे शुद्ध बनाती है। यह सेवा-सूत्रसे हमें गरीबोंके साथ जोड़ती है। गरीबीसे बचनेका यह एकमात्र उपाय है — उस गरीबीसे, जो इस राष्ट्रके शरीर और आत्माको घुनकी तरह खाती जा रही है; आत्माको इसलिए कि जहाँतक करोड़ों अशिक्षित लोगोंका सम्बन्ध है, स्वस्थ शरीरके बिना आत्माके विकासका प्रश्न ही नहीं उठता। जिन्होंने भोगको साध लिया हो और जो उसकी साधनामें लगे हुए हों, वे भले ही शरीरके बिना आत्माकी बात करें, लेकिन करोड़ों लोगोंके लिए शरीरके बिना आत्माकी बात करना एक विडम्बना-मात्र है। और अन्तमें, चरखेका एक बहुत बड़ा गुण यह है कि आज यूरोप जिन हिंसात्मक सामाजिक विस्फोटोंके कारण रक्तपात और उन्मादपूर्ण कृत्योंकी लीलास्थली बना हुआ है, उनसे बचनेका भी एकमात्र उपाय यही है। चरखा विशिष्ट वर्गों और जनसाधरणको जोड़नेवाली कड़ीका काम करता है। और जबतक यह साधन भारतको स्वीकार है तबतक बोलशेविज्म और ऐसे ही अन्य हिंसात्मक विस्फोट इस देशमें असम्भव हैं। इन बातोंको देखते हुए मुझे सहज ही मानना पड़ता है कि चरखा एक अत्यन्त आवश्यक चीज है। लेकिन कठिनाई सिर्फ एक है। क्या यह चल सकता है? क्या यह सफल हो सकता है? क्या हम एक बार फिर चरखेको घर-घरमें उसका पुराना पवित्र स्थान दिला सकते हैं? क्या अब बहुत देर नहीं हो चुकी? आपके जेल जानेसे पहले मैं ऐसे प्रश्न कदापि नहीं करता। तब आशा रखनेकी गुंजाइश थी। लेकिन, अब स्थिति उतनी आशाजनक नहीं रह गई है। बर्ट्रेण्ड रसेल-जैसे व्यक्तिका कहना है कि उद्योगवाद प्रकृतिकी एक शक्तिके समान है, और हम चाहें या न चाहें, अन्ततः भारतको भी इस युग-प्रवाहमें पड़ना होगा। हाँ, ऐसे लोग यह अवश्य कहते हैं कि हमें उद्योगवादका कुछ अपना समाधान ढूँढ़ना चाहिए। उनकी बातमें सचाई है। उद्योगवाद आज सारे संसारको प्लावित कर रहा है और इस प्लावनके बाद लोग अपना कुछ-न-कुछ समाधान ढूँढ़ रहे हैं। यूरोपको ही लीजिए। मैं नहीं मानता कि यूरोप ध्वस्त हो जायेगा। मानव-स्वभावमें मेरी पूरी आस्था है और देर-सबेर वह उसका समाधान ढूँढ़ ही लेगा। तब क्या भारत चाहकर भी सारे संसारसे अपनेको अलग रख सकता है? क्या वह प्रयत्न करके भी उद्योगवादकी चपेटमें आनेसे बच सकता है?

ये खादी-प्रेमी भाई न चाहते हुए भी लाचार होकर जिस तर्क-जालमें फँस गये हैं, वह शैतानकी पुरानी तरकीब है। जब हम किसी सत्कार्यमें प्रवृत्त होते हैं तो वह आधे रास्तेतक हमारे साथ चलता है और फिर अचानक युक्तिपूर्वक हमें सुझाता है कि अब इससे आगे जानेसे कोई लाभ नहीं है और फिर हमारा ध्यान अधिक आगे बढ़नेकी झूठी और ऊपरी असम्भाव्यताकी ओर दिलाता है। वह सद्गुणोंकी प्रशंसा करता है, किन्तु दूसरे ही क्षण यह भी कह देता है कि उन्हें प्राप्त करना मनुष्यके बसकी बात नही है।

इन भाईके सामने जो कठिनाई आई है, वह सभी सुधारकोंके सामने कदम-कदमपर आती है। क्या समाज असत्य और कपटसे भरा हुआ नहीं हैं? किन्तु, तब भी, जो लोग मानते हैं कि अन्ततः सत्यकी विजय होगी ही, वे सफलताकी अखण्ड आशा लिये हुए सत्यके मार्गपर आरूढ़ ही रहते हैं। सुधारक समयके प्रवाहको अपने खिलाफ सफल नहीं होने देता, क्योंकि वह उस पुरातन शत्रुका डटकर सामना करता है। निस्सन्देह उद्योगवाद प्रकृतिकी एक शक्तिके समान प्रबल है, किन्तु मनुष्य भी तो प्रकृति और प्रकृतिकी शक्तियोंपर विजय पानेकी शक्तिसे सम्पन्न है। उसकी गरिमा इसी बातमें निहित है कि भारीसे-भारी कठिनाइयोंके सामने भी वह निश्चय और संकल्पसे काम ले। हमारा दैनिक जीवन इसी तरहके संघर्ष और विजयकी कहानी है। एक किसान तो इस बातको और भी अच्छी तरह जानता है।

और उद्योगवाद, विशाल जनसमुदायपर मुट्ठी-भर लोगोंका प्रभुत्व नहीं तो और क्या है? इसमें न कोई आकर्षण है और न कोई ऐसी चीज है जिसके कारण इसे अवश्यम्भावी माना जाये। अगर बहुसंख्यक समाज अल्पसंख्यकोंकी चिकनी-चुपड़ी और बहकानेवाली बातोंपर सिर्फ 'न' कहनेका इरादा कर ले तो अल्पसंख्यकोंमें कोई दुष्टता करनेकी शक्ति रह ही नहीं जाये।

मानव-स्वभावमें आस्था रखना अच्छी बात है। म इसीलिए जीवित हूँ कि मुझमें वह आस्था है। लेकिन, उस आस्थाके कारण मैं इस ऐतिहासिक तथ्यकी ओरसे अपनी आँखें बन्द नहीं कर सकता कि यद्यपि अन्तमें सब-कुछ ठीक-ठीक ही होता है, किन्तु अतीतमें व्यक्तियोंका नाश तो हुआ ही है, और राष्ट्र नामसे पुकारे जानेवाले जन-समाज भी विनाशको प्राप्त हुए है। रोम, यूनान, बेबीलोन, मिस्र तथा अन्य अनेक राष्ट्र इस बातके ज्वलन्त प्रमाण हैं कि अपने कुकृत्योंके कारण अतीतमें राष्ट्रोंका नाश हुआ है। इस हालतमें आशा यही की जा सकती है कि अपनी तीक्ष्ण और वैज्ञानिक बुद्धिके बलपर यूरोप इस साफ-सीधी बातको समझ सकेगा और अपने कदम वापस ले लेगा, तथा नैतिक पतनके गर्तमें ले जानेवाले इस उद्योगवादके जालसे निकलनेका रास्ता ढूँढ़ लेगा। कोई जरूरी नहीं कि इसका मतलब पुनः उस पुरानी नितान्त सादगीकी ओर लौट जाना ही होगा। लेकिन, समाजका ऐसा पुनर्गठन तो अवश्य करना होगा जिसमें ग्राम्य जीवनको प्रमुखता प्राप्त होगी और पाशविक तथा भौतिक शक्ति आत्मिक शक्तिके अधीन रहेगी।

और अन्तमें, हमें गलत उदाहरणोंके जालमें नहीं फँसना चाहिए। यूरोपीय लेखकोंकी एक कठिनाई यह है कि उनके पास अनुभव और सही जानकारी नहीं है।

यूरोपके उदाहरण भारतकी परिस्थितियोंमें चारों कोने चुस्त नही बैठ सकते, क्योंकि यूरोपमें — और इसमें रूस भी शामिल है — भारतकी-जैसी परिस्थितियाँ नही हैं। इसलिए यदि यूरोपीय लेखक यूरोपके उदाहरणोंके बलपर कोई सामान्य निष्कर्ष निकाल ले तो एक खास सीमाके बाद उनसे हमें मार्ग-दर्शन नहीं मिल सकता। अतएव कोई जरूरी नही कि जो बात यूरोपपर लागू हो वह भारतपर भी ठीक ही बैठे। हम यह भी जानते हैं कि प्रत्येक राष्ट्रकी अपनी अलग-अलग विशेषताएँ होती हैं, अलग-अलग व्यक्तित्व होता है। भारतकी भी अपनी अलग विशेषताएँ हैं, अपना अलग व्यक्तित्व है; और अगर हमें उसकी अनेक व्याधियोंका सही उपचार ढूँढ़ना है तो हमें उसकी विलक्षण विशेषताओंको ध्यानमें रखकर ही कोई उपचार बताना होगा। मेरा दावा है कि यूरोपके अर्थोंमें भारतका औद्योगीकरण करनेकी कोशिश करना एक असम्भव काम करनेकी कोशिश करना है। भारतने बहुतसे तूफान झेले हैं। यह सच है कि ऐसा हर झंझावात उसपर अपनी अमिट छाप छोड़ गया है, लेकिन तब भी उसने सर्वथा अप्रतिहत रहकर अपनी विशेषताको कायम रखा है। भारत दुनियाके उन चन्द राष्ट्रोंमें से है, जो स्वयं अक्षत रहे हैं और जिन्होंने अनेक सभ्यताओंका उत्थान और पतन देखा है। भारत विश्वके उन गिने-चुने राष्ट्रोंमें से है जिन्होंने अपनी कतिपय प्राचीन संस्थाओंको भी सुरक्षित रखा है, यद्यपि उनपर अन्धविश्वास और प्रमादकी काई जम गई है। लेकिन वह अबतक इस प्रमाद और अन्धविश्वाससे अपने-आपको मुक्त करनेकी अपनी सहज क्षमताका परिचय देता आया है। उसकी करोड़ो सन्तानोके सामने जो भारी आर्थिक समस्या उपस्थित है उसे हल करनेकी उसकी क्षमतामें जितना ज्वलन्त विश्वास मुझे आज — और विशेषकर बंगालकी स्थितिका अध्ययन करके लौटनेके बादसे है उतना पहले कभी नहीं रहा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ६-८-१९२५

१४. शिक्षकोंकी दशा

कुछ दिन हुए अखिल बंगीय शिक्षक संघकी ओरसे एक शिष्टमण्डल मुझसे मिला था। सदस्योंने मुझसे इस विषयमें सलाह देनेको कहा था कि शिक्षक अपनी दशा कैसे सुधार सकते हैं और देशके लिए किस तरह उपयोगी हो सकते हैं। उन्होंने यह स्वीकार किया कि अभी तो वे देशकी कोई खास सेवा नही कर रहे हैं। अपनी अवस्थाका वर्णन उन्होंने इन शब्दोंमें किया :

> आजकल शिक्षकगण बहुत बड़ा व्यक्तिगत त्याग करके एक श्रेयहीन काम कर रहे हैं। वे विद्यार्थियोंको ऐसी शिक्षा दे रहे हैं जिससे न कोई लाभ है और न जिसमें किसीको कोई रुचि है, हालांकि इसमें स्वयं शिक्षकोंका कोई दोष नहीं है। उन्हें मशीनकी तरह ऐसे पाठ्यक्रमके मुताबिक चलना पड़ता है, जिसमें न धार्मिक शिक्षाकी कोई व्यवस्था है और न नैतिक तथा व्यावसायिक

> **प्रशिक्षण की ही। आज बंगालके लगभग ९०० स्कूलोंमें २०,००० शिक्षकोंके जरिये जो शिक्षा दी जा रही है, वह ऐसी एक परीक्षा-पद्धतिके भारसे दबी हुई है, जिससे सिर्फ रट-घोटकर दिमागमें कुछ बातें ठूंस लेनेकी प्रवृत्तिको ही बढ़ावा मिलता है। शिक्षकोंको बहुत थोड़ी तनख्वाह दी जाती है, जिससे समाजमें उन्हें हेय दृष्टिसे देखा जाता है। शिक्षकों और स्कूलोंके अधिकारियों तथा शिक्षकों और अभिभावकोंके बीच अविश्वासकी भावना व्याप्त है और उनमें अधिकांशतः एक-दूसरेके प्रति सहानुभूतिका अभाव ही दिखाई देता है। शिक्षामें शारीरिक प्रशिक्षणकी व्यवस्था नहीं है और उसका माध्यम विदेशी भाषा है, जिससे राष्ट्रकी शक्तिका बहुत अपव्यय होता है।**

इन सारी बातोंके साथ-साथ शिक्षकगण इतना और कह सकते हैं कि इस शिक्षाने विद्यार्थियोंको निस्सत्व बना दिया है और उनमें खुद सोच-समझकर कुछ करनेकी शक्ति ही नहीं रह गई है। मैंने उन्हें इस सबका जवाब दिया और उस समय वे उससे सन्तुष्ट भी हो गये, लेकिन उन्होंने मुझसे यह वादा करा लिया कि मैं इन स्तम्भोंमें इस विषयपर लिखूंगा।

मेरे विचारसे, विदेशी शासन इस बुराईकी जड़ है और यह शासन स्वयं हम लोगोंके कारण टिका हुआ है। मैं जानता हूँ कि जबतक हम इस बुराईके मूल कारणका प्रतिकार नहीं कर लेंगे तबतक इस समस्यासे कभी नहीं निपट सकते। अगर सरकार अपनी हो तो शिक्षक अपनी बात मान्य करा ले सकते हैं। अपनी सरकारका मतलब होता है ऐसी सरकार जो इतनी ताकतवर कभी न हो सके कि शक्तिके बलपर बहुमतकी इच्छाओंका अनादर कर सके, अर्थात् ऐसी सरकार जो जनमतके प्रति जवाब-देह हो। आज बहुत-सी बातोंमें शिक्षकोंको जनमतका समर्थन प्राप्त है, लेकिन वे उस सत्ताके सामने असहाय हैं, जिसने अपने-आपको इतना शक्ति सम्पन्न कर रखा है कि वह भारतकी जनताकी ओरसे शारीरिक प्रतिरोधके लिए खड़े किये गये किसी भी संगठनका मुकाबला सफलतापूर्वक कर सकती है। दुनियाकी कोई भी सरकार उतनी गैर-जिम्मेदार नहीं, और जनताकी भावनाकी उतनी उपेक्षा करके नहीं चलती, जितनी गैर-जिम्मेदार भारत सरकार है। वह भारतके करोड़ों स्त्री-पुरुषोंकी भावनाकी जबर्दस्त उपेक्षा करती चलती है। गोखले इस बातको समझते थे। इसीलिए उन्होंने जबतक स्वराज्य नही मिल जाता तबतक सब-कुछ छोड़कर पहले उसीके लिए प्रयत्न करनेपर जोर दिया। लोक-मान्य तो इस स्थितिसे इतने ऊब गये थे कि उन्होंने "स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है," इस मन्त्रको भारतके एक कोनेसे दूसरे कोनेतक गुँजा दिया। उन्होंने स्वराज्य-की खातिर अपनी अध्ययन और दर्शनकी रुचिको दबा दिया। देशबन्धुने इसी उद्देश्यके लिए अपना जीवन अर्पित कर दिया। इसलिए जो लोग शिक्षकों-जैसी दशामें पड़े हुए हैं, उनके दुःखका इसके अलावा और कोई उपचार नहीं है कि स्वराज्य जल्दीसे-जल्दी प्राप्त किया जाये। अब सवाल यह है कि उसे प्राप्त कैसे किया जाये? मैंने उपाय बता दिया है और ऐसा माना जाता है कि देशने उसे अपना लिया है। इसमें एक ही परिवर्तन किया गया है। वह यह है कि आन्तरिक शक्तिके विकासके प्रयत्नके साथ-

साथ बाहरी प्रयत्न भी होना चाहिए— अर्थात् कौंसिलोंमें प्रवेश करके काम करना चाहिए। शिक्षक लोग इन सदनोंमें तो प्रवेश कर नहीं सकते और सक्रिय राजनीतिमें भी भाग नहीं ले सकते, लेकिन वे सब कात तो सकते ही हैं, या अगर चाहें तो कोई और श्रम कर सकते हैं। अगर वे खुद श्रम नहीं करते तो फिर विद्यार्थियोंसे भी इसकी अपेक्षा न रखें। मैंने चरखा इसलिये सुझाया कि इसमें निजी लाभके लिए नहीं, बल्कि अनुशासन सीखने और राष्ट्रके लाभके लिए सभीको लगाया जा सकता है। स्वराज्यका मतलब है सरकारी नियन्त्रणसे — चाहे वह विदेशी सरकारका नियंत्रण हो या राष्ट्रीय सरकारका — मुक्त होनेके लिए सतत प्रयत्न करते रहना। अगर स्वराज्य होनेपर भी लोग अपने जीवनके हर विषयकी व्यवस्थाके लिए सरकारके ही मुखापेक्षी बने रहेंगे तो वह स्वराज्य-सरकार एक निस्सार चीज ही होगी। क्या शिक्षक लोग यह महसूस करते हैं कि विद्यार्थीगण, जो-कुछ वे स्वयं हैं, उसीके वृहत्तर संस्करण हैं? अगर उनमें पहलकी शक्ति, खुद सोच-समझकर कुछ करनेकी शक्ति, आ जायेगी तो विद्यार्थियोंमें भी वह शक्ति अवश्य आ जायेगी। बिना सोचे-समझे यन्त्रवत् शिक्षा देनेके कारण आजकी परीक्षा-प्रणाली और भी भार-रूप बन गई है। अभी पिछले ही दिनों मैं एक स्कूल देखने गया था। वहाँ एक विद्यार्थीने अपनी पुस्तकमें से पाटलिपुत्रके बारेमें पढ़कर सुनाया तो मैंने पूछा कि बताओ तो कि पाटलिपुत्र क्या है और कहाँ है। वह नहीं बता सका। यह न विद्यार्थीकी गलती थी, न सरकारकी। बेशक, यह शिक्षककी गलती थी। परीक्षा-प्रणालीके प्राणलेवा भारके बावजूद अगर शिक्षक चाहें तो अपने अध्यापनको दिलचस्प और प्रभावकारी बना सकते हैं। उच्चतर कक्षाओंमें शिक्षाका माध्यम अंग्रेजी अवश्य है, लेकिन इसके बावजूद शिक्षकोंकी इच्छा हो तो वे अपने विद्यार्थियोंकी मातृभाषाका भी ध्यान रख सकते हैं। कोई नियम उन्हें विद्यार्थियोंसे उनकी मातृभाषामें बात करनेसे तो रोकता नहीं है। सचाई यह है कि अधिकांश शिक्षक पारिभाषिक शब्दोंके देशी भाषामें पर्याय नहीं जानते, और इसलिए जब चर्चा किसी शास्त्रीय विषयपर होती है तो उन्हें विद्यार्थियोंको देशी भाषामें अपनी बात समझा पाना मुश्किल लगता है। हमें अपनी बातचीतमें अंग्रेजीके विशेषणों, क्रिया-विशेषणों, बल्कि मुहावरोंका भी प्रयोग करनेकी गन्दी आदत हो गई है। इनका प्रयोग हम इसलिए करते हैं कि समझते हैं, इस तरह हम अपनी बातको अधिक वजन दे पाते हैं। अगर शिक्षक लोग चाहें तो वर्तमान प्रणालीकी बहुत-सी बुराइयाँ तो वे खुद ही दूर कर सकते हैं।

वर्तमान प्रणालीके अधीन क्या-कुछ किया जा सकता है, मैंने इसके दिये जा सकने योग्य बहुत-से उदाहरणोंमें से कुछ-एक ही दिये हैं। इस प्रणालीकी बुराईको मैंने देखा और इसीसे मेरे मनमें असहयोगका खयाल आया था। लेकिन अभी तो पुनः असहयोग कर सकना लगभग असम्भव ही है। इसीलिए मैं कुछ ऐसी बातें सुझा रहा हूँ, जिन्हें कर दिखाना कुछ अर्थोंमें अधिक कठिन है। एक सामान्य व्यक्तिके लिए बुराईके बीच रहकर उसके प्रभावसे अछूता रह पाना, उससे भाग खड़े होनेकी अपेक्षा कहीं अधिक कठिन है। शराबकी दुकानोंसे दूर रहकर तो संयमका निर्वाह बहुतसे

लोग कर सकते हैं, लेकिन इन अभिशप्त स्थानोंमें रहकर भी इनके प्रभावसे बचे रहनेवाले बिरले ही हो सकते हैं।

जो भी हो, शिक्षकोंनें मुझसे सलाह माँगी है। मैं इतना ही कर सकता हूँ कि अपनी सलाह उनके सामने रख दूँ, ताकि जिसमें जितनी सामर्थ्य हो वह उस हदतक उसके अनुसार चल सके। लेकिन, दुर्भाग्यकी बात यह है कि शिक्षित भारतीय अध्यापन-कार्य इसलिए नहीं करते कि उससे उन्हें प्रेम है, बल्कि इसलिए करते हैं कि उनके पास जीविका देनेवाला इससे अच्छा कोई दूसरा काम नहीं। बहुतसे लोग तो इस पेशेको, अपने मनके किसी बेहतर कामकी सीढ़ी मानकर अपनाते हैं। इस तरह शिक्षक लोग शुरूसे ही स्वयं अपने रास्तेमें रुकावट खड़ी कर लेते हैं। इसे देखकर आश्चर्य तो इस बातका होता है कि बहुत-से शिक्षकोंकी दशा जैसी है उससे और खराब क्यों नहीं है। निःसन्देह, सुसंगठित आन्दोलन करके वे अपनी आर्थिक स्थिति सुधार सकते हैं, लेकिन मुझे तो स्वराज्य सरकारके अधीन भी उनका वेतन-मान आजकी अपेक्षा बहुत ऊँचा हो, इसकी सम्भावना दिखाई नहीं देती। मैं इस प्राचीन आदर्शमें विश्वास रखता हूँ कि शिक्षक अध्यापनके कार्यके प्रति प्रेमके कारण यह कार्य करे और जीवन-यापनके लिए आवश्यक न्यूनतम आयसे सन्तोष करें। रोमन कैथोलिकोंने उस आदर्शको कायम रखा है और उन्हें दुनियाकी कतिपय उत्तम शिक्षक-संस्थाओंकी स्थापनाका श्रेय प्राप्त है। प्राचीन ऋषि लोग तो इससे भी अधिक करते थे। वे अपने शिष्योंको अपने परिवारका सदस्य बना लेते थे, लेकिन उन दिनों वे जो शिक्षा देते थे वह सर्वसाधारणके लिए नहीं थी। वे तो बस मनुष्यजातिके सच्चे शिक्षकोंका एक समुदाय तैयार कर देते थे। आम जनताको अपने-अपने घरोंमें, अपने-अपने पुश्तैनी पेशोंमें ही आवश्यक प्रशिक्षण मिल जाता था। उस कालके लिए यह आदर्श पर्याप्त था। लेकिन अब परिस्थितियाँ बदल गई हैं। आज तो चारों ओरसे सब लोग आग्रहपूर्वक लिखने-पढ़नेसे सम्बन्धित शिक्षाकी माँग कर रहे हैं। इस क्षेत्रमें जो सुविधाएँ विशिष्ट वर्गोंको दी जाती रही हैं, उन्हींकी माँग सर्वसाधारण भी कर रहा है। यह कहाँ तक सम्भव है और कुल मिलाकर मानव-समाजके लिए कहाँतक लाभदायक है, इसकी चर्चा यहाँ नहीं की जा सकती। स्वयं ज्ञानार्जनकी इच्छामें कोई बुराई नहीं है। अगर इसे सही दिशा दी जाये तो इससे लाभ ही लाभ है। इसलिए जो अवश्यम्भावी है उससे बचनेका कोई उपाय सोचनेके लिए रुके बिना हमें उसका अच्छेसे-अच्छा उपयोग करना चाहिए। इच्छा करने-भरसे ऐसे हजारों शिक्षक नहीं मिल सकते और न वे भीख माँगकर जी ही सकते हैं। उन्हें वेतन देनेकी पक्की व्यवस्था होनी चाहिए फिर चूँकि हमें शिक्षकोंके एक बहुत बड़े समूहकी आवश्यकता होगी, इसलिए उन्हें उतना वेतन नहीं दिया जा सकता जितना कि उनके पेशेका महत्त्व देखते हुए दिया जाना चाहिए। अतः उन्हें उतना ही दिया जायेगा जितना दे सकनेमें राष्ट्र समर्थ होगा। हम जैसे-जैसे विभिन्न पेशोंके तुलनात्मक महत्त्वको समझते जायेंगे, वैसे-वैसे उनके वेतनमें वृद्धिकी अपेक्षा रख सकते हैं। लेकिन, यह वृद्धि बहुत धीरे-धीरे ही होगी। इसलिए भारतमें पुरुषों और स्त्रियोंका एक ऐसा वर्ग तैयार होना चाहिए, जो देशभक्तिकी भावनासे

अध्यापनका पेशा अपनाये और इसकी कोई परवाह न करे कि उससे भौतिक लाभ कितना होता है। तब फिर राष्ट्र शिक्षकोंके पेशेके महत्त्वको कम करके नही आँकेगा। उसके विपरीत, इन आत्म-त्यागी स्त्रियों और पुरुषोंके लिए उसके हृदयमे सबसे ऊँचा स्थान होगा। इस तरह हम इसी निष्कर्षपर पहुँचते हैं कि जैसे हमारा स्वराज्य बहुत अंशोंमें हमारे अपने प्रयासोंसे ही सम्भव है, उसी तरह शिक्षकोंका उत्थान भी मुख्यतः स्वयं उन्हींके प्रयत्नोंमे सम्भव है। उन्हें साहस और धीरजके साथ कठिनाइयोंके बीचमे राह बनाते हुए सफलताकी मंजिलतक पहुँचना है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ६-८-१९२५

१५. अखिल भारतीय देशबन्धु स्मारक[1]

मेरी ही तरह पाठकोको भी यह जानकर प्रसन्नता होगी कि पण्डित मालवीयजीने अखिल भारतीय देशबन्धु स्मारकके लिए पिछले सप्ताह प्रकाशित अपीलपर हस्ताक्षर कर दिये हैं। अन्य बहुतसे लोगोके बारेमें भी उम्मीद है कि वे इस अपीलका अनुमोदन करेंगे। उन सबसे भी निवेदन किया गया है। यह टिप्पणी लिखते समय तक उनके उत्तर नही आये हैं। स्मारकके उद्देश्यके सम्बन्धमे मतभेदकी गुंजाइश है। इसलिए अभीतक यह तय कर पाना एक नाजुक मसला बना हुआ है कि इसके लिए किससे निवेदन किया जाये और किससे नही। इसलिए जिन लोगोंको देशबन्धुकी स्मृति प्यारी है और अपीलमें वर्णित सीमातक चरखा तथा खद्दरकी शक्तिमें विश्वास है, इन पक्तियोंके द्वारा मैं उन सबको, इस अपीलपर हस्ताक्षर करनेके लिए आमन्त्रित करता हूँ। अपीलकी नकल फिरसे नीचे दे रहा हूँ।[2]

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, परिशिष्टांक ६-८-१९२५

१. इसे गांधीजीने अपीलकी प्रस्तावनाके रूपमें लिखा था; देखिए खण्ड २७, पृष्ठ ४१५-१६।

२. यहाँ नहीं दी जा रही है।

१६. पत्र : छगनलाल गांधीको

अजीमगंज
गुरुवार [६ अगस्त, १९२५][1]

चि० छगनलाल,

तुम्हारे दो पत्र मिले हैं। यह पत्र मैं अजीमगंजसे लिख रहा हूँ। मुझे यहाँ मणिलाल कोठारी देशबन्धु स्मारक कोषके लिए चन्दा इकट्ठा करनेके लिए बुला लाये हैं। कल शुक्रवारको कलकत्ता पहुँचूंगा। वहाँसे उसी दिन जमशेदपुर चला जाऊँगा। शनिवार और रविवारको जमशेदपुरमें रहकर फिर सोमवारको सबेरे ही कलकत्ता पहुँच जाऊँगा। मैं महादेवको चन्दा इकट्ठा करनेके लिए कल तो कलकत्ता छोड़े जा रहा हूँ। क्रिस्टोदास बीमारीके कारण कोमिल्लाके अभय आश्रममें रह रहा है। जमनादास[2] शान्तिनिकेतन गया है और सोमवारको कलकत्ता पहुँच जायेगा। अपने स्वास्थ्यका ध्यान रखना। काशीके[3] बारेमें तो क्या कहूँ? प्रभुदाससे[4] कहना कि वह अपने मन और शरीरकी स्थितिके सम्बन्धमें मुझे लिखे।

लक्ष्मीके पत्र आते रहते हैं। यदि वह आना चाहे तो मुझे सूचित करना।

मूल गुजराती प्रति (सी० डब्ल्यू० ६११४) से।
सौजन्य : छगनलाल गांधी

१७. पत्र : मणिबहन पटेलको

[मुर्शिदाबाद जिला]
श्रावण वदी २ [६ अगस्त, १९२५][5]

चि० मणि,

तुम्हारा पत्र मुझे मिल गया था; और डाह्याभाईका भी। डाह्याभाईके पत्रका उत्तर तुरन्त दे देनेके लिए मैंने महादेवसे कह दिया था। वह मिल गया होगा। डाह्याभाईसे जो सवाल पूछा गया था, उसका उसने जवाब ही नहीं दिया। डाह्याभाईको शल्य चिकित्सा सीखनी हो तो यहाँ तथा कलकत्तामें भी पूरे साधन हैं। इन कालेजोंका सरकारके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है।

१. छगनलाल गांधीने पत्र मिलनेकी तारीख श्रावण बदी ६, १९८१ लिखी है। यह १० अगस्तको थी। इससे पहला गुरुवार ६ अगस्तको था।

२, ३ और ४. क्रमशः छगनलालके भाई, पत्नी और पुत्र।

५. जैसा कि साधन सूत्रमें दिया गया है।

मणिलाल [कोठारी] ने तुम्हें बारह चूड़ियाँ भेज दी हैं, इसलिए अभी तो तुम्हें और चूड़ियोंकी जरूरत नहीं रह जाती। यदि ये चूड़ियाँ जल्दी टूटनेवाली निकलें तो ये महँगी पड़ेंगी, ऐसा समझना। इनसे तो चाँदीकी अथवा सूतसे गुँथी हुई चूड़ियाँ सस्ती पड़ेंगी। वे ऐसी गूँथी जा सकती हैं कि मोटी हों, मजबूत हों और जिन्हें हमेशा धोया जा सके। लेकिन इसपर तो जब हम मिलेंगे तभी विचार करेंगे। तबतकके लिए तो तुम्हारा इतना संग्रह काफी है।

मेरा वहाँ आना तो जब होगा तब होगा। शायद एक-दो दिनके लिए अक्तूबर-में आ जाऊँ।

बाइसिकल ली है, तो अब उसे कसरतकी दृष्टिसे भी चलाना।

आज हम मुर्शिदाबाद जिलेमें हैं। मणिलाल [कोठारी] यहीं है।

बापूके आशीर्वाद

चि० मणिबहन
मार्फत वल्लभभाई झवेरभाई पटेल, बैरिस्टर
खमासा चौकी
अहमदाबाद

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो — ४ : मणिबहेन पटेलने

१८. भाषण : कृष्णनाथ कालेज, बहरामपुरमें[1]

६ अगस्त, १९२५

महाराजा साहब, भाइयो और साथी विद्यार्थियो,

मैंने आपके लिए साथी विद्यार्थी सम्बोधनका प्रयोग इसलिए किया कि यद्यपि मैं अब ५६ वर्षका हो गया हूँ, फिर भी अपनेको विद्यार्थी ही मानता हूँ। अपनी उम्रके साथ मुझे इस दुनियाका जितना अनुभव होता जाता है, मुझे इस बातकी प्रतीति उतनी ही अधिक होती जाती है कि मुझे अभी कितना-कुछ सीखना है और कितना-कुछ भूलना है। इस समय आप लोगोंके बीच आकर, आप सबसे मिलकर मुझे बहुत खुशी हो रही है। यह मेरे लिए दोहरी प्रसन्नताका विषय है। मैं भारतमें कहीं भी विद्यार्थी समुदायसे मिलनेका कोई मौका हाथसे नहीं जाने देता और बराबर ऐसे मौकेकी तलाशमें रहता हूँ। इसलिए जब मुझे मालूम हुआ कि स्वागत-समिति द्वारा आयोजित अनेक समारोहोंमें यह समारोह भी शामिल है तो मुझे बड़ी खुशी

१. यहाँ उन्हें एक मानपत्र और देशबन्धु स्मारक कोषके लिए १,०६७ रुपयेकी एक थैली भेंट की गई थी। गांधीजीका भाषण शॉर्ट-हैंड लिपिमें लिख लिया गया था और उसे कालेजके स्मृति-ग्रन्थमें परिशिष्टके रूपमें प्रकाशित किया गया था।

हुई, लेकिन जब मुझे यह मालूम हुआ कि यह कालेज सचमुच क्या है तब यह जानकर और भी प्रसन्नता हुई कि महाराजा बहादुरने जो बड़े-बड़े दान दिये हैं, उनमें से एकका परिणाम यह है। उनकी महान् दानशीलताकी बातें तो मैं, जब १९१५ में मुझे महाराजा बहादुरके सम्पर्कमें आनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था, तभीसे जानता हूँ। लेकिन उन्होंने कितने बड़े-बड़े दान दिये हैं सो तो यहाँ आनेपर ही मालूम हुआ। मुझे विश्वस्त सूत्रोंसे ज्ञात हुआ है कि उन्होंने कुल मिलाकर एक करोड़ रुपयेसे अधिक ही दान किया होगा। अबतक मैं ऐसा मानता था और इस बातसे बहुत प्रसन्न भी होता था कि मेरे पारसी मित्रोंकी दानशीलताकी बराबरी दुनियामें कोई नहीं कर सकता, और अब भी मैं समझता हूँ कि जहाँतक सम्पूर्ण पारसी समाजका सम्बन्ध है, मेरा यह खयाल सही ही सिद्ध होगा; लेकिन जहाँतक व्यक्तियोंका सवाल है, मुझे ऐसे किसी पारसी दानवीरका नाम याद नहीं आता जिसका दान कासिम बाजारके महाराजाके दानको मात दे सके। इसलिए जैसा कि मैंने कहा, आपसे मिलकर मुझे दोहरी प्रसन्नता हो रही है।

आपने देशबन्धु स्मारकके लिए जो थैली भेंट की है, उसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। यह बात तो मुझसे ज्यादा अच्छी तरह आप ही जानते होंगे कि विद्यार्थी-जगत देशबन्धु दासका कितना ऋणी है; केवल इसलिए नहीं कि वे विद्यार्थियोंके संरक्षकोंमें से एक थे, सिर्फ इसलिए भी नहीं कि विद्यार्थियोंके लिए उनकी थैलीका मुँह बराबर खुला रहता था, बल्कि इसलिए भी कि वे विद्यार्थियोंको सलाह मशविरा देनेको बराबर तैयार रहते थे और उन्होंने विद्यार्थी-जगतके लिए आत्म-त्याग और देशभक्तिकी जो विरासत छोड़ी है, अगर कोई उसकी बराबरी कर भी ले तो उससे आगे तो निकल ही नहीं पायेगा। इसलिए उनके स्मारकके हेतु यह मोटी रकम देकर आपने अपना कर्त्तव्य ही निभाया है, और मुझे आशा है कि सारे बंगालके विद्यार्थी आपके इस अच्छे उदाहरणका अनुकरण करेंगे।

आपने मुझसे कुछ सवाल पूछे हैं और आप मुझसे उनके उत्तर चाहते हैं। मैंने इन प्रश्नोंको समझ लिया है। मेरे पास इस समय कुछ ज्यादा बोलनेका वक्त नहीं है, लेकिन इन प्रश्नोंके उत्तर देनेसे पहले मैं आपसे थोड़ी देर उन विषयोंकी चर्चा करना चाहता हूँ, जिनका विद्यार्थियोंसे इन प्रश्नोंकी अपेक्षा कहीं अधिक स्थायी सम्बन्ध है और इसलिए जो उनके लिए इन सवालोंकी तुलनामें बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण भी है। मैंने विश्वका जितना भ्रमण किया है, विद्यार्थियोंसे मेरा जितना सम्पर्क रहा है और युवकों और युवतियोंके अधकचरे शिक्षकके रूपमें मुझे जो भी अनुभव प्राप्त हुए हैं, उन सबके आधारपर मैं इसी निष्कर्षपर पहुँचा हूँ कि कोई स्कूल मास्टर या प्रोफेसर जो किताबी ज्ञान सिखाता है वह दरअसल वह ज्ञान नहीं है, जिसे सिखाना उसका कर्त्तव्य है। आपकी योग्यताकी परख आपके सुन्दर उच्चारण या व्याकरणपर अधिकारके आधारपर नहीं होनी है, और न ही वह आपकी वाग्मिताके आधारपर होनी है। वैसे तो आप कभी कालेजोंमें न आते तब भी कोई हर्ज नहीं था। इसके बिना भी दुनियाको अपनी योग्यताका ठीक परिचय दिया जा सकता है। और भारतके —

बल्कि संसारके शिष्ट नागरिक बनकर जीवन यापन किया जा सकता है। आप स्कूल और कालेज जिस बातके लिए आते हैं, वह बात दरअसल है चरित्र-निर्माण। विद्यार्थी-जीवनके लिए जिस ऊँचेसे-ऊँचे आदर्शकी कल्पना की जा सकती है, वह आदर्श हमारे प्राचीन हिन्दू पूर्वजोंने, ऋषि-मुनियोंने प्रस्तुत किया है। उन्होंने विद्यार्थीके जीवनको संन्यासीके जीवनके समान बताया, और विद्यार्थियोके मार्गदर्शनके लिए उन्होने जो नियम बनाये, वे उतने ही कड़े हैं, जितने चतुर्थ आश्रम अर्थात् संन्यासके लिए बनाये गये नियम हैं। किसी संन्यासीसे ससारका पूरा अनुभव प्राप्त कर लेनेके बाद सम्पूर्ण ज्ञानसे सम्पन्न होनेके कारण जो-कुछ करनेकी अपेक्षा की जाती है, एक विद्यार्थीसे परम्परा तथा अपने आध्यात्मिक और सांसारिक गुरुके प्रति श्रद्धाके कारण ही स्वेच्छा-पूर्वक वह सब करनेकी आशा की जाती है। आप सांसारिक ज्ञान और दिव्य ज्ञानका भेद जानते हैं। वे सांसारिक आकांक्षा और सांसारिक ज्ञानका भी उपयोग आत्माके उत्थानके लिए करते थे, और जब वे सासारिक विषयोंकी चर्चा करते थे, उस समय भी हमें आत्माके गूढ़ ज्ञानकी शिक्षा दिया करते थे। जिन्होंने उपनिषदोंका अध्ययन किया होगा वे तनिक भी हिचकिचाहटके बिना, मैं इस समय जो कुछ कह रहा हूँ, उसकी पुष्टि करेंगे। तो आप अपने मनसे पूछिए कि क्या आप संन्यासीका जीवन व्यतीत कर रहे हैं? क्या आप सब ब्रह्मचारी हैं?

अपनी बंगाल-यात्राके दौरान मैंने बंगालके विद्यार्थियोंके बारेमें बहुत-कुछ सुना है। उनमें से कुछ बातें आपके लिए श्रेयकी हैं, लेकिन कुछ अश्रेयस्कर भी हैं। मुझे बताया गया है कि अगर भारत-भरके नही तो कमसे-कम बंगालके औसत विद्यार्थी-का जीवन तो विशेष शुद्ध नही ही है। वह अपना समय शुद्धतम साहित्यके अध्ययनमे नही लगाता है, बल्कि वह अपने अवकाशका समय भी ऐसी पत्र-पत्रिकाएँ पढनेमें लगाता है, जिन्हें किसी भी अच्छे पुस्तकालय अथवा सभ्य व्यक्तिके बैठकखानेमें नही होना चाहिए। मुझे नहीं मालूम कि यह बात कहाँतक सच है, लेकिन मैंने जो-कुछ कहा है, वह पढ़े-लिखे लोगोंसे, सुसंस्कृत व्यक्तियोसे तथा इन्ही कालेजोंमें पढ़कर निकले सज्जनोंमे सुना है। उनमें से कुछने मेरे सामने बंगालके विद्यार्थियोके जीवनके इतना बुरे होनेपर बहुत दुःख प्रकट किया। उन्होंने मुझे बताया कि उनका चरित्र आम तौरपर लेकिन निश्चित रूपमे गिरता ही जा रहा है। मैं उम्मीद करता हूँ कि इस बातके लिए पर्याप्त आधार नही होगा और यह सच भी नही होगी तथा औसत विद्यार्थी उतना बुरा नहीं होगा जितना कि उसे बताया जाता है। यहाँ मुझे एक हिन्दू विधवा द्वारा आँखोंमें आँसू भरकर सुनाया गया एक किस्सा याद आ रहा है। उसके कई लड़कियाँ हैं, जिनमें से कुछ अभी अविवाहिता हैं। उसने मुझसे कहा कि अब मैं इन लड़कियोंका क्या करूँ। वे सबकी-सब शिक्षित हैं। उन्हें अच्छी शिक्षा देनेके लिए उसने कुछ भी उठा नही रखा है। मैंने उससे पूछा कि उन लड़-कियोंकी उम्र क्या है। मेरे विचारमे तो वे अभी विवाह करने योग्य नहीं हैं। उनकी माताने कहा, "लेकिन मैं उन्हें ब्याहे बिना रह भी कैसे सकती हूँ? क्या आप मुझे कोई ऐसी जगह बता सकते हैं जहाँ मैं उन्हें छिपाकर रखूँ, जहाँ रखकर मैं यह समझूँ

कि मेरी बेटियाँ सुरक्षित हैं? आप बंगालके नौजवानोंको नहीं जानते हैं। आप नहीं जानते कि यहाँ किसी नौजवान लड़कीके लिए बिना किसी संरक्षकके घूमना-फिरना कितना कठिन है। कलकत्तेकी गलियोंमें घूमनेवाले विद्यार्थियोंकी वासनापूर्ण दृष्टिसे वे बच नहीं सकतीं।" क्या यह सब सच हो सकता है? मैं तो यही उम्मीद करता हूँ कि यह सच नहीं हो सकता। लेकिन इन लड़कियोंकी वह विधवा माता कोई अनपढ़ औरत नहीं है। मैं आपको बता दूँ कि वह कांग्रेसकी एक बहुत बड़ी कार्यकर्त्री है। उसने बिना जाने और अनुभव किये कुछ नहीं कहा था। उसकी बातें उसके कटु अनुभवोंपर आधारित थीं। उसने कहा था, "आप चाहें जिससे पूछकर देख लीजिए, बंगालके सभी मातापिता सामान्यतः मेरी बातकी ताईद करेंगे।"

अभी हालमें ही मैंने अखबारोंमें एक खबर पढ़ी कि एक लड़कीने — उसका नाम अभी भूल रहा हूँ — आत्महत्या कर ली। मैं आपसे पुण्यस्मरणीय स्नेहलता बहनकी बात नहीं कर रहा हूँ, मैं तो उस लड़कीकी बात कर रहा हूँ, जिसने अभी हालमें आत्महत्या कर ली है। ऐसा खयाल है कि उसने आत्महत्या इसलिए की कि उसका पिता उसके लिए कोई योग्य वर नहीं ढूँढ़ पाया। क्यों नहीं ढूँढ़ पाया? अखबारमें बताया गया है कि उस लड़कीके माता-पिता जिन नौजवानोंके पास गये, सभीने भारी-भारी रकमोंकी माँग की। क्या विवाह कोई पैसेसे तय की जानेवाली चीज है? क्या यह कोई सौदेबाजी है, अथवा यह कोई पवित्र प्रथा है? यह प्रेमका सौदा है या पैसेका? आखिर हमने अपने स्कूलों और कालेजोंमें क्या सीखा है? अगर यह बात ठीक हो, और मुझे तो लगता है कि ठीक है तो इसकी जिम्मेदारी बंगालके विद्यार्थियोंके सिर है। अगर यह बात सही है तो इस बुराईको दूर करना आपमें से हरएकका कर्त्तव्य है। जबतक बंगालमें एक भी लड़कीकी आजादी खतरेमें है, जबतक एक भी लड़की इस कारणसे कि उसके माँ-बापके पास उसके लिए योग्य वर खरीदनेके लिए काफी पैसे नहीं हैं, आत्महत्या करना जरूरी समझती है तबतक हम स्वराज्यकी बात न करें, हम भारतकी आजादीकी बात न करें। मैं चाहता हूँ कि पहले हम बंगालके भालपर से कलंककी यह कालिमा मिटायें और बंगालके विद्यार्थी कासिम बाजारके महाराजाकी इस दानशीलताके योग्य बनकर दिखायें। विद्यार्थी लोग संसारके सामने, बंगालके माता-पिताओंके सामने यह सिद्ध करके दिखायें कि उनके हाथोंमें बंगालकी एक-एक लड़कीकी इज्जत उतनी ही सुरक्षित है जितनी कि स्वयं उस लड़कीके माता-पिताके हाथोंमें है। और जबतक हम यह प्रारम्भिक पाठ नहीं सीख लेते, तबतक मुझे तो लगता है कि अबतक का हमारा जीवन व्यर्थ गया, बंगालके विद्यार्थियोंने अबतक अपना जीवन व्यर्थ गँवाया, और उन्हें उदार और आधुनिक शिक्षा देनेमें, शानदार इमारतोंमें उनकी रिहाइशकी व्यवस्था करनेमें जो इतना धन खर्च किया जा रहा है, वह श्रम और पैसा, दोनोंकी बर्बादी है। ईश्वर आपको मेरी इन बातोंका सार समझनेकी शक्ति और समझदारी दे। मैं जो-कुछ कह रहा हूँ, उसकी आलोचना न कीजिए, उसकी प्रशंसा भी मत कीजिए, बल्कि अपने मनसे पूछिए कि मुझे जो जानकारी दी गई है वह कहाँतक सही हो सकती है। अगर पूरी बात नहीं

बताई गई हो तो जितनी बताई गई है, उतनी भी बंगालके विद्यार्थियोंके लिए भारी लज्जाका विषय है। अगर यह बात कुछ सौ विद्यार्थियोंपर भी लागू होती तो मैं कहूँगा कि इसे आप एक खतरनाक चीज समझिए। यह बहुत ही घिनौनी चीज है, ऐसा नासूर है जो समाजको भीतरसे खोखला बनाता जा रहा है, और अगर शुरूमें ही इस बुराईको दबा नहीं दिया जाता तो यह सारे बंगालमें फैल जायेगी। इसलिए मैंने आपसे जो बातें कही हैं, उनकी आलोचना किये बिना और उनमें निहित सचाईकी बहुत बारीकीसे नाप-जोख किये बिना उनके सारको ग्रहण कीजिए, मैंने जो भी कहा है उसका आपमें से हरएक, जो अच्छेसे-अच्छा उपयोग कर सकता है, सो करे।

प्राचीन ऋषियोंका कहना है कि विद्यार्थीकी शिक्षा साहित्यसे शुरू नहीं होती। क्या आपको मालूम है कि वैदिक कालमें विद्यार्थी जब गुरुके पास जाता था तो उससे क्या करनेको कहा जाता था? निश्चय ही पढ़ने-लिखनेकी परीक्षा पास करनेके लिए नहीं। उसे गुरुके पास अपने हाथमें समिध-खण्ड — हवनकी कुछ लकड़ियाँ — लेकर जाना पड़ता था। यह किस बातका संकेत था? यह हृदयकी शुद्धता और शुचिताका द्योतक था। यह विद्यार्थीके इस संकल्पका द्योतक था कि वह अपने गुरुके लिए श्रम करेगा, ताकि उससे वह सब-कुछ मिल सके, जिसका वह पात्र हो। वह 'क्यों' और 'किसलिए' नहीं पूछता था; उससे तो यह अपेक्षा थी कि गुरु जो-कुछ दे उसे वह कृतज्ञ भावसे स्वीकार करे। अगर आप शेक्सपियर और मिल्टनकी कृतियोंके सुन्दर अंशोंको कंठाग्र करके खुश होते हैं, तो मुझे इससे कोई शिकायत नहीं है। लेकिन इससे पहले आपको वह चीज सीखनी चाहिए, जिसमें अधिक सार है। आपको अपनी इमारत सुदृढ़ नींवपर खड़ी करनी चाहिये, इसलिए आपको पूर्ण सत्यको आधार बनाकर बढ़ना चाहिए, आपको पूर्ण प्रेम और अहिंसाकी नींवपर अपना भवन खड़ा करना चाहिए। जीवनके इन आधारभूत सिद्धान्तोंका पालन करना हर विद्यार्थीका कर्त्तव्य है। आप जानते हैं कि महाभारतकारने हमें सत्यके महत्त्वके विषयमें क्या शिक्षा दी है। वे कहते हैं, "आप एक पलड़ेपर सत्यको रखिए और एकपर अपने यज्ञोंको। फिर भी आप देखेंगे कि सत्यका पलड़ा भारी है।" महाभारतकारका कहना है कि संसारमे सत्यसे बढ़कर कुछ नहीं है, और उनका कहना ठीक ही है। अपने सीमित अनुभवोंके दौरान आप चाहे असत्यको जितना भी सफल होते देखिए, आप इतिहासमे भी भले ही यह देखे कि जाल-फरेबके बलपर किस प्रकार राजाओं और सरदारोंने सत्ता और राज्य हासिल किये हैं, किन्तु याद रखिए कि ये चीजें क्षणभंगुर हैं। एक राष्ट्रके जीवनमें, संसारके जीवनमें कुछ हजार वर्ष क्या महत्त्व रखते हैं? विद्यार्थियोंके रूपमें आपको इन चीजोंमें मायापच्ची नहीं करनी है। आप सत्य और अहिंसाके पालनका संकल्प कीजिए। आप इन प्रकाश-स्तम्भोंको ध्यानमें रखेंगे तो आप कभी गलत दिशामें नहीं भटकेंगे। और फिर आप साहित्य-विज्ञानका जितना अध्ययन करना चाहे, शौकसे करें। लेकिन अगर आपकी नींव मजबूत नहीं है, तो कुछ समयतक ये इमारतें देखनेमें चाहे जितनी अच्छी लगे, याद रखिए कि वे ताशके पत्तोंके घर हैं, जो हवाके एक हलकेसे झोंकेसे गिर जायेंगे।

अब मैं आपके प्रश्नोंको लेता हूँ। आपने पूछा है कि चरखा क्या कर सकता है। मैं समझता हूँ, मैं आपको समझा चुका हूँ कि वह क्या कर सकता है। वह भारतके लिए वही करेगा जो ऋषियोंके युगमें करता था। वह स्वर्णकाल था। मैं कुछ इतिहासकारोंकी इस बातको एक क्षणके लिए भी नहीं मानता कि वह काल तो कवियोंकी कल्पनाकी उपज है। नहीं, ऐसा नहीं है। हमारे देशमें ऐसा एक स्वर्ण-काल अवश्य हो चुका है। और निश्चय ही हम एक दूसरे कालचक्रमें प्रवेश कर रहे हैं, जो हमें फिर एक नये स्वर्णकालमें ले जायेगा। हम उस स्वर्णकालमें जिये हैं, जब इस देशमें आजकी तरह करोड़ों लोग अर्धभूखे नहीं थे। चरखेकी नीति और सिद्धान्त यह है कि आपके और ग्रामवासियोंके बीच सम्बन्ध स्थापित हो। यही ग्रामोद्धारका मतलब है—जो आपका दूसरा प्रश्न है। ग्रामोद्धारका कार्य चरखेके चारों ओर ही चलना चाहिए। जबतक आपके हाथमें भूखे ग्रामीणोंके लिए रोटीका एक टुकड़ा न हो, तबतक आपको गाँवोंमें नहीं जाना चाहिए। अगर सर प्र० च० रायका कथन सच माना जाये तो सालमें पूरे छः महीने भारतके किसानों—अर्थात् यहाँकी आबादीके ८० प्रतिशत लोगोंके पास कोई काम नहीं रहता। वे बेकार रहते हैं। क्या आप ऐसी कल्पना कर सकते हैं कि किसी भी देशके किसान वर्षमें चार महीने बेकार रहे और फिर भी अपना पेट भर सकें? इस युगमें तो कोई करोड़पति भी इतने अव-काशका उपभोग नहीं कर सकता। वह भी तुरन्त देखेगा कि कुछ घाटा हो गया है जिसे पूरा करना है, या यह कि उसके कारोबारकी व्यवस्था बिगड़ गई है। अगर आप भारतकी इन झोंपड़ियोंमें कुछ जीवनका संचार करना चाहते हों, तो वह चरखा चलाकर ही सम्भव है। और इसलिए मैं कहता हूँ कि जो कोई प्रतिदिन एक गज भी सूत कातता है, वह उस हदतक भारतकी सम्पत्तिमें वृद्धि करता है, उसके दुःखको दूर करनेके लिए कुछ करता है, और 'गीता' में कहा है:

"जैसा आचरण श्रेष्ठ जन करते हैं, वैसा ही साधारण इतर जन भी करते हैं।"[1]

आप भारतके भावी महान पुरुष हैं, आप धरतीके सार तत्त्व हैं। भारतकी भावी आशाके आधार आप ही अगर यह नहीं जानेंगे कि इस समस्यासे कैसे निपटा जाये, जन-साधारणकी भयानक दरिद्रताको कैसे दूर किया जाये, तो फिर इसका समाधान आप कैसे करेंगे? फिर आपकी शिक्षासे क्या लाभ? क्या आप सात लाख गाँवोंकी भस्मराशिपर खड़े रहकर सन्तुष्ट हो जायेंगे? क्या आप सात लाख गाँवोंका नामोनिशान धरतीपर से मिट जाने देंगे? भारतमें मान लीजिए कुछ सौ नगर हैं, जिनकी कुल आबादी ३० करोड़ नहीं बल्कि लगभग दो करोड़ है, तो क्या आप उन्हींको लेकर सन्तुष्ट रहेंगे और ग्रामवासियोंको मिट जाने देंगे? क्या आप वही काम करेंगे जैसा करनेकी बात दक्षिण आफ्रिकाके श्री मिलनरने कही है। वे कहते हैं कि वे भार-तीयोंको कानूनी तौरपर नहीं, बल्कि भूखों मारकर भगायेंगे। आप आधुनिक शिक्षा पायें और इसके लिए गाँवोंको भूखसे तड़पना पड़े! क्या यही भारतकी अर्थ-व्यवस्था

१. "यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते।" भगवद्गीता, अध्याय ३-२१।

है? आप आँकड़ोंका अध्ययन करके पता लगाइए कि ये करोड़ों रुपये कहाँ जाते हैं? दादाभाई नौरोजीने इस सम्बन्धमें कुछ आँकड़े दिये थे, लेकिन अब जिन तथ्योंका उद्घाटन हो रहा है उनके सामने तो वे आँकड़े कुछ भी नही है, क्योंकि वास्तवमें भारतकी सपदाका अपहरण दो रूपोमें किया जा रहा है। भारत सरकारका सैनिक खर्च चलानेके लिए जो धन आता है, उसका अधिकांश गांवोसे आता है। यह तो भारतकी सम्पदाके अपहरणका एक रूप हुआ। लेकिन एक दूसरा रूप भी है। अर्थात् श्रम-धनका क्षय। यह बात नही कि श्रमिकोंको यहाँसे बाहर ले जाया जा रहा है। लेकिन लोगोंकी काम करनेकी क्षमता छीजती चली जा रही है और एक दिन ऐसा आ सकता है जब वे कहे, "हममें तो अब काम करनेकी कोई शक्ति ही नही रह गई।" इस हालतमें हम इतना ही कर सकते हैं कि राष्ट्रीय आयके सतुलनको थोड़ा सहारा दें। इसीलिए मैं विद्यार्थियोसे कहता हूँ कि आप आधे घंटेतक अवश्य चरखा चलायें और खादी भी जरूर पहनें।

आपने एक सवाल मिलके कपड़े बनाम विदेशी कपड़ेके सम्बन्धमें पूछा है। आपने हालकी आर्थिक परिस्थितियोंका अध्ययन नही किया है। मैं मिलके कपडे और विदेशी कपड़ेको एक ही श्रेणीमें रखता हूँ। मैं नही चाहूँगा कि आप अहमदाबाद, बम्बई या बगलक्ष्मीसे भी आये मिलके कपड़े पहनें। यह तो उनके लिए है जो भारतके बारेमें नहीं सोचते, जो उसके भविष्यकी कोई चिन्ता नही करते। इसलिए आपकी सच्ची अर्थ-नीति खद्दर पहनना है। खद्दर पहनकर आप एक गरीब बुनकरके श्रमको सहारा देते हैं। अगर आप खद्दर पहनेंगे तो इस तरह अनेक विधवाओंको सहारा देंगे, उन अनेक किसानोंको सहारा देंगे, जो अपने खाली समयमे कात सकते हैं। इस तरह आप उन अनेक बुनकरोंको सहारा देंगे जो आज अपने श्रमके बदले पूरा पैसा नही पा रहे हैं। आप देशका कोई भी आर्थिक इतिहास पढ़िए, आपको यही ज्ञात होगा कि अधिकाश बुनकर रोजगारके अभावमें यह धंधा छोड़ चुके है। लेकिन ईश्वरकी कृपासे एक वर्गके रूपमे उनका अन्त नही हुआ है। क्या आप जानते हैं कि पंजाबमे अधिकाश बुनकर कसाई बन गये हैं या इससे भी बदतर धंधेमें लग गये हैं? बदतर इसलिए कहा कि कुछ बुनकर उन सैनिकोंमें भी शामिल हो गये हैं, जिन्होंने निर्दोष चीनियोंपर शघाईमें गोलियाँ बरसाई और टर्की तथा दुनियाके दूसरे भागोमें भी निर्दोष लोगोंपर गोलियोकी बौछार की। पंजाबके बुनकरोकी यह क्या हालत हो गई है? सिपाही बनना या कसाई बनना वैसे कुछ बुरा नही है। लेकिन बुनकरोंका अपना प्रतिष्ठाजनक पेशा छोड़कर दूसरे पेशे अपनाना बुरा है। इस पापकी जिम्मेदारी मुझपर और आपपर है। इसीलिए मैं आपसे कहता हूँ कि आपकी सच्ची अर्थ-नीति यही है कि आप खद्दर पहने। आप काते और कातते रहें। आप खद्दरको सस्ता बनानेके लिए कातें। इसे आप अनुशासनके रूपमें स्वीकार करें। यह आपको अपने-आपको पवित्र बनानेमें सहायता देगा। आधे घंटेतक चरखेके पास शान्तिसे बैठिये और फिर देखिए कि आपके हृदयमें कितना परिवर्तन हो गया है। मैं आपको ऐसे बहुतसे पुरुषो और स्त्रियोंके, अच्छे प्रशासकोंके उदाहरण दे सकता हूँ। इन प्रशासकोंमे

से एक[1] बम्बई कार्यकारिणी परिषद्के सदस्य थे। वे मेरी ही उम्रके व्यक्ति हैं। उन्होंने अभी कुछ ही महीने पहले कताई सीखी। उन्होंने कहा, "कताई करना शुरू करनेके बादसे मैं अनिद्रासे कुछ हदतक छुटकारा पा गया हूँ। पहले मैं दफ्तरसे बहुत थका-माँदा, कभी-कभी आधी रातको लौटता था और ऊँघते हुए ऐसी समस्याओंके बारेमें सोचता रहता था, जिनका खयाल मैं मनमें नहीं लाना चाहता था। अब मैं चरखेके पास बैठकर कातता हुआ सब समस्याएँ भूल जाता हूँ। [और उसके बाद जब सोने जाता हूँ तब] तत्काल आनन्ददायक नींद आ जाती है, बिलकुल बेफिक्रीकी नींद।" आप खुद आजमाकर देखिए कि यह क्या कर सकता है, क्या नहीं कर सकता।

आप कोई चटपटा कार्यक्रम चाहते हैं। ब्रह्मचारियोंके लिए वह रस वर्जित है। विद्यार्थी जीवनमें आपको तमाम चटपटी चीजोंसे दूर रहना चाहिए। जिन्दगीमें यह रस यों ही बहुत है। गृहस्थ बन जानेपर आपको वह सब अपने-आप मिल जायेगा। लेकिन अभी आपको उसकी जरूरत नहीं है। आज आपको चित्तकी शान्तिकी जरूरत है। आप 'गीता' के दूसरे अध्यायके अन्तिम २० श्लोक पढ़िए और साथ ही वर्ड्स्वर्थ द्वारा किया गया सिपाहीका वर्णन भी पढ़िए। दोनोंमें जो समान तत्त्व हैं, उन्हें देखनेकी कोशिश कीजिए। उनका चिन्तन करके देखिए, फिर आपको प्रश्न पूछनेकी जरूरत ही नहीं रह जायेगी।

आशा है, अब मैंने आपके सभी प्रश्नोंके उत्तर दे दिये हैं। अगर और कुछ जानना चाहें तो मुझे लिखें। मैं अपनी दूसरी जिम्मेदारियोंका ध्यान रखते हुए आपको जल्दीसे-जल्दी जवाब दूँगा।

मैं आपके भीतर विश्वास पैदा नहीं कर सकता। यह ईश्वर ही कर सकता है। मैं तो सिर्फ समझानेकी ही कोशिश कर सकता हूँ, आपके लिए प्रार्थना ही कर सकता हूँ।

ईश्वर आपको वैसा बननेमें सहायता दे, जैसा आपको बनना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

कृष्णनाथ कालेज सेंटिनरी कमेमोरेशन वॉल्यूम

१. आशय सर प्रभाशंकर पट्टणीसे है; देखिए "टिप्पणियाँ", ९-८-१९२५ का उपशीर्षक "वासन्ती देवीका चरखा"।

१९. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

शुक्रवार, ७ अगस्त, १९२५

भाईश्री घनश्यामदासजी,

आपके पत्रका उत्तर[1] मैंने जमनालालजीके मार्फत भेजा था, वह मिला होगा। आपका लम्बा पत्र मुझे मिला था तब मैंने उसका सविस्तार उत्तर[2] भेज दिया था और उसकी निजकी रजिस्ट्री भी है। वह उत्तर सोलनमें भेजा गया था। कैसे गुम हो गया, मैं नहीं समझ सकता हूँ।

उसमें मैंने जो लिखा था उसकी तफसील यहाँ देता हूँ। आपने एक लाख का दान देशबन्धु स्मारकमें किया, उसकी स्तुति की और यथाशक्ति शीघ्रतासे देनेकी चेष्टा करनेकी प्रार्थना की।

पू० मालवीयजी और पू० लालाजीको मैं साथ नहीं दे सकता हूँ, उसका कारण बताया और मेरे उनके लिए पूज्यभावकी प्रतिज्ञा की। पं० मोतीलाल और स्वराज्य-दलको सहाय देता हूँ, क्योंकि उनके आदर्श कुछ-न-कुछ तो मेरेसे मिलते हैं। उसमें व्यक्तिगत सहायकी बात नहीं है।

और बातें तो बहुत-सी लिखी थीं, परन्तु इस समय वे सब मुझे याद भी नहीं हैं।

आप दोनोंका स्वास्थ्य अच्छा होगा। मेरे उपवासकी कथा आपने सुन ली होगी। मेरे इस खतके लिखनेसे ही आप समझ सकते हैं कि मेरी शक्ति बढ रही है। उम्मीद है थोड़े दिनोंमें मैं थोड़ा शारीरिक श्रम उठा सकूँगा।

मैं ता० १०को वर्धा पहुँचूँगा। वहाँ कुछ दस दिन रहनेको मिलेगा।

आपका,
मोहनदास

गांधीजीकी छत्रछायामें

[1] व [2]. उपलब्ध नहीं है।

२०. भेंट : समाचारपत्रोंके प्रतिनिधियोंसे

७ अगस्त, १९२५

मैं अभी-अभी सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जीके घरसे लौटा हूँ।[1] मैं तो उम्मीद कर रहा था कि अपने वादेके मुताबिक अगले शुक्रवारको मैं फिर उनके दर्शन करने जाऊँगा और वहाँ उनके साथ शिक्षाप्रद और आनन्दप्रद वार्तालापका सुख उठाऊँगा। इससे आप समझ सकते हैं कि जब मुझे इसके बजाय संवेदना प्रकट करनेके लिए वहाँ जाना पड़ा तो मैं वहाँ कितने भारी मनसे गया होऊँगा। वहाँ मुझे जिन स्त्रियोंको देखनेका मौका मिला, उनका दुःख असह्य था। लेकिन यह दुःख केवल उनका ही नहीं है। सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी अपने पीछे निजी कुटुम्बियोंकी अपेक्षा कहीं ज्यादा बड़ा परिवार छोड़ गये हैं और इस दुःखमें वे सब शरीक हैं। मैं आशा करता हूँ कि इस बातको सोचकर उनके शोक-संतप्त परिवारको शान्ति मिलेगी।

एक समय वे भारतके नहीं तो कमसे-कम बंगालके सबसे पूज्य व्यक्ति थे। सन् १९०१ में अपनी युवावस्थामें, मैं दक्षिण आफ्रिकासे आकर कांग्रेस अधिवेशनमें[2] शामिल हुआ था, उस समय मैंने अपनी आँखों देखा कि कांग्रेसकी कार्यवाहीपर उनका कितना प्रभाव था और किस प्रकार इस तपे-सधे सिपाहीके बिना कोई काम आगे नहीं बढ़ पाता था। वे आधुनिक भारतके निर्माताओंमें से एक थे और अगर कांग्रेसके एकमात्र नहीं तो अनेक जन्मदाताओंमें से एक तो थे ही। मुझे पूरा यकीन है कि जब यह सब संघर्ष समाप्त हो जायेगा और हमें हमारा स्वत्व प्राप्त हो जायेगा तब हमारे देशभाई उनकी सेवाओंको उतना ही याद करेंगे जितना आज भारतके हृदय-सम्राट् बने हुए किसी अन्य देशभक्तकी सेवाओंको याद करेंगे। सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी अपने समयकी सबसे बड़ी विभूतियोंमें से थे — कोई भी किसी बातमें उनसे बढ़कर नहीं था, और मैं जानता हूँ कि यद्यपि बादमें देशका उनसे मतभेद हो गया था और कुछ मतभेद तो बुनियादी प्रश्नोंपर थे, फिर भी यह देश सदा उनका कृतज्ञ रहेगा और कुछ-एक वर्ष नहीं, बल्कि एक पीढ़ीसे अधिक कालतक भारतकी सेवा करनेवाले इस देशभक्तकी स्मृति अपने मनमें सदा सँजोये रहेगा। उन्होंने देश-सेवाका कार्य तब शुरू किया जब हममें से बहुत-से लोगोंका जन्म भी नहीं हुआ था और तबसे निरन्तर वे इस कार्यमें लगे रहे।

[अंग्रेजीसे]

फॉरवर्ड, ८-८-१९२५

१. गांधीजी उसी दिन सुबह सी० एफ० एन्ड्रयूज और जमनालाल बजाजके साथ सम्वेदना प्रकट करनेके लिए बैरकपुर गये थे।

२. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ २२९-३२।

२१. भाषण : इंडियन एसोसिएशन, जमशेदपुरमें[1]

[८ अगस्त, १९२५]

इस्पातके इस विशाल कारखानेमें आकर मुझे बहुत प्रसन्नता हो रही है। जब मैं १९१७ में चम्पारनके खेतिहरोंका काम करनेमें लगा हुआ था, तभीसे यहाँ आनेकी सोचता रहा हूँ। उसी समय मुझसे सर एडवर्ड गेटने कहा था कि आपको इस कारखानेको देखे बिना बिहारसे वापस नहीं जाना चाहिए। लेकिन मनुष्य तो इच्छा ही कर सकता है, उसका पूरा होना-न-होना ईश्वरकी मर्जीपर है, और तब ईश्वरको यह मंजूर नहीं था कि मैं इस कारखानेको देख सकूँ। मैंने कई बार इसे देखनेकी कोशिश की, लेकिन देख नहीं सका।[2]

जैसा कि आप जानते हैं, मैं खुद एक मजदूर हूँ। मैं अपने-आपको भंगी, बुनकर, कतैया, किसान आदि कहनेमें गौरवका अनुभव करता हूँ, और अगर इनमें से कुछ काम मुझे ठीक-ठीक नहीं आते तो उसके लिए मुझे लज्जाका अनुभव नहीं होता। मजदूरोंके साथ उनकी पंक्तिमें खड़े होनेमें मुझे बड़ा सुख मिलता है, क्योंकि श्रमके बिना हम कुछ नहीं कर सकते। एक लेटिन कहावत है, जिसका मतलब है, "श्रम करना प्रभुकी आराधना करना है," और यूरोपके एक बहुत अच्छे लेखकने कहा है कि श्रम किये बिना किसी भी व्यक्तिको खानेका अधिकार नहीं है, और श्रमसे उसका तात्पर्य मानसिक श्रम नहीं, बल्कि शारीरिक श्रम है। सम्पूर्ण हिन्दूधर्म ऐसे ही विचारसे ओतप्रोत है। 'भगवद्गीता' के एक श्लोकका शब्दार्थ है, "जो श्रम किये बिना खाता है, वह पाप खाता है, वह सचमुच चोर है।" इसलिए मुझे इस बातपर गर्व है कि मैं सारी दुनियाके श्रमिकोंके साथ अपनेको एकात्म कर सकता हूँ।

मेरी बड़ी इच्छा थी कि मैं भारतीय उद्यमसे खड़े किये गये इस उद्योगको — जो भारतका सबसे बड़ा नहीं तो सबसे बड़े उद्योगोंमें से एक तो है ही — देखूँ और यहाँ श्रमिकोंको जिन परिस्थितियोंमें काम करना होता है, उनका अध्ययन करूँ। लेकिन मेरी कोई भी प्रवृत्ति एकपक्षीय नहीं है, और चूँकि सत्य और अहिंसा ही मेरे धर्मका आदि और अन्त है, इसलिए जहाँ मैं श्रमिकोंके साथ तादात्म्यका अनुभव करता हूँ वहाँ पूँजीपतियोंके प्रति भी मैत्रीका भाव रखता हूँ और इसमें कोई असंगति नहीं देखता। सच मानिए कि अपने ३५ वर्षोंके जनसेवाके जीवनमें यद्यपि मुझे ऐसा रुख अख्तियार करना पड़ा है, जिससे मैं ऊपरसे देखनेमें पूँजीपतियोंके विरुद्ध खड़ा जान पड़ा हूँ, किन्तु अन्तमें पूँजीपतियोंने मुझे अपना सच्चा मित्र माना है। और मैं

१. शामको गांधीजीको एक प्रीति भोज दिया गया और वहाँ उन्होंने भारतीयों और यूरोपीयोंकी एक सभामें भाषण दिया था।

२. यह अनुच्छेद १४-८-१९२५ की अमृतबाजार पत्रिकामें छपी रिपोर्टसे लिया गया है।

बहुत नम्रतापूर्वक कहना चाहता हूँ कि यहाँ भी मैं पूँजीपतियोंके, टाटा-परिवारके, मित्रकी हैसियतसे ही आया हूँ। टाटा-परिवारके साथ मेरा सम्बन्ध कैसे शुरू हुआ, यहाँ अगर मैं इसके बारेमें आपको एक छोटा-सा वृत्तान्त न सुनाऊँ तो यह मेरी कृतघ्नता ही होगी। जब मैं दक्षिण आफ्रिकावासी भारतीयोंके साथ वहाँ भारतीयोंके आत्मसम्मानकी रक्षा करने और उचित दर्जा हासिल करनेके लिए संघर्ष कर रहा था तब जो सज्जन सबसे पहले हमारी सहायताके लिए आगे आये वे थे स्वर्गीय सर रतनजी टाटा। उन्होंने मुझे बहुत उदात्त भावोंसे भरा एक पत्र लिखा और राजसी उदारताके साथ २५,००० रुपयेका एक चेक भेजते हुए पत्रमें यह वादा किया कि अगर जरूरत हुई तो और भी भेजूँगा। तबसे टाटा-परिवारके साथ अपने सम्बन्धोंकी स्मृति मेरे मनमें बिलकुल ताजा बनी हुई है, और आप सहज ही समझ सकते हैं कि आज आपके बीच आकर मुझे कितनी खुशी हो रही है। कल जब मुझे आप लोगोंसे विदा लेनी होगी तब मैं भारी मनसे ही विदा लूँगा, क्योंकि मुझे बहुत सारी चीजें देखे बिना ही यहाँसे रवाना हो जाना पड़ेगा। अगर मैं ऐसा कहूँ कि मैंने दो ही दिनमें सचमुच सब-कुछ भली-भाँति देख लिया है तो यह मेरी धृष्टता ही होगी। मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि इस महान उद्योगका सांगोपाग अध्ययन कर पाना कितना भारी काम है।

इस महान् भारतीय पेढ़ीको योग्य समृद्धि प्राप्त हो और यह महान उद्यम हर तरहसे सफल हो, यही मेरी कामना है। क्या मैं यह आशा भी करूँ कि इस महान् परिवार और इसकी देखरेखमें काम करनेवाले मजदूरोंके आपसी सम्बन्ध अधिकसे-अधिक सौहार्दपूर्ण होंगे? अहमदाबादमें पूँजीपतियों और मजदूरोंसे मेरा सम्बन्ध बराबर आता रहा है और मैंने बराबर कहा है कि पूँजीपति और मजदूर एक दूसरेके पूरक, एक दूसरेके सहायक बनें, यही मेरा आदर्श है। उन्हें एक बड़ परिवारकी तरह एकता और मेलजोलसे रहना चाहिए — पूँजीपति लोग सिर्फ मजदूरोंके भौतिक हितसाधनका ही खयाल न रखें, बल्कि उनके नैतिक उत्थानकी भी फिक्र करें, क्योंकि पूँजीपति लोग अपने अधीन काम करनेवाले मजदूरोंके हितोंके संरक्षक हैं।

मुझको बताया गया है कि यद्यपि यहाँ बहुत-से यूरोपीय और भारतीय रहते हैं, फिर भी उनके पारस्परिक सम्बन्ध बहुत मीठे हैं। मुझे उम्मीद है कि यह बात शब्दशः सच है। इस महान् उद्यमसे सम्बद्ध होना आप दोनोंके लिए सौभाग्यकी बात हैं, और आप चाहें तो भारतके सामने पारस्परिक मेलजोल और सद्भावनाका वस्तु-पाठ प्रस्तुत कर सकते हैं। आशा है, आप परस्पर एक-दूसरेसे अच्छसे-अच्छे सम्बन्ध रखेंगे — और वह सिर्फ इस विशाल कारखानके भीतर ही नहीं, बल्कि इसके बाहर भी। मुझे उम्मीद है कि इस कारखानेसे बाहर भी आप एक-दूसरेसे वैसा ही सौहार्दपूर्ण व्यवहार करेंगे और आप दोनों इस बातको समझेंगे कि आप यहाँ आपसमें भाई-भाई और बहन-बहनकी तरह रहने और काम करनेके लिए आये हैं — कोई भी दूसरेको छोटा अथवा अपनेको बड़ा नही मानेगा। अगर आपने इतना कर लिया तो इसका मतलब यह होगा, आपने छोटे पैमानेपर स्वराज्य प्राप्त कर लिया।

मैंने कहा है कि मैं 'नॉन-कोऑपरेटर' (असहयोगी) हूँ। मैं अपनेको 'सिविल रेजिस्टर' (सविनय अवज्ञा करनेवाला) कहता हूँ। दूसरे अनेक अंग्रेजी शब्दोंकी तरह अंग्रेजी भाषामें ये शब्द भी किंचित् बदनाम हो गये हैं। लेकिन मैं असहयोग इसलिए करता हूँ कि सहयोग कर सकूँ। झूठे सहयोगसे मुझे सन्तोष नही हो सकता — मैं तो शुद्ध, सच्चे, पूरे २४ केरेटके सोनेसे ही सन्तुष्ट हो सकता हूँ। मेरा असहयोग मुझे सर माइकेल ओ'डायर और जनरल डायरसे भी सौहार्द रखनेसे नहीं रोकता। यह किसीका अपकार नही करता; यह असहयोग बुराई करनेवालोंके साथ नही, बल्कि बुराईके साथ, एक बुरी प्रणालीके साथ है। मेरे धर्मका आदेश है कि बुराई करनेवालेसे भी प्रेम करो। मेरा असहयोग मेरे इसी धर्मका एक अंश-भर है। मैं ये बातें किसीके कानोंको सुख पहुँचानेके लिए नही कह रहा हूँ। मैंने जीवनमें कभी भी यह पाप नही किया है कि जो बात हृदयसे न चाहूँ, वह मुँहसे कहूँ। मेरा स्वभाव तो सीधे हृदयके द्वारमें प्रवेश करना है, और यदि अकसर मैं तत्काल ऐसा करनेमें असफल हो जाता हूँ तो भी मैं जानता हूँ कि अन्ततः लोग सत्यको सुनेंगे ही, उसका अनुभव करेंगे ही। मेरा अतीतका अनुभव ऐसा ही रहा है। इसलिए मेरी यह कामना है कि आपके सम्बन्ध अधिकसे-अधिक सौहार्दमय हों, यह मेरे हृदयकी गहराईसे निकली हुई इच्छा है। प्रभुसे मेरी हार्दिक प्रार्थना है कि आप भारतको बुराई और बन्धनसे छुटकारा दिलानेमें सहायक हों और उसे बाहरी दुनियाको शान्तिका सन्देश देने योग्य बनायें। कारण भारतीयों और भारतमें रहनेवाले यूरोपीयोंकी इस सभाका कोई विशेष हेतु, कोई विशेष प्रयोजन होना ही चाहिए; अगर अभीतक नही था तो आप ऐसा कुछ करें जिससे इसका एक विशेष हेतु, एक विशेष प्रयोजन बन जाये। वह हेतु इससे अच्छा और क्या हो सकता है कि हम दोनों संसारमें शान्ति और सद्भावनाका प्रसार करनेके लिए मिल-जुलकर रह सकें? ईश्वर करे, टाटा कम्पनीकी सेवा करनेमें आप भारतकी भी सेवा करें और आपको बराबर इस बातका एहसास रहे कि आप यहाँ सिर्फ एक औद्योगिक पेढ़ीके लिए काम करनेकी अपेक्षा किसी बड़े मकसदको लेकर आये हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २०-८-१९२५

२२. अहिंसाकी समस्या

ऐसे प्रश्न मुझसे बराबर पूछे जाते हैं कि हमारे कार्यका स्वरूप कब क्या करनेसे अहिंसाका और कब क्या करनेसे हिंसाका हो जाता है। कुछ सवाल तो ऐसे होते हैं, जिनसे पूछनेवालेका अज्ञान ही प्रकट होता है, लेकिन कुछ ऐसे भी होते हैं जिनसे प्रश्नकर्त्ताकी भारी कठिनाईका भी परिचय मिलता है। एक पंजाबी भाईने प्रश्न पूछा है जिसका उत्तर यहाँ देने योग्य है। प्रश्न इस प्रकार है:

> **शेर, भेड़िये आदि आकर पशु और मनुष्यको उठा ले जायें तो क्या करें? अगर पानीमें कीटाणु आदि हों तो क्या करें?**

मेरी अल्पमतिके अनुसार इसका साधारण उत्तर तो यही है कि जब शेर, भेड़िये आदिका उपद्रव हो तो उनका नाश करना अनिवार्य है। पानीमें मौजूद कीटाणुओंका नाश करना भी अनिवार्य है। लेकिन अनिवार्य हिंसा भी हिंसाके बजाय अहिंसा नहीं कही जा सकती; हिंसा तो हिंसा ही बनी रहेगी। यदि कोई शेर-भेडियेका नाश किये बिना अपना काम चला ले तो मैं बेखटके कहूँगा कि यह उत्तम है। पर यह कौन कर सकता है? वही जो शेर-भेड़ियेसे डरता नहीं है, बल्कि मित्रकी तरह उनसे मिल सकता है। जो डरके मारे हिंसा नहीं करता वह तो हिंसा कर ही चुका। बिल्लीके साथ चूहेका व्यवहार अहिंसाका व्यवहार नहीं है। उसका मन तो निरन्तर बिल्लीके साथ हिंसा करता रहता है। निर्बल होनेके कारण वह बिल्लीको मार नहीं सकता। हिंसा करनेकी पूरी सामर्थ्य रखते हुए भी जो हिंसा नहीं करता, वही अहिंसाके धर्मका पालन करनेकी शक्तिसे सम्पन्न है। जो मनुष्य स्वेच्छा और प्रेमभावसे ही प्रेरित होकर किसीकी हिंसा नहीं करता, वही अहिंसाधर्मका पालन करता है। अहिंसाका अर्थ है प्रेम, दया, क्षमा। शास्त्रोंने उसे वीरोंका गुण बताया है। यह वीरता शरीरकी नहीं, बल्कि हृदयकी है। क्षीणकाय व्यक्ति भी दूसरोंकी मददसे घोर हिंसा करते हुए देखे गये हैं। और युधिष्ठिरके समान शरीरसे बलवान लोग भी राजा विराट-जैसोंको क्षमा प्रदान करते हुए देखे गये हैं। मतलब यह है कि जबतक हृदयका बल प्राप्त नहीं हुआ, तबतक किसीने अहिंसाधर्मका पालन किया, ऐसा माना ही नहीं जा सकता। आजकलकी वणिक अहिंसा अहिंसा नहीं। इसमें तो प्रायः घोर निर्दयता दिखाई देती है; और अज्ञान तो इसमें है ही।

मैं जानता हूँ कि हममें यह दुर्बलता है। इसीलिए मैंने खेड़ामें महायुद्धके समय सिपाहियोंकी भरती करनेका भारी प्रयत्न किया था[1], और इसीसे मैंने उस समय कहा था कि ब्रिटिश हुकूमतने जो अनेक जघन्य कृत्य किये हैं उनमें उसका एक सबसे जघन्य कृत्य यह है कि उसने यहाँकी जनताको निःशस्त्र करके निर्वीर्य बना दिया है। आज भी मेरा वही दृष्टिकोण है। जिस किसीके मनमें भय हो वह यदि

१. १९१८ में; देखिए खण्ड १४।

निःशस्त्र रहकर अपने भयको दूर नहीं कर सकता तो वह अवश्य लाठी या उससे भी अधिक प्रभावकारी शस्त्रका अवलम्बन करे।

अहिंसा एक महाव्रत है। यह तलवारकी धारपर चलनेसे भी अधिक कठिन है। देहधारीके लिए उसका सोलहों आने पालन करना असम्भव ही माना जायेगा। उसके पालनके लिए घोर तपश्चर्याकी आवश्यकता है। तपश्चर्याका अर्थ है — त्याग और ज्ञान। जिसे जमीनके स्वामित्वका मोह है, वह अहिंसाका पालन नहीं कर सकता। किसानके लिए अपनी जमीनकी रक्षा किये बिना कोई चारा नहीं है। उसे जंगली जानवरोंसे उसकी रक्षा करनी ही पड़ेगी। जो किसान जानवरों अथवा चोर आदिको दण्ड देनेके लिए तैयार न हो, उसे हमेशा अपना खेत छोड़ देनेके लिए तैयार रहना पड़ेगा।

अहिंसाधर्मका पालन करनेके लिए मनुष्यको शास्त्र तथा रीति-रिवाजकी मर्यादाका पालन करना चाहिए। शास्त्र हिंसाकी आज्ञा नहीं देता; परन्तु प्रसंग-विशेषपर हिंसा-विशेषको अनिवार्य मानकर वह उसकी छूट अवश्य देता है। जैसा कि कहते हैं, 'मनुस्मृति'में अमुक प्राणियोंके वधकी अनुमति दी गई है। यह वध करनेकी आज्ञा नहीं है। उसके बाद चिन्तनमें और प्रगति हुई और तब यह तय हुआ कि कलिकालमें वह अपवाद न रहे। इसीलिए वर्तमान रिवाज अमुक हिंसाको क्षम्य मानता है और 'मनुस्मृति'में जिन प्रसंगोंपर हिंसाकी अनुमति दी गई है, उन्हींमें से कई प्रसंगोंपर हिंसा करनेपर प्रतिबन्ध है। कुछ छूट शास्त्रोंने दे रखी है; उससे आगे बढ़नेकी दलील स्पष्टतः गलत है। संयममें धर्म है, स्वच्छन्दतामें अधर्म। जो मनुष्य शास्त्रकी दी हुई छूटसे लाभ नहीं उठाता, वह धन्यवादका पात्र है। संयमकी कोई सीमा नहीं है, इसलिए अहिंसाकी भी कोई सीमा नहीं है। संयमका स्वागत दुनियाके तमाम शास्त्र करते हैं। स्वच्छन्दताके विषयमें शास्त्रोंमें भारी मतभेद है। समकोण सब जगह एक ही प्रकारका होता है। दूसरे कोण अगणित हैं। अहिंसा और सत्य समस्त धर्मोंके समकोण हैं। जो आचार इस कसौटीपर खरा न उतरे वह त्याज्य है। इसमें कोई भी शंका नहीं कर सकता। अधूरे आचारकी इजाजत चाहे हो, किन्तु अहिंसा-धर्म पालन करनेवालेको तो निरन्तर जागरूक रहकर अपने हृदय-बलको बढ़ाते और प्राप्त छूटोंके क्षेत्रको संकुचित करते ही जाना चाहिए। भोगमें धर्म है ही नहीं। संसारका ज्ञानपूर्वक त्याग ही मोक्षप्राप्ति है। संसारका पूर्ण त्याग हिमालयके शिखरपर चले जानेमें भी नहीं है। हृदयकी गुफा सच्ची गुफा है; उसमें छिपकर और सुरक्षित रहता हुआ मनुष्य संसारमें रहते हुए भी उससे निर्लिप्त रहकर अनिवार्य प्रवृत्तियोंमें भाग लेते हुए विचरण कर सकता है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ९-८-१९२५

२३. लोकमान्यकी पुण्यतिथि

लोकमान्यकी पुण्य-तिथि आई और चली गई; यहाँ कलकत्तामें भी यह तिथि मनाई गई। मुझे भी सम्बन्धित सभाओंमें जाना था। दो जगह सभाएँ हुईं; लोग मुझे दोनोंमें ले गये। मैं उनमें क्या बोलता?

पुत्र पिताकी पुण्यतिथिपर क्या करता है? यदि वह सपूत हुआ तो अपने पिताके गुणोंका बखान नहीं करता, बल्कि उसके पिता जो चाहते थे, ऐसा कोई काम करता है। आजकलकी सभाओंमें भी हम अपने स्वर्गवासी नेताओंके पुत्र आदिको भाषण देनेके लिए निमंत्रित नहीं करते। उसमें उन्हें और हमें दोनोंको संकोचका अनुभव होता है। दो नेताओंकी पुण्य-तिथियाँ एकके बाद एक पास ही पास आई थीं—पहले अब्दुल रसूलकी और बादमें लोकमान्यकी। पहली सभामें मैंने मौलाना अब्दुल रसूलके दामादको देखा। उनसे किसीने भाषण करनेको नहीं कहा; यह काम दूसरोंका माना गया। इसका अर्थ यह हुआ कि हम दिवंगत नेताओंके सगे-सम्बन्धियोंसे अलग हैं, इतने अलग जितने कि अँगुलियोंसे नख। लेकिन वास्तवमें ऐसा होना नहीं चाहिए। यदि पुत्र भाटकी नाईं अपने पिताका गुणगान नहीं कर सकता तो हमें भी नहीं करना चाहिए।

इसलिए मैंने तो यह निश्चय कर लिया था कि मैं दिवंगत नेताओंका गुणगान नहीं करूँगा। लोकमान्यकी पुण्य-तिथिपर मैं बहुत पशोपेशमें पड़ गया। अभी कल ही तो इसी भवनमें मैं चरखेकी चर्चा कर गया हूँ। आज फिर क्यों मैं वही करूँ? मेरे अन्तर्मनसे मुझे उत्तर मिला, 'निन्दा, उपहास या मारके डरसे भागकर तू कहाँ जायेगा? तू तो सत्यका आग्रह लेकर बैठा है। जो तुझे सत्य लगता है वह यदि जगत्‌को असत्य लगे तो भी क्या? उस सत्यको कहना और उसका पालन करना ही तेरा धर्म है।' अतः मैंने तो फिर वे ही बातें कहीं।

"स्वराज्य मेरा जन्म-सिद्ध अधिकार है", यह श्लोकार्धं जनताको तिलक महाराजने दिया। इसके उत्तरार्धको लिखनेका काम जनतापर छोड़कर वे स्वर्ग सिधार गये। जनताने उनकी इस सूक्तिके उत्तरार्धको पूरा किया। वह यह कि "चरखा और खादी उस अधिकारको प्राप्त करनेके साधन हैं।" स्वराज्य शिक्षित वर्गके लिए ही नहीं है, हिन्दू अथवा मुसलमानोंके लिए नहीं है, सिर्फ धनवानोंके लिए भी नहीं है, लोकमान्यका स्वराज्य तो हिन्दू, मुसलमान, सिख, पारसी, ईसाई आदि सबके लिए है। यह जिस तरह शिक्षित लोगोंके लिए है, उसी तरह अशिक्षित लोगोंके लिए भी है; जैसे पुरुषोंके लिए है, वैसे ही स्त्रियोंके लिए भी है; जिस प्रकार शहरी लोगोंके लिए है, उसी प्रकार देहातियोंके लिए भी है। फिर, यह स्वराज्य ऐसा है, जिसको प्राप्त करनेमें सभी लगभग एक समान मेहनत कर सकते हैं। एक ही जाति अथवा एक ही वर्गके प्रयत्नोंसे मिलनेवाला स्वराज्य, स्वराज्य नहीं बल्कि उस जाति अथवा वर्गका राज्य होगा। तब वह कौन-सी मेहनत है, जो सब कर सकते हैं और जिसे

करनेमें सबकी शक्ति बढ़ सकती है? ऐसी मेहनत है कताई। कताईके बिना कपड़ा तैयार नहीं होगा और कपड़ा नहीं होगा तो जिस साठ करोड़ रुपयेका कपड़ा विदेशसे आता है, वह रुपया हम नहीं बचा सकेंगे। इसके अतिरिक्त, यह रुपया बचा लेना ही हमारे लिए बस नहीं है। यह रुपया हमें हिन्दुस्तानके करोड़ों लोगोंमें बाँटना चाहिए।

ऐसा करनेकी एकमात्र युक्ति चरखा है। ऐसे सार्वजनीन और फलप्रद श्रमसे हम विदेशी कपड़ेका बहिष्कार कर सकते हैं, और ऐसा करनेसे हमारी शक्ति इतनी बढ़ सकती है कि उसके बलपर हम स्वराज्य पा भी सकते हैं और उसे सुरक्षित भी रख सकते हैं। अतः, मैंने कहा, यदि लोग यहाँ लोकमान्यको सम्मान देनेके लिए आये हों तो उन्हें चाहिये कि वे विदेशी कपड़ेका सर्वथा त्याग कर दें और केवल खादी ही पहनें तथा कमसे-कम आधा घंटा रोजाना कातें।

प्रह्लादको सोते-बैठते, खेलते-खाते राम-नामकी ही रट लगी हुई थी। यहाँ तक कि तपते हुए लाल लोहेके खम्भेसे बाँध दिये जानेपर भी वह राम-नाम ही पुकारता रहा। इसके अतिरिक्त बेचारा कर ही क्या सकता था? खादी और चरखेके सम्बन्धमें मेरी ऐसी ही स्थिति है। मुझे कोई बाँधकर मारे तो भी मैं स्वराज्य-प्राप्तिके श्रेष्ठ साधनके रूपमें चरखे और खादीकी ही पुकार करूँगा। जिस प्रकार सूर्यके बिना सौरमण्डलका कोई अर्थ नहीं, जिस प्रकार सेनापतिके बिना सेना शवके समान होती है, जिस प्रकार राम-नामके बिना सारे कार्य निरर्थक हैं, उसी प्रकार चरखेके बिना स्वराज्यकी सभी प्रवृत्तियाँ मिथ्या हैं।

[गुजरातीसे]
नवजीवन, ९-८-१९२५

२४. सभापतियोंसे

न्यायाधीशको कम बोलना होता है। उसका काम तो दूसरोंके अच्छे-बुरे, सरस-नीरस भाषण सुनना है। इसीलिए कोई न्यायाधीश अपने आगे पड़े कागजोंपर मनमानी लकीरें खींचकर उन्हें बिगाड़ता रहता है, कोई उनपर चित्र बनाता है तो कोई पास पड़ी डोरीको हाथमें लेकर खेलता रहता है। सभापतिकी स्थिति भी न्यायाधीश जैसी ही दयनीय होती है।

मौलवी अब्दुल रसूलकी पुण्य-तिथिपर मुझे सभापति-पदका सम्मान दिया गया था। मौलवी अब्दुल रसूलको मैं व्यक्तिगत रूपसे नहीं जानता था, पर पूछनेपर मुझे बताया गया कि वे विद्वान् बैरिस्टर होनेपर भी निरभिमानी और स्वराज्यके पूरे समर्थक थे तथा अपनी स्वतन्त्रता और स्वाभिमानकी रक्षाके प्रति सतत सजग रहते थे। वे हिन्दू-मुस्लिम एकताको धर्म मानते थे तथा स्वदेशी के पुजारी थे।

ऐसे व्यक्तिकी पुण्य-तिथि मनानेके लिए की गई सभाके सभापति-पदका निर्वाह शोभनीय ढंगसे सम्पन्न करनेके लिए मैं क्या करूँ — यह सवाल था। मेरी किस्मतकी

हिस्सेदार, मेरी शान्तिकी देवी, हिन्दुस्तानके दुखियोंकी सहारा मेरी तकली तो सदैव मेरे पास रहती ही है। मेरी असावधानीसे कहीं किसी दिन वह छूट न जाये, इस भयसे अब मैं उसे चश्मेके साथ एक ही खोलमें रखता हूँ या अगर ठीक-ठीक कहूँ तो मैं चश्मेको ही तकलीवाले खोलमें रखता हूँ। चश्मा तो मैं भूल नहीं सकता, इसलिए तकली भी नहीं भूलता। मैंने तो तकली निकालकर कातना शुरू कर दिया। भाषण सरस हो या नहीं, इसकी मुझे अब चिन्ता नहीं रही, मैंने मौलाना रसूलकी प्रिय वस्तु स्वदेशीका पदार्थपाठ देना शुरू कर दिया। जैसे-जैसे वक्ताओंके भाषण समाप्त होते गये, मेरी पूनियाँ भी खुटने लगी। सभाको दुहरा लाभ हुआ — एक तो वक्ताओंके मुँहके वचन कानोंसे सुननेका लाभ और दूसरा मेरे हाथोंके वचन आँखोंसे देखनेका लाभ।

सभाकी समाप्तिके समय भी मुझे कहनेको क्या रहा था? मेरा सच्चा भाषण तो वह क्रियात्मक भाषण ही था। इसलिए अपने उस क्रियात्मक भाषणका मर्म समझाने-के तौरपर मैंने चरखेपर भाषण दिया। मौलाना रसूलको स्वदेशी प्रिय तो थी पर स्वदेशीके सच्चे अर्थको उन्होंने पूरा-पूरा नहीं समझा था। बाजे अथवा घड़ीके सब पुर्जे विदेशसे मँगाकर उन्हें यहाँ सिर्फ जोड़ देनेको ही हम अभीतक स्वदेशी बाजा अथवा घड़ी समझते थे। अब तो हम यह जानते हैं कि शक्य और व्यापक स्वदेशीका अर्थ है हाथसे कते सूतकी हाथसे बुनी खादी। यही मेरे हाथों द्वारा दिये भाषणका भाष्य है।

सभी सभापतियोंको तो यह दुहरा लाभ नहीं मिल सकता, लेकिन जिनके मनमें तकलीके प्रति तिरस्कारकी भावना न हो, उन्हें मेरा सुझाव है कि यदि वे अपनी गद्दी अथवा कुर्सीपर बैठे-बैठे काता करें तो उनका समय भी शान्तिसे बीत जायेगा और साथ ही उन्हें हिन्दुस्तानकी सम्पदामें थोड़ी-बहुत अभिवृद्धि करनेका श्रेय भी मिलेगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ९-८-१९२५

२५. टिप्पणियाँ

बासन्ती देवीका चरखा

श्रीमती बासन्ती देवीके दर्शनका लाभ मैं बराबर लेता हूँ। परन्तु अभीतक मैं उनको रोज घूमने निकलनेके लिए राजी नहीं कर पाया हूँ। उनके साहसका कोई अन्त नहीं है। लेकिन मनकी व्याकुलता तो नहीं जा सकती। वे किसी भी काममें रस नहीं ले पातीं। वे जब तब बहुत रात बीते श्मशान भूमि जाया करती हैं। लेकिन इससे दुःखको भुलानेमें तो कोई मदद नहीं मिलती, उलटे वह बढ़ता ही है। उनका मन एक ही चीजमें रमता है। वे दो घंटेतक चरखा चलाती हैं और यह काम उन्हें अच्छा लगता है। यूरोपके प्रख्यात कवि गेटेने अपने प्रसिद्ध नाटक 'फॉस्ट' की नायिकाके हाथमें चरखा देकर मधुरतम गीत गवाया है। अपने एक सार्वजनिक भाषणमें सर प्रभाशंकर पट्टणीने भी उनपर चरखेका जो असर हुआ, उसका हाल सुनाया था।

इस प्रसंगमें यह बात याद रखने योग्य है कि उन्हें रातमें नींद बहुत मुश्किलसे आती है। इसलिए वे आधी रातमें भी चरखा चलाते हैं। इससे दिनचर्यासे उत्पन्न उनकी अनेक प्रकारकी मानसिक व्यथाएँ शान्त हो जाती हैं, और फिर वे शान्तिसे सो पाते हैं। इस प्रकार चरखा राजनीतिज्ञ, वियोगी और विधवाको राहत दे सकता है।

महागुजरातमें खादी प्रचार

गुजरात खादी मण्डलने महागुजरातमें खादी-प्रचारसे सम्बन्धित जो कुछ आँकड़े प्रकाशित किये हैं, उनसे पता चलता है कि गुजरातमें तीस संस्थाएँ खादीका काम करती हैं। इनमें से १६ संस्थाओंने पिछले १२ महीनोंमें अपने काते सूतसे अथवा बाजारसे खरीदे हाथ-कते सूतसे २६,४०० वर्ग गजसे अधिक खादी तैयार की। इस बीच ३,८५,७६१ रुपये, १ आना और ३ पाईकी खादी बिकी। इसमें से व्यवस्था-खर्च आदि काटकर शुद्ध बिक्री कुछ कम आती है। इसमें बाहरसे, जैसे कि आन्ध्रसे, आई खादी भी शामिल है।

खादीका यह उत्पादन महागुजरातका कुल खादी-उत्पादन नहीं माना जा सकता। उदाहरणके लिए कच्छ और काठियावाड़में जिन कई जगहोंमें चरखा कभी बन्द नहीं हुआ वहाँ तो खादी बुनी ही जाती रही है। फिर भी हमें जितना करना है, उसकी दृष्टिसे उपर्युक्त उत्पादन नगण्य माना जायेगा।

इन आँकड़ोंके अतिरिक्त नीचे लिखी बातोंके सम्बन्धमें सूचना देना भी उचित है — जैसे चरखोंकी संख्या, हाथ-कते सूतसे बुननेवालोंकी संख्या, उनमें से कितने लोगोंने इस आन्दोलनके कारण बुनाई शुरू की और कितने ऐसे हैं जिन्होंने बुनाई नई-नई सीखी है, उनमें अन्त्यज माने जानेवाले कितने हैं और वे प्रतिमास कितनी कमाई करते हैं आदि। हमें यह जानकारी भी चाहिए कि कितने चरखे मजदूरीके लिए चलाये जाते हैं और कितने यज्ञार्थ। बाहरसे कितने पैसेकी खादी आई? इन संस्थाओंमें कितने स्वयंसेवक काम करते हैं और उनमें से कितने वेतनपर काम करते हैं तथा कितने बिना वेतनके? उनका औसत वेतन क्या है और एक व्यक्तिको अधिकसे-अधिक तथा कमसे-कम कितना वेतन दिया जाता है?

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ९-८-१९२५

२६. भाषण: जमशेदपुरकी सार्वजनिक सभामें[1]

९ अगस्त, १९२५

मानपत्रका उत्तर हिन्दीमें[2] देते हुए महात्मा गांधीने घोषित किया कि एक बैठकमें, जिसमें स्टील कम्पनीके संचालक-मंडलके अध्यक्ष श्री आर० डी० टाटा, श्री एन्ड्रयूज, श्री जवाहरलाल नेहरूके साथ-साथ में भी उपस्थित था, श्री टाटाने श्रमिक संघको, जिसमें यथाविधि निर्वाचित पदाधिकारी होंगे, मान्यता देनेकी रजामन्दी जाहिर की है और यह भी स्वीकार किया है कि कम्पनी इस श्रमिक संघके सदस्योंके वेतनसे चन्देकी रकम काट लिया करेगी। उन्होंने यह भी मंजूर किया कि समझौता और सद्‌भावनाके प्रतीकके रूपमें श्री जी० सेठीको, जिन्हें कम्पनीने बरखास्त कर दिया है और श्री टामसको, जो तबसे श्रमिक संघके अवैतनिक मन्त्रीके रूपमें काम कर रहे हैं, कम्पनी फिरसे नौकरी देगी। अलबत्ता इसके लिए संचालक-मंडलकी स्वीकृतिकी अपेक्षा रहेगी।

श्री गांधीने यह आशा व्यक्त की कि श्रमिक संघ अपनी शक्ति मुख्य रूपसे श्रमिकोंके कल्याणमें लगायेगा और जो रियायतें दी गई हैं, उनसे कम्पनी तथा उसके हजारों कर्मचारियोंके बीचका मतभेद समाप्त हो जायेगा।

इसके बाद श्री गांधीने श्रोताओंसे आग्रह किया कि आप लोग उन दो बड़ी बुराइयोंसे दूर रहें जो सारे भारतके मजदूर वर्गोंमें बुरी तरह घर कर गई हैं। ये बुराइयाँ आप लोगोंको खोखला बनाती जा रही हैं। उन्होंने आगे कहा:

जबतक आप मद्यपान बन्द नहीं करेंगे और सभी स्त्रियोंको अपनी माँ-बहनके समान नहीं समझने लगेंगे तबतक आप स्वराज्य नहीं प्राप्त कर सकेंगे।

[अंग्रेजीसे]

सर्चलाइट, १४-८-१९२५

१. लगभग २० हजार लोगोंकी इस आम सभामें गांधीजीको हिन्दीमें एक मानपत्र और ५००० रुपयेकी थैली भेंट की गई थी, जिसका उत्तर देते हुए उन्होंने यह भाषण दिया था।

२. मूल हिन्दी भाषण उपलब्ध नहीं है।

२७. पत्र : वसुमती पण्डितको

श्रावण बदी ७ [१० अगस्त, १९२५][1]

चि० वसुमती,

तुम्हारा पत्र मिला। तुमने बहुत साफ-सुथरे अक्षर लिखे हैं। मैं हमेशा ऐसा ही चाहता हूँ। तुम दोनोंको जानकर प्रसन्नता होगी कि मेरा वजन लगभग आठ स्टोन, अर्थात् ११२ पौंड, हो गया है। यह जूहूमें १०६ या १०८ तक पहुँच चुका था। वजन जमशेदपुर अस्पतालमें लिया था।

दादाभाईकी शतवार्षिकी ४ सितम्बरको आ रही है। उस समय मैं बम्बई आनेवाला हूँ।[2] इसलिए अब दो-चार दिन आश्रममें बिता सकूँगा। मुझे १२ वीं तारीखको बिहार पहुँच जाना चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ५९११) की फोटो-नकल और एस० एन० ९३४६ से।
सौजन्य : वसुमती पण्डित

२८. सम्मति : दर्शक-पुस्तिकामें

[कलकत्ता]
१२ अगस्त, १९२५

मुझे 'वसुमती' के कार्यालयोंमें ले जाया गया। इसके साज-सामानको देखकर मुझे खुशी हुई। मैं कार्यालय मालिकको उनकी सुरुचिके परिचायक कुछ सुन्दर और सस्ते प्रकाशनोंके लिए बधाई देता हूँ।

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

प्रति (सी० डब्ल्यू० ५९९२) की फोटो-नकलसे।

१. दादा भाईकी शतवार्षिकीके उल्लेखसे लगता है कि यह पत्र १९२५ में लिखा गया था। उस वर्ष श्रावण वदी सप्तमी, १० अगस्तको पड़ी थी।

२. गांधीजीने ४ सितम्बर, १९२५ को बम्बईमें हुई दादाभाई-शतवार्षिकी सभाकी अध्यक्षता की थी।

२९. भाषण : यंग मैन्स क्रिश्चियन एसोसिएशनमें[1]

[कलकत्ता
१२ अगस्त, १९२५]

अपने भाषणमें महात्माजीने नौजवान ईसाइयोंसे कहा कि आप लोग स्वर्गीय माइकेल मधुसूदन दत्त, कालीचरण बनर्जी और सुशील कुमार रुद्रके शानदार उदाहरणोंका अनुकरण करें और अपनी मातृभाषा तथा राष्ट्रीय तौर-तरीकोंके प्रति उनकी तरह अपने मनमें गहरा अनुराग पैदा करें। जिस धर्मका आप लोगोंने परित्याग कर दिया है उसके प्रति और फिर जिस धर्मको आपने अपनाया है उसके प्रति भी अपने कर्त्तव्यका पालन करनेमें आप इनके उदाहरणोंका अनुकरण करें। उन्होंने उनसे अपीलकी कि आप लोग अपने-आपको शेष समाजसे बिलकुल अलग न कर लें, बल्कि करोड़ों लोगोंकी इच्छाओं और आकांक्षाओंको समझनेकी कोशिश करें, जनसाधारण तथा मानवजातिकी कठिन सामाजिक समस्याओंको समझने और उनको हल करनेका प्रयास करें। आप लोग अपने-आपको गाँवोंके लिए तैयार करें। गाँवोंकी आवश्यकताओंको, उनकी बुनियादी आवश्यकताओंको समझिए और उन्हें पूरा कीजिए।[2]

[अंग्रेजीसे]
फॉरवर्ड, १३-८-१९२५

३०. बंग-केसरी

सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जीके देहावसानसे भारतके राजनीतिक जीवनसे एक ऐसा व्यक्ति उठ गया, जिसने इसपर अपने व्यक्तित्वकी गहरी छाप डाली है। यह सही है कि इधर हालके वर्षोंमें जब हमारे बीच नये आदर्शों और नई आशाओंकी लहर उठी तब वे पर्देके पीछे चले गये; लेकिन इससे क्या अन्तर पड़ता है? हमारा वर्तमान आखिर हमारे अतीतका ही फल है। आज हमारे सामने जो आदर्श हैं, हमारी जो आकांक्षाएँ हैं, वे उन लोगोंके अमूल्य कार्यके बिना असम्भव होतीं, जिन्होंने सबसे आगे बढ़कर हमारे

१. यह भाषण गांधीजीने 'भारतीय ईसाई नवयुवकोंके कर्तव्य' पर वाई० एम० सी० ए० की चौरंगी स्थित शाखामें दिया था। सभा रातके साढ़े नौ बजे हुई थी और इसमें उपस्थित लोगोंमें मुख्य रूपसे यूरोपीय थे।

२. गांधीजी द्वारा भाषण समाप्त करनेपर उनसे कुछ प्रश्न पूछे गये। एक प्रश्न यह पूछा गया कि युवा भारतीयोंका युवा यूरोपीयोंके प्रति क्या कर्तव्य है। उन्होंने कहा कि वे यूरोपीयोंसे दोस्ती करें, मेल-जोल बढ़ायें; और फिर जब उनसे पूछा गया कि यह किस प्रकार करें तो उन्होंने परिहासके तौरपर कहा, "मुक्केबाजी प्रतियोगिताओंका आयोजन करके!"।

लिए रास्ता बनाया। सर सुरेन्द्रनाथ ऐसी ही विभूतियोंमें से थे। एक समय था, जब छात्र-जगत उनकी पूजा करता था, जब सारी राष्ट्रीय चर्चाओंमें उनका परामर्श अनिवार्य माना जाता था और उनकी वक्तृतासे श्रोतागण मन्त्रमुग्धसे रह जाते थे। कोई बंग-भंगके दिनोंकी उथल-पुथल भरे घटनाक्रमको याद करे और उसके सम्बन्धमे सुरेन्द्र-नाथकी अद्वितीय सेवाओंका स्मरण कृतज्ञता और गर्वके साथ न करे, यह असम्भव है। उसी समय उनके कृतज्ञ देशने उन्हे "सरेंडर नॉट" (कभी न झुकनेवाला) की उपाधि दी, और वे सचमुच उपाधिके सुयोग्य पात्र थे। बंग-भगके समयमे जिन दिनों स्थिति अत्यन्त निराशाजनक हो गई थी, उन दिनों भी वे कभी विचलित नही हुए और न निराश हुए। वे पूरी शक्तिसे उस आन्दोलनमें लग गये। उनके उत्साहने सारे बंगाल-की रगोंमे नई रवानी ला दी। "सिद्ध सत्य" को असिद्ध कर दिखानेका उनका संकल्प अविचल था। उन्होने हमें साहस और संकल्पकी जरूरी तालीम दी। उन्होंने सत्तासे भय न खानेकी शिक्षा दी। उनका शिक्षा-सम्बन्धी कार्य भी उनके राजनीतिक कार्योंसे कुछ कम महत्त्वपूर्ण नही था। रिपन कालेजके माध्यमसे हजारों नौजवान उनके प्रत्यक्ष प्रभावमें आये और उन्होंने समुचित शिक्षा प्राप्त की। उनकी नियमितता ने उन्हे स्वास्थ्य तथा शक्ति दी, बल्कि कह सकते हैं, भारतके हित-साधनके लिए, उन्हे दीर्घ जीवन दिया। उनकी मानसिक शक्ति अन्ततक अक्षुण्ण बनी रही। सत्तर वर्षकी अवस्थामें उन्होंने पुन: अपने पत्र 'बंगाली' का सम्पादन-भार सँभाल लिया था, यह कोई कम साहसकी बात नही थी। उन्हे अपनी मानसिक शक्ति और शारीरिक क्षमतापर इतना भरोसा था कि अभी दो ही महीने पूर्व मैं उनसे बैरकपुरमे मिला था तो उन्होंने कहा था कि मैं ९१ वर्षतक जीनेकी आशा करता हूँ और उससे आगे नही जीना चाहता, क्योंकि उसके बाद मैं अपनी मानसिक शक्ति कायम नही रख सकूँगा। लेकिन विधिका विधान कुछ और ही था। उसने अचानक ही उन्हें हमसे छीन लिया; क्योंकि किसीने भी उनके इस तरह एकाएक चल बसनेकी आशा नही की थी। इस महीने की छ: तारीखकी सुबहतक तो उनका ऐसा कोई लक्षण दिखाई नही देता था, जिसमे प्रकट होता कि उनकी मृत्यु इतनी समीप थी। यद्यपि वे शरीरत: हमारे बीच नही रहे, किन्तु देशकी उन्होंने जो सेवा की, उसे कभी भुलाया न जा सकेगा। आधुनिक भारतके एक निर्माताके रूपमें उन्हें सदा याद किया जायेगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १३-८-१९२५

१. देखिए खण्ड २७, पृष्ठ ११६-१८।

३१. टिप्पणियाँ

खादी-कार्यकर्त्ताओंका लेखा

अखिल भारतीय खादी मण्डलके मंत्रीने सभी प्रान्तोंके नाम एक परिपत्र जारी किया था, जिसमें उनसे तमाम खादी-कार्यकर्ताओंकी योग्यता, कार्य और पारिश्रमिक आदिके विवरणके साथ सूची भेजनेको कहा गया था। यह विवरण अभीतक केवल बिहार, संयुक्तप्रान्त, उत्कल, असम, महाराष्ट्र, बंगाल, केरल और कर्नाटक, इन सात प्रान्तोंसे ही आया है। जिन प्रान्तोंमें खादी-कार्य किसी हदतक अच्छे पैमानेपर चल रहा है, उन्होंने अभीतक अपना विवरण नहीं भेजा है। और जिन्होंने भेजा है उनके तथ्य और आँकड़े अधूरे हैं। उदाहरणके लिए, बिहारने ३२ वैतनिक और २ अवैतनिक कार्यकर्ताकओंके नाम दिये है, पर वहाँके प्रमुख कार्यकर्त्ताओंमें से भी कुछके नाम छूट गये हैं। कई केन्द्रों के नाम दर्ज हैं; पर मलखाचकका नाम ही नहीं है। बंगालसे केवल अभय आश्रमने अपनी सूची भेजी है; पर उसमें भी डा० सुरेश बनर्जी, श्री हरिपद चटर्जी और अन्नदा बाबूके नाम अकारण ही छोड़ दिये गये हैं। कर्नाटककी सूचीमें भी श्री गंगाधरराव देशपाण्डेका नाम नहीं है, जो बेलगाँव कांग्रेसके[1] बादसे अपना सारा समय खादीके काममें ही लगाते रहे हैं। केवल महाराष्ट्रकी सूची काफी हदतक पूरी और दुरुस्त मालूम होती है। गुजरात, आन्ध्र, बंगाल और तमिलनाड की सूचियाँ विशेष रूपसे दिलचस्प और शिक्षाप्रद होती, किन्तु इन प्रान्तोंने बिलकुल चुप्पी ही साध रखी है।

किन्तु फिर भी जो-कुछ अधूरे और संक्षिप्त विवरण मिले हैं, वे भी अपने ढंगसे काफी दिलचस्प है। वैतनिक कार्यकर्त्ताओंकी संख्या १४८ है, जिनको कुल ३,४६९ रुपये माहवार दिये जाते है, अर्थात् औसतन् २३ रु० प्रति कार्यकर्त्ता। अवैतनिक कार्यकर्त्ताओंकी संख्या ५८ है। यद्यपि इनमें से कुछ लोगोंकी शैक्षणिक योग्यता नहीं बताई गई है, फिर भी सूचियोंसे पता चलता है कि इनमें से १६ स्नातक हैं, ३ वकील है और बहुत-से कार्यकर्त्ता स्नातक कक्षाओंतक पढ़े हुए हैं। अधिकसे-अधिक वेतन प्रतिमास ६५ रुपये और कमसे-कम २ रु० है। प्रायः सब कार्यकर्त्ता पूरे समय काम करते हैं। अवैतनिक लोगोंमें पूरे समय काम करनेवालोंमें तीन स्त्रियाँ भी हैं। कुल मिलाकर १२८ खादी केन्द्रोंका उल्लेख हुआ है।

मेहनत नहीं तो खाना भी नहीं[2]

कुछ दिन पहले मुझे कलकत्तेके एक शानदार महलमें ले जाया गया था। उसे 'मारबल पैलेस' कहते हैं। उसमें सजावटके लिए बहुत-से चित्र लगे है, जिनमें से

१. १९२४ का अधिवेशन।

२. अधिक जानकारीके लिये देखिए "नये आचार", २-८-१९२५ भी।

कुछ बहुत कीमती हैं और कुछ बहुत सुन्दर। मालिक महलके सामने आँगनमें जो भी भिक्षुक वहाँ आयें उन सबको खाना खिलाते हैं। मुझे बताया गया कि उनकी संख्या प्रति दिन कई हजार होती है। बेशक, यह राजसी दान है। इससे दाताओंकी परोपकार-वृत्ति प्रगट होती है, जो प्रशंसनीय है। परन्तु एक तरफ भिक्षान्नसे अपना पेट भर रहे ये बेहाल भिखारी और दूसरी तरफ मानो उनकी दुर्दशाका उपहास करते हुए खड़ा वह शानदार महल, इन दोनोंके बीचकी असंगति दाताओंको जरा भी नहीं खटकती! ऐसा ही एक और दुःखद दृश्य मुझे, जब मैं श्रयुड़ी गया था तो वहाँ देखनेको मिला था। वहाँ स्वागत-समितिने जिलेके भिखारियोंको भोजन करानेकी व्यवस्था की थी। 'मारबल पैलेस' में मुझे घेरकर मेरे साथ-साथ जो भीड़ चल रही थी, वह जमीनपर बिछाई हुई मैली पत्तलोंपर खा रहे भिखारियोंकी पंक्तिके बीचसे होकर गुजर रही थी। कुछ लोग तो उन पत्तलोंको लगभग कुचलते हुए चल रहे थे। यह कोई सुखद दृश्य नहीं था। श्रयुड़ीमें जरा अधिक सभ्य व्यवस्था थी, क्योंकि भीड़को भिखारियोंकी पंक्तिसे होकर नहीं गुजरना था। परन्तु जो मोटर गाड़ी मुझे मेरे स्थानपर ले गई थी, उसे खाना खाते हुए भिखारियोंकी पंक्तिके बीचसे धीरे-धीरे ले जाया गया था। मैं बहुत लज्जित हुआ, इस कारणसे तो और भी कि वह सब मेरे सम्मानमें किया गया था; और, जैसा वहाँके एक मित्रने बताया, इस खयालसे किया गया था कि मैं 'दीनोंका हितु' हूँ। अगर मैं मानव-समाजके एक बड़े हिस्सेके इस तरह भिखारी बनाये जानेपर सुख-सन्तोषका अनुभव करूँ तो निश्चय ही मेरी यह दीन-हितकी भावना बहुत घटिया चीज है। मेरे मित्रोंको यह नहीं मालूम कि भारतके कंगालोंके हितकी भावनाने मुझे इतना कठोर-हृदय बना दिया है कि उनके बिलकुल भिखारी बना दिये जानेकी अपेक्षा उनके भूखों मर जानेकी बात मैं ज्यादा बेफिक्रीसे सोच सकता हूँ। मेरी अहिंसा किसी ऐसे तन्दुरुस्त आदमीको मुफ्त खाना देनेका विचार बरदाश्त नहीं करेगी, जिसने उसके लिए कोई ठीक ढंगका काम न किया हो; और मेरा वश चले तो जिन सदाव्रतोंमें मुफ्त भोजन मिलता है, वे सब सदाव्रत मैं बन्द कर दूँ। इससे राष्ट्रका पतन हुआ है और सुस्ती, बेकारी, ढोंग, बल्कि अपराधोंको भी प्रोत्साहन मिला है। इस प्रकारका अनुचित दान देशको न कोई भौतिक लाभ पहुँचाता है और न आध्यात्मिक लाभ ही, और दाताके मनमें पुण्यात्मा होनेका झूठा भाव पैदा करता है। क्या ही अच्छी और बुद्धिमानीकी बात हो, यदि दानी लोग ऐसी संस्थाएँ खोलें जहाँ उनके लिए काम करनेवाले स्त्री-पुरुषोंको स्वच्छताके साथ स्वास्थ्यप्रद भोजन दिया जाये। मेरा अपना विचार तो यह है कि चरखा या कपाससे सम्बन्धित क्रियाओंमें से कोई भी क्रिया इस दृष्टिसे आदर्श होगी। परन्तु उन्हें यह स्वीकार न हो तो वे कोई भी दूसरा काम चुन सकते हैं। जो भी हो, नियम यह होना चाहिए कि "मेहनत नहीं तो खाना भी नहीं।" ऐसा कोई भी नगर नहीं, जिसके सामने भिखमंगोंकी कठिन समस्या न हो; और इसके लिए जिम्मेदार हैं पैसेवाले लोग। मैं जानता हूँ कि निठल्लोंको मुफ्त भोजन करा देना बहुत आसान है, परन्तु ऐसी किसी संस्थाको संगठित करना बहुत कठिन है, जहाँ किसीको खाना पानेके लिए कोई ठीक ढंगका काम अवश्य

करना पड़े। आर्थिक दृष्टिसे देखें तो मानना पड़ेगा कि लोगोंसे काम लेकर उन्हें खिलानेपर जो खर्च आयेगा वह कमसे-कम शुरूमें तो मौजूदा मुफ्तके भोजनालयोंके खर्चसे ज्यादा होगा। लेकिन अगर हमें यह मंजूर न हो कि निठल्लोंका वर्ग, जो इस देशमें तेजीके साथ बढ़ता जा रहा है, दिन दूना और रात चौगुना बढ़े तो मेरा निश्चित विश्वास है कि उक्त रीतिसे काम करना अन्ततः किफायत साबित होगी।

वर्णाश्रम और अस्पृश्यता

एक सज्जन लिखते हैं :

> **२३ अप्रैल, १९२५के 'यंग इंडिया' में वर्णाश्रमके विषयमें लिखे मेरे पत्र-पर आपकी जो टिप्पणी प्रकाशित हुई है, उसके सम्बन्धमें मैं कहना चाहता हूँ कि वर्णाश्रम और अस्पृश्यताका फर्क मैं पूरी तरह समझता हूँ और यह भी स्वीकार करता हूँ कि हिन्दूधर्ममें अस्पृश्यताका कहीं भी कोई विधान नहीं है। लेकिन क्या यह बात बिलकुल स्पष्ट नहीं है कि अगर 'जन्मके आधारपर कर्म विभाजनका सिद्धान्त, जिसे आप ठीक मानते हैं, हमारे सामाजिक संगठनका आधार बना रहा तो हमारे समाजमें अस्पृश्य लोग भी सदा रहेंगे ही? स्वभावतः यह मानना होगा कि उस हालतमें समाजके जो सदस्य झाड़ने-बुहारने, मरे हुए पशुओंको हटाने, कब्र खोदने आदिका काम करेंगे, उनके प्रति बराबर समाजका रुख यही बना रहेगा कि वे इतने गन्दे हैं कि उनके स्पर्शसे दूर ही रहना चाहिए। दूसरे तमाम देशोंमें मेहतरों, मोचियों, नाइयों, धोबियों, कब्र खोदनेवालों, अन्तिम संस्कारका प्रबन्ध करनेवालों आदिको न व्यक्तिके रूपमें अस्पृश्य समझा जाता है और न वर्गके रूपमें। उसका सीधा-सादा कारण यह है कि उन देशोंमें ये काम वंशानुगत नहीं हैं, और इनमें से किसी भी वर्गका कोई भी सदस्य, जब चाहे तब, सिपाही, व्यापारी, शिक्षक, वकील, राजनीतिज्ञ या पुरोहित बन सकता है। इसलिए मुझे तो यही लगता है कि हमारे देशमें इस बुराईके इतने असाधारण रूपसे घर कर जानेके मूलमें हमारी वह विशिष्ट सामाजिक व्यवस्था ही है, जो मात्र वंश-परम्परापर आधारित है। और मुझे यह भी लगता है कि जबतक हम इस सिद्धान्तसे चिपटे हुए हैं, तबतक अस्पृश्यतासे छुटकारा नहीं पा सकते। यह बात समझमें आने लायक है कि रामानुजाचार्य-जैसे महान् सुधारकोंके प्रभावसे या प्रबल राजनीतिक जागृतिके परिणामस्वरूप इस प्रथाका जहर कभी-कभी कुछ कम हो जाये, लेकिन इस बुराईका समूल नाश नहीं हो सकता। मुझे तो लगता है कि इस बुराईको दूर करनेका कोई भी प्रयत्न उसी तरह व्यर्थ साबित होगा, जिस तरह किसी पेड़के शीर्ष भागको काटकर उस पेड़को गिरानेका प्रयत्न करना।**

इस पत्रमें कही गई बात काफी तर्कसंगत मालूम होती है, और अगर सुधारक लोग सावधानीसे काम नहीं लेते तो हो सकता है, पत्र-लेखकने जो आशंकाएँ व्यक्त की

हैं, वे कठोर वास्तविकताके रूपमें सामने आ जायें। फिर भी, उसकी दलीलमें विचारोंकी एक स्पष्ट उलझन-सी दिखाई देती है। कोई मोची या भंगी जन्मके कारण अस्पृश्य है या अपने कामके कारण? अगर इसका सम्बन्व जन्मसे है तो यह बहुत घृणित चीज है, और इसका जड़-मूलसे नाश कर देना चाहिए; पर यदि इसका सम्बन्ध कामसे है तो इसे सफाईका एक महत्त्वपूर्ण नियम माना जा सकता है। यह नियम सर्वत्र लागू होता है। कोई कोयला खोदनेवाला मजदूर जबतक अपने काममें लगा हुआ है तबतक वह लगभग अस्पृश्य है। अगर कोई उससे हाथ मिलानेके लिए आगे बढ़े तो वह खुद ही यह कहते हुए हाथ मिलानेसे इनकार कर देगा कि मैं अभी बहुत गंदा हूँ। लेकिन, अपना काम खत्म कर लेनेके बाद वह स्नान करता है, अपने कपड़े बदलता है और तब देशके बड़ेसे-बड़े आदमीसे भी तपाकसे मिलता है और यह ठीक ही है। इसलिए जन्मके साथ जुड़े कलंकको, अर्थात् जन्म-सम्बद्ध उच्चता और नीचताकी भावनाके दूर होते ही वर्णाश्रम धर्म पवित्र हो जायेगा। तब भंगीके बच्चे हीन हुए बिना अथवा स्वयं हीनताका अनुभव किये बिना भी भंगी रह सकते ह। और वे उतने ही स्पृश्य अथवा अस्पृश्य होंगे जितने कि ब्राह्मण। इसलिए दोष वंश-परम्पराके नियमको मान्यता देनेमें नहीं है, और न इस नियमको स्वीकार करनेमें है कि माँ-बापके गुण और उनकी योग्यतायें पीढ़ी-दर-पीढ़ी उनकी सन्तानमें संक्रमित होती जाती हैं, बल्कि असमानताके गलत विचारमें है।

मेरे विचारसे वर्णाश्रम धर्मकी कल्पना किसी संकुचित भावनासे नहीं की गई थी। इसके विपरीत, इसमें श्रमिकोंको, शूद्रोंको भी वही दर्जा दिया गया जो विचारकोंको, ब्राह्मणोंको दिया गया था। यह व्यक्तिके गुणोंके निखार और दुर्गुणोंके नाशकी सुविधा देता था, और यह मानवीय वृत्तियोंको सामान्य सांसारिक क्षेत्रसे मोड़कर जो चीज स्थायी और आध्यात्मिक है, उसकी ओर उन्मुख करता था। ब्राह्मणों और शूद्रों, दोनोंके जीवनका उद्देश्य एक ही था — अर्थात् मोक्ष, न कि यश या धन और ऐश्वर्यकी प्राप्ति। बादमें वर्णाश्रमके इस उच्च आदर्शमें बुराइयाँ आ गईं और लोगोंने निस्सार विधि-विधानोंको तथा कुछने तो अपने-आपको उच्च मान लेने और दूसरोंको नीच मान लेनेकी वृत्तिको ही वर्णाश्रम धर्म समझ लिया। इस बातको स्वीकार करनेसे कोई वर्णाश्रम धर्मकी कमजोरी प्रकट नहीं होती। इससे तो मानव स्वभावकी ही कमजोरी प्रकट होती है — यह इस बातको स्वीकार करना है कि जहाँ कुछ विशेष परिस्थितियोंमें मनुष्य बड़ीसे-बड़ी ऊँचाईतक उठ सकता है, वहाँ वह कुछ दूसरी परिस्थितियोंमें नीचेसे-नीचा भी गिर सकता है। इसलिए सुधारकोंका उद्देश्य अस्पृश्यताके अभिशापको दूर करके वर्णाश्रम धर्मको पुनः अपने उचित स्थानपर प्रतिष्ठित करना है। सुधारके बाद अपने इस परिवर्तित रूपमें वर्णाश्रम धर्म टिकता है अथवा लुप्त हो जाता है, यह तो भविष्य ही बतायेगा। निस्सन्देह यह बात उस नये ब्राह्मण वर्गपर निर्भर करती है, जो हमारे समाजमें चुपचाप उदित हो रहा है — अर्थात् उन लोगों पर जो तन, मन और आत्मासे हिन्दूधर्म और हिन्दुस्तानकी सेवा करनेके लिए अपना जीवन अर्पित कर रहे हैं। अगर उनकी कोई सांसारिक आकांक्षाएँ नहीं है, तो निश्चय

ही हिन्दूधर्मका कल्याण होगा, और अगर उनकी कोई ऐसी आकांक्षाएँ हैं तो किसी भी अन्य धर्मकी तरह यह धर्म भी उन महत्त्वाकांक्षी व्यक्तियोंके हाथमें आकर नाशको प्राप्त होगा। लेकिन, हिन्दूधर्ममें जो समय-समयपर अपने-आपको अपने तमाम दोषोंसे मुक्त कर लेनेकी क्षमता है, उसमें मेरा दृढ़ विश्वास है। मैं नहीं समझता कि उसकी यह क्षमता अब समाप्त हो गई है।

जापानकी सलाह

पिछले महीने एक दिन दो जापानी भाई मुझसे मिलने आये थे। उनसे मेरी बड़ी अच्छी बातचीत हुई और जाते समय वे एक कागज छोड़ गये जिसमें लिखा है :[1]

मैंने इसमें जान-बूझकर कोई संशोधन नहीं किया है, क्योंकि तब इसकी विलक्षणता[2] चली जाती। क्या ही अच्छा होता, अगर मैंने यह कागज इन मित्रोंसे मिलनेसे पहले पढ़ लिया होता। तब मैंने उनसे कहा होता कि मैंने इस सत्यका दर्शन कर लिया है कि ईश्वरने हमें दो हाथ दिये हैं और इसी कारण मेरे मनमें यह खयाल आया कि मैं इस देशके करोड़ों निवासियोंसे कहूँ कि आप एक मिनट भी बेकार न जाने दीजिए, बल्कि अपने हाथोंका यथासम्भव अच्छेसे-अच्छा उपयोग कीजिए ताकि अपने अवकाशके समयमें उनके ही उपयोगसे आप सारे भारतके लायक कपड़े बना सकें। मैंने अपने आगन्तुक मित्रोंसे यह भी कहा होता कि वे हमें अपना लक्ष्य सिद्ध करनेमें सहायता दें और जापानको समझायें कि वह हमपर ख्वामख्वाह अपना कपड़ा न लादे बल्कि हमारे साथ केवल ऐसा व्यापार करे जिससे हम दोनोंका लाभ हो। अन्तमें, मैंने उनसे यह भी कहा होता कि रेल मार्गों, जहाजों और विविध यन्त्रों-से मेरा कोई विरोध नहीं है, मेरा विरोध तो इस समय संसारके अनेक राष्ट्रोंका शोषण करने अथवा उनको बरबाद करनेके लिए इनका जो दुरुपयोग किया जाता है, उससे है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १३-८-१९२५

१. इसका अनुवाद यहाँ नहीं दिया जा रहा है। इसमें जापानपर भारतके सांस्कृतिक प्रभावका उल्लेख करते हुए भारतीयोंके प्रति जापानियोंकी कृतज्ञता व्यक्त की गई थी और गांधीजीकी ओर संकेत करके कहा गया था कि "वर्तमान युगमें भी. . .यहाँ एक महानतम व्यक्तिका आविर्भाव हुआ है, जो पूरी तरह न्याय और सत्यका सच्चा पक्षधर है।" इसके बाद लिखनेवालेने अपने कुछ विचार बताये थे। उसने कहा था, ईश्वरने मनुष्यको स्वर्ग प्रदान कर रखा है, लेकिन यह चीज उसे सीधे न देकर दो हाथोंके रूपमें दी है, जिसके सहारे वह जो चाहे कर सकता है, जो चाहे बना सकता है। उदाहरणके लिए उसे तरह-तरहके सुन्दर और सभी जलवायुके लिए उपयुक्त कपड़े बनाने चाहिए। किन्तु, साथ ही लेखकने रेलगाड़ी, जहाज आदिका निर्माण भी मनुष्यका कर्तव्य बताया था। इस रुक्केमें यत्र-तत्र भाषा और व्याकरणकी अशुद्धियाँ भी थीं।

२. गांधीजीका तात्पर्य शायद पत्रकी अनगढ़ भाषा और शैलीसे है।

३२. मुद्रा और कपड़ा मिल

नीचे त्रिचनापल्लीसे मिली एक शिकायत संक्षेपमें दी जा रही है:

यह देखकर बड़ा दुःख होता है कि आपने जितने भाषण दिये हैं, उनमें भारतकी मुद्रा समस्याके सम्बन्धमें और भारत सरकार लन्दनके व्यापारियोंके हित-साधनके लिए विनिमयकी दरको ऊँचा करके देशी उद्योगोंको किस तरह बरबाद करनेका प्रयत्न कर रही है, इसके विषयमें एक भी शब्द नहीं कहा है। शायद आपकी राय यह है कि भारतमें सूती कपड़ेके जो ३०० कारखाने शुरू किये गये हैं, वे राष्ट्रके लिए सम्पत्ति-रूप नहीं हैं, बल्कि लंकाशायरसे सस्ता विदेशी कपड़ा मँगानेसे लोगोंको ज्यादा फायदा पहुँचेगा। पिछले ३० सालतक एक रुपयेके लिए १ शिलिंग ४ पेंसकी विनिमय दर बहुत अच्छी तरहसे काम करती रही। इस अवधिमें भी बम्बईके सूती कपड़ेके कारखाने भारी उत्पादन-करके कारण लंकाशायरके कपड़ेका मुकाबला नहीं कर पाते थे। कलकत्तेके पटसनके कारखानोंपर कोई उत्पादन-कर नहीं है, और वे पिछले आठ वर्षोंतक १०० से ४०० प्रतिशततक लाभांश घोषित करते रहे। इस समय हमारे सूती कपड़ेके कारखाने भयंकर व्यापारिक मन्दीमें से गुजर रहे हैं। इसका कारण यह है कि जब भारत सरकारने इंग्लैंडसे आयातको उत्तेजन देनेके लिए १९२४में रुपयेकी दर, जो १९२३में १ शिलिंग ४ पेंस थी, बढ़ाकर १ शिलिंग ६ पेंस कर दी तबसे यहाँ लंकाशायरका बहुत-सा माल इकट्ठा हो गया है। जबतक खादी सस्ती नहीं की जाती तबतक लोगोंसे विदेशी कपड़ेको जलानेके लिए या सूत कातने और खादी पहननेके लिए कहना व्यर्थ है। विनिमयकी वर्तमान ऊँची दरके कारण लंकाशायरकी स्पर्धासे खादी-उद्योग मिल-उद्योगसे भी जल्दी नष्ट हो जायेगा।

इन परिस्थितियोंमें मैं महात्माजीसे हार्दिक अनुरोध करता हूँ कि वे विनिमयकी वर्तमान नीतिके विरुद्ध और सूती कपड़ेके कारखानोंपर सिर्फ लंकाशायरके लाभके लिए अन्यायपूर्वक लगाये गये उत्पादन-करके विरुद्ध आन्दोलन करके भारतके औद्योगिक पुनरुत्थानकी ओर ध्यान दें।

इस पत्रको मैं इसलिए प्रकाशित नहीं कर रहा हूँ कि इसमें कोई खूबी है। इसके प्रकाशनका उद्देश्य तो लड़ाईके तरीकोंके सम्बन्धमें उस घोर अज्ञानको दूर करना है जो इस पत्रसे प्रकट होता है। इसमें कोई शक नहीं कि 'यंग इंडिया' के पृष्ठोंमें मैंने जिस तरह इस शासन-प्रणालीकी अन्य अनेक बुराइयोंकी — उदाहरणार्थ भारी सैनिक खर्चकी — चर्चा नहीं की है, उसी तरह मुद्राके सवालपर भी कुछ नहीं

लिखा है। यदि मेरे किसी भी लेखसे ये भारी बुराइयाँ दूर हो सकें तो मैं हर हफ्ते बखूबी उनकी चर्चा किया करूँ, और एक ही बात तरह-तरहसे कही जा सके, इस खयालसे इस उद्देश्यके लिए दूसरे लेखक बन्धुओंकी सेवाएँ भी प्राप्त करनेकी कोशिश करूँ। लेकिन, जिन लोगोंका विचार इन पत्र-लेखक भाईके जैसा हो, उन्हें यह मालूम होना चाहिए कि हम जिन बुराइयोंको जानते हैं वे यदि आज भी मौजूद हैं तो इसका कारण यह नहीं है कि उनपर सार्वजनिक रूपसे चर्चा नहीं हुई है या शासक लोगोंको उन बुराइयोंकी जानकारी नहीं है। मुझसे योग्यतर व्यक्तियोंने भारत सरकारकी मुद्रा-नीतिका पर्दाफाश किया है; लेकिन इससे कोई लाभ नहीं हुआ है। इस नीतिको किसी उचित तर्कके बलपर नहीं, बल्कि "तलवारकी तेज धार" के बलपर कायम रखा जा रहा है। मैं तो समय और श्रमका उत्तम उपयोग करना चाहता हूँ। मेरा विश्वास तो पाठकोंके सामने वही चीजें रखनेमें है जिनकी बाबत अगर वे चाहें तो खुद कुछ कर सकते हैं। हमें जिन बुराइयोंका शिकार बनाया जा रहा है, उनके सम्बन्धमें मुझे पाठकोंकी भावना उभाड़नेकी कोई जरूरत नहीं है। उनके दंशका अनुभव तो वे रोज-रोज करते हैं, लेकिन वे असहाय हैं। इसलिए मेरा काम यही है कि मैं उनके सामने कोई एक उपाय रखूँ, या अगर बने तो एकाधिक उपाय पेश करूँ। इसलिए, एक ही बातको बार-बार कहकर लोकप्रियता खोने और लोगोंको ऊबा देनेवाला आदमी माने जानेका खतरा उठाकर भी मैं पाठकोंकी अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाकर बराबर यही बताता आ रहा हूँ कि वे इस दलित देशके उद्धारमें कैसे सहायक बन सकते हैं।

विदेशी वस्त्रोंका बहिष्कार सबसे व्यवहार्य उपायोंमें से एक है और यह कई बुराइयोंको दूर करनेका सबसे कारगर उपाय भी है। इसलिए, मैं तो जो [मेरे लिए] एक सुखद विषय है, उसपर बराबर लिखता-बोलता ही रहूँगा।

अगर पत्र-लेखक महोदयका खयाल यह हो कि जबतक खादी या देशी मिलोंके कपड़ोंकी कीमतमें भी भारी कमी नहीं आती तबतक भारत विदेशी वस्त्रोंका बहिष्कार सम्पन्न नहीं कर सकता तो यह उनकी निरी भूल ही है। यह बहिष्कार तो तभी सम्पन्न हो सकेगा, जब यह राष्ट्र अपने राष्ट्र-धर्मको समझ लेगा। वह इसे एक बार समझ लेनेपर किसी भी कीमतपर उसका पालन करेगा ही। कोई सच्चा हिन्दू यह नहीं सोचता कि गायत्री-जापमें या अनेकानेक धार्मिक विधि-विधानोंके सम्पादनमें उसे कितना श्रम और समय लगाना पड़ता है। इसी तरह कोई सच्चा मुसलमान इस बातकी परवाह नहीं करता कि उसे दिनमें पाँच वार नमाज पढ़नेमें कितना समय लगाना पड़ता है, और न वह बहिश्त पानेके किसी ज्यादा आसान रास्तेकी ही तलाश करता है। मैनचेस्टरके व्यापारियोंका कर्त्तव्य यही है कि वे अपने नफीस कपड़ोंको भारतके एक-एक गाँवमें सस्तेसे-सस्ते दामपर पहुँचाये। और उन ग्रामीणोंका कर्त्तव्य यह है कि वे उन बढ़िया कपड़ोंको ठुकराकर अपनी खुरदरी खादीको ही जो विशुद्ध आर्थिक दृष्टिकोणसे देखनेपर मैनचेस्टरके उस नफीस कपड़ेसे कहीं महँगी पड़ेगी, स्वीकार करें। हमें यह क्यों मानना चाहिए कि हमारा कोई भी आन्दोलन

मैनचेस्टरके व्यापारियोंको इतना उदार और नेक बननेकी दिशामे प्रेरित कर सकता है कि वे मुद्रा-सम्बन्धी सुविधाओं तथा अन्य सुविधाओंको, जो वे अपनी बनाई सरकारसे प्राप्त कर सकते हैं, छोड़ दे? क्या कोई भारतीय व्यापारी ऐसी ही परिस्थितियोंमें मैनचेस्टरके व्यापारीसे कुछ भिन्न आचरण करेगा? इसलिए, परिस्थिति-संगत और प्रभावकारी एकमात्र जो आन्दोलन है वह है कोई ऐसी शक्ति उत्पन्न करना जो इस पवित्र भूमिमें इग्लैंड तथा दूसरे देशोंके कपड़ोकी भरमारको सफल ढंगसे रोक सके। पत्र-लेखक सज्जन निश्चय ही 'यंग इंडिया' को ध्यानसे नही पढ़ते, अन्यथा उन्हें पता होता कि मैं अपने देशके मिल-कपडा उद्योगके प्रति उदासीन नही हूँ। उचित प्रसंग आनेपर मैं यह कहनेसे कभी नही चूका हूँ कि मैं इस उद्योगके लिए जितना भी संरक्षण सुलभ हो सके, सुलभ कराना चाहूँगा, और अगर मेरा बस चले तो तमाम विदेशी कपड़ोंपर निषेधक तटकर लगा दूं। लेकिन, इस सम्बन्धमें मेरे कर्त्तव्यकी इति यहीं हो जाती है। मिल-कपड़ा उद्योगको मुझसे और किसी सहायताकी कोई जरूरत भी नही है। उसके पास पूंजी है, उसके उत्पादनको भारतके कोने-कोनेमें ले जानेवाले एजेंट हैं। उसमे अपने हितोंकी रक्षा आप ही करनेकी पूरी सामर्थ्य है। दुर्भाग्यकी बात यह है कि उसमें साहसकी और जोखिम उठानेकी शक्ति नही है, और उसका दृष्टिकोण भी राष्ट्रीय नही है। उसे बराबर अपने कुछ साझेदारोके लाभकी ही चिन्ता लगी रहती है। वह अपना माल खरीदनेवाले जनसाधारणकी कोई चिन्ता नहीं करता। खादीकी उस उद्योगसे शत्रुता नही है। यह तो उसके दुध-मुँहे छोटे भाईके समान है, जिसे उसकी स्नेह-भरी शुश्रूषाकी आवश्यकता है — उस समस्त सरक्षणकी जरूरत है जो एक वात्सल्यमयी धाय उसे दे सकती है। इसलिए खादी उद्योग इस बातका अधिकारी है कि मैं अपना सारा ध्यान इसीकी ओर लगाऊँ। साथ ही मैं इस बातकी भी कोशिश करता हूँ कि दूसरे लोग भी इसका खयाल करें। जब यह प्रौढ़ताको प्राप्त हो जायेगा तब बड़े भाई — अर्थात् मिल-कपड़ा उद्योग — के विरोधी दावोंपर विचार करनेका समय आयेगा, लेकिन उससे पहले नही। स्थितिपर तनिक सी स्पष्टतासे विचार करनेसे ही यह बात समझमें आ जायेगी कि खादीको अपने स्थानपर पुनः प्रतिष्ठित करनेके प्रयासमें शायद अगली एक पीढ़ीतक देशी मिलोके कपड़ा-उद्योगको भी अनिवार्य रूपसे संरक्षण मिलेगा। लेकिन, अगर हम अज्ञानवश खादीपर अपना ध्यान केन्द्रित करनेमें चूक जायेंगे, तो न केवल खादीका नाश हो जायेगा, बल्कि भारतके मिल-कपड़ा उद्योगका भी वही हश्र होगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १३-८-१९२५

३३. कुछ ध्यान देने योग्य तथ्य

आशा है, पाठकगण अखिल भारतीय खादी मण्डलके मन्त्रीसे प्राप्त निम्नलिखित रिपोर्ट अत्यन्त दिलचस्पीसे पढ़ेंगे :[1]

इस रिपोर्टसे हमें यह तो पता चलता ही है कि इन ग्रामीणोंके बीच केवल सूत कातनेवालोंके द्वारा एक सालमें कितना काम किया जा सका है। लेकिन जो बात हमारा ध्यान इससे भी अधिक खींचती है, वह है हाथ कताईसे होनेवाली आय और खेतीसे होनेवाली आयके आँकड़ोंकी तुलना। इन आँकड़ोंसे यह भ्रम सदाके लिए दूर हो जाता है कि पेशेवर कातनेवालोंको भी कताईके धन्धेसे बहुत कम कमाई हो सकती है। आँकड़ोंसे पता चलता है कि जिसने चरखेसे सबसे कम कमाई की है, उसके मामलेमें भी चरखेसे होनेवाली आय दूसरी आयकी १४ प्रतिशत है। किन्तु इक्के-दुक्के परिवारोंमें तो उसका प्रतिशत ६६ तक आया है। पाठक यह भी जरूर देखेंगे कि कताईके साथ-साथ स्वभावतः दूसरे सुधार कैसे होने लगते हैं। यहाँ दिये हुए विवरणमें शराबबन्दीके कामका भी उल्लेख है। मैंने बंगालमें कई जगह देखा है कि जो लोग गाँवोंके लोगोंमें कताईका प्रचार करनेमें दिलचस्पी रखते हैं, उन्होंने सहज ही डाक्टरी सहायताका काम भी हाथमें ले लिया है। यदि वे ग्रामीण जीवनके दूसरे जरूरी क्षेत्रोंमें कोई काम शुरू नहीं करते तो इसका कारण यह नहीं है कि वे वैसा करना नहीं चाहते, बल्कि यह है कि इसके लिए उनके पास पर्याप्त कार्यकर्त्ता नहीं हैं। और गाँवोंके लोग भी इतने गतानुगतिक हैं कि उनपर केवल कहने-भरसे कोई असर नहीं होता। तमिलनाडके गाँवोंकी[2] जाँचके फलस्वरूप जैसी स्थिति मालूम हुई है वैसी ही स्थिति बंगालके बहुतसे गाँवोंकी है। मुझे जाँच करनेसे पता लगा है कि हजारों किसान ऐसे हैं जो सालमें प्रति मास ७ या ८ रुपयेसे ज्यादा नहीं कमा पाते। यदि परिवारके सदस्योंके सूत कातनेसे इस आयमें २ रुपयेकी वृद्धि हो जाती है तो क्या यह इन गरीब किसानोंके लिए कोई छोटा-मोटा सहारा नही है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १३-८-१९२५

१. यहाँ नहीं दी जा रही है। इसमें मद्रासके सेलम जिला-स्थित कुछ गाँवोंमें कताई और खादी आदिकी प्रगतिका विवरण दिया गया था।

२. वे गाँव थे: उप्पूपालयम, सेम्मपालयम, चित्तलन्दुर, पुलियन पट्टी, और पुदुपालयम।

३४. पत्र : मदाम आँत्वानेत मिरबेलको

१३ अगस्त, १९२५

आपका अत्यन्त हृदयस्पर्शी पत्र[1] मिला। जिस बातको आपका मन इतनी तीव्रतासे अनुभव करता है मैं आपको उससे विरत करनेकी कोशिश नहीं करूँगा और अगर आप आना ही चाहें तो खुशी-खुशी आ जाइये। सिर्फ इतना याद रखिये कि जिस रक्त-माससे आप और दूसरे सभी मानव बने हुए हैं, आप देखेंगी कि मैं भी उसीसे बना हुआ हूँ। इन नश्वर शरीरके भीतर जो अनश्वर आत्मा है, वह तो हजारों मील दूरसे भी आपसमें मिल सकती है और बातचीत कर सकती है। फिर भी मैं यह बात अस्वीकार नहीं करना चाहता कि कभी-कभी शारीरिक सान्निध्य भी लाभदायक होता है और अगर आपको शरीरतः मेरे निकट रहनेसे कोई लाभ हुआ तो वह इस कारण नहीं होगा कि मुझमें कोई मानवेतर शक्ति है, बल्कि इसलिए होगा कि आपमें ज्वलन्त आस्थाका बल है। मैं तो सिर्फ सत्यका अन्वेषक हूँ — निःसन्देह मानवीय पूर्णताको प्राप्त करनेके लिए प्रयत्नशील हूँ और निरन्तर प्रयास करते रहनेसे हममें से हरएक व्यक्ति इस पूर्णताको प्राप्त कर सकता है। अगर आप आनेका निर्णय करें और मुझे यह मालूम हो जाये कि आप किस जहाजसे आ रही हैं तो आपकी अगवानी करनेके लिए कोई-न-कोई आपको बम्बई बन्दरगाहपर अवश्य मिल जायेगा और वह आपको साबरमतीकी ट्रेनतक पहुँचा आयेगा। मेरा दाहिना हाथ काम नहीं करता, इसलिए यह पत्र बोलकर लिखा रहा हूँ और इसपर बायें हाथसे हस्ताक्षर करके भेज रहा हूँ।[2]

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

महादेवभाईकी हस्तलिखित डायरीसे।

सौजन्य : नारायण देसाई

१. मदाम आँत्वानेत मिरबेलने अपने पत्रमें इस बातका उल्लेख करनेके बाद कि उन्होंने सन् १९२४ में गांधीजीके लेखोंका एक संग्रह पढ़ा था, लिखा था कि उसमें उन्हें अपनी आन्तरिक भावनाओं और विचारोंकी प्रतिध्वनि मिली और यह कि वे तभीसे गांधीजीको अपना गुरु बनानेके लिए व्याकुलताका अनुभव करती रही हैं।

२. मिरबेलने इसके उत्तरमें अपने ९ सितम्बरके पत्रमें लिखा था कि उन्हें गांधीजीका पत्र पाकर अवर्णनीय आनन्द प्राप्त हुआ। फिर २९ सितम्बरको उन्होंने गांधीजीको सूचित किया था कि वे १ अक्तूबरको चलकर २३ अक्तूबरको बम्बई पहुँचेंगी।

३५. पत्र : जितेन्द्रनाथ कुशारीको

१४८, रसा रोड
कलकत्ता
१५ अगस्त, १९२५

प्रिय भाई,

आपका नपा-तुला पत्र मुझे बहुत पसन्द आया। यह है मेरा उत्तर। जल्दबाजी मत कीजिए। केवल चरखा ही आपको अपने लिये पर्याप्त काम दे देगा। सभी वर्गोंको इसके प्रति तत्काल एक-साथ आकृष्ट करनेके बारेमें सोचनेकी जरूरत नहीं है। मैं कमसे-कम फिलहाल तो हिन्दू सभाएँ शुरू करनेकी सलाह नहीं दे सकता। स्कूल चलाने और चिकित्साकी व्यवस्था करनेसे जहाँतक कताईको मदद मिल सकती है वहाँतक ये कार्य कताई-संस्थाके कार्यक्रममें शामिल किये जा सकते हैं। अगर कार्यकर्त्ता आर्थिक लाभवाले धन्धोंमें लग जायेंगे तो वे अपना सारा ध्यान कताईमें नहीं दे पायेंगे। लेकिन अगर आप कताईके साथ-साथ बुनाईका भी काम शुरू करवा दें तो इस तरह आप अपनी संस्थाको आर्थिक दृष्टिसे अन्ततः आत्मनिर्भर बना देंगे। इस बीच आपको कताईके विकासमें अपना सारा समय लगानेवाले कार्यकर्त्ताओंके जीवन-यापनके लिए राष्ट्रसे सहायता देनेकी अपेक्षा रखनी चाहिए। आपकी इस संस्थाके पास ऐसी सम्पत्ति होनेकी बात नहीं सोचनी चाहिए जिससे एक स्थायी आमदनी होती रहे।

ईसाई मिशनरियोंके उदाहरणसे आपका क्या तात्पर्य है, यह मैं समझा नहीं। आप तो खुद ही गाँवमें काम कर रहे हैं। लोगोंको आत्मनिर्भर, निर्भीक, स्वावलम्बी और स्वस्थ बना देने तथा उनमें अपनी बुद्धि-विवेकसे हर परिस्थितिका सामना करनेकी क्षमता पैदा कर देनेका मतलब है, उन्हें स्वराज्यकी दिशामें प्रवृत्त कर देना। इस स्वराज्य शब्दमें उपर्युक्त गुणोंके अलावा और कोई चीज नहीं है। अपने यहाँ परोपकारी संस्थाएँ राजनीतिक स्वतन्त्रताके विचारको स्थान नही देतीं। लेकिन आप न तो उसका बहिष्कार कर रहे हैं और न उसका प्रदर्शन कर रहे हैं, क्योंकि प्रदर्शनसे लोगोंके मनमें भ्रामक धारणाएँ पैदा होती हैं।

जिला बोर्ड वगैरहसे सहायता लेनेमें जबतक आपको अपनी स्वतन्त्रताकी बलि देनेकी जरूरत न पड़े तबतक आप इनसे सहायता लेनेकी कोशिश कर सकते हैं। ग्रामवासियोंके असहयोगका अर्थ है अपने जीवनको यथासम्भव ऐसे साँचेमें ढालना जिससे वे सरकारसे स्वतन्त्र रह सकें। यदि वे झगड़ा न करें और पंचायती निर्णय मानें तो उन्हें अदालतोंमें जानेकी क्या जरूरत है? उन्हें अपने बच्चोंको सरकारी स्कूलोंमें भी भेजनेकी कोई जरूरत नहीं है।

यदि कार्यकर्त्ताओंमें सच्चे अहिंसात्मक असहयोगकी भावना होगी तो वे ग्रामवासियोंमें भी अपनी बातसे नहीं, बल्कि अपने आचरणसे यह भावना भर देंगे।

मैं किसी लड़केको स्वेच्छासे किसी सरकारी स्कूलमे भेजनेमें शरीक नही होऊँगा। राष्ट्रीय स्कूलोंमें भले ही कमियाँ हों, किन्तु उनको प्रोत्साहन देना ही चाहिए। लेकिन यहाँ फिर मैं यह कहूँगा कि किसी यान्त्रिक उपायसे किसी लड़केको सरकारी स्कूलमें जानेसे रोकनेकी कोई जरूरत नही है। जबतक वह सरकारी स्कूलोंमें जानेमे अप्रतिष्ठाका अनुभव स्वय न करे तबतक उसके वहाँ न जानेसे कोई लाभ नही है।

यदि अर्ध शिक्षित भारतीयोंसे आपका मतलब उन भारतीयोंसे है जो सही-सही अग्रेजी नही बोल सकते तो मैं ऐसे बहुत-से भारतीयोंको जानता हूँ, जो यद्यपि अग्रेजी सही-सही नही बोल सकते, फिर भी जिनके आदर्श बहुत ऊँचे हैं। दूसरी ओर ऐसे हजारों स्नातक हैं, जिनका सबसे बड़ा आदर्श अधिकसे-अधिक पैसा कमाना है और जो सार्वजनिक जीवनसे बिलकुल अलग ही रहते हैं।

पता नही, इतनेमें आपके सारे प्रश्नोंके उत्तर आ जाते हैं या नही।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्रीयुत जितेन्द्रनाथ कुशारी
सत्याश्रम
डाकघर बहरोक
ढाका

अग्रेजी पत्र (जी० एन० ७१८८) की फोटो-नकलसे।

३६. पत्र : साम्बमूर्तिको

१४८, रसा रोड
१५ अगस्त, १९२५

प्रिय भाई,

मैं बगालमें अपेक्षासे अधिक समयतक रुक गया, इसलिए मेरी सारी योजना उलट-पलट हो गई। अक्तूबरके अन्ततक तो मैं बिहारमें ही रहूँगा। इसके बाद इस वर्षकी समाप्तिसे पहले-पहले मैं जिन प्रान्तोंका दौरा कर लेना चाहता था, उनमें से निम्नलिखित प्रान्त बच जायेंगे: आन्ध्र, तमिलनाड, केरल, कर्नाटक, मध्यप्रदेश (मराठी), मध्यप्रदेश (हिन्दी) और महाराष्ट्र।

इन सभी प्रान्तोंका दौरा दो महीनेसे कम समयमें कर पाना असम्भव है। इसलिए अगर यह बिलकुल जरूरी न हो तो मैं आपसे कहूँगा कि आप अपने प्रान्तके दौरेके कार्यक्रमसे मुझे मुक्त कर दें। लेकिन अगर आप यह समझें कि आपके प्रान्तका दौरा करना नितान्त आवश्यक है तो यह सूचित कीजिए कि आप मुझे वहाँ कितने दिनोंके लिए चाहते हैं।

जितना समय है, उतनेमें मैं जितने प्रान्तोंका दौरा कर सकता हूँ, अगर उससे ज्यादा प्रान्त मेरी उपस्थिति चाहते हों तो मैं इसका निर्णय लाटरी डालकर करना चाहता हूँ। इसलिए अगर तनिक भी सम्भव हो तो मैं आपसे अनुरोध करता हूँ कि आप मुझे वहाँका दौरा रद कर देनेकी इजाजत दें।

मैं इस महीनेकी ३१ तारीखतक कलकत्तेमें हूँ। मैं चाहूँगा कि आप इससे पहले ही पत्र अथवा तार द्वारा उत्तर भेज दें।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्रीयुत साम्बमूर्ति
अध्यक्ष, प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी, राजमहेन्द्री

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० १०६५१) की माइक्रोफिल्मसे।

३७. भाषण: कलकत्ताकी सार्वजनिक सभामें[1]

१५ अगस्त, १९२५

कलकत्तेके नागरिकोंकी यह सभा, जो सभी दलों और सभी जातियोंका प्रतिनिधित्व करती है, भारतीय राष्ट्रीयताके महान् पुरोधा सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जीके निधनसे देशकी जो भारी और स्थायी क्षति हुई है, उसपर अपना गहरा दुःख प्रकट करती है। पिछले पचास वर्षोंसे वे मातृभूमिके लिए अडिग भावसे निरन्तर और अत्यन्त उत्साहपूर्वक जो श्रम करते रहे, वह सत्प्रयत्नों और उच्च उपलब्धियोंकी एक ऐसी अद्वितीय गाथा है, जिसे उनके कृतज्ञ देशवासी सदा याद रखेंगे और जिससे यह राष्ट्र जिसकी सेवामें उन्होंने अपना जीवन अर्पित किया, सदा प्रेरणा ग्रहण करता रहेगा। . . . यह सभा उनकी पुण्य-स्मृतिमें अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करती है और उनके शोक-सन्तप्त परिवारके प्रति गहरी समवेदना प्रकट करती है।

महात्माजीने कहा:

इस सभामें उपस्थित होना और इस प्रस्तावको पेश करना मैं अपने लिए गौरवकी बात मानता हूँ। मैं जानता हूँ कि आप लोग यह नहीं चाहते कि मैं उनकी प्रशस्तिमें कोई लम्बा-चौड़ा भाषण दूँ। सर सुरेन्द्रनाथ आपके लिए क्या थे और देशके लिए उनका क्या महत्त्व था, यह बात प्रस्तावमें संक्षेपमें बता दी गई है। अभी हालमें मुझे कई मंचोंसे आपको यह चेतावनी देनी पड़ी है कि हमें किसीकी केवल मौखिक प्रशंसा करके ही सन्तुष्ट नहीं हो जाना चाहिए। एक सभामें तो मैंने यहाँ तक कहा था कि "हमें भाटों-जैसा व्यवहार नहीं करना चाहिए।" सन् १८९६में

१. यह सभा स्वर्गीय सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जीको श्रद्धांजलि अर्पित करनेके लिए टाउन हॉलमें की गई थी।

जब मैं थोड़े समयके लिए दक्षिण आफ्रिकासे यहाँ आया था, तब मुझे सर सुरेन्द्रनाथसे मिलने और उन्हें नमस्कार करनेका सौभाग्य मिला था। उनकी अद्वितीय वाग्मिताकी चर्चा मैं इससे बहुत पहले सुन चुका था। सन् १८९६ में जब मैंने उनको देखा उस समय मैं नौजवान ही था और उनकी महानताको ठीकसे अनुभव नहीं कर पाया था। सन् १९०१ में मुझे उनसे फिर मिलनेका मौका मिला। और अगर यह मेरी धृष्टता न समझी जाये तो मैं कहूँगा कि उस समय मैंने उन्हें बहुत करीबसे देखा-परखा। मैंने उन्हें विषय समितिकी बैठकमें देखा; मैंने उन्हें भारी जनसमुदायको अपनी वक्तृतासे मुग्ध करते देखा। उन दिनों वे जहाँ भी जाते थे, भीड़ उमड़ पड़ती थी। मैंने देखा कि तब हर सभामें, चाहे वह सार्वजनिक सभा हो या विशिष्ट लोगोंकी बैठक, उनकी उपस्थिति कितनी अनिवार्य मानी जाती थी। उनकी आवश्यकता हर राष्ट्रीय गोष्ठीमें होती थी और देशभाइयोंके भीतर जोश भरनेके लिए उन्हींको याद किया जाता था। एक बार जब मैं दक्षिण आफ्रिकामें राष्ट्रीय कांग्रेसके एक अधिवेशन-की कार्यवाही पढ़ रहा था तो एक स्थलपर मुझे ऐसा विवरण मिला कि सर सुरेन्द्र-नाथने उठकर ज्यों ही श्रोताओंसे पैसा देनेके लिए अपील की त्यों ही औरतें उनकी गोदमें और मेजपर गहने उतार-उतारकर फेंकने लगीं, धनपति उनकी मेजपर नोट फेंकने लगे और बहुतसे लोगोंने रकमें देनेके वादे किये। मतलब यह है कि जब कभी पैसेकी जरूरत पड़ती थी, लोग सर सुरेन्द्रनाथको अवश्य याद करते थे। (हर्षध्वनि)। इस तरह मैंने उन्हें जब भी देखा, मैं इस बातका अनुभव किये बिना न रहा कि वे बंगालके लिए और भारतके लिए क्या थे और कितना महत्त्व रखते थे।

तो हमें, इस नई पीढ़ीके लोगोंको, पुराने राष्ट्रनायकोंकी सेवाको भूलना नही चाहिए। जब उन्होंने देशकी ऐसी सेवा की तब हममें से बहुत-से लोगोंका जन्म भी नही हुआ था। ऐसे यशस्वी लोगोंके दृष्टिकोणसे अगर हम सहमत न भी हों तो इससे कोई फर्क नही पड़ता। अगर उन्होंने नीव नहीं डाली होती तो हम लोग यह निर्माण नही खड़ा कर पाते; अगर उन्होंने नींव नही डाली होती तो हम लोग आज जो-कुछ कर रहे है, वह नही कर पाते (हर्षध्वनि)। उन्होंने उस समय एक उदाहरण प्रस्तुत किया, जब दूसरे लोग सामने नही आ रहे थे। उन्होंने उदाहरण प्रस्तुत किया साहसका, उदाहरण प्रस्तुत किया बलिदानका, उदाहरण प्रस्तुत किया कूटनीतिका — लेकिन यह कूटनीति आजकलकी घटिया दरजेवाली कूटनीति नही थी। (हर्षध्वनि)। मेरा मतलब है कि उनकी कूटनीति ऐसी थी जिसकी जरूरत हर राष्ट्रको, हर व्यक्तिको है। हम उनकी उन दिनोंकी सेवाका स्मरण करें और सर सुरेन्द्रनाथ-जैसे व्यक्तियोंके महान् कार्योंको अपनी स्मृतिमें संजोकर रखें। लोग उनकी प्रशंसा करते हुए उन्हे "सरेंडर नॉट" (कभी न झुकनेवाला) कहा करते थे। और क्या यह उपाधि बिलकुल सही नही है? बंगभंगके उन अन्धकारपूर्ण, किन्तु साथ ही बलिदानकी शिखासे उज्ज्वल दिनोंमें क्या उन्होंने वास्तवमें ऐसे काम नही कर दिखाये थे, जिससे उन्हें इस उपाधिका सुयोग्य पात्र माना जाये? क्या उन्होंने बंगाल और भारतकी सहायतासे एक ऐसी

चीजको[1] जिसे सरकार मानती थी कि बदला नहीं जा सकता था — बदल नहीं दिया? (हर्षध्वनि)। क्या उन्होंने बहुतसे ऐसे काम नही कर दिखाये जिनपर हम वर्तमान पीढीके लोग गर्व कर सकते हैं? हम लोग अपने-आपको बहुत बुद्धिमान मानते हैं। लेकिन उसका यह मतलब नही होना चाहिए कि हम इन महान् राष्ट्रनायकोंकी महान् सेवाओंको भूल जायें। इसलिए हम सर सुरेन्द्रनाथकी भस्मपर आँसू जरूर बहायें, लेकिन साथ ही कोई और बेहतर काम भी कर दिखायें। आज हममें से हरएकके सामने कुछ करने लायक काम हैं। उनमें से कुछ तो हमें अवश्य करने चाहिए। हममें उनकी वाग्मिता भले ही न हो, शायद हमारी स्मरणशक्ति भी उतनी अच्छी न हो, किन्तु हम उनकी देशभक्तिका तो अनुसरण कर सकते हैं। हममें से प्रत्येक व्यक्ति उनकी अचूक नियमितताका तो अनुकरण कर सकता है। अभी कुछ ही दिन पहले मुझे बैरकपुरमें उनसे मिलनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था।' उस समय उन्होंने मुझे बताया कि उनके स्वास्थ्य और शक्तिका रहस्य उनकी अचूक नियमितता थी। मुझे याद है कि सन् १९०१में जब एक बहुत महत्त्वपूर्ण सभाकी कार्यवाही चल रही थी, उस समय उसे बीचमें बन्द कर देना पड़ा था। बात यह हुई थी कि सर सुरेन्द्रनाथने बीचमें ही उठकर कहा, 'सज्जनो, मुझे बैरकपुरकी आखिरी गाडी पकड़नी ही है।' सुरेन्द्रनाथ सभाकी समाप्तिकी प्रतीक्षा नही कर सकते थे। सभाको सर सुरेन्द्रनाथके कारण स्थगित करना पड़ा। उन्होंने ऐसा क्यों किया? उन्होंने समयकी पाबन्दी रखी, लेकिन स्वार्थवश नही, बल्कि जिस राष्ट्रको वे इतना अधिक प्यार करते थे, उसकी सेवाके लिए। तो हम उनके इन रचनात्मक गुणोंको याद रखें। बंगालमें शिक्षाके प्रचारके लिए उन्होंने क्या-क्या नही किया? क्या वे एक समयमें बंगालके नौजवानोंके हृदय-सम्राट् नही थे? तो आइए, हम उनकी देशभक्तिका अनुकरण करें; और हममें से प्रत्येक पुरुष, प्रत्येक स्त्री, प्रत्येक बच्चा उसका अनुकरण कर सकता है।

वैसे तो बहुत-सी और भी बातें हैं, लेकिन एक बातकी चर्चा किये बिना मैं नहीं रह सकता, क्योंकि यह एक पुनीत स्मृति है। जब मैं उनके साथ बैरकपुरमें था तब उन्होंने मुझसे कहा था, "मैं ९१ वर्षतक जीने जा रहा हूँ और अब मैं अपने संस्मरण-सम्बन्धी पुस्तकका दूसरा संस्करण तैयार कर रहा हूँ। अभी मैं सरकारसे बहुत-सी लड़ाइयाँ लड़ूँगा और स्वराज्यवादियोंसे भी अनेक मोर्चे लूँगा। मैं इन सब बातोंमें बहुत व्यस्त रहूँगा। लेकिन क्या आप जानते हैं कि मेरी सबसे बड़ी इच्छा क्या है?" मैंने कहा, "नहीं, मुझे नही मालूम।" इसपर उन्होंने उत्तर दिया, "मैं विद्यासागरकी परम्पराओंका व्यक्ति हूँ। आप मेरी पुस्तकके प्रथम पृष्ठपर ही यह बात लिखी हुई देखेंगे। अगर मुझे अपना सारा जीवन फिरसे नये सिरेसे जीना हो तो आप जानते हैं कि मैं क्या करूँगा? मैं उपेक्षित विधवाओंकी सेवा करूँगा। मैं अनेकानेक टूटे-बिखरे घरोंके सौभाग्यको सँवारूँगा। मैं निरीह बालिकाओंपर जबरदस्ती थोपे गये वैधव्यके अभिशापको नहीं देख सकता (हर्षध्वनि)।" तो

१. देखिए खण्ड २७, पृष्ठ ११६-१८।

बंगालके नौजवान अपनी उन निरीह और अबला बहनोंको याद रखें। मुझे बंगालके हर कोनेसे उनके दुर्भाग्यकी कहानियाँ सुननेको मिलती हैं। और यह दुर्भाग्य सिर्फ बंगालमें ही नहीं, बल्कि सारे हिन्दुस्तानमें समान रूपसे देखनेको मिलता है। अभी पिछली ही रात मेरे सामने ऐसा मामला आया है। मैं उसकी चर्चा करके आपका ज्यादा समय नहीं लेना चाहता। इसका उल्लेख मैं सिर्फ इसलिए कर रहा हूँ कि बंगालके नौजवान यह समझें कि हमें क्या करना है।

इस देशकी राजनीतिक स्वतन्त्रताके लिए हमें जीवनके हर क्षेत्रमें काम करना होगा, उसे सुधारना होगा। आप राजनीतिक स्वतन्त्रता मिलनेतक सामाजिक बुराइयोंको दूर करनेका इन्तजार नहीं कर सकते। अगर हमारे बीच छोटी-छोटी बालिकाएँ इसी तरह विवाह बन्धनमें बँधकर मातृत्व-पद प्राप्त करती रहेंगी तो हमारी जाति बौनोंकी जाति बन जायेगी। फिर इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है कि हम अपनी भलाई-बुराईके सम्बन्धमें स्पष्टतापूर्वक नहीं सोच पाते; और लॉर्ड विलिंग्डनके शब्दोंमें जहाँ हमें "हाँ" कहना चाहिए वहाँ हम "हाँ" नहीं कहते और जहाँ "ना" कहना चाहिए वहाँ "ना" नहीं कह पाते। बहुत-से अंग्रेजोंने मुझसे पूछा है, "वह दिन कब आयेगा जब आप सचमुच 'हाँ' कहना चाहते हो तभी 'हाँ' कहना और जब 'ना' कहना चाहते हो तो स्पष्टतापूर्वक 'ना' कहना सीखेंगे। भले ही उसके लिए कितना ही कठिन परिणाम भोगना पड़े!

इसलिए हमें राष्ट्रीय जीवनके हर क्षेत्रमें काम करने और उसे सुधारनेकी कोशिश करनी चाहिए। यही सर सुरेन्द्रनाथको अर्पित की गई पर्याप्त स्मरणांजलि होगी (हर्षध्वनि)।

[अंग्रेजीसे]

फॉरवर्ड, १६-८-१९२५

३८. मजदूरोंकी दुर्दशा

एक सज्जनने अपने नाम और पतेके साथ मुझे निम्नलिखित पत्र भेजा है:[1]

इस पत्रमें किसी प्रकारकी अतिशयोक्ति नहीं प्रतीत होती। जिनको मजदूरोंकी दशाका तनिक भी अनुभव है, वे इस बातको जानते हैं। मजदूरोंकी स्थितिमें चाहे जितना सुधार हो जाये, इस सम्बन्धमें कोई अधिक परिवर्तन होनेकी सम्भावना मुझे दिखाई नहीं देती। प्रश्न मजदूरोंकी शिक्षाका है। जिन मजदूरोंकी बात लेखकने अपने पत्रमें की है, वे कारखानोंमें काम करनेवाले मजदूर नहीं हैं। ये दूसरे ही किस्मके मजदूर हैं। यह बात तो उन मजदूरोंकी है, जो मकान आदि चिननेका काम करते हैं। जबतक दुनिया रहेगी; ये मजदूर भी रहेंगे ही। उनकी रक्षा तो उनकी शिक्षामें

१. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखक एक मजदूर था। उसने पत्रमें उनका काम देखनेवाले ओवरसियरोंकी रिश्वत लेनेकी और मजदूर स्त्रियोंके साथ उनके अभद्र व्यवहार करनेकी शिकायत की थी।

ही निहित है। कोई कारण नहीं कि वे रिश्वत दें, कोई कारण नहीं कि वे दवकर रहें। वे रिश्वत देते हैं, दवकर रहते हैं, व्यभिचारके मूक साक्षी वनकर रह जाते हैं अथवा स्वयं व्यभिचार करते हैं, इसका कारण उनका अज्ञान तथा दौर्बल्य ही है। उनका उपचार न चरखा चलाना, है, न बुनाई करना। इनसे थोड़ी मदद अवश्य मिलती है, पर इससे मनुष्य ज्ञानी नहीं हो जाता। पत्र-लेखकने स्वयं भी दुर्बलताका परिचय दिया है। यदि माताका पेट भरने और भाईको पढ़ानेके लिए उसे यह सव अनीति देखनी पड़ती है तो उसे चाहिए कि वह खुद भूखा रहकर माँका पेट भरे और भाईकी पढ़ाई वन्द कर दे। जिस दिन वह ऐसा करेगा, उसी दिनसे उसके भाईकी तथा स्वयं उसकी शिक्षा प्रारम्भ हो गई समझी जायेगी। माता यदि अपंग न हो तो वह भी काम करे। वह या तो काते अथवा बुने। लेकिन पत्र-लेखकने जो कातनेका व्रत लिया है, उसका पालन करनेके लिए वह अपने पास हमेशा सिर्फ तकली ही रखे तो फिर उसे किसी भी दिन चरखेके अभावमें भूखों नहीं मरना पड़ेगा। और ऐसे वहादुर मजदूरोंकी संख्या जैसे-जैसे वढ़ेगी, वैसे-वैसे वे अपने आसपासका वातावरण भी शुद्ध कर सकेंगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १६-८-१९२५

३९. मेरे चौकीदार

सौभाग्यशाली है वह व्यक्ति, जिसके ऐसे चौकीदार हों, जिन्होंने विना किसीके कहे-सुने अपनी इच्छासे उसकी चौकसीकी जिम्मेदारी अपने हाथोंमें ले ली हो। मैं अपने-आपको ऐसा ही भाग्यवान व्यक्ति मानता हूँ। मेरे आलोचकोंकी कोई सीमा नहीं है। इनमें से कुछ वैर-भावसे मेरी आलोचना करते हैं, कुछ अज्ञानवश और कुछ केवल रिवाजमें पड़कर। ऐसे लोगोंसे मैं यथाशक्ति सीखता भी हूँ, लेकिन वहुत थोड़ा। जिन आलोचनाओंमें मुझे केवल कटुता ही कटुता दिखाई देती है, उन्हें मैं नहीं पढ़ता — इस भयसे कि उन्हें पढ़कर कहीं मुझे क्रोध न आ जाये और क्रोधसे मैं सम्मोहमें न पड़ जाऊँ।

परन्तु मेरे कुछ चौकीदार भिन्न श्रेणीके हैं। वे मुझे पूर्ण पुरुषके रूपमें ही देखनेको प्रयत्नशील रहते हैं। दूसरोंके दोषोंको तो वे माफ कर सकते हैं, पर मेरी छोटी-सी भूलपर भी वे व्याकुल हो जाते हैं। वैसे चौकीदारोंका मैं पुजारी हूँ। उनकी मददसे मैं पूर्ण वननेकी आशा रखता हूँ। पूर्ण वनना प्रत्येक व्यक्तिका धर्म है। अपना धर्म मैंने पहचान लिया है। मैं पूर्णता प्राप्त करना असम्भव नही मानता। सिर्फ अनुकूल परिस्थितियाँ चाहिए। और ऐसी परिस्थितियाँ मेरे चौकीदार तैयार कर रहे हैं। ऐसे ही चौकीदारोंमें से एक लिखते हैं:[1]

१. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

इन पत्रका मैं स्वागत करता हूँ। पत्र-लेखकने तो केवल तीन कोषोंके बारेमें ही लिखा है। परन्तु अपनी जिन्दगीमें मैंने तीन नहीं, तेरह नहीं, तीस नहीं, बल्कि छोटे-बड़े सब मिलाकर शायद ३०० कोषोंके लिए पैसा जमा किया होगा। मेरा एक अनिवार्य नियम है। जहाँ मन्त्री अथवा खजांचीमें मुझे विश्वास नहीं होता वहाँ मैं कोष-संग्रहमें सहायता नहीं करता। आजतक मुझे कभी ऐसा देखनेको नहीं मिला कि कोषका हिसाब रखनेवाले खुद ही कुछ पैसे खा गये हों। इसका अर्थ यह नहीं कि किसी भी कोषमें एक भी पैसेकी गड़बड़ी नहीं हुई। मन्त्री और खजांचीकी पर्याप्त सावधानीके बावजूद पैसेकी गड़बड़ी तो हुई है, पर उसमें मन्त्री आदि मुख्य अधिकारियोंको कोई दोष दिया जा सकता हो, ऐसा मैंने नहीं देखा। जिस दिन मुझे आदमीको पहचाननेकी अपनी शक्तिपर सन्देह हो जायेगा, उसी दिनसे मैं किसी भी कोषके लिए धन-संग्रह करना बन्द कर दूंगा। इसका अर्थ यह नहीं कि मेरी पहचान हमेशा सही ही होती है, परन्तु यदि पहचान करनेकी मेरी शक्तिकी परीक्षा ली जाये तो मेरा विश्वास है कि उसमें मुझे आम तौरपर पास होने योग्य अंक अवश्य मिल जायेंगे।

अब मैं उन कोषोंको अलग-अलग लेता हूँ। सत्याग्रह सभा[1] और स्वराज्य सभाके[2] कोषोंका हिसाब रखा गया है। उनकी आत्मा भाई शंकरलाल बैंकर थे। ये कोष छोटे-छोटे थे तथा इनके हिसाबकी बहियाँ मौजूद हैं।

जलियाँवाला बाग स्मारक-कोष बड़ा कोष[3] था। दस लाख तो नहीं, पर वह पांच लाखके आसपासतक गया है। उसकी आत्मा भारतभूषण पण्डित मदनमोहन मालवीयजी थे। इसका पाई-पाईका हिसाब कई बार प्रकाशित किया जा चुका है और उसे पुस्तक रूपमें भी बेचा गया है तथा वह समाचारपत्रोंमें भी छापा गया है। इस रकममें से कुछकी जमीन खरीदी गई थी। आज तो उसमें एक सुन्दर बगीचा है, जिसकी भली प्रकार देखभाल की जाती है। यदि इस कार्यमें और अधिक प्रगति नहीं हुई तो उसका मुख्य कारण शायद मैं ही हूँ। उसकी शुरुआतके समय जो आशाएँ हमें थीं, वे अब नहीं रहीं। इस स्मारकके लिए कुछ भी बनवाना तभी शोभा दे सकता है जब साम्प्रदायिक झगड़े बन्द हो जायें। पाठकोंको यह जानकर दुःख होगा कि आज तो वह बाग भी झगड़ेका विषय बन गया है। एक बेकारकी इमारत चिनवानेमें पैसा खर्च करनेकी मेरी हिम्मत नहीं होती। यदि कोई उपयुक्त इमारत मौजूदा न्यासियोंकी जिन्दगीमें नहीं बनती तो भविष्यमें बन जायेगी। इस बीच मुझे इस बातका सन्तोष है कि पैसा ठीक लोगोंके हाथोंमें है।

सबसे बड़ा कोष तिलक स्वराज्यकोष था। उसकी आलोचना भी खूब हुई। उसका हिसाब पूरी तरहसे रखा गया था और वह आज भी मौजूद है। उसे पुस्तकके रूपमें भी प्रकाशित किया गया है। लेखा-परीक्षकोंने हिसाबको जाँचा है। मेरी यह

१. इसकी स्थापना गांधीजीने १९११ में बम्बईमें की थी।

२. ऑल इंडिया होमरूल लीग; अप्रैल १९२० में इसका अध्यक्ष पद स्वीकार कर लेनेके बाद गांधीजीने इसका नाम स्वराज्य-सभा रखा।

३. देखिए खण्ड १७, पृष्ठ ३३-३४।

दृढ़ मान्यता है कि इस कोषमें कमसे-कम अव्यवस्था हुई है। यह कहा जा सकता है कि उसे खर्च करनेमें पूरी कुशलतासे काम नहीं लिया गया। यह अनिवार्य था। परन्तु जब लोगोंके किसी संघकी मार्फत पहले-पहल इतनी मोटी रकमके उपयोगका मौका आता है तब सामान्यतया कुशलताकी जो कमी दिखाई देती है, उसकी तुलनामें तो यह कम ही थी। इसका कारण कांग्रेसके मन्त्री और खजांचीका सतत सजग रहना था। जितनी रकम किसी व्यापारीकी पेढ़ीमें बट्टे खातेमें डाल दी जाती है, इस कोषमें उतना नुकसान भी नहीं हुआ। एक सामान्य पेढ़ी भी दस प्रतिशत बट्टे-खातेमें डालती है। दक्षिण आफ्रिकामें बहुत-से बड़े-बड़े व्यापारियोंको तो मैंने २५ प्रतिशत तक बट्टेखातेमें डालते देखा है। कांग्रेसका तो एक प्रतिशत भी शायद ही बट्टे-खातेमें गया हो। ऐसा कहनेमें मेरी भूल हो सकती है; यह एक प्रतिशतके बजाय दो प्रतिशत हो सकता है, पर दस प्रतिशत तो किसी हालतमें नहीं। पाठकोंको मालूम होना चाहिए कि कोषकी यह रकम अभी निःशेष नहीं हुई है। इस कोषमें से हमनें लाखों रुपयेका खादी-व्यापार किया है, इस कोषमें से बम्बईमें एक मकान खरीदा गया है। इस कोषसे हजारों चरखे चलाये गये हैं, तथा भारतवर्ष-भरमें आज भी जो राष्ट्रीय पाठशालाएँ हैं, वे इसी कोषकी रकमसे चलाई जाती हैं। कोषकी एक भी पाई विदेशमें खर्च नहीं की गई। कोषोंमें पढ़ियार[1]-कोष भी उल्लेखनीय है; यद्यपि उसकी रकम बहुत छोटी है। उसके उपयोगके विषयमें मतभेद हो सकता है। पर उसके पैसेकी जाँच मैंने की थी। मैं इतना जानता हूँ कि उसमें से एक भी रुपयेका दुरुपयोग नहीं हुआ, तथा उसका पैसा सच्चे-ईमानदार लोगोंके हाथोंमें है।

पिछले वर्ष मलाबारके संकटके निवारणार्थ मुझे पाठकोंने काफी धन दिया था।[2] उसमें से जितने धनका उपयोग किया गया, उसका विगतवार हिसाब दक्षिण भारतके पत्रोंमे प्रकाशित किया गया है। अब भी उसमें से कुछ रकम मेरे पास बैंकमें पड़ी हुई है। मै यहाँ उसके आँकड़े नहीं दे सकता। इस रकमका सदुपयोग कहाँ किया जा सकता है सो मै सोच रहा हूँ। मेरी जानमें तो उसमें से एक कौड़ीकी भी बर्बादी नहीं हुई है।

अब बंगालके देशबन्धु स्मारक कोषको लें। बंगालके अच्छेसे-अच्छे व्यक्ति उसके न्यासी हैं।[3] सारा प्रबन्ध सात व्यक्तियोंके हाथमें है। इस कोषकी धनराशिसे दो लाख रुपयेका कर्ज चुकाया गया; और इससे जनताको तीन लाख रुपयेकी कीमतका एक बड़ा मकान मिला। उस मकानमें शीघ्र ही एक अस्पताल खोलनेकी तजवीज चल रही है। इस कार्यका संचालन यहाँके प्रसिद्ध डाक्टर विधान [चन्द्र] राय कर रहे हैं। इसलिए मेरा विश्वास है कि इस कोषका उपयोग जैसा हम सोचते हैं, उसी तरहसे होगा।

और अन्तमें अखिल भारतीय देशबन्धु स्मारक कोषको लीजिए। कोषका अध्यक्ष होनेके नाते अभी तो उसकी जवाबदेही मेरे ऊपर ही है। उसके न्यासियोंको चुननेमें

१. सुन्दरजी पढ़ियार; गांधीजीकी प्रशंसाके पात्र एक गुजराती लेखक।

२. देखिए खण्ड २५, पृष्ठ २-४।

३. देखिए "सार्वजनिक निधियाँ", २०-८-१९२५।

मेरा मुख्य हाथ है। मै चाहता हूँ कि इस कोषकी व्यवस्थाके आधारपर मेरी शक्तिका अन्दाज लगाया जाये। उसके मन्त्री और खजांची जाने-माने जनसेवक है। उसका हेतु तो चरखा और खादीप्रचार है। मै जितना ही इस देशका भ्रमण करता हूँ, इसे देखता हूँ, मुझे इस चीजकी आवश्यकता उतनी ही अधिक दिखाई देती है। अपने जीवनका शेष भाग मै इसी काममे लगाना चाहता हूँ। पर ईश्वरको क्या मजूर है, वह मै नही जानता।

गोरक्षाका कार्य तो करना ही है। यह काम बूतेके बाहरका है। मै किसी अच्छे मारवाड़ी खजांचीकी खोजमें हूँ। मन्त्री-पदके सम्बन्धमे बहुत-से पत्र मेरे पास आये है। उनमें से किसी एकको चुनना है। पर अभी तो कोषकी बात ही करूँ। इस कोषके बाद मुझे कोई और कोष इकट्ठा करनेकी तनिक भी इच्छा नही है। दस लाख रुपये जमा हों अथवा न हों, इस महीनेके अन्तमे बंगालके कोषके लिए धन इकट्ठा करना बन्द कर दिया जायेगा। अखिल भारतीय स्मारककी शुरुआत मैंने बहुत थोड़ी-सी रकमसे जमशेदपुरमें की। पुरुषों द्वारा इकट्ठे किये गये ५,००० रुपये बंगाल कोषमे जायेंगे। स्त्रियोंने मुझे जो-कुछ दिया, उसका उपयोग अखिल भारतीय कोषमें किया जायेगा। यह रकम एक हजारसे ऊपर है। ५०० रुपयेसे कुछ ज्यादाकी एक रकम गुजराती भाइयोंकी दी हुई है और ५०० रुपये सिख भाइयोंने भी दिये है। ये दोनों रकमें इसी कोषमें जायेंगी। ऐसा करनेका कारण यही है कि जमशेदपुर बिहारमें है। बंगालको जो दस लाख देने है, वह रकम बंगाल तथा अन्य प्रान्तोंमे रहनेवाले बंगालियोंसे मिलनी चाहिए। यदि अन्य प्रान्तोके भारतीय भाई अपनी इच्छासे इस कोषमें योग देना चाहें तो उसे अस्वीकार नही किया जायेगा। लेकिन उसके लिए कोई आग्रह नही किया जायेगा। और जहाँ यह चीज मेरे निर्णयपर छोड़ दी गई हो, वहाँ ऐसी रकम अखिल भारतीय स्मारक कोषको दे देना मेरा धर्म हो जाता है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १६-८-१९२५

४०. टिप्पणियाँ

जमशेदपुरका दौरा

जमशेदपुरका मूल नाम साकची था। यह बिहारमे है। यहाँ लोहेका कारखाना खडा करनेकी कल्पना जमशेदजी टाटाके मनमें आई थी और आज यह दुनिया-भरमें अधिकसे-अधिक लोहा पैदा करनेवाले स्थानोंमें से एक है। पहले यह एक वीरान जगह थी। लेकिन आज वहाँ एक लाख छः हजार लोग रहते है। इनमे बंगाली, बिहारी, सिग्ख, काबुली, पारसी, ईसाई — इस प्रकार सभी कौमो और सम्प्रदायोंके लोग है। यहाँ एक नही, अनेक कारखाने है। इस सबके निर्माणका श्रेय जमशेदजी टाटाके साहसको है। इसीलिए गवर्नर या वाइसरायने इसका नाम जमशेदपुर रखा। श्रमिक लोग इसे टाटानगरके नामसे भी जानते है।

इस कारखानेको देखनेका खयाल तो मेरे मनमें कई वर्षो पूर्व आया था, लेकिन एकके बाद एक ऐसा संयोग आता गया कि मैं वहाँ नही जा सका। इस बार भी अगर एन्ड्रयूजने मजदूरोंकी खातिर मुझसे वहाँ जानेको न कहा होता तो मैं वहाँ जा नही पाता। लेकिन एन्ड्रयूज और ऐसे ही कई दूसरे लोग मुझे लाचार कर सकते हैं और अपनी इच्छानुसार जिधर ले जाना चाहे, घसीट कर ले जा सकते हैं। इसलिए मैं जमशेदपुर गया और वहाँ दो दिन ठहरा।[1]

लेकिन इतने बड़े कारखानेमे कोई दो दिनमें क्या-क्या देख सकता है? मैं एक भी चीज पूरी तरह नही देख सका। मैं खुद एक मजदूर ही हूँ और मजदूरोंकी सेवाके लिए ही वहाँ गया था; फिर भी मजदूर लोग किन परिस्थितियोमें रहते हैं, मैं इसका कोई अंदाजा नही पा सका। उनके घर-आँगन देखे बिना मैं उनके बारेमें क्या जान सकता था?

फिर भी मेरे मनपर जो छाप पड़ी, वह यह है। वहाँकी आबहवा अच्छी है। लोगोंको पानी बहुत अच्छा मिलता है। मकान बाहरसे अच्छे लगते हैं। बाहरसे देखनेमें लोग भी सुखी लगे। सड़कें अच्छी दिखी। मजदूरोंके संघके अध्यक्ष श्री एन्ड्रयूज हैं। तीन बातोंका कोई निबटारा नही हो पाया था, लेकिन थोड़ीसी बातचीतसे वे निबट गईं। मजदूर संघको पेढ़ी मान्यता दे; संघ अपनी इच्छाके अनुसार अपने पदाधिकारियोंकी नियुक्ति स्वयं करे, संघके मन्त्री श्री सेठी बने रहें और उन्हें फिरसे पेढ़ीमें नौकरी देनेके सवालपर श्री रतन टाटा विचार करें; यदि मजदूर लिखित अर्जी दें तो पेढ़ी उनके द्वारा संघको दिया जानेवाला उनका चंदा पेढीको जितने समय ठीक लगे उतने समयतक उनके वेतनमें से सीधा काट लिया करे और चन्देकी वह रकम संघको दे दे; संघ अपने अस्तित्वका उपयोग मुख्य रूपसे मजदूरोंकी आन्तरिक स्थिति सुधारनेमे करे — इन तमाम बातोंको स्वीकार करके इस पेढ़ीने अपना नाम गौरवान्वित किया है। अब मजदूरोंको अपना फर्ज अदा करके दिखाना है।

इस बार मैं महादेवको अपने साथ ले जा सका था, इसलिए पाठक उनके लेखोंमें सारा विस्तृत वर्णन पानेकी आशा रख सकते हैं।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १६-८-१९२५

१. अगस्त, १९२५ के दूसरे सप्ताहमें।

४१. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

श्रावण कृष्ण १३
[१७ अगस्त, १९२५]

भाईश्री ५ घनश्यामदासजी,

आपका पत्र फलाहारके विषयमें मीला है। मैंने कई वर्षोंतक केवल सूका और 'लीला' [ताजा] मेवा हि खाया है। उससे मुझको कुछ भी हानि नहिं हुई। उसी समय मैंने नीमकका भी त्याग कीया था। आपको मैं इस प्रयोग करनेकी सलाह नहिं दे सकता हूं। परन्तु आप यदि नीमकका और घीका कुछ अरसे तक त्याग करे तो विषयाग्निको शान्त करनेमें अवश्य सहाय मीलेगी। मसाला, पानसोपारी इ०का तो त्याग होना हि चाहिये। केवल भोजनके संयमसे मनुष्य कामादिको नहिं जीत सकता है। परंतु संयमी एक भी बाह्योपचारको छोड़ नहिं सकता है। विषयोका आत्यतिक क्षय तो परके दर्शनसे हि हो सकता है, यह 'गीता'—वाक्य है और सत्य है। आरोग्य दिग्दर्शन नामका मेरा पुस्तक आप अवश्य पढ़ें यदि आपने न पढ़ा हो तो। उसका हिंदी अनुवाद वर्षोंसे छप चुका है।

आपका स्वास्थ्य अब बिलकुल अच्छा हो गया होगा। आपकी धर्मपत्नीकी शाति चाहता हु।

आपका,
मोहनदास गांधी

मूल पत्र (सी० डब्ल्यू० ६११२) से।
सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला

४२. पत्र : देवचन्द पारेखको

सोमवार, १७ अगस्त, १९२५

भाईश्री ५ देवचन्दभाई,

आपका पत्र मिला। मुझे पहली योजना पसन्द तो जरूर है, लेकिन उसके विषयमें और अधिक विचार करनेकी जरूरत है। मैं ५ तारीखको आश्रम पहुँचनेकी उम्मीद रखता हूँ। वहांसे ९ तारीखको फिर लौटना पड़ेगा। लेकिन इन चार दिनोंमें हम कुछ लोग मिलकर बातचीत कर ले तो अच्छा हो। मुझे भय यह है कि कहीं ऐसा न हो कि हमारी छूटका लाभ सुखी लोग ही उठा ले और दुःखी लोग रह जायें। हमारी मान्यता यह है कि चरखा दुखीका दुःख दूर करता है। फिर, हमारी यह मान्यता भी है कि काठियावाड़में गरीबी बढ़ती जा रही है। अगर यह मान्यता सही

न हो तो हमें नये सिरेसे विचार करना होगा। हमें दो वातोंको ध्यानमें रखना चाहिए। एक तो यह कि खादी इतनी सस्ती कर दें कि उसे गरीव लोग भी पहन सकें और दूसरे यह कि जिन्हें एक-एक पैसेकी तंगी है, उन्हें चरखा देकर काम दें। एक तीसरी बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि हमें अमुक अवधिके वाद वोनस देना वन्द करना है और उसके बन्द होनेके वाद भी काम वन्द न हो जाये। इन सव वातोंपर हम मिलनेपर ही विचार करेंगे।

जो दिन मुकर्रर करना हो, वल्लभभाईसे कहकर मुकर्रर कर लीजिए। इसमें परिषद्की समितिको भी शामिल करना हो तो कर लीजिए।

मताधिकार समितिकी बैठक तो हुई ही नहीं। आखिर भारतीय कांग्रेस कमेटी अपनी बैठकमें जो करना चाहेगी सो करेगी। मेरे कुछ सुझावोंपर जवाहरलाल विचार कर रहा है। कुछ ही दिनोंमें इस सम्वन्धमें मैं एक मसविदा घुमानेवाला हूँ।

मोहनदासके वन्देमातरम्

गुजराती पत्र (जी० एन० ५७२५) की फोटो-नकलसे।

४३. पत्र : वसुमती पण्डितको

सोमवार, [१७ अगस्त, १९२५][1]

चि० वसुमती,

इन दिनों इतनी भाग-दौड़ रहती है कि मुझे न तो पत्र लिखनेका ध्यान रहता है और न समय ही मिलता है। लेकिन मुझे ऐसा लगता है कि तुम्हारा चित्त शान्त है; इसलिए मैं लिख न पाऊँ तो भी चिन्ता नही करता। लेकिन मैं लिखूं या न लिखूं, तुम्हारे पत्रोंकी आशा अवश्य करता हूँ। उनमें दिनचर्याका विवरण भी होना ही चाहिए।

तुम्हारी तवीयत अव और ज्यादा सुवरती जानी चाहिए।

कल उड़ीसाके लिए रवाना हो रहे हैं।

वापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यु० ५१३) की फोटो-नकलसे।

सौजन्य : वसुमती पण्डित

१. गांधीजी अपनी उड़ीसा यात्राके लिए १८ अगस्तको रवाना हुए थे।

४४. भाषण : रोटरी क्लबके सदस्योंकी बैठकमें[1]

कलकत्ता
१८ अगस्त, १९२५

श्री गांधीने कहा कि मेरी सुविधाका खयाल करके यहाँ आपने इस भोजमें सिर्फ आलू और गोभी, यानी बंगाली विधवाओंका आहार परोसा है और फिर मुझे एक ऐसे विषयपर बोलनेके लिए आमन्त्रित किया है, जो शायद उतना ही नीरस है जितनी कि हमारे सामने परोसी गई यह भोज्य-सामग्री। आपके इस सौजन्यके लिए मैं आप लोगोंको धन्यवाद देता हूँ। धन्यवाद-ज्ञापन के बाद अपना भाषण आरम्भ करते हुए उन्होंने कहा :

चरखा कोई आकर्षक शब्द नहीं है, यद्यपि मैं देखता हूँ कि आपकी पत्रिकाका नाम चरखा ही है। मैं नहीं जानता था कि अपनी पत्रिकाके नामकरणमें यहाँ आपने एक भारतीय शब्दको ही अपनाया है। इसका मतलब है चक्र; और आप जानते हैं कि चक्र एक शक्तिशाली वस्तु है। आज मैं आपको इस चक्र या चरखे अथवा तकलीकी, जिसे कि मैं अपने हाथमें लिये हुए हूँ, (दिखाते हुए) शक्ति समझानेके लिए ही यहाँ आया हूँ। मैंने मजाकके तौरपर अकसर अपने मिल-मालिक मित्रोंसे कहा है कि मेरा इरादा तो इसी तकलीके बलपर आपसे होड़ करनेका है। लेकिन परिहाससे परे इस बातकी अपनी गम्भीरता भी है।

सबसे पहले तो इसके आर्थिक महत्त्वको लीजिए। आप तो जानते ही हैं कि यह भारत देश उत्तरसे दक्षिण १९०० मीलकी लम्बाईमें और पूर्वसे पश्चिम १५०० मीलकी चौड़ाईमें फैला हुआ है और इस विस्तृत क्षेत्रमें ७,००,००० गाँव हैं। इनमें से अधिकांशमें अभी रेल नहीं पहुँच पाई है। एक समय ऐसा था जब चरखा इस भारी कृषक आबादीका पूरक धन्धा था। जैसा कि सरकारी आँकडोंसे ज्ञात होता है, आज भारतके ८५ प्रतिशत लोग किसान ही हैं। सरकारी आँकडोंसे हमें यह भी मालूम होता है कि भारतकी आबादीके इन ८५ प्रतिशत लोगोंके पास वर्षमें चार महीने बिलकुल ही रोजगार नहीं होता। कुछ जानकार लोगोंने मुझे बताया है कि बंगालमें ऐसे लोग भी हैं जिनके पास वर्षमें छ: महीने कोई काम नहीं होता। आप आसानीसे कल्पना कर सकते हैं कि जो आदमी हर साल चार या छ: महीनेका वेतन-रहित अवकाश ले, उसकी क्या हालत होगी। ऐसी छुट्टी तो भारतके वाइसराय भी नहीं ले सकते। मेरा खयाल है कि व्यवसायी लोग भी, भले ही वे करोड़पति हों, इतनी छुट्टी नहीं ले सकते और इतने दिनोंतक अपना व्यापार किये बिना नहीं रह सकते। भारतकी इन विशाल कृषक आबादीके लिए तो, जिनके बारेमें ३० साल पहले इतिहासकार विलियम हंटरने लिखा था कि वे तो 'रोज कुँआ खोदो और रोज पानी पिओ'

1. रोटरी क्लबकी यह बैठक ग्रेट ईस्टर्न होटलमें हुई थी; मुख्य अतिथि और वक्ता गांधीजी थे।

वाली जिन्दगी जीते हैं, इतनी छुट्टी लेनेकी और भी कम गुंजाइश है। सर विलियमने कहा था कि भारतकी आबादीका दसवाँ हिस्सा प्रतिदिन एक ही वक्त खाकर रहता है और एक वक्तके खानेमें भी उसे सूखी रोटी और चुटकी-भर गन्दे नमकके अलावा और कुछ नहीं मिलता है। वे नहीं जानते कि दूध या घी क्या चीज है और न उन्हें कोई सब्जी ही मिलती है।

जैसा कि आप जानते हैं अकाल भारतके लिए एक पुराना रोग बन गया है। लेकिन यह पैसेका अकाल है। आप सब व्यवसायी लोग हैं, इसलिए मैं आप लोगोंसे कहता हूँ कि ऐसे लोगोंके लिए किसी एक पूरक धन्धेका होना अत्यन्त आवश्यक है, और अगर यह अत्यन्त आवश्यक है तो उस पूरक धन्धेमें कुछ ऐसी खूबियाँ होनी चाहिए जिससे कि वह इस विशाल जन-समुदायके उपयुक्त हो सके। इसलिए इस धन्धे-को ऐसा भी होना चाहिए, जिससे सबका सम्बन्ध हो। यह धन्धा ऐसा होना चाहिए जिससे उत्पन्न मालकी आवश्यकता सारी आबादीको हो और इसलिए जिसे सब लोग खरीदना चाहें। इसलिए यह सुझाव बेकार होगा कि उन्हें विलासिताकी चीजें बनानी चाहिए। फिर, यह काम ऐसा होना चाहिए, जिसे वे आसानीसे सीख सकें। जिस उत्पादनमें बहुत कौशलकी जरूरत हो या जिसके योग्य यन्त्र तैयार करनेमें बहुत कारी-गरीकी जरूरत हो या जिसका उत्पादक यन्त्र बहुत महँगा हो, वह भी उपयोगी सिद्ध नहीं होगा।

उपस्थित लोगोंको एक छोटी-सी तकली दिखाते हुए श्री गांधीने कहा कि इस छोटेसे साधनसे प्रति घंटे ५० गज सूतका उत्पादन हो सकता है। चरखेपर औसतन प्रति घंटे ४०० गज सूत काता जा सकता है। चरखेपर अभीतक प्रति घंटे अधिकसे-अधिक ८५० गज सूत काता गया है। मिलके तकुवेपर अभीतक प्रति घंटा १० अंक-का ८५० गज सूत नहीं काता जा सका है। यह तो सिर्फ आदमीके हाथके कौशलसे ही सम्भव है। मिल तो इतना ही कर सकती है कि चन्द औरतें शक्तिकी सहायतासे हजारों तकुओंको एक-साथ चलायें। यह अच्छी चीज है, इसका अपना स्थान है। मैं मशीनको उसके उचित स्थानसे हटाना नहीं चाहता। मैं यह कहनेका साहस करता हूँ कि भारतके इन करोड़ों किसानोंके लिए चरखेके समान कोई दूसरा सर्वग्राह्य गृह-उद्योग नहीं है। गाँवोंमें आने-जानेवाले व्यक्ति देख सकते हैं कि वहाँ अब भी चरखा बिलकुल लुप्त नहीं हो गया है — वहाँ किसी-न-किसी प्रकारका चरखा आज भी है। सारे भारतमें स्त्रियाँ इसे बिना किसी कठिनाईके अपना पा रही हैं। क्योंकि यह चीज उनके संस्कारमें है। वे उसे पहचानती हैं। लेकिन एक दूसरी शर्त भी पूरी करनी है। चरखेके उत्पादनका उपयोग कौन करेगा? स्वभावतः भारतके लोग — जैसा कि वे २०० वर्ष, बल्कि सिर्फ १०० वर्ष पहले भी करते थे। उस समय एक-एक भारतीय भारतकी स्त्रियोंके द्वारा काते हुए सूतसे भारतके बुनकरों द्वारा बुने कपड़े पहनता था। बुनाई-उद्योग बिलकुल समाप्त नहीं हुआ है, लेकिन कताई-उद्योग खत्म हो गया है और इसका कारण यह है कि कताई-उद्योग अपने आपमें एक बहुत बड़े जन-समुदायका निर्वाह नहीं कर सकता। यह तो एक पूरक उद्योग ही हो सकता

है और इसलिए इस उद्योगमें अपने विनाशके प्रतिरोधकी वैसी शक्ति नहीं थी जैसी कि बुनाई उद्योगमें थी और इसका सीधा-सा कारण यह है कि जहाँ बुनकर लोगोंका एकमात्र उद्योग बुनना है जबकि [कातना किसीका मुख्य धंधा नहीं है;] किसानोंका मुख्य धन्धा खेती है। भारत ६० करोड़ रुपयेका विदेशी सूत मँगाता है और उतने ही मूल्यका सूत यहाँकी मिलें तैयार करती हैं। आप आसानीसे कल्पना कर सकते हैं कि भारत-जैसे गरीब देशके लिए, जहाँ लॉर्ड कर्जनके अनुसार उनके समयमें प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष सिर्फ ३० से ३२ रुपयेतक ही कमाता था, इसका क्या अर्थ है। स्वर्गीय श्री दादाभाई नौरोजीने भारतीयोंकी औसत वार्षिक आय २६ रुपये कूती थी। स्वर्गीय श्री आर० सी० दत्तने लॉर्ड कर्जनके कथनसे असहमति प्रकट की थी और मेरा विचार है कि यह बात सफलतापूर्वक सिद्ध कर दी गई है कि श्री दादाभाई द्वारा कूती गई आय ज्यादा विश्वसनीय और सही है। लेकिन अगर लॉर्ड कर्जन द्वारा कूती गई आयको ही लें तो उससे क्या प्रकट होता है? प्रतिमास ३ रुपयेसे भी कम। अगर चरखा उनकी आयमें प्रतिवर्ष ५-६ रुपयेकी भी वृद्धि कर सके तो क्या यह उनका सौभाग्य नहीं होगा? अवश्य होगा। यह तो चरखेका आर्थिक पक्ष हुआ। यह आर्थिक कष्टकी समस्याको बहुत-कुछ हल कर सकता है। यह अकालकी समस्याको हल कर देगा। यह गरीबीकी समस्याको हल कर देगा। लोगोंको दानपर जीनेकी जरूरत नहीं है। यह दाताके लिए भी लज्जाजनक है और उस दान लेनेवालेके लिए भी, जिसको कि भगवानने हाथ-पैर दे रखे हैं।

चरखेके नैतिक पक्षकी चर्चा करते हुए श्री गांधीने कहा कि यह आर्थिक पक्षका ही स्वाभाविक परिणाम है। अगर आप लोग भारतको कल-कारखानोंसे भरकर इंग्लैंड और अमेरिकाके ढंगपर उसका उद्योगीकरण करना ही चाहें तो [मेरा कहना है कि] एक छोटी-सी आबादीको तो औद्योगिक ढाँचेमें ढाला जा सकता है, लेकिन किसी बड़ी आबादीवाले देशको आनन-फाननमें औद्योगिक रूप नहीं दिया जा सकता। उन्होंने पूछा :

क्या आप लोगोंको शहरोंकी गन्दी बस्तियोंकी सन्दूकनुमा कोठरियोंमें रहनेपर मजबूर करना चाहते हैं, जहाँ स्त्रियों और पुरुषोंको बाड़ोंमें जानवरोंकी तरह ऐसी परिस्थितियोंमें रहना पड़ता है, जिनका मैं आपके सामने वर्णन नहीं कर सकता। मैं उन्हें यह धन्धा देकर ऐसी अनैतिकतासे बचाता हूँ। इसका एक दूसरा नैतिक लाभ भी है। कोई व्यक्ति कैसा है, यह बात अक्सर उसके धन्धेको देखकर ही जानी जाती है। अंग्रेजीकी इस कहावतमें बहुत सचाई है कि 'जब पुरुष, सिर्फ खेती करता था और स्त्री कताई करती थी तब वे उन लोगोंकी तरह कहाँ थे जिन्हें आप सभ्य कहते हैं?' वह ऐसा समय था जब लोग सचमुच सन्तुष्ट थे और उनके बीच सच्चा भ्रातृत्व था।[1]

१. इसके बादके तीन अनुच्छेद यंग इंडिया, २७-८-१९२५ में छपे महादेव देसाईके यात्रा-विवरणसे उद्धृत किये गये हैं।

अगर मिल धनी लोगोंकी थैली भरनेका साधन है तो चरखा आध्यात्मिक दृष्टिसे निश्चय ही उससे श्रेष्ठ है, क्योंकि वह उनकी थैली नहीं भरता, बल्कि करोड़ों भूखे और जरूरतमन्द लोगोंकी जेबमें चार पैसे डालता है।

मैंने बहुत पहले ड्रुमंडकी कृति 'द नेचुरल लॉ इन द स्पिरिचुअल वर्ल्ड' (आध्यात्मिक संसारमें प्राकृतिक नियम') बड़ी रुचिके साथ पढी थी और मुझे पूरा विश्वास है कि अगर मुझमें उस लेखककी तरह सुन्दर ढगसे लिखनेकी शक्ति होती तो मैं इस तथ्यका प्रतिपादन उससे भी ज्यादा अच्छी तरह कर सकता था कि प्राकृतिक संसारमें भी एक आध्यात्मिक नियम है।

मैंने बहुत समझदार लोगों द्वारा लिखी ऐसी पुस्तकें पढ़ी है, जिनमें भूखे और रोगी तथा कमजोर लोगोंकी जातिको बिजलीके मारक-यंत्रके जरिये समाप्त कर देनेकी वकालत की गई है। यह एक उत्तम आर्थिक उपाय हो सकता है, लेकिन यह मानवीय या आध्यात्मिक उपाय नहीं है। चरखेके रूपमें मैं अपने देशभाइयोंके सामने एक आध्यात्मिक उपाय प्रस्तुत कर रहा हूँ। यह ऐसा उपाय है, जिससे उनका युगोंसे परिचय है; यह ऐसा उपाय है, जिसका अगर वे संजीदगीसे प्रयोग करें तो वह उन्हें शहरी और कारखानोंकी जिन्दगीके बुरे परिणामोंसे बचा सकता है। फिर इस सीधे-सादे यन्त्रका मनपर जो प्रभाव पड़ता है, उसके विषयमें क्या कुछ कहनेकी जरूरत है? इसको आजमाकर देखनेवाले बहुतसे लोग इस बातकी साक्षी दे रहे हैं कि इसने उनके उद्भ्रान्त और विकल मनको शान्ति दी है। और महाकवि गेटेने तो उसके इस प्रभावको युगोंतक जीवित रहनेवाले गीतमें पिरो दिया है। उन्होंने अपने नाटककी नायिका मारग्रेटको चरखेपर सूत कातते हुए चित्रित किया है। चरखा चलाते हुए वह आह्लादित हो उठती है और उसके होठोंसे वैसा ही निर्दोष गीत फूट पड़ता है जैसा निर्दोष सूत वह चरखेपर कात रही है। मैं आविष्कारोंका विरोध नहीं करता, लेकिन जिस तरह अनुपयुक्त स्थानमें रखी चीजें गन्दगी है, उसी तरह अनुचित उद्देश्योंसे किये गये सभी आविष्कार घृणास्पद हैं। आविष्कार यदि मानवीय गरिमाकी रक्षा करने और शान्ति देनेमें सहायक नहीं है, तो त्याज्य हैं।

इसके बाद लोगोंसे प्रश्न पूछनेको कहा गया। श्री ए० टी० वेंस्टनने कहा कि श्री गांधीकी बातोंसे मुझे ऐसा लगता है कि कताईके साथ-साथ बुनाई भी जरूरी है। तब फिर बड़े पैमानेपर बुनाईके लिए मिलके बने सूतका प्रयोग क्यों न किया जाये? श्री गांधीने जवाब दिया कि भारतके करोड़ों लोगोंमें से हरएक अपने खाली समयमें कताई कर सकता है, लेकिन वे सब इसी तरह बुनाई नहीं कर सकते। इसीलिए मैंने चरखेको सबसे मुख्य माना है।[1]

१. इसके बादका हिस्सा यंग इंडिया, २७-८-१९२५ में प्रकाशित महादेव देसाईके यात्रा-विवरणसे लिया गया है।

गांधीजीने अपने भाषणमें चरखेके राजनीतिक पहलूपर जानबूझकर कोई चर्चा नहीं की थी, लेकिन अन्तमें बोलनेवाले रोटरी-सदस्य डा० सर्वाधिकारीने उन्हें उसकी चर्चा करनेको बाध्य कर दिया। उन्होंने इस आशयका एक सवाल पूछ लिया कि 'अगर चरखेने हिन्दू कर्मकाण्डमें इतनी बड़ी भूमिका निभाई है और बंगाली परिवारोंमें वह एक जीवन्त वस्तुकी तरह विद्यमान है तो फिर इसका प्रयोग बन्द कैसे हो गया? क्या चरखेसे उत्पादित होनेवाली चीजकी भारी कीमतके कारण ही ऐसा नहीं हुआ है?' श्री गांधीने कहा कि इसका एक आध्यात्मिक पहलू भी है। अगर मुझे रानी एलिजाबेथकी तरह सत्ता प्राप्त होती तो मैं इस सवालको उसी तरह हल करनेकी कोशिश करता जिस तरह उन्होंने हल किया। उन्होंने अपनी प्रजाके लिए हालैंडके लेसका प्रयोग अपराध घोषित कर दिया और अपने देशवालोंको लेस बनाना सिखानेके लिए विदेशोंसे कारीगर बुलाये और तबतकके लिए लेसका प्रयोग बन्द करवा दिया। मैं पूरी तरहसे खुले व्यापारका समर्थक नहीं हूँ; और अगर मेरी चले तो भारी आयात-कर लगा कर सभी विदेशी कपड़ोंका आयात बन्द करवा दूँ। इसके बाद उन्होंने जोशमें आकर कहा:

आप पूछते हैं, यह उद्योग खत्म कैसे हुआ? उत्तर दु:खद है, लेकिन मैं दूँगा। मेरा उत्तर है कि वह अपने आप खत्म नही हुआ, जानबूझकर उसका गला घोटा गया है।

यहाँ मैं ईस्ट इंडिया कम्पनीके इतिहासको दूषित करनेवाले उसके रोमांचकारी दुष्कृत्योंकी कहानी कह सकता हूँ, लेकिन कहूँगा नहीं।

कोई भी ईमानदार स्त्री या पुरुष ईस्ट इंडिया कम्पनीके इतिहासके पन्ने, जिन्हे भारतीयोंने नही बल्कि कम्पनीके नौकरोंने ही लिखा है, उलट कर देखे तो उसका खून खौल उठेगा। आप इसी बातसे स्थितिका अनुमान लगा सकते है कि लोग अत्याचारोंसे बचनेके लिए अपने अँगूठे काट लिया करते थे।

जैसा कि डा० सर्वाधिकारीने कहा, चरखा अब सभी भारतीय घरोंमें जीवित नहीं है। उसे तो समाप्त कर दिया गया था; अब उसे फिरसे जीवित किया जा रहा है। हर देशको अपने उद्योगोंका संगठन करना पड़ता है, और अगर आपको अपने देशमें उत्पन्न मालके लिए शुरूमें ज्यादा कीमत देनी पड़े तो इसमें कोई हर्ज नहीं है। इस क्लबका सिद्धान्त है "स्वार्थसे पहले सेवा" मैं आपको इसकी याद दिलाकर आपसे यह कहना चाहता हूँ:

आप लोग भारतकी जनताके हितोंके रक्षक हैं। आपको स्वार्थसे पहले सेवाका ध्यान रखना है, और आपको उन लोगोंको यह सिखाना है कि जब वे अपने ही घरोंमें कपड़ा तैयार कर सकते हैं तो उन्हें मैंचेस्टरके या मिलके बने कपड़ोंका उपयोग नही करना चाहिए।

उन्होंने एक विदेशी नौ-परिवहन कम्पनी और ब्रिटिश नौ-परिवहन कम्पनीके बीचकी प्रतिस्पर्धाका उदाहरण दिया और कहा कि इस होड़में विदेशी कम्पनियाँ यहाँतक करती थीं कि डेकके यात्रियोंको लगभग बिना कीमतके टिकट देती थीं, जबकि किसी समय डेकके एक टिकटकी कीमत ९१ रुपये थी।

स्वस्थ उद्योग ऐसी होड़में नहीं टिक सकता। आप ऐसी अनैतिक स्पर्धाके खिलाफ दुनिया-भरमें जनमत तैयार करें। मै न्यायोचित स्पर्धा चाहता हूँ, पक्षपात नही।

[अंग्रेजीसे]
इंग्लिशमैन, १९-८-१९२५

४५. पत्र: मणिबहन पटेलको

बुधवार, श्रावण वदी १५, १९ अगस्त, १९२५

चि० मणि,

तुम्हारा पत्र मिला। मै नहीं चाहता कि तुम चूड़ियोंके बिना रहो। मेरी सलाह तो चाँदीकी चूड़ियाँ पहननेकी ही है। केवल सीसमकी तो ठीक नही लगती। शखकी पहननेमें कोई हर्ज नही है। मै तो समझ गया हूँ कि यह सस्ती चीज नही है। डाह्याभाईके बारेमें जवाब लिख चुका हूँ। सब-कुछ देखते हुए मेरी नजर तिब्बिया कालेजपर ही ठहरती है। परन्तु अब तो मै वहाँ ५ सितम्बरको पहुँचनेकी आशा रखता हूँ। अतः मिलनेपर ही निश्चय करेगें।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो – ४: मणिबहेन पटेलने

४६. पत्र: नारणदास गांधीको

श्रावण वदी १५ [१९ अगस्त, १९२५][1]

चि० नारणदास,

तुम्हारे पत्र मिल गये हैं, लेकिन उनमे कोई खास जवाब देने लायक बात न होनेसे मैंने अबतक नही लिखा।

मुझे समय ही नहीं मिलता, और फिर बायें हाथसे लिखनेमें दुगुना समय तो लग ही जाता है। मै ५ सितम्बरको आश्रम पहुँचूँगा और ९ को वहाँसे चल दूँगा। इस बीच तुम मुझसे मिल लेना।

बापूके आशीर्वाद

श्री नारणदास खुशालचन्द गांधी
मिडल स्कूलके सामने, नवापरा

गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ६११८) से।
सौजन्य: नारणदास गांधी

१. डाककी मुहरसे।

४७. पत्र : बनारसीदास चतुर्वेदीको

श्रावण कृष्ण १५, [१९ अगस्त, १९२५][1]

भाई बनारसीदासजी,

मैंने भापापरसे रोषका अनुमान कीया था। न था तो मुझे कुछ कहनेका रहता नहिं है। स्वास्थ्य अच्छा रहता होगा।

मोहनदास गांधी

[पुनश्च :]

दक्षिण भुजामें दुःख होनेके कारण यह उत्तर से लीखा गया है।

पंडीत बनारसीदास चतुर्वेदी
फीरोजाबाद
डिस्ट्रिक्ट आगरा

मूल पत्र (जी० एन० २५५७) से।

४८. पूर्ण समर्पण ही क्यों नहीं?

मैं नीचे जो पत्र दे रहा हूँ, वह मुझे इस ढंगके मिलनेवाले बहुतसे पत्रोंमें से एक नमूना ही है। इस पत्रपर अनेक "अपरिवर्तनवादियों"के हस्ताक्षर हैं।

> कांग्रेसको मुख्य रूपसे एक राजनीतिक संस्था बनानेके खयालसे आपने इसे पूर्णतः स्वराज्यवादियोंके हवाले कर देनेका जो वचन दिया है, उससे लगभग सभी "अपरिवर्तनवादियों"के मनपर आघात पहुँचा होगा। पहले तो यही बतानेकी कृपा कीजिए कि राजनीतिक कार्यक्रम है क्या? क्या जिस असहयोग कार्यक्रमको आपने पिछले साल स्थगित कर दिया वह राजनीतिक कार्यक्रम नहीं था? आज लॉर्ड बर्कनहेडके भाषणसे जो स्थिति उत्पन्न हो गई है, उसका सामना करनेके लिए आप उसे अगर जरूरत हो तो दूसरे रूपमें ही सही फिरसे शुरू क्यों नहीं करते? आपने पिछले साल स्वराज्यवादियोंसे एक समझौता किया था। क्या उन्होंने बेलगांवमें किये गये वादेके अनुसार उसका ईमानदारी-से पालन किया? उनके मार्गमें आखिर कौनसी बाधा थी? आप जानते हैं कि यह समझौता अधिकांश 'अपरिवर्तनवादियों' को पसन्द नहीं था, फिर भी उन्होंने आपकी खातिर उसे मंजूर कर लिया। उनसे सलाह-मशविरा किये बिना

1. डाककी मुहरसे।

स्वराज्यवादियोंको वचन देकर आपने एक बार फिर उनकी पूरी-पूरी उपेक्षा की है। आपके कह देनेपर 'अपरिवर्तनवादियों' को अपनी मर्जीके खिलाफ इसे फिर स्वीकार करना ही होगा। लेकिन यह तो उन्हें मजबूर करने-जैसा है।

क्या सिर्फ कौंसिल-कार्यक्रम ही राजनीतिक कार्यक्रम है? क्या कौंसिलें देशको सविनय अवज्ञा करने अथवा करोंकी अदायगी बन्द करनेकी शक्ति देंगी? आपके नेतृत्वमें कांग्रेस काम करनेवाली संस्था बन गई थी और अब आप फिर उसे एक ऐसी संस्था बनाना चाहते हैं जहाँ बैठकबाज राजनीतिज्ञ केवल शोर मचाकर अपना विरोध प्रकट करते रहें। आज हमारी कांग्रेस कमेटियाँ और कुछ नहीं तो कताई संघ, खादी डिपो या खादीकी दुकानोंके रूपमें तो काम करती हैं। लेकिन इसके बाद तो वे महज विचार-गोष्ठियाँ करते रहनेवाली संस्थाएँ बन जायेंगी।

आप वैकल्पिक मताधिकारका सुझाव रखते हैं — अर्थात् कोई चाहे तो पैसा देकर और न चाहे तो अपना काता हुआ सूत देकर सदस्य बन सकता है। लेकिन महाराष्ट्र दलको न तो यह बात पसन्द है और न खादी पहनना ही। वे इसका विरोध करने जा रहे हैं और उन्हें पूरा भरोसा है कि इस वर्ष तो नहीं, लेकिन अगले वर्ष वे इसको समाप्त करवा देंगे। उन्हें आपका खादी-संगठन नहीं चाहिए। फिर क्यों न इसे कांग्रेससे बाहर ही शुरू किया जाये और कांग्रेसको सम्पूर्ण रूपसे स्वराज्यवादियोंके हवाले कर दिया जाये?

पत्र-लेखक भाई यह भूल जाते हैं कि मैं अपनेको किसी दल-विशेषका नहीं मानता और न यही मानता हूँ कि मेरा कोई अपना दल है — भले ही इसका कारण सिर्फ यही हो कि मैं देखता हूँ कि मेरा रुख और मेरी स्थिति अकसर बदलती रहती है। वैसे मैं इन परिवर्तनोंको अपना लगातार विकास ही मानता हूँ। परि-स्थितियाँ बदलें तो उनके साथ मेरे सलूकमें परिवर्तन होना ही चाहिए, और फिर भी अन्दरसे मुझे सर्वथा अपरिवर्तित रहना है — यह है मेरी स्थिति। मुझे किसी व्यक्तिसे जबरदस्ती कोई काम करानेकी तनिक भी इच्छा नहीं है। मैं तो बराबर सुननेवालोंके दिल और दिमाग, दोनोंको साथ-ही-साथ प्रभावित करनेका प्रयत्न करता रहा हूँ। मुझे उम्मीद है कि आगामी बैठकमें जो चर्चा होगी उसमें हरएक अपनी बात सर्वथा मुक्त मनसे और निस्संकोच कहेगा। मैं यह भी चाहता हूँ कि मेरी रायको, उसमें जो अनेकानेक रायें प्रकट की जायेंगी, उनमें से एक माना जाये, इससे अधिक कुछ नहीं। मैं जानता हूँ कि यह बात बहुतसे लोगोंको बिलकुल बेतुकी लगेगी। लेकिन अगर मैं लगातार मुक्तभावसे अपनी बात कहता रहा तो शीघ्र ही ऐसी स्थिति आ जायेगी कि जो लोग अपनेको मजबूरन मेरा साथ देते हुए पाते हैं वे मेरा विरोध करनेको खड़े हो जायेंगे। लेकिन, आखिरकार मैंने जो-कुछ किया है वह शिक्षित भारतीयोंके मनकी ठीक-ठीक थाह पा सकनेका परिणाम-भर है। मैं नहीं चाहता कि शिक्षित भारतीयोंके हाथोंसे कांग्रेसको जबरदस्ती छीन लूँ। वे तो नये

विचारको, अगर यह नया है तो, धीरे-धीरे और स्वाभाविक रीतिसे ही ग्रहण करेंगे। जिनका विश्वास असहयोगके उस विशेष तरीकेसे उठ गया है, जो १९२० में अपनाया गया था, असहयोगको दोबारा आजमाने या कोई नया रास्ता ढूँढ़नेका काम उनका नहीं है। शकाल्‍ु लोग असहयोगके उस रूपकी ओर पुनः उन्मुख हों; इसके लिए उसकी वर्तमान उपयोगिताको दिखानेका काम तो मुझ-जैसे उन लोगोंका है, जो अब भी उसमें विश्वास रखते हैं। लेकिन, मैं यह बात अवश्य स्वीकार करूँगा कि जो लोग असहयोगकी ओर अपने आन्तरिक विश्वासके कारण नहीं, बल्कि इस वजहसे आये थे कि इसमें गुलामीसे तत्काल छुटकारा दिलानेकी उम्मीदका लोभ दिखाई देता था, उनके सामने मैं कोई चमक-दमकवाला कार्यक्रम रखनेमें असमर्थ हूँ। असहयोगसे जिस तरह आजादी प्राप्त हो जानेकी आशा की जाती थी, उस तरह वह सफल नहीं हुई, इसलिए अब अगर वे मूल कार्यक्रममें जैसे परिवर्तनोंकी गुंजाइश है, वैसे परिवर्तनोंके साथ, पुनः उसी कार्यक्रमका सहारा लेते हैं तो उन्हें कौन दोष दे सकता है? मुझ जैसे स्वप्नदर्शी लोग चरखे-जैसे एक "निर्दोष खिलौने" से एक बहुत ही गहन और प्रभावकारी कार्यक्रम विकसित कर लेनेकी आशा भले कर रहे हैं, लेकिन जिन लोगोंने पुराने ढंगका सक्रिय राजनीतिक जीवन जिया है, उनसे आखिरकार यह आशा तो नहीं की जा सकती कि वे तबतक हाथपर-हाथ धरे बैठे रहेंगे। कांग्रेसको जन्म उन्होंने दिया था, और अब कांग्रेसको विशुद्ध रूपसे कताई-संस्था बनानेके लिए मुझे तबतक प्रतीक्षा करनी ही होगी जबतक कि उनकी राय भी इसके पक्षमें नहीं हो जाती।

महाराष्ट्र दल क्या करेगा और क्या नहीं, मैं नहीं जानता। बेशक उसे या किसी भी व्यक्तिको यह अधिकार है कि वह वैकल्पिक मताधिकारके रूपमें कताईकी शर्त अथवा अनिवार्य खादी पहननेको मताधिकारकी एक शर्तके रूपमें स्थान देनेका विरोध करे। और उसी तरह दूसरोंको भी उतना ही अधिकार है कि वे कताई और खादीकी शर्तको कायम रखनेपर आग्रह करें। अगर हम अन्तमें लगभग किसी सर्वसम्मत निष्कर्षपर नहीं पहुँचते तो कानपुर अधिवेशनसे पहले तो कोई परिवर्तन सम्भव नहीं है। हम चाहें तो दोष-दर्शनकी अपनी आदतके कारण लोगोंके मतोंकी आलोचना कर सकते हैं। लेकिन यह असहिष्णुताकी निशानी होगी। हर व्यक्तिको अपने कार्यक्रममें विश्वास होना चाहिए और जरूरत पड़नेपर अकेले भी उसपर अमल करनेको तैयार रहना चाहिए।

अपने अनुभवोंमें तो मैंने यही सीखा है कि इस देशमें कताई और कौंसिल-प्रवेश, दोनों कार्यक्रमोंके लिए गुंजाइश है। इसलिए कौंसिल-प्रवेशके सम्बन्धमें अपने निजी विचारोंको सैद्धान्तिक रूपमें कायम रखते हुए मुझे कौंसिलमें जानेवाले उन लोगोंका समर्थन अवश्य करना चाहिए, जो मेरे आदर्शोंके लिए ज्यादा अच्छा काम कर सकते हैं, जिनमें प्रतिरोधकी अधिक शक्ति है और जिनका चरखे और खादीमें अधिक विश्वास है। और आम तौरपर स्वराज्यवादी लोग ऐसे ही हैं।

अवश्य ही, नई योजनाके अन्तर्गत चरखा संघकी स्थापना अनिवार्य है। लेकिन, जबतक कांग्रेस उसे संरक्षण देती रहे तबतक उसे उसके संरक्षणमें ही रहना चाहिए।

कांग्रेसके लिए मेरे मनमें बहुत स्थान है और उससे अलग होकर मैं काम करना नहीं चाहता। यही एक संस्था है जो अच्छे-बुरे सभी वक्तोंसे सफलतापूर्वक गुजर चुकी है। यह शिक्षित भारतीयोंके वर्षोंके श्रमका फल है। मैं जानबूझकर ऐसा कुछ नहीं करूँगा जिससे इसकी उपयोगिता कम हो।

अन्तमें मैं कहूँगा कि कोई भी किसी बातके सम्बन्धमें ऐसा न माने कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी तो अमुक निश्चय ही करेगी। हर सदस्यका कर्त्तव्य है कि वह उसकी बैठकमें शामिल हो, वहाँ खुला दिमाग लेकर जाये, यह संकल्प लेकर जाये कि वह निर्भीक होकर और देशके बड़ेसे-बड़े हितको ध्यानमें रखते हुए अपनी स्वतन्त्र निर्णय बुद्धिका प्रयोग करे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २०-८-१९२५

४९. सार्वजनिक निधियाँ

मेरे कुछ ऐसे आलोचक हैं जिन्हें मेरी हर बात, हर काममें केवल गलतियाँ ही दिखाई देती हैं। उनकी आलोचनासे कभी-कभी मुझे लाभ भी होता है। लेकिन सौभाग्यवश मेरे कुछ ऐसे मित्र भी हैं, जो मेरे गुणोंके संरक्षक कहे जा सकते हैं। वे बराबर यही चाहते हैं कि मैं सर्वथा दोषरहित पूर्ण व्यक्ति बनूं; और इसलिए जब-कभी उन्हें ऐसा लगता है कि मुझसे भूल हुई है या मेरे अमुक बात कहने अथवा अमुक काम करनेसे भूल होनेकी सम्भावना है तो वे विचलित हो उठते हैं। एक ऐसे ही शुभाकांक्षी मित्रने, जिनकी चेतावनियाँ पहले भी मेरे लिए बहुत मूल्यवान साबित हुई हैं, निम्न आशयका पत्र लिखा है:

> मैंने देखा है कि बहुत-सी निधियाँ एकत्र करनेमें आपका हाथ रहा है — जैसे जलियाँवाला कोष, सत्याग्रह कोष, स्वदेशी कोष, स्वराज्य निधि; और अब आप देशबन्धु स्मारक कोषके कामसे बंगालमें जा बैठे हैं। क्या आपको भरोसा है कि उन पिछले कोषोंकी व्यवस्था ठीक-ठीक की गई है, और देशबन्धु स्मारक कोषकी व्यवस्था भी ठीक-ठीक की जायेगी? जनताके प्रति आपका कर्त्तव्य है कि आप इसका पूरा स्पष्टीकरण करें।

पत्र-लेखक भाई इस सूचीमें तिलक स्वराज्य कोष और दक्षिणमें बाढ़-पीड़ित सहायता कोष भी जोड़ सकते थे।

सवाल सर्वथा उचित है। देशबन्धु स्मारकके लिए चन्दा इकट्ठा करनेके दौरान भी कुछ ऐसे लोगोंने, जिन्होंने काफी मोटी रकमें दी हैं, मुझे सावधान किया है। मेरा सामान्य नियम तो यह है कि जबतक वे मुझे किसी कोषके बारेमें यह मालूम नहीं हो जाता कि उसकी व्यवस्था कौन लोग करने जा रहे हैं और जबतक मुझे उनकी ईमानदारीका पूरा यकीन नहीं हो जाता तबतक मैं उसके साथ कोई सम्बन्ध

नहीं रखता। पहली तीन निधियाँ न मैंने खुद एकत्र की थी, और न वे समाजमें मेरी जो प्रतिष्ठा और साख है, उसके वलपर एकत्र की गई थी। उनका संग्रह श्री बैंकरने किया था, जिन्हें मैं तब भी भलीभाँति जानता था और जिनको मेरे नामका उपयोग करनेका पूरा अधिकार था। मैं यह भी जानता हूँ कि जो भी धन प्राप्त हुआ उसे वे अपनी असन्दिग्ध साख और अपनी सेवाओंसे मिली कीर्तिके वलपर स्वयं भी प्राप्त कर सकते थे। जो पैसा जहाँसे मिला और जिस मदमे लगाया गया, उसका पूरा हिसाब रखा गया था, और अगर मुझे ठीक याद है तो ये हिसाब प्रकाशित भी किये गये थे। लेकिन ये रकमे तो बहुत छोटी-छोटी थी।

पत्र-लेखक भाईने तो तिलक स्वराज्य कोषकी चर्चा नही की है, लेकिन मैंने ऊपर उसका नाम लिया है। इसके सम्बन्धमें मुझे बार-बार शिकायतें सुननेको मिली हैं। इतनी बड़ी सार्वजनिक निधि इससे पहले कभी इकट्ठी नही की गई थी। लेकिन, इसके सम्बन्धमें मेरा मन बिलकुल आश्वस्त है। उस निधिके व्ययकी बारीकसे-बारीक जाँचसे भी यही प्रकट होगा कि उसकी व्यवस्थामें आम तौरपर कोई असावधानी नही बरती गई है, और जितने पैसेकी हानि व्यापारिक पेढ़ियोंमें होती है, उसकी तुलनामे उसमें बहुत ही कम बर्बादी हुई है। व्यापारिक पेढ़ियाँ आमतौरपर १० प्रतिशत तो बट्टेखातेमें डाल देती हैं। दक्षिण आफ्रिकामें तो मैंने कुछ ऐसी बड़ी-बडी पेढियाँ भी देखी हैं, जिनके लिए २९ प्रतिशततक बट्टेखाते डाल देना सामान्य बात थी। तिलक स्वराज्य कोषके प्रबन्धमें ऐसी बर्बादी तो कतई नही हुई है, जो १० प्रतिशततक पहुँच सके; और मुझे तो लगता है कि कुल बर्बादी २ प्रतिशततक भी नही पहुँच पायेगी। जो कोषाध्यक्ष काम कर रहा था, वह हर खर्चकी रसीद लेनेका आग्रह रखता था। समय-समयपर हिसाबकी जाँच होती रही है, और हिसाब प्रकाशित भी होते रहे हैं। लेकिन, साथ ही मैं यह भी स्वीकार करता हूँ कि जिन कांग्रेस कार्यकर्त्ताओंके हाथमें कोषका पैसा रहा है, उनमें से कुछ-एकने अमानतमे खयानत भी की है। किन्तु जहाँ धनका वितरण सैकड़ों हाथोंसे होता है, वहाँ इससे बचा भी नही जा सकता। इस हालतमें जो-कुछ किया जा सकता है वह यही कि यह ध्यान रखा जाये कि शीर्षस्थ लोग ढिलाई या असावधानी न बरतें। मुझे आश्चर्य तो इस बातपर होता है कि हम कुल मिलाकर जितना दुरुस्त हिसाब दे पाये हैं, वह सम्भव कैसे हुआ!

अब जलियाँवाला कोषको लीजिए। इसमें भी बिलकुल सही-सही हिसाब रखा गया है। समय-समयपर हिसाब प्रकाशित भी किये गए हैं। पंडित मालवीयजीको उस कोषकी आत्मा कहा जा सकता है। उस स्थानकी देख-भाल बहुत अच्छी तरह होती है, पहले वहाँ कूड़ा-करकटके ढेर लगे रहते थे, किन्तु अब उसे एक सुन्दर उद्यानका रूप दिया गया है। लेकिन ऐसी शिकायतें की गई हैं कि अबतक कोई उपयुक्त स्मारक नही बनाया गया है, और पैसा बेकार पड़ा हुआ है। अगर यह शिकायत कोई शिकायत हो सकती हो, तो मुझे मानना पड़ेगा कि इसकी जवाबदेही सबसे ज्यादा शायद मुझपर ही है। स्मारककी योजना तैयार हो चुकी है, लेकिन मुझे लगा कि

जब यह कोष एकत्र किया गया था, उसके तुरन्त बाद परिस्थितियाँ बहुत बदल गईं। यह बाग ही, किसी-न-किसी तरहसे विभिन्न पक्षोंके बीच एक विवादका विषय बना रहा है। मुझे नही मालूम कि अब भी झगड़ा समाप्त हुआ माना जा सकता है अथवा नहीं। अपेक्षा तो यह थी कि यह स्मारक ठोस साम्प्रदायिक एकताका स्मारक होगा;—एक बड़ी विपत्तिके गर्भसे उद्‌भूत एक महान् विजयका प्रतीक होगा; ऐसा ही होना भी चाहिए। १३ तारीखके उस दुर्भाग्यपूर्ण दिन हिन्दू, मुसलमान और सिखोंका जो रक्त साथ मिलकर बहा, ऐसा विश्वास था कि वह उनकी अखण्ड एकताका प्रतीक होगा। लेकिन आज वह एकता कहाँ है? जब हम फिर एक हो जायेंगे तब स्मारक बनानेकी बात सोचनेका भी समय आयेगा। जहाँतक मेरा सम्बन्ध है, फिलहाल मेरे लिए तो इतना ही काफी है कि सँकरी, घुमावदार और गन्दी गलियों और घनी आबादीवाले अमृतसर नगरमें यह भाग एक छोटेसे फेफड़ेकी तरह मौजूद है।

अब मैं देशबन्धु स्मारक कोषकी बात लेता हूँ। इसके कोषाध्यक्ष अकेले ही कई आदमियोंके बराबर हैं। लेकिन, मैं जानता हूँ कि यह कोष हमेशा उन्हींके हाथोमे नही रहेगा। अन्ततः, यह ट्रस्टियोके हाथमें जायेगा ही। इसके पाँच मूल ट्रस्टी तो दिवंगत देशभक्तके ही नामजद किये हुए हैं। उनमें से हरएकका समाजमें अपना स्थान है और ऐसी प्रतिष्ठा है, जिसको कायम रखनेके लिए उन्हें बराबर सतर्क रहना है। उनमें से कुछ लोग धनाढ्य हैं। इन पाँच मूल ट्रस्टियोंने दो और ट्रस्टियोंको शामिल कर लिया है, ये लोग भी एक नहीं बल्कि अनेक सार्वजनिक न्यासोंसे सम्बद्ध हैं। उनमें से एक तो हैं सर नीलरतन सरकार, जो कलकत्तेके सबसे बड़े चिकित्सक हैं, और दूसरे स्वयं स्वर्गीय देशबन्धुके चचेरे भाई श्री एस० आर० दास हैं जो बंगालके एडवोकेट जनरल हैं। अगर ये सात ट्रस्टी अपने गुणों और योग्यताका अच्छा परिचय न दे सकते हों और उन्हें जो न्यास सौंपा गया है, उसके साथ न्याय नही कर सकते हों तो मुझे भारतमें किसी भी न्यासके सफल होनेकी कोई आशा दिखाई नहीं देती। इमारत तो है ही और मुझे मालूम है कि इस ट्रस्टके दूसरे चिकित्सक ट्रस्टी डा० विधानचन्द्र राय, जो प्रथम कोटिके चिकित्सक हैं, जिस कामके लिए इस इमारतका उपयोग होना है उसके लिए इसका उपयोग करनेकी योजना बना रहे हैं। मेरे कानमें यह बात भी डाली गई है चूँकि श्री एस० आर० दास एडवोकेट जनरल हैं, इसलिए वे ट्रस्टी नही बन सकते। इस सम्बन्धमें मुझे कानूनका कोई ज्ञान नही है। जब वे इस ट्रस्टमें शामिल हुए उस समय भी मैं जानता था कि वे बंगालके एडवोकेट-जनरल हैं; लेकिन अगर इसमें चूक हो गई हो तो उनके स्थानपर कोई दूसरा ट्रस्टी नियुक्त किया जायेगा, जिसकी ख्याति उतनी ही अच्छी होगी जितनी कि उनकी है। अगर श्री एस० आर० दास ट्रस्टी बने रह सकते हो तो मैं उन्हें इतनी अच्छी तरह जानता हूँ और पाठकोंको आश्वस्त कर सकता कि वे इस ट्रस्टको पूरी तरह सफल बनानेके लिए कुछ भी उठा नहीं रखेंगे। इंग्लैंडके लिए रवाना होनेके वक्ततक उन्होंने ट्रस्टको अपना समय और ध्यान दिया, लेकिन मुझे पूरा

यकीन है कि मूल ट्रस्टियोंमें से हरएक दिवगत देशभक्तकी स्मृतिके प्रति किसीसे कम आस्थावान नही रहेगा और वे सबके-सब प्रस्तावित अस्पताल और नर्सोंके प्रशिक्षण-केन्द्रको उनकी स्मृतिके अनुरूप बनाकर दिखायें। अखिल बंगाल देशबन्धु स्मारक कोषके सम्बन्धमे तो मैं अपनी बात यही समाप्त करता हूँ।

अब अखिल भारतीय स्मारक कोषकी बात लीजिए। मैं खुद इसका एक ट्रस्टी हूँ। इसका उद्देश्य वह चीज है, जो मुझे सबसे अधिक प्रिय है। मेरे साथी ट्रस्टी लोग जनताके बीच उतने ही प्रसिद्ध हैं, जितना कि कोई भी लोकसेवी व्यक्ति हो सकता है। मन्त्री तपे-परखे सेनानी हैं, और ऐसे ही कोषाध्यक्ष महोदय भी हैं। ट्रस्टके मन्त्री कांग्रेसके भी मन्त्री हैं और इसी तरह इसके कोषाध्यक्ष कांग्रेसके भी कोषाध्यक्ष हैं।

लेकिन, अन्तमे मैं जनताको आगाह कर दूँ कि सार्वजनिक निधिकी सुरक्षा जितनी उस निधिके कर्त्ता-धर्त्ता लोगोंकी ईमानदारीपर निर्भर करती है, उससे कही अधिक जनताकी प्रबुद्ध चौकसीपर निर्भर करती है। ट्रस्टियोंका पूरा ईमानदार होना जहाँ एक अनिवार्य आवश्यकता है वही ट्रस्टके विषयमें जनताकी उदासीनता अपराध भी है। अज्ञानपूर्ण टीका-टिप्पणीको प्रबुद्ध चौकसी नही समझ लेना चाहिए। मुझे आम तौरपर अज्ञानपूर्ण टीका-टिप्पणी ही देखनेको मिली है। मुझे तो यह देखकर खुशी होगी कि लेखा-जोखाका काम समझनेवाले कुछ सार्वजनिक कार्यकर्त्ता लोग अपना फर्ज मानकर समय-समयपर सार्वजनिक कोषोंकी जाँच करें और कोषके प्रबन्धकोंसे कैफियत तलब करें।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २०-८-१९२५

५०. भारतीय ईसाइयोंके लिए

[अभी कुछ ही दिन हुए मुझे ईसाइयोंकी एक सभामें बोलनेका अवसर मिला[1] था। खयाल यह था कि इस सभामें मुख्यतः भारतीय ईसाई ही आयेंगे, लेकिन जब सभा हुई तो पाया गया कि श्रोताओंमें अधिकांशतः यूरोपीय ईसाई ही हैं। इसलिए मुझे जैसा मैंने सोचा था, उससे अलग ढंगका भाषण देना पड़ा। फिर भी, मैं नीचे उस भाषणके कुछ अंश दे रहा हूँ, क्योंकि मेरे विचारसे, इस बातमे लोगोंकी रुचि होगी कि जो व्यक्ति विभिन्न परिस्थितियों और परिवेशोंमें इनके बीच रहा है, वह इनके विषयमें क्या सोचता है और क्या महसूस करता है। मो० क० गांधी]

मुझे याद है जब मैं नौजवान था, उस समय एक हिन्दू ईसाई बन गया था, शहर-भर जानता था कि नवीन धर्ममें दीक्षित होनेके बाद यह संस्कारी हिन्दू ईसाके नामपर शराब पीने लगा, गोमांस खाने लगा और उसने अपना भारतीय लिबास छोड़ दिया। आगे चलकर मुझे मालूम हुआ, मेरे अनेक मिशनरी मित्र तो यही कहते

१. देखिए "भाषण: ईसाइयोंकी सभामें", ४-८-१९२५।

हैं, कि अपने धर्मको छोड़नेवाला ऐसा व्यक्ति बन्धनसे छूटकर मुक्ति और दारिद्र्यसे छूटकर समृद्धिपूर्ण जीवन प्राप्त करता है। देशमें दौरा करते हुए ऐसे बहुत-से ईसाई भारतीयोंसे मेरी मुलाकात होती रहती है जो जिन परिवारोंमें जनमे हैं, उनमें जन्म लेनेके लिए वे लज्जितसे हैं, वे अपने पैतृक धर्म तथा वेश-भूषाके लिए तो निश्चय ही लज्जाका अनुभव करते हैं। वैसे तो आंग्ल-भारतीयोंका भी यूरोपीयोंकी नकल करना काफी बुरी चीज है, लेकिन भारतीय नव-ईसाइयोंका ऐसा आचरण तो अपने देश और कहूँ तो अपने नये धर्मके प्रति भी घोर अपराध है। 'न्यू टेस्टामेन्ट' में एक वचन आता है, जिसमें ईसाइयोंसे कहा गया है कि अगर तुम्हारे पड़ोसियोंको बुरा लगे तो मांस भक्षण मत करो। और मेरे खयालसे, यहाँ मासमें मद्यपान और वेश-भूषा भी शामिल है। पुरातनमें जो-कुछ बुरा है, उससे आग्रहपूर्वक बचकर चलना तो मैं समझ सकता हूँ, लेकिन जब कोई प्राचीन प्रथा न केवल बुराईसे रहित हो, बल्कि वांछनीय भी हो, वहाँ अगर कोई यह भलीभाँति जानते हुए भी कि उस प्रथाके त्यागसे उसके कुटुम्बियों और मित्रोंको दुःख पहुँचेगा, उसका त्याग करता है तो यह घोर अपराध है। धर्म-परिवर्तनका मतलब अपनी राष्ट्रीयताका त्याग नही होना चाहिए। धर्म-परिवर्तनका मतलब तो पुरातनमे जो-कुछ बुरा है, उसका निश्चित त्याग और नूतनमें जो-कुछ अच्छा है, उसको अंगीकार करते हुए उसमें जो-कुछ बुरा है, उससे पूरी सावधानीके साथ बचकर चलना होना चाहिए। इसलिए धर्म-परिवर्तनका मतलब ऐसा जीवन होना चाहिए जिसमें स्वदेशके प्रति और अधिक उत्सर्ग, ईश्वरके प्रति और अधिक समर्पण और आत्म-शुद्धिकी पहलेसे अधिक तीव्र भावना हो। वर्षो पूर्व मैं स्वर्गीय कालीचरण बनर्जीसे मिला था। वहाँ जानेसे पहले अगर मुझे यह मालूम न होता कि वे ईसाई हैं तो उनके घरको देखकर तो मैं नहीं समझ सकता था कि वे ईसाई हैं। उसमें और सामान्य आधुनिक हिन्दू परिवारके घरमें कोई फर्क नहीं था — वैसा ही थोड़ा-बहुत सादा-सा फर्नीचर, यूरोपीय रंग-ढंगसे अछूते एक साधारण हिन्दू बंगालीकी वेश-भूषा। मैं जानता हूँ कि ईसाई भारतीयोंमें एक भारी परिवर्तन आ रहा है। उनमें से बहुतसे लोगोंमें पुरानी सादगीकी ओर लौट चलनेकी तीव्र उत्कण्ठा है, वे अपने राष्ट्रके बनकर रहने और उसकी सेवा करनेके लिए आतुर हैं, लेकिन परिवर्तनकी यह प्रक्रिया बहुत धीमी है। इसमे प्रतीक्षा करनेकी क्या जरूरत है? इसके लिए किसी बड़े प्रयत्नकी आवश्यकता नहीं है। लेकिन मुझे बताया गया है कि इसका विरोध किया जाता है। अभी इसे लिखते समय भी मेरे सामने एक ईसाई भारतीय सज्जनका पत्र पड़ा हुआ है, जिसमें उन्होंने लिखा है कि उनके और उनके मित्रोंके लिए यह परिवर्तन करना कठिन हो रहा है, क्योंकि ऊपरके लोग इस प्रयत्नका विरोध करते हैं। कुछ लोगोंने तो कहा है कि उनपर कड़ी निगरानीतक रखी जाती है और राष्ट्रीय आन्दोलनोंसे सम्बन्धित उनकी हर गतिविधिकी तीव्र भर्त्सनाकी जाती है। मेरे और स्वर्गीय प्रिंसिपल रुद्रके बीच इस बुरी प्रवृत्तिपर अकसर चर्चा हुआ करती थी। मुझे भलीभाँति याद है कि वे इस प्रवृत्तिकी किस तरह निन्दा करते थे। मैं पाठकोंको यह बताकर अपने इस दिवंगत मित्रके प्रति श्रद्धांजलि अर्पित कर रहा हूँ कि

श्री रुद्र इस बातपर अकसर बहुत अफसोस जाहिर किया करते थे कि अपने लालन-पालनके कारण उनमें यूरोपीय समाजकी जो कतिपय अनावश्यक आदतें आ गई हैं उन्हें वे अब अपनी इस उम्रमें नहीं बदल सकते। क्या यह सचमुच दुःखकी बात नहीं है कि बहुत-से ईसाई भारतीय अपनी मातृ-भाषाकी उपेक्षा करते हैं और अपने बच्चोंका ऐसा लालन-पालन करते हैं जिससे वे सिर्फ अंग्रेजी ही बोल सकें? इस तरह क्या वे उस राष्ट्रसे अपना सारा सम्बन्ध तोड़ नहीं लेते जिसमें उन्हें रहना है? वे अपने बचावमें कह सकते हैं कि बहुत-से हिन्दू, बल्कि मुसलमान भी तो यही करते हैं। किन्तु 'तू भी तो ऐसा ही है' वाली दलीलसे कुछ बननेवाला नहीं है। मैं यह सब आलोचनाके विचारसे नहीं, बल्कि एक ऐसे मित्रके नाते लिख रहा हूँ, जिसे पिछले तीस वर्षोंसे सैकड़ों ईसाई भारतीयोंके निकटतम सम्पर्कमें रहनेका सौभाग्य प्राप्त रहा है। मैं चाहता हूँ, मेरे मिशनरी भाई और ईसाई भारतीय इन पंक्तियोंको सद्भावपूर्वक ग्रहण करें; क्योंकि ये सद्भावसे ही लिखी गई हैं। मैं यह बात हृदयकी एकताके तकाजेपर और उसीकी खातिर लिख रहा हूँ। मैं इस देशके विभिन्न धर्मावलम्बियोंके बीच एकता स्थापित होते देखना चाहता हूँ। प्रकृतिमें हम अपने चारों ओर जो विविधता देखते हैं उस विविधताके पीछे एक बुनियादी एकता है। धर्म भी इस प्राकृतिक नियमके अपवाद नहीं हैं। मनुष्य-जगतको धर्मका दान इसीलिए मिला है कि इस मौलिक एकताको चरितार्थ करनेकी प्रक्रियाको यह गति प्रदान कर सके।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २०-८-१९२५

५१. टिप्पणियाँ

स्वराज्य-सम्बन्धी एक घोषणा

एक प्रतिष्ठित सज्जनने मुझे एक पत्र लिखा है। पत्र इतना युक्ति-युक्त और अन्यथा भी इतना विशिष्ट है कि इसमें कही गई सभी बातोंसे सहमत न हो सकते हुए भी मेरी इच्छा होती है कि इसे प्रकाशित कर दूँ। लेकिन, पत्र-लेखकने स्वयं ही इसके एक बड़े अंशको, जो सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण और रोचक भी है, प्रकाशित न करनेको कहा है और उसके जो कारण उन्होंने बताये हैं वे सर्वथा उचित भी हैं। पत्रमें मुख्य रूपसे मुझे यह समझानेका प्रयत्न किया गया है कि मेरे हिन्दू-मुस्लिम एकता और उसको प्राप्त करनेके तरीकेपर आग्रह करनेका परिणाम फिलहाल तो वास्तवमें यही हुआ है कि दोनों जातियोंके बीचकी दरार उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है। इसके बाद उन्होंने मुझको यह सलाह दी है कि मैं यह राग अलापना बन्द कर दूँ और तब अन्तमें वे कहते हैं:[1]

१. पत्रका उक्त अंश यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने गांधीजीसे अनुरोध किया था कि आप यह घोषणा कीजिए कि देशके लिए आपकी कल्पनाके स्वराज्यका तात्कालिक लक्ष्य लोकतांत्रिक राज्य है; वह धर्म-निरपेक्ष होगा। उसमें कोई धार्मिक बाध्यता नहीं होगी, धर्मके आधारपर किसीको न कोई

हिन्दू-मुस्लिम एकताके विषयमें पत्र-लेखक महोदयने जैसी सलाह दी है, कुछ वैसी ही बात मेरे भी मनमें आई है। मैं स्वीकार करता हूँ कि पहलेकी तरह मेरे इस विषय-पर बोलते रहनेसे कोई लाभ होनेवाला नहीं है। जो-कुछ कहना चाहता हूँ, उसे मैं अपने कामके द्वारा कहकर ही सन्तुष्ट रहूँगा। जहाँतक स्वराज्य सम्बन्धी घोषणाका प्रश्न है, मैं इस सलाहको पूरी तरह स्वीकार करता हूँ और पाठकोंसे निवेदन करता हूँ कि पत्र-लेखकने जो घोषणा करनेका सुझाव दिया है, उसे वे मेरी ही घोषणा मानें।

सफरी चरखा

ऐसे चरखेकी जरूरत बहुत दिनोंसे महसूस की जा रही थी, जिसे सफरमें ले जाना आसान हो और जिसपर काफी सूत भी काता जा सके, अब खादी प्रति-ष्ठानके सफरी चरखेने इस समस्याको हल कर दिया है। मैं उनके सफरी चरखेका उपयोग पिछले तीन महीनोंसे करता रहा हूँ और उसने मुझे पूरा सन्तोष दिया है। जितना सूत मैं साधारण चरखेपर कात सकता हूँ, उतना ही इस चरखेपर भी कात लेता हूँ। इसलिए, घर-बाहर सब जगह मैं इसी चरखेका उपयोग करता हूँ। मैंने इसे चलती गाड़ीमें भी चलाकर देखा है। यह प्रचलित चरखेसे हलका है और इसकी रचना-पद्धति वैसी ही है। इसकी सफलताकी कुंजी है, उसे मोड़कर छोटा बनानेकी उसकी सुविधामें। मोड़कर रखनेपर यह एक सुन्दर और हाथमें लटका लेने लायक पेटीकी शक्लमें आ जाता है। और फिर इसे चाहे जहाँ बिना किसी कष्टके ले जाया जा सकता है। बन्द कर देनेपर इसकी लम्बाई, चौड़ाई और मुटाई क्रमशः १६, ६, ६, इंच होती है और वजन ७ पौंड। चक्र इस्पातके पत्थरसे बना है। इसे चढ़ाने और उतारनेमें सिर्फ दो-तीन मिनट ही लगते हैं। तकुएको सामनेवाले मोढ़ियेपर ताँतके सहारे बाहरकी तरफ नहीं, बल्कि भीतरकी तरफ लगाया जाता है। इससे चरखा चलते समय आवाज नहीं करता और तकुवा अधिक आसानीसे घूमता है। इससे तकुएके टेढ़े होनेका भय भी कम हो जाता है। चमरख धुनकीकी ताँतके टूटे हुए टुकड़ोंसे बनाया जाता है जिससे इसपर कोई खर्च नहीं पड़ता। चमरखके रूपमें प्रयुक्त होनेवाले ताँतके ये टुकड़े इधर-उधर न खिसकें, इसलिए मोढियोंमें चमरखके लिए बनाये गये खाँचोंको ताँत डालनेके बाद उपयुक्त मोटाईकी लकड़ीकी खूँटियोंसे सख्त कर दिया जाता है। पेटीमें तेलकी कुप्पी, छोटे-मोटे औजार, पूनियाँ आदि रखी जा सकती हैं। इस चरखेकी कीमत पन्द्रह रुपये है। सतीश बाबूने मुझे सूचित किया है कि वे एक बारमें कुछ ज्यादा चरखे तैयार नहीं कर पाते। मैं यह चीज पाठकोंके ध्यानमें ला

सुविधा दी जायेगी और न इसके कारण किसीपर कोई निर्योग्यता ही लादी जायेगी; सबको विकास और उन्नतिके समान अवसर मिलेंगे; और स्वभाविक है कि सभी जातियों और धर्मोंके गरीब और पिछड़े लोगोंको ऊपर उठनेकी विशेष सुविधाएँ दी जायेंगी और ऐसा करते हुए परिवार, जाति या धर्मका कोई खयाल नहीं रखा जायेगा बल्कि इसका निर्णय व्यक्तिकी पात्रताके आधारपर किया जायेगा। पत्र-लेखकका खयाल था कि यदि प्रमुख साम्प्रदायिक नेताओं द्वारा इस सिद्धान्तपर स्वीकृति प्राप्त हो जाये तो इसका मतलब एक बड़ी हदतक मादरे हिन्दकी सन्तानोंके बीच एकता स्थापित करनेके लक्ष्यको प्राप्त कर लेना है। उन्होंने गांधीजीको अली-बन्धुओं और खिलाफतवादियोंको भी ऐसी घोषणा करनेपर राजी करनेका सुझाव दिया था।

रहा हूँ, सो सिर्फ उन्हीं लोगोंको दृष्टिमें रखकर जो यात्राके दौरान भी कताई बन्द करना नहीं चाहेंगे। मुझको बहुत-से ऐसे लोगोंसे मिलनेका मौका मिलता है जो कहते हैं कि बराबर यात्रापर रहनेके कारण ही वे चरखा नहीं चला पाते। अब इस सफरी चरखेसे ऐसी किसी बहानेबाजी की गुंजाइश नहीं रह जाती।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, २०-८-१९२५

५२. पत्र : वसुमती पण्डितको

[कटक
२० अगस्त, १९२५]

चि० वसुमती,

तुम्हारा पत्र मिला। शान्त मनसे आश्रममें रहना। तुम कहाँ रह रही हो सो बताना। नवीबन्दर मैंने स्वयं तो नहीं देखा है, लेकिन कल्पना कर सकता हूँ। मैं आज कटकमें हूँ। चमड़ेका कारखाना देखने आया हूँ। महादेव और सतीशबाबू साथ हैं। तुम्हारी तबीयत बिलकुल ठीक होनी ही चाहिए। मुझे तो पूरा विश्वास है कि हजीरा रहनेसे तुम बिलकुल ठीक हो जाओगी।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

अब तो जल्दी ही मिलना होगा। मैं वहाँ ५ तारीखको पहुँचूंगा।

गुजराती पत्र (एस० एन० ९२१७) की फोटो-नकलसे।

५३. पत्र : मथुरादास त्रिकमजीको

[कटक]
२० अगस्त, १९२५

भाई मथुरादास,

तुम्हारे उस पत्रको पढ़कर मुझे बहुत खुशी हुई जिसमें तुमने अपनी भूल स्वीकार की है। यह दोष सामान्य है। असंदिग्धवाणी तो केवल उसीकी होती है जो बिना सोचे समझे कदापि नहीं बोलता और तभी बोलता है जब बोले बिना काम न चले। भाषाका उपयोग कृपणके समान करना चाहिए। तुमने निश्चय कर लिया है, इसलिए सब-कुछ ठीक ही होगा। आज कटकमें हूँ और मुझे कुछ फुर्सत मिली है।

१. डाककी मुहरसे।

इसलिए तुम्हारे पत्रकी तरह जो भी अन्य पत्र मेरे पास पड़े हुए हैं, उन सबको आज निबटाये दे रहा हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (जी० एन० ३७२५) की फोटो-नकलसे।

५४. पत्र : कल्याणजी मेहताको

[२० अगस्त, १९२५][1]

भाई कल्याणजी,

महादेवको लिखा तुम्हारा पत्र मैंने पढ़ लिया है। पार्वतीके मनमें यदि प्रागजीसे मिलनेकी इच्छा हुई तो वह वहाँ हो आये। प्रागजी कात तो रहे हैं? तुम सूरत छोड़कर बारडोलीमें रहो, यह बात मुझे तो पसन्द है। तुम पाठशाला शौकसे खोलो यदि वह तुम्हारी शर्तोंपर खुल सके तो उसे जरूरी समझो। 'नवयुग' के लिए यह सन्देश है:

गुजरातियोंको मैं क्या सन्देश भेजूँ? पहले गुजरात चरखा चलाकर, खादी पहनकर विदेशी कपड़ोंका त्याग करे और तब मुझसे पूछे कि अब हम क्या करें। जब पहले-पहल रेलवे लाइन बिछाई जाने लगी तब रास्तेमें एक जगह गहरी खाई आ जानेके कारण रुकावट आ गई। उसे भरनेपर ही लाइन बिछाई जा सकती थी। इंजीनियरने कहा — "खाई भरो", लेकिन वह भरती ही नहीं थी। खाई भरनेवाले थक गये और बोले "अब क्या करें?" "खाई भरो" जवाब मिला, वे लोग फिर भरने लगे, लेकिन वह फिर भी भरती नही दिखी। उन्होंने फिर पूछा "अब?" जवाब मिला, "खाई भरो"। फलतः उन्होंने फिर टोकरियोंमें मिट्टी भर-भरकर खाईमें फेंकी। अन्तमें खाई भर गई। स्टीवेन्स अमर हो गया। मुझे भी अमर होना है, इसीसे एक ही बात कहता हूँ, "कातो और खादी पहनो।"

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (जी. एन. २६७७) की फोटो-नकलसे।

1. डाककी मुहरसे।

५५. भेंट: 'इंग्लिशमैन' के प्रतिनिधिसे

२१ अगस्त, १९२५

श्री गांधी शुक्रवारको कटकसे कलकत्ता लौटे। वहाँ डॉ० अब्दुल्ला सुहरावर्दीके स्वराज्यदलसे इस्तीफा दे देनेके सम्बन्धमें 'इंग्लिशमैन' के एक प्रतिनिधिने उनसे भेंट की। यह पूछनेपर कि क्या वे सुहरावर्दीके त्यागपत्रके सम्बन्धमें जनताको कुछ बतायेंगे, श्री गांधीने कहा:

मैं तो इतना ही कह सकता हूँ कि इस इस्तीफेपर मुझे आश्चर्य है। स्पष्ट ही श्री सुहरावर्दीकी सारी शिकायत मेरे खिलाफ है, लेकिन मैं तो स्वराज्य दलका सदस्य नहीं हूँ। मैंने उस सभामें, जिसमें मुझे आमन्त्रित किया गया था जो विचार व्यक्त किया, उसके लिए वे जितनी चाहें नाराजगी जाहिर करें, पर वह तो मेरा व्यक्तिगत विचार था।

जहाँतक मेरा सवाल है, मेरी अब भी यही राय है कि जो चुनाव दलीय आधारपर लड़ा जाना था और जिसमें डा० सुहरावर्दी दलके उम्मीदवारके रूपमें खड़े थे, उनका उस चुनावसे ठीक पहले गवर्नर महोदयसे भेंट करना गलत था। वही क्यों, स्वराज्य दलका कोई भी सदस्य ऐसा करता तो वह गलत होता।

मैं नहीं समझता कि उस सभामें किसीने भी किसी सदस्यके गवर्नर महोदयसे या किसी भी अन्य विरोधी राजनीतिज्ञोंसे घनिष्ठसे-घनिष्ठ सामाजिक सम्बन्ध रखनेके अधिकारपर आपत्ति की थी, लेकिन अगर मान्य डाक्टर साहबकी मुलाकात सामाजिक ढंगकी थी तो उसके लिए चुना गया समय अनुपयुक्त और दुर्भाग्यपूर्ण था।

हम एक ऐसी नौकरशाहीसे लड़ रहे हैं जो बहुत ही साधन-सम्पन्न और कहूँगा कि सिद्धान्तहीन है।

मुझे ऐसे बहुतसे मामलोंकी जानकारी है, जब सरकारी अधिकारियोंने लोगोंको प्रलोभन और धमकियाँ देकर और कई दूसरे किस्मके दबाव डालकर ऐसे काम करनेके लिए प्रेरित किया है जिनके बारेमें उन्हें यह ज्ञान था कि उनका वैसा करना देश-हितके विरुद्ध होगा।

इसलिए मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि स्वराज्य दलके सदस्योंको दलकी अनुमतिके बिना सरकारी अधिकारियोंसे न मिलने देनेका नियम एक ठीक नियम है। तथाकथित सामाजिक समारोहोंमें बहुत-सी बातें होती रही हैं। लेकिन जैसा कि मैंने कहा, यह मेरा व्यक्तिगत विचार है; स्वराज्य दल इसे मान भी सकता है, नहीं भी मान सकता है।

यदि डॉ० सुहरावर्दी समझें कि अब बहुत देर हो गई है तो मैं उन्हें सुझाव दूँगा कि वे मेरे ही खिलाफ नाराजगी जाहिर करके शान्त हो जायें और जिस पार्टीके प्रति उन्होंने अपनेको वफादार बनाया है, उसमें बने रहें। देशबन्धुकी मृत्युके बाद

तो यह और भी जरूरी हो जाता है क्योंकि वे उनकी स्मृतिको बहुत पुनीत मानते हैं; और उनका ऐसा मानना सर्वथा उचित है।

[अंग्रेजीसे]

इंग्लिशमैन, २२-८-१९२५

५६. टिप्पणियाँ

कच्छवासियोंसे

मैंने कच्छ जानेका वचन दिया है; इसलिए कच्छवासी भाई पूछ रहे हैं कि मैं वहाँ कब जाऊँगा और उनसे क्या आशाएँ रखता हूँ। जबसे मैंने वचन दिया है, तभीसे वहाँ जानेके लिए मैं अधीर हो रहा हूँ। इसका एक कारण तो यह है कि मैंने अबतक कच्छ देखा ही नहीं है; जबकि उसे देखनेकी इच्छा बराबर रही है। दूसरा कारण यह है कि दिया हुआ वचन कर्त्तव्य-रूप होता है—जैसे बने उसे जल्दी पूरा कर देना चाहिए। लेकिन, अभी मुझे नहीं लगता कि नवम्बरमें, बल्कि जनवरीसे पहले मैं वहाँ जा सकूँगा।[1] यह आशंका मैंने वचन देते समय भी व्यक्त कर दी थी। सितम्बर-अक्तूबरमें बिहार जाना है। उसके बाद दक्षिणके प्रान्त रह जाते हैं और कुछ दूसरे भी। उनमें से जहाँ-जहाँ जा सकूँगा, जाऊँगा। अगर वहाँ जाना स्थगित रहा तो नवम्बर अथवा दिसम्बरमें कच्छ जाऊँगा। ऐसा न हुआ तो अन्तमें जनवरी तो है ही।

अब मैं अपनी अपेक्षाओंकी बात कहता हूँ।

अखिल भारतीय देशबन्धु चरखा स्मारकके लिए तो पैसा उगाहना है ही। कच्छसे मैं उसमें काफी-कुछ देनेकी आशा रखूँगा।

यह आशा भी रखूँगा कि वहाँ कोई भी खादीके अलावा और कोई कपड़ा पहने नजर न आये।

अन्त्यजोंके प्रति तिरस्कार-भाव मनसे बिलकुल दूर हो जाये, यह भी चाहूँगा।

स्वच्छ अन्त्यज-शालाएँ देखनेकी आशा रखूँगा।

हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच मेल-जोलकी आशा रखूँगा।

हिन्दुओंके बीच घर-घर राम-नाम सुननेकी आशा रखूँगा।

राजा-प्रजाके बीच प्रेमभाव और प्रजाको सुखी देखनेकी आशा रखूँगा।

बहनोंको शुद्ध खादी पहने और सीता-जैसे आत्मबलसे युक्त देखनेकी आशा करूँगा।

पंचायतके जरिये

खादी-मण्डलका जो पैसा कांग्रेसके सभ्य-सदस्य ही खा जाते हैं, उसके सम्बन्धमें अदालतमें जानेकी मेरी सलाहको पढ़कर एक भाईने पंचके जरिये इन्साफ करने और पंचायतकी प्रवृत्तिको लोगोंमें फैलानेकी सलाह दी है। मुझे तो पंचायतकी प्रवृत्ति अत्यन्त

१. गांधीजी कच्छ २२ अक्तूबर, १९२५को गये थे तथा वहाँ १३ दिन रहे।

प्रिय है। परन्तु जिसने बेईमानी की हो, भला वह पंचनीतिको क्या स्वीकार कर सकता है? जिस तरह चोर दण्डके वशीभूत होते देखे जाते हैं, वैसी ही हालत दुष्टोंकी भी है। समाज अभी इतनी ऊँचाईतक नहीं पहुँचा है कि वह दण्डनीतिको छोड़ सके। अभी तो इस प्रकारकी अहिंसा केवल व्यक्तियोंके ही लिए सम्भव दिखाई देती है। व्यक्तियोंमें भी केवल वही दण्ड-नीतिको सर्वथा छोड़ सकता है, जिसने परि-ग्रहका सर्वथा त्याग कर दिया हो। यहाँ तो ऋण लेनेवाले तथा उनकी जमानत देनेवाले दोनों ही खादी-मण्डलका धन वापस नहीं दे रहे हैं। तब खादी-मण्डलका यही एक धर्म है कि वह अदालतमें जाकर भी उनसे पैसा वसूल करे। 'गीताजी' का स्थूल अर्थ करते हुए भी यही रहस्य निकलता है। अर्जुनने सारी जिन्दगी शस्त्र-सचालनमें बिताई थी। श्मशान-पाण्डित्य उसके लिए किस कामका था? लड़ाई तो वह उसकी तैयारी करते ही स्वीकार कर चुका था। उसका धर्म यही था कि लड़कर वह अपने उस समयके धर्मका पालन करे। इसी प्रकार खादी-मण्डलने जब सार्वजनिक द्रव्य उधार दिया, तभीसे उसे यह धर्म प्राप्त हो गया कि यदि जमानतदार अयोग्य साबित हो तो उन्हें अदालतमें ले जाकर भी पैसा वसूल कर ले। पंचायत तो वहीं चल सकती है, जहाँ दोनों पक्ष पचको माननेके लिए तैयार हों। पचका मान अभी तो लुप्त-सा ही हो गया है। ऐसी अवस्थामें केवल यही हो सकता है कि हम खुद पचायतको मानने-के लिए हमेशा उत्सुक रहते हुए और उसके लिए प्रयत्न करते हुए जरूरत पडनेपर मौजूदा अदालतोंमें जाये। लेकिन पंचायतकी प्रवृत्ति आम तौरपर स्वीकृत होनेके पहले बहुत लोगोंको तपश्चर्या करके आत्मशुद्धि करनी पडेगी। वह हम यथाशक्ति करें।

[गुजरातीमें]

नवजीवन, २३-८-१९२५

५७. मालिकोंमें से एक

'नवजीवन' के ग्राहक भी अपनेको 'नवजीवन' का मालिक ही मानें, यह बात मैंने सोच-समझकर ही लिखी थी। अपने उक्त कथनको सही सिद्ध करनेके लिए मैं अब एक ऐसे ही ग्राहक-मालिकका पत्र, पत्रके प्रश्नोको छाँटकर उत्तर-सहित छाप रहा हूँ, और यह इसलिए कि वे इसके मालिक हैं :

> 'नवजीवन' ने पचास हजार रुपयेकी बचत की, फिर भी ग्राहकोंको उसका कोई सीधा लाभ नहीं दिया। ऐसी स्थितिमें दूसरे पत्र-प्रकाशक क्या करते हैं, इसका विचार करें। आपके व्यवहारकी तुलना उनके व्यवहारसे करें तो क्या यह अन्याय नहीं है? प्रत्येक दैनिक, साप्ताहिक अथवा मासिक हर साल कुछ-न-कुछ साहित्य भेंटके रूपमें देता ही है। इसी तरह 'नवजीवन' भी कोई उत्तम भेंट क्यों नहीं दे सकता?

हर पत्रका अपना दृष्टिकोण होता है। 'नवजीवन' किसीके साथ स्पर्धा नहीं करता। यह किसीके निजी लाभके लिए भी नहीं छापा जाता। 'नवजीवन' को जो-

कुछ आमदनी होती है, सिर्फ इसके चन्दे से ही होती है। यह भेंट-उपहार आदिका लाभ देकर अपना अस्तित्व कायम नहीं रखना चाहता। अगर खुद 'नवजीवन' से ही पाठकों को इसपर खर्च किये अपने पैसेका पूरा मूल्य न मिलता हो तो यह बन्द हो जानेके लिए तैयार बैठा हुआ है। 'नवजीवन' की भेंट उसमें छपी सामग्री ही है। आजकल के सामान्य आधुनिक पत्रोंकी पद्धति मुझे पसन्द नहीं, ऐसा कहनेके बजाय उनसे उलटा व्यवहारकरके ही मैं अपनी अल्प शक्तिके अनुसार पत्रकारिताका पदार्थ-पाठ प्रस्तुत कर रहा हूँ। इस प्रयोगमें हिस्सेदार बननेसे क्या 'नवजीवन' के ग्राहकोंको सन्तोष प्राप्त नहीं होता? जिन्हें इससे सन्तोष प्राप्त न होता हो, उनके लिए भी 'नवजीवन' एक पदार्थ-पाठ बने।

> 'दक्षिण आफ्रिकाना सत्याग्रहनो इतिहास' ('दक्षिण आफ्रिकाके सत्याग्रहका इतिहास') 'नवजीवन' के परिशिष्टांकके रूपमें प्रकाशित हुआ,[1] और बादमें पुस्तक-रूपमें भी प्रकाशित हुआ। इसके बजाय क्या यह ज्यादा अच्छा न होता कि प्रारम्भमें ही इसे पुस्तक-रूपमें छपवाकर ग्राहकोंको भेंटके तौरपर अथवा लागत मूल्यपर दे दिया जाता? एक तो 'नवजीवन' का कागज बहुत हलके किस्मका होता है; फिर परिशिष्टांकमें कुछ दूसरी बातें भी रहती ही हैं। इसलिए इतिहासवाला हिस्सा अलग नहीं रखा जा सकता। इसका लाभ केवल 'नवजीवन' के पाठकोंको ही मिल सकता है। अगर इन अंकोंको ज्यादा लोग पढ़ें तो पन्ने मसल जायेंगे और अंक फाइल करनेकी स्थितिमें नहीं रह जायेंगे। इसके बदले अगर पुस्तक दी गई होती तो बहुत-से लोग पढ़ पाते। 'नवजीवन' तो कुछ ही लोग पढ़ते हैं, लेकिन पुस्तक पढ़नेकी इच्छा बहुत लोगोंको रहती है। और पुस्तकके पन्ने मसले भी नहीं जाते। चाहे जब उसे पढ़ा जा सकता है। वह जितना ज्यादा पढ़ी जायेगी, उतने ही ज्यादा लोगोंको उसकी जानकारी होगी। इन तथ्योंके बावजूद, आपके नियन्त्रणमें चलनेवाली संस्थामें मितव्ययिता और दीर्घदृष्टिका इतना अभाव क्यों है? मुझ-जैसे बिलकुल साधारण स्थितिके आदमीके लिए इस तरह दोहरा खर्च कितना कठिन पड़ेगा? क्या इससे कम पैसेमें अच्छा साहित्य देनेके आदर्शका पालन हुआ है?

दक्षिण आफ्रिकाके सत्याग्रहका इतिहास अभी पूरा नहीं लिखा गया है। जेलमें[2] मैं कुछ-एक प्रकरण ही लिख पाया था। समय निकालकर 'नवजीवन' के पाठकोंके लिए हर हफ्ते एक प्रकरण लिखता हूँ। अगर प्रारम्भसे ही इसे पुस्तकके रूपमें प्रकाशित करनेका विचार करता तो आजतक भी जनताके सामने इसका कोई हिस्सा प्रस्तुत न हो पाता। इसके अलावा उसकी कीमत भी ज्यादा पड़ती। 'नवजीवन' के सर्वथा गरीब पाठक इसे वाचनालयोंमें पढ़ते हैं। कुछ लोग सम्मिलित रूपसे मँगाते हैं।

१. अप्रैल, १९२४ से; गुजरातीमें पुस्तक रूपमें इसका प्रकाशन १९२४-२५ में हुआ था।
२. यरवदा जेलमें; जहाँ गांधीजीको मार्च, १९२२ से फरवरी, १९२४ तक रखा गया था।

कुछ दूसरे गरीब लोगोंको एक सज्जन कम कीमतपर या मुफ्त ही यह पत्र उपलब्ध कर दिया करते हैं। पत्र-लेखक अपना अंक सावधानीके साथ बचाकर रखें और खुद ही उसकी जिल्द बँधवा लें। शुद्ध गरीबीके सुन्दर लक्षणोंमें छोटीसे-छोटी वस्तुको भी सावधानीके साथ बचाकर रखनेका गुण भी शामिल है। और 'नवजीवन' की मितव्ययिता तो ऐसी है कि उसमें काम करनेवाले कुछ लोग अपनी गाँठसे खर्च करके काम करते हैं।

लेकिन, इस मालिकसे क्या कहा जाये? ये तो 'नवजीवन' को खरीदते हैं और उसे पढ़कर ही रह जाते हैं। कोई मालिकी पैसा कमानेका साधन बनती है तो कोई उसे गँवानेकी। कोई नैतिकताको पुष्ट करती है तो कोई उसका ह्रास। कोई हँसाती है तो कोई रुलाती है; कोई स्वराज्यकी राहपर प्रवृत्त करती है तो कोई पर-राज्य-की ओर खींचती है। 'नवजीवन' की मालिकी पैसा नहीं देती, इतना तो स्पष्ट है। 'नवजीवन' की मालिकी ग्राहकका पैसा खर्च करती है, यह भी इतना ही स्पष्ट है। लेकिन, इसमें कोई विचित्रता है क्या? मैं तो उसका बड़ेसे-बड़ा मालिक माना जाऊँगा न? मुझे दूसरे खातोंसे पैसा निकालकर 'नवजीवन' को लेख भेजनेके लिए टिकट खरीदने पड़ते हैं। कभी-कभी तार भी भेजना पड़ता है। मैं ग्राहकोंको भरोसा दिलाता हूँ कि उनका जितना खर्च होता होगा, उससे कहीं अधिक मेरा होता है। और ऐसा एक मैं ही नहीं हूँ। मेरे दूसरे साथी भी ऐसे ही हैं। और अगर मनुष्य जो न्याय अपने ऊपर लागू करता है वही दूसरोंपर भी करे तो क्या इतना काफी नहीं है? ग्राहक तो वार्षिक चन्दा देकर ही छुटकारा पा जा सकते हैं, लेकिन अवैतनिक संचालक-मालिकके हालकी तो सोचिए। 'नवजीवन' खरीदनेका मतलब है स्वराज्यके मार्गमें प्रवृत्त होना, 'नवजीवन' खरीदनेका मतलब है चरखेका स्तवन करना। 'नवजीवन' का ग्राहक होना तो सत्य और अहिंसाका सौदा है। दूसरी तरहके प्रलोभन देकर ग्राहक खोजनेकी मुझे कोई इच्छा नहीं है।

> **आप लिखते हैं कि 'नवजीवन' अर्थोपार्जनका साधन नहीं है। उसके पाठक अपनेको उसका मालिक ही समझें। लेकिन, यह तो आपका खयाल-भर है। इसे कार्य-रूप क्यों नहीं दिया जाना चाहिए? यह पचास हजारकी बचत क्या अर्थोपार्जन नहीं है? फिर भी, अगर उसका लाभ ग्राहकोंको न मिले तो फिर उनकी मालिकी कहाँ रही? अपने दूसरे खर्चमें बहुत काट-छाँट करके भी जो लोग 'नवजीवन' मँगाते हैं, क्या उनके साथ यह अन्याय नहीं है?**

मैं आज भी कहता हूँ कि 'नवजीवन' अर्थोपार्जनका साधन नहीं है। ५० हजार की बचतको अर्थोपार्जन तब माना जायेगा जब उसका उपयोग संचालक करें। 'नवजीवन' के ग्राहकोंकी संख्या आज ५,००० है, पहले ३०,००० थी। यदि फिर इसके उतने ही ग्राहक हो जायें तो भी मैं इसकी कीमत कम न करूँ, बल्कि प्रति ग्राहक जो एक पैसेकी बचत हो उसे फिर सार्वजनिक कार्योंमें लगा दूँ और ऐसा मानूँ कि इसका लाभ 'नवजीवन' के ग्राहक-मालिकको ही मिला।

दरअसल तो प्रकाशन मन्दिर अपने अस्तित्वके लिए 'नवजीवन' का ही आभारी है। इसलिए आप यह बात तो स्वीकार करेंगे न कि वह अप्रत्यक्ष रूपसे 'नवजीवन' के ग्राहकोंका ही आभारी है? फिर भी, मन्दिरकी पुस्तकें उसके ग्राहकोंको तो कम कीमतपर दी जायें और 'नवजीवन' के ग्राहकोंको उनके लिए ज्यादा देना पड़े, यह पक्षपात क्यों? हमें भी जो पुस्तकें चाहिए वे कम कीमतपर क्यों नहीं दी जातीं? जो लोग लगातार छः-छः वर्षोंसे 'नवजीवन' के ग्राहक हैं, उन्होंने क्या गुनाह किया है?

सस्ते प्रकाशनकी योजना मैंने नहीं बनाई। यह योजना मुद्रणालयके संचालक-की[1] बनाई हुई है। फिर भी यह सच है कि यह योजना मेरी सम्मतिसे चल रही है। ऐसी प्रकाशन-प्रवृत्ति मुझे अच्छी भी लगती है। मुद्रणालयका साप्ताहिकोंसे सम्बन्धित काम जब कम हो गया तो इस खयालसे कि बाकी समयमें थोड़ा-बहुत काम रहे, यह योजना बनाई गई। इसमें मुद्रणालयको बाजार भावसे पारिश्रमिक मिलता है और बदलेमें वह बिना किसी अतिरिक्त पारिश्रमिकके इसकी सारी व्यवस्थाका भार वहन करता है। इस भारको 'नवजीवन' के ग्राहक नहीं उठाते। इस हालतमें सस्ती कीमतका लाभ उसीके ग्राहकोंको मिले, यह उचित ही है। 'नवजीवन' के छः वर्षोंके ग्राहकोंको साप्ताहिक पाठ्य सामग्रीके रूपमें जो-कुछ मिला है, वह कोई सामान्य लाभ नहीं है।

लायलपुरके वकीलके मुवक्किलकी तरह[2] अपने ठगे जानेका किस्सा आपको सुनाऊँ? नडियाद स्वदेशी भण्डार लिमिटेडको उत्तेजन देनेके लिए 'नवजीवन' में जो अपील निकाली गई थी, उसीके कारण मैं ठगा गया। आपके पुत्रको कोई आपके जैसा मानकर ठगा जाये, यह तो भूल है, लेकिन आपके ही पत्रमें प्रकाशित बातको अविश्वसनीय कैसे माना जाये? मैंने दस-दस रुपयेके पाँच हिस्से खरीदे। मुझ-जैसे गरीब आदमीने इस भरोसेसे कि स्वदेशीको भी उत्तेजन मिलेगा और साथ ही मुझे भी कुछ ब्याज मिल जायेगा, उसमें अपनी आधी पूंजी लगा दी। लेकिन उसका परिणाम क्या हुआ? ब्याज तो दूर रहा; कम्पनी दिवालिया घोषित हो गई और तीन वर्ष हो गये मुझे अबतक एक पैसा भी वापस नहीं मिला है। मास्टर कम्पनी तथा भण्डारसे तीन-तीन बार पूछताछ की, लेकिन किसीने जवाब ही नहीं दिया कि भण्डार दिवालिया कैसे हो गया। इस सम्बन्धमें गोकुलदास तलाटीके पास भी निवेदन लिख भेजा, लेकिन उन्होंने भी कोई जवाब नहीं दिया। इस तरह भण्डारके लिक्वीडेटर (परिसमापक) का भी जवाब न देना और श्री तलाटी-जैसे व्यक्तिका जाँच-पड़ताल करके कोई उत्तर न देना — इसे क्या आप उचित मानते हैं? क्या आप उनसे कुछ नहीं कह सकते? हममें इतनी व्यवस्था और ईमानदारी भी न हो तो काम कैसे चल

१. स्वामी आनन्दानन्द।

२. देखिए खण्ड २७, पृष्ठ २७०-७३।

सकता है? जिस तरह 'नवजीवन' में अपील प्रकाशित की गई थी, उसी तरह किसके दोषके कारण इसका दिवाला निकला, कहीं अव्यवस्था तो नहीं हुई, संचालक और दूसरे लोग इससे कहीं अपनी ही थैलियाँ तो नहीं भरते रहे, इन तमाम बातोंकी जाँच करके इस पत्रमें क्या उसका यथोचित स्पष्टीकरण नहीं किया जा सकता?

नडियादके स्वदेशी भण्डारकी स्थितिकी मुझे कोई जानकारी नही है। अगर यह भण्डार डूब गया हो, उसमें अनीति हुई हो और मैंने उसे कोई प्रमाणपत्र दिया हो तो मैं भी अवश्य ही पापका भागी हूँ। यह मेरी अल्पज्ञताका सूचक है। मुझसे भूल हो सकती है, यह तो मैं कई बार कबूल कर चुका हूँ। यदि कुल मिलाकर मेरी भूलोंकी तुलनामें, जहाँ मैं सही साबित हुआ होऊँ, ऐसे प्रसंगोंकी सख्या अधिक हो तो मेरी बातोंको उस हदतक वजन देने लायक माना जाये। अच्छा तो यह है कि किसीके प्रमाणपत्रको मानकर चलनेके बजाय अपने निजी अनुभवसे चीजोको परखा जाये। लेकिन, यह हमेशा सम्भव नहीं, इसलिए दुनिया प्रमाणपत्रोंको देखकर निर्णय करती ही रहेगी और इसमें वह यदा-कदा धोखा भी खायेगी ही। नडियादके भण्डार-में कोई धोखे-बाजी हुई है यह मुझे मालूम नही, मैं संचालकोंको स्पष्टीकरण देनेकी प्रार्थना करता हूँ। मैंने कैसा प्रमाणपत्र दिया था, मुझे यह भी याद नही है। यात्रामें मैं फाइलोको साथ नही रखता।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २३-८-१९२५

५८. अन्त्यजोंके मन्दिर

अन्त्यजोंके मन्दिरोंके विषयमें मैं अपने विचार पहले ही प्रकट कर चुका हूँ। मन्दिर-मात्रके विषयमें मेरा विचार यही है कि उनका असली मूल्य उनके लिए की गई तपश्चर्यामें निहित है। उदाहरणार्थ यदि कोई व्यभिचारी और अत्याचारी पुरुष अपने अत्याचारके पोषणके लिए अथवा उसे छिपानेके लिए जगह-जगह मन्दिरोकी स्थापना करता है तो वे मन्दिर अपने नाम अथवा रूपसे ही पवित्र स्थान नही बन जाते। इसके विपरीत, यदि दस-बीस पवित्रात्मा व्यक्ति अपनी मेहनतसे मिट्टी और घास-फूसकी एक कुटिया बनाकर उसमें मूर्तिकी प्रतिष्ठा करके निरन्तर ध्यान करे तो वह व्यभिचारियों-के उस रत्नजटित नाम-मात्रके मन्दिरकी तुलनामें तीर्थस्थान है। इसी दृष्टिसे मैं यह मानता हूँ कि अन्त्यजोंके मन्दिर तभी शोभा देंगे, जब ये मन्दिर मुख्य रूपसे अन्त्यज भाइयोंकी ही मेहनतके परिणाम हों। ऐसी सलाह मैंने लाठीके[1] अन्त्यज भाई-बहनों-को दी थी और उन्होंने उसे स्वीकार भी कर लिया था। उन्होंने उसी सभामें उसके लिए पैसे और आभूषण दिये थे। मेरे द्वारा रखी गई शर्तें ये थी: तय हुआ था कि

१. सौराष्ट्रका एक छोटा-सा कस्बा, जो उस समय एक रियासतकी राजधानी था; देखिए खण्ड २६, पृष्ठ ४६९।

जितना धन अन्त्यज भाई इकट्ठा करें, उतना ही राज्य भी दे। इन दोनोंकी कुल रकम-के बराबर मैं इकट्ठा करूँ। उस मन्दिरका एक ट्रस्ट बना दिया जाये, जिसमें एक ट्रस्टी अन्त्यजोंकी ओरसे, एक राज्यकी ओरसे और एक मेरी ओरसे नियुक्त किया जाये। ऐसा करनेसे मन्दिर सुव्यवस्थित रहेगा, उसके साथ एक भावना भी जुड़ी रहेगी तथा अन्त्यज भाइयोंको धार्मिक सुविधा मिलेगी। मन्दिरके साथ पाठशालाकी सुविधा देनेकी बात भी ध्यानमें रखी गई थी। मैं आशा करता हूँ कि लाठीके अन्त्यज भाइयोंने जो उद्यम शुरू किया था, उसे छोड़ा नहीं होगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २३-८-१९२५

५९. कुछ और प्रश्न

जिन सज्जनने आजके अग्रलेखमें[1] चर्चित प्रश्न पूछे हैं उन्होंने अपने उसी पत्रमें कुछ और प्रश्न भी पूछे हैं। ये प्रश्न चूँकि उन प्रश्नोंसे अलग और अपने-आपमें स्वतन्त्र हैं, इसलिए उनमेंसे कुछ-एक नीचे दे रहा हूँ :

> अलवर राज्य तो पण्डित मालवीयजीको अकेले ही तहकीकात करनेकी इजाजत दे रहा था, फिर भी उन्होंने तहकीकात नहीं की। क्या यह उनकी भूल नहीं है? राज्यकी ओरसे आर्थिक सहायता मिलती हो, सिर्फ इसी कारणसे दब जाना और अपने फर्जसे मुँह मोड़ लेना, सार्वजनिक साहसका परिचय देनेमें हिचकना और तहकीकातके मिले हुए मौकेको गँवा देना, यह क्या पण्डितजी जैसे नेताके लिए अशोभनीय नहीं है?

मैंने अखबारोंसे पढ़कर पण्डितजीके विषयमें लिखा था। लेखकने उतावलीमें उलटा अनुमान लगा लिया है। पण्डितजीको अलवर जानेकी तथा तहकीकात करनेकी इजाजत मिली ही नहीं। अलवर-नरेशके अधिकारीवर्गने डायरशाही चला रखी है; और अलवर नरेशने खुली तहकीकातको रोककर स्वेच्छाचारका अवलम्बन किया है और इस तरह राजमुकुटके तेजको कम कर दिया है। पण्डितजी ऐसे भीरु नहीं हैं कि तहकीकात-का मौका उन्हें मिले और वे उसे गँवा दें। कोई स्वप्नमें भी यह खयाल न लाये कि पण्डितजी पैसेके लिए आत्माको बेच देंगे।

> आपका यह कहना कि किसी विषयपर पति-पत्नीके विचार अलग-अलग हों, तब भी उन्हें एक-दूसरेके विचारको सहन करना चाहिए और इस तरह यदि पत्नी विदेशी वस्त्र पहनना चाहे तो पति उसे विदेशी वस्त्र भी दे, मुझे युक्ति-संगत नहीं मालूम होता। पत्नी यदि पतिका कहना न माने तो भी पतिको उसका कहना अवश्य मानना चाहिए, यह कहाँका न्याय है? एक सुधारक दम्पती

१. देखिए "मालिकोंमें से एक", २३-८-१९२५।

पहले मदिरापान करते हों और बादमें पति मदिरा छोड़ दे और पत्नीसे भी छोड़नेके लिए कहे, लेकिन वह न छोड़े तो क्या पति उसे लाकर पिलाया करे? आपने कई बार विदेशी वस्त्रोंकी तुलना शराबके साथ की है और उन्हें जला डालनेका आग्रह किया है। फिर अब आप यह उपदेश कैसे देने लगे? क्या यह उलटी बात नहीं है? पति बहुत हुआ तो देशी मिलके कपड़े खरीद दे, पर विदेशी तो हरगिज नहीं।

पति-पत्नीका धर्म विकट है। हिन्दू पति यही समझते हुए दिखाई देते हैं कि पत्नी एक सौदेकी चीज है। मैंने ऐसे राक्षस-रूप पतियोंके बारेमें भी सुना है जो अपनी अर्धांगिनीके सम्बन्धमें कहते हैं — 'यह मेरा माल है'। जो यह कहते हों कि पति जितने परिवर्तन अपने जीवनमें करे उनको पत्नी तुरन्त समझ ले और वह भी उनपर अमल करने लगे, उन्हें क्या कहें?

पत्नीका कोई व्यक्तित्व है या नहीं?

दमयन्तीका था। मीराबाईने तो अपने आचरणसे ही इसे प्रत्यक्ष सिद्ध कर दिया। दम्पती-धर्म बहुत कठिन है। दलित स्त्रीकी सन्तान भी दलित ही होगी। जिस प्रकार खादीके भक्तको औरोंका विदेशी लिबास सहन करना पड़ता है, उसी प्रकार वह अपनी पत्नीका भी करे। फर्ज कीजिए कि हम दम्पती मांसाहारी हैं। मुझे शुद्धिकी प्रेरणा हुई और मैंने मांसाहार छोड़ दिया; तो क्या मेरी पत्नीको भी मांसाहार छोड़ देना ही चाहिए? या मैं उसे समझाकर, मना कर छुड़वाऊँ? फर्ज कीजिए कि मैंने जबरन पत्नीसे मांसाहार छुड़वा दिया; पर फिर मेरी जीभने मांसाहार माँगा तो क्या फिर मेरी पत्नीको भी शुरू करना चाहिए? ऐसे सुहागसे वैधव्य क्या बुरा है? राक्षसकी स्त्री मन्दोदरीको भी स्वतन्त्रता थी। द्रौपदी पाण्डवोंको धौंस देती थी, भीम जैसा पति द्रौपदीके पास नम्र बनकर जाता था। सीता-पतिकी तो बात ही क्या? सीता थी कि राम पूजे गये। धर्ममें बल-प्रयोग नहीं हो सकता। धर्म तो तलवारकी धार है। जहाँ कृष्णने "किं कर्म"[1] कहा है, वहाँ "किं धर्म" समझना चाहिए। कवि अर्थात् ज्ञानीका मन भी उसका शोध करते हुए भ्रमित हो गया है। मैं खादीका परम भक्त हूँ, लेकिन मैं भी मानता हूँ कि अपनी पत्नीको जबरन खादी पहनानेका अधिकार मुझे नहीं है। पति-पत्नीका प्रेम स्थूल वस्तु नहीं। उसके द्वारा आत्मा-परमात्माके प्रेमकी झांकी दिखाई दे सकती है। यह प्रेम वैषयिक प्रेम कभी नहीं हो सकता। विषय-सेवन तो पशु भी करता है, उसे हम पशु-चर्याके नामसे जानते हैं। जहाँ शुद्ध प्रेम है, वहाँ बल-प्रयोगके लिए गुंजाइश ही नहीं। जहाँ शुद्धप्रेम है, वहाँ दोनों एक-दूसरेका मन रखकर चलते हैं और दोनों धर्म मार्गमें आगे बढ़ते हैं।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २३-८-१९२५

१. किंकर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः।
तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्॥ ४-१६

६०. पत्र : नानाभाई इच्छाराम मशरूवालाको

१४८, रसा रोड
कलकत्ता
भाद्रपद सुदी ४ [२३ अगस्त, १९२५][1]

भाईश्री ५ नानाभाई,

आपका पत्र मिल गया है। फुर्सत मिलनेपर अवश्य आ जाऊँगा। सारा देश कुछ करे या न करे, हमें तो अपना काम करते ही जाना है, यह दूसरोंको समझानेका सबसे आसान रास्ता है। अमरावतीके वकीलोंका किस्सा हमारी दुर्बलताकी कहानी है।

मैं समय मिलते ही जरूर आ जाऊँगा, लेकिन फिलहाल तो घड़ी-भरकी भी फुर्सत नही देखता; सो निरुपाय हूँ। कई जगहोंसे आनेकी माँगें आती रहती हैं, लेकिन कही भी जा नही पाता।

वहाँकी परिस्थितियोंसे मुझे अवगत करते रहना।

मोहनदासके वन्देमातरम्

गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ११७०ए) से।
सौजन्य : सुशीला बहन गांधी

६१. पत्र : सुधीर रुद्रको

१४८, रसा रोड
कलकत्ता
२५ अगस्त, १९२५

प्रिय सुधीर,

मेरा बायाँ हाथ काम नहीं कर रहा है, इसलिए यह छोटा-सा पत्र मैं बोलकर लिखा रहा हूँ। चार्ली एन्ड्रयूजने मुझे बताया है कि तुम अपनी मनःस्थितिपर काबू नहीं रख पाते और तुम कभी-कभी दुःखी हो उठते हो। यह सुशील रुद्रके पुत्रके योग्य नहीं है। अगर तुम्हारे पिताजी अब शारीरिक रूपसे हमारे बीच नहीं हैं तो क्या आत्मिक रूपसे भी हमारे बीच नहीं हैं? बल्कि शायद वे पहलेसे अधिक ही हमारे बीचमें हैं। अब हम सब उनके सर्वोत्तम गुणोंको अपने जीवनमें उतारकर दिखायें; फिर उनके शरीरके नाश होनेपर दुःखी होनेका कोई कारण ही नहीं रह जायेगा।

सस्नेह,

तुम्हारा
मो० क० गांधी

अंग्रेजी पत्र (सी० डब्ल्यू० ६०९४) से।
सौजन्य : श्रीमती राजमोहिनी रुद्र

१. गांधीजी इसी वर्ष १४८, रसा रोड, कलकत्तामें ठहरे थे।

६२. भाषण: यंग मैन्स क्रिश्चियन एसोसिएशन, कलकत्तामें[1]

२५ अगस्त, १९२५

पिछले महीने कलकत्तेके यंगमैन्स क्रिश्चियन एसोसिएशनकी कालेज शाखाकी एक सभामें गांधीजीसे एक ऐसे विषयपर बोलनेको कहा गया, जिसके बारेमें उन्होंने पहले कुछ सोचा नहीं था। स्पष्ट ही कुछ गलतफहमी हो गई थी। वे ऐसा मान रहे थे कि उन्हें "ग्राम-संगठन" पर बोलना है, लेकिन उनसे जिस विषयपर बोलनेको कहा गया, वह था, "व्यक्तित्वका महत्त्व और सम्भावनाएँ।" इस विषयपर वे कुछ पशोपेशमें पड़ गये। लेकिन उन्होंने बीचका रास्ता निकाला और उस शामको उन्हें जिस विषयपर बोलना था, उसपर बोलते हुए प्रसंगवश ग्रामसंगठनके विषयमें भी अपनी बात कही।

उन्होंने कहा कि अगर व्यक्तित्वका अर्थ चरित्र है, और मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं कि इसका यही अर्थ है तो चरित्रके महत्त्वपर तो किसी भी व्यक्तिसे बोलनेको कहा जा सकता है। भर्तृहरिने, जो राजा होनेके साथ-साथ दार्शनिक और कवि भी थे, चरित्रबलकी महिमाका सार इन शब्दोंमें बताया है:

'सत्संग मनुष्यको क्या-कुछ नहीं बना सकता?'[2] व्यक्तिको स्वयं तो चरित्रवान बनना ही चाहिए; किन्तु मैं सार्वजनिक जीवनकी पवित्रताको सबसे ऊँचा स्थान देना चाहूँगा, और कहूँगा कि जो देश सार्वजनिक जीवनको पवित्र रखनेकी परवाह नहीं करता, उसका विनाश निश्चित है। ग्राम-संगठन ऊपरसे देखनेपर एक सीधा-सादा शब्द जान पड़ता है, लेकिन इसका अर्थ है पूरे भारतको संगठित करना, क्योंकि भारत मुख्यतया गाँवोंका देश है। सर हेनरी मैन ग्रामीण समुदायोंके बारेमें एक पुस्तक लिख गये हैं, जिसे सबको अपने पास रखना चाहिए। उन्होंने भारतको और संसारको बताया है कि भारतका वर्तमान ग्रामीण जीवन वही है जो आजसे पाँच हजार वर्ष पूर्व था, लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि भारतीय बर्बर हैं। इसके विपरीत लेखकने स्पष्ट रूपसे दर्शाया है कि भारतके ग्रामीण-जीवनमें इतनी शक्ति और चारित्र्य है कि युगोंसे उसका अस्तित्व बना हुआ है और उसने न जाने कितने तूफान झेल लिये हैं। उन्होंने इन गाँवोंका वर्णन करते हुए उन्हें ऐसे ग्रामतन्त्र कहा है, जो सर्वथा आत्म-निर्भर हैं, जिनके पास वह सब-कुछ है जो कोई चाह सकता है। उनके स्कूल हैं, पंचायत है, सफाईबोर्ड है, और यद्यपि इन गरीबोंकी सहायताके लिए कोई विशेष कानून नहीं है, फिर भी उनके पास अपनी सहायताकी पर्याप्त व्यवस्था है।

१. इस सभाके लिए प्रवेश-शुल्क भी रखा गया था, और उससे मिली रकम देशबन्धु स्मारक कोषको दे दी गई। सभाकी अध्यक्षता रेवरेंड डॉ० डब्ल्यू० एस० युर्गुहर्टने की थी।

२. 'सत्संगतिः कथय किम् न करोति पुंसाम्।'

उन्होंने भारतीय ग्रामीण कारीगरोंकी कलाकृतियोंकी भी झाँकी दी है। उन दिनों ग्रामीण लोग उनके लिए जो-कुछ सीखना जरूरी होता था, अपने माँ-बापसे ही वह सब-कुछ सीख लेते थे। लोगोंसे अपने दैनिक सम्पर्कमें उन्हें व्यक्तित्वके महत्त्व और उसकी सम्भावनाओंको जाननेका अवसर मिलता रहता था। उनकी दृष्टिमें गाँवका मुखिया विशिष्ट व्यक्तित्व-सम्पन्न व्यक्ति होता था। वह आजकलके पाखण्डियोंकी तरह नहीं था। वह लोगोंका सेवक होता था, जिसके पास लोग अपनी कठिनाईकी घड़ियोंमें जा सकते थे। उसे गाँवका एक-एक बच्चा जानता और प्यार करता था। उसे कोई भी प्रलोभन सत्य और कर्त्तव्यसे डिगा नहीं सकता था। वह सचमुच सज्जन पुरुष होता था। लेकिन आज तो ऐसे व्यक्ति दुर्लभ ही हैं। वक्ताने एक उसाँस भरकर कहा :

इस देशमें ऐसा क्या हो गया है कि अब ये सभी अच्छी चीजें देखनेको नहीं मिलती। कुछ सदी पहलेके उन आत्म-निर्भर गाँवोंके बदले हम ऐसे गाँव देख रहे हैं, जो अपनी बुनियादी आवश्यकताओंतक की पूर्तिके लिए लंकाशायर और जापानपर निर्भर हैं।

सारा ग्राम-जीवन बिखर गया है। लाखों लोग मलेरिया, हुक-वर्म (अंकुश कृमि) तथा दूसरी बीमारियोंसे मर रहे हैं। ये बीमारियाँ गन्दगी, घोर गरीबी, सुस्ती और बेकारीके परिणाम हैं। ग्राम्य-जीवन इस तरह अस्तव्यस्त कैसे हुआ, ऐसा पतन क्योंकर हुआ? कोई भी ईस्ट इंडिया कम्पनीके इतिहासके पृष्ठ पलटकर स्वयं देख सकता है कि कैसी निर्ममतासे और मुख्यतया अप्रामाणिक ढंगसे ग्राम्य-जीवनकी व्यवस्थाको तोड़ा गया। ईस्ट इंडिया कम्पनीकी सेवामें लगे लोग इस बातके स्थायी प्रमाण छोड़ गये हैं कि उन दिनों किस प्रकार अन्याय और भ्रष्टाचारका बोलबाला था और कितनी निर्ममतासे भारतकी दस्तकारीको नष्ट किया गया। आज एक ही अकाल या बाढ़के कारण ग्रामीण सर्वथा असहाय-विपन्न हो जाते हैं। लेकिन बाढ़ग्रस्त गाँवको इस तरह असहाय क्यों हो जाना चाहिए कि उसे दानपर जीना पड़े? मैंने दक्षिण आफ्रिकामें भी देखा है कि बाढ़का परिणाम क्या होता है। लेकिन वहाँ किसी प्रकारकी सहायताकी जरूरत नहीं होती। उन्हें राज्यकी ओरसे नहीं खिलाना पड़ता है। उनके पास गृह-उद्योग हैं। वे काम करते हैं। वे दुर्दिनमें सहारेके लिए बहुत-कुछ बचाकर भी रखते हैं। यहाँ खेतीके अतिरिक्त और कोई धन्धा- नहीं है, कोई काम नहीं, कोई बचत नहीं। सालमें चार महीने बेकार रहना पड़ता है और बंगालके गाँवोंमें तो छः महीनेतक भी। ग्राम-संगठन कर्त्ताओंके सामने यह समस्या है और उसका समाधान करनेमें व्यक्तित्वकी शक्तिका परिचय दिया जा सकता है। अन्तमें अपने कथनका सार प्रस्तुत करते हुए वक्ताने कहा :

आप गाँवोंमें जाइए और अपने चरित्रकी अभिव्यक्ति सेवा और दयाके किसी स्नेहसिक्त कार्यके द्वारा कीजिए। लोग आपके उस कामको सहज ही समझेंगे और अनुकूल प्रतिक्रिया दिखायेंगे। जिस नौजवानमें वास्तविक चरित्र हो, वह गाँवोंमें जाने-

का साहस दिखाये; वह खुद ही देखेगा कि उसके इस चरित्रका वहाँके लोगोंपर कैसा अनुकूल प्रभाव पड़ता है। लेकिन उसे धैर्य और सत्यसे काम लेना होगा। जहाँ धैर्य और सत्य तथा विनम्रता और सज्जनता नहीं हैं, वहाँ चारित्र्य नही है। वह गाँवोंमें उपदेशक और संरक्षक बनकर न जाये। उसे तो विनयके साथ हाथमें झाड़ू लेकर भंगीकी तरह जाना होगा। यह जो गन्दगी, गरीबी और बेकारीकी त्रिमूर्ति है, उसे उसका सामना करना होगा और उसके साथ झाड़ू, कुनैन, एरण्ड तेल और अगर आपको मेरी बातमें विश्वास हो तो चरखेरूपी हथियारसे लड़ना होगा। लेकिन चारित्र्यके बिना ये सब आपके किसी काममें नही आयेंगे। आपको अहकार छोड़कर नीचे झुकना होगा, तभी आप उनके हृदय जीत सकेंगे। आपको खुद मलेरियाका शिकार होनेका खतरा उठाना पड़ेगा। यह काम आपकी आत्माको जैसा चाहिए वैसा पूरा-पूरा सन्तोष देगा। यह ग्रामीणोंके जीवनको समृद्ध करेगा और खुद आपके जीवनको भी समृद्ध करेगा।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, १७-९-१९२५

६३. भेंट: भारतीय मनोविश्लेषण संस्थाके सदस्योंसे[1]

कलकत्ता
२६ अगस्त, १९२५

श्री गांधीने कहा, "अवचेतन तत्त्व" की बातसे मैं पूरी तरह सहमत हूँ, किन्तु मेरे विचारसे मेजर बर्कले हिल द्वारा दिये गये सुझावका हम जैसा चाहते हैं वैसा प्रभाव नहीं होगा। मैं समझता हूँ, इसमें गोहत्या सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व नहीं है। इस समस्याके पीछे और भी बहुतसे ऐसे तत्त्व काम कर रहे हैं जिनमें से सबका निराकरण "अवचेतन तत्त्व" वाले दृष्टिकोणके अनुसार चलनेसे नहीं हो सकता। अलग-अलग कार्यकर्त्ताओंको विभिन्न प्रान्तीय परिस्थितियोंको ध्यानमें रखते हुए इस कामको हाथमें लेना चाहिए, लेकिन व्रतहीन ढंगसे नहीं। गोहत्याके विरुद्ध सबसे जबर्दस्त भावना बिहार और संयुक्त प्रान्तमें है। यह अतीतसे चली आ रही एक समस्या है और

१. संस्थाके सदस्य ३-३० बजे शामको १४८, रसा रोडमें गांधीजीसे मिले थे। पहले राँचीके यूरोपीय मेंटल हास्पिटलके सुपरिटेंडेंट मेजर ओवेंद बर्कले हिल्का एक भाषण उनके पास भेज दिया गया था। उनके अनुसार हिन्दुओं और मुसलमानोंको एक करनेके अबतकके प्रयत्नोंके असफल रहनेका कारण यह था कि समस्याके पीछे काम कर रहे अवचेतन तत्त्वोंकी ओर किसीका ध्यान नहीं गया। उन्होंने कहा कि गाय हिन्दुओंका "धर्म-प्रतीक" है, इसलिए उसको लेकर हिन्दुओंके अवचेतनमें मुसलमानोंके प्रति विरोधकी भावना घर कर गई है। जब किसी गायका वध किया जाता है तो इस दबी हुई भावनाका भयकर विस्फोट होता है और इसीके कारण उपद्रव होते हैं। उनका सुझाव था कि यदि कोई उपयुक्त प्रतीक-रूप पशु चुन लिया जाये और हिन्दू तथा मुसलमान एक स्थानपर एक ही साथ इस प्रतीककी कुर्बानीमें भाग ले सकें तो यह तनाव कम किया जा सकता है। संघके सदस्योंने इस विषयपर गांधीजीकी राय माँगी थी।

इसके अध्ययनमें अनेक कार्यकर्त्ताओंको अपना जीवन खपा देना पड़ेगा। मैं चाहता हूँ कि संघके सदस्य सुझाये गये तरीकेसे इस कार्यमें लग जायें। मैं इस बातका विशेषज्ञ नहीं हूँ, इसलिए खुद मैं इसे हाथमें नहीं ले सकता। किन्तु मेरे मनमें किसी प्रकारका दुराग्रह नहीं है और मैं उन सभी व्यावहारिक सुझावोंपर ध्यान दूंगा।

जहाँतक हिन्दू-मुस्लिम एकताकी समस्याके हलका सम्बन्ध है, इस समय मैंने घुटने ही टेक दिये हैं। मैंने इसे प्रकृतिपर छोड़ दिया है। मेरा विश्वास है, अगर लोग आमने-सामने दो-तीन बार जमकर लड़ लें तो इन लड़ाइयोंकी निरर्थकता उनकी समझमें आ जायेगी। आज लड़ाइयाँ जहाँ भी हो रही हैं, वहाँ उनके पीछे कुछ स्थानीय झगड़ालू लोगोंका ही हाथ होता है। मेरा इन लोगोंपर कोई प्रभाव नहीं है। मेरा विश्वास है कि हिन्दू-मुस्लिम एकता स्वराज्यकी तरह जल्दी ही आ रही है और भारत आज एक हद दर्जेके नाजुक वक्तसे गुजर रहा है।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, २९-८-१९२५

६४. टिप्पणियाँ

सनातन हिन्दू

एक सज्जन हैं, जो मेरी तनिक-सी गफलतपर भी जवाब-तलब कर बैठते हैं। स्पष्ट है कि वे 'यंग इंडिया' के नियमित किन्तु आँखें बन्द करके तारीफ करनेवाले पाठक नहीं हैं। वे बड़े बेलाग, किन्तु सुहृद आलोचक हैं; वे मेरे लेखोंमें जो कुछ अच्छा होता है उसके साथ ही दोष भी देखते हैं। उनका एक पत्र मेरी फाइलमें बहुत दिनोंसे पड़ा हुआ है। उसमें उन्होंने मेरे लेखोंमें एक सम्भाव्य असंगतिकी ओर मेरा ध्यान आकर्षित किया है। उस पत्रके एक अंशमें 'सनातन हिन्दू' की व्याख्या की गई है। पत्रका वह अंश इस प्रकार है:[1]

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने लिखा था कि आपने अपनेको अक्सर एक सनातनी हिन्दू बताया है और सनातनी हिन्दूका अर्थ ऐसा हिन्दू लगाया है, जिसका वेदों, स्मृतियों आदिमें विश्वास हो। आपने धर्म-ग्रन्थोंमें प्रतिपादित जन्मपर आधारित जाति-प्रथापर भी जोर दिया है। अलबत्ता, आपने जाति-उपजातियाँ न मानकर चार वर्ण ही माने हैं, जिनमें चौथा वर्ण शूद्र है। जिन धर्म-ग्रन्थोंमें विश्वास रखना आप हर सनातनी हिन्दूके लिए आवश्यक मानते हैं, उन्हीं धर्म-ग्रन्थोंमें शूद्रोंके लिए वेदोंका अध्ययन और गायत्रीका जाप निषिद्ध कर दिया गया है। जिस व्यक्तिको (अर्थात् शूद्रको) हिन्दू-धर्मके ग्रंथोंका अध्ययन करनेकी मनाही हो, उसे हिन्दू कैसे कहा जा सकता है? इस तरह शूद्र वंशमें उत्पन्न व्यक्ति या तो आपकी परिभाषाके अनुसार हिन्दू नहीं है, या अगर हिन्दू है तो सनातन हिन्दूका मतलब वह नहीं होना चाहिए जो आपने लगाया है। पत्र-लेखकने "हिन्दू-धर्म" पर लिखे गांधीजीके लेख (देखिए खण्ड २१, पृष्ठ २५६-२६१) और बेलगाँवकी गोरक्षा परिषद्में दिये उनके भाषण (देखिए खण्ड २५, पृष्ठ ५४९-५५) का भी हवाला दिया था। उसने गांधीजीसे यह भी जानना चाहा था कि क्या वे नियमित रूपसे गायत्रीका जाप करते रहे हैं।

मैं लकीरका फकीर नही हूँ। इसलिए संसारके विभिन्न धर्म-ग्रन्थोंकी भावनाको समझनेका प्रयत्न करता हूँ। मैं उन्हे सत्य और अहिंसाकी कसौटीपर कसता हूँ; वह कसौटी स्वयं इन ग्रन्थोमें ही निर्धारित है। जो-कुछ उस कसौटीपर खरा नही उतरता उसे मैं अस्वीकार कर देता हूँ और जो खरा उतरता है उसे ग्रहण कर लेता हूँ। राम द्वारा वेदोको पढ़नेका साहस करनेके कारण एक शूद्रको दण्ड दिये जानेके आख्यानको मैं एक क्षेपक मानकर अस्वीकार करता हूँ। कुछ भी हो, मैं जिस रामकी उपासना करता हूँ, वे मेरी कल्पनाके पूर्ण पुरुष हैं। मैं उस ऐतिहासिक रामकी उपासना नही करता, जिसके जीवन-विषयक तथ्य ऐतिहासिक अन्वेषणों और अनुसन्धानोंकी प्रगतिके साथ-साथ बदलते रह सकते हैं। तुलसीदासका ऐतिहासिक रामसे कोई मतलब नहीं था। इतिहासकी कसौटीपर कसनेसे उनकी रामायण रद्दीके ढेरपर फेंक देने लायक रह जायेगी। लेकिन आध्यात्मिक अनुभूतिकी झाँकियाँ देनेवाली कृतिके रूपमें उनकी पुस्तक अद्वितीय है, कमसे-कम मेरे लिए तो वह ऐसी ही है। किन्तु तब भी तुलसीदासकी 'रामायण' के नामसे प्रकाशित होनेवाले अनेकानेक संस्करणोंमें मिलने-वाले हरएक शब्दको मैं बिलकुल ठीक नही मानता। मैं तो पुस्तकमें जो भावना व्याप्त है, उसपर मन्त्र-मुग्ध हूँ। शूद्रोके वेदाध्ययनपर लगाये गये प्रतिबन्धको खुद मैं स्वीकार नही कर सकता। मैं तो मानता हूँ कि अभी जबतक हम गुलाम हैं, तबतक हम सभी मुख्यतः शूद्र ही हैं। ज्ञानपर किसी भी श्रेणी या वर्गका विशेषाधिकार नही हो सकता। हाँ मैं यह समझ सकता हूँ कि जिस प्रकार पहलेसे तैयारी किये बिना कोई भी व्यक्ति ऊँचाईपर, जहाँ हवाका घनत्व बहुत कम है, साँस नही ले सकता; या जिन्होंने सामान्य गणितकी शिक्षा न ली हो, वे रेखागणित या बीजगणित नही समझ सकते, उसी प्रकार धार्मिक क्षेत्रमें भी प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त किये बिना लोगोंके लिए उच्चतर या सूक्ष्मतर सत्योंको ग्रहण करना असम्भव है। और अन्तमें यह कहूँगा कि मैं कुछ स्वस्थ परम्पराओमें विश्वास रखता हूँ। गायत्रीके जापके बारेमें भी एक परम्परा है — वह यह कि निर्धारित रीतिसे स्नानादि कृत्य करनेके बाद निश्चित समयपर ही गायत्रीका जाप करना चाहिए। चूँकि मैं उन परम्पराओमें विश्वास करता हूँ और चूँकि मैं सदैव उनका पालन नही कर पाता इसलिए मैं वर्षोंसे परवर्ती सन्तोंका अनुसरण करता रहा हूँ और मैं 'भागवत' के द्वादश-मन्त्रके जापसे अथवा तुलसी-दासकी सरलतर पद्धतिके अनुसरणसे और 'गीता' तथा अन्य पुस्तकोंके कुछ चुने हुए श्लोको और भाषाके कुछ भजनोंके पाठसे ही सन्तोष करता आया हूँ। ये मेरे दैनिक आध्यात्मिक आहार हैं। ये ही मेरी 'गीता' हैं। मुझे जिस शान्ति और आत्मतोषकी प्रतिदिन आवश्यकता होती है, वह सब इनसे पूरा-पूरा मिल जाता है।

लोहानी कहाँ है?

वही सज्जन लिखते हैं:

यह है कहाँ? लोहानी कहाँ है? उत्तरमें अब भी सिर्फ प्रतिध्वनि ही सुनाई देती है — कहाँ है? (कृपया ३०-४-२५ के 'यंग इंडिया' का पृष्ठ १५० देखिए)[1]

१. देखिए खण्ड २६, पृष्ठ ५५९।

मुझे याद है, इससे पहले भी दो-तीन मौकोंपर आपने कुछ मुसलमानोंकी ऐसी शिकायतें छापी थीं, जिनमें हिन्दुओंपर मस्जिदोंको अपवित्र करनेके इल्जाम लगाये गये थे। और अन्तमें जाँच-पड़ताल करनेपर आपको यह मानना पड़ा था कि शिकायतें निराधार हैं। किन्तु आपने जो इल्जाम झूठ साबित हुआ उनका वास्तविक रूप प्रकाशित नहीं किया; और न उन्हें बाकायदा वापस ही लिया। शायद आपको इसकी याद नहीं रही! मुझे ऐसा लग रहा है कि "लोहानी" से सम्बन्धित यह शिकायत भी इसी तरहकी मनगढ़न्त शिकायतोंका सबसे ताजा नमूना है। यदि आप १२-३-१९२५ के 'यंग इंडिया' का पृष्ठ ९१ देखें[1] तो आपको याद आ जायेगा कि आपको पत्र लिखनेवाले उन मुसलमान सज्जनने जो अनेक शिकायतें लिख भेजी थीं, उनमें से सिर्फ लोहानीवाली शिकायतको ही आपने प्रकाशनार्थ चुना और शेषको "अपुष्ट" मानकर अस्वीकार कर दिया था। लेकिन अब आपके इस चुने हुए इल्जामका क्या नतीजा निकला? क्या लोहानी नामका कोई स्थान है भी? यदि है तो क्या यह इल्जाम सचाईपर आधारित है? अगर नहीं है तो जिस तत्परतासे आपने मूल शिकायत प्रकाशित की थी, क्या उसी तत्परतासे आप उसका खण्डन प्रकाशित करके अपने-आपको इस पातकसे मुक्त करनेकी कृपा करेंगे? यदि यह काम आप यथासम्भव जल्दी ही कर डालें तो बहुत अच्छा हो।...

मैंने आखिरी दो-तीन वाक्योंको निकाल दिया है उनमें पत्र-लेखक साधारणतया जिस शैलीमें लिखते हैं, उससे कहीं अधिक उग्र हो गये हैं। मुझे पाठकोंको सूचित कर देना चाहिए कि मैंने मूल शिकायत करनेवाले महाशयसे तथा इस सिलसिलेमें उन्होंने जिन लोगोंका उल्लेख किया है, उन सबसे खूब पूछताछ की, पर मुझे भारतके नकशेमें वह मुकाम कहीं नहीं मिला। चूँकि मैंने अपनेको हिन्दू-मुस्लिम प्रश्नका विशेषज्ञ या अधिकारी पुरुष मानना छोड़ दिया है, इसलिए मुझे पत्र-लेखक द्वारा उठाये अन्य मुद्दोंपर कुछ लिखनेकी आवश्यकता नहीं है। इस अनुच्छेदके लिए भी मैंने बहुत अनिच्छापूर्वक स्थान निकाला, क्योंकि मैंने महसूस किया कि लोहानीके बारेमें अपनी जाँचका परिणाम पाठकोंके सामने रखना मेरी नैतिक जिम्मेदारी है।

पशुओंकी समस्या

श्री एन्ड्रयूजने मेरे पास जवाब देनेके लिए एक कतरन भेजी है। कतरन निम्न प्रकार है:

'राउण्ड टेबिल' नामक जिस त्रैमासिकमें राष्ट्रमण्डलकी राजनीतिकी समीक्षाकी जाती है, एक प्रश्न पूछा गया है: "दुनियामें भारतके अलावा और कौन-सा देश है जहाँ पशु पूजाके कारण इतनी स्तम्भित कर देनेवाली आर्थिक हानि उठाई जाती है?" "ग्रामवासी भारतीयोंकी निर्योग्यताएँ" ("डिसैबिलिटीज ऑफ रूरल इंडियन") शीर्षक लेखमें इसके सम्बन्धमें आँकड़े दिये गये हैं, जिनसे प्रकट होता है कि इससे होनेवाली आर्थिक क्षति "ब्रिटिश भारतके

१. देखिए खण्ड २६, "टिप्पणियाँ", पृष्ठ २८२।

कुल भूमि-करसे होनेवाली आयसे कहीं अधिक है।" इसपर एकाएक विश्वास नहीं होता। इस लेखमें बताया गया है कि "कुछ लोगोंके मनमें सभी जातियोंके पशुओंके प्रति जो कोमल-भाव—बल्कि कहिए, पूज्यभाव है, उसके कारण वे उनकी वंश-वृद्धिको रोक नहीं पाते। यहाँतक कि जब वे भूमिसे होनेवाली पैदावारमें मनुष्यसे हिस्सा बँटाने लगते हैं, या जब उनके कारण खेतीका पूरा-पूरा विकास असम्भव हो जाता है तब भी वह इनकी वंशवृद्धि रोकनेके लिए कुछ नहीं करता।" भारत गायके प्रति पूज्यभाव रखनेकी स्तम्भित कर देनेवाली कीमत चुका रहा है, यह इन आँकड़ोंसे स्पष्ट हो जायेगा:

भारतको अतिरिक्त बैलोंसे होनेवाली हानि	१,१५,२०,००,००० रु०
भारतको अतिरिक्त गायोंसे होनेवाली हानि	६१,२०,००,००० रु०
कुल	१,७६,४०,००,००० रु०

अगर प्रति पौंडमें १५ रुपये माने जायें तो कुल ११७,६००,००० पौंड हुए। कहते हैं, ब्रिटिश भारतको भूमि-करसे प्राप्त होनेवाला कुल राजस्व ३६ करोड़ रुपया है। इसका मतलब यह हुआ कि अतिरिक्त पशुओंसे होनेवाली वार्षिक आर्थिक क्षति भूमि-करकी आयकी अपेक्षा चार गुनीसे भी अधिक है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि भारतमें बढ़ती हुई गरीबीकी तरह ही उसकी पशु-समस्या भी उत्तरोत्तर अधिकाधिक गम्भीर होती चली जा रही है। लेकिन, भारतकी पशु-समस्या यहाँके अधिकांश लोगोंके लिए, अर्थात् हिन्दुओंके लिए गोरक्षाकी ही समस्या है—इसलिए गोरक्षाके व्यापक अर्थोंमें निस्सन्देह हमें यह "स्तम्भित कर देनेवाली हानि" तो बराबर उठाते रहनी पड़ेगी। अगर हममें "गायके प्रति पूज्यभाव" न हो तब तो हम अतिरिक्त और जर्जर पशुओंका तुरन्त वारा-न्यारा कर दें, और इस तरह एक अरब छिहत्तर करोड़ चालीस लाखकी वह रकम जिसका प्रलोभन हमें लेखकने दिया है, बचा लें। इसी तरह इसमें भी कोई शक नहीं कि सारी अतिरिक्त आबादीको—तमाम बीमार और कमजोर लोगोंको—मारकर हम इस देशको गरीबीसे भी छुटकारा दिला सकते हैं; और तब हममें से चन्द हजार लोग अपने-आपको उन भयंकर अथवा निरीह मनुष्यों और पशुओंसे, जिन्हें हम भाररूप मान रहे हैं, मुक्त करनेके लिए कुछ पिस्तौलों या इनसे भी तेजीसे काम करनेवाले अन्य हथियारोंसे लैस होकर इस विशाल भूभागमें बड़े मजेसे रह सकते हैं। लेकिन, जिस प्रकार अन्य देशोंमें गरीब और अपाहिज लोगोंको भाई माना जाता है, उसी प्रकार भारतमें हमें इनके साथ मवेशियोंको भी अपना मानकर चलाना पड़ेगा, और इसलिए गरीबीकी समस्याकी तरह मवेशियोंकी समस्याको भी अपने तरीकेसे, जिसे कुछ लोग अन्धविश्वासियोंका तरीका भी कह सकते हैं, हल करना होगा। गोरक्षा सम्मेलनमें दिये गये भाषणमें मैंने इसका रास्ता दिखानेकी कोशिश की है। धार्मिक भावनाका खयाल रखते हुए हम जहाँतक वैज्ञानिक तरीकोंसे काम ले सकते हों, वहाँतक लेना ही चाहिए। हमें बधिया करनेका वैज्ञानिक तरीका अपनाना होगा, पशुओंको खिलानेका कम खर्च तरीका ढूँढ़ना होगा। जहाँतक पशु-कल्याणकी भावनासे संगत हो वहाँतक उनसे अधिकसे-अधिक

काम लेना होगा, ऐसी व्यवस्था करनी होगी जिससे अभी जो गायें और भैंसें हैं उन्हींसे लोगोंको और ज्यादा दूध मिल सके; और हमें मरे हुए पशुओंके चमड़ेका भी अधिकसे-अधिक अच्छा उपयोग करना होगा। अगर हम यह सब कर लें तो उसका मतलब यह होगा कि मवेशियोंकी समस्याको हमने काफी हदतक हल कर लिया।

लेकिन, तब भी अपनी धार्मिक भावनाके लिए हमें एक कीमत तो चुकाते ही रहनी पड़ेगी। जिस धार्मिक भावनाके लिए कोई कीमत नहीं चुकाई जा सकती हो, उस धार्मिक भावनाको धार्मिक भावना कहना गलत होगा। वैज्ञानिक तथ्योंसे पूरी तरह अनभिज्ञ रहकर लोग गोरक्षाके नामपर रोज-रोज जो अन्धाधुन्ध धन दे रहे हैं, उसका उपयोग उपर्युक्त कार्योंमें किया जा सकता है। इससे कोई सीधा लाभ तो नहीं होगा। लेकिन आज जो जबर्दस्त बर्बादी हो रही है, वह बेहतर परिस्थितियोंके निर्माणपर रुक जायेगी, और उसका यह परिणाम तो होगा ही कि आज मुसलमानों या अंग्रेजोंके दुराग्रहके कारण नहीं, बल्कि हिन्दुओंकी मूर्खताके कारण जो हजारों पशु कसाइयोंके छुरेका शिकार होते हैं, उनकी जान भी बच जायेगी। आज तो हमारे अज्ञान और आलस्यके कारण करोड़ों मानव और करोड़ों पशु अध-भूखे रहकर तिल-तिल मर रहे हैं। धर्म-प्राण भारतके लिए यह कैसी विडम्बनाकी बात है।

उत्तरोत्तर प्रगति

वहरोकके सत्याग्रममें ग्यारह दिनोंमें ही कताईकी जो प्रगति हुई थी, उसके सम्बन्धमें मेरी टिप्पणी[1] पाठकोंको याद होगी। अब मुझे एक दूसरा पत्र मिला है, जिसमें उसके बाद की प्रगतिका हाल बताया गया है। पत्र नीचे दे रहा हूँ[2]:

अगर अधिकारी लोग चरखेमें अपना विश्वास बराबर कायम रखेंगे, तो मुझे कोई सन्देह नहीं कि कताईमें भी बराबर प्रगति होती रहेगी।

कांग्रेसका सूत

काँजीवरम्से एक भाई लिखते हैं[3]:

बड़ा बाजारसे दूसरे भाई लिखते हैं[4]:

शिकायतें तो बहुत-सी आई हैं, लेकिन नमूनेके तौरपर मैंने उनमें से सिर्फ दो यहाँ दी हैं। मुझे चन्देके रूपमें सूत लेनेका अधिकार नहीं है। मैं तो दानके रूपमें

१. देखिए खण्ड २७, पृष्ठ २२३।

२. यह पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने प्रगतिका हाल बताते हुए लिखा था कि जब आप यहाँ आये थे उस समय जहाँ इस इलाकेमें प्रतिमास सिर्फ एक-दो सेर सूत ही काता जाता था, वहाँ अब आधा मन काता जाता है। उन्होंने इस क्षेत्रमें राष्ट्रीय शालाके छात्रोंकी प्रगतिकी प्रशंसा करते हुए गांधीजीकी सहानुभूति और आशीर्वादकी कामना की थी।

३. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने शिकायत की थी कि काँजीवरम्से अप्रैल, १९२५ तक १८ हजार गज सूत भेजा गया, लेकिन पूछताछ करनेपर न जिला कमेटीने और न प्रान्तीय कमेटीने ही बताया कि उसका क्या हुआ। पत्र-लेखकने गांधीजीसे सीधे उन्हींके पास सूत भेजनेकी अनुमति माँगी थी।

४. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। इसमें पत्र-लेखकने यह शिकायत की थी कि मैं जिला कांग्रेस कमेटीको नियमित रूपसे सूत भेजता हूँ, लेकिन उसका क्या किया जाता है, इस बातका उत्तर मिलता है कि उसे चूहे खा रहे हैं। इसलिए मैं चाहूँगा कि आप स्थितिकी जाँच करके कोई निराकरण करें।

ही सूत ले सकता हूँ, और उसे सब जगह ले रहा हूँ। लेकिन, चन्दे तो अधिकृत व्यक्तियोंके पास ही भेजने चाहिए। फिर भी, ऐसी खामियाँ दूर करनेके लिए ही एक अखिल भारतीय कताई संघकी स्थापनाका प्रस्ताव किया गया है। अगर कांग्रेस कताईको सदस्यताकी वैकल्पिक योग्यताके रूपमें कायम रखती है और प्रस्तावित संस्थाको चन्देके रूपमें दिया सूत प्राप्त करनेका काम सौंपती है तो इसके जरिए उक्त दोष दूर किये जा सकते हैं। जो भी हो, मुझे तनिक भी सन्देह नहीं कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी आगामी बैठकमें कोई-न-कोई उपाय ढूँढ लिया जायेगा। इस बीच मैं सम्बन्धित कमेटियोंसे इन शिकायतोंपर ध्यान देनेका अनुरोध करता हूँ।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २७-८-१९२५

६५. सहमतिकी वय

विधानसभाके सामने प्रस्तुत एक विधेयकके सम्बन्धमें श्रीमती डोरोथी जिनराज-दासने एक परिपत्र जारी किया है। इस विधेयकका उद्देश्य सहमतिकी वयको बढ़ा कर कमसे-कम १४ साल कर देना है। पत्रकी एक प्रति उन्होंने मुझे भी भेजी है, जिसे नीचे दे रहा हूँ:

> विधान सभाके अगले अधिवेशनमें बाल-संरक्षण अधिनियम (चिल्ड्रन्स प्रोटेक्शन ऐक्ट) पर विचार होनेवाला है। यह पत्र मैं इसी उद्देश्यसे भेज रही हूँ कि आप लोगोंको उसके पक्षमें करनेके लिए अपने प्रभावका उपयोग करें। मैं हृदयसे ऐसा महसूस करती हूँ कि अगर भारतको दुनियाके राष्ट्रोंके बीच एक प्रतिष्ठित और सम्मानित महान् राष्ट्रका दर्जा प्राप्त करना है तो उसके माथेपरसे बाल-मातृत्वका कलंक मिटाना ही होगा।
>
> पिछले अधिवेशनमें भी इस विधेयकपर विचार हुआ था और तब देशमें तथा विधानसभामें इसको काफी समर्थन भी मिला था। मैं समझती हूँ कि अगर इसके पक्षमें अमुक प्रमाणमें लोकमत व्यक्त किया जाये तो अगले अधि-वेशनमें इसे पास करनेमें कोई विशेष कठिनाई नहीं होगी। मुझे निश्चित रूपसे ज्ञात है कि इस विधेयकके समर्थनमें देशमें जगह-जगह अनेक सभाएँ की जा रही हैं——विशेषकर महिलाओं द्वारा। और मुझे पूरा विश्वास है कि अधिकांश स्त्रियोंकी इच्छा यही है कि लड़कियोंकी सहवासकी वय बढ़ाकर कमसे-कम १४ साल कर दी जाये।
>
> अगर आप इस विधेयकके समर्थनमें जोरदार ढंगसे अपना मत व्यक्त करें और स्त्रियों तथा पुरुषों——दोनोंको इस विधेयकका समर्थन करने और व्यवहारतः इस सिद्धान्तका आचरण करनेके लिए समझायें तो मुझे भरोसा है कि उससे विधेयकके पास होनेमें बड़ी सहायता मिलेगी।

मुझे स्वीकार करना होगा कि इस विधेयकका मुझको कोई ज्ञान नही है, लेकिन मैं सहमतिकी वयको बढाकर १४ वर्ष ही नही, १६ वर्ष कर देनेके पक्षमें हूँ। इसलिए यद्यपि मै विधेयकके पाठके विषयमें कुछ नहीं कह सकता, किन्तु मैं ऐसे किसी भी आन्दोलनका हार्दिक समर्थन करूँगा जिसका उद्देश्य कच्ची उम्रकी लड़कियोंको पुरुषकी वासनासे बचाना हो। १४ वर्षकी किशोर लड़कीको किसी पुरुषकी वासना-तृप्तिका साधन होना पड़े, यह चीज मेरी नम्र रायमें अनैतिक और अमानवीय है और तथाकथित विवाह-विधिके नामपर अब उसे वैध कह सकना असम्भव हो जाना चाहिए। जो प्रथा अपने-आपमें अनैतिक हो उसे संस्कृत-ग्रन्थोंमें ऐसे वचनोके बलपर सही नही सिद्ध किया जा सकता जिनका आप्तत्व सन्देहास्पद है। मैंने अनेक बाल-माताओंके स्वास्थ्यको नष्ट होते देखा है और अगर बाल-विवाहकी इस भयानक बुराईमें बलात् थोपा गया बाल-वैधव्य भी शामिल कर लीजिए तब तो इस मानवीय दुःख-गाथाकी पराकाष्ठा ही हो जाती है। सहमतिकी वय बढ़ानेके उद्देश्यसे बनाये जानेवाले किसी भी विवेकपूर्ण कानूनको निश्चय ही मेरी सहमति प्राप्त होगी। लेकिन, मैं बड़े दुःखके साथ देख रहा हूँ कि लोकमतके समर्थनके अभावमें इस विषयसे सम्बन्धित वर्तमान कानून भी असफल ही साबित हुआ है। अन्य क्षेत्रोंकी तरह इस क्षेत्रमें भी सुधारकोंका काम अत्यन्त कठिन है। अगर हिन्दू जनताके मानसपर वास्तविक प्रभाव डालना हो तो उसके लिए अथक और अनवरत आन्दोलनकी आवश्यकता है। जो लोग भारतीय बालिकाओंको असमयमें बुढ़ापेका शिकार होने और अकाल ही काल-कवलित होने तथा हिन्दू-धर्मको क्षीण दुर्बल सन्तानोंके जन्मके लिए दोषी होनेसे बचानेके इस नेक काममें लगे हुए हैं, मैं उनकी पूरी सफलताकी कामना करता हूँ।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २७-८-१९२५

६६. स्वराज्य या मृत्यु

नीचे एक पत्र[1] दिया जा रहा है इसलिए नही कि उसका वक्तव्य अपने-आपमें मूल्यवान है। उसे देनेका कारण यह है कि लेखकने, जिनको मैं जानता हूँ, उसे बड़ी उत्कटतासे लिखा है, और उन्होंने जो विचार व्यक्त किये हैं, वैसे विचार बहुतसे दूसरे लोग भी रखते हैं।

पत्र-लेखकने जो दलीलें पेश की हैं, उनमें कुछ सचाई जरूर है। लेकिन उनका बुराईका सारा दोष सरकारके मत्थे मढ़ना सरासर गलत है। आखिर अंग्रेजीकी यह उक्ति कि किसी भी देशकी जनताको वैसी ही सरकार मिलती है जिसके वह लायक होती है, क्या बहुत अंशोमें सच नही है? अगर हम आसानीसे बुद्धू बन जानेवाले या दब जानेवाले लोग न होते तो हम ईस्ट इंडिया कम्पनीकी चिकनी-चुपडीके चक्कर-

१. पत्रके पाठके लिए देखिए परिशिष्ट १।

में आकर या उसकी शक्तिके सामने घुटने टेककर हाथ-कताई या खादी छोड़ नही देते। अगर हिन्दू और मुसलमान एक दूसरेके भाई बनकर रहते तो ब्रिटेनके सामन्तगण उनके बीच फूट नहीं डाल सकते थे। और अस्पृश्यताके अस्तित्वके लिए सरकारको दोष देना तो उसकी झूठी बदनामी करना है। अगर सरकारको कट्टरपन्थियोके विद्रोह-का भय न होता तो वह इस प्रथाको शायद कबकी समाप्त कर चुकी होती। जहाँतक मै जानता हूँ वह एक भी अवसरपर इस सुधारके आड़े नही आई है। पत्र-लेखकने जो वाइकोमके मामलेका दोष सरकारके मत्थे मढ़ा है, वह गलत है। इसका कारण तो सिर्फ वहाँके देशी शासनकी भीरुता है। मै वर्तमान शासन प्रणालीका प्रशंसक नही हूँ। लेकिन, अगर मै अपनी इस उम्रमे अपनी विवेकशक्तिको खो दूं तो फिर मै इस प्रणालीका अन्त नही ही कर पाऊँगा। शैतानके साथ भी न्याय करो, यह कहावत सही और ध्यानमें रखने योग्य है।

लेकिन, मुझे यह आशंका पूरी है कि जब खद्दरमें इतनी शक्ति आ जायेगी कि वह इस देशसे विदेशी वस्त्रोंको निकाल बाहर कर सके तो सरकार शायद उसके नाशका प्रयत्न करेगी। मै ऐसा माननेको तैयार नही हूँ कि यह विद्रोहियोकी पोशाक है या इसे उनकी पोशाक होनेकी कोई जरूरत है। सत्य यह है कि सरकारी हल्कोमें खादीके खिलाफ छिपे तौरपर प्रचार चल रहा है। मुझे बताया गया है कि खादी पहननेवालेपर निगाह रखी जाती है। खादी न पहननेपर सरकारी हल्कोमें उसे जो बहुत-सी सुविधाएँ मिल सकती थी, वे खादी पहननेके कारण नही मिलती। लेकिन, आम लोगोको खादी अपनानेसे रोकनेवाली कोई चीज नही है। स्वराज्य कुछ आसमानसे तो नही टपक पडेगा। इसके लिए धैर्य, कठिनाइयोंको झेलते हुए अडिग रहने, अथक परिश्रम और साहस तथा परिस्थितियो और परिवेशकी सही पहचान तथा पकड़की आवश्यकता होगी। पत्र-लेखकने जिस "दैवी शक्ति" की बात कही है, उसका लाभ भी मन अथवा शरीरसे शिथिल होकर पड़े रहनेसे नही, प्रार्थनापूर्ण श्रमसे ही मिल सकता है। श्रमहीन प्रार्थना कर्महीन आस्थाके समान एक निस्सार वस्तु है। इसलिए, हम भले ही विदेशी वस्त्रोंका पूरा बहिष्कार न कर पाये, किन्तु स्वराज्य पानेके लिए स्वराज्य प्राप्तिके पहले हमे खादीका कमसे-कम एक 'सुशोभन प्रदर्शन' तो कर सकना चाहिए। उदाहरणके लिए, कांग्रेसियोको सभी अवसरोपर खादी पहनने या चरखा चलानेसे कौन रोकता है? या उनसे स्वराज्य-प्राप्तिके बाद ही खादी पहनने या चरखा चलानेकी अपेक्षा की जानी चाहिए? क्या हम सब इस बातकी प्रतीक्षामें बैठे हुए फरिश्ते है कि स्वराज्य हो जानेके बाद राष्ट्रीय सरकार आकर हमारे पखोंमें जान फूंक देगी और हम उड़ चलेंगे? भले ही स्वराज्यसे पूर्व हमारे बीच आदर्श साम्प्रदायिक एकता स्थापित न हो पाये, लेकिन किसी तरहकी काम चलाऊ एकताका रास्ता कौन रोक रहा है? इसके विपरीत, क्या तथ्य यह नही है कि हममें एक दूसरेके प्रति इतना अविश्वास है कि वास्तवमें हम स्वराज्यकी कामना ही नहीं करते?

पत्र-लेखककी भूल सरकारके कर्त्तव्योके सम्बन्धमें उनकी भ्रामक धारणामे निहित है। स्पष्ट ही उनका खयाल यह है कि आदर्श सरकार वही है जो हमारे लिये हर चीजकी व्यवस्था कर दे, जिससे हमें खुद कुछ सोचना भी नही पड़े। किन्तु, सचाई

यह है कि आदर्श सरकार कमसे-कम शासन करती है। जो जनताके करनेके लिए कुछ छोड़े ही नहीं, वह स्वराज्य नहीं है। वह तो ऐसा राज्य है, जिसमें प्रजाको नासमझ बच्चा समझकर उसके हर कार्यका नियमन किया जाता है। हमारी वर्तमान अवस्था ऐसी ही है। स्पष्ट है कि पत्र-लेखक महोदय अभीतक उस अवस्थासे ऊपर नही उठ पाये है। लेकिन अगर हमें स्वराज्य प्राप्त करना है तो हममें से बहुत सारे लोगोंको जबरन थोपी गई इस नाबालिगीकी स्थितिसे ऊपर उठकर अपने आपको बालिग मानना ही होगा। जहाँ सशस्त्र सत्ता प्रबल रूपसे हमारे विरुद्ध खड़ी न हो, कमसे-कम उन क्षेत्रोमें तो हमें अपने ऊपर आप ही शासन करना चाहिए। तीन-सूत्री कार्यक्रम स्वशासनकी हमारी क्षमताकी कसौटी है। अगर हम अपनी तमाम कमजोरियोंका दोष वर्तमान सरकारके मत्थे ही मढ़ेंगे तो हम इनसे कभी भी छुटकारा नहीं पा सकेंगे।

मैंने बेलगाँवमें एक बात कही थी। पत्र-लेखकने मुझे उसकी याद भी दिलाई है। मैंने कहा था कि अगर काफी प्रगति नही होती तो शायद इस वर्षके अन्तमें मैं कोई ऐसा रास्ता निकालूंगा जिससे हम अपना अन्तिम निर्णय कर सकें और "मृत्यु या स्वराज्य" का नारा बुलन्द कर सकें। स्पष्ट ही वे इसका मतलब कोई ऐसी असाधारण उथल-पुथल मान बैठे हैं, जिसमें हिंसा और अहिंसाका कोई भेद ही नहीं रह जायेगा। ऐसी उथल-पुथलका परिणाम निश्चय ही स्वराज्य नही, बल्कि मनमानी करनेकी छूट लेना होगा। मनमानीका मतलब है अराजकता, और यद्यपि अराजकता गुलामीसे या ऐसी स्थितिसे जिसमें हमें अपने 'स्व' का दमन करना पड़े हर हालतमें अच्छी ही है, फिर भी जानबूझकर ऐसी स्थिति उत्पन्न करनेमें मेरा हाथ कभी नही होगा; इतना ही नही, ऐसी कोई स्थिति उत्पन्न करनेके लिए तो मैं स्वभावसे ही अक्षम हूँ। मैं "मृत्यु या स्वराज्य" का जो भी रास्ता बताऊँगा वह निश्चय ही अव्यवस्था और अराजकतासे बच कर चलनेका ही रास्ता होगा। इसलिए मैं जिस स्वराज्यकी कल्पना करता हूँ वह दूसरोंकी हत्या और रक्तपातका परिणाम नही, बल्कि अनवरत आत्म-बलिदानके स्वेच्छा-प्रेरित कार्यका ही परिणाम होगा। वह रक्तपात करके अधिकारोंको बलात् छीन लेनेका परिणाम नही होगा, वह तो ठीक ढंगसे और सच्चे अर्थोमें कर्त्तव्यके पालनका स्वाभाविक सुफल होगा। इसलिए, ऐसे स्वराज्यको पानेके प्रयत्नमें नीरोके ढंगका नही, बल्कि चैतन्य महाप्रभुके ढंगका पर्याप्त रस भी मिलेगा। अभी पत्र-लेखककी तरह मैं भी यह मानता हूँ कि उस समय कोई दैवी मार्ग-दर्शन ही प्राप्त होगा। मैं उस संकेतकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ। वह संकेत तब भी मिल सकता है और अक्सर तभी मिलता है जब क्षितिजपर सबसे अधिक कालिमा छाई रहती है। लेकिन, मैं इतना जानता हूँ कि वह समय तभी आयेगा जब देशमें ऐसे युवकों और युवतियोंका एक दल तैयार हो जायेगा, जिन्हें और किसी चीजमें नहीं, बल्कि केवल श्रम और देश-हितके काममें पूरा रस मिलेगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २७-८-१९२५

६७. खादी कार्यकर्त्ताओंका लेखा

नीचे दिये जा रहे आंकड़े खादी-कार्यकी स्थिति स्वयं वतलाते हैं। मुझे खुशी है कि प्रायः सब केन्द्रोंने अपनी रिपोर्ट जल्दी भेज दी है:

केन्द्र	पूरे समयके कार्यकर्त्ता	ग्रेजुएट	वैतनिक या अवैतनिक	अधिकतम मासिक वेतन रुपये	न्यूनतम मासिक वेतन रुपये	औसत रु० आ०	कुल खर्च रु०
१. तामिलनाड खादी मंडल	२२	१	वै०	८०	१५	३२–४–४	७१०
२. अ० भा० खा०मंडल	२४	८	२ अवै० २२ वै०	१५०	१०	६४–८	१५०४
३. खा०प्रतिष्ठान बंगाल	८८	१३	४ अवै० ८४ वै०	१००	१०	२६–०	२३४५
४. गुजरात खा०मंडल	३२	५	वै०	१००	१५	४३–१२	१४०२
५. पंजाब खादीमंडल	१५	१	वै०	१५०	२०	५०–०	७५०
६. मध्यप्रान्त (हिन्दी) खा०मंडल	६	–	वै०	४०	१०	१८–०	१०७

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २७-८-१९२५

६८. सर्वसामान्य लिपि

यदि हमें दुनियाके सामने अपने इस दावेको सिद्ध करके दिखाना है कि हम एक-राष्ट्र हैं तो हमारी बहुत-सी चीजें समान होनी चाहिए। हमारे यहाँ विविध धर्म और सम्प्रदाय हैं, किन्तु सबके भीतर एक ही संस्कृतिकी धारा प्रवाहित होती है। हमें जो बाधायें सहनी पड़ती हैं वे भी समान हैं। मैं आजकल यह दिखानेकी कोशिश कर रहा हूँ कि हमारी पोशाकके लिए एक-सा कपड़ा वाछनीय ही नहीं, आवश्यक भी है। हमें एक सर्वसामान्य भाषाकी भी जरूरत है — दूसरी देशी भाषाओंको हटाकर नहीं, बल्कि लोग उनके साथ-साथ आम तौरपर इस बातको स्वीकार करते हैं कि वह भाषा हिन्दुस्तानी होनी चाहिए, अर्थात् वह हिन्दी और उर्दूके सम्मिश्रणसे बनी होनी चाहिए जो न संस्कृतनिष्ठ हो और न जिसमें फारसी या अरबीके शब्दोंकी भरमार हो। इसके मार्गमें सबसे बड़ी बाधा हमारी देशी भाषाओंकी अलग-अलग लिपियाँ हैं। अगर हम एक सर्वसामान्य लिपि अपना सकें तो हमारी एक सामान्य भाषा होनेका जो ध्येय एक सपना-सा बना हुआ है उसे साकार करनेके मार्गकी एक बहुत बड़ी कठिनाई दूर हो जाये।

लिपियोंकी अनकता कई बातोंमें बाधक है। यह ज्ञानार्जनके मार्गमें एक बहुत बड़ी दीवार है। सभी आर्य भाषाओंमें इतनी अधिक समानता है कि अगर अलग-अलग लिपियोंपर अधिकार पानेमें बहुत सारा समय खर्च न करना पड़े तो हम आसानीसे कई भाषाएँ सीख लें; उदाहरणके लिए, अगर रवीन्द्रनाथ ठाकुरका अद्वितीय साहित्य देव-नागरी लिपिमें छाप दिया जाये तो जिन लोगोंको सस्कृतका थोड़ा-सा ज्ञान है, उनमें से अधिकांशको उस साहित्यको समझनेमें कोई कठिनाई नहीं होगी। लेकिन बंगला लिपि तो मानो यह चेतावनी देती जान पड़ती है कि "मुझसे दूर रहो।" दूसरी ओर, अगर बंगाली लोग देवनागरी लिपि जान लें तो तुलसी-साहित्यके अद्‌भुत सौष्ठव तथा उसकी आध्यात्मिकताका और हिन्दुस्तानीके अन्य बहुत-से साहित्यकारोंकी कृतियोंका रसास्वादन वे बड़ी आसानीसे कर सकते हैं। जब मैं १९१५ में[1] लौटकर भारत आया तो एक संस्थासे मुझे एक पत्र प्राप्त हुआ था। इस सस्थाका मुख्य कार्यालय, मेरा खयाल है कलकत्तामें था और उसका उद्देश्य सारे भारतके लिए एक सर्वसामान्य लिपिकी हिमायत करना था। उस संस्थाके क्रिया-कलापका तो मुझे कोई ज्ञान नहीं है, लेकिन इसका उद्देश्य सराहनीय है। थोड़े-से लगनशील कार्यकर्त्ता भी इस दिशामें काफी ठोस काम कर सकते हैं। इसकी कुछ स्पष्ट मर्यादाएँ हैं। समस्त भारतके लिए एक लिपि हो, यह एक ऐसा आदर्श है जिसे चरितार्थ करना बहुत दूरकी बात है; लेकिन, अगर हम सिर्फ अपनी प्रान्तीय भावनाका त्याग कर दें तो जो लोग संस्कृतसे निकली भारतीय भाषाएँ बोलते हैं, और जिनमें इस तरहके दक्षिण भारतवासी लोग भी शामिल हैं, उन

१. साधन-सूत्रमें यहाँ १९०५ है, जो स्पष्ट ही छपाईकी भूल है।

सबके लिए सर्वसामान्य लिपिकी बातको व्यावहारिक आदर्श ही मानना चाहिए। उदाहरणके लिए, किसी गुजरातीके लिए गुजराती लिपिसे चिपटे रहनमे कोई सार नही है, जिस प्रकार भारतके प्रति भक्ति उसी हदतक अच्छी है जिस हदतक वह सारी दुनियाके प्रति अनुराग पैदा करनेमे सहायक है, उसी प्रकार प्रान्त-भक्ति भी उसी सीमातक श्रेयस्कर है जिस सीमातक वह भारत-भक्तिकी वृहत्तर धाराको पुष्ट करनेमे सहायक है। लेकिन जो प्रान्त-भक्ति ऐसा आग्रह करके चले कि "भारत कुछ नही है, गुजरात ही सब कुछ है", वह भक्ति नही, दुष्टता है। उदाहरणके रूपमें मै गुजरातका ही उल्लेख इसलिए कर रहा हूँ कि एक तो उसकी लिपि देवनागरीसे बहुत दूर नही है और दूसरे मै स्वयं एक गुजराती हूँ। गुजरातमें जिन लोगोने प्राथमिक शिक्षाके सिद्धान्त निर्धारित किये, उन्होने सौभाग्यसे, देवनागरी लिपिको अनिवार्य बनानेका फैसला किया। इसलिए, किसी भी स्कूलमें पढकर निकले हुए सभी गुजराती बालक और बालिकाएँ गुजराती और देवनागरी दोनो लिपियाँ जानते हैं। अगर समितिने सिर्फ देवनागरी लिपिके पक्षमें ही निर्णय किया होता तो और भी अच्छा होता। इसमें सन्देह नही कि शोध-कार्य करनेवाले लोगोंको पुरानी पाण्डुलिपि पढनेके लिए तब भी गुजराती लिपि सीखनी पड़ती, लेकिन अगर बच्चोंको दो के बजाय एक ही लिपि सीखनी पड़े तो उनका बहुत सारा श्रम बच जाये; उसे वे किसी अधिक उपयोगी काममे लगा सकते हैं। जिस समितिने महाराष्ट्रके लिए शिक्षाकी योजना बनाई, उसमें और अधिक सूझ-बूझ और जागरूकता थी। उसने सिर्फ देवनागरी लिपिकी ही आवश्यकता बताई। नतीजा यह है कि जहाँतक सिर्फ पढनेका सम्बन्ध है, कोई मराठी-भाषी जितनी अच्छी तरह तुकारामकी रचनाएँ पढ़ सकता है उतनी ही अच्छी तरह तुलसी-साहित्य भी पढ सकता है, और इसी प्रकार गुजराती और हिन्दुस्तानी दोनो ही तुकारामको उतनी ही अच्छी तरह पढ सकते हैं। दूसरी ओर बगालकी समितिने इससे भिन्न निर्णय किया, और उसका जो परिणाम हुआ है, वह हम सब जानते हैं और हममें से बहुत-से लोग उसको लेकर दुःखी भी होते हैं। इसका फल यह हुआ है कि सबसे समृद्ध भारतीय भाषाकी निधियोतक लोगोंकी पहुँच, मानो योजनापूर्वक, अत्यन्त कठिन बना दी गई है। मै समझता हूँ कि यह बात सिद्ध करनेकी कोई जरूरत नही है कि देवनागरी ही सर्वसामान्य लिपि होनी चाहिए। इसका सबसे बडा कारण यह है कि इस लिपिको भारतके सबसे अधिक लोग जानते हैं।

ये विचार मेरे मनमें इसलिए उठ रहे हैं कि जब मै कटक गया हुआ था, उस समय वहाँ मुझसे एक व्यावहारिक मसला हल करनेको कहा गया। बिहारके हिन्दी भाषी लोगों और उड़ीसाके उडिया-भाषी लोगोके बीच एक आदिवासी जाति रहती है। सवाल यह था कि उनके बच्चोको शिक्षा किस भाषामें दी जाये। उन्हे उड़ियाके माध्यमसे पढाया जाये या हिन्दीके माध्यमसे? या उन्हे उन्हीकी बोलीमें शिक्षा दी जाये? और अगर ऐसा ही किया जाये तो उसकी लिपि देवनागरी हो या कोई नई लिपि हो? पहले तो उत्कलके भाइयोंके मनमे यह विचार था कि उन्हे उड़िया लोगोके बीच ही खपा लिया जाये। बिहारी लोग उन्हे बिहारमें ही मिला लेनेको कहते, और

अगर उस जातिके मुखियोंसे पूछा जाता तो ज्यादा सम्भावना इस बातकी थी, और यह स्वाभाविक भी था, कि वे कहते, हमारी बोली उतनी ही अच्छी है, जितनी कि उड़िया या बिहारी और उसके लिए बस लिपि तय कर दी जाये। आधुनिक कालमें मुझे कमसे-कम ऐसे दो उदाहरणोंकी जानकारी तो है, जब नई लिपियाँ अपनाई गई हैं। किन्तु, अगर इस कबीलेकी बोलीके लिए कोई नई लिपि नहीं अपनाई जा सकती थी तो कबीलेके लोगोंके लिए देवनागरी और उडियामें चुनाव करना मुश्किल था — उनके लिए दोनों लिपियाँ बराबर थीं। अतः, समस्त भारतकी दृष्टिसे सोचनेकी कोशिश करते हुए मैंने उन भाइयोंसे कहा कि उड़िया भाषाको समृद्ध और विकसित करना तो आपके लिए उचित ही है, लेकिन इस जातिके बच्चोंको हिन्दी ही पढ़ाई जाये और स्वभावतः उसकी लिपि देवनागरी ही होनी चाहिए। ऐसी वर्जनशील और संकुचित वृत्ति, जिसमें हर तरहकी बोलीको स्थायी बनाये रखने और विकसित करनेका आग्रह हो, राष्ट्र-विरोधी है और विश्व-विरोधी भी है। मेरी तुच्छ सम्मतिमें, हमें सभी अविकसित और लिपि-हीन बोलियोंका मोह त्याग देना चाहिए और उन्हें हिन्दुस्तानीके वृहत् प्रवाहमें मिला देना चाहिए। इस त्यागका मतलब आत्म-हत्या नहीं होगा, बल्कि इससे हम और भी परिष्कृत बनेंगे। अगर हम चाहते हैं कि शिक्षित-सुसंस्कृत भारतीयोंकी कोई एक सर्वसामान्य भाषा हो, तो विभिन्न देशी भाषाओं और लिपियोंके परस्पर एक-दूसरेसे अलग होते जानेकी और उनकी संख्यामें वृद्धिकी प्रक्रियाको हमें रोकना होगा। हमें एक सर्वसामान्य भाषाको प्रोत्साहन देना होगा। इसकी शुरुआत स्वभावतः लिपिसे करनी चाहिए, और जबतक हिन्दू-मुस्लिम एकताका सवाल हल नहीं हो जाता तबतक इस प्रवृत्तिको भारतके हिन्दुओंतक ही सीमित रखना चाहिए। अगर मेरी चले तो मैं सभी प्रान्तोंमें प्रान्तीय लिपिके अलावा देवनागरी और उर्दू लिपि सीखना अनिवार्य कर दूँ और देशी भाषाओंकी सभी प्रमुख कृतियोंको, हिन्दुस्तानीमें शाब्दिक अनुवादके साथ-साथ, देवनागरी लिपिमें छाप दूँ। दुःखकी बात है कि बहुत कम कांग्रेसियोंने देवनागरी लिपि सीखनेकी परवाहकी है और उर्दू लिपि सीखनेकी तो और भी कम लोगोंने।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २७-८-१९२५

६९. हुकवर्म और चरखा

श्री एन्ड्रयूजने एक पत्रके साथ पशुओंके विषयमें एक अखबारकी कतरन भेजी थी। उस विषयपर इसी अंकमें अन्यत्र विचार किया गया है।[1] पत्रमें उन्होंने निम्न बातें भी लिखी है :

> अभी कुछ ही दिन हुए रॉकफेलर स्वास्थ्य मण्डलके डॉ० टेंडरिक मेरे साथ थे। वे मद्रासका दौरा कर रहे हैं। उन्होंने मुझे बताया कि जाँच करनेपर उन्हें पता चला कि किसानोंमें से ९२ से ९५ प्रतिशततक लोग हुकवर्म (अंकुश-कृमि) और मैलेसे उत्पन्न होनेवाले टाइफाइड तथा पेचिश-जैसे अन्य संक्रामक रोगोंके शिकार हैं। ये रोग यहाँ बहुत फैले हुए हैं। इसका कारण यह है कि पीने आदिके काममें लाये जानेवाले पानीमें सर्वत्र मल-मूत्र मिल जाता है। उनका कहना है कि इन लोगोंकी अवस्था वैसी ही है जैसी बीस साल पहले अमेरिकाके दक्षिणी राज्योंमें हब्शियोंकी थी। परिणाम भी वही हुआ है; लोगोंमें शक्ति नहीं है, वे कमजोरीके कारण कष्टमय जीवन बिता रहे हैं। मैलेको ठिकाने लगानेकी उचित व्यवस्था करके हुकवर्म, टाइफाइड आदि रोगोंपर काबू पा लिये जानेपर आज उक्त अमेरिकी राज्योंमें लोग समृद्ध और सशक्त हैं। उन्होंने गाँवोंमें नालियाँ बनानेकी बात कही। तरीका यह है कि नाली खोदकर छः महीनेतक उसका उपयोग किया जाये और उसके बाद उसे भर दिया जाये। फिर छः महीने बाद उसे खोदनेपर उससे निर्दोष और अच्छी खाद मिल जाती है। उनका कहना है कि चीन, जापान और दूसरे देशोंमें भी अधिकांशतः इसी पद्धतिसे काम लिया जाता है। इसलिए उनके विचारसे अगर यहाँके लोग इस पद्धतिको अपना लें और अपनी मौजूदा आदत छोड़ दें तो यह आर्थिक दृष्टिसे इतना लाभदायक सिद्ध होगा जिसका अनुमान नहीं लगाया जा सकता। मैं जो बात कहना चाहता हूँ वह यह है कि चरखेने हमें ग्रामोद्धारकी समस्याके स्वरूपका दिग्दर्शन तो करा दिया है, लेकिन वह उसे हल नहीं कर पाया है। यदि आप यह कहें कि केवल सारा जोर चरखे-पर ही देनेसे, सिर्फ इसीके जरिये वह समस्या हल हो जायेगी तो यह दृष्टि-कोण बहुत संकुचित है। पशुओंकी समस्या और सफाईकी समस्या भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण हैं।

इस अनुच्छेदमें श्री एन्ड्रयूजने सफाईका सवाल उठाया है। ऐसा नहीं है कि मैं सफाईकी जरूरत नहीं समझता। जब मुझे चरखेकी बात सूझी उससे बहुत पहले ही

1. देखिए "टिप्पणियाँ", २७-८-१९२५ का उपशीर्षक "पशुओंकी समस्या"।

मैं सफाईकी स्थिति सुधारनेकी ओर प्रवृत्त हो चुका था। मैंने स्वयं नेटालमें फीनिक्स-के फार्ममें मैलेको गाड़ने और उसकी बढ़िया खाद बनानेके प्रयोग किये थे। हम कोई भंगी नही रखते थे, और स्वयं भंगीका काम करते थे; और जैसा कि स्वयं श्री एन्ड्रयूज जानते हैं कि फीनिक्स आश्रममें कोई भी नंगे पैर चल सकता था और उसको अपने पैरोंके गंदगीपर पड़नेका कोई खतरा नहीं होता था। साबरमती के किनारे सत्याग्रह आश्रममें भी मैलेकी ऐसी ही व्यवस्था की जाती है। किन्तु इसके सम्बन्धमें मैं कोई प्रचार नहीं करता; जिसका कारण सिर्फ यह है कि इससे हमारी दिनपर-दिन बढ़ती हुई गरीबीकी समस्याका कोई तात्कालिक और सीधा हल नही निकल सकता। इसके अतिरिक्त गंदगीकी समस्यासे निबटनेके लिए पुराने पूर्वग्रहों और पुरानी आदतोंसे जूझनेकी जरूरत है। इसके लिए तो लोगोंको लगातार सफाईके नियम सिखाते रहना पड़ेगा; और फिर इसमें सरकारकी सहायता लिये बिना भी काम नही चल सकता। मैं दुःखके साथ स्वीकार करता हूँ कि लोगोंकी पीढ़ी-दर-पीढ़ीसे चली आ रही आदतें समझाने-बुझानेसे नही छूटती। मुझे तो इसका एकमात्र कारगर उपाय सरकार द्वारा कानून बनाना ही दिखाई देता है।

किन्तु ऐसी आपत्ति चरखेके सम्बन्धमें लागू नही होती। इसके विपरीत चरखा हर सुधारका मार्ग प्रशस्त करेगा, और यदि मैं राष्ट्रका ध्यान चरखेपर केन्द्रित कर सकूँ तो उससे दूसरी सब समस्याएँ अपने-आप हल हो जायेंगी; और जिन बातोंके बारेमें कानून बनानेकी जरूरत होगी वहाँ कानून बनानेका रास्ता भी साफ हो जायेगा। चरखेके पीछे व्यक्तिको तत्काल लाभ पहुँचानेका विचार है, भले ही वह लाभ बहुत छोटा हो। इसे चलानेमें कोई कठिनाई नही होती। उसके विरुद्ध कोई बद्धमूल पूर्वग्रह नही है। कमसे-कम सीधे-सादे आम लोगोंको इसके लिए बहुत ज्यादा समझाने-बुझानेकी जरूरत नही है। इसमें कमसे-कम पूँजीकी जरूरत होती है। एकमात्र यही रचनात्मक काम है जिसे राष्ट्रीय पैमानेपर किया जा सकता है। यदि यह सफल हो जाये तो इसके राजनैतिक परिणाम बड़े जबरदस्त निकल सकते हैं। और यह देखते हुए कि सहयोगके बिना यह सफल नही हो सकता, यह बहुत जबरदस्त सहकारी प्रयत्नकी सम्भावना प्रस्तुत करता है। मेरा यह दावा है कि केवल चरखेपर ही सारा ध्यान देनेसे स्वराज्य मिल जायेगा और यदि ऐसा लगता हो कि यह कहना एक बहुत बड़ी बात कहना है तो फिर दूसरे शब्दोंमें यों कहिए: चरखे और जो दूसरी चीजें इसमें निहित हैं उनके बिना स्वराज्य नहीं मिल सकता, और कोई भी समझदार अर्थशास्त्री केवल चरखेपर ही अपना ध्यान केन्द्रित इसलिए करेगा क्योंकि वह जानता है कि बाकी बातें तो उसके बाद अपने आप हो जायेंगी।

अब तनिक गहराईमें जाकर इस रोगका निदान करूँ। राष्ट्रकी सम्पतिका विदेश जाना उतनी बड़ी बात नही है, जितनी बड़ी बात गरीबी है, और गरीबी भी उतनी बड़ी बात नहीं है, जितनी बडी बात काहिली है — काहिली, जो पहले ऊपरसे थोपी गई थी। राष्ट्रकी सम्पत्तिका विदेश जाना रोका जा सकता है और गरीबी तो बीमारीका केवल एक लक्षण-मात्र है; किन्तु काहिली उसका सबसे बड़ा कारण है, वह समस्त

बुराइयोकी जड़ है, और यदि यह जड़ नष्ट की जा सके तो कोई अन्य प्रयत्न किये बिना ही अधिकतर बुराइयोको दूर किया जा सकता है। जो राष्ट्र भूखों मर रहा है, उसमे आशाका लेश नही बचता, उसमें अपनी ओरसे कुछ करनेका उत्साह नही रहता। वह गन्दगी और बीमारीके प्रति उदासीन हो जाता है। वह तो सभी सुधारोके सम्बन्धमें एक ही बात कहता है, 'इससे क्या लाभ?' केवल चरखा ही ऐसा जीवन-दायी चक्र है, जो करोड़ो लोगोंकी निराशाके कुहासेको आशाकी चटकती धूपमें बदल सकता है।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, २७-८-१९२५

७०. वक्तव्य : अ० भा० कां० कमेटीकी बैठकके बारेमें

[२७ अगस्त, १९२५]

कुछ मित्र मुझसे यह कह रहे है कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी बैठकके लिए २२ सितम्बरकी जो तारीख तय हुई है, वह आगामी पूजाकी छुट्टियोको देखते हुए बंगाली सदस्योके लिए असुविधाजनक है। यह तारीख पण्डित मोतीलाल नेहरूसे सलाह करनेके बाद तय की गई है, और उन्होंने भी विधानसभाके सदस्योकी राय जानकर ही यह तारीख चुनी है। पहले जो तिथि तय की गई थी उसके स्थानपर उससे पूर्वकी यह तिथि इन्ही सदस्योंकी सुविधाको ध्यानमें रखकर निश्चित की गई है, ताकि उन्हे दो बार यात्रा न करनी पड़े। यदि अक्तूबर १ तारीख ही निश्चित रहती तो फिर पटनामें बैठक करना सम्भव न होता। सब-कुछ करनेपर भी कोई-न-कोई असुविधा तो रह ही जाती है। पटनामें बैठक करनेके विरोधमें सिन्धसे एक तार आया है। सिन्धी भाइयोंकी कठिनाई मैं अच्छी तरह समझता हूँ। लेकिन काफी सलाह-मशविरा करके तथा अधिकाश सदस्योंकी सुविधाको ध्यानमे रखकर ही पटनामें बैठक करनेका निर्णय किया गया है। पूजाकी छुट्टी तो २४ से शुरू होती है। मैंने अपने बंगाली मित्रोंसे वादा किया है कि चाहे रातमें देरतक भी बैठक करनी पडे, किन्तु अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी सारी कार्यवाही मैं २२ को समाप्त कर दूंगा, ताकि वे २२ की रातको कलकत्ताके लिए रवाना हो सकें। हाँ, कुछ ऐसे विषय भी हो सकते हैं, जिनकी चर्चा ऐसी बैठकोंमें दस्तूरन हुआ करती हैं। अगर विषय समितिके विचारार्थ इस तरहके कुछ विषय बच रहे और बगाली भाइयोका उनके बारेमें विशेष आग्रह नही जान पड़ा तो उनकी स्वीकृतिसे बैठकको २२ के बाद भी जारी रखा जा सकता है। लेकिन जिस विशेष प्रयोजनसे कमेटीकी बैठक बुलाई गई है, उसकी कार्यवाही २२ तक समाप्त हो जायेगी। २० तारीखतक मैं पटना पहुँच जानेकी आशा करता हूँ। २१ तारीखको मेरा मौन-दिवस है। इसलिए जो भाई २० तारीखतक आ जायेंगे वे सविधानमें प्रस्तावित सशोधनसे सम्बद्ध जिस

किसी प्रश्नपर मुझसे बातचीत करना चाहेंगे, उसपर बातचीत करनेके लिए मेरे पास पूरा समय होगा। यह कहनेकी तो कोई जरूरत ही नही कि संविधानमें कोई भी ऐसा परिवर्तन, जिसे सदस्यगण सर्वसम्मतिसे चाहें, स्वीकार नही किया जायेगा। मुझे आशा है कि अ० भा० का० कमेटीके सभी सदस्य आगामी बैठकमें भाग लेंगे।

यदि सब काम ठीक-ठीक हो जाये तो मेरी इच्छा है कि अखिल भारतीय चरखा संघका भी शुभारम्भ कर दिया जाये और चरखे तथा खद्दरसे सम्बन्धित विषयोंपर भी चर्चा हो। इसलिए खादीके सभी कार्यकर्त्ताओंसे भी मेरा अनुरोध है कि यदि वे इस संगठनके संविधानको बनानेमें सहायता करना चाहते हैं तो इस अवसरपर यहाँ अवश्य पधारें।

[अंग्रेजीसे]

फॉरवर्ड, ३०-८-१९२५

७१. भाषण: राष्ट्रीयतापर

कलकत्ता
२८ अगस्त, १९२५

आज शामके वक्ताकी प्रशंसामें कुछ कहनेके दायित्वसे आप बडी होशियारीसे बचकर निकल गये हैं। क्या ही अच्छा होता, अगर मैं भी कुछ बोले बिना बच निकलता। मैंने आशा की थी कि आपकी थोड़ी-सी प्रशंसा मिल जानेसे मुझे कुछ उत्साह मिलेगा, लेकिन वैसा मेरी किस्मतमें नही था। लेकिन आप इस सभाका[1] संचालन जिस तरह कर रहे हैं और जिस तरह आपने इस छोटी-सी लडकी (एक ५ सालकी लड़कीकी ओर इशारा करते हुए) को माला पहनाई है, उससे प्रकट होता है कि आप कमसे-कम किसी प्रकारका जाति-विद्वेष रखनेके अपराधी नही हैं।

लेकिन भारतमें इस समय नई पीढ़ीको निःसन्देह इसी समस्याका सामना करना पड़ रहा है। क्या यह सम्भव है कि कोई अपने देशको प्यार करे और उनसे घृणा न करे जो उसके देशपर शासन करते हैं और जिनका हम शासन नही चाहते; बल्कि कहना चाहिए जिनके शासनको हम हृदयसे नापसन्द करते हैं? बहुत-से नौजवानोंके हृदयमें इसका उत्तर यह रहा है कि अपने देशको प्यार करना और उसपर शासन करनेवालोंसे घृणा न करना असम्भव है। कुछने खुलेआम अपने इस विचारको व्यक्त किया है और किसी-किसीने उसे कार्यरूप देकर भी दिखाया है। लेकिन बहुत-से लोग मन-ही-मन ऐसा विचार रखते हैं और उनकी मनोरचना भीतर-ही-भीतर उससे प्रभावित होती रहती है।

१. यह सभा मैकानो क्लबके तत्त्वावधानमें ओवरटन हॉलमें हुई थी। सभामें प्रवेश करनेके लिए शुल्क रखा गया था, जिससे मिली रकम अखिल बंगाल देशबन्धु स्मारक कोषको दी गई थी। सभाकी अध्यक्षता रेव० टी० ई० टी० शोरने की थी।

इस सवालपर मैं बहुत मनन करता रहा हूँ और वह १९१५मे भारत लौटनेके बादमे ही नही, बल्कि जबमे मैंने सार्वजनिक जीवनमे और सार्वजनिक सेवामे प्रवेश किया, तभीसे अर्थात् १८९४ से। लेकिन मैं काफी विचार करनेके बाद इस निष्कर्षपर पहुँचा हूँ कि किसीका देश-प्रेम अर्थात् राष्ट्रीयता उन लोगोके प्रति प्रेमभाव रखनेमे सर्वथा सगत है, जिनके शासन, जिनकी अधीनता, जिनके तरीकोको हम पसन्द नही करते। दक्षिण आफ्रिकाकी सरकारसे निबटनेमे या अधिक सही शब्दोमे कहूँ तो पहले तत्कालीन नेटाल सरकारसे, उसके बाद ट्रान्सवाल सरकारसे और अन्तमें संघ सरकारसे निबटनेमें, मेरा इस सवालसे सीधा साबिका पडा। आप लोगोमे से अधिकाशको वे निर्योग्यताएँ घोर निर्योग्यताएँ मालूम होंगी, जिन्हे हमारे देशभाई उस महाद्वीप दक्षिण आफ्रिकामे झेल रहे हैं। ये निर्योग्यताएँ इतनी काफी है कि यदि व्यक्तिका विवेक स्थिर न रहे तो वह अपने साथी मनुष्योंसे घृणा करने लगे। आप वहाँ अन्यायका बोलबाला देखते हैं, जिसका कारण सिर्फ यह है कि आपकी चमडीका रग वैसा नही है जैसा कि उन लोगोकी चमडीका है। सघ सरकारके सविधानमें कहा गया है कि गोरे और रगदार लोगोके बीच समानता नही हो सकती। एक समयमें यह धारा ट्रान्सवालके संविधानमे थी, लेकिन उसी सविधानको अब सघ सरकारने अपना लिया है। भारतमें आकर आप बिलकुल वही चीज तो नही, लेकिन लगभग वैसी ही चीज जरूर देखते हैं और अकसर लोगोको इन दो भावनाओं अर्थात् देश-प्रेम और जिन्हे आप खूंखार शेर समझ सकते है, उनके प्रति प्रेमके बीच मेल बैठा पाना कठिन लगता है। आप जो सोचते हैं, वह न्यायोचित और सही है अथवा गलत है, यह एक अलग बात है, लेकिन आपके मनपर यही छाप पड़ती है कि आप भयकर किस्मका अत्याचार सहन कर रहे हैं, घोर अन्यायके शिकार हो रहे हैं। तो फिर आप खूंखार शेरोको प्यार कैसे कर सकते हैं?

अब मै यही बात दूसरे शब्दोमें कहता हूँ, मेरा मतलब यह नहीं है कि आप शेरसे प्यार करे ही, लेकिन मै यह कहना चाहता हूँ कि प्रेम एक सक्रिय शक्ति है और आजकी सभाका विषय यह है—क्या खूंखार शेरसे घृणा करना जरूरी है? क्या देश-प्रेमके लिए दूसरोंसे घृणा करना जरूरी है? आप दूसरोंसे प्यार भले ही न करे, किन्तु क्या जरूरी है कि आप उनसे घृणा करे ही? जैसा कि मैंने पहले कहा, बहुत-से लोगोके मनमें इसका जवाब यही है कि हाँ, आपको घृणा करनी ही चाहिए। मै जानता हूँ कि कुछ लोग खूंखार शेरसे घृणा करना अपना कर्त्तव्य समझते हैं और वे अपनी मान्यताके प्रमाणस्वरूप आधुनिक सविधानके उदाहरण पेश करते हैं; वे यूरोपके गत विनाशकारी महायुद्धका उदाहरण देते हैं; वे उन युद्धोकी मिसाल देते हैं जिनके बारेमे उन्होने इतिहासमें पढा है; वे कानूनका भी उदाहरण देते हैं और कहते हैं कि जो लोग हत्या करनेके अपराधी होते हैं, उन्हे समाज फाँसीके तख्तेपर चढ़ा देता है। क्या यह घृणाका लक्षण नही है? बेशक, उसमें प्रेम तो नही ही है। लेकिन अगर किसीका पिता या ऐसा ही कोई अन्य अतिप्रिय व्यक्ति फाँसीपर चढा दिये जाने लायक काम करे तो क्या वह उससे प्यार करना छोड़ देगा? वह

यह कामना अवश्य करेगा कि उसमें सुधार हो, लेकिन उसको दण्ड मिलनेकी कामना नहीं करेगा। और फिर भी इस कथनमें काफी औचित्य है कि लोगोंको सही मार्ग-पर चलानेके लिए जो व्यवस्था है, उसमें से अगर दण्डका विधान हटा लिया जाये, उसे *स्थगित अथवा* समाप्त कर दिया जाये तो समाज छिन्न-भिन्न हो जायेगा। इन उदाहरणोंको देखकर नौजवान लोग तुरन्त इस निष्कर्षपर पहुँच जाते हैं कि जो लोग राष्ट्रीयताके लिए दूसरोंसे घृणा करना जरूरी नहीं मानते, वे गलतीपर हैं। मैं उनको दोष नही देता। वे दयाके पात्र हैं। मेरी सहानुभूति ही उन्हे मिलनी चाहिए; लेकिन मेरे मनमें तनिक भी सन्देह नही है कि वे बहुत बड़े भ्रममें पड़े हुए हैं, और जबतक उनका रुख ऐसा ही रहता है, जबतक पुरुषों और स्त्रियोंका एक बहुत बड़ा समूह ऐसा रुख बनाये रखता है, तबतक वे देशकी प्रगति और संसारकी प्रगतिके मार्गमें एक रुकावट बने रहेंगे। मैंने जो उदाहरण दिये हैं, उन्हीं सबको उनके आचरणका औचित्य सिद्ध करनेके लिए भी पेश किया जा सकता है; किन्तु इससे मेरे लेखे कोई फर्क नहीं पड़ता।

संसार घृणासे ऊब गया है। हम देख रहे हैं कि अब पश्चिमी राष्ट्रोंपर एक थकान हावी होती जा रही है। हम देख रहे हैं कि घृणाका राग अलापनेसे मानवता-की कोई भलाई नही हुई है तो अब आप ऐसा कीजिए जिससे भारत एक नया अध्याय शुरू कर सके और संसारको एक नया पाठ पढ़ाया जा सके। (साधुवादके स्वर)। क्या तीस करोड़ लोगोंके लिए एक लाख अंग्रेजोंसे घृणा करना जरूरी है? मैं समझता हूँ कि आज अगर इस सुस्पष्ट प्रश्नपर विचार किया जाये तो उसमें आजकी चर्चाके विषयका पूरा सार आ जायेगा। मेरी नम्र सम्मतिमें अंग्रेजोंसे एक क्षणके लिए भी घृणा करना मानवताकी प्रतिष्ठाके लिए, भारतकी प्रतिष्ठाके लिए बहुत अश्रेयस्कर है। इसका मतलब यह नहीं कि भारतमें अंग्रेज शासक जो अत्याचार करते देखे गये हैं उनकी ओरसे आप आँखें बन्द कर लें। मैंने बुराई करनेवालोंमें यह विशेष अन्तर रखा है। बुराईसे घृणा कीजिए, लेकिन बुराई करनेवालेसे नही। हम खुद भी, हममें से एक-एक व्यक्ति बुराईसे भरा हुआ है। लेकिन, हम चाहते हैं कि संसार हमारे साथ धैर्यसे काम ले, हमें क्षमा करता रहे, हमारे साथ नम्रता बरते। मै चाहता हूँ कि अंग्रेजोंके साथ भी हम ऐसा ही व्यवहार करें। ईश्वर जानता है कि भारतमें ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं जो यह दावा कर सकता हो कि वह अंग्रेज-शासकोंके कुकृत्यों और जिस प्रणालीसे हम शासित होते हैं, उस प्रणालीकी बुराईके बारेमें मुझसे अधिक तीव्रता और निर्भीकतासे बोला है। किन्तु इस कारणसे कि मै घृणासे मुक्त हूँ — और स्वयं अपने विषयमें तो मैं यहाँतक कहूँगा कि जो लोग अपनेको मेरा दुश्मन मानते हैं, उनके प्रति भी मेरे मनमें प्रेम है। मै उनकी गलतियोंकी ओरसे अपनी आँखें बन्द नही कर सकता। प्रेमके पात्रमें सचमुच विद्यमान अथवा कल्पित किसी गुणके ही कारण जो प्रेम दिया जाता है वह प्रेम, प्रेम नही है। अगर मै अपने प्रति ईमानदार हूँ, अगर मै मानव-समाजके प्रति ईमानदार हूँ, तो मुझे उन तमाम दोषोंको समझना चाहिए जो किसी मानव देहधारीमें होते ही हैं। मुझे

अपने विरोधियोंकी कमजोरियाँ समझनी चाहिए, उनकी बुराइयाँ समझनी चाहिए, और फिर भी इन दोषोके बावजूद उनसे घृणा नही करनी चाहिए, वरन् बने तो उनसे प्रेम भी करना चाहिए। यह अपने-आपमे एक बड़ी शक्ति है। पशुबल तो हमे पीढ़ी-दर-पीढ़ी विरासतमे मिलता आया है। हमने इसका प्रयोग करके देख लिया कि इसमे यूरोपका और संसारका कितना नुकसान हुआ। यूरोपीय सभ्यताकी चमक-दमक हमे चमत्कृत नही करती। ऊपरी चमकदार परत हटाकर देखें तो आप पायेंगे कि अन्दर ऐसा कुछ भी नही है, जिसे पसन्द किया जा सके।

एक क्षणको भी आप ऐसा न मानें कि मैं पश्चिमकी सभी चीजोका निन्दक हूँ। इस समय मै आधुनिक सभ्यताकी — इसे पाश्चात्य सभ्यता नही कहे — प्रमुख विशेपताकी चर्चा कर रहा हूँ, और इसकी प्रमुख विशेपता विश्वमें बलवान जातियो द्वारा कमजोर जातियोंका शोपण है। उसकी प्रमुख विशेपता भौतिक समृद्धिको भगवान मानना है। मैंने इसे 'शैतान' कहनेमें भी संकोच नही किया है। जिस शासन प्रणालीके अन्तर्गत हम कष्ट झेल रहे है, उसे मैंने शैतानी शासन कहनेमें संकोच नही किया है। और मै उसमे से एक शब्द भी वापस नही लेता। लेकिन आज इसकी चर्चा नही करूँगा। अगर मैं बुराई करनेवालोको सजा देनेका उपाय ढूँढने लगूँ तो मेरा काम होगा उनसे प्यार करना और धैर्य तथा नम्रताके साथ उन्हे समझाकर सही रास्तेपर ले आना। इसलिए असहयोग या सत्याग्रह घृणाका गीत नही है। मै जानता हूँ कि अपनेको सत्याग्रही या असहयोगी बतानेवाले बहुतसे लोग इस शब्दके योग्य नही है। उन्होने स्वयं अपने धर्मके प्रति हिंसा की है। वे इस सिद्धान्तके सच्चे प्रतिनिधि नही थे। सच्चे असहयोगका मतलब बुराई करनेवालेसे नही, बल्कि बुराईसे असहयोग करना है। मैं जानता हूँ कि कभी-कभी बुराई करनेवालेमें भेद करना कठिन हो जाता है। सवाल यह है कि बुराई करनेवालेसे नही, बुराईसे असहयोग करे कैसे? मै इस गूढ सिद्धान्तकी पूरी चर्चा यहाँ नही करना चाहता। मै तो सिर्फ उसीकी चर्चा कर सकता हूँ, जो इन ५-६ वर्षोंसे होता रहा है। अगर हम इस सिद्धान्तके रहस्यको समझ जायें और बुराईसे घृणा करके भी बुराई करनेवालेसे घृणा न करनेके बीच जो सुन्दर संगति है, उसे समझ जायें तो जैसा कि मैंने कहा है, हमें आज जरूरत सिर्फ इतना करनेकी है कि पारिवारिक सम्बन्धोमे हम जो नियम लागू करते है उसे राजनीतिक क्षेत्रमें भी लागू करे और इसलिए उसे शासकों और शासितोंके बीचके सम्बन्धोंपर भी लागू करे। फिर तो आपको आसानीसे सही हल मिल जायेगा। जिस पुत्रमें बुरे काम करने और बिगड़नेकी प्रवृत्ति होती है, उसके साथ पिता कैसा व्यवहार करता है? वह न उसे सजा देता है, न बढ़ावा, बल्कि उसे सुधारनेकी कोशिश करता है।

आपके असहयोगका उद्देश्य बुराईको बढ़ावा देना नही है। यही इसका मतलब है। एक बहुत बड़े लेखकने कहा है कि अगर दुनिया बुराईको बढ़ावा देना बन्द कर दे तो बुराई अपने लिये आवश्यक पोपणके अभावमें अपने-आप मर जाये। अगर हम यह देखनेकी कोशिश करे कि आज समाजमें जो बुराई है, उसके लिए खुद हम कितने

जिम्मेदार हैं तो हम देखेंगे कि समाज़से बुराई कितनी जल्दी दूर हो जाती है। लेकिन हम प्रेमकी एक झूठी भावनामें पड़कर इसे सहन करते हैं। मैं उस प्रेमकी बात नही करता जिसे पिता अपने गलत रास्तेपर चल रहे पुत्रपर मोहान्ध होकर बरसाता चला जाता है, उसकी पीठ थपथपाता है; और न मैं उस पुत्रकी बात कर रहा हूँ जो झूठी पितृ-भक्तिके कारण अपने पिताके दोषोंको सहन करता है। मैं उस प्रेमकी चर्चा नही कर रहा हूँ, मैं तो उस प्रेमकी बात कर रहा हूँ, जो विवेकयुक्त है और जो बुद्धियुक्त है और जो एक भी गलतीकी ओरसे आँख नही बन्द करता। यह सुधारनेवाला प्रेम है और ज्यों ही हम इस रहस्यको समझ जायेंगे, त्यों ही बुराई दूर हो जायेगी।

मैं दो जातियोंके सम्बन्धोंकी चर्चा कर रहा हूँ। आप उन अनेक बुराइयोंका विचार कीजिए, जो आज हम हिन्दू लोगोंमें समाई हुई हैं। मुसलमानों, पारसियो, ईसाइयों तथा दूसरोंकी बात तो रहने दीजिए। हममें से अधिकतर लोग हिन्दू हैं। हम उन बुराइयोंसे कैसे निवटें, जो हिन्दू-धर्ममें हैं? जो लोग अस्पृश्यताको हिन्दू-धर्मका अंग मानते हैं और उसके पक्ष-समर्थनमें शास्त्रोंके प्रमाण देते हैं, उनसे हम घृणा करें या कि निरन्तर योग्य आचरण करके हम इस बुराइको दूर करे? तो इसका रहस्य है कष्टसहन, बुराई करनेवालोंको कष्ट देना नहीं वल्कि सभी कष्टोका भार स्वय अपने सिर ले लेना। अगर हम हिन्दू-धर्ममे प्रविष्ट अनेक बुराइयोंको दूर करना चाहें तो हम वाइकोमके उदाहरणका अनुकरण करके ही वैसा कर सकते हैं। यह मुझे स्वाभाविक रूपसे याद आ गया है, क्योंकि किसी निर्दोष उदाहरणकी कल्पना हम अतीतके किसी प्रशंसनीय उदाहरणके आधारपर ही कर सकते हैं। मैं उन बहादुर नौजवानोमें से हरएकको जानता हूँ। मेरा खयाल है कि वाइकोममें भयंकर कठिनाइयों-के बीच काम करनेवाले हर व्यक्तिको मैं जानता हूँ। उन्होने ऐसी कठिनाइयाँ झेली हैं, जिनका वर्णन मैं यहाँ कुछ क्षणोंमें नही कर सकता, लेकिन मैं आपके सामने यह साक्षी भरनेका साहस करता हूँ कि इन नौजवानोंने कही तनिक भी भूल नही की है — मेरा मतलब है, वाइकोमके नौजवानोंने। मैं यह नही कह सकता कि व्यक्तियोंने भूल नही की है, लेकिन कुल मिलाकर उन्होंने अपना आचरण बिलकुल निष्कलंक रखा है। परिणाम यह है कि यद्यपि वे अभी इस बुराईको पूरी तरह तो दूर नही कर पाये हैं, पर मुझे इसमें जरा भी सन्देह नही है कि त्रावणकोरमें अस्पृश्यताके पाँव उखड़ गये हैं। यह बुराई आज उन मुट्ठीभर नौजवानोंके संकल्पके कारण ही, जिन्होंने अपनेको वाइकोम सत्याग्रहमें झोंक दिया और कष्टोको खुशी-खुशी अपने सिर ओढ़ लिया, वहाँसे मिटती नजर आ रही है। सचमुच यही इसका रहस्य है। तो फिर मेरी तुच्छ सम्मतिमें घृणा राष्ट्रीयताके लिए जरूरी नही है। जातीय घृणा सच्ची राष्ट्रीय भावनाको मार देगी। हमें समझ लेना चाहिए कि राष्ट्रीयता क्या चीज है। हम अपने देशके लिए आजादी चाहते हैं। लेकिन हम दूसरे देशोके लिए कष्ट नहीं चाहते; हम दूसरे देशोंका शोषण नहीं चाहते; हम दूसरे देशोंका अपकर्ष नही चाहते। जहाँतक खुद मेरा सम्बन्ध है, अगर भारतकी आजादीका मतलब अंग्रेजोंका विलोप

हो, अंग्रेजोंका विनाश हो, तो मैं भारतकी आजादी नही चाहता। मैं अपने देशकी आजादी इसलिए चाहता हूँ कि दूसरे देश हमारे आजाद देशसे कुछ सीख सकें। जिस प्रकार आज देशभक्तिका यह तकाजा है कि व्यक्तिको परिवारके लिए मरना चाहिए, परिवारको गाँवके लिए, गाँवको जिलेके लिए, जिलेको प्रान्तके लिए, प्रान्तको देशके लिए, उसी प्रकार मैं अपने देशकी आजादी इसलिए चाहता हूँ कि उसकी शक्ति और साधनोंका उपयोग मानवताके लाभके लिए हो सके। और जब हम प्रान्तीय भावनाको लेकर चलते है तब एक गुजरातीकी हैसियतसे मैं अगर यह कहूँ कि सबसे पहले गुजरात — और बंगाल तथा अन्य प्रान्तोंका सवाल उसके बाद ही उठता है तो इसमें जरा भी राष्ट्रीयता नही है। इसके विपरीत अगर मैं गुजरातमे रहता हूँ और गुजरातको तैयार करता हूँ तो उसे इस तरह तैयार करना चाहिए जिससे गुजरातके विस्तृत साधनोंका उपयोग बंगाल और बंगाल ही क्यो, सारा हिन्दुस्तान कर सके, जिससे गुजरात भारतके लिए मर मिटे। इसलिए मेरा राष्ट्र-प्रेम यह है कि हमारा देश आजाद हो सके; इसलिए आजाद हो सके कि जरूरत पड़े तो मानवजातिकी रक्षाके लिए सारा देश मर मिटे। इसमे किसी जातिसे घृणा करनेकी गुंजाइश नही है। मेरी कामना है कि हमारी राष्ट्रीयता ऐसी ही हो।[1]

भाषण समाप्त होनेपर इम्पीरियल लाइब्रेरीके पुस्तकाध्यक्ष श्री चैपमैनके प्रश्नके उत्तरमें गांधीजीने बड़ा करारा उत्तर दिया। श्री चैपमैनके प्रश्नका आशय यह था: "जबकि भारतीय अपना शासन स्वयं चलाने योग्य नहीं है, ऐसी स्थितिमें भारतीयोंका राजनीतिक स्वतन्त्रता और समानतापर साग्रह जोर देना क्या जातीय घृणाको बढ़ावा नहीं देता?"

मैंने जो-कुछ कहा है, उससे अगर आपने यह निष्कर्ष निकाला है कि जबतक हममें अपना कारोबार खुद ही सँभालनेकी योग्यता नही आ जाती तबतक हम आपके शासनमे रहे तो आप भ्रममें है। हम वह योग्यता इस शासन-प्रणालीका विरोध करके ही विकसित कर सकते हैं और मैं इतना और कहना चाहता हूँ कि प्रश्नकर्त्ता जब यह कहते है कि भारतीय अपना शासन स्वयं चलानेके योग्य नही है तो वे अपने जातीय पूर्वग्रहका परिचय देते है। उस पूर्वग्रहके भीतर उच्चताकी भावना और यह अहंकार छिपा हुआ है कि अंग्रेज संसारपर शासन करनेके लिये ही जनमे है। इस भावनाके विरुद्ध लड़नेके लिए मैंने अपने पूरे जीवनको उत्सर्ग कर दिया है। जबतक अंग्रेज इस स्थितिसे च्युत नही कर दिये जाते तबतक भारतमे शान्ति नही हो सकती और न दुनियाकी दूसरी कमजोर जातियोंको ही शान्ति मिल सकती है। अगर भारत अपना शासन ठीक ढंगसे नही चला सकता तो उसे अधिकार है, वह उसे बुरे ढंगसे ही चलाये। जो भी विदेशी मेरे देशपर ऐसी शान्ति थोपता है जिसे यहाँ "ब्रिटेन प्रदत्त सुख-शान्ति" कहा जाता है, उसके प्रति मेरा हृदय विद्रोह कर उठता है।

[अंग्रेजीसे]
फॉरवर्ड, २९-८-१९२५

१. इससे आगेका अंश १०-९-१९२५ के यंग इंडियामें छपे महादेव देसाईके यात्रा विवरणसे उद्धृत किया गया है।

७२. भाषण : छात्रोंकी सभामें[1]

कलकत्ता
२९ अगस्त, १९२५

थैली भेंट करनेके लिए छात्रोंको धन्यवाद देते हुए महात्मा गांधीने कहा कि आपको यह याद रखना चाहिए कि आपको देशबन्धुकी स्मृतिका सम्मान करना, देशका सम्मान करना और यह व्रत लेना है कि आप अपने देशके लिए चाहे जितना कम क्यों न हो, अपनी शक्तिके अनुसार जितना बनेगा उतना अवश्य करेंगे। लेकिन, जैसा कि मैंने बार-बार कहा है, चन्देमें दिये हुए आपके इन पैसोंको तो मैं भविष्यमें देशके लिए कार्य करनेका वचन देना-भर मानता हूँ।

संगठनका मर्म समझाते हुए महात्माजीने कहा कि सबसे पहले आपको यह समझना होगा कि संगठनका अर्थ क्या है। संगठनका अर्थ है, लोगोंका कोई एक ही उद्देश्य और एक ही संकल्प होना। ज्यों ही आप ये दो शर्तें पूरी करते हैं, समझ लीजिए कि एक छोटा-सा संगठन तैयार हो गया। यद्यपि प्रतीत ऐसा होता है कि हम भारतीयोंकी आकांक्षाएँ एक-जैसी हैं, किन्तु हम अभी यह नहीं समझे हैं कि अपनी समान आकांक्षाओंको सफल बनानेके लिए हमें समान उपाय भी अपनाने चाहिए। अभी हममें अपनी इन समान आकांक्षाओंको फलीभूत करनेके लिए जुटकर काम करनेकी शक्ति नहीं आई है। आज भी हमारी आकांक्षाएँ न्यूनाधिक मात्रामें आदर्श ही बनी हुई हैं। हममें से जो थोड़ेसे लोग उन आदर्शोंको कार्यरूप देनेका प्रयत्न कर रहे हैं, उनकी संख्या इतनी कम है कि वे इस तरह संगठित नहीं हो पाते, जैसा संगठित होना इन आकांक्षाओंको भारतमें जन-व्यापी बनानेके लिए जरूरी है। सक्षम संगठनके लिए दूसरी आवश्यकता है नेताकी या उससे भी बढ़कर सैनिकोंकी। हमारे बीच कोई देशबन्धुके समान महान् नेता हो सकता है और हो सकता है कि लोग उसके प्रति भक्ति और प्रेमके कारण एक अनिवार्य आकर्षणके अधीन कुछ कालतक उसका अनुगमन भी करते चले जायें। लेकिन, संगठन इससे नहीं बन जाता। संगठनकी कसौटी तो यह है कि लोग सिपाहियोंकी लगनसे काम करें और सो भी किसीके व्यक्तित्वसे आकृष्ट होकर नहीं, बल्कि सिद्धान्तकी ओर आकृष्ट होकर। इस तरह संगठनके लिए जो चीजें जरूरी हैं, वे हैं — समान आकांक्षा, समान उद्देश्य, नेता और अनुशासित अनुयायीगण।

१. सभा रसा थियेटर हॉलमें आशुतोष कालेजकी छात्र-संसद्‌के तत्त्वावधानमें हुई थी और उसमें गांधीजीको अखिल बंगाल देशबन्धु स्मारक कोषके लिए १,००१ रुपयेकी थैली भेंट की गई थी। प्रोफेसर एम० सी० भट्टाचार्यने सभाकी अध्यक्षता की थी।

अब सवाल यह है कि विद्यार्थियोंमें संगठनकी भावना कैसे आये ? अर्थात् अगर स्पष्ट शब्दोंमें कहें तो उनका अपना उद्देश्य क्या हो, राष्ट्रकी दृष्टिसे भारतके सम्बन्धमें उनकी सर्वसामान्य इच्छा क्या हो ? स्वभावतः इसका पहला उत्तर यही है कि विद्यार्थियोंको अपने अध्ययनमें भी राष्ट्रीय भावना लानी चाहिए। विद्यार्थी-जीवनमें उन्हें सिर्फ अपनी ही चिन्ता नहीं करनी चाहिए, सिर्फ इसी बातकी फिक्र नहीं करनी चाहिए कि कालेजोंसे निकलनेके बाद वे क्या करेंगे, बल्कि यह भी सीखना चाहिए कि वे जो ज्ञान प्राप्त कर रहे हैं, उसका उपयोग कैसे करेंगे। उन्हें यह देखना चाहिए कि परिवारके प्रति उनका दायित्व और राष्ट्रके प्रति उनका जो दायित्व है, उनमें परस्पर कोई असंगति न हो। श्रोताओंको सन् १९०८ की बातका स्मरण दिलाते हुए महात्माजीने कहा कि मैंने तभी यह देख लिया था कि एक चीज ऐसी है जो समान रूपसे सबपर लागू होती है और वह है चरखा। अपने देशकी इस अधोगतिका रहस्य तभी मेरी समझमें आ गया था और अब मेरी यह चुनौती है कि कोई भी व्यक्ति मेरी इस खोजको कि यह देश आलस्य और निठल्लेपनके रोगसे दम तोड़ रहा है गलत साबित करके दिखाये। अगर हम आलस्य और निठल्लेपनको त्याग दें तो गरीबी, भूख, भारतके धनका बहकर विदेशोंमें जाना, इन सब चीजोंसे हमें पल-भरमें मुक्ति मिल सकती है। अगर आप गाँवोंमें जायें तो प्रत्यक्ष देखेंगे कि भारतके इस कष्टकर दारिद्र्यका मूल कारण आलस्य ही है। बल्कि मैं तो यहाँतक कहूँगा कि आलस्य ही हमारी परतन्त्रताका कारण है। कारण, मेरा यह निश्चित विश्वास है कि जो राष्ट्र आलसी लोगोंका राष्ट्र नहीं है, जो राष्ट्र अपने सारे समयका उपयोग अपना अस्तित्व कायम रखनेके लिए करता है, वह दुनिया-भरकी ताकतके मुकाबले भी डटकर खड़ा रह सकता है। हर ग्रामवासीको अपने अवकाशके एक-एक क्षणका उपयोग अपनी मातृभूमिके लिए करना अपना कर्त्तव्य मानना चाहिए।

तब वैसा कौन-सा काम है जिसे हममें से हरएक अपना निजी काम करते हुए करता रह सकता है ? सीधा-सा उत्तर है -- चरखा। इसलिए विद्यार्थियोंको गाँवोंमें जाकर लोगोंको चरखेकी शक्ति समझानी चाहिए। इसके लिए आप लोगोंको आलस्य और निठल्लापन त्यागकर गाँवोंमें जाना पड़ेगा -- लेकिन उपकारककी तरह नहीं, सेवकके रूपमें।

स्वदेशीके विषयमें बोलते हुए महात्माजीने कहा कि स्वदेशीके पीछे एक प्रकारकी 'कंजरवेटिव स्पिरिट' है। इस शब्दका एक और प्रचलित अर्थ भी होता है — पुराण-परायणता जो परिवर्तन-मात्रके खिलाफ खड़ी हो। लेकिन मैं यहाँ उसका प्रयोग उसके मूल अर्थमें, रक्षाकी वृत्तिमें कर रहा हूँ। स्वदेशीकी भावना आपको, हमारे पास जो-कुछ उत्तम है, उसकी रक्षा करनेमें समर्थ बनायेगी, उसे बचाकर रखना सिखायेगी। बहुत-सी चीजोंका त्याग करनेकी भी जरूरत होती है, लेकिन किसी चीजकी केवल प्राचीन होनेके कारण आँखें मूँदकर वन्दना नहीं करनी चाहिए उसी प्रकार आँखें

मूँदकर उसका परित्याग भी नहीं करना चाहिए। ईश्वरने हम सबको विवेक-बुद्धि दी है। उसका उपयोग किया जाना चाहिए। स्वदेशीको, जो-कुछ पहलेसे मौजूद है उसे बचाकर रखनेकी वृत्ति ऐसी विवेकयुक्त है जो हमारे राष्ट्रीय जीवनमें निहित सारी उत्तम चीजोंको कायम रखेगी और साथ ही आधुनिक संसारमें जो-कुछ श्रेष्ठ है, पाश्चात्य सभ्यतामें जो-कुछ श्रेष्ठ है उसे भी ग्रहण करके अपने भीतर पचाती जायेगी, किन्तु बेशक उसका छिछला अनुकरण नहीं करेगी। इस तरह हम आज जितने अच्छे हैं, उत्तरोत्तर उससे अधिक अच्छे होते जायेंगे। लेकिन हमारे धर्ममें कुछ ऐसा बुनियादी तत्त्व भी है, जिसमें सुधारकी कोई गुंजाइश नहीं है। इस कथनमें हम भला क्या सुधार कर सकते हैं कि "सत्य और प्रेमका ही नाम ईश्वर है?" दूसरी ओर, कुछ रीति-रिवाज हैं, जो हमें अपने पूर्वजोंसे विरासतमें मिले हैं? विभिन्न परिस्थितियोंमें इन रिवाजोंमें अन्तर पड़ते जाना अनिवार्य है। अगर हम देखें कि कोई रिवाज हमारी बुद्धिसे, मानवीयताके हमारे बोधसे मेल नहीं खाता तो हमें चाहिए कि हम उसे अस्वीकार कर दें।

लेकिन, मुझे मालूम है कि स्वदेशीको लोगोंने आजकल एक बहुत आसान चीज बना रखा है। लोग जर्मनी या जापानसे किसी चीजके निर्माणके लिए जरूरी उपादान मँगाकर उन्हें जोड़-जाड़ कर मान लेते हैं कि यह स्वदेशी हो गई। यह तो स्वदेशीका मजाक उड़ाना है।

मेरी स्वदेशीका मतलब खादी है। मैंने उसी एक चीजको अपना सारा आधार बना रखा है और अपनी स्वदेशीको इसी दायरेतक सीमित किया है। विदेशोंसे उपादान मँगाकर तैयार की गई ऐसी चीजोंका, जिन्हें हम मुनाफेके साथ अपने ही देशमें तैयार कर सकते हैं, इस्तेमाल हमें कभी नहीं करना चाहिए। इसमें किसीके विरोधका कोई भाव नहीं है। मेरे कहनेका मतलब यह है कि 'उदारताका प्रारम्भ घरसे होना चाहिए', स्वदेशी इसी नियमका एक प्रयोग है; यह नियम हमें सिखाता है कि अगर हम अपने परिवार, अपने पड़ोसीकी सेवा नहीं करते तो हम दूरके लोगोंकी सेवा भी नहीं कर सकेंगे। याद रखिए कि मिलके बने एक गज कपड़ेपर मजदूरोंकी जेबमें एक पाई जाती है, जबकि एक गज खादीपर — गाँवोंसे प्राप्त की गई एक गज खादीपर — अकालग्रस्त ग्रामवासियोंकी जेबमें कमसे-कम चार आने जाते हैं। तो अब आप ही तय कीजिए कि आप किस रास्ते चलेंगे — एक पाई दिलानेवाले रास्तेपर या चार आने दिलानेवाले रास्तेपर।

[अंग्रेजीसे]

फॉरवर्ड, ३०-८-१९२५

७३. भाषण: कलकत्ताके भारतीय ईसाइयोंके समक्ष[1]

२९ अगस्त, १९२५

महात्माजी जब बोलनेके लिए खड़े हुए तो श्रोता-समुदायने तीव्र हर्षध्वनिसे उनका स्वागत किया। उन्होंने कहा, जब बाबू कालीचरण बनर्जीके पुत्रने मुझसे भारतीय ईसाई समाजके सामने भाषण देनेके लिए अनुरोध किया तो उसे स्वीकार करनेके अलावा मेरे सामने और कोई चारा ही नहीं था, क्योंकि यह अनुरोध उन सज्जनके पुत्रने किया था जिनका मैं अत्यन्त आदर करता हूँ और जिनसे एक कठिन समयमें सलाह लेनेके लिए मिलनेका भी सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था। महात्माजीने आगे कहा कि मुझे आपसे कोई नई बात नहीं कहनी है। मुझे भारतीय ईसाई भाइयोंसे जो-कुछ कहना है, वह मैं पहले भी कई बार कह चुका हूँ और आपने वह सब अखबारोंमें पढ़ा भी होगा। मैं पहले-पहल भारतीय ईसाइयोंके निकट सम्पर्कमें उस समय आया जब मैं दक्षिण आफ्रिकामें था। वहाँ बहुतसे भारतीय ईसाइयोंसे मेरा परिचय हुआ, और चाहे मेरी खुशीकी घड़ियाँ हों या परीक्षा और कठिनाईके प्रसंग हों, सबमें वे मेरे बराबरके भागीदार हुआ करते थे। भारतीय ईसाइयोंके साथ मेरी अन्तरंगता तबसे बराबर बढ़ती ही गई है।

इसके बाद महात्माजीने भारतीय ईसाइयोंकी दुःखद स्थितिका उल्लेख किया और कहा कि यह स्थिति ईसाई धर्म और यूरोपीय तौर तरीके, दोनोंको एक चीज माननेके कारण पैदा हुई है। उन्होंने कहा कि इस विकृत मनोवृत्तिको मैंने सबसे पहले दक्षिण आफ्रिकाके भारतीय ईसाइयोंमें लक्षित किया, और तबसे बराबर मैं इस बुरी वृत्तिको दूर करनेके लिए प्रयत्न करता रहा हूँ। मैंने अकसर यह दिखानेकी कोशिश की है कि यूरोपीय ईसाई समाज और भारतीय ईसाई समाजके तौर तरीकोंके बीच एक स्पष्ट अन्तर है। कल शामको एक सभामें मैंने यह बताया था कि जाति-विद्वेषकी भावना राष्ट्रीयता नहीं है।[2] इसी प्रकार मैंने यह बताया था कि ईसाई धर्मका मतलब लोगोंको राष्ट्रप्रेम और राष्ट्रीय संस्कारोंसे विमुख करना नहीं है। मेरा निश्चित मत है कि आप लोगोंको ईसाई धर्मका मतलब यूरोपीयकरण नहीं मानना चाहिए। ईसाई धर्मकी कोई भौगोलिक सीमा नहीं है। ईसा मसीहने अपना सारा जीवन एशियामें ही बिताया है और निश्चय ही यूरोपीयकरणसे ईसाई-धर्मका कोई वास्ता नहीं है।

१. यह सभा बंगाल क्रिश्चियन कॉन्फ्रेंसके तत्त्वावधानमें हुई थी। इसकी अध्यक्षता प्रो० जे० के० बनर्जीने की थी।

२. देखिए "भाषण: राष्ट्रीयतापर", २८-८-१९२५।

महात्मा गांधीने आगे कहा कि भारतीय ईसाइयों और भारतीय मुसलमानों तथा हिन्दुओंके बीच बहुत बड़ी खाई दिखाई देती है। इसमें सन्देह नहीं कि यह खाई दिन-ब-दिन पटती जा रही है। लेकिन अब इसे तनिक भी देर किये बिना बिलकुल पाट देना चाहिए। किसी भी धर्मके अनुयायीको दूसरे तमाम धर्मोंके अनुयायियोंसे प्यार करना चाहिए। अपने त्रावणकोरके अनुभवका जिक्र करते हुए महात्माजीने बताया कि उस राज्यमें काफी शिक्षित और सुसंस्कृत भारतीय ईसाई बहुत बड़ी तादादमें हैं। मुझे यह देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि वे लोग दूसरे धर्मोंके अनुयायियोंके प्रति हर प्रकारकी घृणा और दुर्भावनासे मुक्त होनेकी कोशिश कर रहे हैं। ऐसे ईसाइयोंकी संख्या जितनी जल्दी बढ़े भारतके लिए उतना ही अच्छा होगा।

अपना भाषण जारी रखते हुए महात्मा गांधीने कहा कि आप लोग अपने मूल धर्मसे बहुत दूर जा पड़े हैं। इसलिए आप लोगोंको अपने पुराने भाई-बन्धुओंके पास पुनः प्रेमपूर्वक वापस आनेके लिए तैयार रहना चाहिए। आपने दूसरे धर्मको इसलिए स्वीकार किया है कि आप अपने प्राचीन पूर्वजोंके अन्धविश्वासों और गलतियोंसे ऊपर उठ सकें — कमसे-कम आपके मनमें तो ऐसा ही खयाल है। इसलिए आपको अपने भाई-बन्धुओंके प्रति हर प्रकारकी दुर्भावना या घृणाके भावको त्याग देना चाहिए। इसके बाद उन्होंने आन्तर्राष्ट्रीयताकी चर्चा करते हुए कहा कि राष्ट्रीयताको अपनाये बिना कोई भी अन्तर्राष्ट्रीयतावादी होनेका दावा नहीं कर सकता। जो व्यक्ति अपने परिवार, अपने गाँव, अपने देशकी सेवा नहीं कर सकता वह दुनियाकी सेवा क्या करेगा? अन्तर्राष्ट्रीयतामें दुर्भावना, विद्वेष या घृणाके लिए कोई स्थान नहीं है, इसमें तो सिर्फ शान्ति और सद्भावना ही है और जो व्यक्ति अपने पड़ोसियोंको हृदयसे प्यार करना प्रारम्भ नहीं कर देता, वह बाहरी दुनियाके प्रति भी अपने भीतर प्रेमकी भावना नहीं जगा सकता। आप लोगोंके लिए ईसाइयतका मतलब राष्ट्रीयताकी ज्यादा अच्छी अभिव्यक्ति होना चाहिए। इसलिए अगर आप दुनियाके हितमें अपनी जान देनेके दावेदार बनना चाहते हैं तो पहले आपको अपने राष्ट्रके लिए मर मिटनेको तैयार रहना चाहिए। मेरे विचारसे ईसाइयतको राष्ट्रीयताके विरुद्ध नहीं पड़ना चाहिए; बल्कि होना यह चाहिए कि आप राष्ट्रहितमें अपने जीवनको और अधिक उत्सर्ग करनेको तत्पर हों। और इसके लिए आपको जनसाधारणके हृदयमें प्रवेश करना चाहिए। मैंने बहुतसे ईसाइयोंको ऐसा कहते सुना है कि हमें भारतकी सामान्य जनतासे कोई मतलब नहीं है। मैं समझता हूँ, किसी भी धर्ममें ऐसा कह सकनेकी गुंजाइश नहीं है, क्योंकि सभी धर्म किसी-न-किसी बातमें अपूर्ण हैं। इसलिए, मैं आपसे अनुरोध करता हूँ कि ऐसे विचारोंको आप अपने मनसे निकाल दें।

इसके बाद भारतकी गरीबीकी चर्चा करते हुए महात्माजीने कहा कि निश्चय ही ईसाइयतका मतलब अपनी आवश्यकताओंको बढ़ाते जाना नहीं है — ऐसी आवश्यकताओंको, जिन्हें गरीब भारत पूरा नहीं कर सकता। बहुतसे लोग कह सकते

है कि हमारा दृष्टिकोण एक संकुचित दायरेतक सीमित नहीं है। उनसे तो मैं यही कहूँगा कि आप जरा अपने हृदयको टटोल कर देखिए कि क्या आपकी ये बातें आपके धर्मसे मेल खाती हैं। और मुझे पूरा विश्वास है कि आप किसी भी तरह अपनी इन बातोंका मेल अपने धर्मसे नहीं बैठा सकेंगे।

अन्तमें महात्माजीने अनुरोध किया कि अगर आप चरखा नहीं चला सकते तो कमसे-कम खादी तो अवश्य पहनिए। आप अपनी खरीदी हुई खादीके प्रत्येक गजपर कमसे-कम चार आने गाँवोंमें रहनेवाले अपने उन दीन-दुखी भाइयोंको देते हैं, जो भूखसे मुख्यतया इसलिए तड़प रहे हैं कि उनके पास पर्याप्त काम नहीं है। अपना भाषण समाप्त करते हुए महात्माजीने कहा कि आपका धर्म पूरी तरहसे मनुष्य जातिकी सेवाकी भावनापर आधारित है। उसके उच्च सिद्धान्तोंको कार्यरूप देनेके लिए आपको खादी खरीदकर दूर-दूरके गाँवोंमें रहनेवाले अपने भूखसे तड़पते भाइयोंकी रक्षा अवश्य करनी चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, ३०-८-१९२५

७४. हमारा महारोग

हिन्दुस्तान किसानोंका देश है। वैसे तो सारी पृथ्वी किसानोंकी है। परन्तु दूसरे देशोंके लोग अकेली खेतीपर निर्वाह नहीं करते। कितने ही देशोंके लोग शिकारपर अपना गुजारा करते हैं। इंग्लैंड उद्योग-धन्धोंपर जीता है। अपने लिए आवश्यक बहुत-सा अनाज वह बाहरसे मँगाता है। परन्तु हिन्दुस्तानका आधार तो एकमात्र खेती ही है। यदि पानी न बरसे तो लाखोंको भूखों मरनेकी नौबत आ जाती है। चौमासेमें किसानोंको बादलोंका मुँह ताकते रहना पड़ता है।

परन्तु खेती बारहो मास तो थोड़े ही लोग कर सकते हैं। इस कारण करोड़ों लोग चार-छः मासतक बेरोजगार रहते हैं। इससे हम काहिल हो गये हैं। हमेशासे हमारी यह हालत नहीं रही है। जब हम खुद अपने कपड़े तैयार करते थे तब यही करोड़ों लोग उद्यमरत रहते थे। आज वे आलस्यमें डूबे हुए हैं। उनकी आँखोंमें तेज नहीं; आशा नहीं, उनके चेहरेपर उत्साह नहीं। आज हमारी दशा ऐसी हीन हो गई है मानो आलस्य हमारा स्वभाव ही बन गया हो। किसानों-जैसी यह काहिली मध्यम वर्गमें तो है ही। काहिल कौमको स्वराज्य हरगिज नहीं मिल सकता। काहिली विनाशका कारण है। लाखों लोगोंमें भ्रमण करते हुए मैंने देखा है कि लोग बातें करते हुए अथवा गुमसुम बैठे रहनेमें थकते ही नहीं। यदि मैं सावधान न रहूँ तो अनेक लोग मेरे पास आकर बैठे रहें और समझें कि वे पुण्य कर रहे हैं।

यह काहिली हमारा महारोग है। हमारी कंगाली उसका लक्षण है। मैं मानता हूँ कि हमारी कंगालीका कारण सिर्फ हमारे देशमें धनका बाहर चला जाना ही नहीं

है। यह उसके अनेक कारणोंमें से एक हो, ऐसा भी नही है। हमारी कंगाली और हमारे ह्रासका असली कारण तो हमारा आलस्य है। और आलसी आदमी यदि गुलाम न हो तो क्या हो? ऐसा आदमी संसारमें आजतक स्वावलम्वी न बना, न आगे वन सकेगा।

यह काहिली किस तरह दूर हो? कुछ-न-कुछ उद्यम करनेसे। ऐसा कौन-सा उद्यम है, जिसे करोड़ों मनुष्य कर सकते हैं? मेरी नजरमें तो ऐसा एक ही उद्यम है——चरखा। यदि कोई जनहितके लिए चरखेसे अधिक अच्छा उद्यम खोज सके तो वह वेशक चरखा न चलाये। मेरा तो शुरूसे ही यही कहना है कि चरखा निरुद्यमीको उद्यमी वनानेका सर्वोत्तम साधन है। परन्तु यदि कोई इससे अधिक कारगर सार्वजनिक साधन वतायेगा तो उसकी वन्दनामें मेरा मस्तक सहज ही झुक जायेगा। मुझे ऐसे लोग तो वहुत मिलते हैं जो प्रसंग उठनेपर कहते हैं कि मैं तो उद्यमी हूँ ही। पर इससे क्या सारा हिन्दुस्तान उद्यमी हो गया? हिन्दुस्तानमें दस-वीस करोड़पति हैं, पचीस-पचास राजा हैं; पर इससे क्या सव करोड़पति और राजा हो गये? सुखी लोग भी, जव हिन्दुस्तानके दुःखमें अपनेको दुःखी मानेंगे तभी हम एक-राष्ट्र कहे जायेंगे। श्रीकृष्ण-जैसे व्यक्तिको भी अपने लिए आवश्यक न होते हुए भी लोकसंग्रहके लिए उद्यम करना पड़ा था। और केवल स्वार्थ-प्रेरित उद्यम ही काफी नही है। करोड़ों लोग जिस उद्यमको स्वार्थवश करेंगे, उसे लोकनायक या कहिए लोकसेवक परमार्थके लिए करेंगे। यदि वे न करें तो स्वार्थके लिए उद्यम करनेवाले भी मोहमें या भ्रममें पड़कर उस उद्यमको त्याग देंगे। यहाँ तो निरुद्यमीको उद्यमी वनाना है। और उद्यम भी ऐसा सिखलाना है, जिससे हर व्यक्तिका और समाजका कल्याण हो। ऐसा उद्यम चरखा ही दे सकता है। इसीलिए मैं चरखेको कामधेनु कहता हूँ। एक वार लोग यदि वक्तकी कीमतको समझ लें तो दूसरी वातें अपने-आप सूझ जायेंगी।

श्री एन्ड्रयूजने दो सवाल पूछे हैं। मवेशीका इन्तजाम अच्छा न होनेके कारण हर साल करोड़ोंका नुकसान होता है। और लोग मैलेका सदुपयोग नही करते, इससे करोड़ोंकी खाद वेकार जाती है और वीमारियाँ फैलती हैं। आप जो चरखेपर इतना जोर देते हैं, तो मवेशी और गन्दगीके सवालपर जोर देकर सहज ही करोड़ों रुपये वचानेकी कोशिश क्यों नही करते? सो मवेशीकी हिफाजतके लिए गोरक्षाके कामका भार मैंने उठाया है। गन्दगीका सवाल वड़ा टेढ़ा है और उसका भी कारण कुछ अंशोंमें आलस्य ही है। यदि लोग उद्यमकी कीमत समझ ले तो मवेशी तथा गन्दगीका सवाल तुरन्त हल हो जाये। यदि चरखे-जैसा आसान और तत्काल फल देनेवाला उद्यम लोग न कर सकते हों तो पशुओंका या गन्दगीका मसला, जिसके लिए वहुत अधिक प्रयत्न करनेके वाद ही कोई फल निकल सकता है, लोग किस तरह समझेंगे? इस तरह जिस दृष्टिसे भी देखिए, एक ही चीज दिखाई देगी। हिन्दुस्तानका महारोग आलस्य है और उसे दूर करनेका एकमात्र उपाय चरखा है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ३०-८-१९२५

७५. टिप्पणियाँ

बंगालके दौरेका अन्त

बंगालका दौरा अगस्त मासके अन्तमें पूरा होगा। इसका मतलब यह हुआ कि यहाँ मैं जितना सोचा था उससे डेढ महीने ज्यादा रहूँगा।[1] इस बार बंगालियोंसे मेरा जैसा परिचय हुआ, वैसा पहले नही हुआ था। अनेक तरहके बंगालियोंका मीठा अनुभव मुझे हुआ है। पर इस समय मैं उन अनुभवोंका वर्णन करना नही चाहता। इस समय तो ये पंक्तियाँ मैं गुजरातियोंको लक्ष्य करके लिख रहा हूँ।

मैं दादाभाई शताब्दी-समारोहके सिलसिलेमे ३ तारीखको बम्बई पहुँचनेवाला हूँ। ४ तारीखको शताब्दी-समारोह मनाकर मैं ५ तारीखको आश्रम पहुँचनेकी आशा रखता हूँ। ९ तारीखको आश्रम छोड़ देना होगा। इन चार दिनोंमे मैं बहुतेरे कामोंको निबटानेकी आशा रखता हूँ। उसमें काठियावाड़ राजकीय परिषद्के[2] कामका हिसाब भी देना चाहता हूँ। परिषद्ने अपने कार्यमें खादीको प्रधान स्थान दिया है। वह काम किस हदतक हुआ है, इसका हिसाब देवचन्दभाई[3] देंगे। मेरी दृष्टिमें तो जितना काम करनेका विचार था, उसके हिसाबसे ठीक काम हुआ है। कार्यकर्त्ता खाली नही बैठे रहे हैं।

अब रहा राजकीय काम। इसका भार कुछ अशोंतक मैंने अपने सिर ले लिया था। यद्यपि मैं पिछले दिनों गुजरातमें नही रहा, फिर भी मैं उसे भूला नही हूँ। इसका अर्थ यह नही कि कुछ सफलता भी मिली है। यहाँ तो मैं सिर्फ इतना ही कहना चाहता हूँ कि मैंने जो सलाह काठियावाड़को दी, उसके लिए मुझे जरा भी पछतावा नही है।[4] अनुभवसे मेरा यह विश्वास पुष्ट ही हुआ है कि मैंने ठीक सलाह दी।

देशी राज्योंमें जहाँ-जहाँ अन्धेर हो रहा है, उसे सर्वत्र दूर करनेका प्रश्न विकट है। दूर करना असम्भव नही है; पर उसका सम्बन्ध है प्रजाकी शक्ति बढानेसे और राजाओंको शिक्षा देनेसे। प्रजाकी शक्ति बाहरी आन्दोलनसे नही बढ़ सकती, बल्कि उसे शिक्षा देनेसे ही बढ़ेगी। इसलिए राजकीय प्रश्नका सच्चा अर्थ रचनात्मक कार्य ही है। इस बातमें भले ही मतभेद हो कि वह चरखा हो या कुछ और, पर वह समय नजदीक आ रहा है जब सब लोग इस बातको कबूल करेंगे कि राजनीतिक

१. गांधीजी १ मई, १९२५ से १ सितम्बर, १९२५ तक बंगालमें रहे।

२. ६ सितम्बरको गांधीजीने परिषद्की प्रबन्ध समितिकी अध्यक्षता की। बैठक साबरमती आश्रममें हुई थी।

३. देवचन्द पारेख।

४. काठियावाड़ राजनीतिक परिषद्के ८ जनवरी, १९२५ को भावनगरमें हुए अधिवेशनके अध्यक्षकी हैसियतसे। देखिए खण्ड २५, पृष्ठ ५८५-९८।

सवालोंका सच्चा हल लोकशिक्षामें है। लोकशिक्षाका अर्थ अक्षरज्ञान नहीं, उसका अर्थ है लोगोंका अपनी मूर्छाकी अवस्थासे जाग उठना और अपनी स्थिति और शक्तिको पहचानना। यह वास्तविक कार्यके द्वारा ही हो सकता है, बातोंसे नहीं। इसका अर्थ यह भी नहीं कि हर तरहका बाहरी आन्दोलन निरर्थक है। मैं 'यंग इंडिया' में कह चुका हूँ कि उसके लिए भी स्थान है। वैसा आन्दोलन पत्रकार अवश्य करें। उसका असर उतना अवश्य होगा, जितना कि उसमें सत्य और मर्यादा होगी। पर उसे प्रधानपद नहीं दिया जा सकता। वह गौण है और उसका दारोमदार सिर्फ आन्तरिक अर्थात् रचनात्मक कार्यकी सफलतापर ही है। मुर्देमें साँस फूंकनेसे उसमें जान नहीं आ जाती। जीवित प्राणीकी साँस यदि रुँध गई हो और उसमें प्रयत्न करनेकी शक्ति हो तो साँस फूंकना सहायता देता है। यही बात समाजके साथ भी है। आन्दोलन सहायता-रूप है। यह मूल वस्तु नहीं है। हब्शियोंके कष्टोंकी कथा सारी दुनिया कितनी ही गाती फिरे, पर यदि हब्शियोंमें कुछ जान ही न हो तो सारा आन्दोलन निरर्थक होगा। ऐसी कितनी ही आधुनिक मिसालें हैं। यदि दक्षिण आफ्रिकाके भारतवासियोंमें कुछ भी दम न हो तो यहाँके प्रयत्नोंके बावजूद उनकी स्थिति कमजोर ही रहेगी। काठियावाड़ राजनीतिक परिषद्को अपना कार्यक्षेत्र आप ही तय करना है।

गुजरातसे बाहर रहनेवाले गुजराती

मैं जहाँ-जहाँ जाता हूँ, गुजरातसे बाहर रहनेवाले गुजरातियोंसे मुलाकात होती है। और हर जगह मुझे उनकी सहायता मिलती रहती है। भाई मणिलाल कोठारीके कलकत्ता आनेके बादसे तो उन्होंने बंगाल देशबन्धु कोषमें पैसा देनेमें हद ही कर दी है। खड़गपुरके गुजरातियोंने भी अपना चन्दा भेजा है। कटकमें बहुत थोड़ेसे गुजराती हैं। लेकिन उन्होंने अच्छी खासी रकम दी है। लेकिन खड़गपुरमें मुझे एक नया अनुभव हुआ, जिससे मैं बहुत दुःखी हुआ। बहुत-से भाई मेरे पास आकर कोषके लिए अपना हिस्सा देते हुए अपने साहबोंसे डरते थे। साहबोंकी ओरसे उन्हें जो ठेके मिलते हैं, वे न मिलें तो? अभी तो ऐसे किसी डरका कारण दिखाई ही नही देता। साहब लोग भी मुझसे बड़े प्रेमसे मिलते हैं। फिर ये भाई डरते क्यों थे? डर भीतरकी चीज है। जो डरता है, उसे सब डराते हैं, और जो भय छोड़ देता है उसे डरानेकी किसीकी हिम्मत नहीं होती। निर्भय लोग धन नही कमाते, ऐसा भी नहीं है।

हाँ, जिसके मनमें खोट हो, वह जरूर डरता है। जो अनीतिसे कमाते हैं, जो लोग ठेकेमें गोलमाल करते हैं, उन्हें तो जहाँ डरका कोई कारण नहीं है, वहाँ भी डर लगता है। लेकिन, मुझे आशा है कि ये भाई जो डर रहे थे, उनके पास डरका ऐसा कोई कारण नहीं था। मैं हिन्दुस्तानके किसी भी स्त्री अथवा पुरुषको डरते नहीं देखना चाहता। मैंने तो ऐसा मान लिया था कि जो गुजराती बाहर रहते हैं, उन्होंने तो सामान्य भयको त्याग ही दिया है। अपनी यात्राओंमें मुझे यह देखनेको मिला है कि जहाँ दूसरोंको डर लगा है, वहाँ भी गुजराती निर्भय रहे हैं। खड़ग-

पुरमें जो-कुछ देखा वह अपनी तरहका पहला उदाहरण था। ये भाई भयका त्याग कर दें, यही मेरी इच्छा है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ३०-८-१९२५

७६. हमारी गन्दगी – १

गन्दगीके सम्बन्धमें श्री एन्ड्रयूज द्वारा उठाये गये प्रश्नकी चर्चा मैंने इसी अंकमें[1] अन्यत्र की है। फिर भी उसपर स्वतन्त्र रूपसे विचार करनेकी आवश्यकता तो है ही। मुझे यह भी याद है कि जब मैंने 'नवजीवन' के सम्पादक-पदका भार सँभाला, तब आरम्भमें ही इस विषयपर लिखा था। लेकिन यह विषय ऐसा है, जिसपर बराबर लिखा जा सकता है।

शौचके हमारे नियम बहुत अच्छे हैं। स्नान हमेशा करना ही चाहिए। परन्तु इन तमाम क्रियाओंका रहस्य हम नहीं जानते, इसलिए यह चीज एक रिवाजके रूपमें ही रह गई है अथवा वहमके कारण हम ऐसा मानते हैं कि चाहे जैसे और चाहे जितने थोड़े जलका स्पर्श हमें पवित्र कर देता है और हम स्वर्गके अधिकारी बन जाते हैं। विज्ञान तो हमें यह सिखाता है कि वही स्नान गुणकारक होता है जो निर्मल जलसे बदनको इस तरह मलकर किया जाता है, जिससे वह साफ हो जाये। महज पानीके छींटे बदनपर डाल लेनेसे अथवा यों ही पानी उँडेलकर मैले कपड़े पहननेसे लाभ तो कुछ नहीं, उलटा नुकसान हो सकता है। हमारे पाखाने तो इस पृथ्वीपर ही मानो नरककी खान हैं। उनमें बैठना पाप ही है। थोड़े परिश्रम, विचार और विवेकसे हम उनमें सुधार कर सकते हैं। उसमें खर्चका सवाल ही नहीं है। सिर्फ ज्ञानकी आवश्यकता है। गरीबसे-गरीब आदमी भी यदि चाहे तो शौचके नियमका पालन कर सकता है। हाँ, उसे अपना मैला देखने या साफ करनेमें घिन न होनी चाहिए। किसानोंको तो यह घिन नहीं होती। वे तो बड़े गन्दे तरीकेसे गन्दे कूड़े-कचरेको गाड़ियोंमें भरते हैं।

अहमदाबादके मुहल्ले और गलियाँ गन्दी रहती हैं, उसका कारण गरीबी नहीं, बल्कि घोर अज्ञान और काहिली है। मद्रासमें तो मैंने साहूकारोंके मुहल्लेमें पचास-पचास साल तकके वनिक लोगोंको गलीमें ही सुबह-सुबह टट्टी जाते हुए देखा है। इस दृश्यको याद करके ही मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। हरिद्वारमें गंगाके पवित्र किनारेको तीर्थ-यात्री सुबह-शाम दुर्गन्धित कर देते हैं। वहाँ बैठना या घूमना असम्भव हो जाता है। ये भले आदमी कितनी ही जगह तो ज्योंके-त्यों नदीमें जाकर आबदस्त लेते हैं। शौचस्थानपर जलतक नहीं ले जाते। त्रिचनापल्लीमें तो नदीमें मैला यों ही बहता हुआ देखा जा सकता है। और इसी पानीसे लोग नहाते हैं, इसीको पीते हैं। बंगालमें छोटे-

1. देखिए: "हमारा महारोग", ३०-८-१९२५।

छोटे सैकड़ों तालाब नहाने-धोने तथा मवेशी और इन्सानके पानी पीनेके काममें आते हैं।

परन्तु श्री एन्ड्रयूजके एक मित्रकी शिकायत तो यह है कि किसान जहाँ चाहे वहाँ टट्टी-पेशाब करके जमीन खराब करते हैं। उसपर पानी बरसता है। और वह सारा मैला पानीमें मिल जाता है। लाखों लोग नंगे पैर चलते हैं, जिससे उन्हें नारू निकलते हैं, पेचिश वगैरह रोग होते हैं। असंख्य लोग तकलीफ पाते हैं और बेशुमार बे-मौत मर जाते हैं। इस मैलेकी बढ़िया खाद बन सकती है। चीनके लोग उसकी खाद बनाकर करोड़ों रुपये बचाते हैं, तब हिन्दुस्तानके लोग भी क्यों नहीं बचाते और तन्दुरुस्त रहते? दक्षिण अमेरिकामें पहले हिन्दुस्तानकी जैसी हालत थी। पुरुषार्थसे उन्होंने उसे बीस सालमें ही बदल डाला और वहाँके लोग बहुतेरे रोगोंसे बच गये।

हम भी मनमें निश्चय कर लें तो बच सकते हैं। किस तरह बच सकते हैं, इसका विचार अगले सप्ताह करेंगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ३०-८-१९२५

७७. पत्र: प्रतापचन्द्र गुह रायको

[१ सितम्बर, १९२५ से पूर्व]

मैं तो समझता था कि आप आत्मसमर्पण कर चुके। आज सुबह ही आपका खयाल आया था; और मुझे लगा, आप मुझसे मिले बिना ही चले गये। यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप आ गये। जेलमें अच्छी तरह रहिएगा और आत्मचिन्तन कीजिएगा। यदि हमें स्वराज्य जल्दी ही प्राप्त करना है तो उसके लिए अभी बहुत काम शेष है। हमें सत्ता तो हासिल करनी ही है, लेकिन वह विवेकपूर्वक यज्ञ-धर्मका आचरण किये बिना नही प्राप्त हो सकती। मैं जानता हूँ कि चरखा चलाना सबसे अच्छा और पवित्र यज्ञ है, क्योंकि उसमें स्वार्थका लेश भी नहीं है। चरखा चलाते समय हमारा ध्यान सहज ही भारतके करोड़ों मूक प्राणियोंकी ओर जाता है। मैं इससे अच्छा कोई दूसरा उपाय नहीं जानता।

[अंग्रेजीसे]

फॉरवर्ड, १-९-१९२५

७८. टिप्पणियाँ

स्वर्गीय डा० भाण्डारकर[1]

सर रामकृष्ण भाण्डारकरकी मृत्युसे हमारे बीचसे संस्कृतका एक प्रख्यात विद्वान् और समाजसेवक उठ गया है। उन्होंने संस्कृतकी जो महान् सेवा की है, उसे लोग सदा याद रखेंगे। उन्होंने अंग्रेजी बोलनेवाले भारतीयोंके लिए संस्कृत पढ़ना सुगम, रोचक और लोकप्रिय बना दिया। उनके द्वारा लिखी हुई संस्कृतकी पाठ्यपुस्तकें आज भी लोकप्रिय हैं। उनके शोध-कार्यको देश-विदेशके प्राच्य विद्याके तमाम विद्वानोंने मान्यता और उसकी सराहना की है। वे संस्कृतके उद्भट विद्वान् तो थे ही, सच्ची लगनवाले समाज-सुधारक भी थे। इस दिवंगत विद्वान्को देश सदा कृतज्ञतासे याद करेगा। श्री भाण्डारकरके शोक-सन्तप्त परिवारके साथ मैं आदर-सहित अपनी समवेदना प्रकट करता हूँ।

अ० भा० कां० कमेटीकी आगामी बैठक

मैं आशा करता हूँ कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीका हर सदस्य कमेटीकी आगामी बैठकमें हाजिर होकर उसकी कार्यवाहीमें अवश्य शरीक होगा और अपनी राय जाहिर करेगा। यदि दैवयोगसे कारणवश किसीको रुक जाना पड़े तो बात दूसरी है। कांग्रेसके विधानमें जो परिवर्तन सुझाया गया है, वह उसी अवस्थामें ठीक माना जा सकता है जब उसके लिए सर्वसम्मतिसे और आग्रहपूर्वक माँग की जाये। और यह साबित करनेके लिए कि इस परिवर्तनको सभी सदस्य चाहते हैं और इसपर उनका आग्रह है, यह जरूरी है कि आवश्यक हो तो खासी असुविधा और नुकसान उठाकर भी हरएक सदस्य उपस्थित हों। अगर सदस्य ऐसा मानकर कि अमुक बात तो मंजूर हो ही जायेगी, उपस्थित सदस्योंको, उन्हें जो मुनासिब लगे, करने देंगे तो इससे काम न चलेगा। अनुपस्थितिका समुचित कारण बताकर न आयें तब तो ठीक; अन्यथा उससे जिम्मेदारीके बोधका अभाव जाहिर होगा। सदस्योंको समझना चाहिए कि मैंने इस साल अबतक उन्हें कोई कष्ट नहीं दिया है और यदि आवश्यक प्रसंग उपस्थित न हो गया होता तो मैं उन्हें अब भी कष्ट न देता। मेरी रायमें अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी बैठक और उसके निमित्त होनेवाला खर्च तभी उचित माना जा सकता है जब कोई नई नीति निर्धारित करनी हो, या महत्त्वपूर्ण और बोधप्रद कोई प्रस्ताव पास करने हों। पहले विचार यह था कि समितिकी बैठक १ अक्तूबरको बम्बईमें की जाये। लेकिन, लोगोंने यह सुझाव दिया कि बैठक यदि जल्दी बुलाई जाये तो सदस्योंको अधिक सहूलियत होगी और इसे बम्बईके बजाय पटनामें बुलाना ज्यादा

१. (१८३७–१९२५); प्राच्य विद्या-विशारद और समाज सुधारक; पूनाके ओरियंटल रिसर्च इंस्टीट्यूटका नाम उन्हींके नामपर रखा गया था। गांधीजीकी उनसे सर्वप्रथम भेंट १८९६ में एक सार्वजनिक सभाके अवसरपर हुई थी। देखिए खण्ड २ पृष्ठ १४७।

सुविधाजनक रहेगा। ऐसा स्थान तो शायद ही हो जो सबको समान रूपसे सुविधाजनक हो। जब बम्बईका विचार किया गया तब बंगाली सदस्य कुछ परेशानसे हुए। अब पटनाके नियत किये जानेसे सुदूरवर्ती प्रान्त सिन्ध विरोध कर रहा है। कितना अच्छा होता, अगर मैं बैठकके स्थानके लिए पटनाके चुनावका औचित्य सिद्ध करते हुए सभी सदस्यों और प्रान्तोंको भी खुश कर पाता। मैं सिर्फ इतना ही कह सकता हूँ कि इसे इस कारणसे चुना गया कि बहुत-से लोगोंके खयालसे पटना सबसे उपयुक्त स्थान है, लेकिन विशेषकर इसलिए कि पण्डित मोतीलालजीने अपने विधान सभाई साथियोंके साथ सलाह करके पटनाको ही पसन्द किया। और जब मैंने देखा कि पटनाको चुनना पण्डितजीके स्वास्थ्यकी दृष्टिसे अधिक अच्छा होगा, तब मैंने तनिक भी आगा-पीछा किये बिना बैठकके स्थानके लिए उसीको चुन लिया। अभी वे बिलकुल चंगे नहीं हो पाये हैं और यह भी नहीं कहा जा सकता कि उनमें पूरी ताकत आ गई है। दमेका दौरा अभी थमा ही है; यह फिरसे न उखड़े इसके लिए बड़ी सावधानी और देखभालकी जरूरत रहती है। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि कोई सदस्य केवल इसी कारणसे कि पटना उसके अपने स्थानसे बहुत दूर पड़ता है, अनुपस्थित नहीं रहेगा।

अखिल भारतीय चरखा संघ

यदि सब बातें ठीक होती गईं तो मेरा इरादा इसी बैठकमें अखिल भारतीय चरखा संघका श्रीगणेश कर देनेका है। इसलिए मैं चाहूँगा कि खादीके काममें लगे हुए ऐसे तमाम कार्यकर्त्ता, जो इस अनुष्ठानमें दिलचस्पी रखते हों और जिनके पास मूल्यवान सुझाव हों, बैठककी अवधिमें पटनामें जरूर पहुँचें, चाहे वे कांग्रेस कमेटीके सदस्य हों या न हों। मैं चाहूँगा कि वे बाबू राजेन्द्रप्रसादको अपने आने और ठहरनेके स्थानकी सूचना दे दें। यदि वे यह चाहते हों कि बाबू राजेन्द्रप्रसाद उनकी रिहाइश और भोजन आदिका भी प्रबन्ध करें तो उन्हें इस बातकी इत्तिला काफी पहलेसे कर दें। मैंने राजेन्द्र बाबूसे निवेदन किया है कि जो लोग अपने रहने-खानेका प्रबन्ध करवाना चाहते हों उन्हें इसके लिए क्या देना पड़ेगा, इसे वे प्रकाशित करा दें।

सब दलोंको क्यों नहीं निमन्त्रित कर रहा हूँ?

मुझे इस समय जिस बातकी चिन्ता लगी हुई है, वह है कांग्रेसियोंके आपसी मतभेदोंको दूर करके सभी दलों द्वारा मिल-जुलकर कोई काम कर सकनेका यदि कोई उपाय हो तो उसे ढूँढूँ और कांग्रेसके आगामी अधिवेशनका काम हलका बना दूँ; ताकि अगर कांग्रेसको कुछ नई नीतियों और कार्यक्रमोंपर विचार करना हो और उनका शुभारम्भ करना हो तो वह अन्य झंझटोंसे मुक्त रहकर अपना पूरा ध्यान इसी ओर लगा सके। इसपर पूछा जा सकता है कि ऐसी अवस्थामें आप और दलोंके नेताओंको भी पटना क्यों नहीं बुलाते। मैंने इस मामलेपर बहुत गौर किया है, और मैं इस नतीजेपर पहुँचा हूँ कि अभी ऐसे निमन्त्रणसे कोई फल नहीं निकलेगा। जब तमाम कांग्रेसियोंके मनमें यह बात साफ हो जायेगी कि खुद वे क्या चाहते हैं और जब वे परस्पर एकराय हो जायेंगे तब इस विषयमें अगला कदम

उठानेका उपयुक्त समय आयेगा। कांग्रेसियों तथा अन्य दलवालोंके मतभेद सबको मालूम है और वे बिलकुल स्पष्ट हैं। पहले खुद कांग्रेसियोंको ही यह विचार कर लेना चाहिए कि वे किस हदतक आगे जा सकते हैं, उसके बाद ही वे दूसरे दलोंके नेताओंके साथ परामर्श करें। फिलहाल मुझे अपनी तरफसे सभी सम्बन्धित लोगोंको यह आश्वासन देकर ही सन्तोष मानना पड़ेगा कि सभी दलोंको एक मंचपर लानेके लिए मैं बहुत व्याकुल हूँ। पर मैं जानता हूँ कि जब मतभेद बुनियादी हों तो इच्छा कितनी भी तीव्र क्यों न हो सबको एक मंचपर लाना कठिन होता है। मानव-समाजपर ही रसायनशास्त्रका यह सिद्धान्त कि 'परस्पर विरोधी वस्तुओंके सयोगका फल विस्फोटके रूपमें प्रकट होता है', लागू होता है। कांग्रेसियोंका लक्ष्य है ऐसी वास्तविक एकता प्राप्त करना, विभिन्न दलोंका ऐसा संगठन तैयार करना जिससे हमारी शक्ति बढ़े। यही उनका लक्ष्य होना भी चाहिए। पैवन्द लगाकर कामचलाऊ एकता कायम करनेसे तो राष्ट्र सिर्फ कमजोर ही होगा और राष्ट्रीय उद्देश्यकी सिद्धिके मार्गमें बाधा ही पड़ेगी।

विहारमें खादी

पुरुलियासे एक भाई लिखते हैं :[1]

इस पत्रसे दो महत्त्वपूर्ण सवाल उठते हैं। एक तो यह कि कभी-कभी खादी पहननेसे कोई लाभ है या नहीं? इस सिद्धान्तके अनुसार कि 'कुछ भी नहींसे कुछ अच्छा है,' प्रसंग विशेषपर खादी पहननेको भी प्रोत्साहन मिलना चाहिए। हम घरमें कते सूतसे घरमें बुनकर तैयार की गई खादीकी बिक्री चाहते हैं। ऐसी अवस्थामें ऐसी खादीकी जितनी माँग हो उतना ही अच्छा है। जो लोग खास मौकोंपर ही उसका इस्तेमाल करते हैं, सम्भव है कि वे लोग आगे चलकर हमेशाके लिए ऐसा करने लगें। इसलिए मैं तो हर हालतमें उसके इस्तेमालको प्रोत्साहन दूंगा। मैं इस बातको भी स्वीकार नहीं कर सकता कि जो लोग कभी-कभी ही खादी पहनते हैं, वे ढोंगी और पाखण्डी ही हैं। जो व्यक्ति अपने असली रूपको छिपा कर अपनेको कुछ और ही दिखाता है वह पाखण्डी है; जो इस प्रकारका झूठा दिखावा नहीं करता, उसे पाखण्डी नहीं कहा जा सकता। जो व्यक्ति छिपकर शराब पीता है, पर अपने पड़ोसीको यह विश्वास दिलाता है कि वह तो शराबको छूता भी नहीं, वह पाखण्डी और त्याज्य है। मगर जो अपनी शराबखोरीकी आदतको नहीं छिपाता है, मित्रोंकी भावनाका खयाल करके मित्रोंके सामने या समाजमें शराब नहीं पीता, वह पाखण्डी नहीं है। इसके विपरीत वह एक विचारवान और समझदार आदमी है और उसके उस दुर्व्यसनसे छुटकारा पा जानेकी पूरी आशा है। ऐसी अवस्थामें पुरुलियाके जिन

१. पत्र यहां नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने गांधीजीको लिखा था कि चूँकि आप पुरुलिया आनेवाले हैं, इसलिए जबतक आप यहाँ रहेंगे, तबतक पहननेके लिए लोग अब खादी खरीद रहे हैं। इस तरह विशेष अवसरोंपर खादी पहननेसे क्या फायदा? यह तो पाखण्ड है। पत्र-लेखकने यह शिकायत भी की थी कि शुद्ध खादी नहीं मिलती और जापानमें तथा भारतीय मिलोंमें बने कपड़ेको खादीके नामपर बेचा जाता है।

लोगोंके बारेमें मेरे आगमनके उपलक्ष्यमें खादी खरीदनेकी खबर है वे यदि उसे इसलिए खरीदते है कि मुझे यह विश्वास हो जाये कि उन्होंने कभी दूसरा कपडा पहना ही नही तो वे अवश्य ढोंगी हैं। पर मुझे इस बातपर विश्वास नही होता कि वे ऐसे किसी बुरे विचारसे खादी खरीद रहे होंगे। यह बात मुझसे छिपी नही है कि बहुतेरे लोगोंने अभीतक मिलका बना हुआ कपड़ा पहनना, फिर वह देशी मिलोंका हो या विदेशी मिलोंका, छोड़ा नही है। पर वे कभी-कभी खादी पहनना नापसन्द नही करते और चूँकि अब खादी कांग्रेसका पहनावा हो गया है इसलिए जो लोग कांग्रेसके समारोहोंके अवसरपर कभी-कभी ही शरीक होते हैं, वे भी खादी पहनना उचित समझते हैं। इसलिए मैं यह तो जरूर चाहूँगा कि विहारमें जो लोग मेरे आगमनपर वहाँ होनेवाले कांग्रेसके समारोहोंमें शरीक हो सकनेके खयालसे खादी खरीद रहे हैं, वे बराबर खादी ही पहना करें, किन्तु मेरे आगमनके सिलसिलेमें उनके खादी पहननेकी मैं निन्दा नही कर सकता। इससे बिहारकी बची हुई खादी बिक जायेगी और उतना रुपया अधिक खादी बनानेके लिए मिल जायेगा। यह लाभ चाहे जितना छोटा हो, किन्तु लाभ तो है ही।

पत्र-लेखकने जो दूसरा मुद्दा उठाया है, वह गम्भीर है। नकली मालसे बचनेका एक ही तरीका है और वह यह कि खरीदार पूरी तरह परख कर देख लें और जब उन्हें विश्वास हो जाये कि माल शुद्ध है, तभी वे खरीदें। कांग्रेसकी संस्थाएँ या खादी संगठन इसे बन्द करने या कमसे-कम उसे रोकनेमें, बहुत मदद कर सकते हैं। पत्र-लेखक कहते हैं कि तमाम मुख्य-मुख्य शहरोंमें कांग्रेसकी तरफसे खादी-भण्डार खोले जाने चाहिए। इस तरहकी कुछ कोशिश की भी गई है, पर यह सवाल है रुपयेका और संगठनका। अखिल भारतीय चरखा संघकी स्थापनाका विचार ऐसी ही खराबीकी रोक-थाम करनेके उद्देश्यसे किया गया है। इस बीच मैं पत्रलेखक-जैसे सज्जनोंसे आग्रह करूँगा कि वे सुविधाके अभावमें खादीको छोड़ न दें। चूँकि खादी और चरखेके सफल संगठनकी प्रक्रियामें हमारे स्वभावके उत्तम अंशको पनपने और प्रकट होनेका अवसर मिलता है इसीलिए मैं अकसर कहा करता हूँ कि चरखेको अपनानेसे हम स्वराज्यतक पहुँच जायेंगे।

अर्ध-खादी

लेखकने कांग्रेस संस्थाओं द्वारा अर्ध-खादी बनाने और बेचनेका भी जिक्र किया है। यह बुराई बहुत गम्भीर है। कांग्रेस-संस्था, जो शुद्ध खादी बेचनेके लिए प्रतिज्ञाबद्ध है, अर्ध-खादीसे कोई वास्ता नहीं रख सकती। जबतक कांग्रेसी लोग इस सीधी-सादी बातको नही समझ लेते कि अर्ध-खादी बनानेसे हाथ-कते सूतकी तरक्कीमें बाधा पड़ती है, तबतक लोग अच्छा सूत नहीं कातेंगे। हाथ-कते सूतकी किस्म सुधारनेका सबसे पक्का और जल्दीका तरीका यह है कि बुनाईमें उसका उपयोग तानेके लिए किया जाये और इस तरह करघेपर उसकी मजबूतीकी परख कर ली जाये, यह मानना कि धीरे-धीरे तानेमें मिलका सूत लगाना बन्द हो जायेगा, एक भ्रम है। एक-न-एक दिन तो इस कठिनाईका सामना करना ही होगा। कितनी ही कांग्रेस-संस्थाएँ तो इस

सम्स्थाने निपट भी चुकी है। हाथकता सूत बुनवानेमें कोई दिक्कत नहीं है। यदि उसे अपने जिलेमें नहीं तो किसी दूसरे जिलेमें बुनवाया जा सकता है। इसलिए मैं चाहता हूँ कि कांग्रेस-संस्थाओंको अर्ध-खादी बुनना या उसकी बिक्री करना कतई बन्द कर देना चाहिए।

गोरक्षा

जिन लोगोंने मुझपर अखिल भारतीय गोरक्षा मण्डलके संचालनका भार डाला तथा जिन्होंने उसका सूत्रपात किया, वे इत्मीनान रखे कि मण्डलका काम-काज मेरे ध्यानसे बाहर नहीं रहा। पर हाँ, मैं इस विषयका जितना ही अध्ययन करता हूँ, उसकी कठिनाई उतनी ही अधिक महसूस कर रहा हूँ। जिस अर्थमें मैंने गोरक्षा शब्दका प्रयोग किया है, उस अर्थमें इस प्रश्नके साथ न केवल भारतवर्षकी पशु-जातिके कल्याणका और हिन्दू-धर्मकी सुकीर्तिका गहरा सम्बन्ध है, बल्कि बहुत हद तक देशके आर्थिक कल्याणका भी सम्बन्ध है। और दिनपर-दिन मेरे हृदयमें यह विश्वास भी दृढ़ होता जा रहा है कि इस समस्याका निपटारा खासकर हिन्दुओं द्वारा और आम तौरपर सारे भारतवासियों द्वारा इस मण्डलके तरीकोंको अपना लेने पर निर्भर करता है। इस उद्देश्यसे कि मैं गोरक्षा सम्बन्धी सब प्रकारके साहित्यका अध्ययन कर सकूँ या अपने साथियोंसे करवा सकूँ, मैं भारत सरकार तथा प्रान्तीय सरकारोंके कृषि विभागों सहित तमाम स्थानीय संस्थाओं तथा पशु-समस्यामें दिलचस्पी रखनेवाले लोगोंको निमन्त्रण देता हूँ कि उनके पास पशु-समस्या तथा दुग्ध-शालाओं एवं चमड़ेके कारखानोंके संचालनके सम्बन्धमें जो भी साहित्य और आँकड़े हों, वह सब मुझे सुलभ करानेकी कृपा करें। मण्डलकी समितिकी बैठक इस मासकी ३ तारीखको बम्बईमें होगी, जिसमें मैं मन्त्री तथा स्थायी खजांचीके नाम घोषित करनेकी आशा रखता हूँ। मैं यह आशा भी करता हूँ कि जिन सज्जनोंने कुछ सदस्य बनानेका काम अपने जिम्मे लिया था, वे भी उस अवसरपर अपने अंगीकृत कार्यकी पूर्तिकी सूचना दे सकेंगे। जो साहित्य आदि मैंने माँगा है, वह इस पतेपर भेजा जा सकता है — मन्त्री, अ० भा० गोरक्षा मण्डल, सत्याग्रहाश्रम, साबरमती।

सरकारी संस्थाओंमें कताई

श्रीरामपुरमें बंगाल सरकार द्वारा संचालित एक बुनाईकी शिक्षा-संस्था है। इसकी व्यवस्था बंगाल सरकारका उद्योग-विभाग करता है। इस संस्थामें हाथ कताईकी बाकायदा तालीम दी जाती है। मैं इसकी प्रगति और शिक्षा-पद्धतिके विषयमें जाननेको बड़ा उत्सुक था। इसलिए मैंने उस संस्थाको देखनेके लिए अधिकारियोंसे अनुमति माँगी, वह तुरन्त मिल गई। श्री हुगवर्कने मेरे साथ घूम-घूमकर मुझे उस संस्थाका प्रत्येक खण्ड दिखाया। वहाँ हाथकी बुनाई और रंगाई और कताई सबकी व्यवस्था थी। कताई केवल रुईसे ही नहीं बल्कि जूट, रेशम इत्यादिसे भी होती थी।

लेकिन यहाँ मैं केवल रुईकी कताईका ही जिक्र करना चाहता हूँ। संस्थाके कर्मचारीगण इस सम्बन्धमें करना बहुत-कुछ चाहते थे; परन्तु मुझे तुरन्त ही यह दिखाई

दे गया कि एक शिक्षण संस्यासे जिस तकनीकी योग्यता और मार्गदर्शनकी अपेक्षा की जा सकती है, उसका यहाँ अभाव था। मैं तो वहाँ इस आशासे गया था कि वहाँ कोई ऐसा कताई-विशेषज्ञ अवश्य मिलेगा जिसके हृदयमें इस कामके प्रति आस्था हो। मैंने वहाँ नवीनतम ढंगके चरखे देखनेकी भी आशा की थी। यह सब कहनेमें मेरा मकसद नाहक नुक्ताचीनी करना नहीं है, वल्कि यह सव मै इस आशासे कह रहा हूँ कि निकट भविष्यमें वहाँ निश्चित रूपसे कुछ जरूरी सुधार हो सकेंगे। जो चरखे मैंने वहाँ देखे उनमें से कुछ की वनावट ठीक न थी। उनमें भी वैसे ही दोष थे जैसे अपने इस दौरे में मुझे अन्यत्र देखनेको मिले; और जिनके सम्बन्धमे मै इन्ही स्तम्भोंमें चर्चा कर चुका हूँ। उन चरखोंमें से कुछ तो चलाते समय कर्कश आवाजतक करते थे। पूनियाँ भी बहुत अच्छे किस्मकी न थी। ऐसी हालतमें अगर थोड़े ही समयके पश्चात् यह समाचार प्रकाशित हो कि हाथ-कताईका यह प्रयोग असफल सिद्ध हो गया है तो आश्चर्यकी वात न होगी। किसी भी प्रयोगको जवतक सफल वनानेके लिए हर तरहकी कोशिश न कर ली जाये तवतक असफल घोषित नही किया जाना चाहिए। इसलिए उस प्रयोगकी जिम्मेदारी किसी ऐसे व्यक्तिके हाथमें होनी चाहिए, जिसमें तमाम अपेक्षित योग्यताएँ हों और जिसके मनमें उसके प्रति श्रद्धा हो। यह भी मालूम हुआ कि इस संस्थामें शक्ति-चालित करघोंपर वुनाई करनेकी शिक्षा देना प्रारम्भ करनेका भी इरादा है। अभी तो यह हालत है कि इस संस्थाकी मौजूदा जरूरतें ही पूरी नही हो रही हैं और वह जैसे-तसे चल रही है। इसके सिवा, इसका उद्देश्य गृह-उद्योगोंको वढ़ावा देना है। अतः मेरे विचारसे वहाँ शक्तिचालित करघे शुरू करना जनताके पैसेका अपव्यय ही होगा। मै यह वात शक्तिचालित करघोंमें मेरा विश्वास न होनेके कारण नहीं कह रहा हूँ, यह तो मै इस खयालसे कह रहा हूँ कि इससे उस उद्देश्यकी पूर्ति नही होगी, जिसके लिए यह संस्था स्थापित की गई है। जो भी रकम इस संस्थाके निमित्त स्वीकार की जाये, उसका एक-एक पैसा गृह-उद्योगोंकी उन्नतिमें लगाया जाना चाहिए। इसलिए इस संस्थाकी सभी प्रवृत्तियोंका उद्देश्य हाथ-कताई तथा उससे सम्बन्धित प्रक्रियाओंकी उन्नति करना और उनकी शिक्षा देना ही होना चाहिए।

मैंने वहाँ एक वात ऐसी पाई कि जिसका अनुकरण उन सभी राष्ट्रीय संस्थाओंमें किया जाना चाहिए जहाँ हाथ-कताई सिखाने या उसके विकासका काम किया जा रहा हो। श्री हुगवर्फ मुझे अपने निवास-स्थानपर ले गये। वहाँ मैंने सूतकी मजबूती तथा उसके अंककी परीक्षा करनेवाले यन्त्र देखे। ऐसे यन्त्र भी देखे जिनकी सहायतासे सूतकी एकरूपता, रुईके रेशोंकी लम्बाई और वुने जानेके वाद कपड़ेकी मजबूती-की भी जाँच की जा सकती है। अगर इन सीधे-सादे यन्त्रोंमें से कुछ यन्त्र राष्ट्रीय शालाओंमें रखे जायें और ठीक तरहसे उनका इस्तेमाल किया जाये तो इससे कातने-वाले तेजीसे प्रगति कर सकेंगे और उनकी कताईकी जाँच भी होती रहेगी।

मैंने इस संस्थाके समीप ही एक और संस्था भी देखी। मै उसका जिक्र करना भी जरूरी मानता हूँ। इसका खर्च भी मुख्यतया उक्त सरकारी संस्था द्वारा दिये

गये अनुदानसे चलना है। यह संस्था लड़कियोंके लिए है; और एक ईसाई धर्म प्रचारिकाने इसी संस्थाके काममें अपनेको लगा रखा है। यहाँ भी दूसरी चीजोंके साथ-साथ हाथ-कताईकी तालीम दी जाती है, परन्तु जो दोष मैंने वहाँ देखे थे, वे यहाँ भी पाये। उस संस्थाकी अधीक्षिका उसे सफल बनानेके लिए बहुत उत्सुक हैं, परन्तु जबतक वे स्वयं कताई इत्यादि सीख नहीं लेतीं — ताकि वे यह जान सकें कि अमुक चरखा अच्छा है, अमुक खराब है और कताई ठीक ढंगसे हो रही है या नहीं — तबतक वे उसे सफल नहीं बना सकतीं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ३-९-१९२५

७९. पाश्चात्य देशोंका उद्धार कैसे हो?

एक यूरोपीय मित्र लिखते हैं:

> पाश्चात्य देशोंके भूखसे तड़पते करोड़ों लोगोंके लिए क्या किया जा सकता है, उनके उद्धारके लिए आप किस उपायको काममें लानेका सुझाव देते हैं? भूखसे तड़पते करोड़ों लोगोंसे मेरा मतलब है, यूरोप और अमेरिकाके सर्वहारा लोगोंका वह विशाल समुदाय जिसे विनाशके गर्तमें ढकेला जा रहा है, जो ऐसे घोर कष्टोंकी जिन्दगी जी रहा है जिसे जिन्दगी कहा ही नहीं जा सकता, जो किसी भी प्रकारके स्वराज्यके द्वारा निकट भविष्यमें अपने कष्टोंसे मुक्ति पानेकी आशा नहीं कर सकता, जो कदाचित् भारतीय जनसमुदायसे भी अधिक हताश है, क्योंकि ईश्वरके प्रति आस्था और धर्मसे मिलनेवाली सांत्वनाका सहारा भी उसके हाथोंसे कबका छूट चुका है और अब उसके स्थानमें उसे जो-कुछ मिला है, वह है घृणा।
>
> जो फौलादी हाथ भारतकी जनताको कुचल रहे हैं, वे यहाँ भी अपनी करतूत दिखा रहे हैं। यह आसुरी प्रणाली इन तमाम स्वतन्त्र देशोंमें क्रियाशील है; लोभ-लालचका इतना जोर है कि राजनीतिका कोई महत्त्व ही नहीं रह गया है। जनसाधारण दुराचारसे तबाह हो रहा है, और यह स्वाभाविक है, क्योंकि वह अपनी जिन्दगीके इस नरकसे छुटकारा पाना चाहता है — किसी भी कीमतपर, न हो तो इससे भी अधिक नारकीय जीवन भोगनेकी कीमतपर। हारे-थके मनुष्यको धर्मके अंकमें जाकर जो संतोष और आशा मिलती है, उसका मार्ग भी अब उसके लिए अवरुद्ध है, क्योंकि ईसाई-धर्म सदियोंसे शक्तिशाली और लोलुप लोगोंका पक्षपाती बना रहकर अपनी सारी साख खो चुका है।
>
> यह तो मैं जानता हूँ कि यदि अब भी इस जनसमुदायकी मुक्तिका कोई मार्ग शेष रह गया है, यदि समस्त पाश्चात्य संसार अभी विनाशको प्राप्त नहीं हुआ है तो महात्माजी उसकी मुक्तिका यही उपाय बतायेंगे कि

बड़े पैमानेपर अनुशासित और अहिंसामय सत्याग्रह चलाया जाये। किन्तु, यूरोपकी मिट्टी और मानसमें अहिंसाकी कोई परम्परा नहीं है। इस सिद्धान्त-का प्रचार करनेमें ही न जाने कितनी बड़ी-बड़ी कठिनाइयाँ आयेंगी, उसको सही अर्थोंमें समझने और उसका प्रयोग करनेकी बात तो दूर रही।

इस भाईने यह प्रश्न बड़े सच्चे मनसे पूछा है, किन्तु इसमें निहित समस्या मेरी परिधिके बाहर है। इसलिए मैं उत्तर देनेकी जो कोशिश कर रहा हूँ वह मात्र मेरे और प्रश्नकर्ता सज्जनके बीच जो मैत्री-सम्बन्ध है उसीका खयाल करके मैं यह स्वीकार करता हूँ कि यहाँ मेरे उत्तरका उतना ही महत्त्व है जितना कि सोच-समझकर दी गई किसी भी दलीलका हो सकता है। जिस अर्थमें मैं भारतके रोगका निदान और उपचार जाननेका दावा करता हूँ उस अर्थमें यूरोपके रोगका निदान और उपचार मुझे मालूम नहीं है। यद्यपि यूरोपमें लोगोंको राजनीतिक स्वशासन प्राप्त है फिर भी, मुझे लगता है कि मूलतः यूरोप भी उसी रोगसे ग्रस्त है, जिससे भारत। भारतमें राजनीतिक सत्ताके हस्तान्तरण-मात्रसे मुझे सन्तोष नहीं होगा, यद्यपि ऐसे हस्तान्त-रणको मैं भारतके राष्ट्रीय जीवनके लिए अत्यन्त आवश्यक मानता हूँ। इसमें सन्देह नहीं कि यूरोपके लोगोंको राजनीतिक सत्ता प्राप्त है, किन्तु स्वराज्य नहीं। उनके आंशिक लाभके लिए एशिया और आफ्रिकाकी जनताका शोषण किया जा रहा है, किन्तु उधर वे स्वयं लोकतन्त्रके नामपर शासक वर्ग या शासक जाति द्वारा चूसे जा रहे हैं। इसलिए, मूलतः वे भी उसी रोगसे ग्रस्त जान पड़ते हैं जिसने भारतको जर्जर बना रखा है। अतः ऐसा लगता है कि इसके लिए भी उसी उपचारका प्रयोग किया जा सकता है। यदि तमाम छद्म आवरणोंको हटाकर देखा जाये तो स्पष्ट हो जायेगा कि यूरोपके जनसाधारणका शोषण भी हिंसाके बलपर ही होता है।

अगर जनसाधारण भी हिंसासे काम ले तो इस उपायसे यह रोग कभी दूर नहीं हो सकेगा। जो भी हो, अबतकके अनुभवसे तो यही प्रकट होता है कि हिंसासे प्राप्त सफलता क्षणिक सिद्ध हुई है। इसका परिणाम और भी बड़ी हिंसाके रूपमें प्रकट हुआ है। उपायके तौरपर अबतक तो हिंसाके ही किसी-न-किसी रूपका और मुख्यतः हिंसामें विश्वास रखनेवालोंकी इच्छापर आधारित कृत्रिम अवरोधोंका ही प्रयोग करके देखा गया है। जब परीक्षाकी घड़ी आई है तो स्वभावतः कृत्रिम अवरोध असफल सिद्ध हुए हैं। इसलिए, मुझे लगता है कि अगर यूरोपके जन-साधारणको मुक्ति पानी है तो उसे देर-सबेर अहिंसाकी शरणमें जाना ही होगा। इस बातसे मुझे कोई परेशानी नहीं होती कि उनसे सामूहिक रूपसे और तत्काल इसे अपना लेनेकी आशा नहीं है। विशाल काल-चक्रमें कुछ हजार वर्ष तो एक बिन्दु-मात्र हैं। किसी-न-किसीको अडिग आस्थाके साथ शुरुआत तो करनी ही होती है। मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं कि सर्वसाधारण, यूरोपका सर्वसाधारण भी, इसके प्रति अनुकूल प्रतिक्रिया दिखायेगा, लेकिन जिस दिशामें शीघ्रता करनेकी आवश्यकता है, वह अहिंसाका व्यापक प्रयोग नहीं, बल्कि मुक्तिका क्या अर्थ है, इसका ठीक-ठीक ज्ञान प्राप्त करना है।

आखिरकार वह कौन-सी चीज है, जिससे सर्वसाधारणको मुक्ति पानी है? "शोषण और दुर्दशा"—इस तरहका कोई अस्पष्ट और सामान्य-सा उत्तर देनेसे काम नहीं चलेगा। क्या इसका उत्तर यह नहीं है कि वे लोग उस स्थानपर आसीन होना चाहते हैं, जिसका उपभोग आज पूंजीपति कर रहे हैं? अगर ऐसा हो, तो इसे पानेका एक-मात्र उपाय हिंसा ही है। लेकिन, अगर वे पूंजीवादकी बुराइयोसे बचना चाहते हैं, दूसरे शब्दोमें, अगर वे पूंजीपतियोंके दृष्टिकोणमे परिवर्तन करना चाहते हैं तो वे श्रमके फलके अधिक न्यायोचित वितरणके लिए प्रयत्न करेंगे। यह चीज सहज ही स्वेच्छासे अपनाये गये सन्तोष और सादगीकी ओर संकेत करती है। इस नये दृष्टि-बिन्दुको अपना लेनेके बाद भौतिक आवश्यकताओंकी वृद्धि जीवनका उद्देश्य नही रह जायेगी; इसके बजाय जरूरी सुविधाओको ध्यानमें रखते हुए जहांतक उन आवश्य-कताओंको कम करना सम्भव होगा, वहांतक उन्हे कम करना ही जीवनका उद्देश्य होगा। फिर, हम इस बातकी चिन्ता छोड देंगे कि हम क्या-कुछ पा सकते हैं; और फिर जो-कुछ सबको नही मिल सकता, उसे ग्रहण करनेसे अपना हाथ रोक लेंगे। मुझे लगता है कि यूरोपकी आम जनतासे आर्थिक लाभोंके नामपर भी सफल अनुरोध किया जा सकता है; उसमें कोई कठिनाई नही होनी चाहिए। और ऐसा प्रयोग अगर काफी सफलतापूर्वक किया जा सके तो अनायास ही उससे ऐसे बहुत भारी आध्यात्मिक परिणाम भी जरूर निकलेंगे जिनकी अभी हमें खबर भी नही है। मैं नही मानता कि आध्यात्मिक नियम अपने विशिष्ट क्षेत्रमें ही काम करता है। सच तो यह है कि इस नियमकी अभिव्यक्ति जीवनके सामान्य क्रिया-कलापके माध्यमसे ही होती है। इस प्रकार यह आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक—सभी क्षेत्रोंको प्रभावित करता है। मैंने जो दृष्टिकोण सुझाया है, अगर यूरोपके जनसाधारणको उसे स्वीकार करनेको तैयार किया जा सके तो आप देखेंगे कि इस उद्देश्यको प्राप्त करनेके लिए हिंसा सर्वथा अनावश्यक होगी, और वह अहिंसासे फलित नियमोंपर चलकर अपना प्राप्तव्य प्राप्त कर सकेगा। यह भी हो सकता है कि जो चीज मुझे भारतके लिए इतनी स्वाभाविक और व्यवहार्य प्रतीत होती है वह भारतकी सुषुप्त जनताकी अपेक्षा यूरोपकी जाग्रत जनतामें जल्दी फैल जाये। लेकिन, मुझे अपनी इस स्वीकारोक्तिको एक बार फिर दोहरा देना चाहिए कि मेरी यह पूरी तर्क-श्रृंखला अमुक मान्यताओंपर आधारित है, और इसलिए इसे जरूरतसे ज्यादा महत्त्व नहीं दिया जाना चाहिए।

[अंग्रेजीमे]

यंग इंडिया, ३-९-१९२५

८०. भारत और दक्षिण आफ्रिका

डर्बनमें भारतीयोंकी एक सार्वजनिक सभा हुई थी, जिसकी अध्यक्षता श्री आमद भायातने की थी। उन्होंने निम्नलिखित तार भेजा है:

संघकी संसदमें पेश किये गये एशियाई विधेयकके[1] परिणाम बहुत दूरगामी होंगे। यह विधेयक अन्यायपूर्ण है और भारतीयोंके हितोंके लिए घातक है। इसका मतलब निहित हितोंको मान्यता देनेवाले गांधी-स्मट्स समझौतेको[2] जान-बूझकर भंग करना है। विधेयकमें निवास और व्यापारके लिए क्षेत्र निर्धारित करनेकी व्यवस्था है, और भारतीय इन क्षेत्रोंके भीतर ही सम्पत्ति खरीद अथवा पट्टेपर ले-दे सकते हैं। ग्रामीण क्षेत्रोंमें भारतीय समुद्र तटसे तीस मीलके भीतर ही सीमित रहेंगे; और वहाँ भी क्षेत्र निश्चित किये जा सकते हैं। इसका नतीजा यह होगा कि वर्तमान पट्टोंकी अवधि पूरी होनेपर हजारों भारतीयोंका कारोबार बन्द हो जायेगा। इसका अर्थ है, भारतीयोंका अनिवार्य पृथक्करण और उन्हें अपनी सम्पत्तिसे जानबूझकर वंचित करना। स्पष्ट है कि इसका अन्तिम उद्देश्य भारतीयोंको स्वदेश लौटाना और उनके अधिकारोंका अपहरण करना है। संघमें प्रवेश का वैध अधिकार रखनेवाले भारतीयोंके संघमें प्रवेश करनेका अधिकार गम्भीर खतरेमें है। विधेयकमें कई ऐसी धाराएँ हैं, जिनके बलपर सरकार भारतीयोंको निषिद्ध प्रवासी घोषित कर सकेगी और उन्हें व्यवहारतः उनके अधिवासके अधिकारोंसे वंचित कर सकेगी। केवल तीन वर्षतक संघसे बाहर रहने-भरसे ये अधिकार छिन जाते हैं। अधिवासी भारतीयोंके स्त्री और बच्चे अगस्त १९२५ के बाद पाँच वर्ष हो जानेपर संघमें प्रवेश नहीं कर सकते। तीस-तीस वर्षोंसे यहाँ रहनेवाले हजारों भूतपूर्व गिरमिटिया भारतीय और उनके वंशज निषिद्ध प्रवासी घोषित किये जा सकते हैं और वे अधिवासके अधिकारका दावा नहीं कर सकते। दक्षिण आफ्रिकामें उत्पन्न ऐसे भारतीयोंको, जो संघके किसी प्रान्तके अधिवासी हो गये हैं, अपने जन्मके प्रान्तमें लौटना होगा और वहाँ भी उन्हें पृथक् निर्धारित क्षेत्रमें रहना होगा। यहाँ जन्मे हुए भारतीयोंको भी, यदि संघकी आवश्यकताओंको देखते हुए अनुपयुक्त माना जाये, तो निषिद्ध प्रवासी घोषित किया जा सकता है। संघमें ये

१. यह क्षेत्र-निर्धारण और प्रवास तथा पंजीयन (अतिरिक्त धारा) विधेयक संघीय संसदमें जुलाई, १९२५ में पेश किया गया था। इस विधेयकका उद्देश्य एशियाइयोंपर यह प्रतिबन्ध लगाना था कि वे कुछ विशेष स्थानोंको छोड़कर अन्यत्र भूमि न प्राप्त कर सकें। देखिए "टिप्पणियाँ", ६-८-१९२५ का उपशीर्षक 'साम्राज्यके परिया'।

२. देखिए खण्ड १२।

निषिद्ध भारतीय अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति और निहित अधिकार खो बैठेंगे और उन्हें वहांसे निकाल बाहर किया जायेगा। . . . हमें भरोसा है कि आप भारतमें प्रबल लोकमत उत्पन्न करके भारत सरकारको जाग्रत करेंगे, ताकि वह हमारी रक्षाके लिए संकल्पपूर्वक कदम उठाये। भारतीय जातिके अपमानका भारतको समुचित ढंगसे विरोध करना चाहिए। यह अपमान अकारण है और हम उसपर अत्यन्त तीव्र और प्रबल रूपमें रोष प्रकट करते हैं। हम आपसे अनुरोध करते हैं कि आप भारत-सरकारपर जोर डालें और उससे तत्काल अपना रुख सार्वजनिक रूपसे व्यक्त करनेको कहें, क्योंकि सब सम्बन्धित लोग उसकी निष्क्रियताका गलत अर्थ निकाल सकते हैं।

यद्यपि यह तार अखबारोंमें प्रकाशित किया जा चुका है, फिर भी इसे यहाँ पुन. प्रकाशित करना उपयोगी ही होगा। मुझे उस गजटकी भी एक प्रति मिली है, जिसमें इस विधेयकका पूरा पाठ दिया गया है। यह विधेयक बहुत बड़ा है; इसमे तीन अध्याय, २७ खण्ड और एक अनुसूची भी है। वह ठसकर छपे हुए फुलस्केप आकारके ९ पृष्ठोंमें आया है। मैं इस विधेयकको नही छाप रहा हूँ क्योकि इस विधेयकका कई पिछले कानूनोंसे भी सम्बन्ध है, जिन्हे इसमें या तो संशोधित किया गया है या रद, और इन कानूनोंकी जानकारीके बिना यह विधेयक पाठकोंकी समझमें नही आ सकता। इतना कह देना पर्याप्त है कि इस विधेयकमें जिन प्रतिबन्धोंको लागू करनेका प्रयत्न किया गया है, उनका सार तारमें पूर्ण रूपसे आ जाता है। यह विधेयक वहाँ रहनेवाले भारतीयोंकी स्थिति इतनी खराब बना देता है कि कुछ ही वर्षोंमे दक्षिण आफ्रिकामें एक भी भारतीय प्रवासी नही बच रहेगा और सघ सरकारको उन्हें उनके निष्कासनके लिए कोई मुआवजा भी नही देना पडेगा। यदि विधेयककी धाराओंको पूरी कठोरताके साथ लागू किया गया तो प्रशासनको ऐसे अधिकार मिल जायेंगे जिनके बलपर वह सब-कुछ करनेके बावजूद प्रत्येक भारतीयको उस देशके लिए बिलकुल अयोग्य बना छोड़ेगा, जिसे उसने अपना घर बना लिया है, यहांतक कि जहाँ उसका जन्म भी हुआ है। कारण, इस विधेयकमें जो भारतीय दक्षिण आफ्रिकामें ही जन्मे हैं, और जो यहांके अधिवासी हो गये हैं उनके बीच कोई अन्तर नही किया गया है। विधेयकमें जिन संरक्षणोंकी व्यवस्था है वह थोथी है और उसे सर्वथा निरर्थक बनाया जा सकता है। यह कोई तसल्लीकी बात नही है कि विधेयक अभी कानून नहीं बना है। इस विधेयकसे प्रकट होता है कि सघ सरकारने भारतीयोंको भूखों मारकर दक्षिण आफ्रिकासे खदेड़ देनेका निश्चय कर लिया है। श्री मलानने[1] यह बात बिलकुल स्पष्ट कर दी है। अब तो किसी-न-किसी दिन सभी भारतीयोंको दक्षिण आफ्रिकासे निकलना ही है। पाठकोंको याद होगा, यदि नही तो वे जान लें कि जो चीनी मजदूर जोहानिसबर्गकी सोनेकी खानोंके कामके लिए लाये गये थे, सरकारने जैसे ही निश्चय किया, तुरन्त वापस भेज दिये गये। चीनियोंकी एक नही सुनी गई। यदि भारत-सरकार अपना कर्त्तव्य पूरा नही करती तो यही दशा भारतीयोंकी भी

१. एफ० एस० मलान, केपटाउनसे चुने गये संघीय संसदके सदस्य।

होगी। श्री भायातने हमसे दर्दनाक अपील की है। जहाँतक लोकमतका सम्बन्ध. है, वह पूरी तरहसे भारतीय प्रवासियोंके पक्षमें है। किन्तु दुर्भाग्यसे यह लोकमत प्रभावहीन है। लेकिन वह जैसा कुछ है, १९१४ में दक्षिण आफ्रिकावासी भारतीयोंके तत्कालीन अधिकारोंकी सुरक्षाके लिए किये गये समझौतेकी पूरी उपेक्षा करके उस देशमें रहनेवाले हमारे देशभाइयोंको लूटनेके आसन्न विनाशको रोकनेके लिए उसे गति तो दी ही जायेगी।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ३-९-१९२५

८१. देशबन्धु स्मारक

बंगालसे मैं बहुत भारी मनसे विदा ले रहा हूँ। इतने दिनसे यहाँ रहते हुए मुझे ऐसा लगने लगा था कि मैं बंगालका ही हूँ। अब श्रीमती बासन्ती देवीके यहाँ उनके दर्शनार्थ नित्य न जा सकूँगा और न उन बंगालियोंके हँसमुख चेहरोंको देख सकूँगा जो रोज चन्दा देनेके लिए मेरे पास भिन्न-भिन्न स्थानोंसे आया करते थे। मुझे इन सबकी याद बहुत आयेगी। मैं जानता हूँ कि यदि हम १० लाख पूरा नही कर पाये हैं तो उसका कारण देशबन्धुकी स्मृतिके प्रति श्रद्धाकी कमी या बंगालियोंके हृदयोंमें इच्छाका अभाव नही, बल्कि हमारे संगठनकी त्रुटियाँ हैं और ये त्रुटियाँ किसी एक जगह नही, सब जगह हैं। यदि बंगालके गाँव-गाँवमें हम पहुँच पाते तो सारी रकम कभीकी पूरी हो जाती। फिर भी जितना इकट्ठा हो चुका है— ७,७४,१६५ रु० १० आना ५।। पाई — वह बंगालके लिए कोई नामोशीकी बात नही है। मैंने एक मोटा तखमीना लगवाया है, जिससे मालूम होता है कि १,४०,००० रुपयेसे कुछ अधिक बंगालमें रहनेवाले मारवाड़ियोंने दिया; लगभग ६०,००० बंगालमें रहनेवाले गुजरातियोंने और शेष बंगाल-निवासियों तथा अन्य प्रान्तोंमें रहनेवाले बंगालियोंने दिया है; इस रकममें वे छोटी-मोटी रकमें भी शामिल हैं जो अन्य प्रान्तोंसे आई हैं। जिस उद्देश्यसे यह कोष एकत्र किया गया है उस उद्देश्यको पूरा करनेकी जिम्मेवारी अब कोषके कर्ता-धर्ता लोगोंकी है।

लेकिन अखिल भारतीय देशबन्धु स्मारक कोषके संग्रहका काम अभी शेष ही है। उगाहीके लिए अभी संगठित प्रयत्न शुरू नही किया गया है। पंडित जवाहरलाल नेहरूने २३ अगस्ततक उगाहे गये चन्देकी एक सूची प्रकाशित की है। कुल २,००२ रुपया ८ आना ६ पाई इकट्ठा हो चुका है। यह सूची पाठकोंको काफी रोचक लगेगी, इसलिए उसे नीचे दे रहा हूँ।[1]

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ३-९-१९२५

१. यहाँ नहीं दी जा रही है।

८२. पत्र: वि० ल० फड़केको

भाद्रपद वदी १ [३ सितम्बर, १९२५][1]

भाई मामा,[2]

तुम्हारा पत्र मिला, तुम निश्चिन्त भावसे वल्लभभाईके पास बैठकर जैसा ठीक लगे, वैसा बजट बनाओ। उसका पास कराया जाना तो जरूरी होगा ही। अगर तुम संघमें[3] बने ही रहना चाहते हो तो फिर तुम्हें निकाल कौन सकता है? मैं ५ तारीखको आश्रममें[4] पहुँचूंगा। ९ तक वहाँ रहूँगा। समिति[5] आश्रमके[6] सम्बन्धमें जो जानकारी चाहे दे देना। दस्तावेज मुझे भेज दिया गया है, ऐसा लिख कर दे सकते हो।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (जी० एन० ३८१) की फोटो-नकलसे।

८३. भेंट: 'बॉम्बे क्रॉनिकल' के प्रतिनिधिसे

[३ सितम्बर, १९२५]

महात्मा गांधी कल सुबह बम्बई पहुँच गये। विक्टोरिया टर्मिनस स्टेशनपर श्रीमती सरोजिनी नायडू और अन्य अनेक मित्रोंने उनकी अगवानी की। हमेशाकी तरह वे लैबर्नम रोड, गामदेवीमें रेवाशंकर जगजीवनके घर ठहरे हैं। 'क्रॉनिकल' के प्रतिनिधिने . . . महात्माजीके अपने निवास-स्थानपर पहुँचते ही उनसे भेंट करनेकी अनुमति माँगी।

हमारे प्रतिनिधिने सबसे पहले उनसे अपनी बंगाल-यात्राके मुख्य अनुभव बतानेका अनुरोध किया। इसपर उन्होंने कहा, सबसे महत्त्वपूर्ण चीज तो खद्दर है, और मैंने देखा कि कुल मिलाकर बंगालमें भी खद्दरके प्रति उतना ही उत्साह है और खद्दरके कार्यक्रमको क्रियान्वित करनेके लिए काम करनेकी उतनी ही इच्छा है जितनी

१. पत्रमें गांधीजीके ५ को आश्रम पहुँचने और ९ को वहाँसे प्रस्थान करनेका उल्लेख है। इन दोनों तिथियोंसे ऐसा लगता है कि इनका सम्बन्ध १९२५ से ही है, क्योंकि उसी वर्ष सितम्बरको गांधीजी आश्रम पहुँचे थे और ९ को वहाँसे बिहारके लिए रवाना हो गये थे।

२. विट्ठल लक्ष्मण फड़के; ये 'मामा' उपनामसे प्रसिद्ध हैं।

३. तात्पर्य शायद अस्पृश्यता निवारण संघसे है।

४. सत्याग्रह आश्रम, साबरमती।

५. तात्पर्य शायद गुजरात प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीसे है।

६. गुजरात स्थित गोधराका अन्त्यज आश्रम, जिसके प्रबन्धक वि० ल० फड़के थे।

दूसरे किसी प्रान्तमें है। बल्कि वह इससे भी ज्यादा करके दिखा सकता है। यह पूछनेपर कि बंगालके स्वराज्यवादियोंको उनकी विधान परिषद् सम्बन्धी कार्यनीतिके बारेमें आपने क्या सलाह दी है या आप क्या सलाह देना चाहेंगे, उन्होंने जवाब दिया कि मैंने तो उन्हें इतनी ही सलाह दी है कि वे पण्डित मोतीलाल नेहरूके नेतृत्वमें काम करें। अबतक गांधीजीने अपनी तकली निकालकर कातना शुरू कर दिया था।

अगला प्रश्न था: "देशमें वर्तमान निष्क्रियताकी स्थितिको दूर करनेके लिए आप क्या उपाय बतायेंगे?" उन्होंने बड़े प्यारसे अपनी तकलीकी ओर देखा और उसपर एक महीन लम्बा तार निकालते हुए और प्रफुल्ल मुस्कानके साथ कहा:

उपाय तो मैं बता ही चुका हूँ। कातो, कातो, कातो, तबतक कातते जाओ जबतक निष्क्रियता दूर न हो जाये। मैंने यही उपाय सुझाया है और जबतक कोई दूसरा या वैकल्पिक उपाय सुझाकर इसके मुकाबले उसका औचित्य सिद्ध नहीं कर दिया जाता तबतक इसी उपायसे काम लेना होगा।

हमारे प्रतिनिधिने इस बातकी ओर ध्यान आकृष्ट किया कि कई स्थानोंपर, विशेषतया महाराष्ट्रमें ग्राम पंचायतें बनानेका सुझाव रखा गया है और यह सुझाव भी दिया गया है कि खादीप्रचारके लिए सहकारी समितियाँ बनाई जायें, जो ग्राम-संस्थाओंके साथ मिलकर काम करें।

गांधीजीने कहा:

जहाँ उनका पूर्ण आत्म-निर्भरताकी भावनासे सुचारु संचालन सम्भव हो सके, वहाँ तो उनको गठित करना बिलकुल ठीक है। जहाँ आत्म-निर्भर बननेकी भावना है अगर वहाँ अभीतक कोई दूसरा संगठन नहीं है तो मैं समझता हूँ कि ऐसा संगठन वहाँ अच्छा ही रहेगा। पर मुझे डर इस बातका है कि कहीं ऐसा न हो कि इनमें से बहुत-सी संस्थाएँ लोगोंको अधिकारियों या उनके कारिन्दोंपर निर्भर बनानेका एक और साधन बन जायें। समस्त राष्ट्रको एकताके सूत्रमें बाँधने और उसमें शक्तिका संचार करनेके लिए हमें आवश्यकता है किसी ऐसे एक सर्वथा मान्य धन्धेकी, जिसे सभी बिना किसी दूसरेकी सहायताके कर सकें और वह धन्धा है सार्वजनिक कताई।

इसके बाद उनसे पूछा गया, "क्या आपको हिन्दू-मुस्लिम तनावके कम होनेके कोई आसार — कोई छिटपुट आसार भी — नजर आते हैं?"

उन्होंने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया:

नहीं, स्थिति बदतर ही होती जा रही है, लेकिन एक अवस्था ऐसी आयेगी जब उसमें सुधार अवश्य होगा। मुझे डर है कि इस बढ़ते हुए तनावका अन्त कहीं किसी भारी विस्फोटके रूपमें न हो; वैसे हम कोशिश तो यही करेंगे कि विस्फोट होनेपर भी हिंसा यथासम्भव कम हो। पर उसके बाद प्रतिक्रिया यही होगी कि दोनों जातियाँ एक हो जायेंगी। यदि इस बीच लोग किसी सर्वसामान्य रचनात्मक कार्यक्रममें लगे रहें तो विस्फोटके दौरान हिंसा-वृत्ति कुछ दबी रहेगी और साथ ही जब एकता स्थापित होगी तब इससे वह अधिक सुदृढ़ बनेगी।

आपके अनुसार कांग्रेसको लॉर्ड बर्कनहेडको क्या जवाब देना चाहिए? इसके उत्तरमें गांधीजीने छूटते ही कहा :

मैंने जो दिशा सुझाई है, उस दिशामें और भी ज्यादा काम करना और तेजीसे काम करना।

हमारे प्रतिनिधिने पूछा, "हम ऐसा क्यों न करें कि उनकी बात मानकर मजे-मजेमें उनके सामने एकाएक स्वराज्यकी योजना पेश करके उन्हें चकित कर दें।

यदि उन्होंने यह प्रस्ताव हमारे सामने खिलाड़ीकी सच्ची मनोभावनासे रखा होता तो हम उसे स्वीकार कर सकते थे, लेकिन चूँकि उनमें हृदय-परिवर्तनका कोई सच्चा लक्षण नहीं दिखाई देता, इसलिए मुझे तो यही लगता है कि हमारी किसी योजनापर विचार करनेका उनका प्रस्ताव हमें फँसानेके लिए एक जाल साबित हो सकता है और मुझे तो उसमें फँसना मंजूर नहीं।

यह पूछनेपर कि क्या आप प्रतिनिधि नेताओंका एक ऐसा सम्मेलन नहीं बुलायेंगे जो सब दलोंमें एकता स्थापित करनेके उपायोंपर पुनः विचार करे, उन्होंने उत्तर दिया :

इसका उत्तर तो मैं बहुत पहले दे चुका हूँ। इस विषयपर आजके 'यंग इंडिया' में भी मैंने विचार किया है।[1] अनौपचारिक रूपसे प्रयत्न तो किये ही जा रहे हैं, पर अभी बाकायदा एक सम्मेलन बुलानेका समय नहीं आया है। इस समय निःसन्देह हर दल एकता चाहता है, पर अपनी-अपनी शर्तोंपर। ऐसी हालतमें कोई सम्मेलन सफल नहीं हो सकता। ज्यों ही मुझे लोगोंमें देशकी वर्तमान जरूरतोंके आगे अपने व्यक्तिगत या दलगत विचारोंकी परवाह न करनेकी एक आम प्रवृत्ति दिखाई देगी त्यों ही मैं सबसे आगे बढ़कर ऐसा सम्मेलन बुलाऊँगा।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, ४-९-१९२५

८४. सन्देश : दादाभाईकी शताब्दीके अवसरपर

दादाभाईको हम भारतका पितामह कहा करते थे; वे इस आदरपूर्ण सम्बोधनके पात्र भी थे। भारतके जनसाधारणकी घोर गरीबीकी समस्याकी ओर पहले-पहल दादाभाईने ही हमारा ध्यान आकृष्ट किया। भारतीय जनताकी गरीबी बढ़ती ही जा रही है, इस तथ्यका उद्‌घाटन करके मानो उन्होंने वर्तमान शासन पद्धतिकी बुराईकी जड़को ही प्रकट कर दिया। इसलिए मेरे विचारसे तो उनकी आगामी शताब्दीको मनानेका सबसे अच्छा तरीका यही होगा कि गरीबीकी समस्याको दूर करनेके लिए हम कुछ ठोस प्रयत्न करें। यह बुराई सन्तोषजनक ढंगसे तभी दूर की जा सकती है जब हम सब चरखे और खद्दरको अपना लें। इसीलिए मैंने निःसंकोच भावसे यह सुझाव दिया है कि उनकी शताब्दी मनानेके लिए हम चरखा और खद्दरके लिए चन्दा

१. देखिए 'टिप्पणियाँ' ३-९-१९२५का उपशीर्षक 'सब दलोंको क्यों नहीं निमंत्रित कर रहा हूँ?'।

इकट्ठा करें, खादी प्रदर्शनियोंका आयोजन करें, खादीकी फेरी लगायें, हर शोभनीय ढंगसे खादी और चरखेके कामको, दूसरे शब्दोंमें असंख्य गरीबोंके हित साधनके कामको, आगे बढ़ायें।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, ४-९-१९२५

८५. भेंट: 'फॉरवर्ड' के प्रतिनिधिसे[1]

बम्बई

४ सितम्बर, १९२५

आज सुबह महात्मा गांधीने 'फॉरवर्ड' के लिए दी गई एक विशेष भेंटमें बंगाल और स्वराज्यवादी दलकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। यह पूछनेपर कि क्या देशबन्धुके निधनसे स्वराज्यदल कमजोर पड़ गया है, महात्माजीने उत्तर दिया:

जिस दल अथवा संस्थासे देशबन्धु-जैसे व्यक्तिका सम्बन्ध हो, वह दल अथवा संस्था उनके निधनसे कमजोर तो होगी ही। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि यह दल ही अब नहीं रहेगा। इसके विपरीत अभीतक दलने देशबन्धुके प्रति असाधारण वफादारी दिखाई है और उनकी इच्छाओंका भरसक पालन किया है।

क्या डा० सुहरावर्दीके त्यागपत्र देनेका दलपर कुछ प्रतिकूल प्रभाव हुआ है?

खुद मुझे तो ऐसा नहीं लगता।

महात्माजी, क्या आपकी रायमें श्री पटेलका[2] केन्द्रीय विधानसभाका अध्यक्ष निर्वाचित होना और पण्डितजी द्वारा स्कीन समितिकी[3] सदस्यता स्वीकार करना स्वराज्यवादी दलके सिद्धान्तोंसे संगत है?

मुझे इन दो मे से कोई भी बात स्वराज्यवादी दलके सिद्धान्तोंसे असंगत नहीं दिखाई देती। जिस दलका बल बढ़ रहा हो या जो दल अपना बल बढ़ाना चाहता हो, उसके लिए अपने-आपको परिस्थितिके अनुकूल ढालना आवश्यक है। मेरे विचारमें पण्डितजीका स्कीन समितिकी सदस्यता स्वीकार करना और श्री पटेलका निर्वाचन बहुत सही कदम है।

[अंग्रेजीसे]

फॉरवर्ड, ५-९-१९२५

१. इस भेंटमें पूछे गये कुछ प्रश्न और गांधीजी द्वारा दिये उनके उत्तर ३ सितम्बर, १९२५ को **बॉम्बे क्रॉनिकल**को दी गई भेंट (देखिए 'भेंट: बॉम्बे क्रॉनिकलके प्रतिनिधिसे', ३-९-१९२५) के प्रश्नोत्तरोंसे मिलते हैं, इसलिए उन्हें यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

२. विठ्ठलभाई पटेल।

३. इस समितिके अध्यक्ष सर एन्ड्रयू स्कीन थे और यह इस बातपर विचार करनेके लिए बनाई गई थी कि भारतमें सैनिक विद्यालय खोलना वांछनीय है अथवा नहीं। दिल्लीमें विधान सभा द्वारा पारित एक प्रस्तावमें एक ऐसे विद्यालयकी स्थापनाकी माँग की गई थी।

८६. भाषण: दादाभाईकी शताब्दीके अवसरपर[1]

४ सितम्बर, १९२५

महात्मा गांधीने कहा, मैं भारतके पितामह दादाभाई नौरोजीका सच्चा पुजारी हूँ। जो व्यक्ति अपने कर्त्तव्यका पालन करे और उसका पालन करनेमें प्राण दे दे, उसका नाम कभी मिट नहीं सकता। यद्यपि दादाभाई आज शारीरिक रूपसे हमारे बीच नहीं हैं और हम उनकी मधुर आवाज भी नहीं सुन सकते, फिर भी उनकी आत्मा हमारे बीच विद्यमान है। जैसे-जैसे समय बीतता जा रहा है, उनका नाम हमें और भी प्रिय होता जा रहा है और वह हमारे दिलोंमें और भी गहरा उतरता जा रहा है। उनके चरणोंमें बैठकर कुछ बातचीत करनेका अवसर मुझे १८८८ में मिला था। आजकी तरह उन दिनों भी मैं समाचारपत्र नहीं पढ़ता था, फिर भी मैंने उनका नाम सुन रखा था। एक दाक्षिणात्य सज्जनने, मुझे उनके नाम एक परिचय-पत्र दिया था, यद्यपि दादाभाईसे स्वयं उनकी जान-पहचान भी नहीं थी। इंग्लैंड पहुँचनेपर एक दिन मैं यह पत्र लेकर उनके पास गया। दादाभाई पत्र-लेखकसे परिचित नहीं थे, फिर भी उन्होंने मुझे हृदयसे लगा लिया और कहा, "यदि तुम्हें किसी प्रकारकी कठिनाई हो तो मेरे पास आ जाना। दादाभाई इंग्लैंडमें जीवनका आनन्द लूटने, कोई खेल-तमाशा करने या नाटक-वाटक देखनेके लिए नहीं, बल्कि भारतकी सेवा करनेके लिए रह रहे थे। वे वहाँ बहुत-से भारतीय विद्यार्थियोंकी देख-रेख और उनके अभिभावकका काम करते थे। लेकिन यदि उन्होंने सिर्फ इतना ही किया होता तो भारतके लोग, भारतकी जनता उन्हें इस तरह याद न करती। उन्होंने और भी बहुत-कुछ किया। दादाभाई खुद कभी गाँवोंमें नहीं रहे थे, परन्तु उनके विशाल हृदयमें गरीब ग्रामवासियोंके लिए पूरा स्थान था। उनके हृदयमें न केवल सभी भारतीय जातियोंके लिए स्थान था, बल्कि गरीबसे-गरीब भारतीयके लिए भी पूरी जगह थी। वे जानते थे कि हमारे ग्रामवासी मूक हैं और इसलिए वे चाहते थे कि देशके शासक मूक किसानोंकी आवाज सुनें। उन्हें मालूम था कि इन किसानोंको दिनमें एक बार भी भरपेट भोजन नहीं मिलता -- घी और दूध-जैसी चीजोंकी तो बात ही क्या? दादाभाईने आजसे ३०-४० वर्ष पहले जो बात कही थी, वह आज भी सच है। वे जानते थे कि जबतक अधिकांश भारतीय नर-कंकाल हड्डियोंके ढाँचे मात्र बने हुए हैं तबतक वे कुछ भी नहीं कर सकते। इंग्लैंडमें दादाभाईके पास दफ्तरका काम करनेके लिए एक छोटा-सा कमरा था, और वे वहाँ भारतकी सेवामें लीन योगीकी तरह रहते थे।

१. बम्बईकी तेरह प्रमुख स्थानीय संस्थाओंके प्रतिनिधियों द्वारा कावसजी जहाँगीर हॉलमें आयोजित इस सभाकी अध्यक्षता गांधीजीने की थी। सरोजिनी नायडू और शौकत अलीने भी इसमें भाषण दिया था।

उन्होंने कहा, मैं दादाभाईका सच्चा पुजारी हूँ और अगर मेरे देवतामें कुछ दोष भी रहे हों तो उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। आप सब इस सभामें दादाभाईके प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करने आये हैं, पर आपमें से कितने लोग सचमुच ऐसा करना चाहते हैं? दादाभाईने मुझे दो बातें सिखाई थीं: पहली तो यह कि अपने देवताको अपना पूरा स्नेह, अपनी पूरी श्रद्धा दो, पूरे मनसे उसकी पूजा करो और दूसरी यह कि अगर भारतकी सेवा करना चाहते हो तो गरीबोंकी सेवा करो। गरीबोंकी सेवा स्वयं सबसे गरीब, सबसे अदना आदमी बनकर, भारतमें रहनेवाली सभी जातियोंके साथ एकात्म होकर हिन्दू, मुसलमान और पारसी बनकर ही की जा सकती है। दादाभाईके लिए सभी भारतीय समान थे। दादाभाई स्वयं कट्टर पारसी थे, पर वे दूसरी जातियोंको नापसन्द नहीं करते थे। वे तो अंग्रेजोंका भी आदर करते थे। उन्होंने यह कभी नहीं कहा कि दुनियाके हिताहितको भूलकर भारतको महान् बनना है। वे तो संसारकी भलाईके लिए भारतके हितोंका भी बलिदान करनेको तैयार रहते थे। पर ऐसा करनेके लिए राष्ट्रका स्वतन्त्र होना जरूरी था, और वे जानते थे कि एक गुलाम राष्ट्र कुछ नहीं कर सकता। इस प्रकार अपने श्रेष्ठ जीवन द्वारा वे स्वतन्त्रता और स्वाधीनताकी देवीकी पूजा करते रहे। कहते हैं, एक तुच्छ फूलकी भेंटसे भी ईश्वर प्रसन्न हो जाता है। इससे प्रकट होता है कि यदि हम सच्चे दिलसे उसे प्रसन्न करना चाहें तो यह कितना सरल है। दादाभाईकी शताब्दी मनानेका सबसे अच्छा तरीका यह है कि हम देश-सेवाके लिए प्रतिज्ञा करें। मैं आपसे यह नहीं कहता कि आप दादाभाईके चरण-चिह्नोंपर ही चलें, मैं तो यह कहता हूँ कि आप ऐसे काम करें, जिनसे उनकी आत्मा प्रसन्न हो। जो व्यक्ति निश्छल और सच्चे मनसे भारतकी अनवरत सेवा कर सकता है, वह सदैव हमारे आदरका पात्र रहेगा, और भारतकी ऐसी सेवा करना ही दादाभाईकी शताब्दी मनानेका एक-मात्र तरीका है। (हर्षध्वनि)

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, ७-९-१९२५

८७. गोरक्षा

ज्यों-ज्यों मैं गोरक्षाकी समस्याका अध्ययन करता हूँ त्यों-त्यों उसका महत्त्व मेरी समझमें अधिक आता जाता है। हिन्दुस्तानमें गोरक्षाका प्रश्न दिन-ब-दिन गम्भीर होता जायेगा, क्योंकि उसमें देशकी आर्थिक स्थितिका प्रश्न छिपा हुआ है। मैं तो ऐसा मानता हूँ कि धर्म-मात्रमें आर्थिक, राजनीतिक इत्यादि विषयोंका समावेश है। जो धर्म शुद्ध अर्थका विरोधी है, वह धर्म नहीं है; जो धर्म शुद्ध राजनीतिका विरोधी है, वह धर्म नहीं है। दूसरी ओर धर्म-रहित अर्थ त्याज्य है। धर्म-रहित राजसत्ता आसुरी है। अर्थ आदिसे अलग धर्म नामकी कोई वस्तु नहीं है। व्यक्ति अथवा समाज धर्मके सहारे जीवित रहता है, और अधर्मसे नष्ट होता है। सत्यके सहारे किया अर्थ-संग्रह अर्थात् व्यापार प्रजाका पोषण करता है। सत्यासत्यके विचारसे रहित व्यापार प्रजाका नाश करता है। इस बातके अनेक दृष्टान्त दिये जा सकते हैं कि असत्यसे, छल-कपटसे अर्जित लाभ क्षणिक है और अन्तमें वह हानिकारक ही है।

इसलिए गोरक्षाके धर्मका विचार करते हुए हमको अर्थका विचार करना ही पड़ेगा। यदि गोरक्षा शुद्ध अर्थके विरोधमें हो तो उसका त्याग किये बिना चारा नहीं है। सच तो यह है कि उस स्थितिमें हम यदि गोरक्षा करना चाहेंगे तो भी वह असम्भव सिद्ध होगी।

गोरक्षाके अन्दर छिपे अर्थ-लाभका विचार हमने नहीं किया, इसीसे जिस देशके असंख्य लोग गोरक्षाको धर्म मानते हैं, उसी देशमें गाय और गोवंश भूखों मर रहा है। उनकी हड्डी-हड्डी बाहर निकली रहती है — ऐसी कि गिनी जा सकें। और उनका वध केवल हिन्दुओंकी लापरवाहीके कारण ही होता है। गोरक्षामें हिन्दुस्तानकी खेतीका अस्तित्व भी समाहित है। यदि हिन्दू-मात्र गोरक्षाका अर्थशास्त्र समझ लें, तो गोहत्या बन्द हो जाये। जितनी गायोंकी हत्या धर्मके नामपर होती है, उससे सौगुना अधिक गायोंकी हत्या हिन्दुओंकी मूर्खताके कारण होती है। जबतक हिन्दू खुद गोरक्षाका शास्त्र न समझेंगे तबतक करोड़ों रुपया खर्च करनेपर भी गायकी रक्षा होनेवाली नहीं है।

गुजरातके बनिये, भाटिये और मारवाड़ी गोरक्षाका प्रयत्न करते हैं। वे उसके लिए खूब धन खर्च करते हैं। उनमें भी इस कार्यके लिए सबसे ज्यादा उत्साह मारवाड़ी दिखाते हैं। हिन्दुस्तानमें सबसे ज्यादा गोशालाएँ मारवाड़ी व्यापारी ही चलाते हैं। वे उसमें लाखों रुपये खुशीसे देते हैं। और इसीसे मैंने कहा है कि मारवाड़ियोंके बिना गोरक्षाका प्रश्न हल नहीं हो सकता। मैंने गोशालाएँ देखी हैं। किन्तु उनमें से एक भी गोशालाके विषयमें मैं यह नहीं कह सकता कि यह आदर्श गोशाला है।

ये विचार कलकत्तेकी लिलुआकी गोशाला देखनेसे उत्पन्न हुए हैं। इस गोशालापर हर वर्ष ढाई लाख रुपये खर्च होते हैं। किन्तु उससे जो लाभ मिलता है, वह नहीं के बराबर कहा जा सकता है। जिसे हर वर्ष ढाई लाख रुपये मिलते हैं, उस

गोशालामें हर साल कमसे-कम दस हजार नये जानवर तैयार होने चाहिए। इस संस्थामें तो इतने जानवर पलते भी नहीं हैं। इसमें संचालकोंका दोष नहीं है और न वे कोई धोखा-धड़ी ही करते हैं। जो मन्त्री मुझे यह संस्था दिखाने ले गये, वे संस्थाकी यथाशक्ति सेवा कर रहे हैं। किन्तु यहाँ पद्धतिका दोष है। हममें ऐसी संस्थाओंके संचालनके ज्ञानका अभाव है। इसीसे लोगोंको ऐसी संस्थाओंसे पूरा लाभ नहीं मिलता।

हमारे यहाँ धर्म-कार्यमें व्यवहार-कुशलताकी आवश्यकता नहीं मानी जाती। ऐसी संस्थाके संचालक यदि खुद पैसा नहीं खाते, तो इतने से ही यह मान लिया जाता है कि संस्था ठीक चल रही है। किसी भी ऐसे व्यापारिक कार्यमें जिसमें हर साल ढाई लाख रुपयेकी पूंजी लगाई जाती हो, अच्छेसे-अच्छे वैतनिक कर्मचारी रखे जाते हैं, किन्तु यहाँ तो अपने निजी कामकाजमें लगे व्यापारी लोग सेवा-भावसे अपना थोड़ा समय इस संस्थाको दे देते हैं। इस तरह अपना समय देनेवाले धन्यवादके पात्र हैं। किन्तु इससे गोमाताकी रक्षा नहीं हो जाती। गोमाताकी रक्षाके लिए तो कार्यदक्ष मनुष्योंका एक-एक क्षण इसी कार्यको मिलना चाहिए; और अपना एक-एक क्षण या तो ज्ञानवान, तपस्वी और त्यागी ही दे सकते हैं, या फिर कार्यकुशल भोगी लोग उचित वेतन लेकर। धार्मिक दृष्टिसे दान करनेवाले लोग भले ही कार्यकुशल न हों, किन्तु जो धर्मार्थ संस्थाओंको चलाते हैं, उनमें तो व्यापारीसे भी ज्यादा, कुशलता, उद्यम इत्यादि होने चाहिए। व्यापारियोंके लिए जो नीति-नियम होते हैं, वे सब धर्मार्थ संस्थाओंपर भी लागू होने चाहिए। गोशालाएँ यदि व्यापारिक दृष्टिकोणसे चलाई जायें तो उनमें उस शास्त्रका विशेष ज्ञान रखनेवाले लोग काम करेंगे, और वे नित्य नये प्रयोग करके अधिकाधिक गायोंकी रक्षा करेंगे — गोशालामें पशु-पालनके, दूधकी स्वच्छताके, दूध बढ़ानेके अनेक प्रयोग करेंगे और यह तो स्पष्ट ही है कि पशु-पालनका जो ज्ञान गोशालाके द्वारा मिलता है, वह और कहीं नहीं मिल सकता। किन्तु गोशाला एक धर्मार्थ संस्था है, इसलिए वह चाहे जैसे ढंगसे चलती रह सकती है, उसकी कोई फिक्र ही नहीं करता! वेदकी पाठशालामें यदि वेदोंका ज्ञान कमसे-कम मिले तो जिस प्रकार यह वेदोंकी अवमानना है, वैसी ही हालत वर्तमान गोशालाओंकी भी है।

लिलुआकी गोशालाके लिए जो जगह चुनी गई है, उसके उपयुक्त होनेके विषयमें मुझे सन्देह है। मुझ-जैसा गोशाला-शास्त्रसे अनभिज्ञ व्यक्ति भी कह सकता है कि वहाँकी इमारतें ठीक नहीं हैं। वहाँ दूध इत्यादिकी परीक्षा करनेका कोई साधन नहीं है। यह भी कोई नहीं जानता कि गायें अभी जितना दूध दे रही हैं, उसमें कोई वृद्धि हो सकती है या नहीं। ऐसा मालूम होता है मानो यह संस्था मालिकके होते हुए भी बिना मालिककी है। संस्थाके संचालकोंको मेरी तो यह सलाह है कि वे गोशाला संचालनके शास्त्रज्ञोंकी सलाहसे वेतन देकर कुशल लोगोंके द्वारा अपना कार्य करें। गोशालामें पशुओं और साँड़ोंका पालन, वधिया करनेकी क्रियामें सुधार, पशुओंकी खुराक, उसके बोनेके साधन, दूध दोहनेकी स्वच्छ क्रिया, चमड़ा उतारकर उसे साफ करनेकी क्रिया — इन बातोंका ज्ञान प्राप्त होना चाहिए। इस

विषयमें जबतक उदासीनता रहेगी, तबतक यही समझना चाहिए कि गोशालाका पूरा उपयोग सम्भव नहीं है। एक भी गाय या बैलका असमयमें मरना या उसका बाहर भेजा जाना हमारे लिए शर्मकी बात है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि गोशालाओंकी मार्फत यह काम सहज ही साधा जा सकता है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ६-९-१९२५

८८. भाषण : मजदूर-संघके स्कूलोंकी सभामें[1]

६ सितम्बर, १९२५

मैंने आपके कार्यकी रिपोर्ट सुनी। इसके लिए मैं आपको बधाई देता हूँ। अपनी यात्राओंमें मैं स्कूलोंकी प्रवृत्ति भी देख लेता हूँ। कहाँ किस-किस वर्णके बालक पढ़ते हैं और उन्हें किस तरहकी शिक्षा दी जाती है, सो देखता हूँ। जितनी सुव्यवस्था मैंने इन स्कूलोंमें देखी है, उतनी और कहीं नहीं देखी। इसमें मेरा किसी तरहका मोह है सो बात नहीं। ऐसा होना सम्भव है, इसलिए अपनी सराहनामें कुछ कमी कर देता हूँ। फिर भी मैं अपनी इस रायपर स्थिर रहनेके लिए विवश हूँ। मैंने आपको जो बधाई दी है, सो आपको खुश करनेके लिए नहीं; बल्कि इसलिए दी है कि आप उसके अधिकारी हैं। मेरा धर्म आपके स्कूलको बधाई देना कम, और आपका दोष बतलाना ज्यादा है। मैं स्वच्छताके नियमोंका पालन करवानेके आपके प्रयत्नको देख पा रहा हूँ, लेकिन मैं चाहूँगा कि आप इसे मेरी आँखोंसे देखें। उस कन्याके नाखूनमें मैल देखकर मुझे आघात पहुँचा — इसमें अस्वच्छता है, इसमें आलस्य है। जबतक प्रत्येक बालकके नाखून, दाँत आदि नहीं देखे जाते तबतक हाजिरीपत्रक पूरा हुआ नहीं माना जा सकता। नाखूनों और दाँतोंके द्वारा हम जितनी बीमारियाँ खाते या पीते हैं उतनी अन्य किसी तरह नहीं। नाखूनों और दाँतोंकी अस्वच्छता हमारे रोगोंका सबसे बड़ा कारण है। नाखून और दाँतकी स्वच्छता अत्यन्त उपयोगी है और इसका पालन करना आसान है। इसमें आप "यथाशक्ति" की गुंजाइश न रखें — नाक और आँखकी स्वच्छता इससे निचले दर्जेकी है। उनका ध्यान बालक स्वयं ही रखेंगे। बालोंकी स्वच्छतापर भी ध्यान दिया जाना चाहिए।

तकलीके कामके लिए मैं आपको बधाई देता हूँ। ऐसा लगता है कि इस विषयमें इतनी प्रगति किसी राष्ट्रीय स्कूलने नहीं की है। तकलीके आपके अनुभवके साथ मैं अपना अनुभव जोड़ता हूँ। स्कूलमें चरखा दाखिल करनेका प्रयास ही गलत था। तकलीमें जो शक्ति है वह चरखेमें नहीं है। चरखेका सर्वथा नाश हो जाये तो भी विदेशी कपड़ेका बहिष्कार करनेकी शक्ति तकलीमें है। चरखेमें तो बड़ी परेशानी है — उसकी कोई एक चीज सुधारिये, तबतक दो बिगड़ जाती हैं। चरखा झोंपड़ीमें

१. यंग इंडिया, १०-९-१९२५ में भी इस सभाकी रिपोर्ट प्रकाशित की गई थी।

शोभा देता है। स्कूलमें तकली ही शोभा देती है; वह एक तरहका उपयोगी लट्टू है। बालकोंकी संख्याके लिए भी मैं आपको बधाई देता हूँ।

यदि मिलमालिक ऐसे स्कूलोंको प्रोत्साहन नहीं देते तो यह उनका दुर्भाग्य है। ऐसे स्कूलोंको बढ़ानेमें ही उनकी शोभा है; यह उनका कर्त्तव्य है। इस कामके लिए तिलक स्वराज कोषमें से १२९० रुपयेकी जो रकम मिलती रही है वह भी बन्द हो गई है, यह जानकर मुझे गहरा दुःख हुआ है। यह रकम तो जारी की ही जानी चाहिए; अन्य प्रकारसे मदद देकर भी अनसूयाबहनको निश्चिन्त कर देना चाहिए। यदि कोई बनिक ऐसे नौकरका उपयोग न करे जो बिना वेतन नौकरी करनेको तैयार हो तो मैं उसे क्या कहूँ? मैं चाहता हूँ कि जिस तरह श्री ग० ग० ने मेरे वचनोंको सुना उसी तरह आप लोग भी सुनें, मेरी आपसे यही प्रार्थना है। आप मिल-मालिकोंसे प्रार्थना करना कि वे आपको पढ़नेके लिए पैसा दें।

अरब जहाजमें बैठे-बैठे दाँत घिसता रहता है, इसीलिए सोमाली अरब तन्दुरुस्त है, रूपवान है। क्या काली चमड़ीवाले सुन्दर नहीं हो सकते?

परमेश्वर बहुत बड़ा घडीसाज है। बिगड़ी हुई घडीको वही चलाता है। ढेढ़ लड़कोंको मैंने गोद ले लिया है इसलिए उन्हें तो और भी अधिक साफ रहना चाहिए। पाक जुबान, पाक दिल, पाक बदन।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ८

८९. भाषण: अहमदाबादके मजदूर संघकी सभामें[1]

[६ सितम्बर, १९२५][2]

गांधीजीने अपने भाषणमें मजदूरोंके कर्त्तव्यपर विशेष बल दिया और कहा कि मैं जानता हूँ कि आपको बहुत-सी शिकायतें है। पानी नहीं मिलता, खाना खानेके लिए उपयुक्त स्थान नहीं है, आपकी टट्टियोंकी पूरी सफाई नहीं होती, मुकादम लोग आपको मारते हैं और आपके साथ दुर्व्यवहार करते हैं। सूत-कताईवाले विभागमें बार-बार तारोंके टूटनेसे काम कम होता है और परिणामस्वरूप आपको कम मजदूरी मिलती है। परन्तु मुझे विश्वास है कि इनमें से कुछ बातें स्वयं आपपर निर्भर है — इस बातपर निर्भर हैं कि आप अपने भीतर उचित स्वाभिमान पैदा करें। मुझे यह जानकर बहुत खुशी हुई है कि संघने आपमें से कुछ लोगोंके कर्ज चुका दिये हैं और भारी

१. यह मजदूर-संघकी वार्षिक आम सभा थी और इसकी अध्यक्षता गांधीजीने की थी। इस भाषणका पूरा पाठ उपलब्ध नहीं है। लेकिन, यंग इंडिया और बॉम्बे क्रॉनिकलमें इसके अलग-अलग हिस्सोंकी रिपोर्ट छपी जान पड़ती है।

२. बॉम्बे क्रॉनिकलसे।

ब्याजकी दरोंवाले कर्जोंके स्थानपर आपको कम ब्याजपर कर्ज दे दिये हैं। लेकिन आपको इतना कर्ज लेना पड़े, इससे प्रकट होता है कि आपके रहन-सहनका तरीका सही नहीं है। हो सकता है कि आपकी मजदूरी काफी न हो, परन्तु इसमें कोई शक नहीं कि अगर आप अधिक किफायतसे चलें, शराब और दूसरी बुराइयोंसे बचे रहें, तो आपको कर्जदार नहीं बनना पड़ेगा। मुझे बड़ी खुशी है कि मिल-मजदूर इस समय मिल-मालिकोंकी कठिनाइयोंको समझ रहे हैं। उन्होंने आगे कहा :

मुझे हर्ष है कि आप उनकी कठिनाइयोंको समझते हैं। जिस समय वे गम्भीर कठिनाइयोंमें पड़े हुए हों, उस समय आप अधिक वेतनकी माँग नहीं कर सकते। एक समय ऐसा भी आ सकता है, जब, मिल बन्द न हो जाये इसलिए वफादार मजदूरोंको बिना मजदूरी लिये काम करनेका प्रस्ताव लेकर आगे आना पड़े। परन्तु मैं जानता हूँ कि आज आप इसके लिए तैयार नहीं हैं। आपके और मिल-मालिकोंके बीच परस्पर उतना विश्वास नहीं है। आप अनेक तरहके अन्याय सहते हुए काम कर रहे हैं, और जबतक मिल-मालिक सहानुभूति और प्रेमका बर्ताव करके आपके दिल जीत नहीं लेते तबतक आप ऐसा कुछ भी नहीं कर सकेंगे। परन्तु मैं चाहता हूँ कि आप इसी चरम लक्ष्यकी दिशामें काम करें।[1]

महात्मा गांधीने कहा कि संघकी स्थापनासे आप सबको लाभ हुआ है। लेकिन अभीतक आपको बहुत-सी शिकायतें हैं। इसके लिए आप खुद जिम्मेदार हैं। मिल एजेन्टोंके दोष बताना आसान है। यदि आप अपने दोष सुधार लें तो मिल एजन्टों और दूसरे सभी लोगोंको भी प्रभावित कर सकेंगे। आप सच्चा और विनयपूर्ण व्यवहार करें तो आप बहुत-कुछ पा सकेंगे। मैं चाहता हूँ कि आपके वेतनमें जो कटौती की गई है वह रद कर दी जाये और आपको पहलेसे भी ज्यादा वेतन मिलने लगे; लेकिन आपको यह मालूम होना चाहिए कि इस समय व्यापारमें मन्दी है और मिलोंको सरकारसे जूझना पड़ रहा है। ऐसे समय आपका कर्त्तव्य है कि आप ज्यादा वेतनकी आशा न करें। आप लोगोंमें परस्पर अविश्वास है। इस अविश्वासको दूर करनेकी जिम्मेदारी आपपर है। यदि आप ओवरसीयरकी देख-रेखके बिना अपना काम अच्छी तरह करें, तो आपको अपनी शिकायतें दूर करानेके लिए कुछ न कहना पड़ेगा, वे दूर हो जायेंगी।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १०-९-१९२५

१. इसके बादका अंश **बॉम्बे क्रॉनिकल** ८-९-१९२५ से लिया गया है।

९०. टिप्पणियाँ

प्रशंसनीय काम

अहमदाबादका मजदूर-संघ श्रीमती अनसूया बाईकी स्नेहपूर्ण देखरेखमें चुपचाप और बड़ी कुशलताके साथ अत्यन्त प्रशंसनीय कार्य कर रहा है। इस समय मेरे सामने उसके इस कार्यकी संक्षिप्त नपी-तुली रिपोर्ट है। इस रिपोर्टका सम्बन्ध मजदूरोंके बीच किये जा रहे शिक्षाकार्यसे है।

१९२४ में दिनमें चलनेवाले ८ स्कूल थे। आज ९ हैं। उनमें दो सब जातियोंके लड़कोंके लिए हैं, छः अछूतोंके लिए और एक मुसलमानोंके लिए है। १९२४मे ११ रात्रि-पाठशालाएँ थीं। आज १५ हैं। इनमें १ सबके लिए, ८ अछूतोंके लिए, ५ मुसलमानोंके लिए और १ बाघरियोंके लिए है। १९२४में १,११९ विद्यार्थी थे, जिनमें प्रतिदिन औसतन ९७९.४ विद्यार्थी शालाओंमें उपस्थित रहे। उनमें ६९२ अछूत, २२१ सवर्ण और २०६ मुसलमान थे। सालके शुरूमें १,१६६ विद्यार्थी थे, जिनमें से ७९८ अछूत, २१९ सवर्ण और १६९ मुसलमान तथा ६० बाघरी थे। प्रतिदिन औसतन ९०७.९२ विद्यार्थी शालाओंमें उपस्थित रहे। इस समय १,२८५ विद्यार्थी हैं।

साधारण प्राथमिक पाठशालाओंमें जो विषय पढ़ाये जाते हैं, वे सब तो लड़के और लड़कियाँ यहाँ पढ़ती ही हैं, पर साथ ही सूत भी कातती हैं। व्यवस्थापकोंने शुरूमें चरखे चलवानेका प्रयत्न भी किया था किन्तु इतने अधिक छात्रों और छात्राओंके बीच चरखे बहुत ही खर्चीले और असुविधाजनक पाये गये, क्योंकि उनके लिए बहुत जगह दरकार होती थी। इसलिए उन्होंने तकली शुरू कराई, जिसे हर विद्यार्थी अपने पास रख सकता है। सैकड़ों लड़कों और लड़कियोंको एकसाथ सूत कातते हुए देखकर बड़ा अच्छा लगा। उनकी कताईका औसत फी घंटा ३० से ४० गज है। अबतक वे २ मन ८ सेर अच्छा सूत कात चुके हैं।

एक ऐसी पाठशाला भी है, जिसमें १६ अछूत लड़के रहते भी हैं और पढ़ते भी हैं। इनमें से छ: लड़के पाँच-पाँच रुपयेके हिसाबसे खाने-पीनेका खर्च अदा करते हैं। बाकी निःशुल्क रहते हैं। वे बुनना, कातना और बुनना सीखते हैं। १९२४में उन्होंने सवा मन सूत काता और १२५ गज खादी बुनी। १९२४में ६६ शिक्षक थे; आज ७७ हैं। कुल खर्च रु० २२,२५४-८-४ बैठा, जिसमें से १,२५० रुपये प्रतिमासके हिसाबसे मिल-मालिक-संघकी तरफसे दिये गये। यह रकम तिलक स्वराज्यकोषकी उस राशिके ब्याजका एक हिस्सा है, जो मिल-मालिक संघके सदस्योंकी ओरसे दी गई है, और जिसको मजदूरोंके कल्याणके लिए सुरक्षित रखा गया है। प्रति मास ६० रुपयेका अनुदान श्री ब्रजवल्लभदास जयकिसनदाससे प्राप्त हुआ। शेष रकम मजदूर संघने जुटाई। जिस स्कूलमें छात्रोंके रहने-पढ़ने दोनोंकी व्यवस्था है, उसका खर्च प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीकी तरफसे दिया गया।

सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि उन स्कूलोंमें बहुत बड़ी तादादमें अछूत लड़के शिक्षा पा रहे हैं। कहते हैं, उनके माता-पिताओंसे इसके लिए ज्यादा कहना-सुनना नहीं पड़ता है। वे अपने लड़कोंको खुशीसे भेज देते हैं। अगर अपने बच्चोंको स्कूलोंमें भेजनेके लिए किन्हींको मनाना भी पड़ता है तो वे गैर अछूत बच्चोंके माता-पिता ही हैं।

कहनेकी जरूरत ही नहीं कि ये सभी स्कूल सरकारसे न किसी तरहकी सहायता पाते हैं, और न इनपर किसी तरहका सरकारी नियन्त्रण ही है।

विद्यार्थी स्वच्छ रहें, इसकी ओर खास ध्यान दिया जाता है। निःसन्देह इन स्कूलोंकी तुलना भारतवर्षके किन्हीं भी दूसरे प्राथमिक स्कूलोंसे की जा सकती है; ये स्कूल उनसे अच्छे ही उतरेंगे। मैं तमाम शिक्षकोंका ध्यान विद्यार्थियोंके साफ-सुथरा रहनेकी आवश्यकताकी ओर दिलाता हूँ। इसके लिए सिर्फ इतना ही करना होगा कि पढ़ाई शुरू होनेसे पहले सब लड़कोंको एक कतारमें खड़ा करके उनके दाँत, नाखून, कान, आँख वगैरह देख लिये जायें। इसमें कुछ ज्यादा परिश्रम नहीं होगा। मैंने उन स्कूलोंमें भी सामान्य बातोंकी उपेक्षा देखी है, जो अपनेको आदर्श स्कूल कहनेका दावा करते हैं।

क्या यह अति-विश्वास है?

मेरे एक सम्माननीय मित्र हैं, जिन्हें इस बातकी बड़ी चिन्ता बनी रहती है कि उचित आचरण करनेवाले व्यक्तिके रूपमें मेरी जो ख्याति है, उसपर कोई आँच न आने पाये। उन्होंने मुझसे पूछा है कि आपने अभी हाल ही में जो पूरे मनसे स्वराज्यवादियोंका समर्थन करनेका रवैया अपनाया है, उसके सर्वथा उचित होनेका विश्वास आपको किस आधारपर है। क्या आपने हिमालय-जैसी जबर्दस्त भूलें नहीं की हैं? क्या आप नहीं देखते कि आपके बहुत-से अपरिवर्तनवादी मित्र, आपके उस रवैयेसे, जिसे वे आपके आचरणकी एक असंगति मानते हैं, बड़ी दुविधामें पड़ गये हैं? आपको अपनी स्थितिके सही होनेका यह विश्वास है, उसमें कहीं अति विश्वास-का दोष तो नहीं है?

मैं ऐसा नहीं समझता। कारण, सत्यके उपासकको अपने दृष्टिकोणमें सदा पूरा विश्वास होना ही चाहिए, यद्यपि उसे शंकाशील रहनेकी भी उतनी ही जरूरत है। सत्यकी उपासनाके लिए यह जरूरी है कि उसे अपनी बातका पूरा विश्वास हो। साथ ही चूँकि वह जानता है कि मनुष्य प्रकृतिसे ही ऐसा है कि उससे भूल होनेकी सम्भा-वना बनी रहती है, उसे नम्र अवश्य बनना चाहिए और इसलिए ज्यों ही उसे अपनी भूल दिखाई दे, उसे अपना कदम पीछे हटानेके लिए तैयार रहना चाहिए। इस बातसे कि उसने पहले हिमालयके समान भारी भूलें की हैं, उसके विश्वासमें कोई अन्तर नहीं पड़ता। उसकी भूलोंकी स्वीकृति और उनके लिए किया गया प्रायश्चित्त, उसे भावी कार्यके लिए और भी दृढ़ता प्रदान करता है। भूलका ज्ञान सत्यव्रतीको किसी बातको मानने और निष्कर्ष निकालनेमें अधिक सावधान बना देता है; पर एक बार जहाँ उसने अपने मनमें निश्चय कर लिया, उसका विश्वास अटल बन जाना चाहिए।

उसकी भूलोंका यह परिणाम भले ही हो कि उसके विचार और निर्णयपर जो लोग भरोसा रखते हैं वह डगमगा जाये, पर एक बार किसी निश्चित निर्णयपर पहुँचनेके बाद फिर उसे अपने विचारकी सत्यतापर सन्देह नही करना चाहिए। यहाँ यह बात ध्यानमें रखी जानी चाहिए कि मुझसे जो भी भूले हुई हैं, वे वस्तु-स्थितिका अनुमान लगाने तथा मनुष्यकी क्षमताको परखनेके सम्बन्धमें ही हुई हैं; सत्य और अहिंसाके वास्तविक स्वरूपको समझने अथवा उनका प्रयोग करनेमें मुझसे कोई भूल नही हुई है। सच तो यह है कि मुझसे हुई इन भूलों और मेरे द्वारा उनकी स्वीकृतिका परिणाम यही हुआ है कि मुझमें इस सम्बन्धमें कि मै उनके मर्मको समझता हूँ, और अधिक आत्मविश्वास पैदा हो गया है। कारण, मुझे इस बातका निश्चय हो चुका है कि अहमदाबाद, बम्बई और बारडोलीमें सविनय अवज्ञा स्थगित करनेके मेरे निर्णयसे भारतकी स्वाधीनता और ससारकी शान्तिकी दिशामे काफी सहायता पहुँची है। मुझे पूरा विश्वास है कि सविनय अवज्ञाको स्थगित कर देनेके परिणामस्वरूप आज हम स्वराज्यकी मजिलके जितने पास पहुँचे चुके है, उतने पास सविनय अवज्ञा करके नही पहुँच पाते। यह बात मै आज चारों ओर निराशाके जो बादल छाये हुए है, उनके बावजूद कहता हूँ। चूँकि मेरा विश्वास इतना गहरा है, इसीलिए मुझे इस बातका भी पूरा भरोसा है कि स्वराज्यवादियोके सम्बन्धमे तथा अन्य विषयोंपर भी मेरा रवैया बिलकुल सही है। मेरे इस विश्वासके उद्गमको अगर कही ढूँढ़ा जा सकता है तो वह एक ही चीजमें — सत्य और अहिंसाके मर्मके मेरे जीवन्त बोधमें।

अखिल भारतीय स्मारक

श्रीयुत मणिलाल कोठारीने अपना काम शुरू कर दिया है। जिन पारसी सज्जनको उन्होंने २५,००० रुपये देनेपर राजी किया, उन्होंने मुझे बताया कि उनके लिए श्री मणिलाल कोठारीकी बात टालना असम्भव था। जिन भाटिया सज्जनने ५१,००० रुपये दिये है, उन्हे भी ऐसा ही लगा होगा। परन्तु वे विश्वास करे कि यद्यपि ये रकमें निःसन्देह बहुत बड़ी है, तथापि जिस कामके लिए ये दी गई है वह काम भी बहुत बड़ा है और उस कामके लिए ये बहुत ज्यादा नही हैं। स्वर्गीय देशबन्धुके प्रति हमारा कर्त्तव्य तबतक पूरा नहीं होगा जबतक हम खद्दर-कार्यके द्वारा विदेशी कपड़ेका पूर्ण बहिष्कार नही कर देते और यह काम जन-धनकी पूरी मददके बिना सम्भव नहीं है। इसलिए मै आशा करता हूँ कि ये लोग दान देनेमें तत्परता और उदारतासे काम लेंगे। अभीतक 'यंग इंडिया' के कार्यालयमें रु० १,०८७-३-३ प्राप्त हुए है और (२९ अगस्त, १९२५ तक) रु० २०९६-१२-६ पं० जवाहरलाल नेहरूको इलाहाबादमें मिले है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १०-९-१९२५

९१. ग्रामसेवाका एक प्रयोग

ग्राम-निर्माणमें रुचि रखनेवाले लोगोंको नीचे लिखा विवरण[1] बहुत दिलचस्प लगेगा :

यह अनेक दृष्टियोंसे एक महत्त्वपूर्ण प्रयोग है। इस गाँवमें बिना शोरगुल, दिखावे और लगभग बगैर किसी पूँजीके खामोशीके साथ अच्छा काम होता रहा है। और यह हो इसलिए सका है कि लोग अपने लिबासके कपड़ेके सम्बन्धमें रुचि परिवर्तन तथा अपनी फुर्सतके समयका उपयोग करनेके लिए तैयार थे। गाँवकी आबादी ६४० है। कपड़ेपर उसके खर्चका अनुमान ३,६४० रुपये है। इसलिए जब तमाम ग्रामवासी खादी पहनने लगेंगे तब वे अपने गाँवकी वार्षिक आमदनीमें ३,६४० रुपये बढ़ा लेंगे और सो भी बेकार बीतनेवाले समयका उपयोग करके ही। ग्राम-निर्माणकी कोई अन्य ऐसी योजना नहीं है, जिससे इतना बढ़िया और प्रत्यक्ष फल इतना शीघ्र देखनेको मिल सकता हो। यह खादी-कार्य पारस्परिक सहयोगका भी एक पदार्थ परक पाठ है। और वह समय आनेतक जबकि खादी ग्राम-जीवनका एक स्थायी अंग बन जायेगी, निःस्वार्थ ग्रामकार्यकर्त्ता, यदि चाहें तो खादीके साथ-साथ स्वच्छता, शिक्षा और सामाजिक सुधारका काम भी उठा सकते हैं और उसे आगे बढ़ा सकते हैं। यही व्यावहारिक स्वराज्य है। जरा उस दिनकी कल्पना कीजिए कि जब ऐसे हजारों गाँव खादीके सूत्रमें एक-दूसरेसे बँध जायेंगे। फिर आप देखेंगे कि स्वराज्य किस तरह आपके माँगने-भरसे मिल जाता है। कारण, जब भारत विदेशी कपड़ेका त्याग करना सीख लेगा तब अंग्रेजोंके कितने ही अवांछित कार्योंके लिए कोई गुंजाइश नहीं रह जायगी और सच्चे स्वराज्यका रास्ता तैयार हो जायेगा। मुझे आशा है कि कनूर गाँवके सद्गृहस्थ तबतक दम न लेंगे जबतक हर स्त्री-पुरुष और बालक बराबर खादी पहनने न लग जायेगा। यह भी आशा करनी चाहिए कि इस प्रवृत्तिका स्पर्श अकेले पुडूरतक ही सीमित न रहेगा, बल्कि वह एक-एक करके सभी गाँवोंतक पहुँच जायेगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १०-९-१९२५

१. यह कोयम्बटूर जिलेके कुनूर नामक ग्राममें चरखे और खद्दर-प्रचारकी प्रगतिका विवरण था।

९२. अखिल बंगाल देशबन्धु स्मारक कोष

कई मित्र पूछते हैं कि अखिल बंगाल स्मारक कोषके लिए क्या वे अपना चन्दा अभी दे सकते हैं। उत्तर है कि बाजाब्ता चन्दा इकट्ठा करनेका कार्य तो पिछले माहकी ३१ तारीखको समाप्त हो गया। किन्तु यदि अभी भी ऐसे कोई लोग हैं जो उस कोषमे अपना चन्दा देना चाहते हैं तो उन्हें चाहिए कि वे अपना चन्दा न्यासियोंके जरिए दें। मुझे जो भी रकम अब मिलेगी उसे मैं अखिल भारतीय देशबन्धु स्मारक कोषमें जमा करा दूंगा। अलबत्ता यदि चन्दा देनेवाला ऐसा न करना चाहता हो तो जैसा वह कहेगा वैसा किया जायेगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १०-९-१९२५

९३. अछूतोंके सम्बन्धमें

उस दिन कलकत्तेमे मुझसे आन्ध्र देशके श्री टी० एन० शर्मा मिलने आये। उन्होंने पंचमोंकी सेवाके कार्यमें लगे लोगोंके मार्गकी कठिनाइयोंके बारेमें कुछ प्रश्न किये। उन्होंने अपने प्रश्नों तथा मेरे द्वारा दिये गये उत्तरोको लिखकर मेरे पास संशोधनके लिए और यदि मुमकिन हो तो छापनेके लिए भेजा है। चूंकि इस प्रश्नोत्तरीसे कार्यकर्ताओंको सहायता मिलनेकी सम्भावना है, इसलिए मैं उसे यहाँ दे रहा हूँ :

१. अस्पृश्यताको मिटानेके लिए आप प्रचार-कार्यके किन तरीकोंको अपनानेकी राय देते हैं?

अब ज्यादा जबानी-प्रचार करनेकी जरूरत नहीं है। कामको ही प्रचार समझना चाहिए। आपको सामाजिक बहिष्कारकी परवाह न करते हुए, निडर होकर अछूतोंकी हालत सुधारनेका काम करना चाहिए। जब प्रमुख व्यक्ति आयें तब उनके व्याख्यानोंका भी आयोजन किया जा सकता है।

२. हमारे आन्ध्र प्रान्तमें इस विषयपर दो तरहके मत हैं। वहाँ इस आशयका एक प्रस्ताव भी रखा गया था कि प्रचार-कार्यके लिए पंचमेतर लोगोंके बीच पैसा खर्च न किया जाये। कुछ लोगोंका विचार है कि पहले पंचम लोगोंको लिखा-पढ़ा देना चाहिए और अस्पृश्यता-निवारणकी माँग उनकी तरफसे पेश होनी चाहिए। लेकिन कुछ लोगोंका मत है कि सवर्ण हिन्दुओंका हृदय-परिवर्तन करने और उनके मनमें यह भाव जगानेके लिए कि "अस्पृश्यता पाप है", उनके बीच पैसा खर्च करके प्रचार किया जाये, और इस कामके लिए पण्डित और कार्यकर्त्ता नियुक्त किये जायें।

मै तो पण्डितोंपर एक पैसा भी खर्च करनेको तैयार नहीं हूँ। यदि आप उन्हें पैसा देंगे तो वे गोया किरायेके टट्टू हो जायेंगे। वे वेतनके लिए ही काम करेंगे। पैसा तो पंचमोंको अपनी उचित स्थितिका भान करानेके लिए खर्च किया जाना चाहिए। हमारे साधन हमेशा शान्तिमय हों। तथाकथित सवर्ण हिन्दुओंको अपनी मनोवृत्ति बदलनी चाहिए और अपनी ही आत्माकी उन्नति और अपनी ही शुद्धिके लिए उन्हे यह निषेध हटा देना चाहिए। यदि वे ऐसा न करेंगे और उन्हे दबानेपर तुले रहेंगे तो एक समय ऐसा आयेगा कि जब खुद अछूत लोग ही हमारे खिलाफ बगावतका झण्डा खड़ा करेंगे और तब सम्भव है कि वे हिंसात्मक तरीकोंका भी आश्रय ले। मै अपनी तरफसे ऐसे किसी भी महासकटको रोकनेका पूरा प्रयत्न कर रहा हूँ और हममें से जो लोग अस्पृश्यताको पाप मानते हैं, उन सबको ऐसा ही करना चाहिए।

३. क्या आप यह मानते हैं कि सिर्फ पंचम लोगोंके लिए खोले गये पृथक् स्कूलोंसे अस्पृश्यता-निवारणमें किसी तरह सहायता मिल सकती है?

ऐसे स्कूलोंसे अन्तत. सहायता अवश्य मिलेगी; किसी भी प्रकारकी शिक्षा इस दिशामें सहायक होगी। परन्तु ऐसे स्कूल अकेले अछूतों ही के लिए न होने चाहिए, अन्य जातियोंके लड़के भी उनमें लिये जाने चाहिए। अभी तो वे न आयेंगे, परन्तु यदि शालाओंकी व्यवस्था अच्छी रही तो समय पाकर उनका पूर्वाग्रह मिट जायेगा। यदि आप ऐसी मिश्रित शालाएँ चाहते है तो आपको अपने क्षेत्रमें ऐसी एक पाठशाला खोलनी चाहिए। मान लीजिए कि आपका अपना घर है, तो आपसे कोई अपने घरसे निकल जानेको तो नही कह सकता। एक "अछूत" लड़केको अपने घरमें ले जाइए और पाठशाला शुरू कर दीजिए। फिर और लड़कोको भी उसमें भरती होनेके लिए प्रेरित कीजिए।

४. हमारे प्रान्तमें ऐसी शालाओंको प्रोत्साहन दिया जा रहा है, जिनमें 'अस्पृश्य' तथा सवर्ण लड़के साथ-साथ पढ़ते हैं।

हाँ, आप उनको प्रोत्साहन दे सकते है। परन्तु आपको उन स्कूलो या सस्थाओंकी सहायता करनेसे हाथ न खीचना चाहिए, जिनमें सिर्फ 'अस्पृश्य' लड़के ही पढ़ते हों।

५. कुछ ताल्लुका बोर्डोंमें ऐसे हुक्म जारी हुए हैं कि जो शालाएँ 'अस्पृश्य' लड़कोंको लेनेसे इनकार करेंगी, वे बन्द कर दी जायेंगी। क्या हम अपने प्रचारकों द्वारा पंचम बालकोंको उन स्कूलोंमें भरती होनेमें सहायता दें?

अवश्य। आपको उनकी सहायता अवश्य करनी चाहिए। पर अलगसे इसीके लिए प्रचारक रखनेकी जरूरत नही है। आपके कार्यकर्त्ता ही उसके लिए काफी होंगे।

६. तो फिर प्रचार-कार्यके बारेमें आपकी क्या राय रही? क्या आप समझते हैं कि चुपचाप काम करते रहना पर्याप्त है?

हाँ, मै तो ऐसा ही समझता हूँ। अगर प्रचार-कार्यके पीछे पचमोंकी स्थिति सुधारनेके लिए ठोस कामका बल न होगा तो प्रचारसे कोई लाभ नही होगा।

इस सिलसिलेमें महात्माजीने वाइकोम-सत्याग्रहका जिक्र किया और कहा कि उस क्षेत्रके लोगोंपर उसका बड़ा भारी असर हुआ है।

७. तो फिर जब ऐसे प्रश्न पैदा हों तब क्या हम प्रचारके लिए जी खोलकर पैसा खर्च करें?

नहीं, जी खोलकर नही। ठोस काम खुद ही अपना प्रचार कर लेता है। वाइ-कोममें अधिकांश द्रव्य रचनात्मक कार्योंमें खर्च किया गया है।

८. क्या आप निकट भविष्यमें अस्पृश्यताके प्रश्नको और भी जोरदार ढंगसे उठानेका विचार रखते हैं?

मैंने तो उसे आज भी यथासम्भव ज्यादासे-ज्यादा जोरदार ढंगसे ही उठा रखा है। जहाँ-कहीं सम्भव है, हम उनके लिए पाठशालाएँ खोलने, कुएँ खुदवाने, मन्दिर बनवाने आदिका पूरा प्रयत्न कर रहे हैं। पैसेके अभावमें काम रुकता नहीं है। चूँकि इन कार्योंका अखबारोंमें कोई विज्ञापन नही होता इसलिए आप शायद यह समझते हैं कि उनके लिए कुछ किया ही नही जा रहा है।

९. बेलगाँव-प्रस्तावके अनुसार तो ऐसा कोई भी स्कूल राष्ट्रीय नहीं माना जा सकता जिसमें पंचम लड़के न लिये जाते हों!

बेशक ऐसे स्कूलोंको राष्ट्रीय नहीं माना जा सकता।

१०. तो क्या आपका कहना यह है कि ऐसे स्कूल यदि राष्ट्रीय विद्यालय विषयक अन्य सब शर्तें पूरी करते हों तब भी इन्हें कांग्रेससे सहायता न मिलनी चाहिए?

हाँ, मेरा तो यही कहना है। ऐसे स्कूलोंको कोई सहायता नही मिलनी चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १०-९-१९२५

९४. पत्र : जेठालाल मन्सूरको

भाद्रपद बदी ८, ८१ [१० सितम्बर, १९२५]

भाई जेठालाल,

तुम्हारा पत्र मिल गया है। तुम मन्दिरके[1] लिए चन्दा तुरन्त कर डालो। रामजीभाईसे[2] कितनेकी आशा रखते हो? उनके कुटुम्बियोंने आभूषण भी तो दिये हैं। मन्दिर बननेमें जो देर हो रही है वह वहींकी ढिलाई है। पुजारी कौन होगा, यह जानना भी जरूरी होगा।

मोहनदास गांधीके वन्देमातरम्

गुजराती पत्र (एस० एन० ११९३५) की माइक्रोफिल्मसे।

१. सौराष्ट्र-स्थित तत्कालीन लाठी राज्यके सदर मुकाम लाठीमें बनाया जानेवाला हरिजन मन्दिर।

२. लाठी-निवासी रामजीभाई; गांधीजीकी प्रेरणापर ये अपनी पत्नी गंगाबहनके साथ गुजरातमें हाथ-कते सूतसे हाथ-बुनाईकी कलाको पुनः प्रतिष्ठित करनेके काममें जुट गये थे और सावरमती आश्रममें लोगोंको यह कला सिखाया करते थे।

९५. पत्र : जेठालाल मन्सूरको

साबरमती आश्रम
मंगलवार, [१० सितम्बर, १९२५ के पश्चात्][1]

भाई जेठालाल,

तुम्हारा पत्र मिला। न्यास-पत्र[2] कहाँ है? वह दस्तावेज कहाँ है जिसमें कहा गया है कि जमीन राज्यकी[3] ओरसे दानमें दी गई है? पुजारी कौन होगा? इन तीन प्रश्नोंके उत्तर मिल जानेपर मैं पैसा तुरन्त भेज दूंगा। ऐसा है कि जितना पैसा तुम इकट्ठा करोगे उतना ही राज्य देगा और उतना ही मैं दूंगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (एस० एन० ११११३५) की माइक्रोफिल्मसे।

९६. भाषण : पुरुलियामें[4]

१२ सितम्बर, १९२५

महात्माजीने सबसे पहले भेंट किये गये मानपत्रोंके लिए जिला बोर्ड तथा नगर-पालिकाके सदस्योंको धन्यवाद दिया। उन्होंने कहा कि एक मानपत्रमें देशबन्धु चित्तरंजन दासका उल्लेख करते हुए उनके स्वर्गवासपर शोक प्रकट किया गया है। यह सर्वथा उपयुक्त है।[5] यद्यपि देशबन्धुका स्वर्गवास हुए कई महीने हो गये हैं, फिर भी हम उनके वियोगके दुःखको भूल नहीं पाये हैं। पुरुलिया आनेसे पहले ही मुझे मालूम था कि यह शहर देशबन्धुका विश्राम-स्थल था। और जिस दिन मैं इस नगरमें स्थित उनके घर गया, मुझे यह सोचकर बड़ा दुःख हुआ कि उनके घर आनेका मौका मिला भी तो उनके निधनके बाद। आप लोगोंने देशबन्धुकी स्मृतिको कायम रखनेके लिए जो-कुछ किया है, उसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। दोनों मानपत्रोंमें खद्दर और चरखेका उल्लेख किया गया है। चरखा मेरा जीवन-मन्त्र बन गया है। मुझे लगता है कि भारतकी गरीबी दूर करनेका और कोई साधन नहीं है। बिहारकी

१. न्यास-पत्र और दानके दस्तावेजके उल्लेखसे लगता है कि यह पत्र पिछले शीर्षकके बाद लिखा गया होगा।

२. लाठीके हरिजन-मन्दिरका न्यास-पत्र।

३. लाठी राज्य।

४. जिला मानभूम, बिहारमें।

५. मानपत्र स्वीकार करनेके बाद गांधीजीने चित्तरंजन दासके चित्रका अनावरण किया था।

गरीबी तो सब अच्छी तरह जानते हैं। मेरा खयाल है कि उड़ीसा और एक-दो अन्य प्रान्तोंको छोड़कर बिहार देशका सबसे निर्धन प्रान्त है। एक समय ऐसा था, जब बिहार हाथ-कते सूतका हाथबुना उत्तम कोटिका कपड़ा बाहर भेजा करता था। बंगाल-की तरह बिहार भी अपने बढ़िया कपड़ेके लिए प्रसिद्ध था। पर आज उसी बिहारके लोग अपनी भूख मिटानेका कोई उपाय नहीं जानते। चरखेको अपनानेके सिवाय उनके लिए दूसरा कोई रास्ता नहीं है। आज असम और कलकत्तामें हजारों बिहारी हैं, जो वहाँ अपनी आजीविका कमा रहे हैं। हम उन्हें वहीं छोड़ दें, यह ठीक नहीं है। आदमीका जन्म सिर्फ पैसा बटोरनेके लिए नहीं हुआ है। जो अपनी आत्माके कल्याण-की अवज्ञा करता है, वह अपना बड़ा अहित करता है। असम और कलकत्तेमें रहने-वाले इन बिहारियोंके चरित्रके बारेमें तो आप मुझसे ज्यादा ही जानते होंगे; हम उनका अगर विचार न करें तो भी लाखों बिहारी वहाँ भी ऐसे हैं जो नहीं जानते कि दो जूनका भोजन किसे कहते हैं। वे यह भी नहीं जानते कि अपनी आजीविका कैसे कमायें।

मैं तो उसी दिनसे बिहारी हो गया हूँ जिस दिन मैंने चम्पारनमें काम शुरू किया था। यदि आपको मालूम न हो तो मैं आपको बता देना चाहता हूँ कि चम्पा-रनमें स्त्रियाँ प्रतिदिन पाँच पैसे भी नहीं कमा पाती थीं।

पुरुषोंके लिए छः पैसे या दो आना ही बहुत ज्यादा समझा जाता था। आज मजदूरी बढ़ जानेपर भी इन लोगोंको उसमें से दस्तूरी देनी पड़ती है। उनकी हालत बहुत-कुछ पहले-जैसी ही है। यदि उन्हें चरखा दे दिया जाये तो उसका क्या परिणाम होगा, इसका अनुमान तो अर्थशास्त्री लोग स्वयं लगा देखें। पर चरखेको फिरसे घर-घरमें दाखिल करवाना तो पढ़े-लिखे लोगोंका ही काम है।

यह मानी हुई बात है कि साधारण जनता प्रतिष्ठित लोगोंका अनुकरण करती है। आप गाँववालोंके मनमें चरखेको अपनानेका उत्साह तभी पैदा कर सकेंगे जब आप स्वयं गाँवोंमें जाकर चरखेका प्रचार करें और खुद चरखा चलायें। यदि आप चाहते हैं कि बिहारकी गरीबी दूर हो, यदि आप बाढ़, अकाल या किसी अन्य दैवी प्रकोपोंके समय बेरोजगार लोगोंको कुछ काम देना चाहते हैं तो आपको खुद चरखा चलाना चाहिए और लोगोंको इसकी शिक्षा देनी चाहिए। पर इतना ही करना काफी नहीं है।

आपको विदेशी तो क्या, बम्बई और अहमदाबादकी मिलोंके कपड़ेका मोह भी त्याग देना पड़ेगा। जबतक आप ऐसा नहीं करते, आप कोई ठोस सफलता प्राप्त नहीं कर पायेंगे। यदि आपमें आत्मसम्मानकी भावना है तो आपको सिर्फ बिहारमें बने कपड़ेका उपयोग करना चाहिए और बम्बई और अहमदाबादकी मिलोंका कपड़ा नहीं खरीदना चाहिए।

यदि आप सच्चे हृदयसे भारतका कल्याण चाहते हैं, यदि आप सच्चे हृदयसे बिहारकी सेवा करना चाहते हैं तो आपको चरखेका यह प्रारम्भिक मन्त्र समझना होगा।

इसके बाद महात्माजीने कहा, मैं आपको इस बातकी बधाई देता हूँ कि इस जिलेमें किसी प्रकारकी साम्प्रदायिक समस्या नहीं है और मैं आशा करता हूँ कि आगे भी कोई समस्या नहीं होगी। आप सब चरखेके प्रचार और अस्पृश्योंके उत्थानके लिए जो-कुछ कर रहे हैं, उसके लिए भी मैं आपको बधाई देता हूँ। भाषण समाप्त करते हुए गांधीजीने अखिल भारतीय देशबन्धु स्मारक कोषमें चन्दा देनेकी अपील की। उन्होंने बताया कि यह रकम ग्रामोद्धारके कार्यमें, जो देशबन्धुका परमप्रिय काम था, लगाई जायेगी। अखिल भारतीय चरखा संघ नामसे एक नई संस्था बनाई जा रही है। यह रकम खर्च करनेके लिए उसीको दी जायेगी। मैं जानता हूँ कि बिहारके मध्यमवर्गीय लोगोंके पास बहुत धन नहीं है। पर यदि वे चरखेकी उपयोगिता समझते हों, और यदि उन्हें चन्देकी रकमको खर्च करनेका यह ढंग पसन्द हो तो वे इस कोषके लिए जो-कुछ दे सकते हैं, अवश्य दें। बिहारमें इकट्ठा हुई रकमका अधिकांश यहीं बिहारमें ही खर्च किया जायेगा।

[अंग्रेजीसे]

सर्चलाइट, १६-९-१९२५

९७. क्या करें?

गुजरातमें मैं केवल पाँच दिन ही रहा,[1] लेकिन इस बीच साथियोंसे मैंने बहुत-कुछ जान लिया। मुझे कुछ-एक गम्भीर बातोंकी जानकारी भी मिली। लेकिन मेरे पास उन सबपर विचार करनेका समय नही है। इस समय तो मैं केवल एक ही वस्तुके सम्बन्धमें लिख रहा हूँ। कुछ साथियोंका कहना है: "हमें अपने जिलेमें पैसे नहीं मिलते। लोग अपने लड़कोंको राष्ट्रीय स्कूलमें भेजनेके लिए तो तैयार हैं, लेकिन स्कूलका खर्च नही देते। लोग बहुत मुश्किलसे कताई करते हैं। ऐसी स्थिति-में हमें क्या करना चाहिए? इसके लिए प्रान्तीय कमेटी ही पैसे क्यों न दे?"

यह शोचनीय स्थिति है। सामान्य नियम तो यह है कि जहाँ-जहाँ स्थानीय सहायता न मिले वहाँ-वहाँ लोग काम करना छोड़ दें। हाँ, इसमें कुछ-एक अपवाद हो सकते हैं। जब केवल नवीन विचारोंका प्रसार करनेकी बात हो, उस समय अमुक अवधितक बाहरी सहायता ली जा सकती है, लेकिन हमेशा यह बात नही चलती रह सकती। अन्त्यज-सेवा ऐसा ही कार्य है। अन्त्यज-सेवा धर्म है। इस कार्यमें एकाएक स्थानीय सहायता न मिले, यह सम्भव है। यदि ऐसा हो तो सेवकको अन्य स्थानोंसे सहायता प्राप्त करनी चाहिए। किन्तु प्रान्तीय कमेटी-जैसी लोक-निर्वाचित संस्थासे तो ऐसी मददकी आशा नही ही की जानी चाहिए। सेवकको इस कार्यमें अपनी

१. बंगालकी चार माहकी यात्राके बाद गांधीजी ५ सितम्बरको गुजरात लौटे और ९ सितम्बरको बिहारके लिए रवाना हो गये।

प्रतिष्ठाके बलपर जूझना चाहिए। लेकिन आम लोगोंकी शिक्षाके सम्बन्धमें यह नियम लागू नहीं किया जा सकता। अगर किसी गाँवमें शिक्षा देनी हो तो उसी गाँवके लोगोंको इस कार्यमें मदद करनी चाहिए। यदि वे मदद नहीं करते तो हमें समझ लेना चाहिए कि वहाँ ऐसी संस्थाकी कोई आवश्यकता नही है। इसमें कई बार दोष सेवकका ही होता है। उसमें चरित्रका, प्रबन्ध करनेकी क्षमताका अथवा उद्यमका अभाव हो सकता है। ऐसे सेवकको धैर्यसे काम लेना चाहिए। उसे अपना चारित्रिक बल बढाना चाहिए, अनुभवके द्वारा कार्य-कुशलता प्राप्त करनी चाहिए और खूब मेहनत करके उद्यमी बनना चाहिए। इसका ही दूसरा नाम तपश्चर्या है। तपसे ही पृथ्वीका निर्वाह होता है, तपसे ही पार्वतीने शिवको प्राप्त किया, तप द्वारा ही सावित्रीने सत्यवानको पुनर्जीवित किया, लक्ष्मणने मेघनादको पराजित किया और रामने रावणको हराया। आधुनिक कालके उदाहरण तो हमारी नजरोंके सामने ही है। अतएव साथियोंको मेरी खास सलाह यह है कि उन्हें स्थानीय सहायता प्राप्त करनी चाहिएं और जहाँ उन्हें स्थानीय सहायता नहीं मिलती वहाँ उन्हे अपनी गतिविधि सीमित कर लेनी चाहिए।

अब प्रान्तीय कमेटीकी मर्यादाओंपर विचार करें। प्रान्तीय कमेटी पैसा कहाँसे लाती है? जिलोसे। यदि सारे जिले उससे मददकी अपेक्षा करें और उसे कुछ न दें तो क्या होगा? नियम तो यह है कि आप प्रान्तीय कमेटीको [धन] दें और उसमें से लें। प्रान्तीय कमेटी भी यदि गुजरातके बाहरसे पैसा लेकर अपना कामकाज चलाना चाहे तो मैं तो प्रान्तीय कमेटीको भी बन्द करनेकी सलाह दूँगा और यही कारण है कि मैं हमेशा यह सलाह देता रहा हूँ कि गुजरातको मुख्य रूपसे गुजरातियोंके पैसेपर ही निर्भर रहना चाहिए। यह स्वराज्यकी कुंजी है। स्थानीय स्वातन्त्र्यका मतलब है स्थानीय दायित्व। झूठी लज्जाके अधीन होकर हमें एक भी संस्था चलाने-का लोभ नहीं करना चाहिए। धर्म ही एक ऐसी वस्तु है जिसके पालनमें लोकमत की उपेक्षा नहीं की जा सकती है। और धर्मपालनका अर्थ है मृत्युके लिए तत्पर रहना। उसमें आर्थिक सहायताकी आवश्यकता नहीं होती। पुस्तकालय चलाना अथवा स्कूल चलाना क्या किसीका धर्म हो सकता है? असहयोग करना धर्म है। उसे चलानेके लिए हमें असुविधाएँ उठानी पड़ती हैं। इसके लिए आर्थिक सहायताकी आवश्यकता नहीं होती। जिस गाँवके लोग अपने बच्चोंको मुझसे न पढ़वाना चाहें वहाँ जाकर मेरा उनकी इच्छाके विरुद्ध उनके बालकोंको अपनी ओर आकर्षित करनेका सवाल ही नहीं उठता। यदि वे बालकोंको भेजनेके लिए तैयार हों, लेकिन पैसा न दें तो इसका अर्थ यह हुआ कि वे दान माँगते हैं। दान तो तभी मिल सकता है जब उनमें उसकी पात्रता हो। ऐसे पात्र तो वे अन्त्यज ही हैं, जिनके प्रति हमने आजतक अपना उत्तरदायित्व नहीं निभाया है। इसलिए हर वस्तुके सम्बन्धमें प्रान्तीय कमेटीसे मददकी अपेक्षा करना व्यर्थ है। प्रान्तीय कमेटी यदि दबावमें आकर मदद देती है तो वह दोषी ठहरती है और उस हालतमें उसके बन्द होनेकी नौबत आ सकती है। इस समय कितनी ही प्रान्तीय कमेटियोंकी ऐसी स्थिति है, इसका मैं साक्षी हूँ।

गुजरातकी स्थिति ऐसी नहीं है, क्योंकि उसके संचालक अन्त्यज सावधानीसे अपना काम कर रहे हैं और सदा सूलीपर चढ़े रहते है, सदैव जागृत रहते हैं।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १३-९-१९२५

९८. प्रामाणिकता

हमारे सार्वजनिक कार्यमें धीरे-धीरे मलिनता प्रवेश कर गई है। एक विद्वान् सज्जनने टीका की है कि जबसे कांग्रेसको एक करोड़ रुपया मिला है, हमारा सार्वजनिक जीवन विकृत हो गया है। इस टीकामें विष बहुत ज्यादा भरा हुआ था; लेकिन उसमें अमृतकी बूंद भी थी। काग्रेसके कोषमें पैसा आनेसे उसमें लालच आया, शिथिलता आई। जो पैसेसे हो सकता है उसके लिए मेहनत क्यों करें? दुर्गुण कोई ढोल बजाकर नही आते। वे तो चोरो अथवा विषैले जन्तुओं-जैसे है। वे गुप्त रूपसे और बिना बताये आते हैं; निर्दोष मेमनेके समान वे हमारी गोदमें आकर बैठ जाते हैं और लाख कोशिश करनेपर भी नही जाते। वे हमारी नजर बचाकर हमें पीछे खीचते हैं। हमारे अनजाने ही दोष हममें प्रवेश कर गये है। हमें इसके प्रति सावधान रहना है।

अनेक लोगोंने [प्रान्तीय] कमेटीसे पैसे उधार लिये और उन्हे वापस नही चुकाया। कितने ही लोगोंने खादी मण्डलसे खादी ली है। इसके पैसे भी नही चुकाये गये। यह बात शिथिलताकी परिचायक है और परोक्ष रूपसे वचन-भंग भी है। यदि यही सुविधा हमने व्यापारिक पद्धतिसे प्राप्त की होती और फिर समयपर पैसे न चुकाय होते तो इसके लिए हम दण्ड भोगते — जेलमें होते। लेकिन हम लोग यह मान बैठे जान पड़ते हैं कि कमेटी आदि सार्वजनिक सस्थाओंसे ली गई रकमें वापस करनेमें व्यापारिक पद्धतिका अनुकरण करनेकी आवश्यकता नही है।

वस्तुतः देखा जाये तो स्थिति यह होनी चाहिए कि कमेटीसे ली हुई रकमको साखपर लिया हुआ कर्ज समझा जाना चाहिए। अंग्रेजीमें इसे 'डेट आफ ऑनर' अथवा दूसरे शब्दोंमें केवल सत्यकी साखपर मिला पैसा कहते हैं। व्यापारियोंका, संसारका यह कायदा है कि ऐसे पैसेकी अदायगीको प्राथमिकता दी जानी चाहिए। वह व्यक्ति सबसे अधिक सावधानी इसे अदा करनेके सम्बन्धमें बरतता है। इसके अलावा एक और भी नियम है; वह यह कि पहले राजाका कर चुकाया जाये, बादमें व्यक्तिगत कर्ज। किसी संस्थासे ली हुई रकमको वापस चुकानेको भी कर चुकाने-जैसा मानना चाहिए। यदि ऐसा न हो तो सस्थाएँ काम ही नही कर सकती। अपनी शिथिलताके लिए हम अनेक बहाने बतायेंगे, लेकिन वे सब निरर्थक होंगे। जिस अपराधके लिए संसार हमें दण्ड देता है, यदि हम उसे नही करते तो यह कोई अनोखी बात नही है; पुण्यकी बात तो है ही नही। हमारे सत्यकी परीक्षा इसमें नही होती। जो व्यक्ति ऐसा अपराध करनेसे बचता है जिसका केवल ईश्वर ही साक्षी है, वही खरा व्यक्ति

है। जिस दोषके लिए हमें दुनिया दण्ड नहीं दे सकती यदि हम स्वेच्छासे उस दोषसे मुक्त रहते है-तो निर्दोषता उसीका नाम है। जबर्दस्तीसे अथवा भय-वश दिये गये दानमें पुण्य नहीं है। इस तरह किसी भी दृष्टिसे विचार करनेपर हमारा एक ही धर्म है और वह यह कि जिस-जिस व्यक्तिने कमेटीसे पैसा लिया है वह उसे निरलस और जाग्रत होकर तत्काल चुका दे और ऋणमुक्त हो जाये।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १३-९-१९२५

९९. हमारी गन्दगी – २

पिछले सप्ताहमें हमने समाजमें फैली हुई गन्दगीपर विचार किया था[1]। जहाँ-तहाँ शौच जानेकी आदत लोगोंको छोड़ देनी चाहिए। शहर हो या गाँव हमें निर्दिष्ट स्थानपर ही शौच जानेकी आदत डालनी चाहिए। आजकल बात इससे उलटी है। यहाँतक कि घरोंके बाड़े अथवा गाँवकी गलियाँ बिगाड़नेमें भी हम लोग जरा नहीं सकुचाते। उससे दुर्गन्ध बढ़ती है, हवा खराब होती है और आँगनों या गलियोंमें नंगे पैर चलनातक मुश्किल हो जाता है। गाँवोंमें कुछ मुकर्रर किये गये खेतों अथवा अपने-अपने खेतमें शौच जाना चाहिए और शौच-क्रिया पूरी करनेके बाद हरएक आदमीको उसपर सूखी मिट्टी डाल देनी चाहिए। इसका सबसे अच्छा तरीका है छोटी कुदाली वा फावड़ेसे जमीन खोदकर गड्ढेमें शौच जाना और फिर खोदकर निकाली हुई उसी मिट्टीसे गड्ढेको भर देना। इसके बाद अगर वहाँ कुछ निशानी रख देनेका रिवाज डाल दे तो उससे लोग जान भी सकेंगे। इसमें एकान्तका भंग न हो, इसलिए पाँच-सात जगहें मुकर्रर की जा सकती हैं।

लोग अगर समझ जायें और ऐसे प्रबन्धके अनुकूल हों तो यह काम शीघ्र ही और बिना खर्चेके हो सकता है। सच पूछा जाये तो इससे बिना परिश्रमके ही सम्पत्ति बढ़ सकती है और तन्दुरुस्ती भी सुधर सकती है। जिस खेतमें शौच जायेंगे उस खेत-की पैदावार बढ़ेगी, यह तो सारा संसार जानता है। यदि लोग इस योजनाका मूल्य समझ जायें तो अपने खेतका ऐसा उपयोग करनेके लिए उलटे खर्च करेंगे। ऐसा दूसरे देशोंमें होता है। हमारे देशमें भी कितने ही स्थानोंमें किसान लोग गाँवका मैला ले जानेका ठेका लेते देखे गये हैं। मगर वे लोग इस बुरी तरह मैला उठाते हैं कि देखनेमें भी घिन लगती है। यदि मेरे सुझाव अमलमें लाये जायें तो किसीको कुछ न उठाना पड़े। हवा भी न बिगड़े और गाँव साफ-सुथरे रहें।

यह तो हुई गाँवकी बात। शहरोंमें ऐसा नहीं हो सकता। शहरोंमें तो पाखाने चाहिए ही। जहाँ विलायती ढंगके पाखाने हैं और नालियोंके जरिये सारा मैला एक स्थानपर इकट्ठा किया जाता है उसकी चर्चा करना यहाँ निरर्थक है। हमें तो यही

१. देखिए "हमारी गन्दगी–१", ३०-८-१९२५।

विचारना है कि लोग अपने-आप क्या कर सकते हैं। लोगोंको नीचे लिखे नियम अपनी खुशीसे पालन करने चाहिए :

(१) दोनों क्रियाएँ मुकर्रर की हुई जगहपर ही की जानी चाहिए।

(२) गलियोंमें जहाँ-तहाँ पेशाब करने बैठ जाना भी बुरा गिना जाना चाहिए।

(३) जहाँ पेशाब किया हो उस स्थानको पेशाब करनेके बाद सूखी मिट्टीसे अच्छी तरह ढँक देना चाहिए।

(४) पाखाने बिलकुल साफ रहने चाहिए। पानी गिरनेकी जगह भी स्वच्छ रहे। हमारे पाखाने मानो हमारी निन्दा करते हैं। उनसे स्वच्छताके नियमोंका उल्लंघन प्रकट होता है।

(५) सारा मैला खेतोंमें पहुँचना चाहिए।

इन तमाम नियमोंका पालन कैसे हो सकता है? उत्तर यह है कि शिक्षा द्वारा। जबतक लोग नियमोंको समझ न जायेंगे, उनका प्रयोजन जबतक वे न जानेंगे, तबतक कायदा-कानून फिजूल हैं। कानून तो थोड़े से मनुष्योंके लिए हो सकता है। अधिकांश लोग जबतक कानूनको न समझें अथवा न मानें तबतक उसके अनुसार दी जानेवाली सजाका कुछ भी उपयोग नहीं होता।

इस शिक्षाके लिए अक्षरज्ञानकी जरूरत नहीं। 'जादू की लालटेन' द्वारा तथा भाषणों द्वारा गन्दगीसे पहुँचनेवाली हानियोंका और खादके लिए मैलेको बचानेके लाभोंका ज्ञान लोगोंको कराना चाहिए। भाँति-भाँतिके साधन बताने चाहिए।

पर सबसे बढ़िया शिक्षा तो स्वयं करके दिखाना है। इसलिए जो लोग समझ गये हैं उन्हें स्वयं इन नियमोंपर अमल करके दूसरोंके सामने उदाहरण पेश करना चाहिए।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १३-९-१९२५

१००. भाषण : पुरुलियाकी महिला सभामें[1]

१३ सितम्बर, १९२५

महात्माजीने मानपत्रका उत्तर देते हुए कहा कि आज इतनी सती-साध्वियोंको यहाँ इस सभामें आया देखकर मुझे बहुत खुशी हो रही है। हमारे धर्ममें प्रातःकाल सतियोंका स्मरण करने और इस तरह उनका आदर करनेकी शिक्षा दी गई है। सीता और दमयन्ती अपने शरीर, मन और कार्योंकी पवित्रताके कारण प्रातःस्मरणीया हैं, आप भी उनकी तरह बनें। भारतकी स्त्रियोंसे मेरी यही प्रार्थना है कि वे सीताके समान पवित्र बनें। जबतक वे ऐसा नहीं करतीं, हमें स्वराज्य प्राप्त नहीं हो सकता, चाहे उसके लिए भारतकी स्त्रियाँ या पुरुष कितना ही प्रयत्न क्यों न करें। मेरे

१. सुबह आठ बजे हुई इस सभामें पुरुलियाकी स्त्रियोंकी ओरसे गांधीजीको मानपत्र भेंट किया गया था।

लिए स्वराज्यका अर्थ है रामराज्य या धर्मराज्य और वह हमें तभी मिल सकता है जब भारतकी स्त्रियाँ सीताके समान बन जायें। सीता देवी किसी दुःखको दुःख नहीं मानती थीं, वह निःसंकोच अग्निमें प्रवेश कर गईं। यदि आप उनके चरण-चिह्नोंपर चलें तो आप भी उनके समान बन सकती हैं।

इसके बाद महात्माजीने उनसे कताई करने और खादी पहननेका अनुरोध किया। उन्होंने कहा कि सीताके समय स्त्रियाँ तो क्या, कोई पुरुष भी विदेशी कपड़ा नहीं पहनता था। जैसे हर घरमें चूल्हा होता है, उसी तरह कमसे-कम एक चरखा भी रहता था और घरकी स्त्रियाँ कताई करती थीं। आपमें से जो लोग खद्दर खरीद सकते हैं, उनसे मेरा अनुरोध है कि वे ऐसा करें। लेकिन साथ ही मेरा यह भी अनुरोध है कि आप अपने पीड़ित भाई-बहनोंके लिए कताई करें और अखिल भारतीय खादी मण्डलको सूत भेजें।

अन्तमें उन्होंने सभीसे अखिल भारतीय देशबन्धु स्मारक कोषमें चन्दा देनेकी अपील की और कहा कि देशबन्धुकी अन्तिम इच्छाके अनुसार यह रकम खादी-प्रचार और ग्राम-संगठनके कार्यमें लगाई जायेगी।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, १५-९-१९२५

१०१. भाषण : अन्त्यजोंकी सभा, पुरुलियामें

१३ सितम्बर, १९२५

जिन भाइयों और बहनोंने हाथ उठा[1] कर बताया है कि हिन्दू उन्हें अस्पृश्य मानते हैं, उन्हें मैं बता देना चाहता हूँ कि मैं भी डोम हूँ। मुझे भंगी या डोम जो कहें, मैं वही हूँ। मेरा दृढ़ विश्वास है कि मैला उठाने-मात्रसे कोई आदमी बुरा या घृणित नहीं बन जाता। माँ सदैव अपने बच्चेका मैला साफ करती है, पर समाज उसे अस्पृश्य नहीं मानता। अस्पृश्य तो वह है जो बुरा काम करे, जिसका हृदय अपवित्र हो। मैं अपने डोम भाइयों और बहनोंसे तथा दूसरी अस्पृश्य जातियोंके लोगोंसे यही अनुरोध करना चाहता हूँ कि वे हिन्दुओंसे या हिन्दू धर्मसे घृणा न करें। डोमों तथा अन्य अस्पृश्य जातियोंके साथ जो दुर्व्यवहार होता रहा है, हिन्दू लोग उसे दूर करनेके उपाय ढूँढ़ने और इस दुर्व्यवहारके कारण इन जातियोंकी जो हानि हुई है उसकी पूर्ति करनेका भरसक प्रयत्न कर रहे हैं। इस समय देश-भरमें कितने ही ऐसे हिन्दू हैं जिन्होंने अपना जीवन अन्त्यजोंकी दशा सुधारनेके लिए अर्पित कर दिया है।

१. हिन्दीमें लिखे मानपत्रका उत्तर देनेसे पहले गांधीजीने उपस्थित अस्पृश्योंको हाथ उठानेके लिए कहा था ताकि वे जान सकें कि सभामें कितने अस्पृश्य लोग मौजूद हैं। मूल हिन्दी भाषण उपलब्ध नहीं है।

परन्तु अन्त्यजोंसे मेरी एक प्रार्थना है। आपके समाजमें जो बुराइयाँ आ गई है, आप उन्हे दूर करनेका प्रयत्न अवश्य करे। मै अपनी बंगाल-यात्राके दौरानमें संयुक्त प्रान्त और बिहारके कई अन्त्यज भाइयोसे मिला। उनसे मुझे मालूम हुआ कि उनमें शराब पीने और जुआ खेलनेका दुर्व्यसन है। यह सच है कि आजकल दूसरे हिन्दू, यहाँतक कि ब्राह्मण भी, शराब पीने और जुआ खेलनेके दुर्व्यसनोसे ग्रस्त है। परन्तु हमें दूसरोंकी बुराइयोंका अनुकरण नही करना चाहिए। इसलिए मै अपने डोम और दूसरे अन्त्यज भाई-बहनोसे यही प्रार्थना करता हूँ कि ईश्वरके लिए आप इन दुर्व्यसनोसे दूर रहें।

किसी औरसे नही बल्कि स्वयं आप लोगोंसे ही मुझे मालूम हुआ कि आप सब भ्रष्टाचार, अनैतिकता और असत्यके भी शिकार है। आपको अपने अन्दरसे ये बुराइयाँ भी दूर करनी हैं।

यदि आपने तुलसीकृत 'रामायण' पढ़ी है तो आप जानते होगे कि रामचन्द्र, सीता और लक्ष्मणने अत्यन्त स्नेहपूर्वक गुहको, जो कि अन्त्यज थे, हृदयसे लगाया था। मै चाहता हूँ कि भारतमें एक बार फिर वैसा ही हो। जो चाण्डाल माने जाते है, वे भी अपनी बुराइयोंको दूर करें और श्री रामचन्द्रके भक्त बन जायें। मेरी आपसे यह भी प्रार्थना है कि आप विदेशी वस्त्रोका उपयोग त्याग दें और हाथ-कते सूतके, हाथसे बुने कपड़े ही पहनें। आपको याद रखना चाहिए कि श्री रामचन्द्रके जमानेमें धनी, निर्धन, सभी देशमें तैयार की गई खादी पहनते थे, विदेशी वस्त्रका उपयोग कोई नही करता था।

साथ ही अन्त्यजोके अलावा जो अन्य लोग यहाँ उपस्थित है, उन्हे मैं बताना चाहता हूँ कि हिन्दू-धर्ममें अस्पृश्यताका कोई स्थान नही है।

इस विषयमें व्यक्तिगत रूपसे मुझे दृढ़ विश्वास है। जिस दिन मुझे यह विश्वास हो जायेगा कि अस्पृश्यता हिन्दू-धर्मका अनिवार्य अग है उसी दिन मै हिन्दू-धर्म त्याग दूंगा। हम शास्त्रों और वेदोंको ईश्वरीय वाणी मानते है। फिर ईश्वरीय वाणीमें किसी जाति-विशेषके सदस्योंके प्रति घृणाका समर्थन कैसे हो सकता है? जबतक हिन्दू अपने बीच अस्पृश्यताको सहन करते रहेंगे और अपने अन्त्यज भाइयोसे घृणाका व्यवहार करेंगे तबतक दूसरे राष्ट्र भी हमारे राष्ट्रके साथ अछूतोंका-सा व्यवहार करेगे, जैसा कि वे आज करते है।

और इसी प्रकार मुझे पूरा विश्वास है कि जबतक हम हिन्दू-समाजसे अस्पृश्यता रूपी बुराई नहीं दूर कर पाते, हमें स्वराज्य नहीं मिल सकता। 'रामायण' और तुलसी-दासने तो दयाधर्मकी शिक्षा दी है। इसलिए ऊँची जातियोके जो हिन्दू यहाँ उपस्थित है उनसे मेरा अनुरोध है कि यदि वे अपने आपको सनातनधर्मी मानते है, यदि उनके मनमें गायके लिए आदर है, तो उन्हे अस्पृश्य जातिके लोगोसे घृणा नही करनी चाहिए।

ईश्वर आप सबका कल्याण करे।

[अंग्रेजीसे]

सर्चलाइट, २०-९-१९२५

१०२. पत्र : महादेव देसाईको

भाद्रपद बदी १३ [१५ सितम्बर, १९२५][1]

चि० महादेव,

तुम्हारे दो पत्र मिले हैं। कल तार[2] किया है, मिला होगा। मैं चाहता हूँ कि तुम दुर्गाको[3] दुःखी करके न आओ। गुजराती लिखनेका काम जैसे-तैसे चला लूँगा। दलालने कहा है कि [मुझे] दायाँ हाथ थोड़ा बहुत तो लिखनेमें इस्तेमाल करना ही चाहिए। इसलिए 'नवजीवन' के लिए तो उसका इस्तेमाल करने ही लगूँगा। अंग्रेजी [लेख] तो क्रिस्टोदास और प्यारेलालको लिखाऊँगा। सेनने खबर भेजी है कि वह नहीं आ सकेगा।

तारमें रामदासके बारेमें जो लिखा है वह तुम समझ गये होगे। सतीशबाबू मेरे साथ हैं। पुरुलियामें तो उनके भाई, हेमप्रभा देवी और प्रफुल्ल घोष भी मेरे साथ थे। उर्मिला देवी नहीं आई, मीना भी नहीं। कार्यक्रम निम्नलिखित है :

१७ राँची

१८ हजारीबाग

१९ गया और उसी रातको पटना।

१९–२४ पटना

इसके बादका पता नहीं।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (एस० एन० ११४३३) की फोटो-नकलसे।

१०३. भाषण : चक्रधरपुरकी राष्ट्रीयशालामें

१५ सितम्बर, १९२५

श्रीयुत राजेन्द्रप्रसाद और सतीशबाबूके साथ महात्माजी आज सबेरे चक्रधरपुर पहुँचे। राष्ट्रीय पाठशालाके विद्यार्थियोंके समक्ष भाषण करते हुए महात्माजीने कहा कि प्राचीन कालमें शिष्य गुरुके पास 'समित्पाणि' जाता था, अर्थात् हाथमें समिधा लेकर जाता था, जिससे यह व्यक्त होता था कि वह शिक्षा प्राप्त करने और बदलेमें सेवा करने आया है। शिक्षाकी आधुनिक पद्धतिने उसकी सेवाका रूप बदल

१. पत्रमें जो कार्यक्रम दिया गया है उससे मालूम होता है कि यह सितम्बर १९२५ को लिखा गया था।

२. उपलब्ध नहीं है।

३. महादेव देसाईकी पत्नी।

दिया है। आधुनिक शिक्षा-पद्धतिने उस प्राचीन क्रमको बदल दिया है जिसके फल-स्वरूप शिक्षा देने और ग्रहण करनेकी प्रक्रिया नीरस बन गई है। राष्ट्रीय पाठ-शालाके विद्यार्थियोंको वही प्राचीन पद्धति अपनानी चाहिए; वे जो शिक्षा पाते हैं उसके बदलेमें उन्हें भी कुछ देना चाहिए। वे गुरुके पास 'सूत्रपाणि' आयें अर्थात् इस प्राप्त विद्याका बदला सूत देकर या चरखा चलाकर चुकायें। विद्यार्थियोंको चाहिए कि वे कताई करें और इस प्रकार विद्या प्राप्तिके बदलेमें राष्ट्रकी सेवा करें।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, १६-९-१९२५

१०४. तार: इलाहाबादकी रामलीला समितिके मन्त्रीको

रांची

[१७ सितम्बर, १९२५ या उससे पूर्व][1]

खेद है दोनोंमें से किसी भी पक्षपर मेरा कोई प्रभाव नहीं है।[2]

गांधी

[अंग्रेजीसे]

लीडर, २०-९-१९२५

१०५. टिप्पणियाँ

भारतीय हर्कुलिस और ब्राह्मण-वर्ग

साबरमतीमें मेरे स्वल्पकालिक निवासके दरम्यान इस माहकी ८ तारीखको सुबह ४ बजे प्रो० राममूर्ति मुझसे मिलने आ गये। मिलनेका समय पहलेसे ही तय हो गया था। पाठक जानते होंगे उन्हें 'भारतीय हर्कुलिस' कहा जाता है; और अपना यह नाम उन्हें अच्छा भी लगता है। उन्होंने आधुनिक ब्राह्मणोंकी दुष्टताके विषयमें मुझसे दिलचस्प बातचीत की और इस प्रसगमें मैंने उनसे जो सवाल किये, उनसे उन्हें बड़ा सन्तोष हुआ दिखाई दिया और कुछ क्षणोंके लिए हम दोनों अब्राह्मणोंको मानो अपने बीच आत्मीयताका अनुभव हुआ और अपनी कल्पनामें उन्होंने शायद यह भी देखा कि समय आ रहा है जब भारतके अब्राह्मण मिलकर ब्राह्मणोंके खिलाफ जिनकी कि संख्या, उनके कथनानुसार बहुत थोड़ी ही है, युद्ध छेड़ देंगे।

१. साधन-सूत्रके अनुसार यह तार १७ सितम्बरको मिला था।

२. यह स्पष्ट नहीं है कि तार किस सम्बन्धमें भेजा गया था। लेकिन सन्दर्भसे ऐसा लगता है कि दशहराके त्यौहारके सिलसिलेमें भेजा गया होगा।

हमारी इस बातचीतके बाद व्यायामकी कलामें निष्णात उन प्रोफेसरने बड़ी गम्भीरतापूर्वक मेरी शारीरिक शक्तिके बारेमें चिन्ता प्रकट की और 'नीरोग शरीरमें नीरोग मन' के रहस्योंकी ओर मेरा ध्यान खींचा। उन्होंने देखा कि मैं बखुशी उनके विचारसे सहमत हो गया। उन्होंने व्यायामके जो प्रयोग मुझे सिखाये वे थे तो मजेदार परन्तु मेरा खयाल है कि मुझ-जैसे अधेड़ आदमीके लिए वे कुछ भारी थे। उन्होंने कहा कि समस्त यूरोपीय व्यायाम विधियोंसे मेरी यह व्यायाम विधि श्रेष्ठ है। मैंने उनके इस कथनकी हार्दिक पुष्टिकी। उनकी व्यायाम क्रियाएँ और कुछ नहीं, हठ-योगकी क्रियायें थीं। मैं समस्त नवयुवकोंसे उन क्रियाओंका अभ्यास करनेको कहता हूँ। प्राणायामका अभ्यास यदि किसी अनुभवी मनुष्यकी देखरेखमें किया जाये तो उससे स्वास्थ्यको बहुत लाभ पहुँचता है। पर इसके सम्बन्धमें कोई, अपने-आपको धोखा न दे। जो लोग इन क्रियाओंको करना चाहें वे केवल स्वास्थ्यके ही हेतुसे ऐसा करें। निस्सन्देह एक हदतक उनका थोड़ा-बहुत आध्यात्मिक मूल्य भी है। परन्तु मैं जोरके साथ कहना चाहता हूँ कि नवयुवक आध्यात्मिक पुनर्जीवन प्राप्त करनेके लिए हठ-योगके फेरमें न पड़ें। वर्तमान युगमें शारीरिक क्रियाओंकी अपेक्षा हार्दिक भक्तिसे वह अधिक प्राप्त होता है और हठ-योगके द्वारा आध्यात्मिक सिद्धि प्राप्त करनेके लिए मनुष्यको ऐसे गुरुकी आवश्यकता होती है जो इन क्रियाओंके द्वारा स्वयं आध्यात्मिक सिद्धि प्राप्त कर चुका हो। मैंने ऐसे गुरुकी खोज की है पर मुझे सफलता नहीं मिली। पर इसका यह अर्थ नहीं कि भारतवर्षमें शुद्ध हठ-योगी है ही नहीं। पर जब मुझ जैसा सचेष्ट खोजी सफल नहीं हुआ, तब नवयुवक सावधान रहें, और बिना कड़ी परीक्षाके किसीको अपना गुरु न बना बैठें।

पर मैं तो इधर-उधर भटक गया। मुझे अपने उस वायदेको पूरा करना चाहिए जो मैंने प्रोफेसर साहबसे उस समय किया था जब उन्होंने मेरे और उनके बीच राजनैतिक विषयपर हुई बातचीतका लिखित सार मेरे पास संशोधनके लिए भेजा था। यह सार मेरे पास उस समय आया था जब मेरे पास उसे देखनेका जरा भी अवकाश न था। इसलिए मैंने कहा कि आपके लिखे मजमूनको देखनेकी अपेक्षा मैं खुद उसका सार 'यंग इंडिया' में दे दूँगा। उन्होंने मुझे बताया था कि म्युनिसिपल तथा जिला बोर्डोंके चुनावोंमें मेरे नामका, अपनेको कांग्रेसी और स्वराज्यवादी बतानेवाले लोग अपने हकमें अनुचित उपयोग कर रहे हैं। उन्होंने यह भी कहा कि इसके कारण जनतामें आपका प्रभाव कम हो रहा है। मैंने उनसे कहा कि मुझे अपने प्रभावका कुछ खयाल नहीं है, और यदि लोग मेरे नामका अनुचित उपयोग करते हैं तो मेरे पास इसका कोई इलाज नहीं है। इसपर प्रोफेसर साहबने कहा कि "क्या आप कमसे-कम यह भी नहीं कर सकते कि मतदाताओंपर अपना मत प्रकट कर दें कि वे क्या करें?" मैंने उत्तर दिया कि ऐसा तो मैं एकसे अधिक बार कर चुका हूँ। मेरे नजदीक खाली कांग्रेसके नामका बिल्ला लगा होना काफी नहीं है। अगर मैं दूँगा भी तो सिर्फ उन्हीं लोगोंको अपना वोट दूँगा जो वास्तवमें कांग्रेसी और स्वराज्यवादी हैं। इसलिए मैं उन्हीं लोगोंको अपना मत दूँगा जिनको कांग्रेसके सिद्धान्तोंमें विश्वास

हो, जो आदतन् हाथ-कती, हाथ-बुनी खादी पहनते हों, जो सब जातियोंकी एकतामें विश्वास रखते हों और यदि वे हिन्दू हैं तो वे अछूत कहलानेवाले भाइयोंके सक्रिय हिमायती हों, और यह मानते हों कि अस्पृश्यता-रूपी कलक अविलम्ब दूर होना चाहिए, और जो नशीली वस्तुओके पूर्ण निषेधके पक्षमें हों और काग्रेसके तमाम प्रस्तावोंका पालन करते हो। यदि मुझे ऐसे उम्मीदवार न मिलें तो मैं अपना मत अपने पास रख छोड़ूँगा। वोट न देना भी मत-दाताके अधिकारका उसी तरह प्रयोग करना है, जिस तरह कि उसका देना।

उसके बाद प्रोफेसर महोदयने मुझसे ब्राह्मणका लक्षण पूछा। मैंने कहा कि ब्राह्मण वह है जो अपने धर्म और देशके लिए अपनेको स्वाहा कर दे और उनकी सेवाके लिए खुशीसे गरीबीका जीवन अगीकार करे। इसपर उन्होंने तुरन्त यह प्रश्न किया, "क्या ऐसे ब्राह्मण हैं भी?" मैंने जवाब दिया, "बहुत नही, पर शायद जितने आपके खयालमें हैं उससे अधिक होंगे।"

प्रिय और अप्रिय सत्य

हाल ही में प्रकाशित हुए एक पत्र-लेखकके एक पत्रसे मैंने कुछ वाक्य निकाल दिये थे। उसके सिलसिलेमें वे शिकायत करते हैं :

> **मेरे उस पत्रसे आपने जो-कुछ अंश निकाल डाला, उसके बावजूद मैं कह सकता हूँ कि आपको भेजे अपने तमाम पत्रोंमें, और खासकर उनमें जिनका सम्बन्ध साम्प्रदायिक प्रश्नोंसे है, मैंने 'सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्, न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्', इसका नहीं बल्कि विलियम लॉयड गैरिसनके उस वचनका पालन किया है, जो कि बम्बईके 'इंडियन सोशल रिफॉर्मर' में उसके ध्येय-वाक्यकी तरह मुख-पृष्ठपर ऊपर ही छपता है; वचन यह है: "मैं सत्यकी तरह कठोर और न्यायकी तरह अटल रहूँगा।"**

कठोर सत्यपर मुझे कोई आपत्ति नही है। हाँ, तीखे चटपटे सत्यपर जरूर मुझे ऐतराज है। तीखी चटपटी भाषा सत्यके लिए उतनी ही विजातीय है जितनी कि नीरोग जठरके लिए तेज मिर्चें। जो वाक्य मैंने हटा लिये थे वे लेखकके आशयको स्पष्ट करनेके लिए या उसे ज्यादा प्रभावोत्पादक बनानेके लिए आवश्यक न थे। वे न तो उपयोगी थे, न आवश्यक; उलटा दिल दुखानेवाले थे। ऐसा विचार करनेका रिवाज-सा पड़ गया दिखाई देता है कि सच बोलनेके लिए मनुष्यको कठोर भाषाका प्रयोग करना चाहिए, हालाँकि जब सत्य अप्रिय भाषामें उपस्थित किया जाता है, तब सत्यकी हानि ही होती है। यह ऐसा ही है जैसा कि शक्तिको सहारा देनेकी कोशिश करना। सत्य स्वय ही पूर्ण शक्तिमान् है और उसे कड़े शब्दोंका सहारा देनेकी चेष्टा करना, सत्यका अपमान करना है। मुझे उस संस्कृत-वचनमें और गैरीसनके उस ध्येय-वाक्यमें कोई विरोध नही दिखाई देता। मेरी रायमें उस संस्कृत श्लोकका अर्थ है कि मनुष्यको सत्य मृदु भाषामें बोलना चाहिए। यदि कोई मृदुलतासे ऐसा न कर सके तो बेहतर है कि वह चुप रहे। इसका आशय यह है कि जो मनुष्य अपनी जिह्वाको

काबूमें नहीं रख सकता उसमें सत्यका अभाव है। दूसरे शब्दोंमें कहें तो अहिंसारहित सत्य, सत्य नहीं, बल्कि असत्य है। गैरीसनके वचनका अर्थ उसके जीवनको सामने रखकर लगाना चाहिए। वह अपने समयका एक नम्रसे-नम्र मनुष्य था। इस वचनमें प्रयुक्त उसकी भाषाको देखिए; वह कहता है — मैं सत्यकी तरह कठोर होऊँगा। पर चूँकि सत्य कठोर हो तो वह सत्य नहीं रह जाता और इसलिए वह कभी कठोर नहीं होता बल्कि हमेशा प्रिय और हितकर होता है, अत: उस वचनका यही अर्थ हो सकता है कि गैरीसन उतना ही नम्र होगा जितना कि सत्य। दोनों वचन वक्ता या लेखककी आन्तरिक अवस्थासे सम्बन्ध रखते हैं, उस प्रभावसे नहीं जो कि उन लोगोंपर पड़ेगा, जिनके सम्बन्धमें वह लिखा या कहा गया हो। 'इंडियन सोशल रिफॉर्मर' यदि कटु बात करता भी है तो बहुत ही कम। वह सबके साथ न्यायोचित व्यवहार करता है। हालाँकि कभी-कभी वह जल्दीमें अपनी धारणा बना बैठता है और आगे चलकर व्यक्ति और वस्तुके सम्बन्धमें अपने ये अनुमान उसे बदलने पड़ते हैं। इन दिनों जब कि चारों ओर कटुता फैली हुई है, बड़ी सावधानी बरतनेकी आवश्यकता है। और आखिर पूर्ण सत्य तो जानता ही कौन है? मामूली व्यवहारमें तो सत्य सिर्फ एक सापेक्ष शब्द है। जो बात मेरे नजदीक सत्य है वही आवश्यक रूपसे मेरे अन्य साथियोंके नजदीक सत्य नहीं हो सकती। हम सब उन अन्धे आदमियोंकी तरह हैं जिन्होंने हाथीको टटोल-टटोलकर उसका जुदा-जुदा वर्णन किया था; और उनकी बुद्धि और विचारके अनुसार वे सब अपनी-अपनी जगह सही थे। परन्तु हम यह भी जानते हैं कि वे सब गलतीपर थे। उनमें से हर आदमी सत्यसे बहुत दूर था। इसलिए कटुतासे बचनेकी कोई जितनी भी कोशिश करे, कम है। कटुता दृष्टिको धुँधला कर देती है, और उपरोक्त कथाके चारों अन्धे जिस सीमा तक सत्यको देख पाये, कटुतासे भरा आदमी उतना भी नहीं देख पाता।

प्रश्नमाला

एक बहुत अच्छे राष्ट्रीय कार्यकर्त्ताने कुछ प्रश्न मेरे पास उत्तर देनेके लिए भेजे हैं। ये प्रश्न उत्तर-सहित नीचे दिये जाते हैं:

आप कहते हैं कि हमें स्वराज्यवादी दलकी सहायता करनी चाहिए। यहाँ सहायतासे आपका क्या तात्पर्य है?

मेरा तात्पर्य यह है कि हरएक मनुष्य जहाँतक उसकी आत्मा गवाही दे वहाँ तक अपनी योग्यताके अनुसार इस दलकी ज्यादासे-ज्यादा मदद करे। इस प्रकार जिस मनुष्यका मन विधान सभा सम्बन्धी कार्यक्रमकी ओर झुकाव रखता हो और जिसे ऐसा करनेमें कोई तात्त्विक ऐतराज न हो वह इस दलमें सम्मिलित हो सकता है। जिसको तात्त्विक ऐतराज हो वह उससे अलग रहे; पर दलमें सम्मिलित होनेकी बात छोड़कर बाकी जितनी भी सहायता कर सके, करे। मुमकिन है उसे मत देनेमें भी आपत्ति हो। ऐसी हालतमें वह मतदान न करे। पर किसी भी हालतमें वह उस दलकी निन्दा न करे।

क्या गाँवोंके नवयुवक कार्यकर्त्ता चुनावकी सरगर्मीमें भाग लें और स्वराज्यदल-वालोंके लिए मत प्राप्त करनेमें योग दें?

परिवर्तनवादियोंको छोड़कर अन्य लोगोके लिए मैं वैसा सम्भव नहीं मानता। उदाहरणार्थ गाँवोंमें काम करनेवाले जो कार्यकर्त्ता खादीका कार्य कर रहे हैं और जिनका झुकाव राजनीतिकी ओर नहीं है, वे अपने आपको चुनावोंकी सरगर्मीसे दूर रखेंगे और अपने काममें उसके कारण वाधा नहीं पड़ने देंगे।

स्वराज्यदलवाले ग्राम बोर्डों, नगरपालिकाओं तथा स्थानीय बोर्डों आदिपर अधिकार जमाना चाहेंगे। ऐसी हालतमें खादी कार्यकर्त्ताओंको क्या करना होगा?

मैं स्वराज्य दलवालोंसे भी यह उम्मीद रखता हूँ कि वे खादीका कार्य करेंगे। उनके और अपरिवर्तनवादियोके बीच अन्तर केवल इतना ही है कि स्वराज्यदलवाले खादी-कार्यके साथ-साथ विधान सभा सम्बन्धी कार्य भी करेंगे। फलतः वे खादीके प्रेमी होते हुए भी विधान सभा सम्बन्धी कार्यको पहला स्थान देंगे। अपरिवर्तनवादियोके पास तो खादी तथा अन्य रचनात्मक कार्योंके सिवा कुछ है नहीं। दोनों अपने-अपने रास्ते जा सकते हैं और दोनोंसे यह उम्मीद है कि वे एक-दूसरेकी जहाँतक उनकी आत्मा गवाही दे, ज्यादासे-ज्यादा सहायता करेंगे।

जब चुनावमें एक ओर ब्राह्मण और दूसरी ओर अब्राह्मण उम्मीदवार एक-दूसरेके मुकाबिले खड़े होंगे तब मेरी क्या स्थिति होगी?

ऐसी हालतमें अगर मैं आपके स्थानपर होऊँ तो ईर्ष्या, द्वेष और कटुता मिटानेके सिवा उसमें और कोई दिलचस्पी नहीं लूँगा।

आपने कहा है कि अपरिवर्तनवादी स्वराज्यवादियोंका विरोध न करें, इतना ही नहीं बल्कि वे सहायता भी करें। यह सहायता किस हदतक दी जानी है?

इस प्रश्नका उत्तर मैं पहले ही दे चुका हूँ। जब मित्रता होती है तब हम अपने खास कामको कोई बाधा न पहुँचाकर भी अनेक प्रकारसे सहायता कर सकते हैं। मगर किस हदतक सहायता करनी है, यह तो हरएक व्यक्ति अपने लिए स्वयं ही तय करे। यह सहायता तो स्वेच्छापूर्वक दी जानी है, अतः इसके बारेमें दूसरा व्यक्ति निर्देश नहीं कर सकता, दबाव डालनेकी बात तो है ही नहीं। यहाँ दल-सम्बन्धी अनुशासनका प्रश्न नहीं है। मेरी राय एक व्यक्तिकी राय है। मेरे खुदके आचरणसे इस सहायताका अर्थ ज्यादा अच्छी तरह समझमें आ सकता है।

आपने स्वराज्यवादियोंकी सहायता करनेका जो निश्चय किया है वह महज जरूरतको देखकर या यह समझकर कि भारतवर्षको विधान सभाओंसे कुछ लाभ पहुँचेगा?

इसमें एक तीसरा कारण भी हो सकता है। मैं यह नहीं मानता कि वर्तमान दशामें विधान सभाएँ भारतवर्षको लाभ पहुँचा सकेंगी; और न मैं स्वराज्यवादियोंकी जो थोड़ी-बहुत सहायता कर रहा हूँ वह जरूरत देखकर कर रहा हूँ। मुझे विधानसभा सम्बन्धी कार्यक्रम नापसन्द है, मगर मैं देखता हूँ कि भारतवर्षके अधिकांश पढ़े-लिखे लोग

उस कार्यक्रमके बगैर रह ही नहीं सकते। इन लोगोंमें जो सबसे आगे हैं उन्हें यदि उग्र प्रकारका सक्रिय राजनैतिक प्रचार-कार्य करने दिया जाये तो वे खुशीसे कौंसिल-प्रवेशका विचार छोड़ देंगे। उनको अकेले रचनात्मक कार्यक्रमसे सन्तोष नहीं हो सकता। उनकी समझके अनुसार उसकी गति बहुत धीमी है। मैं मानता हूँ कि उनकी यह भावना सच्ची है। और चूँकि मैं देश-हितके लिए सभी शक्तियोंका उपयोग करना चाहता हूँ और चूँकि मैं समझता हूँ कि विधान सभामें जाकर भी रचनात्मक कार्यक्रमको आगे बढ़ाया जा सकता है, और जो-जो बातें देशके हितके विरुद्ध हों उनका शालीनतापूर्वक विरोध किया जा सकता है, मैंने अपनी सहायता उस पार्टीको देना स्वीकार किया है, जो मेरी शर्तोंको सबसे अधिक पूरा करती है।

खादी-कार्यकर्त्ताओंकी गणना

नीचे लिखा व्यौरा और मिला है:[1]

प्रान्त या केन्द्रका नाम	कार्यकर्त्ताओंकी संख्या	वैतनिक या अवैतनिक	ग्रेजुएट	कुल वेतन	फी कार्यकर्त्ता औसत खर्च
सिन्ध	६ पूरा समय काम करनेवाले	५ वै; १ अवै०	—	२३० रु०	३८
	३ कुछ समय काम करनेवाले	२ वै०; १ अवै०	१	११५ रु०	३८
पंजाब खादी-मण्डल	१२	कोई तफसील प्राप्त नहीं हुई।			
दिल्ली	७ पूरा समय काम करनेवाले	६ वै०; १ अवै०	—	१६५ रु०	२३.५
	९ कुछ समय काम करनेवाले	सभी अवै०	—	×	×

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १७-९-१९२५

१. इससे पूर्वके आँकड़ोंके लिए देखिए "खादी कार्यकर्त्ताओंका लेखा", २७-८-१९२५।

१०६. अमेरिकाके मित्रोंसे

मुझे कितने ही अज्ञात यूरोपीय और अमेरिकी सज्जनोंकी मित्रताका सौभाग्य प्राप्त है। मुझे यह लिखते हुए खुशी होती है कि ऐसे मित्रोंकी सख्या बढ़ती जा रही है, खासकर अमेरिकामें। कोई एक साल पहले मुझे अमेरिका आनेके लिए प्रेमपूर्ण निमन्त्रण मिला था। अब वही निमन्त्रण और भी आग्रहपूर्वक दिया गया है; सो भी मेरा तमाम खर्चा उठानेके आश्वासन सहित। मैं उस कृपा-पूर्ण निमन्त्रणको स्वीकार करनेमें तब भी असमर्थ था और आज भी हूँ। उसे स्वीकार करना तो बड़ा आसान काम है; पर मुझे इस प्रलोभनमें नही पड़ना चाहिए, क्योंकि मेरा दिल कहता है कि जबतक भारतके शिक्षित और प्रबुद्ध लोगोंको अपनी बातसे कायल न कर सकूँ तवतक मैं उस महान् देशके लोगोंके दिलोंमें अपने विचार प्रभावकारी ढंगसे न बैठा पाऊँगा।

मुझे अपनी मूलभूत स्थितिकी सचाईके बारेमें तो कोई सन्देह है ही नहीं। पर मैं जानता हूँ कि अभी मैं अधिकांश शिक्षित लोगोंको उसका कायल करनेमें समर्थ नही हो रहा हूँ। इसलिए मैं जबतक भारतके शिक्षित-समुदायसे अलग-थलग हूँ तबतक मैं अमेरिकी या यूरोपीय मित्रोंसे अपने देशके लिए कोई कारगर सहायता नहीं प्राप्त कर सकता। हाँ, मैं विचार करते समय समस्त संसारके हितको दृष्टिमें रखना चाहता हूँ। मेरी देशभक्तिमें सामान्यतः सारी मानव-जातिका हित समाविष्ट है। अतएव मेरी भारत-सेवामें सारी मनुष्य-जातिकी सेवाका अन्तर्भाव हो जाता है। पर मुझे लगता है कि यदि मैं उसे छोड़कर पश्चिमकी सहायता प्राप्त करनेके लिए वहाँ जाऊँगा तो यह अपने दायरेसे बाहर जाना होगा: इसलिए फिलहाल तो मुझे भारतके अपने संकुचित मंच ही से पुकारकर पश्चिमसे जो-कुछ सहायता मिल सके उसपर सन्तुष्ट रहना चाहिए। यदि मुझे अमेरिका और यूरोप जाना ही हो तो अपनेको शक्तिमान् बनाकर जाना चाहिए, न कि अपनी कमजोरीकी हालतमें, जो कि मैं महसूस करता हूँ कि आज है। अपनी कमजोरीसे मेरा मतलब देशकी कमजोरीसे है। क्योंकि भारतकी आजादीकी सारी योजनाका दारोमदार उसकी भीतरी ताकतके विकासपर है। वह योजना आत्म-शुद्धिकी योजना है। अतएव पश्चिमके राष्ट्र भारतीय आन्दोलनकी सर्वोत्तम सहायता अपने विशेषज्ञोंको उस योजनाके मर्मको समझने तथा उसका अध्ययन करनेके लिए भेजकर ही कर सकते हैं। वे अपने दिल और दिमागको खुला रखकर और सत्य-शोधकके विनयभावको लेकर यहाँ आयें। तब शायद वे उसकी वास्तविक स्थितिको देख पायेंगे, वरना यदि मैं अमेरिका गया तो पूर्ण सत्यनिष्ठ रहनेके निश्चय-के बावजूद सम्भव है कि उनके सामने मेरे द्वारा भारतका गौरवान्वित रूप ही पेश हो। लिखित अथवा कथित शब्द-बलकी अपेक्षा मैं विचार-शक्तिमें अधिक विश्वास रखता हूँ। और यदि जिस आन्दोलनका मैं प्रतिनिधित्व करना चाहता हूँ उसमें जीवनी-शक्ति होगी और ईश्वरका वरद हस्त उसपर होगा तो संसारके विभिन्न देशोंमें मैं

स्वयं न जाऊँ तो भी वह विश्वमें फैले बिना न रहेगा। जो हो, इस समय तो मुझे अपने सामने प्रकाश नही दिखाई दे रहा है। मुझे धीरजके साथ यही भारतमें ही धीरे-धीरे अपना रास्ता बनाना होगा — तबतक, जबतक कि मुझे भारतकी सीमाके बाहरके लिए रास्ता साफ न दिखाई दे।

निमन्त्रणका आग्रह करनेके बाद उन अमेरिकी मित्रने मेरे विचारार्थ अनेक प्रश्न भेजे हैं। मै उनका स्वागत करता हूँ और उनका उत्तर खुशीके साथ यहाँ देता हूँ। वे कहते हैं :

आप यहाँ पधारनेका निश्चय चाहे आज या आगे कभी करें या न आनेका निश्चय करें, मुझे विश्वास है कि आप नीचे लिखे प्रश्नोंको अपने विचारके योग्य समझेंगे। वे मेरे दिमागमें बहुत समयसे घूम रहे हैं।

उनका पहला प्रश्न यह है :

क्या वह समय आ गया है — या आ रहा है — जबकि आप भारतकी सबसे अच्छी सहायता दुनिया और खासकरके इंग्लैंड और अमेरिकामें एक नई चेतनाका प्रादुर्भाव करके कर सकेंगे?

इस प्रश्नका उत्तर आंशिक रूपसे ऊपर आ ही चुका है। मेरी रायमें अभी वह समय नहीं आया है — अलबत्ता, किसी भी दिन आ सकता है जब मैं भारतके बाहर जाऊँ और सारी दुनियामें नई चेतना जगाऊँ। वैसे यह प्रक्रिया इस समय भी प्रत्यक्ष और अज्ञात रूपसे धीरे-धीरे चल रही है।

क्या सारी मानवजातिके वर्तमान हित सब जगह आपसमें इतने गुँथे हुए नहीं हैं कि भारतवर्ष या कोई भी देश दूसरे देशोंके साथ अपने वर्तमान सम्बन्धोंसे ज्यादा दूरतक नहीं हट सकता?

मैं लेखककी इस बातको मानता हूँ कि कोई भी देश बहुत समयतक दुनियासे अलग-थलग नहीं रह सकता। भारतकी स्वराज्य प्राप्त करनेकी वर्तमान योजना सबसे अलग हो जानेकी योजना नहीं है, बल्कि सारे विश्वके लाभके लिए पूर्ण आत्मोपलब्धि और आत्माभिव्यक्तिकी योजना है। भारतकी वर्तमान गुलामी और असहाय अवस्थासे केवल भारतको ही नहीं, केवल इंग्लैंड को ही नही, बल्कि सारी दुनियाको चोट पहुँच रही है।

क्या आपका सन्देश और आपके साधन तत्त्वतः सारे विश्वके लिए नहीं हैं? क्या वह ऐसा विश्वोपयोगी सत्य नहीं है जो अनेक देशोंके यत्र-तत्र बिखरे सहृदय जनोंके हृदयोंमें प्रवेश करके शक्ति संचय करेगा और फिर वे लोग उसके द्वारा धीरे-धीरे संसारकी काया-पलट कर देंगे?

यदि मैं यह बात बिना अहंकारके और नम्रतापूर्वक कह सकूँ तो, मेरा सन्देश और मेरे साधन अपने सहज रूपमें अवश्य ही सारी दुनियाके लिए हैं और इससे प्रभावित होनेवाले पश्चिमके नर-नारियोंकी दिनोंदिन बढ़ती संख्याको देखकर मुझे गहरा सन्तोष होता है।

यदि आप अपना सन्देश सिर्फ पूर्वकी ही भाषामें और केवल भारतकी वर्तमान विशिष्ट परिस्थितियोंको ही दृष्टिमें रखकर प्रस्तुत करते रहे तो क्या इस बातका भारी खतरा नहीं है कि जो अनावश्यक है वह मूल वस्तु मान ली जाये — यानी कि कुछ बातें जो भारतकी विशेष परिस्थितियोंपर ही लागू होती हैं उन्हें सारे संसार और सभी परिस्थितियोंके लिहाजसे भी महत्त्वपूर्ण मान लिया जाये?

लेखकका बताया खतरा मेरे ध्यानमें है; पर वह अनिवार्य मालूम होता है। मैं एक ऐसे वैज्ञानिककी स्थितिमें हूँ जिसका प्रयोग अभी बहुत-कुछ अधूरा है और इसलिए जो अभी उस प्रयोगके वृहत् परिणामों और उनके वृहत्तर अनुपरिणामोंको सर्वसुबोध भाषामें व्यक्त करनेमें असमर्थ है। इसलिए इस प्रयोगको लेकर गलतफहमी होनेकी जोखिम मुझे उठानी ही पड़ेगी। यह गलतफहमी तो बराबर ही रही है और अब भी शायद बहुत जगह मौजूद है।

पूर्वके साथ-साथ पश्चिमी सभ्यताके सन्दर्भमें आपके सन्देशका क्या अर्थ है, दुनियाको समझानेके लिए क्या आपको अमेरिका (जो कि अपने अनेक दोषोंके बावजूद शायद दुनियाकी सभी जीवित कौमोंसे आध्यात्मिकताकी ओर अधिक झुका हुआ है) नहीं आना चाहिए?

लोग सामान्यतः मेरे सन्देशको उसके परिणामोंसे समझेंगे। उस सन्देशको लोग सुनें और उसका उनपर प्रभाव हो, इसका सबसे छोटा रास्ता फिलहाल शायद यही होगा कि उसके परिणामोंको ही उसका प्रचार करने दिया जाये।

उदाहरणार्थ, क्या आपकी प्रेरणासे प्रभावित पश्चिमी देशोंके निवासी चरखा कातें और उसका प्रचार करें?

पश्चिमी लोगोंके लिए चरखा कातने और उसका प्रचार करनेकी आवश्यकता तो नहीं है, परन्तु हाँ, यदि वे भारतके साथ अपनी सहानुभूति प्रकट करने, या अपनी संयम-साधनाके लिए, अथवा चरखेकी गृह-उद्योग सम्बन्धी मूलभूत विशेषताओंको कायम रखते हुए उसे और अधिक उपयोगी बनानेमें अपनी आविष्कारक बुद्धि-शक्तिका प्रयोग करनेके लिए उसे चलायें तो बात दूसरी है। परन्तु चरखेका सन्देश तो अधिक व्यापक है। उसका पैगाम है — सादा जीवन, मानव-जातिकी सेवा करना, औरोंको हानि न पहुँचाते हुए जिन्दगी बसर करना, धनी और निर्धन, मजदूरों और मिल-मालिकों, राजा और रंकमें अटूट [प्रेम] सम्बन्ध उत्पन्न करना। स्वभावतः यह बृहत्तर सन्देश सबके लिए है।

रेलगाड़ियों, डाक्टरों, अस्पतालों तथा आधुनिक सभ्यताके अन्य अंगोंकी जो निन्दा आपने की है क्या वह तात्त्विक और अपरिवर्तनीय है? क्या हमें पहले अपनी आत्मिक शक्तिका इतना विकास न कर लेना चाहिए कि जिससे यन्त्र-साधनोंको तथा आधुनिक जीवनकी सुसंगठित, वैज्ञानिक और उत्पादक शक्तियोंको आध्यात्मिक रंगमें रंगा जा सके?

रेलगाड़ी, आदिकी मैं जो निन्दा करता हूँ वह अपनी जगहपर ठीक है, किन्तु वर्तमान आन्दोलनसे उसका कोई सम्बन्ध नहीं है, और पत्र-लेखकने जिन-जिन चीजों

के नाम गिनाये हैं उनमें से किसीके भी त्यागकी बात इस आन्दोलनमें नही है। वर्तमान आन्दोलनमें मैं न तो रेल गाड़ियोंका विरोध कर रहा हूँ और न अस्पतालोंका, पर एक आदर्श राज्यमें उनके लिए कोई स्थान नही देखता। वर्तमान आन्दोलन ठीक वैसा ही प्रयास है जैसा कि लेखक महोदय चाहते हैं। तथापि यह आन्दोलन मशीनोंको आध्यात्मिक रंग देनेका प्रयत्न नहीं है, यह आन्दोलन अगर सम्भव हो तो — क्योंकि मुझे तो वह असम्भव-सी बात मालूम होती है — यन्त्रोंका संचालन करनेवाले मनुष्योंमें मानवीयता और करुणाकी भावना पैदा करनेका प्रयत्न है। धन और सत्ताको थोड़े ही लोगोंके हाथोंमें केन्द्रित करने और विशाल जन-समुदायका शोषण करनेकी नीतिसे मशीनोंका नियोजन मैं बिलकुल अनुचित मानता हूँ। आजकल मशीनोंका अधिकांशतः ऐसा ही उपयोग हो रहा है। मशीन आज जहाँ है वहाँ उसका उपयोग केवल स्वार्थ-साधनके लिए और कमजोरोंके शोषणके लिए हो रहा है; चरखेका आन्दोलन उसे उसकी इस स्थितिसे हटाकर उपयुक्त स्थानपर बिठानेका प्रयास है। अतएव, मेरी योजनामें यन्त्र उद्योगके संचालक न केवल अपना, या अपने राष्ट्रका ही, बल्कि सारे मानव-समाजका विचार करेंगे। मसलन लंकाशायरका अपने यन्त्र-उद्योगका उपयोग भारत तथा दूसरे देशोंकी आर्थिक लूटके लिए करना बन्द हो जायेगा, और इसके विपरीत वे ऐसे उपाय सोचेंगे जिससे भारतवर्ष अपनी कपासको खुद अपने ही गाँवोंमें कपड़ेके रूपमें परिवर्तित कर सके। इसी तरह, मेरी योजनाके अन्तर्गत अमेरिकी लोग भी अपने आविष्कार सम्बन्धी बुद्धि-कौशलके द्वारा पृथ्वीकी दूसरी जातियोंको लूट कर अपनेको मालामाल करनेकी बात न सोचेंगे।

अमेरिका-जैसे देशमें जिसकी परिस्थितियाँ इतनी अनुकूल हैं, क्या यहाँकी उत्तम वैचारिक चेतनाको इतना जाग्रत करना, उसकी विकास-धाराको ऐसी दिशामें प्रेरित करना सम्भव नहीं है जिससे उसमें इतनी शक्ति, इतना साहस, ऐसी उदारता आ जाये जो भारतके करोड़ों नर-नारियोंकी आत्माको, और भारतकी ही क्यों सारी दुनियाके सारे मानव-समाजकी आत्माको मुक्त कर दे?

यह जरूर सम्भव है। अवश्य ही मुझे यह आशा है कि अमेरिका सर्वोत्तम मानवीय चेतनाको विकसित करनेका उद्योग करेगा; पर शायद वह समय अभी नहीं आया है। शायद वह समय भारत द्वारा स्वराज्य प्राप्तिके पहले न भी आये? इससे बढ़कर खुशी मुझे और किसी बातसे नही हो सकती कि अमेरिका और यूरोप अपनी-अपनी शक्ति-भर भारतके दुर्गम पथको सुगम बनायें। वे भारतके रास्तेमें जो-जो प्रलोभन हैं उन्हें हटाकर, और उसे अपने प्राचीन उद्योगोंका अपने गाँवोंमें पुनरुत्थान करनेके लिए उत्साहित करते हुए ऐसा कर सकते हैं।

इसका क्या कारण है कि दूर देशमें मुझ-जैसे लोग आपके कृतज्ञ हैं और आपका अनुकरण करनेके लिए उत्सुक हैं? क्या इसके ये दो कारण मुख्य नहीं हैं: पहला, आज सारे संसारकी सर्वप्रथम और बुनियादी आवश्यकता एक नई आध्यात्मिक चेतना है — सामान्य मनुष्यके विचार और भावमें इस प्रतीतिकी आवश्यकता कि मानवमात्रमें समान दैवी अंश है, सब एक हैं और आपसमें बंधु हैं? दूसरा, अन्य किसी विख्यात

व्यक्तिकी अपेक्षा आपमें वह चेतना अधिक है, और साथ ही उसे औरोंमें जाग्रत करनेकी शक्ति भी।

मैं सिर्फ यही आशा कर सकता हूँ कि लेखकका अनुमान सच निकले।

वह आवश्यकता जिसका, भगवान्‌की दयासे मनुष्यको प्राप्त, सर्वोत्तम उत्तर आपके पास है सारी दुनियाकी आवश्यकता है — यह तो आप स्वीकार करते हैं न? ऐसी स्थितिमें यदि आप भारतको ही अपना कार्य-क्षेत्र मानते रहें तो आपका कार्य कैसे पूरा हो सकता है? यदि मेरे हाथ या पाँवमें इतनी जीवनी-शक्ति डाल दी जाये जो मेरे शेष शरीरके अनुपातसे बहुत अधिक हो तो क्या इससे मेरा स्वास्थ्य अच्छा रहेगा या मेरे हाथ-पैरोंके लिए स्थायी स्वास्थ्यकी दृष्टिसे भी वह हितकर होगा?

मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि अकेले भारतमें मेरा जीवन-कार्य पूर्ण न होगा। परन्तु, मैं समझता हूँ मुझमें इतनी विनम्रता है कि अपनी सीमाओंको मानता हूँ और यह समझता हूँ कि जबतक खुद भारतवर्षमें मेरे प्रयोगका परिणाम न मालूम हो जाये तबतक मुझे अपने कार्यक्षेत्रको भारतके संकुचित दायरेमें ही सीमित रखना चाहिए। जैसा कि मैं पहले ही कह चुका हूँ, मैं भारतवर्षको एक स्वतन्त्र और बलवान् राष्ट्रके रूपमें देखना चाहूँगा, जिससे कि वह संसारके हितके लिए स्वेच्छा पूर्वक और शुद्ध बलिदान करनेके लिये तैयार रहे। शुद्ध व्यक्ति कुटुम्बके लिए, कुटुम्ब गाँवके लिए, गाँव जिलेके लिए, जिला प्रान्तके लिए, प्रान्त राष्ट्रके लिए और राष्ट्र सारे मनुष्य-समाजके लिए अपना बलिदान करता है।

आपके सन्देशके प्रति गहरी श्रद्धा रखता हुआ क्या मैं यह भी निवेदन कर सकता हूँ कि अकेले या मुख्यतः भारतवर्षको ध्यानमें रखनेकी अपेक्षा यदि आप सारी दुनियाको अपने सामने रखकर चलें तो उससे शायद खुद आपकी दृष्टि और प्रेरणाको कुछ लाभ हो?

हाँ, मैं मानता हूँ कि इस बातमें बहुत बल है। मेरी पश्चिम-यात्राकी बदौलत मुझे और व्यापक दृष्टि तो नहीं मिल सकती, क्योंकि मैंने यह दिखलानेकी चेष्टा की है कि वह वैसे भी व्यापकतम है — पर हाँ, यह सम्भव है कि उस दृष्टिको कार्यान्वित करनेके नये साधन मालूम हो सकें। यदि मुझे इसकी जरूरत है तो ईश्वर इसका रास्ता खोल ही देगा।

क्या सरकारका राजनैतिक स्वरूप भारतवर्षमें अथवा अन्यत्र व्यक्तिके आत्म-बल — अर्थात् अपने अन्दर तथा आसपास व्याप्त भागवत तत्त्वसे जो-कुछ सर्वोत्तम प्रेरणा वह ग्रहण कर सकता है, उसकी अभिव्यक्तिके साहस जितना ही महत्त्वपूर्ण है?

व्यक्तिका आत्मबल हमेशा सबसे महत्त्वपूर्ण वस्तु है। राजनैतिक स्वरूप उसी आत्म-बलका एक स्थूल रूप है। किसी देशके औसत आदमीके आत्म-बलमें और उस देशकी सरकारमें अटूट सम्बन्ध है — पहली चीज दूसरीसे कोई भिन्न और पृथक् अस्तित्व नहीं रखती। इसलिए मैं मानता हूँ कि लोग वैसी ही सरकारको पाते हैं जिसके कि

लायक वे होते हैं। दूसरी भाषामें कहूँ तो स्वराज्य स्व-प्रयत्नके ही द्वारा प्राप्त हो सकता है।

क्या सब जगह व्यक्तियोंमें इस आत्म-बलके स्पष्टीकरण और विकासकी आवश्यकता ही बुनियादी आवश्यकता नहीं है—जो कि शायद थोड़े लोगोंसे शुरू होगा और एक दैवी स्पर्शकी तरह बहुतसे लोगोंमें फैल जायगा?

हाँ, जरूर है।

आपकी यह शिक्षा ठीक ही है कि ऐसे आत्म-बलका ठीक-ठीक विकास होनेसे भारतकी आजादी सुनिश्चित हो जायेगी। क्या यह आत्म-बल ही सर्वत्र सभी राजनैतिक, आर्थिक और अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं, जिनमें युद्ध और सुलहके प्रश्न भी शामिल हैं, के स्वरूपको निर्धारित नहीं करेगा? क्या आज, जबकि सारा मानव-समाज परस्पर पड़ोसी है, मानव सभ्यताके उन अंगोंको भारतमें शेष संसारकी अपेक्षा श्रेष्ठ बनाया जा सकता है?

इसका उत्तर मैं ऊपरवाले अनुच्छेदोंमें पहले ही दे चुका हूँ। मैं 'यंग इंडिया' में कई बार लिख चुका हूँ कि भारतकी स्वाधीनतासे संसार-भरमें शान्ति तथा युद्ध सम्बन्धी दृष्टिकोणमें क्रान्तिकारी परिवर्तन हो जायेगा। भारतकी पौरुषहीनताका असर सारे मानव-समाजपर पड़ रहा है।

मेरी अथवा अन्य किसी व्यक्तिकी अपेक्षा आप इस बातको ज्यादा अच्छी तरह जानते हैं कि इन प्रश्नोंका उत्तर किस प्रकार दिया जाये। यहाँ मैं आपके सिद्धान्तके प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धा व्यक्त करनेका इच्छुक हूँ। अमेरिका और समस्त मानव-जातिकी उन समस्याओंको सुलझानेके बारेमें, जिनके हल किये जानेकी तत्काल आवश्यकता है, मैं आपके नेतृत्वकी ओर बड़ी उत्कण्ठासे निहार रहा हूँ। इसलिए क्या आप कृपा करके इस बातको याद रखेंगे कि यदि (और जब) वह समय आये कि भारतके उत्थानके लिए आपने जो दिशा इतनी प्रेरणापूर्वक निर्धारित की है, उस दिशामें प्रगतिके कदम कुछ रुकें—इस इन्तजारमें कि पीछे पड़ गई पश्चिमी दुनिया बराबरतक पहुँच ले—तो हम पश्चिमके निवासियोंका यह निमन्त्रण आप अपनी सेवामें बराबर मानें कि आप कुछ महीनों अपना समय हमें दें और हमारे पास रहें। मेरी अपनी भावना तो यह है कि यदि आप हमें बुलायेंगे और आदेश देंगे तो हम (इस विशाल धरापर बिखरे हुए आपके अज्ञात अगणित अनुयायी) एक ऐसे नये और उदात्त विश्व-व्यापी मानवसमाजके अन्वेषण और उसकी स्थापनाके लिए आपके साथ चल पड़ेंगे जिसमें कि बन्धुत्व, जनसत्ता, शान्ति और आत्मोन्नतिका चिरकालीन स्वप्न भारत, इंग्लैंड, अमेरिका इत्यादि देशोंके निवासियोंके जीवनमें अङ्कित हो जाएगा।

क्या ही अच्छा होता यदि सारी दुनियाका नेतृत्व करनेकी अपनी शक्तिपर मेरा विश्वास होता। मुझमें मिथ्या विनय नहीं है। यदि मेरे मनमें ऐसी प्रेरणा हुई तो मैं ऐसे हार्दिक निमन्त्रणको स्वीकार करनेमें एक क्षणकी भी देरी न करूँगा।

परन्तु अपनी सीमाओंका भान होनेके कारण मुझे लगता है कि मेरा यह प्रयोग एक दायरेतक ही सीमित रहना चाहिए। जो बात अंशपर घटित होगी वही पूर्णपर हो सकती है। हाँ, यह सच है कि मेरी निर्दिष्ट दिशामें भारतकी प्रगति रुक गई-सी दीख पडती है; पर मैं समझता हूँ कि ऐसा लगता-भर है। वास्तवमें वह रुकी नही है। १९२० में जो छोटा-सा बीज वोया गया था वह नष्ट नही हुआ है। मैं समझता हूँ कि वह गहरी जड़ें पकड़ रहा है और बहुत जल्द वह एक विशाल वृक्षके रूपमें प्रकट होगा। पर यदि मैं भ्रममें हूँ तो मेरी अमेरिका-यात्रासे मिल सकनेवाला कृत्रिम और अस्थायी उत्साह उसको पुनर्जीवन नही दे सकता। मैं समस्त ससारके सहयोगकी बाट जोह रहा हूँ। मुझे उसका आगमन दिखाई दे रहा है। यह हार्दिक निमन्त्रण भी उसीका एक सकेत है। पर मैं जानता हूँ कि उसके लिए हमें अपनेको पात्र बनाना होगा — तभी वह सहायता एक भारी बाढकी तरह हमारे पास आयेगी — ऐसी बाढ़ जो कूडा-करकट वहा ले जाती है और नव-शक्ति प्रदान करती है।

[अग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १७-९-१९२५

१०७. एक शिक्षाप्रद तालिका

गुजरात प्रान्तीय काग्रेस कमेटी द्वारा तैयार की गई निम्नलिखित तालिकाको देखनेसे बहुत-सी बातें सामने आती है.

३१ अगस्तको समाप्त होनेवाले अर्धवर्षमें गुजरातमें कताई-सदस्यताकी प्रगतिसे सम्बन्धित आँकड़े:

मूलतः पंजीकृत सदस्य	**वर्ग 'क'**	**२,२१५**
	वर्ग 'ख'	**३६५**
जिन सदस्योंने साल-भरका पूरा कोटा दे दिया है		**२६६**
जिन सदस्योंने छः महीनेका कोटा दे दिया है		**३१४**
अनियमित तौरपर सूत भेजनेवाले लोग		**१,२७३**
जिन्होंने बिलकुल भेजा ही नहीं		**७२७**
कुल प्राप्त सूतकी मात्रा गजोंमें		**१५,८३,०००**

टिप्पणी: इस तालिकासे प्रकट होता है कि मूलत अपने नाम देनेवाले २,५८० सदस्योमें से केवल ५८० को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके अगले चुनावोमें मत देनेका अधिकार है।

अनियमित तौरपर सूतके रूपमें चन्दा देनेवालोंने ६,७५० हजार गज सूत भेजा है, अर्थात् जहाँ प्रत्येकको १२,००० गज सूत भेजना चाहिए था, वहाँ औसतन केवल ५,५०० गज सूत भेजा गया है।

ये आँकडे हमारे सामने कितना ज्यादा काम पडा हुआ है, उसका एक चित्र पेश करते है। गुजरातमें संगठन-शक्तिका अभाव नही है, खादी-कार्यकर्ताओका अभाव

भी नहीं है; किन्तु बड़े आश्चर्यकी बात है कि जितने सदस्योंके नाम रजिस्टरमें दर्ज किये गये थे, उनमें से एक चौथाईसे भी कम लोगोंने अपनी जिम्मेदारी पूरी की है। किन्तु, जिस उत्साही कार्यकर्त्ताको अपने-आपमे और अपने उद्देश्यमें विश्वास है, उसे इन आँकड़ोंसे हताश होनेकी जरूरत नहीं है। मगर साथ ही उन्हे अपने रास्तेकी कठिनाइयोंको कम करके भी नही आँकना चाहिए। स्वराज्यके लिए काम किये बिना हम स्वराज्य प्राप्त नही कर सकते। कांग्रेसियोंको वादे करके उन्हें भूल जानेकी गन्दी आदत हो गई है — और विशेषकर तब जब उन वादोंका सम्बन्ध कुछ काम करनेसे हो। जीवनके सामान्य मामलोंमें तो हम जो वादा करते हैं उसे हमसे पूरा करवाया जाता है, किसी भी व्यापारिक लेन-देनके मामलोंमें वादा तोड़नेपर जुर्माना किया जाता है। सुसंगठित समाजोंमें किसी भी स्वैच्छिक संगठनको, स्वेच्छासे दिया गया वचन सम्बन्धित व्यक्तिके लिए किसी व्यापारिक लेन-देनके सम्बन्धमें किये गये वादेसे कहीं अधिक बन्धनकारी होता है। इस प्रकार जो ऋण कानूनके बलपर वसूल किया जा सकता हो उसके मुकाबले बिना किसी लिखा-पढ़ीके लिए ऋणकी अदायगीको प्राथमिकता दी जाती है। लेकिन न जाने क्यों काग्रेसको दिये गये वचनोंके सम्बन्धमें अभीतक कर्तव्यकी वैसी भावना नहीं आ पाई है जैसी कि हम बिना लिखा-पढीके लिये गये ऋणकी अदायगीके दायित्वके सम्बन्धमें देखते हैं। जिनका खादीमे विश्वास नहीं है, वे निस्सन्देह ऐसा कहेंगे कि गुजरातके आँकड़े कताई सदस्यताकी सम्पूर्ण निष्फलताके जीते-जागते प्रमाण हैं। ऐसे आलोचकोंसे मै सहमत नहीं हूँ। कताई सदस्यताके कारण हमें यह मालूम हो गया है कि हमारी सबसे बड़ी कमजोरी क्या है। याद रहे कि चवन्निया सदस्यता भी इससे कुछ अधिक सफल नहीं साबित हुई थी।

जिन लोगोंने एक बार अपने नाम दर्ज करा लिये वे फिर दुबारा स्वेच्छासे अपना चन्दा देने नहीं आये। और अगर मासिक चन्दा देनेकी बात होती तो उनमें भी उतने ही वादा-शिकन लोग निकलते जितने कि कातनेवालोंमें निकले हैं। लेकिन, कुछ पैसा देनेका दायित्व एक बात है और हर रोज कुछ काम करनेका दायित्व बिलकुल दूसरी बात है। स्वराज्य कोई पैसेका लेन-देन नही है। इसे पैसेसे नही खरीदा जा सकता। इसे तो निरन्तर, पूरे जोर-शोरसे ठोस कामके बलपर ही प्राप्त किया जा सकता है। और मै तो यह कहनेकी धृष्टता करूँगा कि अगर काग्रेसने अपने सदस्योंको कताईके बजाय प्रतिदिन आधे घंटेतक पेंसिल छीलनेका दायित्व सौंपा होता तो भी हमें ऐसा ही नतीजा देखनेको मिलता। इसलिए इन आँकड़ोंपर विचार करनेके बाद मै उनसे यही सबक निकालता हूँ कि अगर हमें कांग्रेसको काम करनेवाली प्रभावकारी और शक्तिशाली संस्था बनाना हो तो हमें धैर्यके साथ उसी रास्तेपर आरूढ़ रहना होगा, जिसपर हमने बेलगाँवमें अपने कदम बढ़ाये थे। बहुत सम्भव है कि अनिवार्य कताईकी शर्त हटा दी जाये, लेकिन अगर काग्रेस मताधिकारकी वैकल्पिक शर्तके तौरपर कताईको कायम रखती है तो उसे सफल बनानेके प्रयत्नमें किसी तरहकी ढिलाई नहीं आनी चाहिए। तीस करोड़की आबादीमें से कुछ-एक लाख ऐसे स्त्री-पुरुष पा सकनेमें हमें कठिनाई नहीं होनी चाहिए जो खुशी-खुशी और पूरे अटूट नियमके

साथ राष्ट्रके लिए थोड़ा श्रम करें। इसके लिए कताईको ही इसलिए चुना गया है कि राष्ट्रके लिए यह बड़ा महत्त्व रखती है और यह काम बहुत सीधा-सादा है। गुजरात-के विभिन्न जिलोंमें कताई सदस्यताके क्षेत्रमें हुई प्रगतिका विशद विवरण मैंने नहीं दिया है। प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीकी रिपोर्टमें विस्तृत विवरण दिया गया है। कमेटीका संगठन इतना सुसम्पूर्ण और इतना प्रामाणिक है कि जहाँ उससे अगर जनताकी शक्ति ठीक-ठीक प्रकट होती है, वहाँ उसकी कमजोरी भी कभी छिपती नहीं है। आँकड़ोंको तफसीलसे देखनेपर ज्ञात होता है कि जो पाँच सौ चालीस सदस्य अब भी अपना पूरा कोटा दे रहे हैं, वे गुजरातके सभी जिलोंमें फैले हुए नहीं हैं। वे पाँच कताई-मण्डलोंके लोग हैं। अगर ये कताई-मण्डल नहीं होते तो ये पाँच सौ चालीस सदस्य भी आज नहीं रह जाते। इसलिए अगर स्वेच्छया कताई करनेके कामको सार्वजनीन बनाना है तो सारे भारतमें ऐसे कताई संगठनोंका होना आवश्यक है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १७-९-१९२५

१०८. क्या हिन्दू धर्ममें शैतानकी कल्पना है?

एक भाई लिखते हैं:

कुछ महीने पहले आपने एक ऐसे शीर्षकके अन्तर्गत, जो उसमें चर्चित विषयको देखते हुए ठीक नहीं था, मेरा एक पत्र प्रकाशित किया था, जिसमें कतिपय धार्मिक विचारसरणियों और ईश्वरके प्रति विश्वासको लेकर कुछ चर्चा की गई थी।[1] अब मैं एक सवाल शैतानके (सामी जातिके विश्वासोंके अनुसार) — ईश्वरके प्रतिद्वंद्वीके — सम्बन्धमें पूछना चाहता हूँ। इसके नामका प्रयोग आप अपने लेखों और भाषणोंमें बार-बार करते हैं। और इस तरह करते हैं कि श्रोताओं और पाठकोंके मनपर ऐसी छाप पड़ती है कि आप सचमुच उसकी सत्तामें विश्वास करते हैं। उदाहरणके लिए आप ६-८-१९२५ के अंकमें प्रकाशित अपना "शैतानका जाल" शीर्षक लेख देख सकते हैं। अगर उसमें आपका उद्देश्य सिर्फ प्रभाव उत्पन्न करना होता तो मुझे कोई आपत्ति नहीं होती, क्योंकि आखिरकार आप उन लोगोंकी भाषामें लिख या बोल रहे थे, जिन्हें सामी धर्मसमुदायमें से ही एक ईसाई धर्मके माध्यमसे यह विश्वास करना सिखाया गया है कि वास्तवमें शैतानका अस्तित्व है। किन्तु, इस लेखसे अन्य बातोंके अलावा यह भी प्रतीत होता है कि आप शैतानके अस्तित्वमें विश्वास करते हैं। मेरी तुच्छ सम्मतिमें तो यह विश्वास हिन्दूधर्मकी मान्यताओंके विरुद्ध है। जब अर्जुनने श्रीकृष्णसे पूछा कि मनुष्यका बार-बार पतन क्यों होता है तो

१. देखिए खण्ड २६, पृष्ठ ५६६-६८।

उन्होंने कहा, "काम एष, क्रोध एष" हिन्दूधर्मकी मान्यताके अनुसार तो यही लगता है कि हमें लुभानेवाले इस शैतानका हमसे अलग कोई अस्तित्व नहीं है, और वह एक भी नहीं है; क्योंकि शास्त्रोंमें तो मनुष्यके छः शत्रु बताये गये हैं: काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर। इस तरह यह स्पष्ट है कि हिन्दू धर्ममें शैतान, अवपतित देवदूत, प्रलोभक या जिसे एक फ्रांसीसी लेखक (अनातोले फ्रांस) ने "ईश्वरका कारकुन" कहा है, के लिएं कोई स्थान नहीं है। तब फिर आप हिन्दू होकर भी इस तरह क्यों बोलते और लिखते हैं, मानो आप शैतानके अस्तित्वमें विश्वास करते हों?

'यंग इंडिया' के पाठक इन पत्रलेखक भाईसे[1] भलीभाँति परिचित हैं। वे कुछ इतने जागरूक रहते हैं कि जिस अर्थमें मैं शैतान शब्दका प्रयोग कर सकता हूँ, उसे वे न जानें -- यह तो हो नहीं सकता। लेकिन, मैंने देखा है कि उनकी कुछ ऐसी प्रवृत्ति है कि जिन बातोंके सम्बन्धमें तनिक भी गलतफहमीकी सम्भावना हो या जिनके सम्बन्धमें कुछ ज्यादा स्पष्टीकरण जरूरी माना जा सकता हो, उनके सम्बन्धमें वे मुझसे कुछ कहला कर ही छोड़ते हैं। मेरे विचारसे तो हिन्दू धर्मकी खूबी उसकी सर्व-सग्राहकतामें है। 'महाभारत' के दिव्य लेखकने अपनी महान् कृतिके विषयमें जो बात कही है[2] वह बात हिन्दू धर्मपर भी उतनी ही लागू होती है। हिन्दू-धर्म में हर धर्मका सार मिलेगा। और जो चीज इस धर्ममें नहीं है, वह असार या अनावश्यक है। बेशक, मेरी ऐसी मान्यता है कि हिन्दू धर्ममें शैतानके लिए स्थान है। 'बाइबिल' की शैतान सम्बन्धी कल्पना न नई है और न मौलिक। 'बाइबिल' में भी शैतानका कोई स्थूल अस्तित्व तो बताया नहीं गया है। या फिर यों कहिए कि हिन्दू धर्ममें जितना स्थूल अस्तित्व रावण और समस्त असुर जातिका है, 'बाइबिल' में शैतानका भी उतना ही है। दस सिर और बीस भुजाओंवाले ऐतिहासिक रावणमें मेरा उससे कुछ अधिक विश्वास नहीं है, जितना कि ऐतिहासिक शैतानमें है। और जिस प्रकार शैतान और उसके साथी स्खलित देवदूत हैं, उसी प्रकार रावण और उसके साथी भी अवपतित देवदूत या कहिए अवपतित देवता हैं। अगर बुरे मनोविकारों और मनुष्यको ऊपर उठानेवाले विचारोंको इस तरह पेश करना मानो वे देहधारी व्यक्ति हों अपराध है, तो इस अपराधके लिए शायद सबसे अधिक दोषी हिन्दू-धर्म ही है। कारण, पत्रलेखक द्वारा उल्लिखित छ: मनोविकारों और बहुतसे अन्य मनोविकारोंको भी क्या हिन्दू धर्ममें देहधारी व्यक्तियोंकी तरह पेश नहीं किया गया है? धृतराष्ट्र और उनके सौ पुत्र आखिर क्या हैं? मानव-जातिके विकासमें कल्पना, अर्थात् कविता ठीक अन्ततक एक महत्त्वपूर्ण और आवश्यक भूमिका निभाती ही रहेगी। हम बराबर इन मनोविकारोंकी चर्चा इस तरह करते ही रहेंगे, मानो वे देहधारी व्यक्ति हों। क्या वे भी हमें उतनी ही यातना नहीं देते जितनी यातना बुरे लोग देते हैं?

१. एस० डी० नाडकर्णी।

२. 'यन्न भारते तन्न भारते'।

इसलिए अन्य असंख्य प्रसगोंकी तरह यहाँ भी यही कहना पड़ेगा कि शब्दोंके पीछे मत पड़ो, सारको ग्रहण करो।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १७-९-१९२५

१०९. भाषण : राँचीकी सार्वजनिक सभामें[1]

१७ सितम्बर, १९२५

मानपत्रका उत्तर देते हुए गांधीजीने कहा कि मेरा यह विश्वास दिनोंदिन दृढ़ होता जा रहा है कि सिर्फ चरखा ही भारतके करोड़ों लोगोंकी भूख मिटा सकता है। बेशक खाली समयमें करनेको और भी धन्धे है, परन्तु जिसे लाखों लोग अपना सकें, ऐसा उपयुक्त धंधा चरखेपर सूत कातनेके अलावा और कोई नहीं है। मैं पूरे देशमें घूमता रहा हूँ, लेकिन अभीतक किसीने कोई ऐसा धन्धा नहीं सुझाया जो चरखेका स्थान ले सके। बिहारके पास एक लाख रुपयेकी खादी पड़ी है। यदि वह बिक जाये तो प्राप्त धनसे दूनी खादी बन सकेगी। अकेला राँची ही आसानीसे इतनी खादी खरीद सकता है। लोग मिलके कपड़ेको स्वदेशी मान लेते हैं, लेकिन दिल्ली और बम्बईके बने बिस्कुट क्या घरकी रोटीका स्थान ले सकते हैं? तब फिर आपको भी बम्बईकी मिलोंमें बने कपड़ेके बजाय बिहारमें बनी खादी क्यों नहीं पहननी चाहिए? यदि आपको अपनी निर्वसना माँ-बहनोंका तन ढँकना हो तो आपको खादी ही खरीदनी चाहिए। खादी अपेक्षाकृत महँगी है तो क्या हुआ, उसके लिए दी गई हर पाई गाँवोंकी गरीब स्त्रियोंको मिलती है। बम्बईके अन्त्यजोंकी रक्षा इसी चरखेने की है। अस्पृश्यताकी समस्याका उल्लेख करते हुए गांधीजीने कहा कि हिन्दूधर्ममें अस्पृश्यता जैसी कोई चीज नहीं है। इसी अस्पृश्यताने भारतीयोंको सारे संसारमें अस्पृश्य बना दिया है। आपको इन अस्पृश्य भारतीयोंकी दशा देखनी हो तो दक्षिण आफ्रिका जाइए, आपको मालूम होगा कि अस्पृश्यता क्या चीज है। स्वर्गीय गोखले इसे अच्छी तरह जानते थे और अब भारत[2] भी जान गया है। तुलसीदासने तो आपको दया-धर्मकी शिक्षा दी है, लेकिन आज आप उसके विपरीत आचरण कर रहे हैं। आपको अस्पृश्यताकी यह समस्या दूर करनी ही है अन्यथा स्वराज्य कभी नहीं मिल सकता।[3]

[अंग्रेजीसे]

सर्चलाइट, २०-९-१९२५

१. यह सभा सेंट पॉल स्कूलके मैदानमें शामके ३ बजे हुई थी। सभामें राँचीकी जनताकी ओरसे गांधीजीको एक मानपत्र तथा देशबन्धु स्मारक कोषके लिए १,००१ रुपयेकी थैली भेंट की गई थी।

२. आज, २०-९-१९२५ में यहाँ सरोजिनी नायडू लिखा है।

३. इसका मिलान २०-९-१९२५ के आजमें प्रकाशित विवरणसे भी कर लिया गया है।

११०. भाषण : हजारी बागकी सार्वजनिक सभामें[1]

१८ सितम्बर, १९२५

महात्माजीने मानपत्रोंका उत्तर देते हुए कहा कि इन मानपत्रोंके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ, परन्तु उनमें से एक मानपत्रमें जिन दो बातोंका उल्लेख किया गया है, उन्हें सुनकर मुझे दुःख हुआ है। उसमें कहा गया है कि अभी हालतक वहाँके हिन्दुओं और मुसलमानोंमें परस्पर सद्भाव था, परन्तु अब थोड़ा मनमुटाव हो गया है। इस बातको जानकर मुझे दुःख हुआ है। लेकिन मुझे आशा है कि दोनों जातियोंके नेता मिलकर इस मामलेको सुलझायेंगे। दूसरे आपने मुझे यह बतलाया है कि बिहारियों और बंगालियोंमें भी कुछ ऐसा ही चल रहा है। मैं नहीं जानता इसका क्या कारण है। मैं तो इतना ही जानता हूँ कि यदि आप भारतको स्वतन्त्र कराना चाहते हैं, यदि आप स्वराज्य पाना चाहते हैं, तो आपको यह विचार छोड़ ही देना होगा कि आप बिहारी, बंगाली, गुजराती या मारवाड़ी हैं। आपको तो यही याद रखना होगा कि आप सबसे पहले भारतीय हैं। किसी एक प्रान्तके निवासीकी हैसियतसे आपको उसी भावनासे काम करना चाहिए कि आप अपने प्रान्तको पूरे देशकी सेवाके लिए तैयार कर रहे हैं। मुझे समझमें नहीं आता कि आप लोगोंमें इस प्रकारकी कटुता कैसे आ गई। इसके बारेमें भी मैं वही कहता हूँ जो मैंने हिन्दू-मुस्लिम मतभेदके बारेमें कहा है। अपने भाषणके अन्तमें गांधीजी खादी और चरखेके विषयमें बोले।

[अंग्रेजीसे]

सर्चलाइट, २०-९-१९२५

१११. भाषण : विद्यार्थियोंकी सभामें[2]

[१८ सितम्बर, १९२५][3]

मेरे पास आप लोगोंके लिए कोई बना बनाया सन्देश नहीं है। जब मैं यहाँ आया तो मुझे इस बातका कोई अनुमान नहीं था कि मुझसे इस सभामें भाषण देनेके लिए कहा जायेगा। फिर भी मैं आप लोगोंके समक्ष समाजसेवाके विषयमें कुछ विचार रखूँगा। कलकत्ताकी एक सभामे मैंने कहा था कि समाज-सेवाके लिए सबसे पहली जरूरत चरित्र-बलकी है, और समाज-सेवा करनेके इच्छुक व्यक्तिमें यदि चरित्र

१. इसमें हजारीबागके नागरिकों, जिला बोर्ड तथा नगरपालिकाकी ओरसे गांधीजीको मानपत्र और साथमें तेरह सौ रुपयेकी थैली भेंट की गई थी।

२. यह सभा हजारीबागके सैंट कोलम्बस कालेजमें हुई थी।

३. 'बुद्धिप्रकाश' में यही तिथि दी गई है।

नही है तो वह समाज-सेवा करने योग्य नही है। यद्यपि प्रकटत: मेरा जीवन राजनैतिक संघर्षोंमें उलझा रहा है, लेकिन जो लोग मुझे जरा भी जानते हैं, वे आपको वता सकते हैं कि मैंने अपना समय मुख्यत: समाज-सेवामें लगाया है। मैं समाज-सेवाका प्रेमी हूँ और अक्सर मैंने इस कार्यका विशेषज्ञ होनेका दावा भी किया है — यदि तीस वर्षकी अटूट सेवाका अनुभव किसीको विशेषज्ञ वना सकता है तो।

अपने जीवनमें मुझे सेवामें रत दर्जन-दो दर्जन या सौ-दो सौ नहीं, बल्कि हजारों भारतीय और यूरोपीय स्त्रियों और पुरुषोके साथ लम्बे अरसेतक काम करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। मेरी नम्र रायमें समाज सेवाके विना सच्ची राजनीतिक सेवा भी सम्भव नहीं है। समाज सेवाके लिए चरित्रकी अनिवार्य आवश्यकताको मैंने तभी अनुभव कर लिया था जव दक्षिण आफ्रिकामें मैंने समाज सेवाका काम शुरू ही किया था और भारत लौटनेके वाद तो मेरी यह धारणा और पक्की हो गई। दक्षिण-आफ्रिकामें समाज-सेवा करना आसान नही था, लेकिन वहाँ जो कठिनाइयाँ सामने आती थी, वे भारतकी कठिनाइयोंके मुकावलेमें कुछ नही थी। यहाँ समाज सेवकको अन्धविश्वास, पूर्वग्रह और रूढ़िवादिताकी जिन वाधाओंसे लड़ना पड़ता है उनका परिमाण वहुत ज्यादा है। रूढ़िवादितासे कुछ लाभ भी है। रूढ़िवादी व्यक्ति वुराइयोसे दूर रहकर सही रास्तेपर चलता है। लेकिन जव रूढ़िवादितामें अज्ञान, पूर्वग्रह और अन्धविश्वास आ मिलते हैं तव वह सर्वथा अवांछनीय हो जाती है। दुर्भाग्यसे भारतमें अपना काम शुरू करते ही समाजसेवकके सामने ये तीनों वुराइयाँ दीवार वनकर आ खड़ी होती हैं। समाज सेवकके लिए यहाँ इतना काम है कि समाज सेवाके इच्छुक स्त्री या पुरुषको यह सोचनेकी जरूरत नही है कि वह क्या काम करे। समाज सेवकके लिए करनेको सैकड़ों काम पड़े हैं, और यदि वह देखनेकी कोशिश करे तो वे खुद-ब-खुद उसके ध्यानमें आ जायेंगे। हम पूरी सचाईके साथ कह सकते हैं कि यहाँ और जगहोंके मुकावले समाज-सेवा करनेका मौका वहुत ज्यादा है लेकिन काम करनेवाले ही नही हैं। यह सचमुच आश्चर्यकी वात है कि भारतके कालेजोंमें इतने लम्बे समयसे शिक्षा दी जा रही है, और फिर भी हम देखते हैं कि वहुत कम विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करनेके वाद समाज-सेवाका काम करनेके लिए आगे आते हैं।

यह सच है कि समाज-सेवाका काम रोचक और तड़क-भड़कवाला काम नही है। उसमें परिश्रम, घोर परिश्रमका करना पड़ता है। यह भी सच है कि उसमें आर्थिक दृष्टिसे कोई आकर्षण नही होता। समाज-सेवकको मुश्किलसे गुजारे लायक पैसोसे ही संतोष करना पड़ता है और कभी तो वह भी नसीव नही होता। इस समय भारत-भरमें कितने ही ऐसे युवक हैं जो समाज सेवाके काममें लगे हुए हैं। इनमें से कुछ तो प्रतिभावान ग्रेजुएट हैं जिनका चरित्र अत्यन्त ऊँचा है। उनमें से कई युवकोंको इतना कम वेतन मिलता है, जिससे केवल पेट ही भरा जा सकता है। परन्तु उन्हें इसका कोई दु:ख नही है। उन्होंने स्वेच्छासे धनोपार्जनकी लुभावनी राहोंको छोड़कर कर्त्तव्य और सेवाकी कठिन और कंटकाकीर्ण, किन्तु सुन्दर राहपर चलना स्वीकार

किया है। सेवा करनेका सुख ही उनका पुरस्कार है और इसीमें उन्हे सन्तोष है। मनुष्यके दुःखोंको दूर करनेकी दिशामें अपने प्रयत्नोंको दिनोदिन फलता-फूलता देखकर समाज-सेवी व्यक्तिको जो सन्तोष मिलता है, उसका आनन्द तो अनोखा होता है। यह सन्तोष उसकी आत्माको ऐसी शान्ति प्रदान करता है जो और कहीं प्राप्त नहीं हो सकती। अतः आइए, अब हम देखें कि समाज-सेवाके कौन-कौनसे क्षेत्र है और उनमें क्या काम किया जा सकता है। तनिक विचार करते ही हम देखेंगे कि एक बुनियादी समस्या है जो सारे भारतमें व्याप्त है, और वह है बढ़ती हुई घोर कंगाली। इसे सब लोग मानते हैं। प्रशासनिक सेवामें जो अंग्रेज अधिकारी हैं, उन्होंने भी यह स्वीकार किया है कि भारत में भयंकर गरीबी है और वह बराबर बढ़ती ही जा रही है। उन्होंने यह भी कहा है कि भारतकी कुल आबादीका दसवाँ भाग ऐसा है जिसे मुश्किलसे आधा पेट खाना मिलता है, और उसमें भी सिर्फ बासी रोटी और गन्दा-सन्दा नमक-भर। वे नहीं जानते कि दूध किसे कहते हैं। उन्होंने घी कभी चखातक नही है, हाँ, कुछ-एकने शायद कभी छाछ पी हो। उन्हे तेलतक नहीं मिलता। आप लोग कालेजमें पढ़ते हैं और गाँवोंमें शायद ही कभी जाते हों। क्या आपने कभी सोचा है कि आपसे दो कदमकी दूरीपर ऐसे गाँव है जहाँ रहनेवाले स्त्री और पुरुष अत्यन्त दयनीय गरीबीका जीवन व्यतीत कर रहे है। उन्हें पेट-भर खानेको भी नहीं मिलता। जैसी तकलीफ वे सहते हैं मैं यदि उनका वर्णन करूँ तो आप शायद मेरी बातका विश्वास नहीं करेंगे, और यदि करें भी, तो भी आप उन कष्टोंकी सही कल्पना नहीं कर पायेंगे। हाँ, यदि मैं अपनी यात्राओंमें आपको अपने साथ ले जाऊँ और सारा देश घुमाऊँ, उन गाँवोंका दर्शन कराऊँ जहाँ रेलें नहीं जाती, तब शायद आप समझ सकेंगे कि दाने-दानेको तरसना किसे कहते हैं। तब आप समझेंगे कि वह भयंकर गरीबी जिसके फलस्वरूप चारों ओर गन्दगी, विवशता और अधोगति दिखाई देती है, क्या है। अकसर गाँवोंमें ऐसे लोगोंसे मेरी मुलाकात हुई है और मैंने उन्हें ईश्वरके बारेमें कुछ बतानेकी कोशिश भी की है। मैं आपसे सच कहता हूँ कि ऐसा करनेके बाद मैं बहुत लज्जित होकर लौटा हूँ। मुझे अपने-आपसे कहना पड़ा है कि जबतक मैं इन लोगोंको खानेके लिए रोटी नहीं दे सकता तबतक मुझे इनके सामने ईश्वरके सम्बन्धमें भाषण देनेका कोई अधिकार नही है। ये लोग नही जानते कि ईश्वर किसे कहते हैं। उनके लिए तो रोटी ही भगवान है। उनके चेहरे देखिए। उनकी आँखोंमें कोई चमक नहीं है। उनसे कामके सम्बन्धमें बात कीजिए तो वे मुस्करा देते है — ना, मुस्कराते नही, मानो उपहास करते हैं। उनकी समझमें ही नहीं आता कि उन्हें काम क्यों करना चाहिए। वे बिलकुल निराश हो चुके हैं। उन्होंने जैसे मान लिया है कि उनके भाग्यमें भूखों मरना ही बदा है। ऐसी दारुण है उनकी लाचारी। ऐसे लोग दो-चार नहीं हैं, लाखों-करोड़ोंकी संख्यामें हैं। इन्हीं लोगोंके बीच समाज-सेवा करनेका असीम क्षेत्र आपके सामने खुला पड़ा है। मुझे मालूम हुआ कि इसी छोटा नागपुर जिलेमें 'हो' नामक एक जाति है। इन लोगोंके सब रीति-रिवाज मैं नहीं जानता। लेकिन मैंने देखा कि इस प्रदेशमें, जहाँ दूध-घीकी नदियाँ बहनी चाहिए,

ऐसे सुरम्य और सुन्दर जलवायुवाले, सव तरहके खनिज पदार्थोंवाले इस प्रदेशमें से इन लोगोंको लाचार होकर असमके चाय-वागानोंमें काम करने जाना पड़ता है। यदि उन्हें इन वागानोंमें जाकर काम करनेकी जरूरत हो तो वे जरूर जायें, मुझे कोई आपत्ति नही है। लेकिन उन्हें ऐसा करनेकी जरूरत नही है। इन पिछड़ी हुई जातियोंके वीच सभी नवयुवकोंके लिए काफी काम पड़ा हुआ है। यहाँ आपके लिए इन जातियोके जीवनके वारेमें अध्ययन और शोधकार्य करनेका विशाल क्षेत्र पड़ा है। अपने इस कामके दौरान आप कई अद्‌भुत वातें जान सकेंगे। आप हैरतके साथ देखेंगे कि मनुष्य-की हृदयतन्त्रीमें जो तार होते हैं वे इनके हृदयमें भी मौजूद हैं। और जव आप इनमें से कुछ तार छू पायेंगे और देखेंगे कि मानव सहानुभूतिसे वे झंकृत हो उठते हैं तो उससे आपको परिपूर्ण हार्दिक सन्तोष प्राप्त होगा। मैंने वहुधा नवयुवकोंको वताया है कि सर्वत्र उपयोगी समाज-सेवाके लिए उनमें एक चीजका होना आवश्यक है। जव मैं वह चीज वताऊँगा तव आप हँसकर कहेंगे कि यह वूढ़ा चाहे राजनीतिकी वात करे चाहे समाज-सेवाकी, और चाहे आर्थिक कष्ट दूर करनेकी, 'चरखे' का अलाप किये विना नहीं रहता। हाँ, वात यही है, क्योंकि मैं ऐसा किये विना रह नही सकता। इस वार कलकत्तामें मुझे वहुतसे लोगोंसे मिलनेका सौभाग्य मिला। उनमें से कई मिशनरी थे, कुछ व्यावसायिक संगठनोंमें काम करनेवाले लोग थे। उन सवसे वात करनेके वाद मेरी यह धारणा और भी दृढ़ हुई है कि चरखेके सम्वन्धमें ठीक ज्ञानके विना हम वड़े पैमानेपर समाज-सेवाका काम नहीं कर सकते। एक राष्ट्रके रूपमें हम जिस रोगसे ग्रस्त हैं वह है निठल्लापन, जो किसी समय हमपर जवर्दस्ती लादा गया था और अव हमारी आदत ही वन गया है। आलस्यमें अपना समय वितानेवाले राष्ट्रको जीनेका कोई अधिकार नही है। मध्यमवर्गके लोग अपनी आजीविकाके लिए आठ घंटे काम करेंगे। पर यह जरूरी नही कि आठ घटे काममें जुटा रहनेवाला व्यक्ति उद्यमी भी हो। उन्हें समयके उपयोगका पता ही नही है। मैं इसे भुगत चुका हूँ इसीलिए जानता हूँ। दक्षिण-आफ्रिकामें मैं हजारों मजदूरोंके वीच रहा और जर्जर स्वास्थ्यके वावजूद मैं उनसे ज्यादा काम कर पाता था, क्योंकि मैं उनकी तरह समय नही गँवाता था। मेरे एक कलेक्टर मित्रने एक वार मुझे लिखा था — "मुझे आपकी राजनीति विलकुल नापसन्द है।" उनका अभिप्राय असहयोगसे था, जिसके वारेमें न उन्होंने कुछ पढ़ा था और न उसकी कोई समझ ही उन्हें थी। उन्होंने लिखा, "मुझे आपका चरखा पसन्द है। मैं अंग्रेज हूँ, और इसलिए मुझे भारतकी अर्थ-व्यवस्थाकी कोई समझ नही है — लेकिन चरखेके अपने सन्देश द्वारा आपने समाजकी एक वहुत वड़ी सेवा की है, इसलिए आपका यह शौक मुझे पसन्द है।" वैसे यदि सिर्फ शौककी वात होती तव भी मैं चरखेको एक मूल्यवान शौक मानता परन्तु मेरे लिए वह शौक-मात्र ही नहीं है। मैं तो उसे एक जीवनदायी चीज मानता हूँ, क्योंकि उसने हजारों स्त्री और पुरुषोंका जीवन ही विलकुल वदल दिया है। और अगर आप-जैसे शिक्षित लोग मेरा साथ दें, और अंग्रेज भी मेरी वात मान लें तो जिन लाखों चेहरोंपर आज घोर निराशा छाई है, वहाँ मुस्कान थिरकने लगे। आज उनके चेहरोंपर निराशा

क्यों है? इसलिए कि उनके पास काम नहीं है और वे भूखों मरते हैं। भूखसे पीड़ित होनेपर भी वे सरकार द्वारा चलाई गई खर्चीली योजनाओंमें काम करने नहीं जा सकते। वहाँ अधिकतर काम है सड़कोंके लिए पत्थर तोड़नेका या लोहा ढोनेका। और आप जानते हैं कि वह काम उन्हे कैसी परिस्थितियोंमें करना पड़ता है? काम करनेवालोंमे अधिकांश स्त्रियाँ होती है और उन्हें ओवरसीयरोंकी देखरेखमें काम करना पड़ता है। ये ओवरसीयर लम्पट और सर्वथा चरित्रहीन होते है। आगेकी बात आप समझ सकते हैं। मै उसका वर्णन नहीं करूँगा। चरखेके द्वारा इन स्त्रियोंको, जिनके प्रति आपके मनमें वैसा ही आदर भाव होना चाहिए जैसा कि अपनी माँ और बहनोंके लिए होता है, इस प्रकारकी मजदूरीसे बचाया जा रहा है। चरखा उनकी सब जरूरतें पूरी कर देता है। साठ वर्षकी एक वृद्ध महिला दो मील चलकर मेरे पुत्रसे पूनियाँ लेने आती है। वह उससे कहती है, "अपने पितासे कहना उन्होंने मुझे जो चीज दी है वह मेरे लिए वरदान है, क्योंकि उससे मुझे जो सम्मान मिला है वह पहले प्राप्त नहीं था।" चम्पारनमें आज लाखों ऐसे स्त्री और पुरुष हैं जिन्हे चरखा स्वावलम्बी बना सकता है। वहाँ स्त्रियोंकी मजदूरी प्रतिदिन ५ या ६ पैसे, लड़कोंकी ३ या ४ पैसे और पुरुषोंकी ८ या १० पैसेसे ज्यादा नही है। मुझे बताया गया है कि आज एक भारतीयकी औसत वार्षिक आय ५० रुपये है। मुझे पता नही है। मुझे तो यह मालूम है कि दादाभाई नौरोजीने हिसाब लगाया था कि यह आय २६ रुपये है। स्वर्गीय लॉर्ड कर्जनने इसे गलत बताया था। उनके हिसाबसे यह आय ३३ रुपये बैठती थी। यदि हम स्वर्गीय लॉर्ड कर्जन द्वारा निर्धारित रकमको ही ठीक मान लें, हालाँकि उसमे टाटा-जैसे लखपतियोंकी करोड़ोंकी आय भी शामिल है, तो भी आप सोचिए कि इन गरीबोंके लिए प्रति मास दो या तीन रुपये ज्यादा कमानेके क्या माने होंगे। और फिर ये रुपये वे किनसे प्राप्त करेंगे? उन उद्धत ओवरसीयरोंसे नहीं जो इन बहनोंका शीलभंग करते हैं और वेतनके तीन रुपये देते समय उसमें से १ रुपया दस्तूरी काट लेते हैं। यह रुपया उन्हें ऐसे चरित्रवान नवयुवकोंकी देखरेखमें काम करते हुए प्राप्त होगा जो उनके सम्मानको अपनी बहनोंके सम्मानकी तरह पुनीत मानेंगे और सहर्ष उन्हें पैसे देंगे। आठ या दस आने अपमानके साथ प्राप्त होनेकी अपेक्षा श्रेष्ठ कार्यमें लगे व्यक्तियोंसे ४ पैसे ही पा लेना हजार दर्जे अच्छा है।

यही चरखेकी महत्ता है। समाज सेवाके लिए और भी क्षेत्र हैं। परन्तु उनके बारेमें बात करनेके लिए न तो मेरे पास समय है और न शक्ति। यदि आपमें से कुछ लोग उत्साहपूर्वक ऐसी निःस्वार्थ समाज सेवा करेंगे तो उसके लिए आपको कोई वाहवाही या रुपया पैसा नही मिलनेवाला, न कोई आपको महात्मा ही मानेगा। ये सब आपके भाग्यमें नहीं होंगे। परन्तु उसके बजाय आपको धन-दौलतसे भी ज्यादा बहुमूल्य उपहार — गरीबोंका आशीर्वाद — प्राप्त होगा। वैसा आशीर्वाद आपको तब प्राप्त होता है जब ईश्वर कहता है, 'मेरे सच्चे सेवक, तूने बहुत अच्छा काम किया है। मैं तेरे कामसे बहुत खुश हूँ।' उसके लाखों मूक बन्दोंकी सेवा करते

हुए आप अपने विधातासे निकटतम सम्बन्ध स्थापित कर सकेंगे। इससे अधिक श्रेष्ठ जीवन-लक्ष्य क्या हो सकता है? यही सबसे महान ध्येय है। ईश्वर करे आप इसी पथपर चलें।

[अंग्रेजीसे]

सर्चलाइट, २७-९-१९२५

११२. टिप्पणियाँ

नामका दुरुपयोग

अहमदाबादके चायके एक व्यापारीने जो बहुत विज्ञापन-बाजी करता है, मेरे नामका उपयोग इस तरह किया है कि मानो मैंने उसके व्यापारको प्रोत्साहन दिया हो, अथवा मैं चायको पसन्द ही करता हूँ। इस सिलसिलेमें मुझे चार-पाँच शिकायती खत मिले हैं। उस व्यापारीका नाम-ठाम देकर मैं उसकी चायका अधिक विज्ञापन नही करना चाहता। सिर्फ इतना ही लिख देना काफी है कि मैंने सारे हिन्दुस्तानमें किसी चायवालेको उसकी चायके लिए प्रमाण-पत्र नही दिया। अनेक वर्षोसे मैंने चाय नही पी। मैं नही मानता कि मनुष्यके शरीरके लिए चायकी आवश्यकता है। उबालकर बनाई गई चाय तो हानिकर हो जाती है। चाय पीनेसे दूधकी बचत होती है, पर मैं समझता हूँ कि उससे बहुत हानि हुई है। चायके बगीचोंमें मजदूरोको बहुत तकलीफें उठानी पड़ती हैं; इससे भी चाय मुझे नापसन्द है। जिसे चायकी लत पड़ जाती है वह उसके बिना परेशान हो जाता है। इसलिए ऐसे दुर्व्यसनको तो छोड़ देना ही अच्छा है। जिन्हें जेल-यात्रा करनी हो उन्हें तो चायसे बचना ही चाहिए। जेलमें चाय नहीं दी जाती। इसलिए चायके विज्ञापनमें मेरे नामका इस प्रकार उपयोग अनुचित है और इससे मुझे दुःख होता है। अतएव जो सज्जन मेरे नामका उपयोग कर रहे हैं वे अपने विज्ञापनोंसे मेरा नाम निकाल डालें।

वैसे मेरे नामके दुरुपयोगकी कहानी तो लम्बी है। मेरे नामपर मनुष्योंका वध हुआ है, मेरे नामपर असत्यका प्रचार हुआ है, चुनावोंके समय मेरे नामका दुरुपयोग किया गया है। मेरे नामपर बीड़ियाँ बेची जाती है, जिनका मैं विरोधी हूँ और मेरे नामपर दवाइयाँ बेची जाती हैं। इस तरह जहाँ आसमान ही फट पड़ा हो वहाँ पैवन्द किस तरह लगाया जाये?

एक अंग्रेज लेखकने कहा है कि जहाँ भूखोंकी या अज्ञानियोंकी संख्या अधिक होती है वहाँ धूर्त और धोखेबाज भूखों नहीं मरते। इस सत्यका अनुभव किसे न हुआ होगा? मैं तो पुकार-पुकारकर कह चुका हूँ कि मेरे नामके उपयोगसे कोई धोखेमें न आये। हर चीजके गुण-दोषका विचार स्वतन्त्रतापूर्वक करे। जहाँ किसीको मेरे प्रमाणपत्रकी आवश्यकता जान पड़े और जरा भी शक पैदा हो वही मुझसे पूछकर इत्मीनान कर लेना अति आवश्यक है।

गोशालाओंका गणना-पत्रक

पाठक जान लें कि अ० भा० गोरक्षा मण्डलका काम चींटीकी तरह धीमी गतिसे ही सही, पर चल रहा है।

पिछली सभामें भारतवर्षकी मौजूदा गोशालाओं और पिंजरापोलोंका गणना-पत्रक कुछ बातोंके ब्यौरे सहित तैयार किये जानेका प्रस्ताव पास हुआ था। कुछ गो-शालाओंका विवरण तो मिलता है; पर सभी गोशालाओंके विवरण मिलने चाहिए। विवरणमें नीचे लिखी बातोंकी तफसील होनी चाहिए:

(१) नाम।
(२) स्थान।
(३) प्रारम्भ होनेकी तिथि।
(४) ब्यौरे सहित जानवरोंकी संख्या (जैसे कि गाय, भैंस, अपंग और दूध न देनेवाली गायें और भैंसें; बैल, सांड आदि)।
(५) जमीन और इमारतोंका विवरण इत्यादि।
(६) आमदनी और खर्च।
(७) समितिके सदस्योंके नाम, आदि। कोई पत्रिका छपती हो तो वह भी भेजें।
(८) प्रचारकोंकी आवश्यकता है या नहीं?
(९) बूचड़खाना कितनी दूरीपर है?
(१०) वहाँ मवेशी बाजार है या नहीं?

प्रत्येक गोशाला और पिंजरापोलके संचालकसे प्रार्थना है कि वे इतनी जानकारी देनेवाला पत्रक श्री नगीनदास अमुलखराय (होमजी स्ट्रीट, हनुमान बिल्डिंग, फोर्ट, बम्बई – १)को भेजें। चौंडे महाराजने जहाँतक हो सकेगा कार्यकर्त्ता भेजकर सब ब्यौरा प्राप्त करनेकी जिम्मेदारी स्वीकार की है। मैं मान लेता हूँ कि जहाँ-जहाँ चौंडे महाराजके सेवक पहुँचेंगे, वहाँ-वहाँ संचालक उन्हें मदद करेंगे।

गुजरातका विवरण

आजके अंकमें अन्यत्र गुजरात प्रान्तीय कमेटीका आँकड़ों सहित विवरण प्रकाशित किया गया है। इन आँकड़ोंसे बहुत-कुछ सीखा जा सकता है। इससे बहुत-सी बातें स्पष्ट हो जाती हैं। मैं इससे निराश नहीं होता, लेकिन मैं देखता हूँ कि गुजरातमें सूत कातनेका मताधिकार आशाके अनुसार सफल नहीं हुआ। वह निष्फल ही हो गया है, ऐसा नहीं मानता; क्योंकि जो ५८० सदस्य रह गये हैं यदि वे अपने धर्मका पालन करें तो हमें उनसे बहुत-कुछ मिल सकता है। फिर भी इन आँकड़ोंसे तीन बातें स्पष्ट होती हैं।

१. हम वचनका मूल्य पूरी तरह नहीं समझते।
२. हममें उद्यमकी कमी है।
३. काम केवल वहीं हो पाता है, जहाँ कार्यकर्त्ता हों।

सूत देकर मताधिकार पानेका नियम बलपूर्वक किसी सरकार द्वारा नहीं लगाया गया है। इसे तो विचारपूर्वक कांग्रेसने निश्चित किया था। और फिर इसके अन्तर्गत जिन्होंने अपने नाम लिखवाये थे, उनपर कोई बलात्कार नही किया गया था; उन्होंने स्वेच्छासे ही अपने नाम दिये थे। तथापि २५८० नामोंमें से सूत भेजनेवाले केवल ५८० रह गये। इसका क्या अर्थ है? क्या इसका अर्थ यह नहीं है कि लोग कोई काम करना ही नहीं चाहते? इतना ही नहीं; लोगोंकी दृष्टिमें अपने दिये हुए वचनोंकी कोई कीमत ही नही है। यदि कोई कहे कि यह बात केवल चरखेके सम्बन्धमें ही लागू होती है, तो यह ठीक नहीं है। जब पैसे देनेकी बात थी तब भी हस्ताक्षर करनेवाले सब लोग नियमपूर्वक पैसे नहीं देते थे। अब यदि हम चरखा छोड़कर किसी अन्य उद्यमकी बात करें तो उसका परिणाम भी वही होगा जो चरखेका हुआ है। कल्पना कीजिये कि यदि सबसे यह माँग की जाये कि वे आधे घंटेमें नरकटसे जितनी कलमें बन सकतीं हैं उतनी कलमें कांग्रेसको फीसके रूपमें दें तो जितने लोग वचन देंगे उनमें से बहुत कम लोग उसे पूरा करेंगे। यह शिथिलता ही हमारे स्वराज्य-प्राप्तिके विलम्बका कारण है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २०-९-१९२५

११३. गुजरातने क्या किया है?

एक असहयोगीने निम्नलिखित ढंगसे अपने मनकी भड़ास निकाली है।[1]

लेकिन मैं समस्त हिन्दुस्तानकी हालतको अच्छी तरहसे जानता हूँ और देख सकता हूँ कि यह कथन एकपक्षीय है। पत्रलेखक इसे नहीं देख सकता और यह स्वाभाविक भी है। वह तो पूरे फलकी फिक्रमें है, इसलिए उससे कममें उसे सन्तोष थोड़े ही हो सकता है। मेरे विचारसे गुजरातमें अन्य प्रान्तोंकी अपेक्षा अधिक कार्य हो रहा है; फिर भी यह इतना कम है कि कोई भी गुजराती इससे सन्तुष्ट होकर निश्चिन्त नही बैठा रह सकता। जिसे प्रगति करनी है वह अन्य लोगोंकी अपेक्षा मुझमें कम दोष हैं — ऐसा अभिमान नहीं करता; वह तो निरन्तर अपने दोषोंका ही अध्ययन करते रहता है और उसे अपनेमें जो दोष दिखाई देते हैं वह उनपर शर्मिन्दा होता है, उन्हें दूर करनेका प्रयत्न करता है। यदि लोग परस्पर एक दूसरेकी टीका करनेकी अपेक्षा अपने-अपने दोषोंका अवलोकन करने लगें तो धरतीका बहुत सारा बोझ हलका हो जाये।

इसलिए मैं उपर्युक्त पत्रका स्वागत करता हूँ। यदि हम खादीके सम्बन्धमें ली हुई प्रतिज्ञाका ही पूरी तरहसे पालन करें तो हम बहुत-कुछ कर सकते हैं। थोड़ा,

१. पत्र यहां नहीं दिया गया है। इसमें पत्रलेखकने शिकायत की थी कि यद्यपि गुजरात अपरिवर्तनवादियोंका गढ़ है फिर भी उसने रचनात्मक कार्यमें अपेक्षित प्रगति नहीं की है।

किन्तु अच्छी तरहसे किया हुआ कार्य ही स्थायी होता है। बहुत ज्यादा लेकिन जैसे-तैसे किये हुए कार्य क्षणिक, अधिकांशतः निरर्थक और कभी-कभी भयकर सिद्ध होते हैं। जो राज औजारोंका उपयोग किये बिना बहुत कम समयमें तिरछी दीवार चुनकर मकान बना देता है वह मकान देखनेमें सुन्दर भले ही हो; लेकिन वह पहली ही बरसातमें ढह जायेगा और उसमें रहनेवाले लोग भी खतम हो जायेंगे। लेकिन जो राज धीरजके साथ और ज्ञानपूर्वक दोषरहित पक्की और सीधी दीवार चुनेगा कदाचित् वह समय ज्यादा ले, लेकिन उसकी चुनी हुई दीवार ज्यादा अर्सेतक टिकेगी और उसके कार्यकी कीमत उस पहले आलसी, अप्रामाणिक अथवा अज्ञानी राजकी अपेक्षा कहीं अधिक होगी। यही बात अन्य कार्योंके सम्बन्धमें भी लागू होती है।

लेकिन अपनी त्रुटियोंको जानकर उनपर आँसू बहाना अनुचित है। अपनी त्रुटियोंका निरीक्षण तो हमें उनमें सुधार करनेके लिए ही करना चाहिए। हम अपनी त्रुटियोंसे अच्छी तरहसे परिचित हैं और उन्हें दूर करनेका उपाय भी एक ही है।

हममें से जो अपनी [त्रुटियोंको] जान जायें उन्हें निराश नहीं होना चाहिए, बल्कि उनपर विजय प्राप्त करनी चाहिए। अन्य लोग देखें अथवा न देखें, परन्तु हमें चुपचाप अपना काम करते जाना चाहिए। यदि किसी गाँवमें एक ही व्यक्ति खादी-प्रेमी हो और केवल वही चरखा चलाता हो तो भी वह हार नहीं मानेगा अपितु स्वयं नियमपूर्वक कातने बैठेगा और अपने विश्वासपर दृढ़ रहकर चरखा चलाता रहेगा। इस यज्ञका, धैर्यका, तपश्चर्याका आसपासके वातावरणपर प्रभाव पड़े बिना न रहेगा। सब महान् कार्य इसी तरह हुए हैं। यदि राक्षसोंके दलको देखकर राम हिम्मत हार गये होते तो क्या होता? कौरवोंकी विशाल सेनाके विरुद्ध अपनी छोटी-सी सेना देखकर अगर अर्जुन भाग खड़ा होता तो? यदि गेलीलियो लोकमतसे, धर्मान्ध पादरियोंसे घबराकर अपना विश्वास खो बैठता तो उसका परिणाम क्या होता; हम सारे जगतसे ढूँढ़-ढूँढ़कर ऐसे उदाहरण इकट्ठे कर सकते हैं। प्रारम्भ तो हमेशा एक ही दृढ़ पुरुष अथवा स्त्रीसे होता है और यदि वह व्यक्ति धीरजसे काम लेता है तब या तो समस्त संसारको अपनी ओर आकर्षित करता है अथवा विनम्र एवं सच्चा बनकर अपनी भूलको देखता है, उसे स्वीकार करता है और उसमें सुधार करता है।

कल्याणकृत् किसी व्यक्तिकी कभी दुर्गति नहीं होती, यह भगवद्वचन है;[१] सच्चा प्रयत्न करनेवाले सब लोग कल्याणकृत हैं। उनकी भूल भी जगतके लिए हानिकारक सिद्ध नहीं होती और इसके विपरीत जो लोग कल्याणको दृष्टिमें रखकर कार्य नहीं करते उनके अव्यवस्थित चित्तका प्रसाद अथवा कृपा [का परिणाम भी] भयंकर होता है।

ऐसा जानकर जो गुजराती अपने कार्यको समझते हैं उन्हें चाहिए कि वे आगा-पीछा किये बिना सम्पूर्ण श्रद्धा रखते हुए अपने कार्यमें निरत रहें। इसीमें

१. नहि कल्याणकृत् कश्चिद् दुर्गतिं तात गच्छति। श्रीमद् भगवद्गीता, ५-४०

गुजरातका, हिन्दुस्तानका और जगतका भला है, क्योंकि इस प्रवृत्तिमें किसीके प्रति वैरभाव नही है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २०-९-१९२५

११४. खेतीमें हिंसा?

'नवजीवन' के एक नियमित पाठक पूछते हैं:[1]

यह बात सच है कि खेतीमे सूक्ष्म जीवोंकी अपार हिंसा होती है। पर दूसरी यह बात भी उतनी ही सच है कि शरीरनिर्वाहमें, साँस खीचने-छोड़ने तकमें अनन्त सूक्ष्म जन्तुओंकी हिंसा होती है। परन्तु जिस प्रकार आत्म-घात कर लेनेसे शरीर-रूपी पिंजरेका सर्वथा नाश नहीं हो जाता, उसी प्रकार खेतीके त्यागसे खेतीका भी नाश नही होता। मनुष्य मिट्टीका पुतला है। मिट्टीसे उसका शरीर बना है और मिट्टीके विभिन्न रूपोंपर उसका जीवन निर्भर है। खेतीमें निहित दोषसे बचनेके लिए जो भिक्षान्न खाता है वह दोहरे दोषका भागी होता है। खेती करनेका दोष तो वह करता ही है, क्योंकि भिक्षामे मिला अन्न किसी-न-किसी किसानकी मेहनतसे पैदा हुआ है, उस किसानकी खेतीमें भिक्षान्न ग्रहण करनेवाला भागीदार हुए बिना नही रहता। तिसपर वह अज्ञान और उससे उत्पन्न होनेवाले आलस्यका दोषी भी बनता है।

यदि एक मनुष्यके लिए खेतीका त्याग उचित मानें तो वह अनेकोंके लिए भी उचित होगा। यदि अनेक लोग भीख माँगकर खावें तो बेचारे थोड़ेसे किसान भिखारियोंके लिए मजूरी करनेके बोझसे ही कुचल जायें; फिर यह पाप भिखारीके सिर नही तो और किसके सिर होगा? खेती इत्यादि आवश्यक कर्म शरीर-व्यापारकी तरह अनिवार्य हिंसाके अन्तर्गत हैं। उसमें निहित हिंसा चली तो नही जाती किन्तु मनुष्य ज्ञान, भक्ति आदिके द्वारा आखिरकार, इन अनिवार्य दोषोंसे मोक्ष प्राप्त करके इस हिंसासे भी मुक्त हो जाता है। इसलिए शरीर जिस प्रकार मनुष्यके लिए बन्धनका द्वार है, और मोक्षका द्वार भी है; ठीक उसी प्रकार जो करोड़पति होनेके लिए खेती करता है, खेती उसके लिए बन्धनका द्वार है और जो केवल आजीविकाके लिए खेती करता है उसके लिए वह मुक्तिका द्वार हो सकती है।

कार्य-मात्र, प्रवृत्ति-मात्र, उद्योग-मात्र सदोष है। आवश्यक उद्यम-मात्रमें समान दोष पाया जाता है। मोतीके रोजगारमें, रेशमके धन्धेमें, सुनारके पेशेमें खेतीकी अपेक्षा बहुत अधिक दोष है क्योंकि ये धन्धे आवश्यक नही हैं। उनमें हिंसा तो अत्यधिक है ही। मोती हिंसाके बिना नही मिल सकते। रेशमका कीड़ा उबाला जाता है। सुनार जो नीली लौ पैदा करता है यदि उसमें जलनेवाले जन्तुओंसे पूछें और वे जवाब दें सकें तो हमें उसके धन्धेकी हिंसाका कुछ अन्दाज हो सके।

1. पत्र यहाँ नहीं दिया गया है। उसमें लेखकने खेतीके प्रति अपनी रुचि दिखाई थी; किन्तु उसमें निहित हिंसाके कारण विरक्तिकी बात कही थी।

चारों ओर हिंसासे घिरे और जलते हुए इस जगत्‌में विचरनेवाले जिस महापुरुषने अहिंसा-रूपी धर्म उत्पन्न किया, उसको मेरा साष्टांग प्रणाम है।

चींटीको भी बचाकर चलना यह हमारा सहज धर्म है। जो मनुष्य ऊँचा सिर करके बिना विचारे, बिना देखे, अपने घमण्डमें मस्त चला जाता है और अपने पैरोंके नीचे कुचले जानेवाले असंख्य जीवोंका कोई ध्यान नही रखता वह, तो जानबूझकर अनावश्यक पापकर्म करता है और अपने हाथों अपने लिए नरकका द्वार खोलता है। उसकी तुलना किसानसे, जो कि उसके मुकाबलेमें निर्दोष माना-जाना चाहिए, हो ही नहीं सकती। खेती करनेवाले असंख्य किसान चलते हुए पैनी नजरसे चींटी आदि प्राणियोंको बचाते हैं। उनमें गर्व नहीं होता। वे नम्र हैं। वे जगत्‌के पालनेवाले हैं। दुनियाका नव-दशांश भाग खेती करता है। उसीमें श्रेय है। खेती आवश्यक और शुद्ध यज्ञ है। श्रेष्ठ धर्मवान इस धन्धेको अपना सकता है। यदि वह दूसरे अनावश्यक धन्धोंको छोड़कर खेती करे तो इसमें पुण्य है।

बैलको आर लगानेकी बात बिना विचारे लिखी गई है। सब किसान बैलको आर नहीं मारते। कितने ही किसान बैल इत्यादि अपने पशुओंको अपने कुटुम्बकी तरह मानते हैं और प्रेम-भावसे उनका पालन-पोषण करते हैं।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २०-९-१९२५

११५. ईश्वर-भजन

"ईश्वर-भजन, प्रार्थना किस तरह और किसकी करें यह समझमें नहीं आता और आप तो बार-बार लिखते हैं प्रार्थना करो, प्रार्थना करो। सो समझाइए कि कैसे?"

एक सज्जन ऐसा पूछते हैं। ईश्वर-भजनका अर्थ है उसके गुणका गान; प्रार्थनाका अर्थ है अपनी अयोग्यताकी, अपनी अशक्तिकी स्वीकृति। ईश्वरके सहस्र अर्थात् अनेक नाम हैं। अथवा यों कहिये कि वह नामहीन है। जो नाम हमको अच्छा मालूम हो उसी नामसे हम ईश्वरको भजें, उसकी प्रार्थना करें। कोई उसे रामके नामसे पहचानते हैं तो कोई कृष्णके नामसे; कोई उसे रहीम कहते हैं तो कोई गॉड। ये सभी एक ही चैतन्यको भजते हैं। परन्तु जिस प्रकार एक ही तरहका भोजन सबको नहीं रुचता उसी तरह एक नाम भी सबको नहीं रुचता। जिसका जिससे सम्पर्क होता है उसी नामसे वह ईश्वरको पहचानता है और वह अन्तर्यामी, सर्वशक्तिमान होनेके कारण हमारे हृदयके भावको पहचान कर हमारी योग्यताके अनुसार हमारी सुनता है।

अर्थात् प्रार्थना या भजन जीभसे नहीं वरन् हृदयसे होता है। इसीसे गूंगे, तोतले, मूढ़ भी प्रार्थना कर सकते हैं। जीभपर अमृत और हृदयमे हलाहल हो तो जीभका अमृत किस कामका? कागजके गुलाबसे सुगन्ध कैसे निकल सकती है? इस-

लिए जो सीधे तरीकेसे ईश्वरको भजना चाहता हो उसे अपने हृदयकी शुद्धि कर लेनी चाहिए। हनुमानकी जीभपर जो राम था वही उनके हृदयका स्वामी था और इसीसे उनमें अपरिमित बल था। विश्वाससे जहाज चलते हैं, विश्वाससे पर्वत उठाया जा सकता है और समुद्र लाँघा जा सकता है; इसका अर्थ यह है कि जिसके हृदयमें सर्व-शक्तिमान ईश्वरका निवास है वह क्या नही कर सकता? फिर भले ही वह कोढी हो, या क्षयका रोगी। जिसके हृदयमें राम बसते हैं उसके सब रोग सर्वथा नष्ट हो जाते हैं।

ऐसा हृदय किस प्रकार बन सकता है? यह सवाल प्रश्नकर्त्ताने नही पूछा है। परन्तु मेरे जवाबमें से यह प्रश्न निकलता है। मुँहसे बोलना तो हमें कोई भी सिखा सकता है; पर हृदयकी वाणी कौन सिखा सकता है? यह तो भक्त-जन ही कर सकते हैं! भक्त किसे कहे? 'गीताजी' में तीन जगह खास तौरपर और सब जगह आम तौरपर इसका विवेचन किया गया है। परन्तु उसकी संज्ञा या व्याख्या मालूम हो जानेसे भक्त-जन मिल नही जाते। इस जमानेमें यह दुर्लभ है। इसीसे मैंने तो सेवा-धर्म पेश किया है। जो औरोंकी सेवा करता है उसके हृदयमें ईश्वर अपने आप, खुद अपनी गरजसे रहता है। इसीसे अनुभव-ज्ञान-प्राप्त नरसिंह मेहताने गाया है—

"वैष्णव जन तो तेने कहीए जे पीड पराई जाणे रे"

और पीड़ित कौन है? अन्त्यज और कंगाल। इन दोनोंकी सेवा तन, मन, धनसे करनी चाहिए। जो अन्त्यजको अछूत मानता है वह उसकी सेवा तनसे क्या करेगा? जो कंगालके लिए चरखा चलाने जितना भी शरीर हिलानेमें आलस्य करता है, अनेक बहाने बनाता है, वह सेवाका मर्म नहीं जानता। कंगाल यदि अपंग हो तो उसे सदावर्त दिया जा सकता है? पर जिसके हाथ-पाँव हैं उसे बिना मेहनतके भोजन देना मानो उसको नीचे गिराना है। जो मनुष्य कंगालके सामने बैठकर चरखा चलाता है और उसे चरखा चलानेके लिए बुलाता है वह ईश्वरकी अनन्य सेवा करता है। भगवानने कहा है, "जो मुझे पत्र, पुष्प, जल, इत्यादि भक्तिपूर्वक अर्पित करता है वह मेरा सेवक है।" भगवान कंगालके घर अधिक रहते हैं, यह तो हम निरन्तर सिद्ध हुआ देखते हैं। इसीसे कंगालके लिए कातना महाप्रार्थना है, महायज्ञ है, महासेवा है।

अब प्रश्नकर्त्ताकी बातका जवाब देना आसान हो गया। ईश्वरकी प्रार्थना किसी भी नामसे की जा सकती है। उसकी सच्ची रीति है हृदयसे प्रार्थना करना। हृदयकी प्रार्थना सीखनेका मार्ग सेवाधर्म है। इस युगमें जो हिन्दू अन्त्यजकी सेवा हृदयसे करता है वह शुद्ध प्रार्थना करता है। हिन्दू तथा हिन्दुस्तानके अन्य धर्मावलम्बी भी जो गरीबोंके लिए हृदयसे चरखा चलाते हैं, सेवाधर्मका पालन करते हैं और हृदयसे प्रार्थना करते हैं।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २०-९-१९२५

११६. पत्र : महादेव देसाईको

पटना
रविवार [२० सितम्बर, १९२५][1]

चि० महादेव,

तुम अन्य नियमोंका पालन करो या न करो, ठीक पता पास न हो तो भी, पत्र तो मुझे सूलीपर झूलते हुए भी लिखो। तुम्हारी यह भक्ति फल लायेगी। मुझे भी लिखनेकी इच्छा इसी कारण होती है लेकिन मैं तो पूज्य ठहरा। पुजारी होऊँ तब तो लिखूँ। पूज्य तो अनेक अधोगतिको प्राप्त हुए होंगे; लेकिन पुजारी असंख्य तर गये हैं। कृष्णके नामसे अनेकोंने मोक्ष प्राप्त किया, लेकिन बेचारा 'महाभारत' वाला कृष्ण तो बेमौत ही चल बसा और उसके मुँहपर कोई कृष्णका नाम थोड़े ही था। अब कहो कि पूज्य बड़ा है कि पुजारी।

तुम बीमार पड़ोगे, यह तो मैंने सोच ही लिया था। अबतक तो बिलकुल अच्छे हो चुके होगे। कल तुम्हें लगभग १२ कालम सामग्री भेजी थी। आज और भेजनेकी तजवीज करूँगा।

तुम निश्चिन्त होकर वहाँ रहना। दुर्गाको सम्पूर्ण सन्तोष देना। एक शर्त माननी ही होगी; खाट तुम्हें कदापि नहीं पकड़नी चाहिए।

मौलाना शौकत अली आज ही पहुँचे हैं। कल जवाहर आदि आ रहे हैं।

उर्मिला देवीका पत्र मजेके खयालसे तुम्हें भेज रहा हूँ। 'इंडियन ओपिनियन' की फाइल देवदाससे मँगवाई थी। अभी मिली नहीं है।

राजगोपालाचारीको पत्र लिखते रहना। वे इन दिनों सुखी भी हैं और दुःखी भी।

यहाँ मेरे ठहरनेका प्रबन्ध बहुत ही अच्छी जगह किया गया है। यह मकान ठीक गंगाके किनारे है। मैं जहाँ बैठा हूँ ठीक उसके सामने गंगा बह रही है। तुम्हारा पत्र तड़के ही लिख रहा हूँ। शान्ति अवर्णनीय है। कल राजेन्द्रबाबूने मुझे बिलकुल थका दिया था; आज उसका बदला दे दिया है।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

यात्राका कार्यक्रम मुझे नहीं मालूम, लेकिन आज तुम्हें भेज देनेके लिए कह दूंगा। देखता हूँ, अपनी आदतके मुताबिक मैंने उर्मिला देवीके पत्रको फाड़ फेंका है।

देवघरका मामला मैं पेरीन बहनको[2] सौंप आया हूँ। देवधर मुझे नहीं मिला। डाह्याभाईके बारेमें तो वल्लभभाई निश्चिंत करनेवाले थे। मैं पेरीन बहनको लिख

१. इस तारीखको गांधीजी पटनामें थे।
२. दादा भाई नौरोजीकी पौत्री।

रहा हूँ। डाह्याभाईके वारेमें यदि वल्लभभाई निश्चित करे तो मैं तुरन्त आगे बात चलाऊँगा।

गुजराती पत्र (एस० एन० ११४५१) की फोटो-नकलसे।

११७. भाषण : पटनामें

२१ सितम्बर, १९२५

कहते हैं अनौपचारिक बैठकमें लोगोंने महात्मा गांधीसे तरह-तरहके अटपटे सवाल किये। कुछ लोगोंका सुझाव था कि सूत कातनेवालोंको कांग्रेसका सदस्य नहीं माना जाना चाहिए।

महात्माजीने उत्तर दिया कि कातनेवाले सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण देशसेवा कर रहे हैं और इसलिए कांग्रेसपर उन्हें भी उतना ही अधिकार है जितना अधिकार पैसेके रूपमें शुल्क देनेवालोंको।

क्या कोई पेशेवर कतैया कांग्रेसका सदस्य माना जा सकता है? इस प्रश्नका उत्तर देते हुए महात्माजीने कहा, नहीं : जबतक कोई व्यक्ति कांग्रेसके सिद्धान्तोंको अंगीकार नहीं करता तबतक वह कांग्रेसका सदस्य नहीं बन सकता।

राजनैतिक कारणोंसे क्षति उठानेवालोंके परिवारोंकी सहायताके लिए कोष स्थापित करनेके सुझावपर महात्मा गांधीने कहा कि फिलहाल इसपर अमल नहीं किया जा सकता।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दुस्तान टाइम्स, २३-९-१९२५

११८. भाषण : अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी बैठकमें[1]

२२ सितम्बर, १९२५

महात्मा गांधीने कार्रवाईका शुभारम्भ करते हुए कहा कि मेरे कन्धोंपर एक बहुत भारी दायित्व है; हम कांग्रेस संविधानकी एक महत्त्वपूर्ण धाराका संशोधन करने जा रहे हैं।[2] अ० भा० कां० कमेटी अपने संविधानमें संशोधन कर सकती है या नहीं इस प्रश्नपर मैं कोई निर्णय नहीं देना चाहता। मैं चाहता हूँ कि स्वयं सदस्य इस विषयमें अन्तिम निर्णय करें। मैं अपना निर्णय केवल कार्य-विधि सम्बन्धी प्रश्नों-

१. अ० भा० कां० कमेटीकी यह बैठक पटनामें दोपहरको गांधीजीकी अध्यक्षतामें हुई थी; इसमें लगभग एक सौ सदस्योंने भाग लिया था।

२. देखिए परिशिष्ट २।

पर दूँगा। सदस्यताकी शर्तमें संशोधन करना तथा पिछले साल किये गये समझौतेको[1] रद करना, ये दोनों प्रश्न बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। हमें चाहिए कि इसमें जो कठिनाइयाँ हैं उनपर हम स्वतन्त्रताके साथ निःसंकोच भावसे लेकिन शान्तिपूर्वक विचार करें और उन्हें सुलझायें, ताकि कानपुर अधिवेशनके समय अपने राष्ट्रीय कार्यक्रममें हम ऐसे परिवर्तन करनेके लिए तैयार रहें जिनसे स्वराज्य जल्दी प्राप्त करनेमें मदद मिले। यदि आपका विचार हो कि यह प्रश्न कांग्रेसको ही तय करना चाहिए तो आप ऐसा कहनेमें संकोच न करें। इसके विपरीत यदि आपको ऐसा लगता है कि हमें कांग्रेसके लिए रास्ता साफ कर देना चाहिए तो आप वैसा ही कहें। सबसे पहले तो हमें यही तय करना है कि क्या यह प्रश्न इतना महत्त्वपूर्ण है कि अ० भा० कां० कमेटी उसपर तुरन्त विचार और निर्णय करे। मैं आपसे फिर यह अनुरोध करता हूँ कि आप पूरी तरह अपनी जिम्मेदारी समझते हुए इस प्रश्नपर विचार करें।[2]

[अंग्रेजीसे]

सर्चलाइट, २५-९-१९२५

११९. भाषण: अ० भा० कां० कमेटीकी बैठक, पटनामें[3]

२२ सितम्बर, १९२५

महात्मा गांधीने कहा कि आपको मेरा या मेरी रायका विचार किये बिना वोट देना चाहिए। यदि आपको सदस्यताके लिए सूत देनेकी शर्त पसन्द नहीं है तो आप उसे बिलकुल अस्वीकार कर दें। यदि आपको खद्दरका प्रयोग करनेका सुझाव पसन्द नहीं है तो आप उतनी ही स्वतन्त्रतापूर्वक उसे भी अस्वीकार कर सकते हैं। मैं चाहता हूँ कि आप प्रस्तावित चरखा संघसे सम्बन्धित धाराके फलितार्थोंको देख-समझ कर वोट दें। स्मरण रहे कि इस नये संघपर कांग्रेसका कोई नियन्त्रण नहीं

१. गांधीजी और स्वराज्य दलके बीच हुआ समझौता। इसके अनुसार कांग्रेसको सिर्फ कुछ निश्चित रचनात्मक कार्योंमें लगना था और स्वराज्य दलको कांग्रेसके एक अभिन्न अंगके तौरपर केन्द्रीय और प्रान्तीय विधान मण्डलोंमें काम करना था।

२. बादमें हुई बहसमें सिन्धके आर० के० सिधवाने आपत्ति की कि अ० भा० कां० कमेटी संविधानमें कोई परिवर्तन नहीं कर सकती। यह काम सिर्फ कांग्रेसका है। मोतीलाल नेहरूका मत था कि कमेटीको ऐसा करनेका अधिकार है। श्रीनिवास आयंगारने कहा कि संविधान कोई वेद-वाक्य तो है नहीं। देशकी दशा जिनसे सुधरे, ऐसे परिवर्तनोंको स्वीकार किया जाना चाहिए। जे० एम० सेनगुप्तकी शिकायत थी कि सदस्यताकी वर्तमान शर्तें काममें बाधा डालती है। पण्डित मालवीयने कहा, "मैं चाहता हूँ, नई शर्तोंके अनुसार फिरसे चुनाव हो।" गांधीजी द्वारा प्रस्तावपर वोट लेनेपर ९३ सदस्योंने संविधानमें परिवर्तनके पक्षमें और ७ सदस्योंने उसके विरुद्ध मत दिया। मोतीलाल नेहरूने तब "नया मताधिकार" प्रस्ताव पेश किया।

३. यह भाषण संविधान संशोधनके प्रस्तावके सम्बन्धमें हो रही बहसके दौरान दिया गया था।

होगा। पर वह कांग्रेसकी साखका उपयोग करेगा और कांग्रेसकी सहायता करेगा। कुछ लोगोंका विचार है कि अखिल भारतीय चरखा संघको कांग्रेससे पृथक् एक स्वतन्त्र संगठन होना चाहिए और उसे अपनी साख स्वयं बनानी चाहिए। अखिल भारतीय खादी बोर्ड और उसका धन कांग्रेसकी सम्पत्ति है। आप कह सकते हैं कि आप अखिल भारतीय खादी बोर्डकी धन-सम्पत्ति संघको नहीं सौंपना चाहते हैं। आपको ऐसा कहनेका पूरा अधिकार है। लेकिन अखिल भारतीय चरखा संघ इस विचारसे बनाया गया है कि वह सक्रिय रूपसे काम करनेवाला संगठन हो। उसकी स्थापनाके पीछे दूसरा कोई विचार नहीं है। योजना यह है कि वह एक शुद्ध व्यावसायिक संगठन हो जो खादीके आर्थिक पक्षपर ही ध्यान दे। महात्माजीने कहा कि मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि अकेले खद्दरमें सविनय अवज्ञाके लिए अनुकूल वातावरण तैयार करनेकी सामर्थ्य नहीं है। ऐसी सामर्थ्य उसमें आये, यह तो हमपर निर्भर है, और कुछ लोगोंको लगता है कि वे उसे इतना सामर्थ्यवान बना सकते हैं। जिन लोगोंको सविनय अवज्ञामें विश्वास है वे भारतमें ऐसी शक्तिका निर्माण करना चाहते हैं जो सबको संगठित कर सके; एकसूत्रमें बाँध सके। खद्दरका राजनीतिक महत्त्व इसीमें है। अखिल भारतीय चरखा संघ अंग्रेजोंसे संघका सदस्य बननेका अनुरोध करेगा। वह सर अली इमामसे सदस्य बननेका अनुरोध करेगा, बशर्ते कि वे खद्दर पहनना स्वीकार करें। यदि महाराजा बीकानेर भी खद्दरका उपयोग करने लगें तो संघ उनसे भी सदस्य बननेका अनुरोध करेगा। इस प्रकार, अखिल भारतीय चरखा संघके पास विदेशी कपड़ेका बहिष्कार करनेके साधन तथा सामर्थ्य, दोनों होंगे। यद्यपि यह हमारे लिए लज्जाकी बात है, पर स्वीकार तो करना ही पड़ता है कि हम अभीतक विदेशी कपड़ेका बहिष्कार नहीं कर पाये हैं।

यदि आप अखिल भारतीय खादी बोर्डका धन [संघको] खुशी-खुशी देना चाहें तो दे दें। पर कांग्रेस चरखा संघकी नीति निर्धारित नहीं कर सकती। उसकी और कांग्रेसकी सदस्यताकी शर्तें एक-सी नहीं होंगी। पर यदि कांग्रेस चाहेगी तो वह एक एजेंसीके रूपमें कांग्रेसका काम करेगा। चरखा संघ कौन बनायेगा, यह प्रश्न किये जानेपर महात्माजीने कहा:

मैं बनाऊँगा। यह एक छोटा-सा संगठन होगा। मैंने अभी सदस्योंकी संख्याका निर्णय नहीं किया है।

पर संघकी नीतिपर कांग्रेस कोई नियन्त्रण नहीं लगा सकती।

महात्माजीने कहा कि मेरे पास बहुतसे संशोधन आये हैं उन्हें एकके-बाद एक पेश करनेके बजाय मैं इन संशोधनोंके मुख्य मुद्दे आपके सामने रखता हूँ और उनपर आपका मत लेता हूँ।

महात्माजीने सबसे पहले इस मुद्देपर मत लिया कि धनकी शर्तके साथ-साथ विकल्पके रूपमें सदस्यताके लिए कताईकी शर्त भी रहे या नहीं।

सिर्फ पाँच लोगोंने इसके विरुद्ध वोट दिया और सदस्यताके लिए कताईकी वैकल्पिक शर्तवाला प्रस्ताव भारी बहुमतसे पास हो गया।

महात्मा गांधीने कहा कि अखिल भारतीय खादी बोर्डके सामने बड़ी-बड़ी कठिनाइयाँ हैं। नया संगठन बनाकर सिर्फ खादी बोर्डका नाम ही बदला जा रहा है। मैं ऐसा इसलिए कर रहा हूँ कि खादी-प्रचारका कार्य स्थायी रूपसे हो सके। अखिल भारतीय खादी बोर्डका धन लगभग समाप्तप्राय है। खादी बोर्डको यह नया रूप देकर हम उसके सामने आई हुई वर्तमान कठिनाइयोंको दूर कर सकेंगे। यदि आप कांग्रेसके सब लोगोंका खादीमें विश्वास है तो आप स्पष्ट देख सकते हैं कि प्रस्तावित संगठनसे उसे अमूल्य सहायता मिलेगी।

महात्माजीने दुबारा प्रस्तावका स्पष्टीकरण किया और तब पण्डित मालवीयका संशोधन वोटके लिए पेश किया। इस बार मतदानका परिणाम इस प्रकार निकला: खादीके आदतन उपयोगके पक्षमें ३६ और विपक्षमें ५१ मत आये। खादीके आदतन उपयोगका प्रस्ताव रद्द हो गया।

बाबू राजेन्द्रप्रसादने महात्मा गांधीसे यह जानना चाहा कि क्या वे और उनके मित्र इस प्रस्तावके पक्षमें वोट देनेके लिए कर्त्तव्यबद्ध हैं।

महात्मा गांधीने कहा: इसमें कर्त्तव्यका कोई प्रश्न नहीं है। यह समझौता स्वराज्यदलकी ओरसे मोतीलाल नेहरूके और मेरे बीच हुआ और जिसका मन, जिसकी धर्मबुद्धि इसमें गवाही न देती हो वह जैसा ठीक समझे वैसा वोट देनेके लिए स्वतन्त्र है। हो सकता है अनजाने मुझसे कांग्रेस और देशको हानि पहुँच रही हो, पर मुझे लगता है कि आगामी चुनावमें स्वराज्यदलका समर्थन और सहायता करना ही कांग्रेसके लिए ठीक है। अपरिवर्तनवादी कांग्रेसको स्वराज्यवादियोंके हाथ सौंप दें ताकि वह पूरी तौरपर एक राजनीतिक संगठन बन सके। मैंने स्वराज्यदलको एक पाई नहीं दी है और न मेरा ऐसा करनेका कोई इरादा ही है, क्योंकि मुझे जो भी धन मिलता है उसे मैं चरखे और खद्दरपर लगाना ज्यादा पसन्द करूँगा। मेरे लिए ये ही सर्वोपरि हैं। यह सब-कुछ होनेपर भी निःसन्देह स्वराज्यदलके लोगोंको मेरा नैतिक समर्थन प्राप्त है। लेकिन किसीका मन न मानता हो तो उसे कदापि इस प्रस्तावके पक्षमें वोट न देना चाहिए। मैं चाहता हूँ हर व्यक्ति पूरी स्वतन्त्रताके साथ वोट दे। उसमें कर्त्तव्यका कोई प्रश्न नहीं है। कुछ लोग यह सोचते हैं कि इस समय मेरी मति भ्रष्ट हो गई है और मैं अपने आपको स्वराज्यदलके हाथों बेच रहा हूँ। मुझे तो हृदयसे ऐसा लगता है कि हमें अपनेको स्वराज्य दलके हवाले कर देना चाहिए। किन्तु यदि आपको ऐसा न लगता हो तो मेरा विरोध करना आपका कर्त्तव्य है।

वोट लेनेपर ६१ लोगोंने प्रस्तावके पक्षमें और २२ ने विरोधमें वोट दिया। समझौतेमें कोई परिवर्तन नहीं किया गया।

तब पूरे प्रस्तावपर वोट लिया गया जिसके अनुसार भाग 'क'[1] — सर्वसम्मति से; और भाग 'ख'[2] १२ के विरुद्ध ७४ मतोंसे पास हो गया। बैठक अगले दिन तकके लिए स्थगित कर दी गई।

[अंग्रेजीसे]

सर्चलाइट, २५-९-१९२५

१२० भाषण : खिलाफत सम्मेलनमें[3]

२२ सितम्बर, १९२५

सम्मेलनकी कार्रवाई कुरानकी एक आयतके पाठ और मंगल-गानके साथ शुरू की गई। उसके बाद गांधीजीने भाषण दिया। उन्होंने कहा कि जब मुझे सम्मेलनमें भाग लेनेके लिए आमन्त्रित किया गया तभी मैंने मन्त्रीसे कह दिया था कि मुझसे भाषण देनेके लिए न कहा जाये। पर मुझे बताया गया कि सम्मेलनमें कुछ महिलाओं-के भी आनेकी आशा है और मुझे उन्हें खद्दर और चरखेके विषयमें बताना चाहिए। और मुझे तो उनसे खद्दरके बारेमें कुछ कहनेका लोभ है ही; इसलिए मैंने फौरन भाषण देना स्वीकार किया।

लोगोंको मैंने यह कहते हुए सुना है कि १९२१ में गांधी हमेशा हिन्दू-मुस्लिम एकताके बारेमें बोला करता था, पर अब वैसा नहीं करता; लेकिन जैसे ही उससे खद्दर और चरखेपर बोलनेका अनुरोध किया जाता है, वह फौरन तैयार हो जाता है। उनकी यह बात सही है, पर मेरा जवाब भी हाजिर है। मैंने अपने भाषणों और समाचारपत्रोंमें लेखों द्वारा आपसे बहुत बार कहा है कि हिन्दू और मुसलमान दोनोंपर अब मेरा कोई प्रभाव नहीं रहा। आज दोनों जातियाँ १९२१ की तरह न तो मेरी बात सुनती हैं न ही मेरे कहे अनुसार चलनेको तैयार हैं। यही बात मैं अली भाइयोंके बारेमें भी कह सकता हूँ। उनका प्रभाव भी दोनों जातियोंपर से उठ गया है। ऐसी दशामें भगवानसे प्रार्थना करते रहनेके सिवाय मैं और क्या कर सकता हूँ? जब कोई मेरी [बात ही सुननेको] तैयार नहीं होते तो मैं किसीसे कुछ कहने क्यों जाऊँ? इसीलिए इस विषयपर चुप रहना मैं ज्यादा ठीक समझता हूँ। दूसरे मामलों-में भी, जहाँतक देशके लिए स्वराज्य प्राप्त करनेकी बात है, शिक्षित जनतापर मेरा प्रभाव नहीं रहा। पर मुझे दोनों बातोंमें पूरा विश्वास है। मैं आज भी असहयोगके

१, २. देखिए परिशिष्ट २।

३. पटना जिला खिलाफत सम्मेलनकी बैठक अंजुमन इस्लामिया हॉलमें हुई थी। इसमें महात्मा गांधीके अतिरिक्त मौलाना शौकत अली, अबुल कलाम आजाद, मुहम्मद अली, जफर अली खां, शफी और बाबू राजेन्द्र प्रसादने भाग लिया था।

पक्षमें हूँ। असहयोगके सिद्धान्तमें मेरा वैसा ही विश्वास अब भी है जितना कि हिन्दू-मुस्लिम एकतामें है। लेकिन आज मुझे दोनों जातियोंमें वह एकता दिखाई नहीं देती, इसीलिए आज मैं उसके बारेमें कुछ न कहकर आपसे खद्दरके बारेमें ही फिर कुछ कहना चाहूँगा। जो हिन्दू और मुसलमान भारतको अपना देश मानते हैं, उनके लिए खादीका बहुत महत्त्व है।

आपको यह समझ लेना चाहिए कि हिन्दू और मुसलमान, दोनोंके लिए गाँवके गरीबों द्वारा काते गये सूतसे बने खद्दरको छोड़कर अन्य वस्त्र धारण करना पाप है। हिन्दू और मुसलमान जी-भरकर एक दूसरेसे लड़ लें, एक दूसरेके सिर फोड़कर खूनकी नदियाँ बहा दें। पर सरकारको उसमें हस्तक्षेप न करने दें। वे यह सब करें, इतने पतित भले हो जायें, लेकिन अब यह कहना छोड़ दें कि हम पहनेंगे तो बस मैंन्चेस्टर, लंकाशायर या जापान या बम्बईकी मिलोंको कपड़ा ही पहनेंगे। खद्दरको छोड़कर बम्बईकी मिलोंका कपड़ा भी पहनना ठीक नहीं। आप अच्छी तरह जानते हैं कि भारतके गाँवोंमें ऐसे लाखों हिन्दू और मुसलमान हैं जिन्हें दोनों वक्त खाना भी नसीब नहीं होता। अपनी हालकी बंगालकी यात्राके दौरान वहाँके गाँवोंमें ऐसे लोगोंकी दयनीय दशा मैं अपनी आँखों देख आया हूँ। यदि आप उन्हें मेरी नजरसे देख सकें तो आपकी आँखें भी भर आयेंगी। अतराईके समीपवर्ती गाँवोंमें ९० प्रतिशत लोग मुसलमान हैं। इसी क्षेत्रमें बाबू सतीश चन्द्र दासगुप्त, डाक्टर प्रफुल्लचन्द्र रायके निर्देशनमें अपना खादी प्रचार कार्य चला रहे हैं। इसके फलस्वरूप इस क्षेत्रकी स्त्रियाँ यदि महीनेमें दो ढाई रुपये भी कमा पाती हैं तो बहुत प्रसन्न होती हैं। जिन्हें किसी प्रकारकी कमी नहीं है, सम्भव है वे इसके महत्त्वको न समझें और इसका मजाक उड़ायें। परन्तु खेतीसे जिन परिवारोंकी कुल आय ७ रुपये प्रतिमास है उनके लिए ये दो ढाई रुपये भी बहुत हैं। जो सिपाही और अर्दली सरकारी नौकर हैं वे भी इसका महत्त्व आसानीसे समझ सकते हैं। अपने वेतनमें एक रुपयेकी भी तरक्की होने-पर वे निहायत खुश होते हैं और अपने अफसरोंका बहुत आभार मानते हैं। अन्तमें गांधीजीने भावविह्वल होकर लोगोंसे अनुरोध किया कि वे गाँवोंमें भूखों मरनेवाले लाखों लोगोंकी खातिर खादी और चरखेको अपनायें। इन्हीं गरीबोंकी खातिर कताई करें और सूत मुझे दें, ताकि मैं खादीको सस्ता कर सकूँ। इसका लाभ मुख्यतया तो इन भूखसे पीड़ित गरीबोंको होगा, पर अन्तमें इससे सबको लाभ होगा। मैंने एक मुसलमानको यह कहते सुना है कि क्या महात्माजीका दिमाग खराब हो गया है जो वे आशा कर रहे हैं कि मुसलमान खद्दर पहनने लगेंगे। संयुक्त प्रान्तके मुसलमानोंको तो पहननेके लिए नैनसुख और मलमल-जैसा बढ़िया कपड़ा चाहिए। उन्हें मोटा और घटिया खद्दर अच्छा नहीं लगता। मैं उनसे सहमत नहीं हूँ। मुसलमान भी भारतमें पैदा हुए हैं और भारतके ही हैं। उनमें भी मानवीयताकी भावना है और उनको भी गाँवोंके लाखों भूखे-गरीबोंसे हमदर्दी है। मुझे आशा है कि वे भी खद्दरको अपनायेंगे,

बल्कि बहुतसे मुसलमान तो पहले ही उसको अपना चुके हैं। खद्दरको अपनानेसे दो उद्देश्य सिद्ध होंगे । एक तो आपको अपने लिए कपड़ा मिल जायेगा, दूसरे आप गाँवोंके लाखों भूखे गरीबोंकी सहायता कर सकेंगे। खुदाके वास्ते और गाँवोंके लाखों भूखे गरीबोंके वास्ते आप सब आज ही बल्कि इसी क्षणसे चरखा और कताईको अपना लें।

[अंग्रेजीसे]

सर्चलाइट, २३-९-१९२५

१२१. पत्र : छगनलाल गांधीको

[२३ सितम्बर, १९२५ से पूर्व][1]

चि० छगनलाल,

मैंने तुम्हे ट्रेनपरसे पत्र तो लिखा था; मिला होगा। वहाँ सबको बीमारीने घेर लिया जान पड़ता है। सबका हाल-चाल लिखना।

मुझे लगता है कि स्वयं नीमु[2] अभी अपने विवाहके विषयमें विचार करनेकी झंझटमें पड़ने लायक नही हुई है। मेरी इच्छा तो अवश्य दो वर्ष विवाह टालनेकी रहेगी। रामदास रुके तो मैं रुकनेका ही आग्रह करूँगा। इसमें मैं केवल नीमुके भलेका विचार करता हूँ। विवाहके बाद नीमु रामदासके साथ ही रहेगी। सामान्य रूपसे परिणामतः वह सगर्भा भी होगी। मैं इस विचार-मात्रसे काँप उठता हूँ। नीमु बच्चेका भार उठाने लायक तो नही ही है। इस सगाईमें मुझे तुम्हारी और रामदासकी इच्छाके आगे झुकना पड़ा है। यदि रामदास प्रतिकूल रहता तो मैं तुम्हे इस विचारसे रोकता। जमनादासकी बातसे तो मुझे लगा कि वे नीमुको बेचनेकी स्थितिपर पहुँच गये थे। लेकिन वह दोष मैं अपने सिरपर नही ले सकता। सगाईके लिए तुम और मैं दोनो उत्तरदायी हैं।

मेरी इच्छा सगाईको दो वर्षतक स्थगित रखनेकी है, ऐसा नीमुसे अवश्य कहना और इसके बाद ही सगाई करना। सगाईकी शास्त्र-विधि अमरेलीमें ही की जाये। यदि वह चाहे कि लखतरमें विवाह सम्पन्न हो तो मै विरोध नही करूँगा, समझानेका प्रयत्न करूँगा। उस हालतमें मैं तो केवल उसे एक धार्मिक क्रिया समझकर उसमे भाग लूँगा। रामदास भी यही चाहता है। यदि बा हस्तक्षेप करे तो उसे शान्त रखना। मैंने बाको लिखा तो है। अब जैसा ठीक लगे वैसा करना। यदि नीमु बहुत जल्दी संभल गई तो मैं आगामी वर्ष राह जोहनेका आग्रह नही करूँगा। वह जल्दी सयानी न दिखे, ऐसी मेरी इच्छा है। ईश्वर उसकी मदद करे।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ७७४४) से।
सौजन्य : छगनलाल गांधी

१. पत्र २३-९-१९२५ को छगनलालको मिला था।
२. छगनलालकी सालीकी पुत्री।

१२२. बिहारका दौरा

मेरा बिहारका दौरा मेरे पुरुलियामें हुए बिहार प्रान्तीय सम्मेलनमें उपस्थित होनेके साथ ही शुरू हुआ। सम्मेलनकी मुख्य कार्यवाहीकी कताई-सदस्यतामें प्रस्तावित परिवर्तनके समर्थन करनेका प्रस्ताव पास करना। सभापतिने अपना भाषण अंग्रेजीमें दिया। क्या ही अच्छा होता यदि मौलवी जुबेर अपना भाषण हिन्दुस्तानीमें देते। तकरीर यों तो बढ़िया थी; पर मैं जानता हूँ कि आधे श्रोता भी उसे नहीं समझ पाये। उसी पण्डालमें हिन्दू-सभा और दूसरे दिन खिलाफत सम्मेलन भी हुआ। मैं चाहता था कि मैं किसी सम्मेलनमें कुछ न बोलूँ और मुझे इससे बड़ी प्रसन्नता हुई कि सभी सभापतियोंने मेरी इस इच्छाको मान किया। मैं अब बोलते-बोलते आजिज आ गया हूँ। मेरे पास कहनेके लिए कोई नई बात नहीं है। मैं घूमता इसलिए हूँ कि मेरा खयाल है, जनता मुझसे मिलना चाहती है। मैं तो अवश्य ही उससे मिलना चाहता हूँ। मैं उसे अपना सीधा-सादा पैगाम थोड़ेसे शब्दोंमें सुना देता हूँ, और जनता तथा मुझे, दोनोंको ही सन्तोष हो जाता है। मेरी बात धीरे-धीरे सही जनताके मनमें पैठ जरूर जाती है।

सम्मेलनके साथ ही एक सुव्यवस्थित औद्योगिक प्रदर्शनी भी थी। उसे देखकर यह स्पष्ट हो जाता था कि खादी असंदिग्ध रूपसे विकास करती जा रही है। वहाँ कताई प्रतियोगिता भी हुई और इनाम बाँटे गये। खादी प्रतिष्ठानके उस्मानको पहला इनाम — स्वर्णपदक मिला। छः सालकी एक छोटी लड़कीने भी इनाम पाया। उसका सूत बुरा न था। उसको इनाम इस बातपर मिला कि छः सालकी होनेपर भी वह होड़में भली-भाँति कात सकी। इस प्रदर्शनीकी एक उल्लेखनीय चीज खादी प्रतिष्ठानके क्षितीशबाबू द्वारा खादीपर जादूकी लालटेन (मैजिक लैन्टर्न) की मददसे दिया गया उनका सचित्र व्याख्यान था। लोगोंने उसको खूब पसन्द किया।

अभिनन्दनपत्र और रुपयोंकी थैली भी मिली। थैली अ० भा० देशबन्धु स्मारक कोषके लिए दी गई। स्त्रियों और पुरुषों, दोनोंकी सभाओंमें सभा-स्थलपर भी चन्दा एकत्र किया गया। हमेशाकी तरह स्त्रियोंकी सभामें ज्यादा रकम मिली।

मुझे गौलुन्दा गाँवमें भी ले जाया गया। वहाँ सरकारी केन्द्र है, जहाँ चरखेका प्रयोग हो रहा है। प्रयोग दिलचस्प है और यदि वैज्ञानिक रीतिसे किया गया तो अवश्य ही सफल होगा और इसके आश्चर्यजनक फल निकलेंगे।

पुरुलियामें एक पुराना कुष्ठाश्रम देखा। उसकी सारी व्यवस्था लन्दन मिशनरी सोसाइटीकी तरफसे होती है। सबसे पहला कुष्ठाश्रम मैंने कटकमें देखा था। पर वह जल्दीमें देखा था। वहाँ मैं सिर्फ कोढ़ियों और सुपरिंटेंडेंटसे ही मिल पाया था। वहाँके कार्य और कोढ़ियोंके रहनेके स्थान आदिको नहीं देख पाया था। पुरुलियामें मुझे कोढ़ियोंके रहनेके स्थानको देखने तथा संस्थाकी कार्य-प्रणालीको समझनेका मौका मिला। दोनों जगहोंपर आश्रमोंके सुपरिंटेंडेंट और उनकी पत्नियाँ कोढ़ियोंके प्यारे

मित्र हो गये हैं। कुष्ठाश्रमोमे रहनेवालोंके चेहरोंपर क्लेशका कोई भाव नही दिखाई दिया। अपने सुपरिटेंडेंटके प्रेममय व्यवहारके कारण वे अपने दुःखको भूल गये थे। पुरुलियामे मुझे बताया गया कि तेलके इन्जेक्शनसे, खासकर आरम्भिक अवस्थामे, कुष्ठ दब जाता है। सुपरिन्टेडेटने मुझे यह भी बताया कि जिन लोगोंकी खाल गल गई थी या पैरके अँगूठे और अँगुलियाँ गल गई थी उनका रोग देखनेमें भयंकर जरूर था पर संक्रामक बिलकुल नही था। ऐसे मामलोंमे बीमारी अपना काम पूरा कर चुकी थी। वह न तो संक्रामक ही थी और न उसका कोई इलाज था। छूतके रोगी तो वे लोग थे जो न तो अपनेको खुद ऐसा समझते थे और न लोग ही उन्हें वैसा समझते थे। ये ऐसे मामले हैं जिनमें इन्जेक्शनसे पूरा आराम हो जाता है। हमारे लिये यह लज्जाकी बात है कि इस रोगसे पीड़ित मनुष्योंकी देखभाल करनेका अत्यन्त आवश्यक और मानवीय काम केवल विदेशी ईसाई लोग ही कर रहे हैं। वे तो इसके लिए आदरके पात्र हैं। किन्तु हम अपने लिए क्या कहें? पाठक यह जानकर दुःखी होंगे कि देशमें कुष्ठ रोग बढ़ रहा है। इसका सामान्य कारण अशुद्ध रहन-सहन और अनुपयुक्त आहार बताया जाता है।

बिहारके और हिस्सोंसे भिन्न, पुरुलिया और उसके आसपासके क्षेत्रमें मुख्यतः बंगला-भाषी लोग रहते हैं। कलकत्तेसे उसका जलवायु बेहतर है और ठंडा भी है। बंगाली लोग पुरुलियाको स्वास्थ्य-सुधारका स्थान समझते हैं। देशबन्धुके पिताने पुरुलियामें एक सुन्दर घर बनवाया था। मैं उसी घरमें ठहराया गया था। देशबन्धुके स्वर्गवासके बाद उस घरमे ठहरते हुए मुझे दुख हुआ। उनके माता-पिताकी समाधियाँ उस मकानके अहातेमे एक कोनेमें हैं। जहाँ-जहाँ उनकी चिता-भस्म गड़ी है वहाँ एक सीधा-सादा आडम्बरहीन चबूतरा बना है। सामने ही एक मकान टूटी-फूटी अवस्थामें है जो कि देशबन्धुकी एक बहनने बनवाया था। उसमें वे एक विधवाश्रम चलाती थी। उनकी बहनके असामयिक स्वर्गवासके साथ ही विधवाश्रम भी समाप्त हो गया। एक और टूटी-फूटी इमारत मुझे दिखाई गई जिसमें गरीबोंके रहनेके लिए कोठरियाँ बनी हुई थी। आसपासका सारा वातावरण इस परोपकारी कुटुम्बकी विस्मयजनक उदारताके अनुरूप था। ऐसी अवस्थामे मेरा यह सौभाग्य था जो देशबन्धुके चित्रोंका तथा देशबन्धु एवेन्यू और देशबन्धु रोडके नामपट्टोंका अनावरण मेरे हाथों कराया गया।

हो और मुंडा तथा अन्य आदिम जातियोंके प्रदेशमें अपनी यात्रा तथा उन प्रदेशोंमें जो सुधार-कार्य चुपचाप हो रहा है, उसके सम्बन्धमें मुझे जरूर लिखना है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २४-९-१९२५

१२३. अस्पृश्यता और सरकार

एक पत्र-लेखक लिखते हैं :[1]

इसमें स्पष्टतः विचार-दोष है। युवराजके आगमनके समय अछूतोंके द्वारा उन्हें मानपत्र देनेकी कथा मुझे मालूम है। और यद्यपि मैं यह नहीं जानता कि उक्त आन्दोलनके पीछे सरकारका हाथ है, फिर भी यदि पत्र-लेखकका यह आरोप सही हो तो मुझे इसमें जरा भी आश्चर्य नहीं होगा। इसमें कोई सन्देह नहीं कि सरकारकी नीति हममें फूट डालनेकी है। हमारी फूटमें ही उसकी शक्ति है। हमारी एकतासे तो उसकी नींव खिसक जायेगी। पर यह नीति इस बातका प्रमाण नहीं है कि सरकार हमारे अस्पृश्यता-निवारणके काममें दखल दे रही है। उदाहरणके लिए, सरकार खुले आम या दबे छिपे अस्पृश्यता दूर करने, अछूतोंके लिए मदरसे चलाने और कुएँ खोदने या अपने कुओंसे उन्हें पानी लेने देनेके हमारे कार्योंमें बाधा नहीं डाल रही है। सरकार द्वारा अपने स्वार्थ-साधनके लिए अछूतोंका उपयोग एक बात है और हिन्दुओंके लिए अपने सुधारके रूपमें अस्पृश्यता-निवारण बिलकुल दूसरी बात है। हाँ, यदि हम हठपूर्वक हिन्दू धर्मसे इस अस्पृश्यताकी बीमारीका उन्मूलन करने और इस प्रकार अपने कर्त्तव्यका पालन करनेसे मुँह मोड़ेंगे तो उनका ऐसा उपयोग निश्चित रूपसे होता रहेगा। और यदि हम इस तरह सरकारके मत्थे दोष मढ़ते रहेंगे और अस्पृश्यताको मिटानेके लिए स्वराज्य प्राप्त होनेकी राह देखते रहेंगे तो इस दिशामें हम अपनी पूरी शक्तिके साथ उद्योग नहीं कर सकेंगे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २४-९-१९२५

१. पत्र यहाँ नहीं दिया गया है। पत्र-लेखकने २७-८-१९२५ के यंग इंडियामें प्रकाशित गांधीजीके इस कथनका उल्लेख किया था — जहाँतक मैं जानता हूँ, वह (सरकार) "एक भी अवसरपर अस्पृश्यता-निवारणके आड़े नहीं आई।" और कहा था कि "सरकारने चाहे इस सुधार-कार्यमें वास्तविक रूपसे रुकावट न डाली हो, लेकिन वह उसे अपने प्रकृत मार्गसे भटकानेकी कोशिश अवश्य कर रही है।" अपनी बातके समर्थनमें पत्र-लेखकने युवराजके यहाँ आनेके समय सरकारके प्रयत्नोंसे मेरठके चमारों द्वारा दिये गये 'अभिनन्दनपत्रों तथा मैनपुरी, इटावा, एटा और कानपुर जिलोंमें चलाये गये 'आदि हिन्दू आन्दोलन' के उदाहरण दिये थे। उक्त आन्दोलनके द्वारा 'अछूतों' को पृथक् प्रतिनिधित्व तथा सरकारी सेवाओंमें पर्याप्त अनुपातकी माँग करने और सवर्ण हिन्दुओंके खिलाफ बगावत करनेके लिए उकसाया जा रहा था। पत्र-लेखकका कहना था कि इस आन्दोलनके पीछे सरकारी अधिकारियोंका हाथ था।

१२४. ब्रिटिश सिंहका क्या?

सुदूर कैलिफोर्नियासे एक पत्र मिला है जो नीचे दिया जाता है:

> इसके साथ एक कतरन संलग्न है। कृपया इस कतरनको पहले पढ़ें। केनेडी अपने घरमें बैठा हुआ था। संयोगसे उसने सामने मैदानपर नजर डाली जहाँ उसकी चार वर्षीय पौत्री खेल रही थी। उसने देखा कि एक जंगली शेर दबे पैर बच्चीकी ओर बढ़ रहा है। केनेडीने लपक कर अपनी रायफल उठाई। शेर बच्चीपर झपटने ही वाला था कि उसने खिड़कीसे निशाना ताक कर गोली मार दी। गोली शेरके कलेजेको पार कर गई।
>
> अब उस बच्चीके पितामहकी इस कार्रवाईपर अपनी राय और नीचे लिखे सवालोंका जवाब दीजिए:
>
> क्या उसका शेरको मारना ठीक था? क्या केनेडीको चाहिए था कि वह अहिंसाका पालन करता और शेरको बच्चीको खा जाने देता? क्या उसका सिंहकी आत्मासे अपील करना और इस तरह अपनी बच्चीकी जानको खतरेमें डालना ज्यादा अच्छा होता? क्या केनेडीके लिए अपनी बच्चीको बचानेकी खातिर शेरसे दयाकी प्रार्थना करना सम्भव था? क्या आप ब्रिटिश सिंहकी आत्मासे इसी तरह प्रार्थना करते रहेंगे और उसे लाखों भारतवासियोंको फाड़ खाने देंगे?

पहले प्रश्नका मेरा उत्तर यह है कि केनेडीका सिंहको मार डालना ठीक था। दूसरे सवालोंको पूछकर लेखकने अहिंसा तथा उसकी कार्य-प्रणालीके विषयमें अपने अज्ञानका परिचय दिया है। अहिंसा मानसिक या बौद्धिक वृत्ति नहीं है बल्कि हृदयका, आत्माका गुण है। यदि केनेडीको सिंहका भय न होता—ध्यान रहे कि निर्भयता अहिंसाकी पहली और अनिवार्य शर्त है—यदि उसके हृदयको इस सत्यकी प्रतीति होती कि सिंहमें भी वैसी ही आत्मा है जैसी कि खुद उसमें है तो वह बन्दूक लेनेके लिए न दौड़ता और इस संशयास्पद संयोगपर निर्भर न करता कि जबतक वह बन्दूक लेकर आता है और अचूक निशाना मारता है तबतक सिंह इन्तजार करेगा; बल्कि इस दृढ़ विश्वासके साथ कि वह शेरकी अन्तरात्मासे अपील करके अपनी बच्चीको बचा सकता है, वह सीधा सिंहकी ओर दौड़कर उसके गलेमें बाँह डाल देता। यह बिलकुल सच है कि अहिंसाकी इस स्थितिपर पहुँचना बहुत ही थोड़े लोगोंके लिए शक्य है। इसलिए आम तौरपर मानवजाति हमेशा ही सिंहों और बाघोंको मार कर अपने बच्चों और मवेशियोंकी रक्षा करती रहेगी। परन्तु इससे मूल सिद्धान्तमें कोई बाधा नहीं पड़ती। हिन्दुस्तानमें ऐसे सच्चे साधु-सतोंकी बात कोई नई नहीं है जो जंगलोंमें निडर भावसे जंगली जानवरोंके बीच रहते हैं और दोनोंमें से कोई किसीको हानि

नहीं पहुँचाता। पश्चिममें भी इस बातके ऐतिहासिक दृष्टान्त मौजूद हैं। लेखकने वीर पुरुषोंके सम्बन्धमें भी एक अकल्पनीय कल्पना करनेकी भूल की है। यदि केनेडी यों ही खड़ा-खड़ा देखता रहता और उसकी बच्चीको सिंह फाड़कर खा जाता तो यह किसी भी सूरतमें अहिंसा न होती, बल्कि निरी हृदयहीन कायरता होती जो कि अहिंसाके बिलकुल विपरीत है। लेखकका आखिरी प्रश्न ऐसा है जिससे कि इस पत्रका वास्तविक उद्देश्य प्रकट होता है। उसमें लेखकने हमारे अपने जमानेके इतिहासके प्रति घोर अज्ञान प्रकट किया है। उनको जानना चाहिए कि जिस आन्दोलनके लिए मैं अपनेको जिम्मेवार मानता हूँ वह ब्रिटिश सिंहकी आत्मासे की जा रही उस तरहकी अपील नहीं है जैसी कि लेखकका खयाल है। इस आन्दोलनकी अपील भारतवर्षकी आत्मासे है कि वह जागे और अपने आपको पहचाने। यह आन्तरिक शक्तिको विकसित करनेका आन्दोलन है। इसलिए अपने अन्तिम रूपमें यह निःसन्देह ब्रिटिश सिंहकी आत्माके प्रति अपील तो है; परन्तु उस अवस्थामें वह बराबरीके स्तरपर की गई अपील होगी। एक भिखारीकी दातासे अपील नही होगी जो शायद कुछ दे दे, अथवा एक बौनेकी एक विशालकाय राक्षससे अपनी रक्षा करनेकी व्यर्थ अपील नहीं होगी। उस अवस्थामें उसका रूप एक आत्माकी दूसरी आत्माके प्रति की गई ऐसी जोरदार अपीलका होगा जिसे कोई रोक नही सकेगा। हाँ, इसमें कोई सन्देह नहीं कि हमारे अन्दर आन्तरिक शक्ति उत्पन्न हो जानेतक सिंह हमारा भक्षण करता रहेगा। किन्तु यदि भारत केनेडीकी तरह बन्दूकका सहारा लेनेको दौड़े, तब भी ब्रिटिश सिंहका भक्षण कार्य नहीं रुकेगा। परन्तु जहाँ एक तरफ केनेडी उस बन्दूकको लेने गया था जो कि उसके पास पहलेसे थी और जिसे कि वह चलाना जानता था, वहाँ दूसरी ओर भारतरूपी केनेडीका, बन्दूकके लिए दौड़ना तो ब्रिटिश सिंहको बिना आवश्यक शस्त्रास्त्रके या बिना उनको चलानेका कौशल प्राप्त किये मारनेकी कोशिश करने जैसा होगा! मेरे तरीकेमें ब्रिटिश सिंहको नष्ट करनेकी नहीं, बल्कि उसके स्वभावको बदल देनेकी सम्भावना है। इसके अलावा केनेडीकी विधिका अनुसरण करनेका अर्थ होगा भारतवर्षको अपने अन्दर उन्हीं गुणोंको विकसित करना, जिन्हें हम आज ब्रिटिश सिंहके अन्दर निन्दनीय मानते हैं। और अन्तमें तीसरी परिस्थिति। पत्र-लेखक न केवल उसे सम्भव मानता है किन्तु उसका खयाल है कि यदि बन्दूकका सहारा नही लिया जाता तो फिर यही विकल्प रह जाता है, और जो भारतके सम्बन्धमें भी उतना ही अप्रस्तुत है जितना पत्र-लेखक द्वारा उल्लिखित कैलिफोर्नियाके मामलेमें। भारतके पास अपनी आजादीके सिर्फ दो रास्ते हैं। या तो वह अपनी आजादी पानेके उद्देश्यसे और केवल उसी हदतक, सिर्फ अहिंसात्मक साधनोंका अवलम्बन करे, या हिंसाके पश्चिमी साधनोंको विकसित करे और साथ ही उनसे होनेवाले परिणामोंको भी भुगते।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २४-९-१९२५

१२५. राष्ट्रीय पंचायत

पिछले साल दिल्लीमे, साम्प्रदायिक विवादोंके निपटारेके लिए एक राष्ट्रीय पंचायत कायम हुई थी। मैं उसका सभापति माना जाता हूँ। दिल्लीसे, फिर पानीपतसे और अब इलाहाबादसे तार और खत मिले हैं कि मैं वहाँके झगड़ोंका निपटारा करूँ। मुझे बड़े अफसोसके साथ उन लोगोंको सूचित करना पड़ा है कि दोनों जातियों पर अब मेरा कोई प्रभाव नहीं रह गया है। पंचायतसे उसी अवस्थामें लाभ होता है जब उसका प्रभाव लड़नेवाले दोनों पक्षोंपर हो और वे उसके फैसलेके अनुसार चलनेको राजी हों। दिल्लीकी सभाके बादसे अबतक जमाना काफी बदल गया है। इस वक्त तो दोनों पक्षोंके लोग पंचायतके द्वारा निपटारा करानेके बजाय लड़नेके लिए ही ज्यादा सगठित है। किन्तु इसमे कोई सन्देह नही है कि अन्तमें उन्हें मिलना ही होगा। पर ऐसा मालूम होता है कि यह तब होगा जब दोनों आपसमे तलवारें लेकर निपट चुके होंगे। मैं समझता हूँ कि मुझे अपनी सीमाओंका ज्ञान है और मेरा विश्वास है कि मेरा किसी किस्मके साम्प्रदायिक झगड़ोके बीचमे न पड़ना ही शान्ति और सुलहके कार्यके लिए अधिक अच्छा रहेगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २४-९-१९२५

१२६. टिप्पणियाँ

मेरे नामका दुरुपयोग

मद्रासके एक सज्जनने मेरे नाम एक छपी हुई खुली चिट्ठी भेजी है। उसमें उन्होंने तमिलनाडमे स्वराज्यवादियों द्वारा किये गये दुष्कृत्योंका वर्णन किया है और मुझे बताया है कि किस प्रकार नगरपालिकाके चुनावोंमें मेरे नामका दुरुपयोग किया गया है। उसके कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं।[1]

यदि यह वर्णन सही है तो अवश्य ही जो-कुछ हो रहा है, वह निन्दाके योग्य है। लेखक मुझसे कहते हैं कि मैं इन तरीकोंसे अपनेको अलग रखूँ। उनके सुझावका या तो यह अर्थ है कि वे मुझे जानते नही हैं, क्योंकि मैं तो कई बार असत्य, हिंसा और गुण्डागर्दीके खिलाफ अपनी कड़ीसे-कड़ी नापसन्दगी जाहिर कर चुका हूँ; यहाँतक कि जब भी मेरे नामका दुरुपयोग किया गया और मुझे लगा कि मेरी स्थितिके सम्बन्धमें

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्रमें वचन भंग, रिश्वत, भ्रष्टाचार, गांधीजीके नामका दुरुपयोग और उनके जरिये स्वार्थसाधन, मतदाताओंको गलत बातें बताना या उन्हें शराब पिलाना आदिके उदाहरण दिये गये थे।

लोगोंमें गलतफहमी हो सकती है, मैंने प्रायश्चित्त किया है, और ऐसा मैंने एकसे ज्यादा बार किया है।[1] फिर भी, मेरे लिए यह असम्भव है कि मैं अपनेको उन लोगोंके कामोंके लिए जिम्मेवार मानूँ, जो ऐसे मामलोंमें मेरा नाम लेनेका कोई आधार न होते हुए भी मेरे नामपर बुरे काम करेंगे। या फिर लेखकके सुझावका यह अभिप्राय है कि यदि उनकी लिखी बातें सच हों तो मैं स्वराज्यवादी दलको सहायता देना बन्द कर दूँ। मैं यह तबतक नही कर सकता जबतक पण्डित मोतीलाल-जैसे शख्स उसके पथ-प्रदर्शक है और जबतक कि उसकी नीति और सिद्धान्त कायम हैं। स्वराज्यवादी दलको मेरी सामान्य सहायताका अर्थ यह नही है कि मैं दलके नामपर अपनाये गये हर तरीकेकी या स्वराज्यवादी दलके हर सदस्यके कामकी ताईद करता हूँ। मुझे इसमें कोई सन्देह नही कि स्वराज्यवादी दलमें निकम्मे और पाखण्डी लोग हैं; पर मुझे दुःखके साथ यह भी कहना पड़ता है कि अभीतक मैं जिन जन-तान्त्रिक सस्थाओंमें रहा हूँ उनमे मैंने ऐसी कोई संस्था नहीं देखी जो इस तरहके आदमियोंसे अपनेको मुक्त रख सकी हो। मनुष्य अपनेको साफ रखनेके लिए अधिकसे-अधिक इतना ही कर सकता है कि वह संस्थाओंकी मूल नीतियों और उद्देश्योंकी और उनके संचालकोंके सामान्य चरित्रकी छानबीन करे और जब उसकी नीतियाँ और उद्देश्य ही आपत्तिजनक हो जाये, या उनके ठीक रहनेपर भी संस्था अप्रामाणिक लोगोंके हाथों चली जाये तो अपना ताल्लुक उससे तोड़ ले। यदि स्वराज्यवादी दलमें कुछ बुरे लोग घुस गये है तो उसमें बहुतसे सुयोग्य, ईमानदार, त्यागी और कठिन परिश्रमी लोग भी हैं। दूसरे दलोंके मुकाबलेमें स्वराज्यवादी दल घटिया नही साबित होगा। पत्र-लेखक महोदय इत्मीनान रखें कि उनके द्वारा वर्णित तरीकोंको अपनाना यदि किसी भी दलके लिए एक आम बात हो गई हो तो मैं उस दलको चाहे कितना ही बढ़ावा क्यों न दूँ उसे कोई सर्वनाशसे नही बचा सकता। अतएव पत्र-लेखक महोदयके, सर्वसाधारणके तथा मेरे सामने सवाल यह है कि इस बातका पता लगाया जाये कि स्वराज्यवादी दलने उक्त तरीकोंको कहाँ तक अपनाया है और उनको कहाँतक चलने दिया है? मेरे कर्त्तव्यका पालन तो इस विषयमें इतने ही से हो जाता है कि मैं इस प्रकारके आरोपोंके सारको प्रकाशित कर दूँ और किसी प्रशंसनीय उद्देश्यके लिए भी अपनाये गये बेजा तरीकोंके प्रति अपनी नापसन्दगी जाहिर कर दूँ। सम्भावना तो यह है कि वे लोग जिनपर पत्र-लेखकने ये इल्जाम लगाये हैं, उन आरोपोंका खण्डन करेंगे। मैं उनपर सहसा विश्वास नहीं कर सकता, क्योंकि मुझे अनुभवने यह सिखाया है कि जहाँ दलबन्दीकी भावनाका दौर-दौरा होता है वहाँ एक दल दूसरे दलपर निर्मूल आरोप लगाया करता है। यहाँतक कि मेरा महात्मापन भी स्वयं मुझे ऐसे लांछनोंसे नहीं बचा पाया है जो मैं जानता हूँ बिलकुल असत्य है। अभी जब मैं कलकत्तेमें था तब मुझपर 'मनस्यन्यद् वचस्यन्यद्' तथा बेहद असंगतिका आरोप लगाया गया था। रौलट अधिनियमके आन्दोलनके जमानेमें पंजाबके कितने ही देशभक्तोंपर बदमाशीका इल्जाम लगाया गया था, जिससे कि वे वस्तुतः बिलकुल मुक्त थे। मै ऐसे एक भी सार्वजनिक कार्य-

१. देखिए खण्ड २३ और २७।

कर्त्ताको नही जानता जो अपने सार्वजनिक जीवनमे कभी-न-कभी संशयका पात्र न समझा गया हो। इसलिए दलो या उनके नेताओंपर जब इल्जाम लगाये जाते हैं तब उनपर विश्वास करनेमे बहुत सावधानीसे काम लेना चाहिए।

सच्चा सत्याग्रह

बहुत समयसे मैंने इन स्तम्भोमे वाइकोम तथा वहाँ 'अनुपगम्यता'—अस्पृश्योको अमुक सार्वजनिक स्थानोंसे दूर रखनेकी बुराई—के विरुद्ध चलाये जा रहे संघर्षके सम्बन्धमें जानबूझ कर कुछ नही लिखा है। और न मैं अभी उससे प्रत्यक्ष सम्बन्ध रखनेवाली कोई बात लिखना चाहता हूँ। पर यहाँ मैं पाठकोको यह जरूर बताना चाहता हूँ कि वाइकोमके सत्याग्रही अपना समय किस तरह व्यतीत कर रहे हैं।

वाइकोमसे पिछली १ अगस्तका लिखा एक पत्र मुझे कलकत्तामे मिला था। वह भूलसे अबतक अप्रकाशित ही पड़ा रहा। पर उसका आशय आज भी उतना ही ताजा है जितना कि वह पत्र प्राप्त होनेके समय था। इसलिए उसे यहाँ देता हूँ।

> मुझे मिलाकर अब यहाँ सिर्फ १० स्वयंसेवक हैं। एक तो रोजाना रसोईका काम करता है और एक को छोड़कर शेष सभी स्वयंसेवक सत्याग्रह करते हैं—हर एक तीन-तीन घंटा। सत्याग्रहके लिए जाने और आनेका समय मिलाकर ४ घंटे होते हैं। हम नियमपूर्वक ४।। बजे सुबह उठते हैं और आधा घंटा प्रार्थनामें लगता है। ५ से ६ तक झाड़ू-बुहारू, पानी लाना और बरतन मलना होता है। दो आदमियोंको छोड़कर, (जो कि नहा-धोकर ५-१५ पर सत्याग्रह करने चले जाते हैं) हम शेष लोग ७ बजेतक स्नान करके लौटते हैं और जबतक सत्याग्रहके लिए जानेका समय नहीं हो जाता तबतक सूत कातते या रुई धुनते हैं। हममें से अधिकांश नियमपूर्वक रोज एक-एक हजार गज सूत देते हैं और कुछ तो इससे भी अधिक। रोजाना औसतन १०,००० गजसे अधिक सूत काता जाता है। रविवारको मैं कोई काम करनेपर जोर नहीं देता। उस दिन हर आदमी अपनी मर्जीके मुताबिक काम करता है। हममें से कुछ लोग तो रविवारको भी दो तीन घंटे कताई और धुनाई करते हैं। जो हो; रविवारको काता हुआ सूत वापस नहीं दिया जाता। जो लोग कांग्रेसके सदस्य हैं वे रविवारको अपने चन्देका सूत कातते हैं। कुछ लोग रविवारको तथा और फुर्सतके वक्तमें सूत कातकर अपनी नम्र भेंट आपके द्वारा स्थापित अखिल भारतीय देशबन्धु स्मारक कोषमें देनेके लिए रखते हैं। ४ सितम्बरको (दादाभाईकी जन्म-शताब्दीके दिन) हम एक छोटा-सा सूतका बण्डल आपके पास भेजना चाहते हैं। मुझे आशा है कि आप उसे पाकर खुश होंगे। इसे हम अपनी सामान्य दैनिक कताईके अलावा कातेंगे। हम या तो उस दिन दिनभर भिक्षा माँगेंगे या दिनभर सूत कातेंगे। और जो-कुछ जमा होगा, आपकी सेवामें भेज देंगे। ठीक क्या करेंगे, यह हमने अभीतक तय नहीं किया है।

इससे प्रकट होता है कि वाइकोमके सत्याग्रहियोंने अपने कामकी भावनाको समझ लिया है। इसमें न तो धूम-धड़ाका है, न शोरगुल। बल्कि अपने शुद्ध आचरणके द्वारा विजय प्राप्त करनेका सीधा सरल निश्चय है। सत्याग्रहीको अपने एक-एक मिनटका अच्छा हिसाब देनेमें समर्थ होना चाहिए। वाइकोमके सत्याग्रही यही कर रहे हैं। कांग्रेसके लिए तथा दादाभाई जन्म-शताब्दीके लिए अपनी छुट्टीके दिन अलगसे समय निकालकर सूत कातनेकी उनकी प्रामाणिकता पाठकोंके ध्यानमें आये बिना न रहेगी। अखिल भारतीय देशबन्धु स्मारकके लिए सूत कातनेका विचार भी उनके अन्य कार्योंके अनुरूप ही है। मेरे सामने यह जो पत्र है इसमें रविवारको छोड़कर पिछले सप्ताह-भरके सूतका हर स्वयंसेवकका हिसाब लिखा हुआ है। अलग-अलग सत्याग्रहियों द्वारा काती गई सूत-राशिमें जिसकी सूत-राशि सबसे ज्यादा है उसने १७ अंकका ६८९५ गज सूत काता है। सबसे कम कातनेवालेने १८ नम्बरका २,९३६ गज सूत काता है। इस कमीका कारण यह बताया गया है कि वह तीन दिनतक छुट्टीपर गया था। उस सप्ताहका औसत सूत फी आदमी प्रति दिन ८६६.६ गज था। २६ अगस्तको पूरे होनेवाले सप्ताहके अंक भी मेरे सामने हैं। एक व्यक्ति द्वारा अधिकसे-अधिक ७,७०० गज सूत काता गया है, और कमसे-कम २,०००। दूसरे व्यक्तिने सप्ताहमें दो ही दिन कताई की थी। पाठक शायद पूछेंगे कि चरखा और अस्पृश्यता-निवारणके बीच क्या सम्बन्ध है? यों ऊपर-ऊपर देखनेसे कुछ भी नहीं है। किन्तु वास्तवमें बहुत है। सत्याग्रह तो सत्याग्रहकी भावनामें ही है: इस भावनासे विच्छिन्न किसी बाहरी कार्यको सत्याग्रह नहीं कह सकते। कताईके अन्दर जो सत्याग्रहीकी भावना यहाँपर है वह आगे चलकर अपना असर डाले बिना न रहेगी। क्योंकि इन नवयुवकोंके लिए कताई एक ऐसा राष्ट्रीय यज्ञ है, जिससे कि अनजाने ही सच्चा विनय, धैर्य और निश्चय — ये गुण प्रकट होते हैं और ये गुण स्वच्छ सफलताके लिए अनिवार्य हैं।

अनिवार्य फौजी शिक्षा

प्रयागके एक स्नातक लिखते हैं:

> मैं प्रयाग विश्वविद्यालयका एक पंजीकृत स्नातक हूँ। प्रयाग विश्वविद्यालय कोर्टकी सदस्यताके उम्मीदवारको वोट देनेका हक मुझे हासिल है।
>
> मैंने विश्वविद्यालयोंमें फौजी शिक्षाको अनिवार्य करनेके विचारका विरोध किया है। इसपर आपत्ति खड़ी की गई है। इस प्रश्नपर मैं 'यंग इंडिया' के द्वारा आपकी सम्मति जानना चाहता हूँ। मेरे विचार संक्षेपमें इस प्रकार हैं:
>
> मैं इस बातको मानता हूँ कि स्वराज्य सरकारमें युवकोंसे यह अपेक्षित होगा कि वे फौजकी नौकरी अपनायें और हमें इस प्रवृत्तिको प्रोत्साहन देना होगा। पर मैं समझता हूँ कि विदेशी सरकारके अधीन इस बातका कोई आश्वासन नहीं है कि विश्वविद्यालयके इन फौजी दस्तोंका भारतीय राष्ट्रके खिलाफ उसी प्रकार उपयोग नहीं किया जायेगा, जैसा कि इससे पूर्व भारतीय फौजोंका किया गया है। फिर, यदि हमारे नवयुवक फौजी तालीमके लिए मजबूर किये

गये तो क्या यह हमारी नैतिक गुलामीकी जंजीरमें एक और कड़ी न होगी? क्या यह किसी विश्वविद्यालयके आदर्शके विरुद्ध नहीं है? विश्वविद्यालय ही में तो हम अपनी उन्नतिके लिए स्वतन्त्र वायुमण्डलकी आशा कर सकते हैं। क्या इससे हमारे आदर्श फौजी सांचेमें न ढल जायेंगे? विदेशोंके विश्वविद्यालयोंकी मेरी जानकारी सीमित है, फिर भी जहाँतक मुझे ज्ञात है, इंग्लैंड और अमेरिका-जैसे स्वाधीन देशोंके विश्वविद्यालयोंमें भी फौजी शिक्षा अनिवार्य नहीं है। यदि हम राजनीतिक पहलुओंको छोड़ भी दें तो भी क्या हमें लोगोंको उनकी अन्तरात्माकी प्रेरणाके अनुसार चलनेकी इजाजत नहीं देनी चाहिए। यह तो ऐसा अधिकार है जिसकी रक्षाके लिए पिछले युद्धके समय बहुतसे अंग्रेजोंने जेल जाना पसन्द किया था। उनमें से सभी मौतसे नहीं डरते थे।

ये सब बातें हैं जिनपर पूरा ध्यान देनेकी आवश्यकता है। दूसरी ओर, शारीरिक शिक्षाको अनिवार्य बनानेका समर्थन मैं खुशीके साथ करूँगा—और सच पूछिए तो मैं उसकी वकालत भी करता हूँ। मैं समझता हूँ कि यदि यह अनिवार्य कर दी जाये तो विश्वविद्यालयको शिक्षाकी सब आवश्यकताएँ पूरी हो जायेंगी।

उन लोगोंके लिए जो जीवन या राजनीतिके सम्बन्धमें जुदा विचार रखते हैं, हमें विश्वविद्यालयका दरवाजा बन्द नहीं करना चाहिए। यों भी ऐसी संस्थाओंमें ऐसी बहुत-सी बातें हैं जिनसे व्यक्तिकी स्वाधीनता बाधित होती है।

मैं धर्मतः शान्तिवादी हूँ। अतएव विश्वविद्यालयमें फौजी शिक्षाको अनिवार्य करानेके सम्बन्धमें पत्र-लेखकने जो भी कहा उसकी हृदयसे पुष्टि करता हूँ। परन्तु केवल लाभालाभकी तथा राष्ट्रीयताकी दृष्टिसे भी उनकी युक्ति सबल मालूम होती है। निश्चय ही विश्वविद्यालयकी फौजी टुकडीका उपयोग ऐसे उद्देश्योसे किया जा सकता है जो राष्ट्रीय हितोंके विरुद्ध हो। इतना ही नही; सरकारका रवैया जबतक राष्ट्र विरोधी है तबतक यह भी सम्भावना है कि अवसर आनेपर छात्रोंकी इन फौजी टुकड़ियोका इस्तेमाल राष्ट्रकी जनताके खिलाफ ही किया जाये। उदाहरणके लिए, किसी भावी डायरको जलियाँवाला बागकी पुनरावृत्तिके हेतु विश्वविद्यालयके इन छात्रोंका उपयोग करनेसे कौन रोक सकता है? और क्या यह नामुमकिन है कि जब साम्राज्यके व्यापारके हितमें चीन और तिब्बतके निर्दोष लोगोपर आधिपत्य जमाना आवश्यक मालूम हो तो उनपर चढ़ाई करनेके लिए क्या ये नौजवान स्वय अपनी सेवाएँ अर्पित कर दें? पिछले महायुद्धमें भाग लेनेवाले कुछ युवक स्वयसेवकोंने अपने कार्यका समर्थन यह कह कर किया था कि उसके द्वारा हमें युद्ध-कलाका अनुभव मिला है। सीमा-प्रान्तके इलाकोंमें [ब्रिटिश भारतीय] सेनाकी चढाइयाँ, जाने या अनजाने, ठीक इसी कारणसे, प्रेरित हुई थीं। जो लोग सफलतापूर्वक साम्राज्योंका संचालन करते हैं उन्हें मनुष्य-स्वभावका सहज ज्ञान होता है। कोई जान-बूझकर बुरा या दुष्ट नही

होता। प्रेरक हेतु यदि किसी तीव्र भावनासे युक्त हो तो वह अपना काम अच्छी तरह करता है। हजारों नवयुवकोंको किसी सैनिक टुकड़ीमें शामिल होनेके पहले राजभक्तिकी शपथ लेनी होगी और बीसों मौकोंपर यूनियन जैकको सलामी देनी होगी। ऐसी हालतमें वे स्वभावतः अपनी राजनिष्ठाका अच्छा परिचय देना चाहेंगे और अपने अधिकारियोंसे गोली चलानेका हुक्म मिलते ही अपने देशभाइयोंपर खुशीसे गोली चलायेंगे। अतएव अहिंसाका परम पुजारी होते हुए भी मैं उन लोगोंको फौजी शिक्षा देनेकी बात तो समझ सकता हूँ जो अमुक परिस्थितियोंमें शस्त्रका प्रयोग करनेकी आवश्यकताके कायल हैं, तथापि मैं उस सरकारके अधीन रहते हुए, जो कि लोगोंकी आवश्यकताओंकी क़तई परवाह ही नहीं करती है, देशके युवकोंके लिए फौजी शिक्षाका प्रतिपादन करनेमें असमर्थ हूँ। और अनिवार्य फौजी शिक्षाका तो मैं हर हालतमें, राष्ट्रीय सरकार स्थापित हो जानेपर भी, विरोध करूँगा। जो लोग फौजी शिक्षा न ग्रहण करना चाहें उनको राष्ट्रीय विश्वविद्यालयोंमें प्रवेश पानेसे रोका नहीं जाना चाहिए। शारीरिक शिक्षाकी बात इससे बिलकुल भिन्न है। वह अन्य विषयोंके समान प्रत्येक अच्छी शिक्षा-योजनाका एक अंग हो सकती है और होनी चाहिए।

मिल मजदूरोंकी दुर्दशा

कलकत्तेसे मिले एक पत्रमें वहाँके मिल मजदूरोंके बारेमें नीचे लिखे आँकड़े और ब्यौरा दिया गया है।[1]

मैं यह नहीं कह सकता कि ये आँकड़े या यह वर्णन बिलकुल ठीक होगा, पर, हाँ आम तौरपर दोनोंको सही माना जा सकता है। पत्र-लेखक लिखते हैं कि स्वर्गीय देशबन्धुने वादा किया था कि 'वे मजदूरोंको उनके इन कष्टोंसे छुटकारा दिलायेंगे' और वह पत्र-लेखक कहते हैं कि मृत्यु हो जानेसे जिस कामको देशबन्धु शुरू भी नहीं कर पाये उसे अब मैं पूरा करूँ। फिर वे कहते हैं कि आप दस हजार रुपयेकी पूँजी जमाकरके सिनेमा कम्पनीके एक कार्यकर्त्ताको दीजिए, ताकि वह मिलके अहातोंमें मजदूरोंके बीच प्रदर्शन करे और मजदूरोंमें चरखे और करघेको प्रतिष्ठित करे।

लेखकका आशय तो अच्छा है पर वे यह नहीं जानते कि सिनेमासे लोग साक्षर नहीं होंगे, न उन दुर्गुणोंसे मुक्त होंगे जिनका पत्रमें उल्लेख है। वे यह भी नहीं जानते कि मजदूर लोग करघे या चरखेका अवलम्बन एक सहायक पेशेके तौरपर नहीं करेंगे; क्योंकि इसकी उन्हें आवश्यकता ही नहीं है। हाँ, हड़तालके दिनोंमें या बेरोजगारीके मौकेपर काम आयेगी, इस खयालसे वे कताई या बुनाई सीख सकते हैं। मजदूरोंका नैतिक और सामाजिक सुधार बहुत ही कठिन और श्रमसाध्य काम है। वह धीरे-धीरे होगा और उन्हीं सुधारकोंके द्वारा होगा जो मजदूरोंके बीच ही रहते हों और जो अपने उज्ज्वल चरित्रके द्वारा मजदूरोंको प्रभावित करें और उनके जीवनको बेहतर बनायें। ऐसे कामके लिए किसी पूँजीकी जरूरत नहीं है और जितनी

१. यह यहाँ प्रकाशित नहीं किया गया है। रिपोर्टके अनुसार कलकत्तेमें कुल ६,६२,००० मिल मजदूर थे। रिपोर्टमें बताया गया था कि मजदूर लोग निरक्षर हैं, दुर्व्यसनोंसे ग्रस्त हैं और कर्ज लेनेकी बुरी लतके शिकार हैं। पत्र-लेखकने गांधीजीसे पूछा था कि उन्हें बचानेका क्या उपाय है।

भी रकमकी जरूरत होगी खुद मिल मजदूर ही उसका प्रवन्ध कर देंगे, जैसा कि अहमदाबादमें हुआ है और शायद शीघ्र ही जमशेदपुरमें भी होगा।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, २४-९-१९२५

१२७. अखिल भारतीय चरखा संघका संविधान[1]

[२४ सितम्बर, १९२५][2]

चूंकि हाथ-कताई और खादीके उद्योगके विकासके लिए विशेषज्ञोंकी एक संस्था स्थापित करनेका समय आ गया है और चूंकि अनुभवसे यह प्रकट हो गया है कि उनका विकास एक ऐसी स्थायी सस्था वनाये विना सम्भव नही है जिसपर राजनीति, राजनीतिक परिवर्तनो या राजनीतिक सस्थाओंका कोई प्रभाव या नियन्त्रण न हो इसलिए अ० भा० काग्रेस कमेटीकी स्वीकृतिसे अखिल भारतीय चरखा सघ नामकी सस्था स्थापित की जाती है। यह संस्था काग्रेस सगठनका अविभाज्य अग होगी, किन्तु उसका अतित्व स्वतन्त्र होगा और उसके अधिकार भी अलग होगे।

उक्त संस्थामें सदस्य, उपसदस्य और दाता होंगे — इनकी परिभाषा आगे दी जा रही है — और उसकी एक कार्यकारिणी परिपद् होगी जिसमें निम्न व्यक्ति होगे और वे ५ सालतक पदारूढ़ रहेंगे :

१. महात्मा गांधी
२. मौलाना शौकत अली
३. श्रीयुत राजेन्द्रप्रसाद
४. श्रीयुत सतीश चन्द्र दासगुप्त
५. श्रीयुत मगनलाल गाधी
६. सेठ जमनालाल वजाज, कोषाध्यक्ष
७. श्री शुएव कुरैशी
८ श्रीयुत शकरलाल वैंकर
९. पण्डित जवाहरलाल नेहरू

(७–९) मंत्री

कार्यकारिणी परिषद्के अधिकार

यह परिपद् अखिल भारतीय खादी वोर्ड और समस्त प्रान्तीय खादी वोर्डोंकी निधि और सम्पत्तिको अपने अधिकारमें ले लेगी। उसे इन निधियों तथा अन्य निधियोंकी व्यवस्थाके पूर्ण अधिकार प्राप्त होंगे और वह उनके वर्तमान आर्थिक दायित्वोंको पूरा करेगी।

१. स्पष्टतः यह संविधान उस मसविदेके अनुरूप था जो गांधीजी द्वारा प्रचारित किया गया था और जिसमें अन्य लोगोंने कुछ हदतक संशोधन भी किये थे।

२. अखिल भारतीय काग्रेस कमेटीकी इस तारीखको पटनामें हुई बैठकमें संविधानको अन्तिम रूप दिया गया था।

परिषद्को ऋण लेने, चन्दा इकट्ठा करने, अचल सम्पत्ति रखने, उचित सुरक्षाकी व्यवस्था करके रुपया लगाने, हाथ-कताई और खादीकी उन्नतिके लिए रहन करने और रहन रखने, खादी संगठनोंको ऋण, दान या आर्थिक सहायताके रूपमें धन देने, सूत कातना सिखानेवाले स्कूलों और संस्थाओंको स्थापित करने या उनको सहायता देने, खादीकी बिक्रीके लिए खादी-भण्डार खोलने या उसको सहायता देने, कांग्रेसके चन्देके रूपमें लोगोंसे स्वयं काता सूत लेने और प्रमाणपत्र जारी करनेके लिए कांग्रेसकी ओरसे अभिकरणका काम करने और ऐसे सब काम करनेका जो इसके उद्देश्योंकी पूर्तिके लिए आवश्यक समझे जा सकें, अधिकार प्राप्त होगा। परिषद्को संघके या परिषद्के कार्योंके संचालनके लिए नियम बनानेका और उनमें संशोधन करनेका अधिकार होगा। उसे समय-समयपर जब आवश्यक समझा जाये संस्थाके वर्तमान संविधानमें परिवर्तन करनेका भी अधिकार प्राप्त होगा।

वर्तमान परिषद्में किसी सदस्यकी मृत्यु होने, किसीके त्यागपत्र देने या किसी अन्य कारणसे जो स्थान खाली होगा उसकी पूर्ति शेष सदस्य करेंगे।

परिषद्को अपने सदस्योंकी संख्यामें वृद्धि करनेका अधिकार होगा। यह संख्या किसी भी समय १२ से अधिक नहीं होगी और परिषद्की बैठकके लिए आवश्यक न्यूनतम सदस्य संख्या ४ होगी।

सब निर्णय बहुमतसे किये जायेंगे।

परिषद् नकद या जिन्सके रूपमें प्राप्त होनेवाले सभी चन्दों, दान और शुल्कका और सारे खर्चका सही हिसाब रखेगी। हिसाबकी बहियाँ सार्वजनिक जाँचके लिए खुली रहेंगी और योग्य लेखा-परीक्षक तीन मास पीछे हिसाबकी जाँच करेंगे।

संघका केन्द्रीय कार्यालय सत्याग्रह आश्रम, साबरमतीमें होगा और जो लोग कांग्रेसके सूत कातनेवाले सदस्य बनना चाहते हैं वे अपने चन्देका सूत नीचे दिये जा रहे फार्ममें ब्यौरेके साथ केन्द्रीय कार्यालयमें भेजेंगे :

सेवामें,
मन्त्री,
अखिल भारतीय चरखा संघ,
साबरमती,
महोदय,

मैं इसके साथ—————गज सूत जिसका वजन————है और जो मैंने काता है, राष्ट्रीय कांग्रेसके लिए अपने चन्देके रूपमें भेजता हूँ। मैं—————कांग्रेस कमेटीका सदस्य हूँ या बनना चाहता हूँ। मेरी आयु————है। मेरा धन्धा—————है। मेरा पता —————है।

आपका

(हस्ताक्षर स्पष्ट हों और यदि प्रेषक स्त्री हो तो वह विवाहित है या अविवाहित यह भी लिखे।)

चन्दा मिल जानेपर मन्त्री सूतकी किस्म और मात्राकी जाँच करेगा और यदि वे सन्तोषजनक हुए तो वह सम्बन्धित कांग्रेस कमेटीको नीचेके फार्मपर एक प्रमाणपत्र भेजेगा :

"मैं प्रमाणित करता हूँ कि ——————————— ने अ० भा० च० संघ को ——————————— गज सूत सन् ——————————— के लिए ——————— प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीकी ——————————— कमेटीमें अपनी सदस्यताके चन्देके रूपमें भेज दिया है।"

मन्त्रीके हस्ताक्षरसे युक्त प्रमाणपत्रकी दूसरी नकल सूत भेजनेवालेको भेज दी जायेगी।

केन्द्रीय कार्यालयमें एक पृथक् बहीखाता रहेगा जिसमें पूरे ब्यौरेके साथ उस सारे सूतकी सूची रहेगी जो कांग्रेसकी सदस्यताके लिए अ० भा० च० संघको प्राप्त होगा।

सदस्य

संघके सदस्योंके दो वर्ग होंगे, 'क' और 'ख':

(१) 'क' वर्गमें १८ सालसे अधिक आयुके और आदतन खादी पहननेवाले वे सदस्य होंगे जो नियमसे प्रति मास खजांचीके पास या किसी अन्य अभिकरणके पास जिसे परिषद् नियुक्त करे, १००० गज अपने हाथका कता हुआ अच्छा बटदार और एकसार सूत भेजेंगे।

(२) 'ख' में १८ सालसे अधिक आयुके आदतन खादी पहननेवाले वे सदस्य होंगे जो प्रतिवर्ष अपने हाथका कता अच्छा बटदार और एकसार ३००० गज सूत भेजेंगे।

राष्ट्रीय कांग्रेसकी सदस्यताके लिए संघको जो सूत दिया जायेगा वह संघको दिये गये चन्देका भाग माना जायेगा।

सदस्योंके अधिकार और कर्त्तव्य

'क' और 'ख' दोनों वर्गोंके प्रत्येक सदस्यका कर्त्तव्य होगा कि वह हाथ-कताई और खादीके लिए प्रचार करे।

सदस्योंको वर्तमान परिषद्की अवधि समाप्त होनेपर 'क' वर्गके सदस्योंमें से कार्यकारिणीके सदस्य चुननेका अधिकार होगा। नियमानुसार आयोजित बैठकमें उपस्थित सदस्य तीन-चौथाईके बहुमतसे संघके संविधानको बदल सकते हैं, किन्तु यह परिवर्तन इस तारीखसे ५ साल बीतनेपर किया जा सकेगा।

जब किसी प्रान्तमें ५० सदस्य दर्ज किये जा चुके तो वे 'क' वर्गके सदस्योंमें से ५ सदस्योंकी एक सलाहकार समिति, परिषद्को संघके उद्देश्योंसे सम्बन्धित प्रान्तीय मामलोंमें सलाह देनेके लिए चुन सकेंगे।

उप-सदस्य

जो लोग अखिल भारतीय चरखा संघको १२ रुपये प्रतिवर्ष अग्रिम देंगे और आदतन खादी पहनेंगे वे संघके उप-सदस्य माने जायेंगे।

जो व्यक्ति आदतन खद्दर पहनता है और ५०० रुपयेकी एक मुश्त रकम पेशगी देता है वह संघका आजीवन उप-सदस्य बन जायेगा।

सब उप-सदस्योंको लेखा विवरण आय-व्ययके तलपट और परिषद्‌की कार्रवाईके विवरणकी नकलें निःशुल्क प्राप्त करनेका अधिकार होगा।

जो कोई व्यक्ति संघमें सम्मिलित होना चाहता हो उसे नीचे दिये जा रहे फार्ममें प्रार्थना करनी होगी।

सेवामें,
मन्त्री,
अखिल भारतीय चरखा संघ,
साबरमती।

प्रिय महोदय,

मैंने अ० भा० च० संघके नियम पढ़ लिये हैं। मैं ——— वर्गका सदस्य/उप-सदस्य बनना चाहता हूँ और इसके साथ ——— के लिए अपना चन्दा भेजता हूँ। कृपया मुझे सदस्य बना लें।

आपका,

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, १-१०-१९२५

१२८. भाषण: पटनाकी सार्वजनिक सभामें[1]

२४ सितम्बर, १९२५

मानपत्रका उत्तर देते हुए सबसे पहले महात्माजीने पटनाकी जनता और जिला बोर्डके सदस्योंको मानपत्रोंके लिए धन्यवाद दिया। इस अवसरपर अपने भाषणमें खान बहादुर नवाब सरफराज हुसैन खाँने हिन्दू-मुस्लिम एकताके बारेमें जो-कुछ कहा था, उसका उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा कि किसी समय मैंने यह दावा जरूर किया था कि अब हिन्दू और मुसलमानोंके बीच सच्ची एकता हो गई है और यह हमेशा बनी रहेगी। और उस समय मैं पूरे औचित्यके साथ यह दावा भी कर सकता था कि इसका श्रेय काफी हदतक मुझको है। लेकिन आज मुझे यह कहते हुए दुःख होता है कि ऐसा नहीं है। मैंने यह बात कई बार कही है और आजकी शाम भी कहता हूँ कि हिन्दुओं और मुसलमानों, दोनोंपर अब मेरा कोई प्रभाव नहीं रह गया है। इस सभामें हिन्दू और मुसलमान दोनों शामिल हुए हैं, लेकिन इससे मैं अपनेको यह धोखा नहीं देता कि वे मेरे हिन्दू-मुस्लिम एकताके सिद्धान्तके कायल हैं और इसी कारण सभामें शामिल हुए हैं। ऐसी सभाओंमें जाकर जिनमें शामिल होनेवाले

१. यह सभा बैप्टिस्ट मिशनके प्रांगणमें शामके ७-३० बजे हुई थी।

लोगोंके मन पवित्र नहीं हैं और जिनके सम्बन्ध परस्पर सौहार्दपूर्ण नहीं हैं, अपने-आपको और दुनियाको, दोनों जातियोंके बीच एकता है, ऐसा धोखा देना मुझे पसन्द नहीं है। जिन सभाओंमें केवल एक ही जातिके लोग भाग लेते हैं, मैं उनमें भी शामिल होना पसन्द नहीं करता। मैं तो हिन्दू और मुसलमानों, दोनोंके साथ बराबरी और निष्पक्षताका व्यवहार करना चाहता हूँ — जैसा कि भारतीय ही नहीं, पश्चिमके लोग भी स्वीकार करते हैं कि मैं स्वराज्य और असहयोग आन्दोलन द्वारा किसीको हानि नहीं पहुँचाना चाहता। उनका उद्देश्य तो सारे संसारका कल्याण करना है। इसलिए जब इन दो जातियोंके लोग एक-दूसरेसे झगड़ते हैं और मुझे अपनी-अपनी तरफ घसीटनेका प्रयत्न करते हैं तो वैसी स्थितिमें मैं किसी एक जातिकी सभामें भाग नहीं ले सकता। मैं दोनोंमें से एक भी जातिकी तरफदारी नहीं कर सकता। मैं यह नहीं कह सकता कि हिन्दू हमेशा ठीक काम करते हैं अथवा मुसलमान कभी ज्यादती नहीं करते। सच तो यह है कि गलती दोनोंकी है, और दोनोंका ही दिमाग खराब हो गया है। ऐसी स्थितिमें मैं तो सिर्फ इतना ही कर सकता हूँ कि दोनोंसे दूर रहूँ और भगवानसे यह प्रार्थना करूँ कि वर्तमान आपसी मनमुटावको देखकर मुझे जो दुख और पीड़ा होती है उसे वह दूर करे। हिन्दू और मुसलमान आपसमें जी-भर कर लड़ लें तब मैं शायद उनसे पूछ सकूँगा कि उन्हें इसका क्या लाभ हुआ। इन दोनों जातियोंके झगड़ेके बारेमें मैं तो इतना भी नहीं कहना चाहता था, पर अध्यक्ष महोदयने इस विषयमें जो कहा उसीसे मुझे भी अपने विचार बताने पड़े। फिर भी मेरे मनमें यह विश्वास और आशा बनी हुई है कि वर्तमान झगड़ोंके बावजूद हिन्दू और मुसलमान जल्दी ही एक हो जायेंगे। जैसा कि मौलाना शौकत अलीका कहना है, यह एक क्षणिक उन्माद है और जल्दी ही दूर हो जायेगा।

इसके बाद महात्माजीने चरखे और खद्दरके महत्त्व और उनकी आवश्यकताकी चर्चा करते हुए कहा कि निःसन्देह हिन्दू-मुस्लिम एकता मुझे प्रिय है, किन्तु वर्तमान स्थितिमें एक ही चीज है जो मुझे उतनी ही प्रिय है और जिसका काम मैं कर सकता हूँ; और वह है चरखा। मुझे इस बातका दृढ़ विश्वास है कि भारतकी गरीबी दूर करनेकी सामर्थ्य अगर किसी चीजमें है तो सिर्फ चरखेमें है। यदि आप भारतके लाखों भूखसे पीड़ित लोगोंकी गरीबी दूर करना चाहते हैं, यदि आप वर्षमें कमसे-कम चार मासतक बेकार रहनेवाले ग्रामवासियोंको कोई उपयोगी धन्धा सिखाना चाहते हैं तो आपके सामने चरखेके सिवा दूसरा कोई साधन नहीं है। जो लोग इसका विरोध करते हैं, क्या वे इसके बदलेमें कोई और चीज सुझा सकते हैं। लेकिन चरखा भी इस काममें तभी सफल हो सकता है जब सभी लोग उसे अपनायें। इसके बाद महात्माजीने नवनिर्मित अखिल भारतीय चरखा संघका उल्लेख किया और खान बहादुर सरफराज हुसैन खांके संघका सदस्य बनने तथा चरखा चलाना स्वीकार करनेके लिए उन्हें और जनताको बधाई दी। उन्होंने कहा कि संघके सदस्योंके लिए खद्दरका

उपयोग आवश्यक है। बिहारके लोग चरखा और खादी अपनायेंगे तभी वे लोगोंकी गरीबी दूर कर सकेंगे, क्योंकि तभी वे किसी दलालके बीचमें पड़े बिना इन गरीबोंको सीधे लाखों रुपये दे सकेंगे। मान लीजिए आप दस आने देकर एक गज खद्दर खरीदते हैं तो वह सारीकी सारी रकम जिसमें रुईका दाम भी शामिल है, सीधे गरीबोंको मिलेगी। मैन्चेस्टरके और दूसरे विदेशी वस्त्रकी बात तो छोड़ ही दीजिए, अगर आप बम्बईकी मिलोंका कपड़ा खरीदते हैं, तो दामका अधिकांश भाग पूँजिपतियों-की जेबमें जाता है और उसका बहुत ही थोड़ा हिस्सा गरीबोंके हाथ पड़ता है। जब मैं यह कहता हूँ तो इसके माने यह न समझें कि मैं पूजीपतियों द्वारा धन कमानेके विरुद्ध हूँ; वैसी बात नहीं है, पर हमारे सामने तो सवाल यह है कि लाखों भूखे गरीबोंको भोजन देना उचित है या उनको जिनके पेट पहले ही खूब भरे हुए हैं। निःसन्देह हमारे आशीर्वादके पात्र तो वे ही हो सकते हैं जो गरीबोंकी भूख मिटाते हैं। खद्दर महँगा होनेपर भी सस्ता है और मिलके कपड़ेसे अच्छा है, क्योंकि उसके द्वारा आप गरीबोंकी सीधी सहायता कर सकते हैं। इसलिए मैंने खद्दर और चरखेके काममें अपना जीवन अर्पित करनेका, और ऐसा करके हिन्दू और मुसलमानों — दोनोंको घोर विनाशसे बचानेका निर्णय किया है। मैं चाहता हूँ आप सब अखिल भारतीय चरखा संघके सदस्य बनें। संघकी सदस्यता दो प्रकारकी है। 'क' वर्गके सदस्योंको प्रतिमास १,००० गज हाथ-कता सूत संघको भेजना है। जो ऐसा नहीं कर सकते वे 'ख' वर्गके सदस्य बन सकते हैं। उन्हें प्रतिवर्ष २,००० गज सूत भेजना है। इसके अलावा सदस्य लोग हमेशा खद्दर और केवल खद्दर ही पहनेंगे।

लेकिन यह सब धनके बिना नहीं हो सकता। इसीलिए मेरा आपसे अनुरोध है कि अखिल भारतीय देशबन्धु स्मारक कोषमें जितना हो सके दान दें। इस धनको खद्दर और चरखेके प्रचार कार्यमें लगाया जायेगा।

अन्तमें महात्माजीने अस्पृश्यताकी भर्त्सना करते हुए कहा कि एक सनातनी हिन्दूके नाते मैं सभी सनातनियोंसे कहना चाहता हूँ कि अस्पृश्यता महापाप है। तुलसी-दासने कहा है कि दया धर्मका मूल है। धर्ममें घृणा और तिरस्कारका कोई स्थान नहीं है। प्रत्येक हिन्दू अपने धर्मका सचाईसे पालन करे और दूसरोंके साथ, शान्तिसे, मित्रतासे रहे।[1]

[अंग्रेजीसे]

सर्चलाइट, २७-९-१९२५

१. भाषणके अन्तमें अखिल भारतीय देशबन्धु स्मारक कोषके लिए चन्दा इकट्ठा किया गया।

१२९. भाषण : खगौलकी राष्ट्रीय पाठशालामें[1]

२४ सितम्बर, १९२५

महात्माजीने पाठशालाकी सहायता करनेवाले लोगोंको धन्यवाद दिया और आशा व्यक्त की कि अभीतक वे जो सहायता करते रहे हैं, आगे भी करते रहेंगे। उन्होंने कहा, मुझे यह सुनकर दुःख हुआ है कि पाठशालामें एक सौ पच्चीस विद्यार्थियोंके स्थानपर अब सिर्फ नब्बे विद्यार्थी ही रह गये हैं। इसमें मैं शिक्षकोंका दोष नहीं मानता। कई स्कूल ऐसे हैं जिनमें अत्यन्त उत्तम शिक्षकोंकी पूरी चेष्टाके बावजूद विद्यार्थियोंकी संख्या कम हो गई है। यह तो उन विद्यार्थियों और उनके अभिभावकोंकी मनोवृत्तिका परिणाम है, जिनके लिए शिक्षाका एक-मात्र ध्येय धन कमाना ही है।

मुझे यह जानकर तो और भी अधिक दुःख हुआ है कि विद्यार्थियोंने कताईमें कुछ प्रगति नहीं की है। उसका कारण तो मेरे सामने ही है। इतने निकम्मे तकुए देकर विद्यार्थियोंसे कताई करते रहनेकी आशा नहीं की जा सकती। इसके लिए मैं शिक्षकोंको दोषी मानता हूँ। यदि शिक्षक विद्यार्थियोंके मनमें कताईके प्रति प्रेमभाव नहीं भर सके तो वे यह आशा कैसे कर सकते हैं कि विद्यार्थी खुशीसे कताई करते रहेंगे। ऐसा लगता है कि शिक्षक लोगोंको चरखेके शास्त्रकी कोई ठीक जानकारी नहीं है। उन्हें इसका अध्ययन करना चाहिए। तब उन्हें मालूम होगा कि सैकड़ों चरखे एक साथ चलें तो भी उनसे इतनी कम आवाज होनी चाहिए कि शिक्षककी बात विद्यार्थी सरलतासे सुन सकें। बस बहुत हल्की गुनगुनाहटकी आवाज सुनाई पड़े, ऐसा होना चाहिए।

जहाँतक बुनाईका सम्बन्ध है हम यह बहाना नहीं बना सकते कि बुनकर लोग हाथ-कता सूत लेते नहीं या वे मिलका कता सूत ज्यादा पसन्द करते हैं। आपको मालूम होना चाहिए कि खराब कता सूत हो तो उसे भी दोहरा बटकर उससे किसी न किसी तरहका कपड़ा बुना जा सकता है। इसका इलाज यही है कि अच्छे चरखे काममें लाये जायें और सूत अच्छी तरह काता जाये।

उन्होंने कहा, शिलान्यास करनेसे पहले मैं आपसे फिर कहूँगा कि जबतक इस पाठशालामें कताई और सामान्य भाषाके रूपमें हिन्दीकी शिक्षा दी जाती रहे तथा यह पाठशाला राष्ट्रीय भावनाका पोषण करती रहे तबतक आप इसकी सहायता करते रहें। कांग्रेसने राष्ट्रीय पाठशालाकी जो कल्पना की है, उसकी परिभाषा यही है।

१. बिहार विद्यापीठके अन्तर्गत एक राष्ट्रीय पाठशालाके रूपमें इस हाई स्कूलका उद्घाटन गांधीजीने १९२१ में किया था। यह भाषण उन्होंने इसी स्कूलकी नई इमारतका शिलान्यास करते हुए दिया था।

यदि राष्ट्रीय पाठशाला यह सब न कर सके तो निश्चय ही वह किसी सहायताके योग्य नहीं है और आपको उसकी सहायता फौरन बन्द कर देनी चाहिए।

अन्तमें उन्होंने देशबन्धु स्मारक कोषके लिए चन्दा देनेकी अपील की और वहाँसे महिलाओंकी सभामें चले गये, जहाँ काफी रकम चन्देमें मिली।

[अंग्रेजीसे]

सर्चलाइट, २७-९-१९२५

१३०. वक्तव्य: समाचारपत्रोंको

मेरे लिए यह बहुत दुःख और निराशाकी बात है कि जैसा पहले तय हुआ था उसके अनुसार मैं अपना बिहारका दौरा पूरा नहीं कर सका हूँ। मैं देखता हूँ पिछले बारह महीनोंके निरन्तर भ्रमणसे मेरे शरीरपर बहुत जोर पड़ा है। अब जरूरी है कि मैं बाकीका दौरा आरामसे पूरा करूँ। स्वागत समितिने कृपापूर्वक मेरी बात मान ली है। मुझे आशा है कि समितिके सदस्य और जिन भागोंमें मैं नहीं जा सका वहाँके लोग मुझे क्षमा करेंगे। मैं बाकीका दौरा आगामी वर्षके आरम्भमें ही समाप्त करनेका प्रयत्न करूँगा।

[अंग्रेजीसे]

सर्चलाइट, २५-९-१९२५

१३१. भाषण: विक्रमकी सार्वजनिक सभामें[1]

२५ सितम्बर, १९२५

महात्माजीने सबसे पहले इस बातके लिए खेद व्यक्त किया कि पिछले दिन आनेकी बात तय हुई थी किन्तु वे नहीं आ सके। फिर उन्होंने कहा कि मैं नहीं जानता कि मुझे आपसे क्या कहना चाहिए। जो बात आपसे कहना चाहता हूँ वह तो आप पहले ही सुन चुके हैं। इतने सारे लोगोंका यहाँ आना इस बातका पर्याप्त प्रमाण है। मेरा यह विश्वास दिनों-दिन दृढ़ होता जा रहा है कि भारतके करोड़ों ग्रामवासियोंकी भूखकी ज्वाला सिर्फ चरखे द्वारा ही शान्त की जा सकती है। आप जानते हैं कि सालमें चार महीने उनके पास कुछ काम नहीं रहता। इस खाली वक्त-का सबसे अच्छा उपयोग सिर्फ चरखा चलाकर ही किया जा सकता है। गरीबसे-गरीब व्यक्तिको भी सालभरमें पाँच या दस रुपयेका कपड़ा खरीदना पड़ता है। इन छोटी-

१. गांधीजीके साथ राजेन्द्रप्रसाद, जमनालाल बजाज, सतीश चन्द्र दासगुप्त और जगतनारायण लाल भी इस सभामें गये थे।

छोटी रकमोंको जोड़ें तो करोड़ों रुपया होता है जिन्हें सिर्फ चरखेके जरिये ही बचाया और गांवोंमें पहुँचाया जा सकता है। मेरी समझमें नहीं आता कि लोग इतनी सीधी-सी बात क्यों नहीं समझ पाते हैं। यदि आप यह मामूली-सा काम भी नहीं कर सकते तो फिर स्वराज्य या रामराज्य, जो भी कह लें, की स्थापना कैसे हो सकती है? मैं आशा करता हूँ कि जो पहले कताई नहीं करते थे अब करने लगेंगे। सभाके संयोजकोंकी ओर मुड़कर उन्होंने कहा कि जिन बच्चोंने आरम्भमें गीत गाया वे भी खद्दर नहीं पहने हुए थे। यह देखकर मुझे दुःख हुआ है। मैं आशा करता हूँ आगे ऐसी भूल नहीं होगी। मैं हिन्दुओंको बता सकता हूँ कि हिन्दूधर्ममें अस्पृश्यताका कोई स्थान नहीं है। यदि कोई व्यक्ति सोचे कि अन्य किसीको छूना पाप है, तो वह स्वयं पाप करता है।

जहाँतक हिन्दू-मुस्लिम एकताका सवाल है, मैं क्या कहूँ, कुछ समझ नहीं आता। मेरा दोनों जातियोंपर से सारा प्रभाव उठ गया है। पर मैं यह कैसे भूल सकता हूँ कि जबतक दोनों जातियाँ एक-दूसरेका साथ न देंगी तबतक स्वराज्य एक स्वप्न ही बना रहेगा।

भाषणके अन्तमें उन्होंने देशबन्धु स्मारक कोषमें चन्दा देनेकी अपील की।

[अंग्रेजीसे]

सर्चलाइट, २७-९-१९२५

१३२. पत्र : वल्लभभाई पटेलको

शनिवार, २६ सितम्बर, १९२५

भाई वल्लभभाई,

मैं बम्बई २० तारीखको पहुँचूंगा। २१ को तुम भी कच्छ आ रहे हो न? अर्थात् २० तारीखको तो तुम भी बम्बई आ चुकोगे। मणिबहनके बारेमें देवधरका तार है। वह उसके पास भेज दिया है। वह मणिबहनको दिसम्बरमें खुशीसे लिवा ले जानेकी बात कहता है। डाह्याभाईको मिलमें तो नहीं रखना है और यदि उसे बिड़लाके यहाँ रखा तो अधिकांशतः उसे मिलका काम मिलनेकी ही सम्भावना है। इस बारेमें ज्यादा बातचीत जब मिलेंगे तब करेंगे। जमनालालके साथ मैं इसपर विचार कर रहा हूँ।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

और लिखनेका मुझे समय नहीं है।

[गुजरातीसे]

बापुना पत्रो – २ : सरदार वल्लभभाईने

१३३. पत्र : मणिबहन पटेलको

शनिवार, [२६ सितम्बर, १९२५][1]

चि० मणि,

इस पत्रके साथ देवधरका तार भेज रहा हूँ। मुझे लगता है कि इस दरम्यान रुक रहना ही ठीक होगा। लेकिन यदि इस बीच तुम बम्बईके सेवासदनमें रहना चाहो तो मैं प्रबन्ध करूँ या फिर वर्धामें जो कन्या-पाठशाला[2] है उसमें काम करनेकी इच्छा हो तो उसका प्रबन्ध करें। जमनालालजी कलकत्ताके स्कूलके बारेमें जानते हैं। उसके लिए वे मना करते हैं। लेकिन वर्धाकी कन्या-पाठशालामें व्यवस्था करनेकी बात कहते हैं। वर्धामें तो मराठी ही है और वहाँ तो तुम घर-जैसा महसूस करोगी। इसलिए यह ठीक ही है कि पहला अनुभव वहीं प्राप्त किया जाये।

अब जो इच्छा हो सो मुझे बताना।

मुझे उत्तर पटनाके पतेपर लिखना।[3]

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]

बापुना पत्रो – ४ : मणिबहेन पटेलने

१३४. खादी कार्यक्रम

निम्नलिखित पत्र आलोचना-प्रधान है; तथापि इस बातको ध्यानमें रखकर कि कार्यकर्त्तागण उससे जो-कुछ ग्रहण करने योग्य है, सो ग्रहण कर सकते हैं, पत्र प्रकाशित कर रहा हूँ।[4]

मेरा खयाल है कि कार्यकर्त्तागण इस आलोचनाका उलटा अर्थ नहीं लगायेंगे। खादी-सेवकोंका यह धर्म है कि इसमे जो-कुछ उचित है, उसे समझ लें। जिसे टीकाकार लालच कहता है उसे मैं संरक्षण अथवा अंग्रेजी शब्द 'बाउन्टी' अर्थात् मदद कहता हूँ। बहुत समयसे हमने खादीको छोड़ रखा है। जिन लोगोंके मनमें स्वदेशाभिमान कम है अथवा है ही नहीं उनमें खादीका प्रचार करनेके लिए प्रारम्भमें मददकी जरूरत अवश्य पड़ती है; और यह स्वाभाविक ही है। ऐसी मदद हमेशा ही नहीं देते रह

१. साधन-सूत्रके अनुसार।

२. महिला आश्रम, वर्धा।

३. २० सितम्बरसे २९ सितम्बर तथा १२ अक्तूबरसे १५ अक्तूबरतक गांधीजी पटनामें थे।

४. पत्र नहीं दिया जा रहा है। इसमें पत्र-लेखकने कहा था कि खादीका प्रसार किसानोंके शुद्ध प्रयत्नोंसे ही हो सकता है। बाहरी कार्यकर्त्ताओंके प्रयत्नोंसे नहीं।

सकने, यह बात तो सब लोग समझ गये हैं। मददके दौरान भी खादीकी किस्ममें धीरे-धीरे ही नहीं परन्तु उत्तरोत्तर सुधार होना चाहिए, दाम घटने चाहिए और मदद भी कम होनी चाहिए। यह सब हो रहा है। खादीकी किस्ममें सुधार हुआ है, दाम कम हुए हैं और मदद भी कम हो गई है। अमरेली कार्यालयका माल बम्बई जाये, यह बात मेरे लिये दुःखदायी नहीं है। दुःखदायी बात तो यह है कि उसकी अमरेलीमें बहुत कम खपत है। यह बात हमारे देशकी दुर्दशाकी परिचायक है। अमरेली-की समझदार जनताको खादी पहननेके सहज धर्मकी बात नहीं सूझी है। वह घरके सामने बहती गंगाका उपयोग नहीं करती। इसका इलाज तो समय ही करेगा। स्थानीय खपत करनेके प्रयासमें यदि खादी कार्यालयकी कोई भूल हो तो अमरेलीके नागरिकोंको उसका ध्यान उस ओर खींचना चाहिए। कार्यालय मेरे विचारानुसार अमरेलीमें खादी खपानेका प्रयत्न तो करता है, लेकिन उसे अभी जैसी चाहिए वैसी सफलता नहीं मिली है। ऐसी हालतमें अमरेलीके गरीब लोगोंको कातनेसे मिलनेवाली मजदूरी जो मदद पहुँचाती है उससे वंचित नहीं किया जा सकता। हाँ, यह जरूरी है कि जो स्त्रियाँ सूत कातती हैं, वे खादी पहनें। लेकिन अनुभवसे मालूम होता है कि यह एकाएक नहीं हो सकता। जो बहनें मजदूरी पानेके लिए कातती हैं वह तो केवल आजीविकाके विचारसे ही कातती हैं। उनसे महँगी खादी खरीदनेके लिए कदापि नहीं कहा जा सकता। उन्हें हम खादी सस्ती करके देंगे, तभी वे उसे पहनेंगी।

इसलिए खादी-सेवक यदि खादीको पूर्णतया स्वाश्रयी बनाना चाहता है तो उसे सम्बन्धित कठिनाइयोंको ध्यानमें रखना चाहिए। यदि नहीं रखेगा तो खादी-प्रचार हो ही नहीं सकता। ऐसे समयमें व्यवहार-बुद्धिका प्रयोग करना चाहिए कि कहाँ कम परिणामसे सन्तुष्ट रहना चाहिए और कहाँ सम्पूर्ण परिणाम प्राप्त किये बिना सन्तुष्ट रहना अनुचित होगा।

लेकिन ऐसे पूर्ण क्षेत्रमें काम न करनेवाले तथा सम्पूर्णताकी ही इच्छा करने-वाले सेवकोंकी भी हमें गरज है। उनके लिए निम्नलिखित अन्य रास्ते हैं:

१. जो स्वयं समर्थ हों — अर्थात् जिनमें काम करनेकी और कम पैसोंपर निर्वाह करनेकी शक्ति हो — वे अपना सारा समय कातने और पीजनेमें व्यतीत करें; तथा अगर उचित जान पड़े तो बुननेका काम भी करें और इस तरह स्वावलम्बी बनें।

२. जिन लोगोंमें ऐसी शक्ति न हो उन्हें अपने धन्धेमें से बचनेवाले सारे क्षणोंमें सूत कातना चाहिए और उस सूतको देशके लिए दान करना चाहिए।

३. यह कहना तो जरूरी होना ही नहीं चाहिए कि वे स्वयं खादी पहनें और अन्य लोगोंको खादी पहननेके लिए समझायें। खादीप्रचार किन सिद्धान्तोंपर निर्भर करता है, आइये हम यहाँ उनपर विचार करें।

१. देशमें करोड़ों लोग इतने ज्यादा गरीब हैं कि उनके लिए दो-चार पैसे भी रुपयेके बराबर होते हैं।

२. ऐसे करोड़ों लोग वर्षके कमसे-कम चार महीनोंतक बेकार रहते हैं।

३ ऐसे लोगोंके लिए चरखेके समान दूसरा एक भी ऐसा उद्यम नहीं है जो सार्वजनिक बन सके और तात्कालिक फल दे सके।

खादी-सेवक तटस्थ रूपसे इन सिद्धान्तोंको ध्यानमें रखकर कार्य करे, तभी हम कह सकते हैं कि खादीका प्रयोग शास्त्रीय रूपसे किया जा रहा है। दूसरे शब्दोंमें:

१. जिसके पास आजीविकाका दूसरा धन्धा हो और जिससे वह आजीविका प्राप्त भी कर लेता हो, प्रलोभन या पैसा देकर उससे न कतवायें।

२. जहाँ गरीब लोग रहते हों केवल ऐसे क्षेत्रमें ही पैसे देकर सूत कतवायें और वहाँ भी केवल इतना ही दें, जितना यह कंगाल देश दे सकता है। अनुभव बताता है कि छः नम्बरके एक सेर अच्छे सूतके (चालीस रुपया वजन) चार आनासे अधिक नही दिये जा सकते।

३. अन्य स्थानोंपर जहाँ लोग अपने लिये कातते हों वहाँ उन्हें शिक्षा आदिकी ही मदद दी जा सकती है। उनपर पैसा व्यय करना गरीबोंको अथवा जो जरूरतमन्द हैं उन्हें नुकसान पहुँचानेके समान है। वे स्वयं पैसा दें और शिक्षा लें तो अलहदा बात है अथवा बारडोली जैसे स्थानोंमें लोग कपास दें और उनमें उसका उपयोग हो, तो भी जुदा बात है।

४. जो यज्ञके रूपमें कातें उनपर खर्च न किया जाये। यज्ञार्थ मिला हुआ सूत पूरी तरहसे दानरूप रहे। जिस दानको प्राप्त करनेमें दानकी रकमके बराबर ही खर्च हो जाये वह दान लेना व्यर्थ है।

५. दूसरा खर्च केवल खादी-सेवकोंको तैयार करनेमें अर्थात् चरखा कातने आदिकी शिक्षा देनेमें, खादी प्रचारमें, चरखा सुधारनेमें होना चाहिए। संक्षेपमें खर्च केवल वही किया जाना चाहिए जहाँ रंक प्रजाको, जिसके लिए चरखेकी प्रवृत्तिकी कल्पना की गई है, लाभ होनेकी सम्भावना हो।

इन नियमोंका जहाँ पालन नहीं होता हो वहाँके कताईके कामकी प्रवृत्तिमें अज्ञान है अथवा मोह है; अथवा दोनों ही हैं।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २७-९-१९२५

१३५. विविध प्रश्न

कच्छके एक शिक्षकने मुझसे कुछ प्रश्न पूछे हैं। उनके जवाब सर्वसाधारणके सामने रखने योग्य हैं अतएव मैं यहाँ उन प्रश्नोंके साथ-साथ उनके जवाब दे रहा हूँ।

१. मैं विद्यालयका शिक्षक हूँ। मुझमें जैसा चाहिए वैसा चारित्र्य, सत्य और ब्रह्मचर्य नहीं है। मैं उसे प्राप्त करनेके लिए भगीरथ प्रयत्न कर रहा हूँ। मेरे पिताके सिरपर कर्ज है। ऐसी हालतमें क्या आप मुझे शिक्षकके पदसे इस्तीफा देनेकी सलाह देते हैं?

वांछनीय चारित्र्यके अभावमें इस्तीफा देनेका विचार सुन्दर है, यह मैं स्वीकार करता हूँ। फिर भी इसमें विवेकसे काम लेनेकी आवश्यकता है। यदि कार्य करते-करते दोप कम होते जायें तो इस्तीफा देनेकी कोई आवश्यकता नहीं। कोई भी मनुष्य पूर्ण नहीं होता। शिक्षक वर्गमें चारित्र्यकी बहुलता होती है, ऐसा तो देखनेमें नहीं आता। अपने कार्यमें जाग्रत रहने और यथाशक्ति उद्यम करते रहनेसे मनुष्य सन्तोष पा सकता है, पर इस सम्बन्धमें सबोंके लिए एक ही तरीका काम नहीं दे सकता। सबको अपने-अपने लिए सोच लेना चाहिए।

पिताके कर्जका प्रश्न सहल है। यदि कर्ज ठीक कामोंके लिए लिया गया था तो वह अदा किया जाना चाहिए। यदि उस कर्जका शिक्षककी वृत्ति द्वारा चुकाया जाना सम्भव न हो तो कोई अन्य नौकरी या धन्धा ढूंढ लेना चाहिए।

२. प्रति सप्ताह एक दिन मौनव्रतका पालन करनेमें नैतिकके अतिरिक्त कोई आरोग्य सम्बन्धी लाभ भी है?

सामान्यतया मौनमें स्वास्थ्यको भी लाभ पहुँचता है ऐसा कहा जा सकता है। परन्तु जो मनुष्य मौनमें आनन्द प्राप्त न कर सकता हो, इससे उसके स्वास्थ्यमें लाभ न होगा।

३. आपने अपनी 'आरोग्य विषे सामान्य ज्ञान' नामक पुस्तकमें बतलाया है कि दूध और नमक ये दोनों वस्तुएँ त्याज्य हैं। दूध अहिंसक दृष्टिसे और नमक आरोग्यकी दृष्टिसे। यदि दूध त्याज्य है तो उससे उत्पन्न होनेवाले घी, छाछ आदि पदार्थ भी त्याज्य होने चाहिए। इन पदार्थोंके विषयमें आपकी रायमें अब कोई परिवर्तन हो गया है या वह पूर्ववत ही कायम है?

इन विषयमें मेरे विचारोंमें फेरफार नहीं हुआ है; बरतावमें अवश्य हुआ है। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि जो दूधके बिना रह सकता है, उसे आध्यात्मिक लाभ प्राप्त होता है। दूध और उससे उत्पन्न हुए पदार्थोंका त्याग ब्रह्मचर्यके पालनमें बड़ा सहायक होता है। जो दूधका सेवन नहीं करता, वह छाछ और घीसे भी परहेज रखे तो अच्छा है। जीवनके मोहके वशीभूत होकर अथवा आवश्यक होनेके कारण मैंने

बकरीके दूधको स्वीकार किया है। यदि मैं सार्वजनिक कार्योंमें न रहूँ तो दूधको फिरसे छोड़ दूँ और अपना प्रयोग शुरू करूँ। दुर्भाग्यसे मुझे कोई ऐसा डाक्टर, वैद्य अथवा हकीम नही मिला जो दूध छोड़नेके प्रयोगमें मुझे मार्ग दिखलाये। वैद्योसे मुझे आशा थी। मेरी ऐसी धारणा थी कि उनकी विचार-श्रेणीमें आत्माके स्वास्थ्यके लिए स्थान है। लेकिन ऐसे वैद्य जिनपर आँख ठहरती, मुझे नहीं मिले। इसी कारण मुझे दूधका उपयोग करना पड़ा है। केवल शरीरको टिकाये रखनेके लिए दूध उपयोगी हो सकता है, ऐसा मैं समझता हूँ। इसीलिए अब मैं किसीसे यह नही कहता कि दूध छोड़ दो? पर पुस्तकमें प्रकट अपने विचारोंको मैं बदलना नहीं चाहता। मेरे कई मित्र अब भी दूधके त्यागका प्रयोग कर रहे है। उन्हे मैं ऐसा करनेसे नही रोकता। और न उन्हे इस सम्बन्धमें खास तौरसे प्रोत्साहित ही करता हूँ।

नमकके सम्बन्धमें दो मत हैं। नमक छोड देनेसे कुछ नुकसान होता हो ऐसा मेरा खयाल नही है। पर अब नमक छोड़नेके बारेमें मेरा आग्रह नही है। मैं जानता हूँ कि कुछ समयके लिए या सदाके लिए नमकका त्याग आध्यात्मिक दृष्टिसे बड़ा उपयोगी है। यह ध्यानमें रखने लायक बात है कि पानी आदिके साथ थोड़ा बहुत नमक शरीरमें जाता ही रहता है। जो कोई शरीर-आरोग्यकी दृष्टिसे दूध, नमक आदिका त्याग करे तो उसके लिए किसी अनुभवी डाक्टरसे सलाह लेकर यह काम करना उचित होगा। जो आध्यात्मिक दृष्टिसे इन वस्तुओंको छोड़ता है, उसकी त्यागवृत्तिके पूर्ण रूपसे जागृत होनेकी सम्भावना है।

> **४. अहिंसाका पालन करनेवालेको तो खानेके लगभग सभी पदार्थोंका त्याग करना पड़ेगा। फलाहारमें भी हिंसा है क्योंकि फल-फूलमें जीव होते हैं। किन्तु अपने-आप गिरे हुए पके फलोंको खानेमें कोई हर्ज नहीं है। परन्तु ऐसे फल मेरे समान गरीब मनुष्यके लिए बड़े महँगे पड़ेंगे। संयोग तथा समयकी सुविधानुसार हमेशा केवल गेहूँका उपयोग करना उचित होगा। केवल पानीमें पकाकर गेहूँका दलिया ही खाया जाये, कोई वनस्पति या फल भी न खाया जाये तो क्या आपकी यह धारणा अथवा अनुभव है कि सुबह-शाम केवल थोड़ा-सा दलिया खाकर मेरे समान १९ वर्षका युवक जिसे जीवन-भर ब्रह्मचर्यका पालन करनेकी अभिलाषा है, उसीपर रह सकता है? क्या केवल दलियेसे शरीरको आवश्यक पोषण मिल सकता है?**

पका हुआ फल जो कि अपने-आप जमीनपर गिरता है, उसमें भी जीव है, अतएव उसे खाना भी दोषमय गिना जा सकता है। शरीर-धारण ही दोष है और जहाँ दोष है वहाँ दुःख भी है। इसीसे तो मोक्षकी आवश्यकता है। जबर्दस्तीशरीर-का नाश करनेसे हम शरीरके बन्धनसे मुक्त नहीं हो सकते। शरीरके बन्धनका आत्यन्तिक नाश तो आत्यन्तिक अनिच्छा, वैराग्य अर्थात् त्याग ही से हो सकता है। इच्छा अथवा अहंकार शरीरका मूल है। ये गये कि शरीरका होना-न-होना एक-सा ही है। पर जबतक शरीर है तबतक उसके निर्वाहके लिए जितना आहार आवश्यक है उतना आहार तो करना ही चाहिए। मनुष्य शरीरका आवश्यक आहार

फलादिक वनस्पतियाँ है। कमसे-कम प्रकारके कमसे-कम मात्रामें फलादि लेकर मनुष्य अपना निर्वाह करे तो दोषमय आहार लेते हुए भी वह निर्दोष रहता है, ऐसा कहा जा सकता है। ऐसी अवस्थामें खुराक स्वादके लिए नही ली जाती, प्रत्युत जीवन व्यापारके, अथवा यों कहिए कि शरीर-यात्राके लिए ली जाती है। अब यह बात समझमें आ सकेगी कि अपने-आप गिरा हुआ पका फल यदि स्वादके लिए लिया जाता है तो वह दोषमय आहार हुआ; और स्वत. प्राप्त की गई वनस्पतिका पकाया हुआ आहार यदि स्वादकी इच्छासे नही वरन् केवल भूख मिटानेके लिए लिया जाये तो वह निर्दोष हुआ।

सयमी और निरोगी मनुष्य केवल दलियेपर रह सकता है ऐसा मै मानता हूँ। लेखकको तो मै यह सलाह दूँगा कि वे उदासीन वृत्तिसे मिर्च आदि मसालेसे रहित सामान्य भोजन करे। यही उनके लिए काफी होगा। ब्रह्मचर्यका पालन करनेके लिए मुख्य आवश्यकता रसको मारनेकी अथवा जीतनेकी है। छप्पनभोग खानेवालेको रस-त्यागी नही कहा जा सकता। पर आम लोग तो अपना सामान्य आहार करके भी रस-त्यागी बन सकते है। अन्तमें सबको सूक्ष्मताके साथ अपनी आत्मामे प्रश्न करना चाहिए कि वह रसके लिए खाता है या केवल निर्वाहके लिए। खुराकके मामलेमें भी कोई सीधा रास्ता हमारे सामन नही है। सीधा रास्ता तो केवल अन्तरमें है। बाहर तो प्रपंच है। यह तो एक विशाल और रग-बिरंगा वटवृक्ष है। उसमें से मनुष्यको अद्वैतकी साधना करनी है।

५. मनको खानेकी प्रबल इच्छा हो और शरीरको भी भूख लगी हो तो क्या उसे दबाकर उपवास करनेसे लाभ होता है?

लाभ और हानि उपवासके हेतुपर और व्यक्तिकी शक्तिपर अवलम्बित है। मनको तो कवियोंने मद्यपान किये हुए बन्दरकी उपमा दी है। मनकी इच्छाओंका पार नहीं। उनका तो प्रतिक्षण दमन करते रहना चाहिए।

६. मै चाय नहीं पीता पर मेरे घरके सब लोग पीते हैं। मैं ही कमाता हूँ; अतएव मै घरमें चाय लाऊँ ही नहीं तो वह बन्द हो जाये। क्या ऐसा करना मेरे लिए ठीक होगा? मै कमाता होऊँ अथवा न कमाता होऊँ, पर यदि मै उपवास करके अपने घरवालोंको चाय पीनेसे रोकूँ तो क्या यह मेरे सम्बन्धियोंपर ही मेरा बलात्कार न होगा?

यदि किसी कुटुम्बका मुखिया अथवा कमानेवाला स्वयं चाय न पीनेके कारण दूसरोंको चाय नही पिलाता तो वह बलात्कार करता है। उसे दूसरोंको धैर्यके साथ समझाना चाहिए। पर जबतक वे न समझे तबतक उसे उनके लिए चाय ला देनी चाहिए, ऐसा मेरा मत है। दूसरे यदि न मानें तो उसके लिए उपवास करना तो धमकी देना है; और धमकी देना हिंसा है।

७. मै मानता हूँ कि शारीरिक दण्ड देनेसे कोई नहीं सुधरता, पर फिर भी मैं अपने वर्गके विद्यार्थियोंको सजा देता हूँ। मेरा यह कार्य हिंसा है या नहीं? मै यह जानता हूँ कि यदि मैं किसी ऊधमी या बुद्धू लड़केको स्वयं

सजा न देकर हेडमास्टरके पास भेजूँ तो वे भी उसे शारीरिक दण्ड ही देंगे। फिर भी यदि मैं उस लड़केको वहाँ भेजता हूँ तो यह हिंसा करना हुआ या नहीं?

विद्यार्थीको स्वयं सजा देने और प्रधानाध्यापकके पास सजाके लिए भेजने, इन दोनों ही में हिंसा है। यद्यपि यह प्रश्न पूछा नहीं गया है कि शिक्षक किसी बालकको सजा दे सकता है या नहीं, तथापि वह मूल प्रश्नके अन्तर्गत आ जाता है। मैं ऐसे प्रसंगकी कल्पना कर सकता हूँ जब कोई बालक जानता हुआ भी दोष करे और उसे दण्ड देनेका धर्म उपस्थित हो जाये। प्रत्येक शिक्षकको अपने कर्त्तव्यका विचार करनेकी आवश्यकता है। पर सामान्य नियम तो यही है कि शिक्षक कभी विद्यार्थीको शारीरिक दण्ड न दे। यह अधिकार माता-पिताको प्राप्त भले ही हो। न्याययुक्त दण्ड वही कहा जा सकता है जिसे विद्यार्थी स्वयं स्वीकार कर ले। ऐसे प्रसंग बार-बार नही आते। यदि आयें और दण्ड देना उचित है या नही इसमें शंका हो तो दण्ड न दिया जाये। क्रोधमें तो दण्ड कभी दिया ही नही जाना चाहिए।

८. मैं जानता हूँ कि क्रोध शरीरको और चारित्र्यको नुकसान पहुँचाता है; अतएव मैं क्रोधित न होकर भी विद्यार्थीपर क्रोधित होनेकी मुद्रा धारण करूँ, दण्ड देनेका विचार न होनेपर भी दण्ड देनेका भय बतलाऊँ तो मेरा यह आचरण असत्य गिना जायेगा या नहीं?

लोगोंको प्रायः ऐसा करते देखा जाता है। मारनेका भाव दिखाना हर प्रकारसे दोषयुक्त है।

९. सन्तति-नियमनके लिए ब्रह्मचर्य ही एक मात्र उपाय है, यह मुझे मान्य है। मेरा हृदय इसे स्वीकार करता है, पर साथ ही बुद्धि बलवा खड़ा करती है। वह कहती है कि जिस प्रकार प्रत्येक इन्द्रियका उपयोग करनेमें, कोई नुकसान नहीं हो सकता बल्कि उपयोग न करनेसे हानि होती है उसी प्रकार इस इन्द्रियका उपयोग न करनेसे भी कहीं कुछ नुकसान तो न होगा? इसी प्रकार सन्तति-नियमन समितिके प्रधानने भी 'क्रॉनिकल' में आपके नामपर एक पत्र लिखा था। अतएव इस दलीलका आप खुलासा करें।

यह सिद्धान्त ही नहीं है कि इन्द्रिय-मात्रका उपयोग आवश्यक है। जो पुरुष ज्ञानपूर्वक वाचाके उपयोगका त्याग करता है वह संसारपर उपकार करता है। इन्द्रिय-उपयोग धर्म नहीं है। इन्द्रिय-दमन धर्म है। ज्ञान और इच्छापूर्वक किये गये इन्द्रिय-दमनसे आत्माको लाभ पहुँचता है, हानि नहीं। विषयेन्द्रियका उपयोग केवल सन्ततिकी उत्पत्तिके लिए ही स्वीकार किया गया है। पर जो सन्ततिका मोह छोड देता है उसकी शास्त्र भी वन्दना करते हैं। इस युगमें विकारोंकी महिमा इतनी बढ गई है कि अधर्म ही को लोग धर्म मानने लग गये है। विकारोंकी वृद्धि अथवा तृप्तिमें ही जगतका कल्याण है ऐसी कल्पना करना जबरदस्त भूल है, ऐसा मेरा विश्वास है। यही शास्त्र भी कहते है और आत्मदर्शियोंका स्वच्छ अनुभव भी यही है। हिन्दुस्तानमें

तो हम बाल्यावस्थामें ही विवाहके जंजालमें पड जाते हैं। ऐसी हालतमें विकारतृप्तिके साधनोंकी योजना करना और उनके प्रचारके लिए संस्थाओंकी स्थापना करना अज्ञान और अन्धानुकरणकी परिसीमा है। विकार रोके नहीं जा सकते अथवा उन्हें रोकनेमें नुकसान है यह कथन ही अत्यन्त अहितकर है। यदि इस दुर्बल देशमें विकार-तृप्तिको उत्तेजित करनेवाला सम्प्रदाय चल निकला तो भारतवर्षकी प्रजा नि.सत्त्व हो जायेगी और अन्तमें उसका नाश हो जायेगा इसमें मुझे कोई शंका नही। विषयतृप्ति करते रहकर सन्तति नियमनके उपाय करना राक्षसी शरीर और राक्षसी खान-पानवालोंको भले ही नुकसान न पहुँचाये, किन्तु हिन्दुस्तानको तो सयमकी शिक्षा ही लाभ पहुँचा सकती है।

१०. अहिंसाका पालन करनेवाला किसी भी वाहनका उपयोग नहीं कर सकता। बहुतसे खाद्य पदार्थोंका भी उसे त्याग करना पड़ता है। तब यह प्रश्न उठता है कि परमात्माने ये पदार्थ और ये प्राणी किस लिए पैदा किये होंगे? यद्यपि प्रभुकी इच्छा तो अगम्य है फिर भी कृपा करके इस बातका खुलासा कर दीजिए।

इसका जवाब ऊपर आ जाता है। फिर भी इतना और कहे देता हूँ कि अहिंसाका पालक आवश्यक वाहनका सर्वथा त्याग नही करता। बहुत-सी वस्तुओंका सर्वथा त्याग इष्ट है और कुछका यथाशक्ति त्याग ही बस है। प्रभुकी समूची सृष्टि एक दूसरेसे ओतप्रोत है। हरएक प्राणी मनुष्यकी किसी-न-किसी इच्छाका मूर्त स्वरूप है। अतएव जिस प्रकार इच्छाका त्याग इष्ट है उसी प्रकार अन्य प्राणियोंके उपयोगका त्याग भी इष्ट है। सब अपनी-अपनी मर्यादा अंकित कर ले। जैसे कि जिसका काम मिट्टीसे चल सके वह साबुनका उपयोग न करे। पर साबुन काममें लानेवालोंकी निन्दा करके अधिक हिंसा-दोषका भागी भी न बने। काँटेदार अथवा गन्दी जमीन-पर चलते समय जूतोंका उपयोग बाखुशी करे और जहाँ उसकी आवश्यकता न हो वहाँ नगे पैर ही चले।

दूसरे कई प्रश्न ऐसे हैं जिन्हें यहाँ देनेकी आवश्यकता नही। पर उन प्रश्नोंका अनुमान नीचे दिये गये जवाबोंमें ही किया जा सकता है।

१. व्यायाम करनेवालोंके लिए लंगोट पहनना नितान्त आवश्यक है। पाश्चात्य देशवासियोंने भी इसकी जरूरतको महसूस किया है।

२ प्रात.काल उठकर दातौन करके उसके बाद गर्म किया हुआ जल पीना चाहिए। इसमें फायदा है। बहुतसे साफ ठंडा जल पीते हैं। इसमें भी नुकसान तो नही है।

३. गृहस्थ-जीवनमें बाल बढ़ाना मैल बढानेके बराबर है। या फिर उन्हें साफ रखनेमें बहुत समय देना पडता है। पुरुषके लिए तो यही योग्य मालूम होता है कि वह छोटी-सी शिखाके सिवा सब भाग कैंची या उस्तरेसे कटवा डाले। यदि कोई मेरा कहना माने तो मैं तो लड़कियोंके बाल भी कटवाऊँ। हम अभ्यासवश यह मानते हैं कि बाल रखनेमें ही शोभा है। शोभा तो केवल बरतावमें है, बाहरी दिखावेमें नहीं। यह वहम है कि बाल कुदरती हैं इसलिए वे न कटाये जाने चाहिए। हम नख

कटवाते हैं। यदि न कटवायेंगे तो उनमें मैल भर जायेगा अथवा सारा दिन उन्हें साफ रखना होगा। स्नान द्वारा हम चमड़ीका मैल हमेशा दूर करते हैं। हमें यहाँ यह विचारनेकी आवश्यकता नही कि जो जंगलवासी हैं और जो बहुत-सी क्रियाएँ नहीं करते उनके लिए कौन-सा कायदा लागू होता है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २७-९-१९२५

१३६. टिप्पणियाँ

क्या यह सच है?

'नवजीवन' में बोरसदके हाईस्कूलका विवरण पढ़कर मैं तो हैरान ही रह गया हूँ। यह विवरण सच्चा नही हो सकता, ऐसा मुझे हमेशा लगा करता है। बोरसदके हाईस्कूलके हेडमास्टरसे मैं मिला हूँ, ऐसा मुझे आभास है। उन्हें तो मैं एक बहादुर व्यक्तिके रूपमें जानता हूँ। बोरसदमें वल्लभभाई रहे हैं। वहाँ वल्लभभाईने अपनी विजय-पताका फहराई है, वहाँ मुख्याध्यापकका, माता-पिताका और विद्यार्थियोंका ऐसा पतन कैसे सम्भव है? एसेम्बलीके अध्यक्ष विट्ठलभाई यदि केवल खादीकी पोशाकमें एसेम्बलीमें जा सकते हैं तो बोरसदके विद्यार्थी खादीकी पोशाक पहनकर स्कूलमें नही जा सकते?

इस विषयमें यदि भाई कालिदास दवेको[1] प्राप्त सूचना सही न हो तो मैं चाहता हूँ मुख्याध्यापक इसे सुधार दें। यदि सूचना सही हो और उसके बचावमें उन्हें कुछ कहना हो तो मैं उसे जानने व छापनेके लिए तैयार हूँ। यदि उनके पास बचावमें कुछ कहनेको न हो तो मेरी इच्छा है कि पाठशालाको मान्यता प्रदान करवानेकी खातिर अध्यापक, न्यासी और माता-पिता इतने नीचे न उतरें।

चाईबासाकी गोशाला

चाईबासा छोटा नागपुर प्रान्तमें एक छोटा-सा कस्बा है। वहाँका प्राकृतिक दृश्य सुन्दर है और जलवायु अच्छी है। लोग मुझे वहाँकी गोशाला दिखानेके लिए ले गये थे। वहाँके मन्त्री उत्साही हैं। उनके विचार उदार हैं; लेकिन दानी लोग उनके विचारोंको व्यवहारमें लाने नहीं देते। जो टीका मैंने अन्य गोशालाके सम्बन्धमें की है, वही टीका उसपर भी लागू होती है। यह गोशाला २७ वर्षसे चल रही है। इतने समयमें डेढ़ लाख रुपयेका दान मिला तथा दस हजार पशुओंका पालन हुआ। प्रति-वर्ष दो सौ, तीन सौ पशुओं तकका पालन पोषण होता है। लेकिन इतने कार्यसे ही सन्तोष नही माना जा सकता। यदि कोई गोशाला नियमके साथ चले तो सत्ताईस वर्षोंमें वह लगभग स्वाश्रयी बन जाये। यहाँ दूध आदि भी होता है। लेकिन एक

१. नवजीवनके शिक्षा-अंकके सम्पादक।

ही व्यक्ति कितना कर सकता है? जबतक गोशाला-शास्त्रको जाननेवाले व्यक्ति न हों तबतक जानवरोंकी परीक्षा आदि कैसे हो सकती है?

यह भी मालूम हुआ कि गोशाला मरे हुए ढोरोंको यों ही दे देती है; उनके चमड़ेकी कीमत नहीं लेती। मैं जितना विचार करता हूँ, यही देखता हूँ कि मरी हुई गायोंके चमड़े आदिका उपयोग गोशालाकी मार्फत न करना गोवधको उत्तेजन देना है और गोरक्षा करनेकी अपनी शक्तिको कम करना है। गो-सेवकोंका एक बड़ा कार्य तो यही है कि वे मरे हुए जानवरोंके चमड़ेका व्यापार न करने सम्बन्धी अपने वहमको दूर करें। मरी हुई गाय जीवित गायकी लगभग प्राण-रक्षा करती है। इसके अर्थशास्त्रका मैं गम्भीर अध्ययन कर रहा हूँ; लेकिन अधूरा अध्ययन भी कमसे-कम इतना तो सिद्ध करता ही है कि इस चमड़ेका प्रत्यक्ष उपयोग न कर हम हरएक मरी हुई गायके पीछे कमसे-कम दस रुपये गँवाते हैं। अन्ततः इस चमड़ेका उपयोग तो हम लोग ही करते हैं।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २७-९-१९२५

१३७. पत्र : विशननाथको

२७ सितम्बर, १९२५

प्रिय भाई,

आपने मुझे यह तो नहीं बताया कि आप खादी मण्डल क्यों छोड़ रहे हैं और खादीमें आपकी रुचि या आस्था कम होती जा रही है। ईमानदारीके साथ सवेतन राष्ट्रकी सेवा करनेमें मुझे तो कोई बुराई दिखाई नहीं देती।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

लाला बिशननाथ
पंजाब खद्दर बोर्ड
पुरी
लाहौर

अंग्रेजी पत्र (जी० एन० ७९४२) की फोटो-नकलसे।

१३८. पत्र : वा० गो० देसाईको

आषाढ सुदी १० [२७ सितम्बर, १९२५][1]

भाईश्री वालजी,

तुम्हारे दोनों पत्र मिले। तुम डा० मेहतावाले बंगलेमें आकर ठहर जाना। उसके जितने हिस्सेका इस्तेमाल करना जरूरी हो उतनेका ही इस्तेमाल करना, जिससे कि बाकीका हिस्सा यदि कोई दूसरा आये तो उसके लिए खाली रखा जा सके। इस बारेमें चि० छगनलाल और मगनलालसे मिलकर निश्चय कर लेना। गोरक्षाके सम्बन्धमें साहित्य इकट्ठा करना शुरू कर देना। उसपर विचार करना; गोरक्षाकी [भावनाकी] उत्पत्ति कैसे हुई इसकी खोज करना। इसमें किसीकी मददकी जरूरत पड़े तो लेना। डेरियों और चर्मशोधनालयोंसे सम्बन्धित साहित्य भी इकट्ठा करना। गोरक्षा [संघ]में[2] तो कातनेवाले सदस्य ही बनोगे न? उस पत्रिकाको[3] मैं अनिच्छासे 'यंग इंडिया'के परिशिष्टके रूपमें लेता हूँ। [मैंने ऐसा क्यों किया इन] कारणोंको तुम 'यंग इंडिया' में देख जाना।

मोहनदासके वन्देमातरम्

गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ७७४१) की फोटो-नकलसे।

१३९. पत्र : वसुमती पण्डितको

आश्विन सुदी १० [२७ सितम्बर, १९२५][4]

चि० वसुमती,

तुम्हारा पत्र मिल गया है। अब स्थिर होना जरूरी है। स्थिर अर्थात् स्थिर चित्त। तुम्हें अभीतक किस बातकी चिन्ता सताती है, यह हो सके तो मुझे ठीक-

१. डाककी मुहरसे।

२. अखिल भारतीय गोरक्षा संघ।

३. घाटकोपर मानव दया संघ द्वारा प्रकाशित गोरक्षा परिशिष्टांक, जिसका प्रकाशन गांधीजी, जो उस समय अ० भा० गोरक्षा संघके अध्यक्ष थे, की अनुमतिके बिना इस आशापर कि उनकी अनुमति मिल जायेगी, किया गया था। परिशिष्टांकके सम्बन्धमें गांधीजीके विचारोंके लिये देखिए 'टिप्पणियाँ', १-१०-१९२५ का उपशीर्षक "गोरक्षा परिशिष्टांक"।

४. पत्रमें डाककी मुहरपर भागलपुर १-१०-१९२५ है। आश्विन सुदी १०, ता० २७-९-१९२५ को पड़ी थी।

ठीक बताना। मैं पिता भी हूँ और माँ भी हूँ। बेटी यदि सब कुछ माँसे न कहेगी तो किससे कहेगी? ट्रेनके हिलनेके कारण अधिक नहीं लिख सकता।

बापूके आशीर्वाद

१५ तक बिहार,
२०को बम्बई,
२१ से ३ नवम्बरतक कच्छ,
बादमें आश्रम।

गुजराती पत्र (एम० एन० ९२१९ तथा सी० डब्ल्यू० ४६८) की फोटो-नकलसे।

१४०. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

पटना
आश्विन सुदी १०
[२७ सितम्बर, १९२५][1]

भाईश्री ५ घनश्यामदासजी,

आपका पत्र मीला। लोहानीके बारेमें आपको विशेष तकलीफ इस समय तो नहिं दुंगा।

जमनालालजी मुझे कहते थे कि जो २५,००० रुपये आपने मुस्लिम युनिवरसिटीको दीये वह जो ६०,००० जुहुमें देनेकी प्रतिज्ञा की थी उसीमें के थे। मेरी समझ ऐसी थी और मैंने ६०,००० दूसरे कामोमें खर्चनेका इरादा रखा था। परंतु यदि आपकी समझ ऐसी न थी कि मुस्लिम युनिवरसिटीके रुपैये अलग न माना जाय तो मुझे कुछ कहना नहिं है।

दूसरी बात यह है। गोरक्षाके बारेमें मेरे ख्याल आप जानते हैं। श्री मधुसूदन दासकी एक टेनरी कटकमें है। उसकी उन्होंने कम्पनी बनाई है। उसमें ज्यादा शेर ले कर प्रजाके लीये गोरक्षाके कारण कब्जा लेनेका दील चाहता है। उसपर रु० १,२०,००० का कर्ज होगा। उस कर्जेमें से उसकी मुक्ति आवश्यक है। टेनरीमें चमडे केवल मृत जानवरोंके लीये जाते हैं परंतु पाटलाघोंको मरवाकर भी उसके चमडे लेते हैं। यदि टेनरी ले तो तीन शर्त होनी चाहिए।

१) मृत जानवरका हि चमड़ा खरीदा जाय।
२) पाटलाघोंको मरवाकर उसका चमड़ा लेनेका काम बंध कीया जावे।
३) मूत[2] लेनेकी बात हि छोड़ दी जावे यदि कुछ लाभ मीले तो टेनरीका विस्तार बढ़ानेके हि लीये उसका उपयोग कीया जावे।

१. पत्रमें बिहारके दौरेके उल्लेखसे पता चलता है कि यह पत्र इसी वर्ष लिखा गया था। गांधीजीने अपना बिहारका दौरा १५ अक्तूबर, १९२५को समाप्त किया था।

२. यह 'सूद' होना चाहिए।

मैं चाहता हुँ कि यदि इस शर्तसे टेनरी मीले तो आप ले लें। उसकी व्यवस्था आपहि करें तो मुझको प्रिय लगेगा। यदि न करें तो व्यवस्थापक मैं ढूंढ़ लुंगा। टेनरीकी अपनी हि जमीन कुछ बीघा है। मैंने देख ली है। श्री मधुसूदनदासने इसमें अपने बहोत पैसे खर्च किये है।

तो सही बात है चर्खा संघकी। आप इसमें साथ दे सकते हैं? आप अखिल भारत देशबन्धु स्मारकमें अच्छी रकम दें ऐसा मांगता हुं। इन तीनों बातके बारेमें आपसे जमनालालजी ज्यादा बात करेंगे — यदि आपका उनके साथ दिल्लीमें मीलना हुआ तो।

आपकी धर्मपत्नीको कुछ आराम हुआ है क्या?

मैं बिहारमें १५ तारीखतक हुंगा।

आपका,
मोहनदास गांधी

गांधीजीकी छत्रछायामें

मूल पत्र (सी० डब्लू० ६११३) की प्रतिसे।
सौजन्य: घनश्यामदास बिड़ला

१४१. वक्तव्य: समाचारपत्रोंको

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीने एक बुद्धिमत्तापूर्ण निर्णय किया है। इससे कानपुरमें होनेवाले अधिवेशनमे कांग्रेसको वर्तमान समस्यापर पूरा समय देनेका मौका मिलेगा और वह ऐसे उपाय निकाल सकेगी जिससे दूसरे लोग भी कांग्रेसमें शामिल हो सकें। लेकिन ऐसा कर सकनेके पूर्व यह आवश्यक था कि कांग्रेस अपने दोनों दलोंके सम्बन्धोंको ठीक कर लेती। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीने यह कार्य कर दिया है। अखिल भारतीय चरखा संघकी स्थापना कांग्रेसके उद्देश्योंमें सहायता पहुँचानेके लिए की गई है, उसके विरुद्ध काम करनेके लिए नही। सभी कांग्रेसियों और अन्य लोगोंको, जो चरखेकी उपयोगितापर विश्वास करते हैं, इसमें शामिल होकर इसे सफल बनाना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, २८-९-१९२५

१४२. पत्र : वसुमती पण्डितको

आश्विन सुदी ११ [२८ सितम्बर, १९२५][1]

चि० वसुमती,

तुम्हारे पत्र मिले हैं। अ० भा० कां० कमेटीकी बैठक[2] सम्बन्धी बहुत कागजात पड़े रह गये हैं। मैं बिहारमें १५ तारीखतक हूँ। इसके बाद बम्बईसे सीधा कच्छ जाऊँगा। आश्रममें ६ नवम्बरतक पहुँच जाऊँगा। तुम्हारी तबीअत कैसी रही? वहाँ अच्छा लगा? लक्ष्मीका क्या हाल था?

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ४६७) से।

सौजन्य : वसुमती पण्डित

१४३. पत्र : देवचन्द पारेखको

आश्विन सुदी ११ [२८ सितम्बर, १९२५][3]

भाई देवचन्दभाई,

तुम्हारा पत्र मिला है। हमें दोनों पक्षोंकी चिन्ता करनी चाहिए। हिन्दुस्तानके कुछ ऐसे भागोंमें जहाँ बहुत ज्यादा गरीबी है प्रचुर मात्रामें खादी बनती है। दूसरों-को उसका उपयोग करना ही होगा। करोड़पति अपने उपयोगकी सारी खादी खुद थोड़े ही कातनेवाले हैं?

मोहनदासके वन्देमातरम्

गुजराती पत्र (जी० एन० ५६९८) की फोटो-नकलसे।

१. डाककी मुहरसे।
२. २२, २३ और २४ सितम्बरको पटनामें हुई बैठक।
३. डाककी मुहरपर पत्र वितरणकी तारीख २-१०-१९२५ है।

१४४. पत्र : फूलचन्द शाहको

आश्विन सुदी ११ [२८ सितम्बर, १९२५][1]

भाईश्री फूलचन्द,[2]

तुम्हारे दोनों पत्र मिले हैं। अन्त्यजोंको नगरपालिकामें दाखिल होनेका अधिकार न मिले तो वहाँके लोकमतको प्रशिक्षित करना चाहिए। ठाकोर साहबके[3] पास जाना; लेकिन सत्याग्रह न करना। अन्त्यज भी नगरपालिकामें जाकर लड़ें। धीरज-की इसमें गुंजाइश है। जातिभोजके बारेमें मैंने 'नवजीवन'में लिख भेजा है, उसे[4] देखना। हम धीरजसे, शान्तिसे और विवेकसे काम लेंगे तो महाजन ठंडे पड़ जायेंगे।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० २८८०) की फोटो-नकलसे।

१४५. पत्र : गोपबन्धु दासको

पटना

२९ सितम्बर, १९२५

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। अच्छा ही हुआ आप पटना नहीं आये। मुझे महावीरसिंह[5]-का मामला समझनेमें कोई कठिनाई नही हुई। वे और निरंजन बाबू दोनों आ गये थे। यह तय हो गया है कि महावीरसिंहको जिन कागजातकी जरूरत है, निरंजन बाबू उन्हें भिजवा देंगे। उनसे कर्जकी बात स्वीकार करानेमें तो कोई कठिनाई नहीं होगी पर उसकी वसूलीमें काफी कठिनाई हो सकती है। जहाँतक कांग्रेसका सवाल है, सिंह-भूम, मध्यप्रान्त, आन्ध्र और अन्यत्र क्षेत्राधिकारके विवादको तय करानेका काम मैंने अपने ऊपर ले लिया है। मैं चाहता हूँ कि आप अपना मामला लिखकर तैयार कर लें और उसके साथ अपने पक्षके समर्थनमें साक्ष्य भी तैयार रखें। प्रत्येक मामलेमें संक्षिप्त रूपसे सभी तथ्य दे दिये जायें। तब मैं दूसरे पक्षोंसे उनका जवाब मागूँगा। बाढ़ग्रस्त क्षेत्रोंमें टिके रहकर वहाँ चरखे द्वारा राहत देनेके आपके निर्णयसे मैं बहुत

१. डाककी मुहरसे।
२. फूलचन्द कस्तूरी चन्दशाह, सौराष्ट्रमें बढ़वानके कांग्रेसी कार्यकर्ता।
३. तत्कालीन बढ़वान राज्यके शासनाध्यक्ष।
४. यहाँ गांधीजी सम्भवतः अपने लेख "जाति बहिष्कार", ११-१०-१९२५ के बारेमें कह रहे हैं।
५. उत्कल प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीके अध्यक्ष। सम्बलपुर प्रदेश कांग्रेस कमेटीने उनपर गबनका आरोप लगाया था।

प्रसन्न हूँ, और यही चाहता हूँ कि आपका यह प्रयत्न सफल हो। आशा है अ० भा० कां० कमेटीके प्रस्ताव तथा अखिल भारतीय चरखा संघका संविधान आपको पसन्द आये होंगे। आशा है आप स्वस्थ हैं। सम्बलपुरसे प्राप्त प्रस्ताव[1] साथ भेज रहा हूँ।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी पत्र (सी० डब्ल्यू० ७७४७) से।
सौजन्य : राधानाथ रथ

१४६. पत्र : न० चि० केलकरको

पटना
२९ सितम्बर, १९२५

प्रिय श्री केलकर,

श्री नन्जप्पाके मुकदमेके सम्बन्धमें सरकारी आदेशकी एक प्रति मुझे मिल गई है। आपकी रायमें हमें अब क्या करना चाहिए?

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (सी० डब्ल्यू० ३११६) की फोटो-नकलसे।

१४७ : भाषण : पटनाकी सार्वजनिक सभामें[2]

२९ सितम्बर, १९२५

महात्मा गांधीने उत्तर देते हुए कहा कि मैं मानपत्रकी भेंटके लिए आपका आभारी हूँ। मैं यहाँ आपके बीच पहली बार नहीं आया हूँ। पिछली बार जब हम मिले थे तबसे अब चार साल बीत चुके हैं, लेकिन मुझे उसका अच्छी तरह स्मरण है। यह सच है कि मैं और आप वही हैं, लेकिन तबसे अबतक जमाना बहुत बदल गया है। हमारे वातावरण और हमारे दृष्टिकोणमें जो परिवर्तन हुआ है उसके सम्बन्धमें कुछ कहनेकी जरूरत नहीं है। आपसे मिलकर मुझे प्रसन्नता हुई है। नागरिक होनेके नाते हमारे क्या कर्तव्य हैं और हमारे सामने नागरिक जीवनकी क्या समस्याएँ

१. यहाँ उद्धृत नहीं किया जा रहा है। इस प्रस्तावमें गांधीजीसे उत्कल प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी और सम्बलपुर कांग्रेस कमेटीके झगड़ेका निर्णय करनेका अनुरोध किया गया था।

२. पटना नगरपालिका द्वारा आयोजित इस सभामें नगरपालिकाकी ओरसे गांधीजीको एक मानपत्र भेंट किया गया था।

हैं, आज मैं इस सम्बन्धमें दो चार शब्द कहना चाहूँगा। यह विषय मुझे प्रिय है और मैं उसकी कुछ जानकारी होनेका दावा भी करता हूँ। यदि नगरपालिकाके पार्षद और नागरिक सच्चे मनसे नगरके सुधारकी ओर ध्यान दें तो वे देशकी बहुत बड़ी सेवा करेंगे। ऐसा करना बहुत जरूरी है क्योंकि शहरके जीवनकी छाप गाँवोंपर असंदिग्ध रूपसे पड़ती है। यदि शहरमें गन्दगी हो तो उसकी गन्दगीकी झलक गाँवोंमें भी दिखाई देती है। यदि शहरोंमें सिनेमा होंगे तो कुछ हदतक गाँवके जीवनपर भी उनका असर पड़ेगा। शहरों और गाँवोंके इस पारस्परिक सम्बन्धको बंगालमें मैंने स्वयं देखा है और ग्रामवासियोंको शहरके लोगोंके बारेमें जो शिकायतें है, वे मुझे अच्छी तरह याद हैं। शहरके निवासियोंपर अपने शहरोंको शुद्ध और अपनी गलियोंको साफ-सुथरा रखनेकी जिम्मेदारी तो है ही, इसके सिवा अपने ग्रामवासी भाइयोंके प्रति भी उनका कुछ कर्त्तव्य है। वह कर्त्तव्य कितना ही मामूली क्यों न हो, पर एक तरहसे वह आपको गाँवोंका संरक्षक बना देता है। जैसा व्यवहार आप नगरनिवासी करेंगे वैसा ही व्यवहार गाँवोंके लोग भी करेंगे। सबसे बुरी बात तो यह है कि आपके आस-पास एकत्र मलिनताकी तरह आपके आन्तरिक जीवनमें भी मलिनता भरती जा रही है। पटनामें ज्यादा सड़कें नहीं है पर जब मैंने उनकी हालत देखी तो मुझे असीम दुःख हुआ, उतना ही जितना कि आपके आन्तरिक जीवनका ह्रास देख कर हुआ। आपके नागरिक कर्त्तव्योंके बारेमें मैं इसी प्रसंगमें कुछ सवाल आपसे पूछना चाहता हूँ। क्या आप अपने नगरकी सफाईका समुचित ध्यान रखते हैं या इस कामको पूरी तरह भंगियोंपर छोड़ देते है? बच्चोंके लिए शुद्ध और सस्ता दूध मिल सके इसके लिए आपने क्या प्रबन्ध किया है? क्या यहाँके स्त्री-पुरुष इतने गन्दे हैं कि दूसरे लोग भी उनसे गन्दा बनना ही सीखेंगे? क्या आपने अपने अस्पृश्य भाइयोंके लिए कुछ किया है? और अन्तिम प्रश्न है, क्या आपके यहाँ शराबकी दुकानें हैं? अगर हैं तो कितनी हैं? मैं जानता हूँ कि ऐसी दुकानोंकी संख्या और उनका होना न होना आपके वशमें नहीं है। बहुत-कुछ तो सरकारपर निर्भर है। पर इसे पूरी तरहसे सरकारका दोष भी नहीं माना जा सकता। यदि आप स्वयं इस विषयमें जाग्रत हों, शराब पीनेवालोंको इस दुर्व्यसनकी बुराइयोंके बारेमें समझायें, उन्हें उसके बदलेमें पीनेको कुछ और दें तो वे लोग शराबकी दुकानोंमें जानेका आग्रह क्यों करेंगे? ये सब प्रश्न ऐसे हैं जिनपर कर-दाताओंको ध्यान देनेकी जरूरत है। यदि आप ऐसा करें तो फिरसे आपके शहर पहलेकी तरह स्वच्छ और सुन्दर हो जायेंगे।

पश्चिमी सभ्यताकी मैंने अक्सर कड़ी आलोचना की है। आज भी मेरे विचार वही हैं और आज भी मैं उनपर दृढ़ हूँ। पर मैं अच्छे-बुरेको पहचानता हूँ और बुरी चीजोंमें भी जो अच्छाइयाँ हैं उन्हें स्वीकार करता हूँ। पश्चिमी देशोंने नागरिक जीवनको सुधारनेकी दिशामें बहुत प्रगति की है। पश्चिमी देशोंमें, विशेषतया इंग्लैंड और अमेरिकामें, अधिकांश लोग शहरोंमें रहते हैं क्योंकि वे खेती-बारी नहीं करते

बल्कि औद्योगिक संस्थानोंमें काम करते हैं। शहरोंको साफ रखने और सभ्य जीवनके लिए नितान्त आवश्यक सुख-सुविधाओंका प्रबन्ध करनेमें पश्चिमके लोग हमारे सामने एक अनुकरणीय उदाहरण पेश करते हैं। यह सही है कि शराब पश्चिमी जीवनका एक अंग ही बन गई है। पर इन्हीं पश्चिमके लोगोंने किस तरह महामारियोंका उन्मूलन किया है वह भी देखने लायक है। उन्होंने डटकर उसका मुकाबला किया, उसका बढ़ना रोका और अन्तमें जड़से उसका सफाया ही कर डाला। इसके विपरीत, भारतमें हम देखते हैं कि यहाँ लोग समस्याके प्रति सर्वथा उदासीन हैं। मेरा आपसे अनुरोध है कि नगरके निवासी होनेके नाते आपके जो पवित्र कर्त्तव्य हैं उन्हें आप कभी न भूलें, उनपर गम्भीरतापूर्वक विचार करें, और यथाशक्ति उनका पालन करें।

अन्त्यजोंकी समस्याका उल्लेख करते हुए महात्माजीने कहा कि मुझे प्रसन्नता है कि आपने अपने मानपत्रमें अपनी भूल निःसंकोच स्वीकार कर ली है।[1] पर भूल स्वीकार करनेका लाभ तभी हो सकता है जब आप उसे सुधारनेका प्रयत्न करें। जबतक आप अपने अन्त्यज भाइयोंके जीवनमें प्रवेश करके उनपर पड़नेवाली कठिनाइयोंको दूर नहीं करते, उनकी सेवा नहीं करते तबतक आप अपने पवित्र कर्त्तव्यका पालन नहीं करते। यह कहना कि हम हिन्दू हैं और दया-धर्ममें विश्वास करते हैं, और साथ ही अछूतोंको पास न फटकने देना परस्पर विरोधी बातें हैं। यदि आप कहें कि आपके धर्ममें हिंसाकी शिक्षा दी गई है तो मुझे आपसे कुछ नहीं कहना है। किन्तु यदि आप यह मानते हों कि अहिंसा हमारे धर्मका एक बुनियादी मुख्य सिद्धान्त है तो अस्पृश्यताका कलंक माथेपर लगाये हुए आप संसारको अपना मुँह नहीं दिखा सकते।

इसके बाद महात्माजीने कहा कि यदि आप उस गन्दगीको गाँवोंसे सचमुच दूर करना चाहते हैं जिसे आप वहाँ फैलाते रहे हैं तो आप देशमें व्याप्त घोर गरीबीकी याद किये बिना नहीं रह सकते, और उसके साथ ही इस गरीबीको दूर करनेका एकमात्र सम्भव उपाय हमारे सामने आ जाता है, अर्थात् कताई और चरखा। आप नगर-निवासियोंसे मेरी यही प्रार्थना है कि आप इस बातको समझें कि यदि आप गाँवोंको साफ-सुथरा नहीं बना सकते तो कमसे-कम उनकी गरीबी दूर करनेमें तो अपना सहयोग अवश्य दें। यदि आप गाँवोंमें हमारी बहनों द्वारा काते गये सूतसे बने कपड़ोंको मोटा-झोटा मानकर उसका तिरस्कार करेंगे; और मिलका कपड़ा खरीदकर इन बहनोंकी गरीबी और बढ़ायेंगे तो ईश्वर आपको कभी क्षमा नहीं करेगा। मुझे यह जानकर दुःख हुआ है कि नगरका खादी भण्डार प्रतिमास केवल २,००० रुपयोंका खद्दर बेच पाता है और उसके पास कोई दो लाख रुपयेका माल पड़ा हुआ है।

१. मानपत्रमें कहा गया था . . . 'आपके प्रिय कार्य — अन्त्यजों और दलित वर्गोंके उत्थान — के विषयमें कुछ विशेष प्रयत्न नहीं किया गया है। अछूतोंके लिए दो स्कूल जरूर चलाये जा रहे हैं और दूसरे स्कूलोंमें भी उनके प्रवेशपर कोई प्रतिबन्ध नहीं है।'

जो यह कहते हैं कि बाहरसे मँगाया हुआ तथा भारतीय मिलोंका कपड़ा खद्दरसे सस्ता है वे खद्दरके सही उद्देश्य और महत्त्वको नहीं समझते। आपको यह याद रखना चाहिए कि खद्दरके लिए आप जो कुछ दाम देते हैं वह आपके गरीब देशवासियोंकी जेबमें जाता है। परन्तु जो कपड़ा मिलोंमें बनता है उसके मूल्यका एक अल्पांश ही उन्हें प्राप्त होता है। अपने निर्धन देशभाइयोंके प्रति आपका कर्त्तव्य सर्वोपरि है और किसी दूसरी बातका विचार आपको उसके बाद ही करना है। अगर आप इन गरीबों-को भूखा रखते हैं और मुझे स्वर्णजड़ित मानपत्र भेंट करते हैं तो वह मुझे कैसे पसन्द आ सकता है।

इसके बाद महात्माजीने कहा कि मैंने जानबूझकर हिन्दू-मुस्लिम एकताके विषय-में कुछ नहीं कहा, क्योंकि मैं मानता हूँ कि हिन्दू और मुसलमान दोनोंका दिमाग खराब हो गया है। भला पागलोंको शिक्षा देनेका क्या लाभ है? पर यदि आपने उन सब बातोंपर विचार किया जिनके बारेमें मैंने आपसे अभी बातकी है तो मुझे ऐसा नहीं लगेगा कि मेरा यहाँ आना व्यर्थ गया।

अन्तमें गांधीजीने उपस्थित लोगोंसे देशबन्धु स्मारक कोषमें चन्दा देनेकी अपील की और कहा कि यह कोष स्वर्गीय नेताके प्रिय कार्य, गाँवोंके पुनर्निर्माणपर खर्च किया जायेगा।

[अंग्रेजीसे]

सर्चलाइट, ७-१०-१९२५

१४८. पत्र: जवाहरलाल नेहरूको

३० सितम्बर, १९२५

प्रिय जवाहरलाल,

हम विचित्र समयमें रह रहे हैं। शीतलसहाय अपना बचाव कर सकते हैं। कृपया आगेकी घटनाओंसे मुझे परिचित रखना। वे क्या करते हैं? क्या वे वकील हैं? क्या उनका कभी क्रान्तिकारी गतिविधियोंसे कोई सम्बन्ध रहा है?

कांग्रेसकी बात यह है कि उसे जितना सादा बना दिया जाये उतना अच्छा है, ताकि जो कार्यकर्त्ता अब रह गये हैं वे उसे सँभाल सकें। मैं जानता हूँ, तुम्हारा बोझ अब बढ़ेगा। परन्तु तुम्हें अपने स्वास्थ्यको किसी भी तरह खतरेमें नहीं डालना चाहिए। मुझे तुम्हारे स्वास्थ्यकी चिन्ता है। तुम्हें जो बार-बार बुखार आ जाता है, वह मुझे बिलकुल पसन्द नहीं है। काश तुम खुद और कमला थोड़ी छुट्टी ले सकते!

पिताजीका[1] मेरे पास खत आया है। बेशक जहाँतक उनका खयाल है, उतनी दूर मैं कभी भी नहीं जाना चाहता था। किसीसे पिताजीको आर्थिक सहायता देनेके

१. पण्डित मोतीलाल नेहरू।

लिए कहूँ यह बात तो मैं सोच ही नहीं सकता, किन्तु मुझे ऐसे मित्र या मित्रोंसे कहनेमें कोई संकोच नहीं होगा जो तुम्हारी सार्वजनिक सेवाओंके बदलेमें तुम्हारी मदद करना अपना सौभाग्य समझेंगे। तुम्हारी जो स्थिति है और रहेगी यदि उसके कारण तुम्हारी आवश्यकताएँ असाधारण न होती तो मैं तो तुमसे अपनी जरूरतका पैसा सार्वजनिक कोषसे ले लेनेको कहता। मेरा अपना तो दृढ़ मत है कि पारिवारिक खर्चमें योगदान करनेकी दृष्टिसे या तो तुम कोई व्यवस्था कर लो, या फिर देशको तुम्हारी सेवाएँ प्राप्त रहे उसके लिए अपने निजी मित्रोंको तुम्हारे लिए पैसेका इन्तजाम करने दो। परन्तु कोई जल्दी नहीं है, मगर तुम अपना मन परेशान किये विना एक अन्तिम निश्चय कर डालो। यदि तुम कोई व्यवसाय करनेका फैसला करो तो भी मुझे कोई आपत्ति नहीं होगी। मुझे तो तुम्हारी मानसिक शान्ति चाहिए। मैं जानता हूँ कि किसी व्यवसायके प्रबन्धककी हैसियतसे भी तुम देशकी सेवा ही करोगे। मुझे विश्वास है, तुम जो भी निश्चय करोगे, यदि उससे तुम्हें पूर्ण शान्ति मिलती हो तो पिताजीको कोई आपत्ति नहीं होगी।

तुम्हारा,
बापू

[पुनश्च :]

मैं समझता हूँ कि मुझे दायाँ हाथ तो 'यं० इं०' के लिए ही सुरक्षित रखना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]
बंच ऑफ ओल्ड लेटर्स

१४९. पत्र : देवचन्द पारेखको

आश्विन सुदी १३, ८१; ३० सितम्बर, १९२५

भाईश्री ५ देवचन्दभाई,

तुम्हारा पत्र मिला। तुमने ब्यौरेवार चर्चा करके ठीक ही किया। तुमने नये खादी मण्डलके मताधिकारके सम्बन्धमें लिखा है, पहले उस विषयपर बात कर लूँ। तुम्हें अबतक समाचारपत्रोंसे मालूम हो गया होगा कि मताधिकारके दो प्रकार हैं। पहले वर्गको हर महीने दो हजार गज सूत कातकर भेजना है और दूसरे वर्गको सिर्फ दो हजार गज वार्षिक। इस दूसरे वर्गमें हम पेशेवर कातनेवालोंको शामिल कर सकते हैं, लेकिन इन्हें हम अभी नहीं लेते। हमें कुछ इस तरहसे काम करने चाहिये जिससे इस भयको तनिक भी अवकाश न रहे कि इस तरहके मताधिकारसे हम कहीं कांग्रेसपर कब्जा न कर लें। इस ढंगसे हम स्वराज्यवादी पक्षको निर्भय और निःशंक कर सकते हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि हमें नये कातनेवालोंकी संख्या सीमित रखनी है। वह तो जितनी बढ़ सके, बढ़ाई जानी चाहिए। मण्डलकी सफलता उसीमें है। दूसरे प्रकारके वर्गके लिए वर्षमें दो हजार गजकी सीमा रखकर हमने नये कातनेवालोंके मार्गको

सहल कर दिया है। यह दो हजार गज सूत यदि हम पाँच-छः अंकका भी मान लें तो भी उसमें आधा सेर रुई नहीं लगेगी। इसलिए इतनी रुईकी कीमत तो चार आनेसे भी कम ही होगी और यदि बारीक काता जाये तो मुश्किलसे दो आने लगेंगे। सदस्य इस रुईकी कीमतके अलावा जो कुछ देना चाहेगा वह तो चरखेके प्रति उसकी पत्र पुष्प-जैसी भेंट होगी। और फिलहाल तो मण्डल इसका स्वागत करेगा। इसलिए तुम देखोगे कि यह तो तुम्हारी इच्छाके अनुरूप ही हुआ है।

अब खादीके उत्पादन और बिक्रीकी तुमने जो चर्चा की है, उसपर विचार करें।

बिक्रीके सम्बन्धमें तो पुराने मण्डलकी कार्यपद्धति साफ है। जो व्यापारीवर्ग खादी बेचता है उसे तो वह अच्छी जमानत लेकर बिना ब्याजके रकम देता है। लोगोंके खादी-प्रेमका अनुचित लाभ उठानेके लिए कहीं वह महँगी खादी न बेचे इसके लिए लाभकी सीमा सवा छः प्रतिशत निर्धारित की गई है। खोट होनेपर वह २ प्रतिशत आर्थिक सहायता देनेकी बातको स्वीकार करता है। इस तरह व्यापारी वर्ग धीरे-धीरे अपने पैरोंपर खड़ा हो जायेगा और इस तरह मण्डलका दायित्व भी कम हो जायेगा। इस तरह तुम देखोगे कि इस पद्धतिमें व्यावसायिक दृष्टि कम है; और इससे व्यापारीको पूंजीका लाभ भी मिलता है, तथा किसीको कुछ कहनेकी गुंजाइश नहीं रहती।

अब रहा उत्पादनका प्रश्न। इसके अन्तर्गत स्कूलोंमें शिक्षणके अलावा लोगोंसे कताने और उन्हें खादी पहनानेका जो काम है वह तो होना ही चाहिए। लेकिन उसका परिणाम लम्बे अर्सेके बाद ही देखा जा सकेगा। इसलिए इतनेसे ही सन्तोष मानना ठीक नहीं होगा। जैसे-जैसे मैं विचार करता हूँ, वैसे-वैसे देखता हूँ कि हम अभी उन क्षेत्रोंमें नहीं पहुँच सके हैं जहाँ चरखा चलाना स्वाभाविक और सस्ता है। ऐसे क्षेत्रोंमें अच्छे कारीगरोंको उचित मजूरी देकर काम चलाया जाता है। यदि उक्त क्षेत्रोंमें कहीं कोई छोटी-मोटी त्रुटि हो तो उसे दूर करनेके लिए हम खादीके अर्थशास्त्र तथा उसके धन्धेमें कुशल व्यक्तियोको वेतन देकर उन्हें वहाँ भेजें तो काम-को आसानीसे व्यवस्थित ढंगसे चलाया जा सकता है। इसमें यदि हम पूरी सावधानी नहीं रखते तो वह हमारी अदूरदर्शिताका परिचायक होगा। इसलिए मैं खादी उद्योग और उसकी कलाके विशेषज्ञोंको वेतन देकर रखनेकी आवश्यकता महसूस करता हूँ और मुझे यह भी लगता है कि हमें ऐसे असंख्य व्यक्तियोंकी आवश्यकता है। लेकिन हमारे पास शिक्षित व्यक्ति नहीं हैं। अतएव हमें ऐसे कार्यके प्रति प्रेमभाव दिखाने-वाले व्यक्तियोंको जुटा कर उन्हें शिक्षित करनेका काम अपने हाथमें लेना चाहिए। मैंने यह भी महसूस किया है कि थोड़ा-बहुत सीखे हुए व्यक्तियोंसे भी इसमें काम नहीं चल सकता; इसलिए उन्हें पूरी-पूरी शिक्षा देना भी महत्त्वपूर्ण है। इसके लिए हमें एकाधिक ऐसे केन्द्रोंकी जरूरत पड़ेगी, जहाँ खादीकी सर्वांग शिक्षा दी जा सके।

इस तरह जिन क्षेत्रोंमें कुछ आसार दिखाई पड़ते हैं, लेकिन जो सुषुप्त हैं और मंथर गतिसे चल रहे हैं उन्हें यदि हम सप्राण बनानेकी कोशिश करेंगे तो इसके साथ ही कठिन दिखाई पड़नेवाले क्षेत्रोंपर भी हमें मेहनत करनी पड़ेगी। एक अवधि

तक बुनकरोंको भी हमें अपने साथ लेकर चलना चाहिए; नही तो उसमें अनेक प्रकारकी धोखाधड़ी और मंदी आते रहनेका भय बना रहेगा और इससे हमारे किये-धरेपर पानी ही पड़ सकता है। यह सब करनेके लिए मुझे तो लगता है कि हमें कुशल, चुस्त और नीतिवान कार्यकर्त्ताओंकी एक सेना ही आवश्यक होगी। इसमें जल्दबाजी नही होनी चाहिए। व्यक्तियोंके चुनावमें सावधानी बरती जानी चाहिए। इसमें किफायत भी पूरी करनी होगी। लेकिन मुझे विश्वास है कि यदि यह सब-कुछ जाग्रत रहकर करें तो मुश्किल नही है। केन्द्र जैसे-जैसे ढर्रेपर आ जायेंगे वैसे-वैसे वे कार्यकर्त्ताओंके खर्चको भी उठाने लगेंगे। इस बारेमें मुझे तनिक भी शंका नही है। आज भी कुछ हदतक ऐसा देख रहा हूँ।

इनके अलावा अनेक ऐसी बातें हैं जो मैं तुम्हें समझाना चाहता हूँ; लेकिन वह फिर कभी। इतना याद रखना है कि अकालके लिए भी खादी तैयार करनी होगी। एक भी स्त्री जो पैसेके लिए कातना चाहे उसे हम काम देनेसे न चूकें। इस-लिए मकान आदिकी जरूरत होगी।

बापूके वन्देमातरम्

मूल गुजराती पत्र (जी० एन० ५७२७) की फोटो-नकलसे।

१५०. पत्र : सी० एफ० एन्ड्रयूजको

[सितम्बर, अक्तूबर, १९२५]

प्रिय चार्ली,

तुम नही चाहते कि मैं तुम्हें लिखूँ; पर मुझसे रहा नही जाता।

गुरुदेव तुम्हें क्यों बुलाना चाहते हैं? ईश्वरने तुम्हें अबतक अनिष्टसे बचाया है। और जबतक उसे तुमसे काम लेना है, आगे भी बचायेगा। पर तुम जहाँ उसकी सहायता कर सकते हो या जहाँ तुम्हें उसकी सहायता करनी चाहिए वहाँ भी तुम वैसा नही करते। तुम्हारा किसी बात या व्यक्तिके बारेमें परेशान होना ठीक नही है। तुम्हें किसी बातके लिए चिन्तित देखता हूँ तो मैं सोचने लगता हूँ कि [बाइबिलके इस आदेशका] 'किसीकी चिन्ता मत करो' आखिर क्या अर्थ है।

तुम्हारा जमशेदपुरका विवरण[1] बहुत बढ़िया है। तुम्हारे सिवा और कोई इतना अच्छा नही लिख पाता। तुमने बहुत स्पष्ट ढंगसे असली बात सामने रख दी है।

भीलोंके बच्चोंको लँगोटी पहनने देनेके विषयमें मैं तुमसे पूरा सहमत हूँ।

सस्नेह,

तुम्हारा,
मोहन

१. तात्पर्य टाटा इस्पात कारखानेके मालिक-मजदूर झगड़ेसे सम्बन्धित विवरणसे है।

[पुनश्च :]

मेजबानोंको खुश करनेके लिए भी बढ़िया खाना न खाओगे, ऐसा निश्चित वचन तुम्हें देना होगा।

मो०

[पुनश्च :]

साँपके मेरे ऊपर रेंगनेका तुमने जो उल्लेख किया है, वह क्रिस्टोदासने मुझे दिखाया है।' काश! तुमने जो-कुछ लिखा है, वह सच होता। ये महोदय मेरे वदन-परसे रेंगे तो जरूर थे, परन्तु उस समय जब मैं प्रार्थनाके बाद लेटा हुआ लोगोंसे बातें कर रहा था। थोड़ा-सा हंगामा भी हुआ। मैं चुपचाप लेटा रहा और एक मित्रने मेरी चादरको, जिसपर वह रेंग आया था मेरे वदनपरसे हटा दिया। मुझे लगता है कि तुम्हें इस सम्बन्धमें एक संशोधन भेज देना चाहिए।

अंग्रेजी पत्र (जी० एन० २६४०) की फोटो-नकलसे।

१५१. अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी

सत्ताको स्वराज्यवादियोंके हाथोंमें सौंपनेका जो सिलसिला प्रारम्भ हुआ था, वह अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीने अपनी पटनाकी बैठकमें पूरा कर दिया। प्रस्तावों[1] पर बहुत गम्भीरतापूर्वक विचार किया गया और कुल मिलाकर संयम भी पूरा-पूरा बरता गया। प्रस्तावके भिन्न-भिन्न भागोंका समर्थन उतने बड़े बहुमतसे नहीं हुआ जितनेकी मैंने उम्मीद की थी। यहाँ सवाल एक संस्थाकी शाखा द्वारा अपने मूल संगठन-के विधानमें परिवर्तन करनेका था, इसलिए मैं चाहता भी था कि प्रस्तावोंका समर्थन बहुत बड़े बहुमतसे हो; लेकिन वैसा नहीं हुआ। फिर भी मुझे लगता है कि मैंने उन प्रस्तावोंके उपस्थित किये जानेकी अनुमति देकर देशके हितके अनुकूल ही काम किया है। मैं पहले ही यह बात कबूल कर चुका हूँ कि विधानमें परिवर्तन करना अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके सामान्य अधिकार-क्षेत्रके बाहर है; और यह एक किस्मकी बगावत है। परन्तु मैं मानता हूँ कि अपनी ख्याति और प्रतिष्ठाका खयाल रखनेवाली हर संस्थाका कर्त्तव्य है कि यदि उसे पूरा विश्वास हो कि स्वयं संस्थाके अस्तित्व या हित साधनके लिए ऐसी बगावत जरूरी है तो वह ऐसे साहसके साथ ऐसी स्थितिका स्वागत करे। इसी कारण मैंने पहले यह तय करनेके लिए समितिकी बैठक बुलाई कि क्या ऐसा कठिन प्रसंग आ गया है जिससे कि कांग्रेसके अधिवेशनका इन्तजार किये बिना संविधानमें परिवर्तन करना उचित समझा जाये। शीघ्र परिवर्तन करनेके पक्षमें भारी बहुमत था। इसलिए स्वयं उस प्रस्तावको भी उतना ही बड़ा बहुमत मिले, इसका आग्रह मैंने नहीं रखा। अब अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके कार्यको स्वीकार करना कांग्रेसकी

१. देखिए परिशिष्ट २।

मर्जीपर है या वह चाहे तो उसको अस्वीकार करके उसकी भर्त्सना करे; अथवा इस भावसे कि जो हो चुका सो हो चुका, उसके निर्णयको स्वीकार करते हुए उसके इस व्यवहारकी भर्त्सना करे। एक-दो सदस्योंने कहा कि भर्त्सना करना तो असम्भव है; क्योंकि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके इस प्रस्तावको तुरन्त ही कार्यरूप देना है और इसलिए जो लोग कांग्रेसमें आयेंगे, स्वभावत: नये मताधिकारके अनुसार सदस्य बनकर आयेंगे। इसलिए जिन लोगोंको उस मताधिकारका लाभ मिलेगा उनसे लाभ पहुँचानेवाली संस्थाके कार्यकी भर्त्सना करनेकी आशा नहीं की जा सकती, लेकिन ऐसा होना कोई जरूरी नहीं है। यदि केवल संवैधानिक आधारपर ही कमेटीका यह परिवर्तन नापसन्द किया जाये तो जिन लोगोंको इससे लाभ पहुँचा है, वे भी कमेटीके अवैध कार्यकी भर्त्सना कर सकते हैं और उनका यह व्यवहार बिलकुल उचित होगा। वे किसी भी हालतमें परिवर्तनके औचित्यको स्वीकार करके भी अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके परिवर्तन करनेके अधिकारकी आलोचना कर सकते हैं।

इस परिवर्तनके सार तत्त्वपर विचार करें तो हम देखते हैं कि कोई भारी परिवर्तन नहीं किया गया है। इससे किसी भी वर्गके हितको हानि नहीं पहुँची है। किसी भी व्यक्तिका मताधिकार नहीं छीना गया है। ऐसा भी नहीं है कि इसके कारण कोई भी दल परिवर्तनसे पहलेकी अपनी अवस्थासे बुरी अवस्थामें पहुँच गया हो। असहयोगियोंको कोई शिकायत नहीं हो सकती; क्योंकि राष्ट्र-नीतिके तौरपर असहयोग स्थगित हो चुका है। रचनात्मक कार्यक्रमपर इस परिवर्तनका कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता। कताई और खादी अब भी राष्ट्रीय कार्यक्रमके अंग बने हुए हैं।

कौंसिल-कार्यक्रमको जिसे अबतक स्वराज्यदल कांग्रेसके नामपर चला रहा था, अब कांग्रेस स्वयं स्वराज्यदलके जरिये चलायेगी। इसे ऐसा अन्तर कहा जा सकता है, जिससे स्थितिमें कोई फर्क नहीं पड़ता। जो लोग राजनीतिक कार्यक्रमके मुकाबले चरखेको प्राथमिकता देते हैं उनका; और जो विशुद्ध राजनीतिक कार्यक्रममें कोई विश्वास नहीं रखते हैं और सिर्फ चरखेमें ही विश्वास रखते हैं, उनका भी कोई नुकसान नहीं हुआ है; क्योंकि चरखा-कार्यक्रमको आगे बढ़ानेके लिए उनके पास एक पृथक् संगठन तो है ही, और फिर हाथ कताई अब भी मताधिकारके एक वैकल्पिक भागकी तरह मौजूद है। कांग्रेसके समारोहों तथा अन्य सार्वजनिक अवसरोंपर खादी पहनना अब भी लाजिमी बना हुआ है। इसके अतिरिक्त कांग्रेसके बाहरके दलोंपर भी इसका कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता। बेलगाँवके प्रस्तावके[1] अन्तर्गत जहाँ अन्य बाहरी दलोंको स्वराज्यवादी और अपरिवर्तनवादी, कांग्रेसके दोनों दलोंसे बातचीत करना और उन्हें अपने मतका कायल करना था, वहाँ अब उन्हें सिर्फ स्वराज्यवादियोंको ही अपने मतका बनाना या उन्हींसे मशविरा करना है। अतएव यह परिवर्तन हर प्रकारसे सदस्यता प्राप्त करनेके अधिकारकी सीमाको बढ़ाता है। इसके कारण सब दलोंके एक सूत्रमें बँधनेके मार्गकी कठिनाई पहलेसे कम हो जाती है। कोई भी कांग्रेस कमेटी ऐसे किसी परिवर्तनको कभी नापसन्द नहीं कर सकती जिससे लोगोंकी स्वतन्त्रतामें वृद्धि होती

१. देखिए खण्ड २५, पृष्ठ ५३७-३९।

हो। इतना ही नहीं, मैं तो यह मानता हूँ कि यह परिवर्तन उन लोगोंकी आवश्यकता-के अनुकूल है, जिनकी अबतक कांग्रेससे एकरूपता मानी जाती रही है। सम्भव है वे इसे पर्याप्त न मानें। यदि उनके लिए यह अपर्याप्त रहा तो मुझे सचमुच इसका दुःख होगा।

बैठकमें हुई बहससे प्रकट होता था कि कुछ सदस्योंके मनमें चन्देके रूपमें दिये जानेवाले सूतको सीधे अखिल भारतीय चरखा संघको भेजनेसे बेईमान लोगों द्वारा पेशेवर कतैयोंका शोषण या उससे भी बदतर बात हो सकनेकी आशंका है। यहाँतक कि बेईमानीके तरीकोंसे कांग्रेसमें कातनेवाले सदस्योंकी भरमार करा दी जा सकती है। इस तरह एक बहुत अवांछनीय स्थिति पैदा हो जायेगी और जिस उद्देश्यसे यह प्रस्ताव किया गया है, वह उद्देश्य ही विफल हो जायेगा। सूत केन्द्रमें जमा किया जाये तब वे ऐसा कोई भय नहीं मानते थे; लेकिन अगर वह प्रान्तीय शाखाओंको भेजा जाये तो उन्हें ऐसी अवांछनीय परिस्थिति उत्पन्न होनेका पूरा भय था। इस आपत्तिका निवारण करनेमे कोई कठिनाई नहीं हुई। इसके लिए संघके संविधानमें इस आशयकी एक धारा जोड़ दी गई कि कांग्रेसके जो सदस्य चन्देमें चवन्नीके बजाय सूत ही देना चाहें वे अपना सूत सीधे केन्द्रीय कार्यालयोंको भेजें। खुद मेरा विचार ऐसा कदापि नहीं है कि कांग्रेसको सूत कातनेवालोंसे भर दूँ, और इस तरह उसको फिर विशुद्ध रूपसे या मुख्यतः कतैयोंकी संस्था बना दूँ और उसमें कौंसिल-सम्बन्धी नीतियोंके लिए कोई स्थान ही न रहने दूँ। वैसे मै इसे कतैयोंकी संस्था बनाना तो जरूर चाहूँगा, लेकिन यह उसी हालतमें हो सकता है जबकि वे लोग, जिनको आज सत्ता दी गई है, सोलहों आने चरखेके कायल हो जायें। और यह तो चरखा चलानेवालों द्वारा कांग्रेसके अन्दर नहीं बल्कि बाहर रहकर किये गये कार्यके जरिये ही हो सकता है। यदि हाथ-कताईमें सचमुच कोई अपनी शक्ति है और अगर उसका प्रचार इतना व्यापक हो जाये जिससे एक समयके भीतर, विदेशी वस्त्रोंका बहिष्कार सम्भव हो जाये तो स्वराज्य-वादी पूरी तरह चरखेकी शक्तिके कायल होकर उसके हामी बन जायेंगे। किन्तु चरखेका ऐसा व्यापक तथा प्रभावकारी प्रचार तो तभी हो सकता है, जब चरखेकी शक्तिमें पूरा विश्वास रखनेवाले लोग निरन्तर सिर्फ इसी ओर प्रयत्न करते रहें और अपने विश्वासको कार्यरूप देते रहें। इसलिए मेरी पक्की सलाह है कि जो लोग इस समय कताईके आधारपर कांग्रेसके सदस्य बने हुए हैं वे यदि चाहें तो प्रधान कार्यालयको अपना सूत भेजते रहकर ऐसे सदस्य बने रहें। कांग्रेसके कातनेवाले सदस्योंकी संख्यामें वृद्धि करनेके लिए उन्हें प्रचार करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। वे कताई संघके सदस्योंकी संख्या बढ़ाते चले जानेके लिए पूरी शक्तिसे काम कर सकते हैं। और यदि हमें एक बड़ी तादादमें स्वेच्छासे कातनेवाले ऐसे लोग मिल जायें जो पेशेवर कतैये नहीं बल्कि यज्ञकी भावनासे — न कि जीविकाके लिए — कातनेको तैयार हों तो यह उपलब्धि जल्दी ही अपना प्रभाव दिखाये बिना नहीं रहेगी। परन्तु फिलहाल, जबतक कि सब तरहकी आशंकाएँ दूर नहीं हो जाती, उन्हे कांग्रेसके सदस्य नहीं बनना चाहिए। मेरी सदासे यह राय रही है कि राष्ट्रीय कांग्रेसमें आपसी झगड़े

नही होने चाहिए और न कांग्रेसपर कब्जा करनेके लिए कोई अशोभन प्रयत्न ही होना चाहिए। जो लोग बहुमतकी नीतिसे सहमत नहीं हो सकते, वे या तो महत्त्वपूर्ण बातोंमें इस हदतक न लड़ें कि मत-विभाजनकी नौबत आ जाये, या यदि उनकी अन्तरात्मा उनके ऐसा रुख अपनानेमें बाधक हो तो वे कुछ समयके लिए कांग्रेससे बिलकुल अलग हो जायें। इसलिए जो उग्र असहयोगी कांग्रेसमें रहनेपर हर कदम पर, हर अवस्थामें स्वराज्यवादियोंसे लड़ना अपना कर्त्तव्य समझते हों, उनसे मेरा आग्रह है कि वे कांग्रेससे अलग हो जायें और यदि वे चाहें तो बाहर रहकर लोकमत तैयार करें। उन्हें स्वराज्यवादियोंके लिए खुला मैदान छोड़ देना चाहिए और उन्हें अपनी नीतिको कार्यान्वित करनेका पूरा मौका देना चाहिए। यदि स्वराज्यवादियोंको कुछ असर सरकारपर डालना है तो मेरी रायमें कांग्रेस पूरी तरहसे उनके अधिकारमें रहनी चाहिए और असहयोगियोंको उनके काममें कोई विघ्न-बाधा नही डालनी चाहिए।

इसलिए मेरी रायमें जहाँ कहीं दोनों दलोंके लोगोंकी संख्या बराबर-बराबर हो, वहाँ असहयोगियों अथवा अपरिवर्तनवादियोंको चाहिए कि वे पूरा अधिकार स्वराज्यवादियोंको दे दें और यदि वे स्वयं किन्ही पदोंपर हों तो उन्हें छोड़ दें। जहाँ अपरिवर्तनवादियोंका भारी बहुमत हो वहाँ वे स्वराज्यवादियोंके काममें रुकावट न डालें और अपनी अन्तरात्माके अनुकूल, जहाँ बन पड़े, वहाँ उनकी सहायता करें। कोई भी कांग्रेस कमेटी किसी भी हालतमें कौंसिलोंके लिए ऐसा उम्मीदवार खड़ा न करे जिसे स्वराज्यवादियोंने पसन्द न किया हो और उनके पसन्द किये गये उम्मीदवारके मुकाबले भी किसीको खड़ा न करे।

यहाँ मैं एक बातका उल्लेख किये बिना नहीं रह सकता। वह सचमुच बहुत खुशीकी बात है। मैंने देखा कि अधिकांश सदस्योंकी सम्मति निश्चित रूपसे इस बातके पक्षमें थी कि सभी कांग्रेसियोंके लिए खादीको राष्ट्रीय पहनावा बना दिया जाये। उस आशयका प्रस्ताव सिर्फ इसीलिए पास नही किया गया कि इससे स्वराज्यवादी दलको परेशानी होगी। बेलगाँवके प्रस्तावमें इतना सुधार तो सब लोगोंने खुशी-खुशी कबूल कर लिया कि यद्यपि कांग्रेसके समारोहों तथा दूसरे सार्वजनिक अवसरोंपर ही खादी पहनना लाजिम है, किन्तु सभी कांग्रेसियोंसे यह उम्मीद की जाती है कि वे तमाम अवसरोंपर खादी पहनेंगे और विदेशी कपड़ेको तो किसी भी हालतमें नहीं पहनेंगे; और न उसका अन्य उपयोग ही करेंगे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १-१०-१९२५

१५२. स्वैच्छिक कर्तैयोंसे

मन्त्रियोंने मुझे कहा है कि मैं स्वैच्छिक कर्तैयोंका ध्यान निम्नलिखितकी ओर खींचूं। चरखा संघका सदस्य बननेका इच्छुक हरेक व्यक्ति सदस्यता लिए निम्नलिखित रूपमें निवेदनपत्र भेजेगा :

मन्त्री,

अ० भा० च० संघ,

साबरमती।

महोदय,

मैंने अ० भा० च० संघके नियम पढ़ लिए हैं। मैं. . .वर्गका सदस्य/उप-सदस्य बनना चाहता हूँ और तदर्थ मैं इसके साथ. . .के लिए अपना चन्दा भेज रहा हूँ।

कृपया मेरा नाम सदस्यके रूपमें दर्ज कर लें।

आपका,

२. सूत सीधा साबरमती भेजा जाये।

३. सूतके साथ निम्नलिखित जानकारीसे युक्त एक चिट्ठी जोड़ी जानी चाहिए :

१. सदस्यका नाम और पता :
पतेमें सदस्यको अपने कांग्रेसी प्रान्त और ताल्लुकेका उल्लेख करना चाहिए।

२. महीना, जिसका चन्दा भेजा जा रहा है।

३. (क) सूतकी कुल लम्बाई। (ख) वजन (ग) अंक। (घ) लच्छीका परिमाप। (ङ) सूतमें जिस रुईका उपयोग किया गया हो, उसकी किस्म।

जिन दो सौ व्यक्तियोंने संघकी उद्घाटन सभामें अपने नाम दिये थे, वे कृपया इसे नोट कर लें।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १-१०-१९२५

१५३. सिख धर्म

सरदार मंगलसिंह अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी बैठकके सिलसिलेमें पटना आये थे, उस समय उन्होंने मेरा ध्यान गत ९ अप्रैलके 'यंग इंडिया' में प्रकाशित "एक क्रान्तिकारीके प्रश्न" शीर्षक लेखकी[1] ओर आकर्षित किया था। उन्होंने बताया कि उस लेखसे बहुत-से सिख भाइयोंके मनको चोट लगी है, क्योंकि वे मानते हैं कि उसमें मैंने कृष्णकी तो प्रशंसा की है, लेकिन गुरु गोविन्दसिंहको दिग्भ्रमित देशभक्त कहा है। सरदारजीने मुझसे कहा कि अब मैं जल्दीसे-जल्दी इस बातका स्पष्टीकरण कर दूं कि लेखके जिन अंशोंकी ओर उन्होंने मेरा ध्यान आकर्षित किया था, उनमें दरअसल मैं कहना क्या चाहता था। सतर्क पाठकगण देखेंगे कि मैंने भाषाके प्रयोगमें बहुत सावधानीसे काम लिया है। मैंने कोई भी बात निश्चयात्मक ढंगसे नहीं कही है। मैंने जो-कुछ कहा है, सो इतना ही कहा है कि गुरु गोविन्दसिंह सहित उल्लिखित वीर-पुरुषोंके विषयमें जितनी बातें कही जाती हैं उन सबको अगर सच माना जाये तो, और यदि मैं उनका समकालीन होता तो, मैं उनमें से प्रत्येकको देशभक्त कहता। लेकिन, अगले ही वाक्यमें मैंने यह भी कह दिया है कि मुझे उनका काजी नहीं बनना है। दूसरे इतिहासमें वीरोंके कारनामोंके जैसे ब्यौरे दिये गये हैं मैं उन्हें सही नहीं मानता। सिख गुरुओंके विषयमें मेरी मान्यता तो यह है कि वे लोग बड़े ही धर्मिष्ठ संत और सुधारक थे; वे सबके-सब हिन्दू थे और गुरु गोविन्दसिंह हिन्दू-धर्मके सबसे बड़े त्राताओंमें से थे। मैं यह भी मानता हूँ कि उन्होंने उसकी रक्षाके लिए ही तलवार उठाई। लेकिन, उनके कार्योंके औचित्य-अनौचित्यके विषयमें मैं कुछ नहीं कह सकता, और जहाँतक तलवारका सहारा लेनेका सम्बन्ध है, मैं उन्हें अपना आदर्श भी नहीं मान सकता। मैं नहीं जानता कि अगर मैं उनके युगमें रहा होता और मेरे विचार ऐसे ही होते, जैसे आज हैं, तब मैं क्या करता। ऐसी काल्पनिक बातोंपर विचार करना मैं समयको व्यर्थ गँवाना मानता हूँ। मैं सिख-धर्मको हिन्दू-धर्मसे अलग नहीं मानता। मैं उसे हिन्दू-धर्मका ही एक हिस्सा और वैष्णव धर्मकी ही तरह हिन्दू-धर्ममें एक सुधारका प्रयास-मात्र मानता हूँ। यरवदा जेलमें मुझे सिखोंके सम्बन्धमें जितना भी साहित्य मिला, मैं उस सबका पारायण कर गया। 'ग्रन्थ साहिब' के भी कुछ अंश पढ़े। उसका स्वर बड़ा ही आध्यात्मिक और नैतिक है और वह मनुष्यको ऊपर उठानेवाला है। हमारी 'आश्रम भजनावली' में गुरु नानकके भी कुछ भजन हैं। किन्तु, साथ ही अगर सिख लोग सिख-धर्मको हिन्दू धर्मसे बिलकुल अलग मानते हैं तो मुझे इसपर भी उनसे कोई बहस नहीं करनी है। जब मेरी पंजाब-यात्राके दौरान कुछ सिख भाइयोंने मुझसे कहा कि मेरा सिख-धर्मको हिन्दू-धर्मका अंग कहना उनको बुरा लगता है, तबसे मैंने ऐसा कहना भी छोड़ दिया। किन्तु, मुझे आशा है कि जब मुझसे सिख-धर्मके विषयमें अपने विचार व्यक्त

१. देखिए खण्ड २६, पृष्ठ ४७८-८४।

करनेको कहा जाता है तब अपने मनकी बात साफ-साफ कह देनेके लिए वे मुझे क्षमा करेंगे।

अब कृष्णकी बात लें। गुरुओंके विषयमें मैंने उनको ऐसे ऐतिहासिक व्यक्ति मानकर विचार किया है, जिनके अस्तित्वके सम्बन्धमें हमें विश्वसनीय प्रमाण प्राप्त हैं। लेकिन, मुझे नहीं मालूम कि 'महाभारत' में जिस कृष्णके चरित्रका वर्णन है, वह इस संसारमें कभी था भी या नहीं। मेरे कृष्णका किसी भी ऐतिहासिक व्यक्तिसे कोई सम्बन्ध नहीं है। उस कृष्णके सामने मेरा मस्तक कभी भी नत नहीं हो सकता जो अपने अहंपर प्रहार होनेसे दूसरोंको मारता है, या जिस कृष्णका चित्रण गैर-हिन्दू लोग एक लम्पट युवकके रूपमें करते हैं। अपनी कल्पनाके कृष्णको मैं ईश्वरका पूर्ण अवतार मानता हूँ। वह हर दृष्टिसे निष्कलंक है; वह 'गीता' का जन्मदाता और लाखों-करोड़ों लोगोंके लिए प्रेरणाका स्रोत है। किन्तु, यदि मेरे सामने यह सिद्ध कर दिया जाये कि 'महाभारत' भी आधुनिक इतिहास-ग्रन्थोंके ही अर्थमें एक इतिहास-ग्रन्थ है, उसका एक-एक शब्द प्रामाणिक है और 'महाभारत' के कृष्णके विषयमें जो-जो कार्य करनेकी बात कही जाती है, उनमें से कुछ नीति-विरुद्ध कार्य भी उन्होंने सचमुच किये थे तो हिन्दू-धर्मसे मेरा बहिष्कार ही क्यों न कर दिया जाये, मैं उस कृष्णको कभी ईश्वरका अवतार नहीं मान सकता। किन्तु मेरी दृष्टिमें 'महाभारत' एक धार्मिक ग्रन्थ है, यह मुख्यतः अन्योक्ति शैलीमें लिखा गया है और महाभारतकारका मंशा कभी भी इतिहास-ग्रन्थ लिखनेका नहीं था। इसमें हमारे भीतर चलनेवाले अच्छाई-बुराईके चिरन्तन संघर्षका वर्णन है और इसे इतनी सजीव शैलीमें प्रस्तुत किया गया है कि कुछ देरके लिए हम ऐसा समझने लग जाते हैं कि इसमें जिन कार्योंका वर्णन किया गया है, वे कार्य सचमुच लोगोंने किये भी थे। इसके अलावा, अभी हमें 'महाभारत' का जो पाठ उपलब्ध है, उसे मैं मूलकी अविकल प्रति नहीं मानता। इसके विपरीत, मैं तो यह मानता हूँ कि इसमें कई बार परिवर्तन किये गये हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १-१०-१९२५

१५४. अखिल भारतीय चरखा संघ

इसी अंकमें अन्यत्र अखिल भारतीय चरखा संघका विधान[1] प्रकाशित किया गया है। इसे ध्यानसे पढ़नेपर पाठकगण देखेंगे कि अभी यह संस्था लोकतान्त्रिक नहीं है, इतना ही नही, ठीक देखें तो इसके विपरीत एक ही व्यक्ति इसका सर्वेसर्वा है। इसे जहाँ एक ओर संस्थाकी स्थापना करनेवाले व्यक्तिकी अहम्मन्यताका द्योतक माना जाता है, वहाँ दूसरी ओर उस व्यक्तिके अपने हेतु और स्वयं अपने-आपमें अटूट विश्वासका भी सूचक माना जा सकता है। यदि कोई व्यक्ति जहाँतक अपने-आपको जान सकता है, वहाँतक किसी संस्थाको एकतान्त्रिक रूप दे तो मेरी समझमें यह कोई अहम्मन्यता नही है। व्यापारिक सस्थाएँ लोकतान्त्रिक हो ही नही सकती। और अगर हाथ-कताईको इस देशमें घर-घर प्रवेश पाना है और सफल होना है तो इसके गैर-राजनीतिक और विशुद्ध आर्थिक पक्षका पूरा-पूरा विकास करना आवश्यक है। यह पूर्ण विकास ही अखिल भारतीय चरखा सघका उद्देश्य है।

संघमें अपने सहयोगियोको चुनते समय मैंने सिर्फ उपयोगिताको ही विचारणीय माना है। उनमें से हरएकको उसकी अपनी विशिष्ट योग्यताके कारण ही लिया गया है। इसमें सभी विभिन्न प्रान्तोंको प्रतिनिधित्व देनेका कोई सवाल नही था। गलतफहमी न हो जाये, इस आशंकासे कुछ बहुत ही अच्छे कार्यकर्त्ताओंको भी परिषद्में नही लिया गया। पूछा जा सकता है कि कातनेकी दृष्टिसे मौलाना शौकत अलीमें कौन-सी विशिष्ट योग्यता है। उनकी विशिष्ट योग्यता यही है कि वे मुसलमान है, खादीमें पक्का विश्वास रखते हैं, हर महीने हजार गज सूत कातते है तथा खादी और चरखेके लिए और जो-कुछ कर सकते है, करना चाहते हैं। मैंने स्वराज्य दलके सक्रिय सदस्योंको इसमें जानबूझ कर नहीं लिया है। इसका कारण स्पष्ट है — वे अपना समय मुख्य रूपसे खादीके ही काममें नहीं लगा सकते।

संघके गठनके समय स्वराज्यवादियोंको मिलाकर सौ से अधिक खादीप्रेमी उपस्थित थे और वे संघके निर्माणमें मुझे सलाह देकर सहायता पहुँचा रहे थे। उस समय मुझसे किसीने यह भी पूछा कि क्या अब मैं खादीके राजनीतिक महत्त्व या सत्याग्रहके अनुकूल वातावरण तैयार करनेकी उसकी क्षमतामें विश्वास नही करता। स्पष्ट शब्दोंमें मैंने इस आशंकाको निर्मूल बताया और कहा कि खादीका राजनीतिक महत्त्व तो उसकी आर्थिक क्षमतामें निहित है। जो जाति रोजगारके अभावमें भूखों मर रही हो, उसमें किसी प्रकारकी राजनीतिक जागरूकता हो ही नही सकती। जिस देशमें कपड़ेकी जरूरत न हो और जहाँके लोग शिकारपर गुजारा करते हों या जिस देशके लोग दूसरे देशोंकी जनताके शोषणपर जी रहे हों, वहाँ खादीका कोई महत्त्व नही होगा। भारतकी विशिष्ट परिस्थिति खादीको जो राजनीतिक महत्त्व प्रदान करती है वह

१. देखिए "अखिल भारतीय चरखा संघका संविधान", २४-९-१९२५।

विशिष्टता इस बातमें है कि इस देशको कपड़ेकी जरूरत है, यह किसी दूसरे देश-का शोषण नहीं करता, और यहाँके करोड़ों लोग यद्यपि भूखसे तड़प रहे हैं, फिर भी उनके पास वर्षमें चार महीने कोई काम नहीं होता। खादीकी सत्याग्रहके अनुकूल वातावरण तैयार करनेकी क्षमता इस बातमें निहित है कि अगर खादीका काम सफल हो जाये तो उससे हमें इस बातका एहसास हो सकता है कि हममें भी कुछ शक्ति है। इसके साथ-साथ वह शान्ति बनाये रखनेके संकल्पका वातावरण भी तैयार कर सकती है। ऐसे बहुतसे-लोग हैं जो सत्याग्रहकी रट तो लगाये रहते हैं, किन्तु जिन्हें इसके अर्थका ज्ञान अभीतक नहीं हो पाया है। वे ऐसे गहरे संक्षोभके वातावरणको ही सत्याग्रहका पर्याय समझ लेते हैं, जिसमें बातकी बातमें सचमुच ही हिंसाके भड़क उठनेकी सम्भावना हो। किन्तु वास्तवमें सत्याग्रह इससे बिलकुल उलटी चीज है। खादी जबतक एक आर्थिक साधनके रूपमें पूरी तरह सफल नहीं हो जाती तबतक न कोई राजनीतिक परिणाम निकल सकता है और न शान्त वातावरण तैयार हो सकता है। इसीलिए, इसके सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष, आर्थिक पक्षपर जोर देना आवश्यक है। आर्थिक पक्षसे खादीका सीधा सम्बन्ध भी है। इसलिए इसकी प्रस्तावनामें जो-कुछ कहा गया, पूरी तरह सोच-समझकर कहा गया है; वह बहुत महत्त्वपूर्ण है। उग्रसे-उग्र राजनीतिज्ञ और प्रबलसे-प्रबल सत्याग्रही भी संघमें शामिल हो सकता है, लेकिन उसका यों शामिल होना एक आर्थिक कार्यकर्त्ताके रूपमें ही होगा। अगर कोई महाराजा भी खादीके आर्थिक महत्त्वको स्वीकार करता हो और यह मानता हो कि भारतके करोड़ों क्षुधा-पीड़ित लोगोंके लिए कोई ठीक पूरक धन्धा ढूँढ़ना अत्यन्त आवश्यक है तो वह भी इस संघमें शामिल हो सकता है। इसलिए जो लोग खादी और चरखेमें विश्वास रखते हैं मैं उन सबको — चाहे वे किसी भी राजनीतिक दल अथवा किसी भी धर्म या जातिके हों — संघमें शामिल होनेके लिए आमन्त्रित करता हूँ। जिन अंग्रेजों और अन्य यूरोपीयोंको भारतके करोड़ों क्षुधा-पीड़ित लोगोंकी चिन्ता है, उन्हे भी मैं इस संघमें शरीक होनेको निमन्त्रित करना चाहूँगा। मैं जानता हूँ कि ऐसे बहुतसे लोग हैं जो खादीमें, हाथ-कताईमें विश्वास तो रखते हैं, किन्तु खुद कातनेको तैयार नहीं हैं। वे भी अगर केवल खादी पहननेके लिए तैयार हों तो शौकसे इस संघमें शामिल हो सकते हैं। फिर कुछ ऐसे लोग भी हैं जो किसी कारण-विशेषसे खादी पहननेको भी तैयार नहीं हैं, किन्तु यह जरूर चाहते हैं कि खादी हर तरहसे प्रगति करे। उनसे मैं यही कहूँगा कि आप लोग अनुदान देकर संघकी सहायता करें।

किन्तु, यह बात साफ-साफ समझ लेनी चाहिए कि जबतक कांग्रेस चाहेगी तबतक यह संघ उसका एक अभिन्न अंग बना रहेगा; और काग्रेसके अभिन्न अंगके रूपमें संघका यह कर्त्तव्य होगा कि वह हाथ-कताई और खादी-विषयक कार्यक्रममें अपनी शक्ति-भर पूरी सहायता करे। इस प्रकार कांग्रेस और इस संघ दोनोंकी, उन्हें आपसमें जोड़ने-वाली चीज चरखे और खादीमें आस्था है। काग्रेसका एक अभिन्न अंग होनेके बाव-जूद यह संघ कांग्रेसकी बदलती हुई राजनीतिसे कोई सरोकार नहीं रखेगा और न उसमें परिवर्तन होनेपर किसी रूपमें अपने भीतर अनुरूप परिवर्तन करेगा। इसका अपना

स्वतन्त्र अस्तित्व होगा, इसका एक-मात्र उद्देश्य चरखे और खादीका प्रचार होगा, और इसका संचालन इसके अपने स्वतन्त्र विधानके अनुसार होगा — यहाँतक कि इसने अपनी सदस्यताके नियम भी अलग रखे हैं, और जैसा कि मैं कह चुका हूँ, यह गैर-कांग्रेसी लोगोंको भी अपने सदस्य बना सकता है और किसी भी काग्रेसीके लिए — कताई करनेवाले कांग्रेसीके लिए भी — इसका सदस्य होना अनिवार्य नहीं है।

पहले मैंने इसका विधान जितना कठोर बनानेकी बात सोची थी, उतना कठोर यह नहीं है। मैंने जो मसविदा प्रचारित किया था, उसमें प्रथम श्रेणीकी सदस्यता प्राप्त करनेके लिए प्रति मास दो हजार गज सूत कातना जरूरी बताया गया था। साथ ही ऐसे सदस्योंसे निम्न आशयकी एक घोषणापर हस्ताक्षर करानेका भी खयाल था:

> "मेरा यह पक्का विश्वास है कि भारतके जनसाधारणकी आर्थिक मुक्ति तभी सम्भव है, जब इस देशके घर-घरमें चरखे और उससे उत्पन्न खादीको अपनाया जाये। इसलिए जब मैं बीमारी या किसी अप्रत्याशित घटनाके कारण कातनेमें असमर्थ रहनेके दिनोंके अलावा हर रोज कमसे-कम आधे घंटेतक चरखा चलाऊँगा और बराबर हाथ-कते सूतसे तैयार हाथ बुनी खादी ही पहनूँगा, और अगर मेरे विश्वासमें कभी कोई परिवर्तन होगा अथवा मैं कातना या खादी पहनना छोड़ दूँगा तो मैं इस संघकी सदस्यतासे त्यागपत्र दे दूँगा।"

किन्तु, जो लोग प्रथम श्रेणीके सदस्य बनना चाहते थे पर जिन्हे प्रति मास दो हजार गज सूत कातना कठिन लगता था, उनकी ओरसे इसका जोरदार विरोध किया गया और परिणामतः दो हजार गजके बदले एक हजार गज सूत कातनेका ही नियम रखा गया। खुद उस घोषणापत्रपर हस्ताक्षर करानेका खयाल भी छोड़ दिया गया; क्योंकि ऐसा लगा कि कुछ लोगोंको इस सम्बन्धमें गम्भीर प्रतिज्ञा लेनेका विचार ही बहुत खल रहा है, हालाँकि मैं अब भी ऐसा मानता हूँ कि उनका यह रवैया बिलकुल गलत था। खुद मेरा और बहुत-से अन्य लोगोंका भी मत यह है कि वचन देना या प्रतिज्ञा करना तो दृढ़से-दृढ़ व्यक्तियोके लिए भी आवश्यक है। वचन बिलकुल सुनिश्चित चीज है, जिसमे बिन्दु-विसर्गका भी परिवर्तन नही किया जा सकता — इसकी स्थिति ठीक समकोण-जैसी है, जो ९० अंशका ही हो सकता है। अगर समकोणमें तनिक भी कम-ज्यादा हो जाये तो जिस बड़े उद्देश्यके लिए उसका उपयोग किया जाता है, उसके लिए वह सचमुच निरर्थक हो जाता है। स्वेच्छासे दिया गया वचन साहुलकी उस डोरीके समान है जो मनुष्यको बिलकुल सही मार्ग पर रखती है, और उसके जरा भी इधर-उधर होने पर उसे तुरन्त सावधान् कर देती है। सभीपर लागू हो सकनेवाले आम नियमसे व्यक्तिगत तौरपर लिये गये व्रतका उद्देश्य सिद्ध नहीं होता। इसलिए तमाम बड़ी और सुसंचालित संस्थाओंमें घोषणापत्रोंपर हस्ताक्षर लेनेकी रीति प्रचलित है। वाइसरायको अपने पदकी जिम्मेदारियाँ ईमानदारीके साथ निभानेकी शपथ लेनी पड़ती है। दुनिया-भरमें विधान मण्डलोंके सदस्योंको भी ऐसा ही करना पड़ता है, और मेरे विचारसे ऐसा करना बिलकुल ठीक भी है। किसी सेनामें भरती होनेवाले सिपाहीको भी ऐसा ही करना पड़ता है। इसके

अतिरिक्त लिखित वचन मनुष्यको बराबर इस बातका स्मरण दिलाता रहता है कि उसने क्या वचन दिया है। स्मृति तो एक बड़ी कमजोर और अनित्य चीज है। लिखित शब्द बराबर मौजूद रहते हैं। किन्तु, घोषणापत्र वाली धाराको कायम रखनेके विपक्षमें किसी हदतक काफी प्रबल मत था, इसलिए मैंने सोचा कि इसे छोड़ ही दूँ, क्योंकि इस बातसे सभी सहमत थे कि भले ही वह प्रतिज्ञा वास्तवमें न ली जाये, फिर भी उस प्रतिज्ञापत्रमें जिस विश्वासकी घोषणा की गई है, वैसा विश्वास हरएक सदस्यका है, और होना चाहिए; और फिर सबको यह भी स्वीकार था कि हर सदस्यको, सिवाय ऐसी स्थितिके जब किसी अनिवार्य कारणसे वह लाचार न हो जाये, प्रतिदिन कमसे-कम आधे घंटेतक चरखा चलाना चाहिए। संघकी परिषद्के सदस्यों द्वारा ली जानेवाली प्रतिज्ञामें एक अतिरिक्त धारा भी थी। वह इस प्रकार थी :

> मैं वचन देता हूँ कि इस संघकी परिषद्के सदस्यके रूपमें मैं अपनी जिम्मेदारियाँ ईमानदारीके साथ निभाऊँगा, और मैं जो भी व्यक्तिगत अथवा सार्वजनिक काम अपने हाथमें लूँगा उन सबके मुकाबले इस संघके उद्देश्योंको सफल बनानेके प्रयत्नको प्राथमिकता दूँगा।

इसपर ऐसा कहा गया कि प्रतिज्ञापत्रपर हस्ताक्षर तो नहीं करवाना चाहिए, किन्तु जिस संघकी परिषद्के सभी सदस्य अनिवार्यतः इस काममें अपना पूरा समय देनेवाले ही हों, उसमें यह बात तो मानकर ही चलना चाहिए कि सदस्यगण अपनी जिम्मेदारियोंका निर्वाह ईमानदारीके साथ करेंगे। सच तो यह है कि कौंसिलकी सदस्यताका मतलब काम-ही-काम है; अधिकार नहीं। और जहाँ सवाल सिर्फ सेवा करनेका हो और एकमात्र पुरस्कार अन्तरात्माकी तुष्टि ही हो, वहाँ तो उस सेवा-यज्ञमें सभी शामिल हो सकते हैं — चाहे वे किसी पदपर हों अथवा न हों। इसलिए मुझे आशा है कि कोई इसमें किसी भी व्यक्तिके शामिल न किये जानेका बुरा नहीं मानेगा और न उसका कोई गलत अर्थ ही निकालेगा। बल्कि मैं तो यह आशा कर रहा हूँ कि जिन खादी कार्यकर्त्ताओंके पास कोई भी नई या महत्त्वपूर्ण योजना हों, अथवा जिनमें भी सेवाकी विशेष वृत्ति हो वे सब — चाहे स्त्री हों या पुरुष — संघको अपनी योजना या सेवावृत्तिका लाभ देनेमें नहीं चूकेंगे। अगर इस उपक्रमको सफल होना है तो हममें से अदनासे-अदना व्यक्तिको भी इसमें हर तरह हाथ बँटाना होगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १-१०-१९२५

१५५. टिप्पणियाँ

क्षमा-प्रार्थना

बिहारकी अपनी शेष यात्राको मुल्तवी करनेमें मेरा भी हाथ रहा; मुझे इस बातका निहायत अफसोस है। पर मैं लाचार था। मुझे लगा कि पिछले वर्षके उपवासके[1] बाद लगातार सफर करते रहनेसे मेरा स्वास्थ्य धीरे-धीरे गिरता जा रहा है। बुनियादी तौरपर मेरे स्वास्थ्यमें कोई खराबी नहीं जान पड़ती। थके हुए शरीरको सिर्फ कुछ आरामकी जरूरत है। बाबू राजेन्द्र प्रसादने मेरे स्वास्थ्यकी यह हालत देखी। उन्होंने यह भी देखा कि हजारों लोगोंके जयजयकार और हर्षध्वनिको, फिर उसके पीछे कितना ही प्रेम-भाव क्यों न हो, सहन करनेकी शक्ति मुझमें नहीं है, इसलिए उन्होंने १५ अक्तूबरके बाद मुझे बिहार-यात्रासे मुक्त कर देना तय कर लिया है। और १५ अक्तूबर तकके लिए पहले जो कार्यक्रम निर्धारित था, उसे भी बदलकर इतना हलका कर दिया है कि अब हर रोज मुझे काफी आराम मिल जायेगा और सप्ताहमें दो दिन सम्पादनके लिए भी मिल जायेंगे। संयुक्त प्रान्तके मित्रोंने भी उतनी ही उदारता और कृपा दिखाई है; उस प्रान्तमें मेरे दो दिन रह जानेसे ही वे सन्तुष्ट हो जायेंगे। मैंने नवम्बरमें महाराष्ट्रके कुछ भागोंमें दौरेका वचन दिया था, वहाँके खादी प्रेमियोंने भी मुझे उससे मुक्त कर दिया है। कच्छकी १५ दिनकी आरामसे कट जानेवाली यात्राके बाद अब मेरी इस सालकी यात्रा समाप्त हो जायेगी। कच्छके मित्रोंका आग्रह है कि मैं अक्तूबरमें ही कच्छ जाऊँ। पर उन्होंने वादा किया है कि कच्छकी यात्रामें कहीं भी शोरगुल न होगा और मुझे सब प्रकारसे आराम दिया जायेगा। उन्होंने मुझे खादी और चरखेके प्रचारके लिए एक मोटी रकम देनेका लालच भी दिया है। जिन सज्जनोंने मुझपर इतनी कृपा की, मेरा इतना खयाल किया, उन सबको मैं धन्यवाद देता हूँ। मैं उम्मीद करता हूँ कि कच्छके मित्र अपने वचनका पालन करेंगे। जिन प्रान्तोंने कृपा करके मुझे यात्रासे मुक्त कर दिया है, उनसे मैं वादा करता हूँ कि अगले साल यदि वे लोग चाहेंगे तो मैं वहाँ अवश्य आऊँगा। कानपुरमें सलाह करके हम कार्यक्रम तय कर लेंगे।

११ अक्तूबर याद रखें

मैं कांग्रेसकी संस्थाओं और दूसरी सार्वजनिक संस्थाओंका ध्यान अ० भा० कां० कमेटीके निम्न प्रस्तावकी ओर आकर्षित करता हूँ।

> अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी दक्षिण आफ्रिकावासी भारतीयोंकी कठिनाइयोंसे गहरी सहानुभूति व्यक्त करती है, और उन्हें आश्वस्त करती है कि कांग्रेस दक्षिण आफ्रिकामें उनका अपना दर्जा और आत्म-सम्मान बनाये रखनेके लिए

१. यह १९२४ में साम्प्रदायिक दंगोंके प्रायश्चित स्वरूप किया गया था; देखिए खण्ड २५, पृष्ठ १८४।

> यथाशक्ति पूरी सहायता देगी। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी रायमें भारतको प्रवासियोंके स्वदेश लौटाये जानेकी कोई भी योजना — चाहे उसे स्वैच्छिक वापसीकी योजना कहा जाये या अनिवार्य वापसीकी योजना — स्वीकार नहीं की जानी चाहिए। इसके साथ कांग्रेसका यह भी मत है कि संघ संसद द्वारा जिस विधेयकको पास करनेके लिए प्रस्तावित किया गया है, वह स्पष्ट रूपसे १९१४के समझौतेको भंग[1] करता है। अ० भा० कां० कमेटीका सुझाव है कि दक्षिण आफ्रिकामें बसे हुए भारतीयोंके साथ किये जा रहे दुर्व्यवहारके प्रति विरोध व्यक्त करनेके लिए कांग्रेसकी संस्थाएँ ११ अक्तूबर, १९२५को सभी दलोंकी सार्वजनिक सभाओंका आयोजन करें।

पूरे भारतमें होनेवाली इन सभाओंकी सफलताके लिए यह जरूरी है कि इस काममें सभी दल और पक्ष हार्दिक सहयोग दें — उद्योग-वाणिज्य-संघ, यूरोपीय और आंग्ल-भारतीय संघ, ईसाई-धर्म-प्रचारक संस्थाएँ आदि भी। मैं ऐसा सहयोग प्राप्त होनेकी आशा भी करता हूँ। इस विषयमें कोई मतभेद नही है। और मेरा खयाल है कि भारत सरकार जनमतकी एक स्वरसे की गई प्रबल अभिव्यक्तिका स्वागत करेगी।

१४ लाख जमा करके भी गरीब

एक मित्र लिखते हैं:

> मैंने सुना है कि आप संन्यासी होनेका दावा करते हैं, फिर भी आपने अपने तथा अपने आश्रितोंके लिए बड़ी होशियारीसे बहुत अच्छी जीविकाकी व्यवस्था कर ली है, और इस उद्देश्यसे आपने अपनी, जायदादका, जो चौदह लाखकी है, एक ट्रस्ट बना लिया है, और आप बहुत ही आराम और सुखका जीवन व्यतीत कर रहे हैं। यह सुनकर हममें से कुछ लोग भौंचक्के रह गये हैं। क्या आप मेहरबानी करके जनताको इस विषयमें सही स्थिति बतायेंगे? मुझे खुद इस बातपर विश्वास नहीं हुआ है।

यदि यह सवाल मेरे एक ऐसे ईमानदार सज्जनने, जिन्हें मैं खुद जानता हूँ, न किया होता तो मैं इसकी ओर कोई ध्यान नही देता — खासकर इसलिए कि कुछ ही मास पूर्व मुझसे अपने व्यक्तिगत खर्चके सम्बन्धमे पूछे गये एक प्रश्नके उत्तरमें मैंने अपने निजी मामलोंकी भी चर्चा कर दी है।[2] मेरे पास अपना कहनेके लिए कभी भी १४ लाख रुपये नहीं थे। जब मैंने अपनी सारी सम्पत्तिका त्याग किया, उस समय मेरे पास जो-कुछ था, उसका मैंने एक ट्रस्ट जरूर बना दिया था। पर यह रकम सार्वजनिक कार्योंके लिए थी, उसमें से मैंने अपने उपयोगके लिए कुछ नही रखा। फिर भी मैंने अपने-आपको संन्यासी कभी नही कहा है। संन्यासी बनना बड़ा

१. देखिए खण्ड १२।
२. देखिए खण्ड २७, पृष्ठ १५७-५९।

कठिन है। मैं अपने-आपको एक तुच्छ सेवकका जीवन व्यतीत करनेवाला गृहस्थ-मात्र मानता हूँ। अपने साथी कार्यकर्त्ताओंके साथ मैं भी उन भाइयोंकी दानशीलताके सहारे गुज़र करता हूँ, जो साबरमतीके सत्याग्रहाश्रमका, जिसके संस्थापकोंमें एक मैं भी हूँ, खर्च चलाते हैं। अगर आराम और सुख मनकी चीज है तो मैं जो जीवन जी रहा हूँ वह सचमुच बहुत आराम और सुखका जीवन है। निजी उपयोगके लिए धन जमा करनेकी चिन्ता किये बिना ही मुझे अपनी आवश्यकताके अनुसार सब-कुछ मिल जाता है। हमेशा कार्यमें लगे रहनेके कारण मेरा जीवन आनन्दमय रहता है। मैं एक पक्षीके समान स्वतन्त्र हूँ, क्योंकि मुझे इस बातकी चिन्ता नहीं रहती कि कल मेरा क्या होगा। सचमुच मेरे वर्तमान जीवनको देखकर तो यह भी कहा जा सकता है कि मैं सुख-चैनका जीवन व्यतीत कर रहा हूँ। अभी पिछले ही दिनोंकी बात है, मैं जिस ट्रेनसे सफर कर रहा था, वह जब गया स्टेशनपर खड़ी हुई तो एक अंग्रेज महिलाने पास आकर मुझसे पूछा "मैं तो समझती थी कि आप भीड़-भाड़से भरे तीसरे दर्जेमें सफर कर रहे होंगे, पर मैं देखती हूँ कि आप तो कई साथियोंसे घिरे हुए आरामसे दूसरे दर्जेमें सफर कर रहे हैं। यह कैसी बात है? आपने तो कहा है कि मैं गरीबोंके समान रहना चाहता हूँ। क्या आप यह समझते हैं कि गरीब लोग दूसरे दर्जेमें आरामसे यात्रा करनेके लिए इतना पैसा खर्च कर सकते हैं? क्या यहाँ आपकी कथनी और करनीमें भेद नहीं है?" मैंने सीधे अपना अपराध कबूल कर लिया और उसे यह बताना भी जरूरी नहीं समझा कि मेरा शरीर इतना जीर्ण हो गया है कि अब लगातार तीसरे दर्जेकी यात्राकी थकावटको मैं बर्दाश्त नहीं कर सकता। मुझे लगता है कि इस त्रुटिके लिए शारीरिक कमजोरी कोई बहाना नहीं हो सकती। मैं यह बात जानता हूँ और मुझे उसका दुःख है कि लाखों स्त्री-पुरुष शरीरसे मुझसे भी अधिक कमजोर हैं, पर चूँकि उनके कोई ऐसे मित्र नहीं हैं जो उन्हें दूसरे दर्जेका किराया दे सकें इसलिए उन्हें तीसरे दर्जेमें ही यात्रा करनी पड़ती है। निःसन्देह मेरा यह आचरण मेरे इस कथनसे असंगत था कि मैं गरीबोंके साथ एकरूप होना चाहता हूँ। ऐसा ही दारुण है हमारा जीवन! पर फिर भी मैं अपने आनन्दको छोड़ना नहीं चाहता। मेरी कथनी और करनीमें उस महिलाने जो असंगति देखी उसके बावजूद अगर मैं हिम्मत नहीं हारता हूँ, तो यह सोचकर कि मैं निरन्तर सच्चे मनसे अपनी शारीरिक आवश्यकताओंको कम करनेका प्रयत्न कर रहा हूँ।

चरखेका असर

एक सज्जन, जो रियासतमें नौकर होनेके कारण कांग्रेसके सदस्य तो नहीं हैं परन्तु जिन्हें चरखेके सन्देशमें पूरा विश्वास है और इसलिए जो रोज चरखा चलाते हैं, लिखते हैं:

> पिछले सात महीनोंमें मैंने लगभग १५० घंटे सूत काता है। उस थोड़ेसे अनुभवके आधारपर मुझे लगता है कि जबतक हम पुरुष खुद चरखा कातकर बढ़िया बटदार, बुनने लायक सूत कातनेका उदाहरण अपनी स्त्रियोंके सामने पेश न करेंगे तबतक चरखेका जीर्णोद्धार असम्भव है। मुझे यह भी लगता

है कि हमारे जैसे अनियमित जीवन बिताने वालोंको चरखा अवश्य ही नियमित बनायेगा और हमारे दायित्वहीन स्वभावमें जिम्मेवारीका भाव उत्पन्न करेगा।

ये अकेले ही ऐसे व्यक्ति नही है जिन्हें यह लगा है कि चरखा कातनेवालेमें अनुशासनकी भावना भरता है। चरखा-प्रचारके काममें लगा हुआ ऐसा कौन व्यक्ति होगा जो इस बातकी पुष्टि नही करेगा कि यदि स्त्रियोंसे चरखा चलवाना हो तो पुरुषोंको न केवल उदाहरण पेश करना चाहिए बल्कि उन्हे कताईकी कलाकी बारीकी भी सिखानी चाहिए? चरखेमें अबतक जो-कुछ थोड़े परन्तु महत्त्वपूर्ण सुधार हुए है, उनका श्रेय उन लगनशील और शिक्षित पुरुषोंको ही है जो कि इस काममें निःस्वार्थ-भावसे नियमपूर्वक लगे हुए हैं।

गोरक्षा परिशिष्टांक

पाठकोंको 'यंग इंडिया' के इस अंकके साथ एक परिशिष्टांक प्राप्त होगा। इसे मैंने नहीं, बल्कि घाटकोपर मानव-दया संघने छापा है। इसे छापनेके लिए संघने मेरी अनुमति भी नही ली, बल्कि यह मानकर छाप दिया कि मैं इसकी अनुमति दे ही दूंगा। इस पुस्तिकाको प्रकाशित करनेमें संघने काफी पैसा खर्च किया है। यदि छपवानेसे पहले मेरी अनुमति माँगी जाती तो मैं इस पुस्तिकाका वितरण करनेसे इनकार कर देता, क्योंकि इसमें संघका लेखा-जोखा और विवरण भी है। ऐसी पुस्तिकाएँ कितनी ही बढ़िया क्यों न हों, मैं 'यंग इंडिया' के साथ उनका वितरण नहीं कर सकता। ऐसा करनेके लिए तो मुझे पत्रका रूप ही बदलना पड़ेगा। परन्तु गो-सेवकों-के लिए इसमें कुछ महत्त्वपूर्ण बातें हैं। ऐसा लगता है कि उत्साहके अतिरेकके कारण ही हिसाब-किताब और चन्देकी अपीलों आदिके बीचमें ऐसी सामग्री देनेकी भूल हो गई है। मैं जानता हूँ कि इस पुस्तिकाके प्रकाशक ऐसा मानकर चलें कि इसमें मनुष्येतर प्राणियों, मनुष्यसे निम्न कोटिके जीवोंकी रक्षाके लिए जो निवेदन किया गया है, उसे पाठकोंतक पहुँचानेके उद्देश्यसे मैं इसके वितरणकी अनुमति दे ही दूंगा। जिन भाईने यह लेख लिखा है, उनके ज्ञान और मानव-दयाकी भावनाका मैं बहुत आदर करता हूँ। मेरी तरह वे भी आदर्शवादी है। लेकिन यदि मुझे उनके लेखका संशोधन करनेका अवसर मिलता तो उनके तर्क ठीक लगते हुए भी मैं उसकी भाषा और संयत कर देता। मैं अपने आपको एक व्यावहारिक सुधारक मानता हूँ और अपना ध्यान उन्हीं चीजोंपर लगाता हूँ जिनको करपाना मनुष्यके लिये संभव है। इसलिए मैं इस पुस्तिकाको, इसमें ज़ो महत्त्वपूर्ण तथ्य और आँकड़े दिये गये हैं, उन्हीतक सीमित रखता — बम्बईके नगरनिगम कमिश्नरने गलतीसे सुन्दर कहे जानेवाले उस नगरमें लोगोंकी अपराधपूर्ण उपेक्षाके कारण हो रहे पशु-जीवनके ह्रासके सम्बन्धमें जो रिपोर्ट दी है और बम्बईके अस्तबलोंकी भयंकर दशाका वर्णन करते हुए डा० मैनकी रिपोर्टका जो दिल दहला देनेवाला अंश दिया गया है — और उसके अतिरिक्त सारी सामग्री छाँट देता। मैं पाठकोंसे अनुरोध करूँगा कि वे 'यंग इंडिया' के इस तथाकथित परिशिष्टमें इन बातोंको पढ़ें। पाठक घाटकोपर मानव-दया संघके उद्यमी मन्त्रीके अति-उत्साहको दरगुजर करके कमसे-कम दूसरा पृष्ठ और ६ से १० पृष्ठ तो पढ़ ही लें।

यदि पाठक पूरी पत्रिका पढ़ जायें तो उन्हे मालूम होगा कि संघ अज्ञान और उदासीनता-से उत्पन्न कठिनाइयोंको झेलता हुआ भी काफी अच्छा काम कर रहा है। जिन्हे इस विषयमें दिलचस्पी नहीं है, या जिनके पास समय नही है उनके लिए ये कुछ-एक चौंका देनेवाले तथ्य नीचे दे रहा हूँ। ३१ मार्च, १९२४को समाप्त होनेवाले पिछले बारह महीनोंमें कलकत्तामें ९०,३१४, बांद्रा (बम्बई) में ५८,१५४, अहमदाबादमें १४,१२८ और दिल्लीमें २९,५६५ पशुओंका वध किया गया। यह एक भयंकर आर्थिक क्षति है। मुसलमानों और ईसाइयों या दूसरे लोगोसे भावनापूर्ण अपील करके इन हत्याओंको नही रोका जा सकता। आज भारत-भरमें ऐसे लोग, जिनके हृदयमें प्राणिमात्रके लिए अपार दयाभाव है, किन्तु जो नही जानते कि इन प्राणियोंकी रक्षा कैसे की जाये, गोरक्षाके नामपर न जाने कितना धन बर्बाद कर रहे हैं। अगर उस धनका उपयोग किया जाये तो गायोको अवश्य बचाया जा सकता है। मेरा निश्चित मत है कि पशुओंको इस मनमानी हत्याके व्यापारसे बचानेका एकमात्र उपाय दुग्ध-शालाओं और चमड़ा कमानेके कारखानोंकी स्थापना है, लेकिन उनकी स्थापना आर्थिक लाभके लिए नही, बल्कि पशुओंके प्राणोकी रक्षाके लिए की जाये। ऐसी धार्मिक भावना, जिसमें आर्थिक जीवनकी कठोर वास्तविकताओंका कोई खयाल नहीं किया जाता या जिसका आधार पूर्वग्रह है, बिलकुल बेकार, बल्कि इससे भी बदतर है। किन्तु, जहाँ धार्मिक भावनाके साथ विवेक और व्यवहार-बुद्धि भी हो, वहाँ कोई उसके आड़े नही आ सकता। अगर पशुजीवनकी रक्षा करनी हो तो ऐसी स्थिति उत्पन्न करनी होगी। जिसमें पशुजीवनका नाश करना आर्थिक दृष्टिसे सचमुच बहुत हानि-कर साबित होने लगे। जबतक पशुओंकी हत्या करना आर्थिक दृष्टिसे लाभदायक बना रहेगा, जैसा कि आज भारतमें है, तबतक किसी भी तरहकी धार्मिक भावना उसकी रक्षा नही कर पायेगी।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, १-१०-१९२५

१५६. भाषण : भागलपुरकी सार्वजनिक सभामें[1]

१ अक्तूबर, १९२५

अध्यक्ष महोदय, मेरे हिन्दू और मुसलमान भाइयो,

आपने जो अभिनन्दन-पत्र मुझे दिये हैं, उनके लिए मैं आपका आभारी हूँ। मैं आपको बताना चाहता हूँ कि यहाँ आनेका मौका पाकर मैं बहुत खुश हूँ।

पिछली बार चार-पाँच साल पहले मैं यहाँ आया था; उस अवसरकी मुझे अच्छी तरह याद है। तबकी और अबकी स्थितिमें मुझे क्या अन्तर दिखाई दे रहा है? आपने एक मानपत्रमें हिन्दू-मुस्लिम समस्याका उल्लेख किया है। मैं अपने हिन्दू

१. भागलपुरकी नगरपालिका और जिला बोर्ड द्वारा दिये गये अभिनन्दन-पत्रोंका गांधीजीने हिन्दीमें उत्तर दिया था। भाषणका हिन्दी विवरण उपलब्ध नहीं है।

और मुसलमान भाइयोंसे इस समस्याके बारेमें कुछ कहना चाहूँगा। लेकिन मैं अपने आपको एक समझदार व्यक्ति मानता हूँ और अपनी सीमाओंसे भी मैं भलीभाँति परिचित हूँ। मैं पूरी तरह समझ गया हूँ कि हिन्दुओं और मुसलमानोंपर मेरा जैसा प्रभाव १९२१ में था, वैसा प्रभाव अब नहीं रहा। आज तो हिन्दू या मुसलमान, दोनोंमें से किसीसे भी मैं अपनी बात नहीं मनवा पाता हूँ। मैं यह बात अच्छी तरह जानता हूँ कि जब दोनों अपने इस पागलपनसे छुटकारा पा लेंगे तभी कोई अच्छा परिणाम निकल सकेगा। एक शक्ति ऐसी है, चाहे उसे ईश्वर कहिए या खुदा, जिसके सामने हमारे सिर बराबर झुक जाते हैं। हमें चाहिए कि उस शक्तिसे डरकर चले और उसीके डरसे परिचालित होकर अपना कर्त्तव्य निश्चित करें। ऐसी कोई बात नहीं है, जिसके आधारपर हम हिन्दुओं और मुसलमानोंका एक-दूसरेसे झगड़ना उचित माना जा सके। मुझे तो न कोई धर्म-सम्बन्धी शिकायत दिखाई देती है और न कोई और ऐसा कारण जिसको लेकर यह झगड़ा हो। इसका कारण सिर्फ हमारा पागलपन ही है। अगर हम इस अज्ञानसे छुटकारा पाना चाहते हैं और सचमुच मनुष्य बनना चाहते हैं तो हमें अहंकार छोड़ देना चाहिए और ईश्वरसे डरते हुए अपने हृदय निर्मल करने चाहिए और फिरसे मिलकर एक होनेका प्रयत्न करना चाहिए।

"मेरे मन कुछ और है, विधनाके कुछ और।" हम क्या जानें कि हमारे दिलोंको इतना बुरा बनाकर ईश्वर क्या करना चाहता है? अपनी गति तो स्वयं वही जानता है, दूसरा कोई नही। जब कुछ मुसलमान मित्रोंने, जो सचमुच दिलसे इस झगडेको खत्म करना चाहते हैं, इस विषयमें मुझसे सलाह माँगी, तो मैंने उन्हें यही सलाह दी कि आप वैसा ही करें जैसा प्रथम चार खलीफाओंके समयमें कुछ मुसलमानोंने किया था। जब दो भाई आपसमें झगड़ पड़ते हैं, उनमें गलतफहमी हो जाती है, वे भगवान्‌को भुला देते हैं और एक-दूसरेके खूनके प्यासे बन जाते हैं, तब हम क्या करते हैं? हिन्दू-मुस्लिम झगड़ेको भी हमें इसी दृष्टिसे देखना चाहिए और वैसा ही करना चाहिए जैसा उस जमानेके उन नेक मुसलमानोंने किया था। हिन्दुओं और मुसलमानों, दोनोंको मेरी यही सलाह है कि मुसलमानोंसे जो हिन्दू घृणा नही करते हैं और जिनके मनमें 'कुरान'के प्रति भी श्रद्धा है, वे तथा वे मुसलमान जो हिन्दुओंसे कोई दुश्मनी नहीं मानते और जो 'गीता'को भी सम्मानकी दृष्टिसे देखते हैं, अपने-अपने हृदयका अवगाहन करें। अब वे दिन नही रहे जब लोग मिस्रकी गुफाओं या हिमालयकी कन्दराओंमें जाकर शान्तिकी खोज करते थे। अब तो वहाँ भी किसीको शान्ति नहीं मिल सकती। वहाँ भी विद्युत प्रकाश उसका पीछा नहीं छोड़ेगा और अगर उससे छुटकारा मिल भी जाये तो उसकी शान्तिमें खलल डालनेके लिए हवाई जहाज तो वहाँ जा ही पहुँचेंगे। आज तो हमारी पहुँचके भीतर एक यही शान्तिदायिनी गुफा है। इसलिए हमें चाहिए कि हम अपने हृदयोंकी अन्तर्गुहामें बैठकर प्रभुसे प्रार्थना करें कि वह कमसे-कम हमारे हृदयको निर्मल बनाये रखे। जब आपसमें झगड़नेवाले इन भाइयोंका उन्माद उतर जायेगा तब इन हृदयकी गुफाओंमें निवास करनेवाले लोगोंकी सेवा माँगी जायेगी। ईश्वर समस्त राष्ट्रका और जो लोग इन झगड़ोंसे

अलग रहे हैं, उन सभीका कल्याण करे। न केवल ये दो जातियाँ, वरन् भारतमें रहनेवाले सभी वर्ग और सभी प्रान्तोंके लोग भाइयोंकी तरह मिल-जुलकर रहें और दूसरोंकी स्त्रियोंको अपनी माँ-बहन समझें। मैं चाहता हूँ कि हरएक मुसलमान यह समझे कि सिर्फ वही लोग तलवारके बूतेपर इस्लामको बचानेकी सोचते हैं, जिनकी मति भ्रष्ट हो गई है। जो हिन्दू तलवारके जोरपर हिन्दू-धर्मकी रक्षा करना चाहते हैं उनसे भी मेरा कहना है कि अगर आप तलवार खींचकर मैदानमें आना चाहते हैं तो शौकसे आयें, लेकिन भगवानके लिए, किसी तीसरेको बीचमें फैसला करनेके लिए न बुलायें। आप लोग एक-दूसरेसे बचना चाहते हैं और इसीलिए आप मानते हैं कि एक तीसरा पक्ष होना जरूरी है। इसलिए मुझे अपने हृदयके देशमें लौट जाना ही ठीक जान पड़ा है। हिन्दू-मुस्लिम झगड़ोंके लिए मैं और उपवास नहीं करने-वाला हूँ। किसी मनुष्यके लिए जो-कुछ भी शक्य था, वह सब मैंने करके देख लिया है। अब तो मैं ईश्वरसे प्रार्थना करता हूँ कि वह मुझे और भी प्रकाश दिखाये। मेरा खयाल है कि समय आनेपर हिन्दू और मुसलमान दोनोंको सद्‌बुद्धि आ जायेगी, लेकिन अभी तो जो लड़ना चाहते हैं, उन्हें लड़ने दीजिए। अगर वे अहिंसाको एक धार्मिक कर्त्तव्य मानकर उसका पालन करें तो कितना अच्छा हो। हिंसा क्या है, इस बातको पूरी तरह जान लेनेके बाद ही मैं अहिंसाको पहचान पाया हूँ। मैं यह कई बार कह चुका हूँ और अब फिर कहता हूँ कि अहिंसाके नामपर हाथपर-हाथ धरे बैठे रहनेसे हिंसा करना कहीं अच्छा है। अपना अहिंसाका सन्देश मैं एक बुजदिलको नहीं दे सकता। उसको मैं शान्तिका पाठ नहीं पढा सकता। मैं केवल उन्हींको शान्तिका, अहिंसाका पाठ सिखा सकता हूँ, जो मौतसे नहीं डरते, जो अपने विपक्षियोंसे नहीं डरते। मौलाना शौकत अलीने एक बार मुझसे कहा कि उन्होंने और उनके भाईने जब अहिंसाको नीतिके रूपमें स्वीकार किया था, तब उनके दिमाग बिलकुल दुरुस्त थे। उन्होंने उसे स्वीकार इसलिए किया कि वे जानते थे कि जिस अहिंसाके पालनका सुझाव मैंने दिया है, उसके पालनमें तो उनकी सारी बहादुरीकी कसौटी हो जायेगी। वे जानते थे कि अहिंसाधर्ममें भी यह जरूरी है कि आदमी मर मिटनेकी कला जाने और उसपर अमल करे और अवसर आनेपर वे सहर्ष अपने प्राणोंका बलिदान करनेके लिए तत्पर थे। लेकिन उन्होंने महसूस किया कि आज अपनी तलवारका प्रयोग करते हुए मृत्युको प्राप्त होना आत्मघात होगा; और चूँकि वे राष्ट्र और इस्लामकी सेवामें अपने प्राणोंकी आहुति चढ़ाना चाहते हैं, इसलिए उन्हें बिना रक्तपात किये ही मरना होगा।

जब कभी मुझे कहीं कायरता और भय दिखाई देता है, तो मैं लोगोंसे तलवार उठानेको कहता हूँ। १९२१में जब मैं बेतिया गया था, तब पासके एक गाँवके लोगोंने मुझे बताया कि पुलिसवालोंने उनकी स्त्रियोंको तंग किया तथा उनके घर लूट लिये; और जिस समय पुलिसवाले यह सब कर रहे थे, वे लोग भाग गये थे। जब मैंने उनसे इसका कारण पूछा तो वे एकदम बोल उठे कि मेरी अहिंसाकी शिक्षाके कारण ही। उस समय मुझे लगा कि अगर धरती फट जाये तो मैं वहीं उसमें समा जाऊँ।

क्या कभी मैंने यह कहा था कि किसी भी स्थितिमें बलप्रयोग न किया जाये? अगर किसीको बिना रक्तपात किये मरना नहीं आता तो उसे चाहिए कि अपने सम्मान और अपनी सम्पत्तिकी रक्षाके लिए प्रतिपक्षीपर प्रहार करे और मर मिटे। मैंने उनसे कहा कि इससे पहले कि कोई उनकी स्त्रियोंको हाथ भी लगाये, उन्हें मर मिटना चाहिए और अगर प्रतिकारमें हाथ उठाये बिना उन्हें मरना कबूल न हो तो उन्हें चाहिए कि वे तलवार उठायें और जीते जी किसीको अपनी स्त्रियोंको हाथ न लगाने दें। उन्हें अपनी स्त्रियोंको भी सिखाना चाहिए कि किस प्रकार अपनी इज्जत-आबरू-की रक्षा करें। इससे पहले कि कोई उनके शरीर छुये, वे अपने प्राण दे दें। जो मरना जानता है, वह सदा-सर्वदाके लिए मुक्त हो जाता है। शस्त्र उसके लिए निरर्थक हो जाते हैं। तलवार चलानेवाला व्यक्ति तो अपनी तलवारके बेकार होते ही अपनी सारी शक्ति खो बैठता है, लेकिन जो व्यक्ति अपराधीपर प्रहार करके उसे चोट पहुँचाये बिना मरनेकी कला जानता है, वह अपना कर्त्तव्य निबाहता हुआ वीर गति पाता है। उसके शस्त्रका कभी नाश नहीं होता। पर जो लोग अपनी स्त्रियोंको उनके भाग्यके भरोसे छोड़कर भाग खड़े होते हैं, उनसे मैं क्या कहूँ? ऐसे लोग पशुओंसे भी बदतर हैं। इस तरह भाग खड़े होनेसे तो यह बहुत अच्छा होगा कि वे तलवार उठाकर भिड़ जायें। लेकिन बुजदिल तो तलवार भी नहीं उठा सकता। अपनी सुरक्षाके लिए वह सरकारके पास जाता है, गुण्डे रखता है और क्या-कुछ नहीं करता। ऐसे लोगोंसे मैं क्या कहूँ? मैं तो केवल एक ही बात जानता हूँ और सारे भारतको मैं वही सिखानेका प्रयत्न कर रहा हूँ; और चाहता हूँ कि सारी दुनिया भी इसे सीखे। अगर आप इसे नहीं सीखेंगे तो मैं नहीं कह सकता कि आगे क्या होनेवाला है। आज भारतके करोड़ों लोग तलवारका प्रयोग नहीं कर सकते; और मुझे नहीं लगता कि निकट भविष्यमें भी वे ऐसा कर सकेंगे। मुझे नहीं मालूम कि एक सौ वर्षके बाद भी ऐसा दिन आ रहा है या नहीं। लेकिन यह बात मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि अगर भारत चाहे तो वह आज भी स्वतन्त्र हो सकता है। जो-कुछ भी मैंने कहा है, उसका निचोड़ यही है कि अब हिन्दुओं और मुसलमानों, दोनोंपर से मेरा प्रभाव उठ गया है, इसलिए मेरा बताया उपाय निरर्थक माना जा सकता है और जो लोग लड़नेपर तुले हुए हैं, वे जी-भरकर लड़ सकते हैं, लेकिन जो डरकर भाग खड़े होते हैं, उनके लिए मेरे पास कोई इलाज नहीं है।

अब आता है खादीका सवाल। यह ऐसा कार्य है, जिसमें हर व्यक्ति भाग ले सकता है। लेकिन यदि सारा देश खादी छोड़ दे तब भी कमसे-कम मैं तो अपना चरखा छोड़नेवाला नहीं हूँ। आपका कहना है कि आप खादीका काम अधिक नहीं कर पाये हैं। इसके लिए जो कारण आपने पेश किये हैं उनमें एक कानूनी कठिनाई है। यह सच है। इसमें सन्देह नहीं कि कानूनी कठिनाइयाँ हैं, लेकिन मैं पूरी सभा, नगरपालिका और जिला बोर्डके सदस्योंसे पूछता हूँ कि क्या कोई ऐसा भी कानून है जो आपको खुद खादी पहननेसे रोकता हो। लेकिन अगर आपके खादी न पहननेके कारणोंमें एक यह हो कि महीन खादी नहीं मिलती तो आप खुद ही महीन सूत कातें

और उससे महीन खादी बुनवा कर उसका उपयोग करे। मगर ईश्वरके नामपर, अपने गरीब देशभाइयोंकी खातिर, आप सूत कातें और मोटी खादी भी पहनें। इससे आपको कोई नुकसान नही पहुँचेगा।

आप कहते हैं कि खादी महँगी बिकती है और आप कम खर्चमें काम चलाना चाहते हैं। तब तो मैं आपसे कहूँगा कि यदि आपको भारतसे प्रेम है तो आप आज जो ६ गज लम्बी और ४४ से ५० इंच चौड़ी धोती पहनते हैं, उससे छोटी धोती पहनें। अच्छा हो कि आप सिर्फ ३ गजकी धोती पहनें। यदि कोई कभी इसका कारण पूछे तो आप उससे वही कहिए जो मैं ऐसे लोगोंसे कहा करता हूँ। आप उन्हें बतायें कि आप छोटी धोती हिन्दुस्तानकी खातिर पहनते हैं। हम गरीब लोग हैं, हम खादीकी लम्बी धोतियाँ नही खरीद सकते और इसलिए हम आधी धोतियाँ पहनते हैं। कमीज आधी नही की जा सकती है, लेकिन वह भी छोटी तो आसानीसे की जा सकती है। जो धन आप विदेशी वस्त्रोंको खरीदनेमें लगाते हैं, उसका सदुपयोग कुछ वस्त्रहीन बहनोंका तन ढँकनेके लिए किया जा सकता है। आज बिहारमें एक लाख लागतकी खादी अन-बिकी पड़ी हुई है। अगर वह सब बिक जाये तो वह सब धन बिहारकी गरीब बहनोंको मिल सकता है। जब हमारी बहनें सूत कातती हैं तो उनके सूतसे खादी बुनी जाती है और उस खादीको खरीदकर हम उन्हें कुछ राहत पहुँचाते हैं। यदि आप भारतकी कुछ भी सेवा करना चाहते हैं, यदि आप सब अपने भाई-बहनोंके कष्ट मिटाना चाहते हैं तो आपको चाहिए कि आप खादी अवश्य पहनें।

मौलाना शौकत अलीने मुझसे कहा है कि आप जहाँ-कहीं भी मुसलमानोंसे मिलें उन्हें बता दें कि मैं चरखा संघमें शामिल हो गया हूँ। चरखेमें उनकी असीम आस्था है, क्योंकि वे जानते हैं कि जबतक हिन्दू और मुसलमान दोनों सिर्फ खादी ही नही पहनेंगे तबतक भारत आजाद नही हो सकता है। इसलिए उन्होंने मुझसे वादा किया है कि इस सालके भीतर वे अखिल भारतीय चरखा संघके प्रथम श्रेणीके तीन हजार मुसलमान सदस्य बनायेंगे। अ० भा० चरखा संघके प्रथम श्रेणीके सदस्य वे ही हो सकते हैं जो प्रति मास अपने हाथका कता एक हजार गज सूत अर्थात् सालभरमें कुल मिलाकर बारह हजार गज सूत संघको दें और जो हमेशा खादी ही पहनें। मौलाना साहबको उम्मीद है कि साल खत्म होनेसे पहले ही वे तीन हजार मुसलमान सदस्य बना लेंगे। यह शिकायत की जाती है कि खादीके काममें जहाँ हिन्दू लोग बहुत काफी तादादमें लगे हुए हैं, वहाँ ऐसे मुसलमानोंकी संख्या बहुत कम है। इस कारण मौलाना चाहते हैं कि मैं इस बातकी भी घोषणा कर दूँ कि उन सब मुसलमानोके लिए, जिनके दिल साफ हैं और जो उद्यम शील हैं, इस संघका द्वार खुला हुआ है; लेकिन, जो लोग इसमें आना चाहते हैं, उन्हें संघके नियम मानने पड़ेंगे। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी, यहूदी जिस-किसीको चरखेमें विश्वास हो, वह अ० भा० चरखा संघका सदस्य बन सकता है।

हिन्दुओंसे मैं अस्पृश्यताके बारेमें कुछ कहना चाहता हूँ। अगर आप कुछ सच्ची सेवा करना चाहते हैं और अपने हिन्दू धर्मको बचाना चाहते हैं तो आपको अस्पृ-

श्यता समाप्त कर देनी चाहिए। अगर आप इस बुराईसे मुक्त नहीं हो जाते तो आप एक दिन हिन्दू धर्मसे हाथ ही धो बैठेंगे। वह धर्म सच्चा धर्म नहीं हो सकता, जो एक भी व्यक्तिसे घृणा करना सिखाता हो। कोई व्यक्ति बहुत बड़ा अपराधी भी क्यों न हो, आपका काम उसके प्रति घृणा करना नहीं है। बल्कि उसके प्रति आपका न्यूनतम कर्त्तव्य यह है कि आप उसे सुधारें। अस्पृश्य लोग तो राष्ट्रके सेवक हैं, फिर उनसे घृणा क्यों? तो अब हम ऐसा मानें कि उनका स्पर्श करना पाप नहीं है। उनसे दूर नहीं भागना चाहिए। जो लोग सनातनी हिन्दू होनेका दावा करते हैं उनसे मेरा कहना है कि अस्पृश्यताको जिस रूपमें समझा जाता है, उस रूपमें यह न तो वेदोंमें ही मिलती है और न शास्त्रोंमें। रामचन्द्रजीको गुहराजको छूनेमें कोई झिझक नहीं हुई थी। उन्होंने गुहराजको गले लगाया था, उसके हाथोंका जल पिया था। भरतजीने तो गुहराजको साष्टांग प्रणाम किया था।

आपने मद्यपानका भी जिक्र किया है। यह सच है कि १९२१ में हमने इसे बहुत कम कर दिया था, दरअसल लगभग छोड़ दिया था, लेकिन अब किनारे लगी नैया फिर धारामें बह गई है। मुझे मालूम है कि उस समयके धरना देनेवालोंने कभी-कभी हिंसासे भी काम लिया था। यदि हिंसाका प्रयोग न किया गया होता तो शायद यह धरना भी बन्द न किया जाता। लेकिन आज भी इस दिशामें आप थोड़ा-बहुत जो भी कर सकते हैं वह करें और दूसरोंको यह लत छोड़नेके लिए समझायें तो अच्छा हो। इसी तरह आपको बीड़ी-सिगरेट पीना तथा गाँजा, भाँग आदि मादक द्रव्योंका सेवन करना भी छोड़ देना है।

[अंग्रेजीसे]

सर्चलाइट, १६-१०-१९२५

१५७. भाषण: मारवाड़ी अग्रवाल सभा, भागलपुरमें

१ अक्तूबर १९२५

अभी कुछ दिन पहले भागलपुरमें मारवाड़ी अग्रवाल सभाका पहला अधिवेशन हुआ था। उसमें मारवाड़ी जातिकी ओरसे गांधीजीको एक मानपत्र भेंट किया गया। मानपत्रका उत्तर देते हुए गांधीजीने कहा कि जब मुझे ऐसा लगा कि बिहारका दौरा पूरा करना मेरी सामर्थ्यसे बाहर है तब यह समस्या उठ खड़ी हुई कि मुझे कहाँ-कहाँ जाना चाहिए और कहाँ-कहाँ नहीं। इसपर विचार हो ही रहा था तभी मैंने राजेन्द्रबाबूसे कह दिया कि भागलपुरको नये कार्यक्रममें भी जरूर शामिल कर लें। कारण यह था कि राँचीमें मुझे आपका वह तार मिल चुका था, जिसमें मुझे यहाँ आनेके लिए आमन्त्रित किया गया था। और फिर यह बात भी थी कि भागलपुर आनेसे मेरा काम भी सधता था। मुझे लगा कि आपके पास पहुँचकर मुझे आपसे

कुछ-न-कुछ तो मिलेगा ही। वकालत करना मैंने कबका छोड़ दिया है, किन्तु अब भी मेरा कुछ महत्त्व तो है ही। इसीलिए मैं जहाँ-कहीं जाता हूँ, लोगोंसे कुछ काम निकाल लेता हूँ। भागलपुरके लोगोंसे मुझे दोनों चीजोंकी आशा है — मैं आपको काममें भी लगाऊँगा और अगर आप देनेको तैयार हों तो जितना सम्भव होगा उतना धन भी आपसे लूँगा। उन्होंने आगे कहा :

आपने जो मानपत्र दिया है, उसके बारेमें मैं क्या कहूँ? यदि कहूँ कि उसके लिए आपका आभारी हूँ तो महज शिष्टाचार होगा। जो मुझे मानपत्र भेंट करते हैं, उनसे मैं यही आशा करता हूँ कि वे मानपत्रमें व्यक्त की गई भावनाओं और आदर्शोंके अनुरूप कार्य और आचरण करेंगे। मुझे उससे सचमुच प्रसन्नता होगी। जीवनमें एक ऐसी अवस्था आती है जब आदमी अपनी प्रशंसा सुन-सुनकर तंग आ जाता है और मैं इसका एक जीता-जागता उदाहरण हूँ। मै यह तो समझ सकता हूँ कि अपनी प्रशंसा सुनना एक हदतक अच्छा लग सकता है, पर हमेशा अच्छा लगे ऐसा मै नही मानता। पिछले चालीस वर्षोंसे मेरा यही अनुभव है कि मुझे अपनी प्रशसा सुनकर कभी प्रसन्नता नही हुई है। लेकिन जिन्हे अपनी बड़ाई अच्छी लगती हो, उनके लिए भी एक समय ऐसा आ जाता है, जब वे उससे ऊब जाते हैं। सिर्फ अपनी प्रशंसा सुननेके लिए मैं अपना समय गँवानेको तैयार नही हूँ, इसलिए आपने मानपत्रमें जो-कुछ कहा है, तदनुसार आपको कुछ करके दिखाना पड़ेगा।

अध्यक्ष महोदयने मुझसे सामाजिक और धार्मिक मसलोंपर कुछ कहनेका अनुरोध किया है। इसके माने यह हो सकते हैं कि मैं इस समय किसी राजनीतिक विषयकी चर्चा न करूँ। कुछ लोगोंका कहना है कि मैं राजनीतिसे अलग हो गया हूँ; और मेरा दिमाग फिर गया है। फिर भी किसीको यह कहनेका साहस नही हुआ कि मेरे मनमें किसी चीजका डर समा गया है। यहाँ राजनीति या सविनय अवज्ञापर कुछ कहना मेरे लिए जरूरी नही है। सविनय अवज्ञाका सामाजिक पहलू, सचमुच बहुत महत्त्वपूर्ण है। कई स्थानोंपर तो उसने बहुत गम्भीर रूप धारण कर लिया है। मैं गुजरातकी एक घटनाका उल्लेख करता हूँ। वहाँ एक स्थानपर एक साधु पुरुष रहते हैं, जिन्होंने अपना सर्वस्व त्याग दिया है और जो धार्मिक दृष्टिसे हिन्दू जातिकी सेवा करना चाहते हैं। वे अपने आपको कट्टर हिन्दू मानते हैं और पाश्चात्य सभ्यता या सुधारोंमें उनका विश्वास नही है। बहुत ध्यानपूर्वक देखनेपर भी आपको उनमें पाश्चात्य सभ्यताकी कोई झलक न दिखाई देगी। पर वे दलित जातियोंकी सेवा करते हैं। वे अस्पृश्यताको एक ऐसा महापाप मानते हैं, जिससे हिन्दू जातिको बहुत हानि हो सकती है। इसीलिए वे इसका प्रायश्चित्त करना चाहते हैं और उनका विचार है कि अपने अस्पृश्य भाइयोंकी सेवाके द्वारा कुछ हदतक वे ऐसा कर सकते हैं। ऐसे विचार होनेपर भी वे उनके साथ रोटी-बेटीका व्यवहार नही चाहते। यदि किसी अछूतको साँप काट खाये तो वे उसके घावसे जहर चूस लेंगे। उन्हें अपनी जानकी भी चिन्ता नहीं होगी। वे नही मानते कि किसी अस्पृश्यका स्पर्श करनेसे उनके धर्मको तनिक भी आँच आती है। तुलसीदासने जिस प्रेम और दया-धर्मकी शिक्षा दी है, जिसके पालन-

से मनुष्य सीधे स्वर्गको जाता है, वे तो उसी शिक्षाका पालन कर रहे हैं। इस तरह ये महात्मा अस्पृश्यताको महापाप मानते हैं। वे अस्पृश्योंको, वे लोग जहाँ रहते हैं, वहाँसे अच्छे स्थानमें ले जाते हैं, उन्हें भोजन देकर उनकी भूख मिटाते हैं। वे उन्हें प्रेमपूर्वक भोजन खिलाते हैं, हमारी तरह जूठा नहीं परोस देते। मैंने स्वयं अपनी माँ और पत्नीको उन्हें इस तरह जूठन देते देखा है। हमारे घरोंमें कुत्तों, गाय-बैलों आदिके लिए भोजनकी अलहदा व्यवस्था रहती है। पर इन अस्पृश्योंको तो जूठा ही दिया जाता है। मैं इसे दया-धर्म नही मानता। हमे अस्पृश्योंको भी प्रेमसे भोजन कराना चाहिए। उससे हम अपने धर्मसे डिगते नही हैं। कुछ लोग इस भावनासे काम करते हैं, लेकिन समाज उनका बहिष्कार करता है। ऐसे लोगोंसे मेरा यही अनुरोध है कि वे अपनी जाति या समाजके लिए मनमें किसी प्रकारकी दुर्भावना या घृणा न आने दें। यदि समाज उनका बहिष्कार करता है तो करे। उन्हें समाजसे कह देना चाहिए कि इन परिस्थितियोंमें बहिष्कृत होना ही वे अपना धर्म मानते हैं; वे आज जो-कुछ कर रहे हैं वही सही है और भविष्यमें भी वे ऐसा ही करेंगे। जब समाजके प्रतिष्ठित लोग गलत रास्ते पर हों और अज्ञान या द्वेषवश किसी व्यक्तिका बहिष्कार करना चाहें तो जो व्यक्ति उनसे सहमत न हो उसका यही कर्त्तव्य है कि वह अपना बहिष्कार होने दे। हम लोग स्वार्थमें डूबे हुए हैं; मुझे तो इस स्वार्थ-लिप्साका कोई औचित्य नही दिखाई देता। मुझे अपने सामने पतित और भ्रष्टचरित्र व्यक्ति दिखाई देते हैं, जिनके पाप हमसे छिपे हुए नही हैं। पर समाज उनका तो बहिष्कार नही करता। शराबी और मांसखोर समाजके अंग बने हुए हैं। पर जैसे ही हम अपना धर्म मानकर किसी अस्पृश्यको छूते हैं वैसे ही हमारा बहिष्कार कर दिया जाता है। यह तो सिर्फ मनमानी है और इससे समाजका सर्वनाश हो जायेगा। बहिष्कारका तो अपना अलहदा शास्त्र और तरीका है। उसकी ब्यौरेवार चर्चा करनेमें मैं आपका समय नही लेना चाहता।

पर समाजमे जिनका कुछ प्रभाव है, कुछ प्रतिष्ठा है, उनसे मेरा यही अनुरोध है कि वे सोचे-समझे बिना फौरन किसीका बहिष्कार न करें। जो जातिमें किसी भी प्रकार सुधार करना चाहते हैं, उनके लिए सहानुभूति दिखाइए। जिस हिन्दू-धर्मकी हम रक्षा करना चाहते हैं, उसीको नष्ट न करें। भविष्यमें विभिन्न जातियोंका आपसमें मिश्रण होगा। मेरा आपसे यही अनुरोध है कि आप बहिष्कारके अस्त्रका त्याग करें, क्योंकि जबतक हममें सभी प्रकारका भ्रष्ट तथा पापपूर्ण आचरण करनेवाले लोग विद्यमान हैं और जबतक हममें आत्म-संयम तथा आत्म-निग्रहकी भावनाका विकास नहीं होता, तबतक बहिष्कार करनेसे कुछ लाभ नहीं होगा।

इसके बाद महात्माजीने कहा कि वर्णाश्रम-धर्म एक बात है और कई छोटी-छोटी जातियोंका अस्तित्व बिलकुल दूसरी बात है।

भिन्न-भिन्न प्रान्तोंमें रहनेवाले एक ही जातिके लोग एक-दूसरेसे दूर, विभिन्न पेशोंमें लगे होनेके कारण एक-दूसरेके लिए अजनबी बन गये हैं। यही संकीर्णता है। आपका सम्मेलन मुझे तभीतक अच्छा लगेगा जबतक वह समाजका कल्याण करता है। ब्राह्मणोंकी एक ही जाति हो सकती है। एक गुजराती ब्राह्मण अपनी कन्याका विवाह बंगाली

या मारवाड़ी ब्राह्मणसे क्यों नहीं कर सकता? ऐसा सम्बन्ध करनेवालेका समाज बहिष्कार क्यों करे? शास्त्रोंमें कहाँ लिखा है कि गुजरातका वैश्य किसी दूसरे प्रान्तके वैश्यसे कोई रिश्ता नहीं कर सकता? यदि मारवाड़ियोंकी विभिन्न जातियोंके बीच सम्बन्ध अधर्म माने जाने लगें तो जल्दी ही आपको इस जातिका नामोनिशान भी न मिलेगा। आज ढोंग और झूठका बोलवाला है। यदि आप वर्णाश्रम धर्मका पालन करना चाहते हैं तो आपको इनका त्याग करना पड़ेगा। यदि बड़े-बड़े लोग अपने बड़प्पनके नशेमें हैं तो कार्यकर्त्ताओंका कर्त्तव्य है कि वे अडिग भावसे अपना काम करते जायें। कोई इनका बहिष्कार करे, धोबी, नाई या नौकर उनका काम न करे और उन्हें कष्ट उठाने पड़ें तो भी उसकी परवाह वे न करें। गुजरातमें अब ऐसी स्थिति आ गई है। जिन सज्जन-का मैंने ऊपर उल्लेख किया है, उन्होंने मुझे लिखा है कि उन्हें अपने लिये धोबी, नाई या कहार कोई नहीं मिलता है। मैंने उनको यही उत्तर दिया है कि जिस पथपर चलना वे अपना धर्म समझते हैं, उससे जरा भी विचलित होनेके बजाय भूख-प्याससे तड़पकर मर जाना कहीं अच्छा है। यदि बड़े-बड़े, प्रतिष्ठित लोग धर्माचरणके मार्गसे विचलित होते हैं और आपका बहिष्कार करते हैं तो आपका कर्त्तव्य यही है कि आप ऐसी बुद्धिमानीसे काम लें और सभी अपमान ऐसे संयम और साहससे सहन करें कि अन्त-में आपके विरोधी हार मान लें। प्रह्लादके पिताने उसका बहिष्कार तो किया पर वह उसे चुप नहीं करा सका, न उसका काम ही बन्द करा सका। प्रह्लादने अपने सभी सहपाठियोंको राम-नाम लेना सिखाया और इस प्रकार अपने पिताकी आज्ञाका सविनय उल्लंघन किया। किसी भी जातिका सदस्य अपनी जातिके प्रति ऐसा विरोध कर सकता है।

इसके बाद महात्माजीने बाल-विधवाओंके पुनर्विवाहकी समस्याकी चर्चा की। उन्होंने कहा कि पहले मैं सोचता था कि समाजमें दस या बीस हजार बाल विधवाओंका होना बर्दाश्त किया जा सकता है। पर जो हालत अब है, उसे देखते हुए इस दिशामें कुछ भी सुधार करना जरूरी है। उन्होंने कहा :

पहले मैं सोचता था कि यदि विधुर फिरसे विवाह न करें तो भी समस्या हल हो जायेगी, पर कोई भी इसे स्वीकार नहीं करता। सच तो यह है कि कई लोग श्मशान-में ही अपने पुनर्विवाहकी बातचीत शुरू कर देते हैं। कुछ लड़कियोंके पिता उनकी सगाई तार द्वारा सूचना भेजकर ही कर देते हैं और यदि १२ सालकी लड़कीके लिए ४५ सालका वर मिल रहा हो तो भी कोई परवाह नहीं करते।

इसलिए आजकी परिस्थितियोंको देखते हुए मैं इसी नतीजेपर पहुँचा हूँ कि बाल-विधवाओंका पुनर्विवाह करना ही होगा। यदि हम ऐसा नहीं करते तो बाल-विधवाओंमें आत्महत्याकी घटनाएँ बढ़ती जायेंगी। बंगाल और दिल्लीमें बहुत-सी बाल-विधवाओंने आत्महत्या की है। इन बाल-विधवाओंसे वैधव्यका जीवन व्यतीत करानेकी जबर्दस्तीका हमें क्या अधिकार है? ऐसी विधवाओंका फिरसे विवाह करना हमारा कर्त्तव्य और धर्म है। एक बहनने मुझसे पूछा कि क्या लड़कियोंकी विवाह-वय कमसे-कम चौदह वर्ष निश्चित करानेमें मैं उनकी सहायता कर सकता हूँ। मुझे तो उनसे

यही कहना है कि चौदह वर्ष तो क्या, मैं सोलह वर्षकी लड़कीको भी विवाहके योग्य नही मानता।[१]

मेरे संरक्षणमें भी कुछ लड़कियाँ हैं, और कुछ लड़कियोके पिता मेरी बात सुनते भी हैं। उन सबको मैंने इस बातपर राजी कर लिया है कि वे कम उम्रमें अपनी लड़कियोंके विवाहके किसी प्रस्तावपर विचार नही करेंगे; बल्कि उसकी कोई चर्चा भी नही करेंगे। यह तो हमारा ही कर्त्तव्य है कि जो लड़कियाँ हमारे अभिभावकत्वमें है, उन्हें अपने विचार पवित्र रखनेकी शिक्षा दे और विवाह आदिकी चर्चा करके उनके मनमें विकार न उत्पन्न करें। मैं चाहता हूँ कि इन कन्याओंकी माताएँ सीताके समान बने। यह कैसे हो सकता है? सीता अग्नि-परीक्षामे पूरी उतरी थी। वे आगमें कूद गईं, पर उनका बाल भी बाँका न हुआ। काश, ऐसी महान् नारियाँ फिरसे भारतमें जन्म लें। पर यदि हम बचपनसे ही इन कन्याओंके मनमें बुरी बातें भरते रहे तो उनसे सीताके समान बननेकी आशा कैसे कर सकते है? जो इस सुधारके महत्त्वको समझ सके होंगे वे इसके लिए सभी प्रकारका बलिदान करनेको तैयार रहेंगे। पश्चिमी देशोंमें भी, जिनकी त्यागके लिए कोई ख्याति नही है और जहाँ आनन्दोपभोग ही सब-कुछ है, आज ऐसी महिलाएँ विद्यमान है, जिनके हृदय शुद्ध और निष्कलुष हैं। एक ऐसी ही लड़की[२] दक्षिण आफ्रिकामें मेरे साथ थी। वह हजारों लोगोंकी सेवा करती थी और जब मै और मेरे सहयोगी जेल भेज दिये गये थे, तब उसने ट्रान्सवालके सत्याग्रहका तमाम भार अपने सिर ले लिया था। उस समय वह हजारों लोगोंके सम्पर्कमें आई, पर कोई भी उसपर कुदृष्टि न उठा सका।

मेरे साथ वहाँ एक भारतीय महिला भी थीं, पर वे इस कामको नही कर सकीं। वे जेल तो गईं पर अगर मैं उनके सारे गहने न ले लेता तो शायद वे इतना भी न कर पातीं। सभीको जेल जानेका अधिकार तो होना चाहिए, लेकिन यह अधिकार सिर्फ उसीको शोभा दे सकता है, जिसने अपने सब गहने त्याग दिये हों।

अब मै अपने प्रिय विषयके सम्बन्धमें आपसे बात करूँगा। अपने मानपत्रमें आपने खादीका उल्लेख किया है। इस विषयमें मैंने बहुत विचार किया है और मै जिस निष्कर्षपर पहुँचा हूँ, उसपर काफी चिन्तनके बाद ही पहुँचा हूँ और तभी मैंने इस कामको अपने हाथमें लिया है। मैं जानता हूँ कि मै जो-कुछ चाहता हूँ, वह सब इस जीवनमें पूरा नहीं हो सकेगा।

इसके बाद गांधीजीने गोरक्षाकी चर्चा की। उन्होंने कहा:

यदि आप गायोंकी रक्षा करना चाहते है तो इस समस्याको उसी दृष्टिसे देखिए जिस दृष्टिसे मै देखता हूँ। हम मुसलमानों और अंग्रेजोंसे लड़कर या उनसे अनुनय-विनय करके उनकी रक्षा नहीं कर सकते। अपने मनमें संकल्प किये बिना दूसरोंसे अनुनय-विनय करनेसे कुछ लाभ नहीं होगा। आज मैं एक वक्तव्य तैयार कर रहा हूँ जिसमें यह दिखाया जायेगा कि खुद हम कितने पशुओंके जीवनके नाशके लिए जिम्मेदार हैं।

१. देखिए "सहमतिकी वय", २७-८-१९२५।

२. सोंजा श्लेसिन; देखिए खण्ड ११, पृष्ठ ११।

ग्वाले सब हिन्दू हैं, हमारे अपने आदमी हैं। पर वही अपने पशु कसाइयोंके हाथ बेचते हैं। मारवाड़ी भी हमारे अपने हैं और वे ही अपनी गायें और बैल दूसरे स्थानोंको भेजते हैं। इनमें से कुछ पशुओंको तो बम्बई और कलकत्ताके कसाईखानोंमें काट दिया जाता है और कुछको आस्ट्रेलिया भेज दिया जाता है। वहाँ उनका माँस डिब्बोंमें बन्द करके फिर इस देशमें भेजा जाता है। यदि दूध और चमड़ेकी जरूरत पूरी करनेकी जिम्मेदारी हम अपने ऊपर ले ले, तो हम इसे रोक सकते हैं। इस स्थितिके लिए हम ही उतरदायी हैं। रियासतोंमें चमार पशुओंको किस प्रकार जहर दे देते हैं, इसे मैं अच्छी तरह जानता हूँ। मुझे मालूम हुआ है कि एक रियासतमें तो उन्हें हजारके हिसाबसे मृत पशुओंको हटाने-वगैरहका ठेका दिया जाता है। यह अनुचित है। हजारके स्थानपर यदि प्रति पशुके हिसाबसे पैसे दिये जायें तो ज्यादा अच्छा होगा। मुझे यह भी अच्छा नहीं लगता कि चमार मरे हुए जानवरोंका मांस खायें। जब मैं उनसे ऐसा न करनेको कहता हूँ तो वे उत्तर देते हैं कि यह मांस बड़ा स्वादिष्ट होता है और जबतक वे इस पेशेमें हैं, उनके लिए उसे छोड़ना सम्भव नहीं है। उनका कहना है कि बालकके सामने मिठाई रखकर उसे न खानेका आदेश देना ठीक नही है। वे कहते हैं कि यह पेशा छुड़ानेके लिए उन्हें बुनाईके जैसा कोई दूसरा काम दिया जाना जरूरी है। इसी प्रकार मारवाड़ियोंने भी विदेशी वस्त्रोंका व्यापार छोड़नेकी इच्छा जाहिर की है। वे मुझे इस कामके लिए धनतक दे रहे हैं, पर उनका कहना है कि जबतक लोग विदेशी वस्त्र खरीदना बन्द नहीं करते, व्यापार बन्द करना उनके लिए कठिन है। वे कहते हैं कि उन्हें खद्दरसे कोई विरोध नही है, पर जबतक खादीके खरीददार न हों तबतक वे विदेशी वस्त्रोंका व्यापार बन्द नहीं कर सकते। इस प्रकार यदि हमें गायोंकी रक्षा करनी है तो हमें चमारका धन्धा अपनाना पड़ेगा, देशके तमाम चर्मालयोंको अपने हाथमें लेना पड़ेगा। देशमें सिर्फ एक चर्मालय ऐसा है, जिसमें मारे गये पशुओंकी खालें नही खरीदी जाती। देशमें आज लाखों पशु काटे जाते हैं। अपनी मौत मरनेवालोंकी अपेक्षा इन पशुओंकी खालें ज्यादा महँगी होती हैं, क्योंकि मरे हुए जानवरको घसीटनेसे खाल खराब हो जाती है। अतः ऐसी खालोको बेचनेमें कठिनाई होती है। अतः, धन्धा जोरोंसे चले, इस दृष्टिसे ये कारखाने सिर्फ मारे गये जानवरोंकी खालें खरीदते हैं। आप लोग जो जूते पहनते हैं, वे ऐसे ही चमड़ेके बने हुए हैं। आपको यह ध्यान रखना पड़ेगा कि सिर्फ मरे हुए पशुओंकी खालका ही इस्तेमाल किया जाये। और इस खयालसे चमारोंको समझाना पड़ेगा कि उनका क्या कर्त्तव्य है। उन्हें सिर्फ मरे हुए पशुओंकी खालका ही इस्तेमाल करना चाहिए। दूसरे उन्हें मरे हुए पशुओंका मांस खाना भी छोड़ देना पड़ेगा। यदि हम ऐसा नही करते तो गोरक्षा असम्भव है। हमें देशकी आर्थिक स्थितिको अच्छी तरह समझ लेना है। यदि नगरवासियोंके लिए पर्याप्त दूधका प्रबन्ध किया जा सके तो हो सकता है, गो-वध काफी कम हो जाये। बहुत सारे चर्मालय भी मारे हुए पशुओंपर ही निर्भर करते हैं। यदि पशु-वध कम हो जायें तो इन कारखानोंकी संख्या भी कम हो जायेगी।

गांधीजीने आगे कहा कि इस प्रकार हमारे पास गोशालाओंके लिए ज्यादा पैसा भी आ जायेगा। जो गोशालाएँ हैं, देशमें पैसेकी कमीके कारण उनका काम भी नहीं चल रहा है। यदि हम गायोंको बचाना चाहते हैं, तो हमें इन्हें भी सुधारना होगा।

इसके बाद महात्माजीने हिन्दी और देवनागरी लिपिके प्रचारकी चर्चा की और कहा कि कोई पाँच-छः साल पहले भी मैंने इस सम्बन्धमें आपसे बात की थी। उस समय आपने पचास हजार रुपये इस कार्यके लिए दान दिये थे। इस धनका उपयोग दक्षिण भारतमें हजारों द्रविड़ लोगोंको हिन्दी सिखानेके लिए किया गया। इसका पूरा हिसाब भी प्रकाशित किया जा चुका है। देशके दक्षिणी भागमें इस सम्बन्धमें काफी काम किया जा चुका है। हिन्दी प्रेस खोले गये हैं; हिन्दीकी पत्रिकाएँ प्रकाशित की जा रही हैं, तेलगु-हिन्दी और तमिल-हिन्दी शिक्षिका तथा तमिलमें हिन्दीकी कुछ अन्य प्रारम्भिक पोथियाँ भी प्रकाशित की गई हैं। पर अभी भी बहुत काम करना बाकी है। मैं आपसे अनुरोध करूँगा कि आप कमसे-कम देवनागरी लिपिको स्वीकार करके उसका प्रचार करें और दूसरी भाषाओंकी अच्छी-अच्छी रचनाओंको हिन्दीमें प्रकाशित करें। यदि रवीन्द्रबाबूकी रचनाओंको देवनागरी लिपिमें प्रकाशित किया जाये तो संस्कृतके जाननेवाले लोग उन्हें समझ सकते हैं।

इस प्रकार महात्माजीने आजकी चारों महत्त्वपूर्ण समस्याओंकी चर्चा करते हुए लोगोंसे अपील की कि अगर आपको पसन्द हो तो इन चारों कामोंमें हाथ बँटायें और यदि ऐसा नहीं करना चाहते हों तो इनमें से जो काम आपको सबसे अच्छा लगे, उसी एक काममें सहायता दें। उन्होंने देशबन्धु स्मारक कोषके लिए भी दिल खोलकर चन्दा देनेका अनुरोध किया। इसके बाद उन्होंने फिर उपर्युक्त चारों कामोंकी याद दिलाते हुए अपील की कि आप इनमें से किसी भी एक काममें अथवा अगर इच्छा हो तो सभीमें सहायता दें। उन्होंने कहा कि मैं तो यही मानता हूँ कि चारों काम समान रूपसे महत्त्वपूर्ण और धर्मसम्मत हैं। इसके बाद पुनः अस्पृश्योंकी चर्चा करते हुए उन्होंने कहा कि जहाँ-कहीं अस्पृश्योंके लिए स्कूल नहीं है अथवा उनके लिए जलकी व्यवस्था नहीं है, वहाँ उनके लिए स्कूल खोलने और जलकी व्यवस्था करनेके लिए मैं प्रयत्नशील हूँ। मैं उनके लिए अलग मन्दिर भी बनवाना चाहता हूँ। लेकिन जबतक स्वयं अस्पृश्योंमें से ही ऐसे योग्य और धर्मिष्ठ व्यक्ति सामने नहीं आते जो मन्दिरोंकी व्यवस्था कर सकें तबतक इस कामको रोककर रखना पड़ेगा।

महात्माजीने अन्तमें उनकी बात ध्यानसे सुननेके लिए श्रोता-समूहके प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा :

मैं तो स्वयं एक गरीब आदमी हूँ। पर अपनी वस्त्र-हीन बहनोंके लिए कपड़ोंका प्रबन्ध करनेके लिए धनी भाइयोंकी सहायता चाहता हूँ। मैं रामराज्य लाना चाहता हूँ। रामराज्यकी चर्चा मैं पुरुषोंसे नहीं करता हूँ, क्योंकि मैं जानता हूँ कि अगर बहनें

आगे बढ़कर सहायता करे तो पुरुष तो सहायता करेंगे ही। इसलिए मैं स्त्रियोंसे स्वराज्यकी नही, रामराज्यकी चर्चा करता हूँ। इस रामराज्यका सम्बन्ध सिर्फ देशके प्रशासनसे ही नही है। उसके लिए कुछ दूसरे सुधार भी नितान्त आवश्यक है और जिन चार चीजोंकी मैंने चर्चा की है, उनमें वे सब आ जाते है। इसीलिए सिवाय इसके कि ऐसा करना आपका धर्म है, और कोई लालच आपके सामने नही रखना चाहता हूँ। इससे आपको भी और गाँवोमें रहनेवाली आपकी बहनोंको भी लाभ होगा।

हम अपने चरित्रबलसे ही अपने धर्मकी रक्षा कर सकेंगे। चरित्रबलसे ही हम ससारकी भी रक्षा कर सकते है। आप इस दिशामें मेरी जितनी सहायता कर सकते है, उतनी कर रहे है। आपको ऐसा करना भी चाहिए। ईश्वरसे मेरी नित्य यही प्रार्थना है कि मैं सदैव इसका योग्य पात्र सिद्ध होऊँ।

[अंग्रेजीसे]

सर्चलाइट, ९-१०-१९२५

१५८. पत्र : जितेन्द्रनाथ कुशारीको

यात्राके दौरान
३ अक्तूबर, १९२५

प्रिय भाई,

महीना-भरसे ऊपर हो गया, आपने मुझसे इस विषयमें कुछ प्रश्न पूछे थे कि कलकता विश्वविद्यालयसे इतनी मान्यता प्राप्त कर लेना ठीक रहेगा या नही जिससे आप अपने यहाँ ऐसे लड़कोंको भी ले सकें जो उस विश्वविद्यालयकी परीक्षाओंमें बैठना चाहते हो। खुद मेरी राय तो इसके खिलाफ है। मुझे परीक्षाओंका यह मोह पसन्द नही है। इस मोहने हमारे नौजवानोंको मानसिक तथा शारीरिक, दोनों दृष्टियोंसे खोखला बना दिया है। और कोई कारण न भी हो तो सिर्फ इसी कारणसे मैं चाहूँगा कि राष्ट्रीय सस्थाएँ अपने निश्चयपर दृढ़ रहें और अपने सहज गुणोंके बलपर ही प्रगति करे। मैं तो चाहूँगा कि आत्माका हनन करनेवाली इस परीक्षा पद्धतिके खिलाफ जाब्तेके साथ विद्रोह किया जाये। लेकिन आप जिन परिस्थितियोंमें पड़े हुए है, उनमें आपको क्या करना चाहिए, इसका निर्णय तो सबसे अच्छी तरह आप ही कर सकते है और विश्वविद्यालयोंकी उपाधियोके मोहसे अगर आपको भी उतनी ही चिढ़ नही है, जितनी मुझे है तो फिर आप जैसी सीमित मान्यताकी बात कह रहे है, वैसी मान्यता बेहिचक प्राप्त करें। मेरा स्वभाव एक तरह का है; आपका या और लोगोका स्वभाव कुछ और तरहका हो सकता है। इसलिए यह जरूरी नही कि जो चीज मुझे बुरी लगे वह आपको अथवा और लोगोंको भी बुरी ही लगे। इसलिए मैं तो यही चाहूँगा कि आप मेरे मतके अनुसार तभी चलें जब यह आपके मनको इतना जँचता हो कि भले ही मान्यताके अभावमें आपके स्कूलमें सिर्फ बीस या इससे भी कम विद्यार्थी रह जायें किन्तु

तब भी आपके मनको मेरे मतके अनुसार चलनेका पूरा सन्तोष मिलता हो। मैं तो प्रबल स्वातंत्र्य वृत्तिसे युक्त एक लड़केको भी शिक्षा देकर बिलकुल खुश रहूँगा। आपने जिस सीमित ढंगकी "मान्यता" की चर्चा की है उसे प्राप्त करनेके पक्षमें आप जो-कुछ भी कह रहे हैं, उस सबको मैं भलीभाँति समझता हूँ और उसकी कद्र भी करता हूँ और आपका यह विचार ध्यान देने योग्य है। इसलिए अगर सभी दृष्टियोंसे विचार करके आप इस निष्कर्षपर पहुँचें कि मान्यताके लिए प्रार्थना-पत्र देना आपके और जिन लोगोंके बीच आप काम कर रहे हैं, उन सबके हकमें सबसे अच्छी बात है तो मुझे आपके बारेमें कोई गलतफहमी नही होगी।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी पत्र (जी० एन० ७१८९) की फोटो-नकलसे।

१५९. कच्छी भाई-बहनोंसे

यदि ईश्वरकी इच्छा हुई तो मैं २१ अक्तूबरके दिन कच्छमें अपनी जिन्दगीमें पहली बार कदम रखूँगा[1]। मैं इस समय केवल प्रेमवश वहाँ जा रहा हूँ। अन्य प्रान्तोंने मुझपर दया करके वर्षके अन्ततक के लिए मुझे मुक्त कर दिया है। आप चाहते हैं कि मैं महाराव साहबके[2] उपस्थित रहते हुए वहाँ आऊँ इसलिए मुझे यह सोचकर दुःख होता था कि यदि मैं अक्तूबरमें नही गया तो पिछले ९ महीनोंसे जिस यात्राकी इतनी चर्चा होती रही है वह अप्रैल मासतक के लिए स्थगित हो जायेगी। आपने मुझे आश्वासन दिया है कि कच्छमें आप मुझे आराम ही देनेवाले हैं और साथ ही चरखे तथा खादीके लिए ढेर-सारा पैसा भी। यह मेरे लिए भारी प्रलोभन है।

महाराव साहबसे मिलनेके लिए मैं भी उत्सुक हूँ। मैं राजाओंका विवेकी मित्र और सेवक हूँ। मेरे बड़े-बूढ़ोंने राज्योंकी नौकरी की है। आज भी मैं अपने कुटुम्बियो-को काठियावाड़के राज्योंमें अपनी आजीविका प्राप्त करते देखता हूँ।

लेकिन राज्योंके साथका मेरा सम्बन्ध मेरी आँखोंको धोखा नही दे सकता। कितने ही राज्योंकी अन्धाधुन्धीसे मैं बेखबर नही हूँ। महाराव साहबके राजतन्त्रके सम्बन्धमे लोगोंने मुझे अगणित पत्र भेजे हैं। मैं उन पत्रोंके सारको तटस्थ भावसे महाराव साहबके सम्मुख रखकर अपना विवेकी मित्रभाव प्रकट करूँगा।

राजा अथवा रैयतसे मुझे मान प्राप्त करनेकी भूख नही है। मानसे मैं थक गया हूँ। यदि मुझे इसमें अविवेक बरतने जैसा न लगे तो मैं मानपत्र आदि न लेनेकी शर्त पर ही आऊँ। मुझे 'महात्मा' का जयघोष कठोर लगता है। शोरगुल किसी भी तरह का हो, मैं उससे त्रस्त हो गया हूँ। चरणस्पर्शसे मैं दूर रहना चाहता हूँ। लोगोके मनमें

१. गांधीजी कच्छमें २२ अक्तूबर, १९२५ को पहुँचे थे।
२. कच्छराज्यके तत्कालीन शासक।

मेरे प्रति यदि कुछ आदर-भाव हो तो मैं उन्हें मुझमें जो अच्छा हो, उसका अनुकरण करते हुए अवश्य देखना चाहता हूँ। कच्छी भाई-बहनोंने मुझपर प्रेम ही बरसाया है। कच्छी भाई-बहनोंने मुझे मेरे कार्यके लिए पैसा भी बहुत दिया है।

लेकिन मेरा पेट ऐसा है कि भरता ही नहीं है।

अपनी उत्तरावस्थामें प्रभुका भजन करनेके मेरे पास दो तीन साधन हैं। उनमें मेरा जीवन समाप्त हो ऐसा मैं चाहता हूँ। मुझे मुखसे रामनाम लेना ही प्रिय है। लेकिन यदि वह नाम मेरे हृदयमें अंकित न हो तो केवल मुखसे ही जपा हुआ नाम मेरी अधोगति ही करेगा। जो हृदयमें रहता है वह करनीमें अवश्य उतरता है। इसीसे मैंने सेवाधर्मको ही धर्म-रूपमें जाना है।

इसीसे मुझे चरखा और अस्पृश्यता निवारण उचित लगे हैं। चरखेके द्वारा मैं कंगालसे-कंगाल भारतीयकी सेवा करता हूँ। उस यज्ञमें भाग लेनेके लिए मैं महाराव साहब और उनकी प्रजाको निमन्त्रित करता हूँ।

लेकिन कच्छके लोग तो साहसिक हैं। वे व्यापारके अर्थ-सागरको पार करनेवाले लोग हैं। वे चरखा चलायें और खादी पहनें केवल इतना ही पर्याप्त नहीं। मैं उनसे यह आशा रखता हूँ कि हिन्दुस्तानके हाड़-पिंजरमें कुछ मांस चढ़ानेके लिए वे मुझे धन दें। इसी तरह यह बात भी भूलनी नहीं चाहिए कि देशबन्धुकी स्मृतिको बनाये रखना है। मेरे कानमें भनक पड़ी है कि मैं तो कच्छका पैसा ले जाकर दूसरी जगह उसका उपयोग करता हूँ। यह बात सच है, लेकिन यह शिकायतके रूपमें नहीं कही जानी चाहिए। मैं कच्छके लिए पैसा किस लिए उगाहूँ। कच्छमें कंगाली हो तो यह महाराव साहबपर लांछन है। कच्छके करोड़पतियोंपर लांछन है। कच्छमें तो मैं रहा नहीं हूँ। वहाँ मैं किसकी मार्फत धन खर्च करूँ। कच्छके लोग कच्छके लिए स्वयं ही पैसा इकट्ठा करें और उसका उपयोग करें यही शोभनीय है। मेरा तो धन्धा ही यह है कि जहाँसे मिले वहाँसे पैसा उगाहकर जहाँ जरूरत दिखाई दे वहाँ तथा जो जरूरी जान पड़े उस काममें अथवा किसी पूर्व-निश्चित शुद्ध कार्यमें उसे खर्च किया जाये। कच्छमें धनाढ्य वैष्णव हैं। मैं स्वयं वैष्णव होनेके कारण वैष्णव होनेका कुछ अर्थ जानता हूँ। जो वैष्णव अन्त्यजसे छू जानेपर अपनेको अपवित्र हो गया मानता है, वह वैष्णव है, इस बातको मेरी आत्मा कभी स्वीकार ही नहीं कर सकती। जैसे चरखे-के द्वारा मैं कंगाल [भारत] माँकी सेवा करना चाहता हूँ उसी तरह अस्पृश्यता-निवा-रणके द्वारा अन्त्यज-सेवा करके मैं हिन्दूधर्मका शुद्धीकरण करना चाहता हूँ। अस्पृश्यताको सँजोना और हिन्दू धर्मकी रक्षा करना ये दो परस्पर विरोधी वस्तुएँ हैं। मुझसे अन्त्यजों का तिरस्कार देखा अथवा सहा नहीं जाता। अन्त्यजोंको छोड़कर इस लोक अथवा परलोकका राज्य भी मिलता हो, तो भी वह मुझे स्वीकार्य नहीं। मेरी इच्छा है कि कच्छके वैष्णव अपना धर्म समझें।

याद रखिये कि राजा युधिष्ठिरने प्राप्त स्वर्गमें अपने साथके कुत्तेको छोड़कर जानेसे इनकार कर दिया था। उसका, आपका और मेरा धर्म एक ही है। निषाद राज जिसका मेवा रामचन्द्रने प्रेमसे स्वीकार किया था, कौन था? वैसोंको भरतने

प्रेमसे आलिंगन करके अपनेको पवित्र माना था। इस कलिकालमे चाण्डाल कौन है? अथवा कौन नही है? शास्त्रोंका अनर्थ न करें। बाप-दादाके कुएँमें कूदकर मरें नहीं बल्कि उसमें तरें। जो 'जगत्मान्य नीतिसे विरुद्ध हो वह शास्त्र अथवा रिवाज त्याज्य है। वेदोंमें यदि कोई गोमेध अथवा पशु हिंसाका प्रतिपादन करे, तो क्या हम उसके लिए वैसा करनेको तैयार हैं?

आपके यहाँ हिन्दू-मुसलमानका प्रश्न ही नही है; और यदि हो तो मैंने इस समस्याको हारकर छोड़ दिया है। लेकिन मैं मानता हूँ कि जैसे गजराजने पराजित होनेपर ही ईश्वरकी सच्ची स्तुति की, उसी तरह मैं भी पराजित होनेपर भी दोनोंकी रक्षाके निमित्त' ईश्वरकी सच्ची स्तुति कर रहा हूँ। विषम समयमें तपश्चर्या करनी चाहिए, ऐसा धर्मका कहना है। तपश्चर्या अर्थात् आत्मशुद्धि, आत्म-ज्ञान, आत्मदर्शन। यदि हममें से कुछ लोगोंके अन्तःकरण भी शुद्ध हैं तो लड़नेके बावजूद अन्ततः फल कल्याणकारी ही होगा।

बहनोंसे मैंने हमेशा यही कहा है कि मेरा स्वराज्य रामराज्य — धर्मराज्य है। यह रामराज्य उपर्युक्त बातोंके बिना तो कदापि नही मिल सकता।

लेकिन जो हिन्दू हैं उनके लिए तो धर्मराज्य तबतक असम्भव है, जबतक वे गो-रक्षा धर्मका भी पालन नहीं करते। गोरक्षाका पालन चाहे जैसी गोशालाकी स्थापना करके नहीं हो सकता। इस सम्बन्धमें व्यावहारिक कार्य मैंने बहुत देरसे शुरू किया है, लेकिन यदि आप जैसोंकी सहायता मिली तो वह सिद्ध हो सकता है। मैं देखता हूँ कि असंख्य गौओं, बैलों तथा भैंसों इत्यादिकी हत्या बिलकुल रोकी जा सकती है। इसमें केवल ज्ञानकी, उद्यमकी और धनकी आवश्यकता ही है। धन तो बहुत दिया जाता है; लेकिन मेरे विचारानुसार ज्ञानके अभावमें उसका उपयोग गलत ढंगसे होता है।

इतना तो मैंने आपके विचार करनेके लिए लिख डाला है। इन सब बातोंपर आप अच्छी तरहसे विचार करें। चूँकि आप मुझे बहुत आराम देनेवाले हैं, इसलिए यदि आप इन विषयोंपर चर्चा करनेका समय निकालेंगे तो हम चर्चा करेंगे। मेरी विचारपद्धतिमें भूल हो तो वह आप मुझे बतायेंगे, न हो तो मुझे पूरी मदद देंगे।

आपका मित्र और सेवक
मोहनदास करमचन्द गांधी

[गुजरातीसे]
नवजीवन, ४-१०-१९२५

१६०. चरखा संघ

चरखा सघकी स्थापना कोई साधारण बात नही है। इसकी स्थापना सस्थापकों-की प्रतिज्ञाका चिह्न है; उससे उनका चरखेके प्रति विश्वास, और उसके लिए अपना सब-कुछ अर्पण करनेका संकल्प प्रकट होता है।

मेरा मन तो यह कहता है कि स्वराज्य चरखेमें ही है। मैं इसके बिना करोडोंकी सेवा अशक्य मानता हूँ। प्रत्येक मनुष्य खुद बाकीके सभी मनुष्योंके पास जाकर उनकी सेवा नही कर सकता, किन्तु वह किसी ऐसे काममें मदद कर सकता है कि जिससे सबकी सेवा होती हो, जिसका फल सबको मिल सकता हो। और ऐसा काम है सिर्फ चरखा चलाना। चरखा करोड़ोंके पास पहुँच सकता है, वह करोड़ोंको भूखो मरनेसे बचा सकता है, करोड़ोके लिए अन्नपूर्णा बन सकता है। मै टोकनी बनानेके कारखानेमें लगूँ तो उससे दो-चार हजार मनुष्योकी मदद हो सकती है, साबुनका कारखाना भी दो-चार हजारको रोजी दे सकता है, कपड़ेकी मिल भी दो-चार हजारको अथवा सब मिलें एक-साथ दस-पन्द्रह लाखको आजीविका और दो-चार हजारको अपनी पूँजीका ब्याज दे सकती है। किन्तु यदि मै चरखेके प्रचारमें लग जाऊँ तो उसका मतलब करोड़ोको भोजन देनेवाले कारखानेमें लगने-जैसा होगा।

पाठक विचार कर देखेंगे तो उन्हे कोई दूसरा ऐसा धन्धा दिखाई नही देगा, जिससे करोडोंकी सेवा हो सके। हाँ, एक खेती है। किन्तु खेती तो अभी चल ही रही है, और उसे भी मनुष्य चाहे जब, चाहे जिस क्षण और चाहे जितनी अवधितक नही कर सकता। लेकिन सूत? मनुष्य उसे चाहे जहाँ कात सकता है, तकली जेबमें रखकर चलते-चलते भी दो-तीन गज यज्ञार्थ कात सकता है। एक क्षणका काता हुआ सूत भी काममें आ सकता है· किन्तु एक क्षणकी खेतीसे कुछ भी हासिल नही होगा। उसमें तो एक ही जगहपर विशेष रूपसे और काफी समयतक काम करना होता है। इसीसे चरखा महायज्ञ है। वह सभीके लिए सुलभ है।

जो ऐसी वस्तु दे उस सघकी सेवा कौन न करेगा? चरखेके कार्यक्रममें जो दोष ढूंढते है उन्हें कौन समझाये? इस देशकी दौलतमें दो गज सूतका बढना अच्छा न लगनेका क्या कारण है? और सो भी फुर्सतके समयमें काता हुआ सूत।

मेरी इच्छा है कि सब भाई-बहन इस सघमें शामिल हो। चन्देमें दो हजारके बजाय एक हजार गज सूत लेना तय हुआ। यह मुझे ठीक मालूम नही हुआ। और भी बहुतेरोंको यह ठीक नही लगा। परन्तु इसे इस सघमें शामिल न होनेका कारण नही बनाया जा सकता। कोई अपनी इच्छासे दो हजार गज देनेवालोंमें रह सकते है। प्रतिज्ञा लेना बहुत अच्छा है; लेकिन प्रतिज्ञा लेनेकी शर्त निकाल डाली गई है; इसका अर्थ यह नही कि प्रतिज्ञा लेनेकी इच्छा रखनेवाले शामिल न हों। वे खुद प्रतिज्ञा तो अवश्य लें, और प्रतिज्ञा न लें तो भी यह बात मान ली गई है कि अनिवार्य कारण न हो तो प्रतिदिन सभी आधा घटा तो अवश्य ही कातेंगे। प्रतिज्ञा-पत्र

मौकूफ कर दिया गया किन्तु व्यवस्थापक समितिमें शामिल होनेवाले तो चरखेके प्रचारको ही अपना प्रधान कार्य-क्षेत्र मानेंगे।

लेकिन जो अठारह वर्षसे कम उम्रके हों, और जो नियमपूर्वक न कात सकते हों, वे क्या करें? वे पहलेके मुताबिक जितना बन सके उतना सूत दान करें।

अब किसीको रुई नहीं दी जायेगी। किसीकी लल्लो-चप्पो करके उससे कतवानेकी कोई आवश्यकता नहीं है। जो कातनेको धर्म समझ चुके हों वे ही सूत भेजें। रुईका खर्च तो नहींके बराबर है। 'दमड़ीकी गुड़िया, टका सिर मुड़ाई' वाली कहावत न हो जाये। जो अपनी खुशीसे सूत दे सकें उनसे सूतकी भिक्षा माँगनेका हेतु यही है कि :

(१) उससे खादी सस्ती होनेमें मदद मिलेगी।

(२) उसका अर्थ होगा लोग आलस्य छोड़कर अपना बचा हुआ समय प्रजाके कल्याणमें खर्च करें।

(३) धनवानोंका गरीबोंके साथ अपना सीधा सम्बन्ध जुड़ेगा और उन्हें रोज उनकी याद आयेगी।

(४) उससे सब प्रकारके विदेशी कपड़ोंके बहिष्कारमें मदद होगी।

(५) उससे सब यथाशक्ति एक ही प्रकारकी देशसेवामें निश्चित योग दे सकेंगे।

(६) उससे मध्यम वर्ग, जो अभी देहातियोंकी मेहनतपर अपना निर्वाह करता है उसका कुछ बदला दे सकेगा। वह आज स्वेच्छापूर्वक बदलेमें कुछ नहीं दे रहा है।

(७) मध्यम वर्गके गरीबोंको, जो जीवनके प्रति श्रद्धा ही खो बैठे हैं, स्वयं कातनेसे उनमें उसके प्रति श्रद्धा जागेगी।

ऐसे परिणाम तो तभी निकल सकते हैं जब मनुष्य अपनी उमंगसे कातेंगे।

इस महान कार्यमें रुपयोंकी मदद भी चाहिए। मुझे आशा है कि जिन्हें चरखेमें श्रद्धा हो वे सूत तो भेजेंगे ही, दे सकते होंगे तो पैसेकी भी मदद करेंगे। यह संस्था अनेक मध्यमवर्गके लोगोंको रोजी देगी। जो आँकड़े मैंने प्रकाशित किये हैं उनसे मालूम होगा कि आज भी कितने मनुष्य इस प्रवृत्तिसे अपनी आजीविका प्राप्त कर रहे हैं। यदि यह कार्य व्यापक हो जाये तो यह संस्था हजारोंको रोजी देनेवाली बन जाये। जिसमें करोड़ोंका व्यापार चलता हो उस काममें हजारोंका प्रामाणिकतासे अपनी रोजी कमा लेना कौनसी बड़ी बात है।

अब एक विश्वासकी बात रही। जो लोग समितिमें हैं वे विश्वासपात्र और कुशल हैं? मेरी नाकिस रायके अनुसार तो वे जरूर ऐसे ही हैं। यह सत्य है कि ऐसे अन्य सेवक भी हैं जिनका नाम इसमें नहीं है। एक मित्र सूचित करते हैं कि कई तो ऐसे हैं जिन्हें इसमें होना ही चाहिए था। उन सबकी एक विचारक समिति बनाई जाये। मैंने इसपर विचार कर देखा है। मुझे वह अनावश्यक प्रतीत होता है। विचार तो थोड़ा करना है; उसपर अमल बहुत करना है। इसलिए अच्छा तो यही है कि अमली कार्य करनेवाली समिति खड़ी करनेमें थोड़े, लेकिन अपना सारा समय देनेवाले कार्यकर्त्ता मिलें।

यह संघ सेवाके लिए है, अधिकारके लिए नहीं। जहाँ सरदारीकी गधके लिए भी स्थान न हो और जहाँ सेवा ही धर्म हो वहाँ अधिकारके लिए स्पर्धाका तो प्रश्न ही नहीं उठता। मै तो चाहता हूँ कि जिनको सेवा करनी हो वे अपने विचार लिखकर भेजते रहें। यदि विचार-समिति बनाई जाये तो उसकी बैठकें होनी चाहिए। जहाँ नई नीति अथवा पद्धति चलाना हो वहाँ ऐसी वस्तुओंकी आवश्यकता होती है। यहाँ तो काम ही की देखरेख करनी है। इसलिए मै तो मानता हूँ कि १२ लोगोंकी समिति ही ठीक है। उसमें भी अभी तीन जगहें भरना बाकी ही है। क्योंकि सब जगहें भरनेकी जरूरत नहीं मालूम हुई। विशेष बातें अनुभवसे मालूम होंगी।

खादीका व्यापार परोपकारके लिए है। सामान्यतः व्यापारमें परोपकारके लिए स्थान नहीं होता। माना जाता है कि व्यापार और परोपकार एक दूसरेके विरोधी हैं। राज्यसत्ताकी सहायता न मिले और परोपकार भी उसमें न हो तो फिर खादीका व्यापार चल ही नहीं सकता। खादी बनाने और बेचनेवालोंको जिस प्रकार परोपकार सीखना आवश्यक है उसी प्रकार खादी खरीदनेवालोंको भी परोपकारकी भावना हासिल करना जरूरी है। पेरिसकी लेस अथवा मैन्चेस्टरकी मलमल बहुत ही अच्छी लगती हो तो भी उसका त्याग करके जो खादी ही को अपनायेगा वह तो परोपकार ही करेगा, इसमें शक नहीं।

हे ईश्वर, सेवा-भाववाले खादी सेवकोंकी वृद्धि कर।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ४-१०-१९२५

१६१. दक्षिण आफ्रिकाके विषयमें

दक्षिण आफ्रिकाके भारतवासियोंपर आजकल जो अत्याचार हो रहा है उसके लिए उन्हें धैर्य देने तथा सहायता करनेके लिए ११ वीं अक्तूबरको जगह-जगह सभा करनेके बारेमें अ० भा० कां० कमेटीने एक प्रस्ताव पास किया है। इन सभाओंमें सभी पक्षोंके व्यक्तियोंको निमन्त्रित करना जरूरी है। इस प्रश्नके विषयमें किसीका मतभेद तो है ही नहीं। अतएव ऐसी आशाकी जाती है कि सभी पक्षोंके लोग इस अवसरपर हाजिर होंगे। हमारी सहानुभूति पाकर दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंको कुछ धीरज होगा। यदि भारत सरकार भी उनको कुछ मदद देना चाहे तो ये सभाएँ उसमें भी सहायक होंगी और कुछ नहीं तो हम जितनी दे सकते है उतनी सहायता तो उन्हें मिलेगी ही। मुझे आशा है कि जगह-जगह सभाएँ होंगी और उसमें लोग हाजिर होंगे। कोई भी राजनीति जाननेवाला मनुष्य दक्षिण आफ्रिकाके प्रश्नसे बिलकुल अपरिचित तो नहीं ही होगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ४-१०-१९२५

१६२. पत्र : एस्थर मेननको

५ अक्तूबर, १९२५

प्रिय एस्थर,

इन दिनों मैं बिहारके दौरेपर हूँ। अभी मैं देवघरमें हूँ। यह बड़ा रमणीय स्थान है। आज मेरा सोमवार है। तुम्हारा लम्बा पत्र मेरे सामने है। मुझे हमेशा तुम सबका ध्यान बना रहा है। तुम पूरी तरह स्वस्थ हो गई हो और यह स्वास्थ्य-लाभ एक भारतीय औषधके सेवनसे हुआ है, यह जानकर मुझे बहुत तसल्ली हुई है। मैं उम्मीद करता हूँ कि स्वस्थ होकर तुम आगे अपना स्वास्थ्य बनाये रखोगी।

कुमारी पीटर्सन अगले वर्षके प्रारम्भमें डेनमार्क जानेवाली हैं; यह बहुत अच्छी बात है। उनको आराम करना चाहिए। यह भी खुशीकी बात है कि वे स्कूलको बहुत अच्छी स्थितिमें छोड़कर जायेंगी। उसकी सफलताके बारेमें मुझे तो कोई सन्देह था ही नहीं। केवल धैर्यकी आवश्यकता थी। बनावटीपन और स्वार्थपरताके इस युगमें लोग हर नई या असाधारण चीजको शंकाकी दृष्टिसे देखते हैं।

क्या तुम भी पोर्टोनोवोमें हो? या मेननको अपनी रुचिके अनुकूल कुछ मिल गया है?

बेशक, तुम सब चरखा संघमें शामिल हो रहे हो। क्या तुमने उसका संविधान पढ़ लिया है?

एक-दो महीने पहले एक डेनिस महिलाने मुझे बड़ा प्यारा खत लिखा था। डेन-मार्क जानेका अवसर पाकर मुझे सचमुच बहुत खुशी होगी। लेकिन जबतक अहिंसा भारतकी मिट्टीमें, आजकी अपेक्षा कहीं ज्यादा गहरी जड़ें नहीं जमा लेती, तबतक भारत छोड़नेकी मेरी कोई इच्छा नहीं है। मैं जानता हूँ कि अहिंसा ही सत्य है, लेकिन हो सकता है, मैं उसे जीवनमें पूरी तरह न उतार सका होऊँ। इतना मुझे मालूम है कि मैं सत्य और अहिंसाके बिना जी नहीं सकता।

यदि तुम मेरी जीवनी लिखना चाहती हो, तो तुम्हें आश्रममें कई महीने बिताने होंगे और हो सकता है कि दक्षिण आफ्रिकाकी यात्रा भी करनी पड़े तथा चम्पारन, खेड़ा और शायद, पंजाब भी जाना पड़े। यदि इसे सम्यक् रूपसे करना हो, तो यह काम काफी बड़ा है। इन्हीं स्थानोंपर मैंने अहिंसा धर्मको, जैसा मैं उसे जानता हूँ, कार्य-रूप देनेका प्रयत्न किया।

तुम सबको स्नेह तथा बच्चोंको प्यार,

तुम्हारा,
बापू

[पुनश्च :]

नवम्बरके शुरूमें मैं आश्रम पहुँचूँगा।

अंग्रेजी पत्रकी फोटो-नकलसे।

सौजन्य : नेशनल आर्काइव्ज ऑफ इंडिया

१६३. वक्तव्य : समाचारपत्रोंको

७ अक्तूबर, १९२५

सौभाग्यसे दक्षिण आफ्रिकाके ब्रिटिश भारतीयोंका प्रश्न किसी दल-विशेषका प्रश्न नहीं है। उस उप-महाद्वीपमें हमारे देशभाइयोंपर जो महासंकट आनेवाला है, उससे उन्हें बचाना भारतका धर्म है। प्रस्तावित विधेयक[1] १९१४ के समझौतेका खुला उल्लंघन है। दक्षिण आफ्रिकावासी भारतीयोंके प्रश्नके बारेमें मैंने तो यही देखा है कि सरकार लगातार अपने वचनों और घोषणाओंका उल्लंघन करती रही है; यह बात सरकारी कागज-पत्रोंसे भी प्रमाणित होती है। प्रस्तावित विधेयकका मतलब, दरअसल, ब्रिटिश भारतीयोंके उन तमाम अधिकारोंका अपहरण है, जो आज उन्हे प्राप्त हैं। उनका एक-मात्र अपराध यही है कि वे अच्छे व्यापारी है और यूरोपीय नही हैं। इस मामलेमें कोई समझौता नही हो सकता। भारतीयोंकी स्वदेश-वापसीकी कोई योजना स्वीकार नही की जा सकती, चाहे उसे मीठे शब्दोंमें स्वेच्छया स्वदेश-वापसीकी योजना ही क्यो न कहा जाये। फिर भी मैं स्पष्ट कहना चाहूँगा कि जवाबी कार्रवाईसे कोई लाभ नहीं होगा — भले ही इसका कारण सिर्फ यह हो कि हम कारगर तरीकेसे कोई जवाबी कार्रवाई नही कर सकते। इसका एक-मात्र उपाय यही है कि राजनीतिक दबाव डाला जाये। लॉर्ड हार्डिंगने इस उपायका सफल प्रयोग किया था।[2] क्या मौजूदा सरकार इसकी पुनरावृत्ति करेगी?

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, १२-१०-१९२५

१. क्षेत्र निर्धारण और प्रवास तथा पंजीयन-सम्बन्धी अतिरिक्त धारा विधेयक; (एरियाज रिजर्वेशन ऐंड इमिग्रेशन ऐंड रजिस्ट्रेशन फरदर प्रोवीजन बिल); यह विधेयक जुलाई, १९२५ में संघ संसदमें पेश किया गया था। इस विधेयकका उद्देश्य एशियाइयोंको कुछ निर्धारित क्षेत्रोंके अलावा अन्य स्थानोंमें जमीन लेनेसे वर्जित करना था। देखिए खण्ड २७।

२. तात्पर्य शायद लॉर्ड हार्डिंग द्वारा नवम्बर, १९१३ में मद्रासमें दक्षिण आफ्रिकावासी भारतीयोंकी स्थितिके सम्बन्धमें दिये गये भाषणसे है; देखिए खण्ड १२, पृष्ठ ५९१।

१६४. पत्र : डाह्याभाई पटेलको

आश्विन सुदी ५
[७ अक्तूबर, १९२५][1]

भाई डाह्याभाई,

तुम्हारा लम्बा पत्र तो मैं अभीतक नहीं पढ़ सका हूँ। कल दूसरा पत्र मिला। मेरा ३१ अक्तूबरको आ सकना तो सम्भव नहीं है; लेकिन नवम्बरके आरम्भमें आश्रम पहुँचूंगा और तब अवश्य ही दिन मुकर्रर कर दूंगा।

मोहनदासके वन्देमातरम्

गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० २६९२) से।
सौजन्य : डाह्याभाई एम० पटेल

१६५. भाषण : गिरीडीहकी सार्वजनिक सभामें[2]

७ अक्तूबर, १९२५

महात्माजीने कहा कि मुझे ऐसा बताया गया है कि गिरीडीहके अभ्रक क्षेत्र होनेके कारण मजदूर लोग खानोंमें काम करके ज्यादा पैसा कमा लेते हैं; इसलिए उन्हें चरखा चलानेको तैयार नहीं किया जा सकता। मैंने उनसे कहा कि मजदूर लोग चरखा न चलायें, यह बात तो मैं समझ सकता हूँ, लेकिन यह समझमें नहीं आता उनके खादीका उपयोग करनेमें क्या अड़चन है। मध्यवर्गीय लोगोंके पास काफी खाली समय होता है और अगर वे चाहें तो, अपने लिये नहीं बल्कि देशके लिए, प्रतिदिन आधा घंटा चरखा चला सकते हैं और अपना काता सूत दानके तौरपर कांग्रेसको दे सकते हैं। सस्ते विदेशी कपड़ेकी तुलनामें खादी महँगी जरूर होती है, लेकिन महँगी होते हुए भी वह सस्ती है, क्योंकि उसपर लगाया गया पैसा सीधे गरीब बहनों और बुनकरोंकी जेबोंमें जाता है। इसके बाद अस्पृश्यताकी चर्चा करते हुए उन्होंने कहा कि यह हिन्दू धर्मके लिए घोर कलंककी बात है। आप अस्पृश्योंके लिए एक स्कूल चलाते हैं, इसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ, लेकिन जबतक आप खुद उनके पास जाकर उनसे मिलते-जुलते नहीं और उनकी गरीबी और दुःख-

१. डाककी मुहरसे।

२. गांधीजीने यह भाषण स्थानीय निकाय, आम जनता, नगरपालिका तथा गोशालाकी ओरसे भेंट किये गये मानपत्रोंके उत्तरमें दिया था।

दर्वका पता लगाकर उन्हें दूर करनेकी कोशिश नहीं करते तबतक मुझे सन्तोष नहीं होगा।

स्थानिक निकायके मानपत्रमें ऐसा संकेत किया गया था कि कानूनकी कठोरता और जिला बोर्डसे उसके मतभेदके कारण वह ठीकसे अपना काम नहीं कर पाता। इसलिए इन परिस्थितियोंमें निकायके लिए ऐसा कह पाना तो असम्भव है कि उसे अमुक काम करनेका श्रेय प्राप्त है, किन्तु वह इतना वादा अवश्य कर सकता है कि भविष्यमें स्थितिमें सुधार होनेपर उससे जो भी काम हो सकेगा, वह अवश्य करेगा। निकायके सदस्योंसे गांधीजीने कहा कि अगर आपमें कठिनाइयोंपर विजय पानेका संकल्प हो तो कोई भी कठिनाई बड़ी नहीं है। इसपर किसीने दबी आवाजमें कहा कि पैसेके अभावमें सड़कोंको अच्छी हालतमें रखना कठिन है। गांधीजीने छूटते ही उत्तर दिया कि यदि आपके पास सड़कोंकी मरम्मतके लिए काफी पैसा नहीं है तो आपको खुद सड़कोंपर काम करके उन्हें अच्छी हालतमें रखना चाहिए।

नगरपालिकाके एक सदस्यने कहा कि उनके पास मेहतर रखनेके लिए पर्याप्त पैसे नहीं है। इसपर महात्माजीने कहा कि तब आप लोगोंको मेहतरोंका काम भी खुद ही करना चाहिए और खुद ही पाखाना भी उठाना चाहिए। मैंने डर्बनमें यह काम किया था और मैं जानता हूँ कि इसे करनेमें कितनी प्रतिष्ठा है।

गोशालाके मानपत्रमें गोरक्षाकी चर्चा की गई थी। गांधीजीने कहा कि आप लोगोंसे मैं सिर्फ इतना ही कहूँगा कि अधिकांश गौओंकी हत्याकी जिम्मेदारी स्वयं हिन्दुओंपर ही है। अगर आप लोग चाहें तो आज ही गोहत्या बन्द करवा सकते हैं। इसके लिए आपको मुसलमानों या अंग्रेजोंसे अनुनय-विनय करने या झगड़नेकी जरूरत नहीं है। इसके लिए आपको ऐसी स्थिति उत्पन्न करनी होगी जिससे गौओंकी कीमत बढ़ जाये। आपको ऐसी दुग्धशालाओंकी व्यवस्था करनी है, जहाँसे सस्तेसे-सस्ता और शुद्धसे-शुद्ध दूध मिल सके। आपको चमड़ेको कमाने आदिके कामको ऐसा काम नहीं समझना चाहिए जिसमें कोई तौहीनीकी बात हो। आपको मोचियोंको संगठित करके खुद अपने चर्मालय खोलने चाहिए, जहाँ हत्या किये गये पशुओंकी नहीं, बल्कि सिर्फ मरे हुए पशुओंकी खालका ही उपयोग किया जाये। आपकी गोशालाएँ अभी ठीक ढंगसे नहीं चल रही हैं। उन्हें व्यापारिक दृष्टिसे चलाना चाहिए। इसके बाद देशबन्धु स्मारक कोषमें दान देनेके लिए अपील करते हुए गांधीजीने अपना भाषण समाप्त किया। सभामें ही काफी उगाही हो गई और गिरीडीहकी जनताकी ओरसे उन्हें दो हजार पचहत्तर रुपयेकी एक थैली भेंट की गई।

[अंग्रेजीसे]

सर्चलाइट, ९-१०-१९२५

१६६. भाषण : गिरीडीहकी महिला सभामें

७ अक्तूबर, १९२५

उत्तर[1] देते हुए गांधीजीने . . . मानपत्रमें कही गई स्नेहपूर्ण बातोंके लिए स्त्रियोंको धन्यवाद दिया। उन्होंने कहा कि स्वराज्यका मतलब सिर्फ राजनीतिक स्वराज्य ही नहीं, वरन् जिसे आम तौरपर रामराज्यके रूपमें समझा जाता है, उस ढंगका धर्मराज्य है। यह साधारण राजनीतिक स्वतन्त्रतासे एक बड़ी चीज है। ऐसे स्वराज्यको प्राप्त करनेके लिए आपको प्राचीन कालकी सीताके समान, जो रामराज्यकी आत्मा थीं, बननेका प्रयास करना होगा। जैसे आप घर-घरमें चूल्हा देखती हैं, उसी प्रकार सीताके समयमें हर घरमें चरखा भी होता ही था। सीता भी अपने चरखेपर कातती थीं। उनका चरखा शायद रत्नजटित और स्वर्णमण्डित रहा होगा, लेकिन फिर भी वह था तो चरखा ही। साथ ही आपको अपने जीवनमें पवित्रता लानेके लिए भी उनको अपना आदर्श मानकर चलना चाहिए। भाषणके अन्तमें गांधीजीने देशबन्धु स्मारक कोषमें दान देनेके लिए अपील की, जिसके फलस्वरूप वहीं एक अच्छी खासी रकम जमा हो गई।

[अंग्रेजीसे]

सर्चलाइट, ११-१०-१९२५

१६७. बिहारके अनुभव – १

आदिवासियोंके बीच

चक्रधरपुरसे चाईबासातक की सड़क बड़ी अच्छी है। उसपर मोटर गाड़ीसे सफर करनेमें बड़ा आनन्द आता है। चाईबासामें ही मेरा परिचय हो-जातिके लोगोंसे हुआ। स्त्री-पुरुष दोनों काफी दिलचस्प हैं। बालकोंकी तरह सीधे और सरल; लेकिन उनमें आस्था बहुत गहरी है; उन्हें कोई उससे सहज ही डिगा नहीं सकता। बहुतोंने चरखा और खादी अपना ली है। कांग्रेसी कार्यकर्त्ताओंने उनके बीच सुधारका काम १९२१ में शुरू किया था। फलस्वरूप बहुतोंने मृत जानवरोंका मांस खाना छोड़ दिया है, और कुछ शाकाहारी भी बन गये हैं। राँची जाते हुए खूंटीमें मैं एक दूसरी जातिके लोगोंसे मिला। ये मुंडा कहे जाते हैं। इनके बीच जितना काम किया जाये, थोड़ा होगा। ईसाई धर्म-प्रचारक तो कई पीढ़ियोंसे इनकी बहुत अच्छी सेवा करते आ रहे हैं, लेकिन

१. गांधीजीको स्थानीय कन्या पाठशालाकी प्रधानाध्यापिका द्वारा एक मानपत्र भेंट किया गया था; उन्हें देशबन्धु स्मारक कोषके लिए एक थैली भी भेंट की गई थी।

मेरी नम्र सम्मतिमें, उनके काममें एक खामी यह है कि अन्तमें वे इन भोले-भाले लोगोंसे ईसाई-बननेकी अपेक्षा करते हैं। इन जगहोंमें मुझे उनके कुछ स्कूल देखनेका भी अवसर मिला। यह सब देखकर तो मुझे बड़ा सुख मिला, लेकिन साथ ही मुझे इन धर्म-प्रचारकों और हिन्दू कार्यकर्त्ताओंके बीच संघर्षके भी आसार दिखाई दिये। हिन्दू कार्यकर्ताओंको हो, मुंडा और दूसरी जातियोंके बीच अपनी सेवाको ग्राह्य बनानेमें कोई कठिनाई नहीं है। अगर ईसाई धर्म-प्रचारक भी धर्मान्तरणके प्रच्छन्न उद्देश्यको छोड़कर सिर्फ मानवीय दृष्टिसे ही उनकी सेवा करें तो कितना अच्छा हो! लेकिन, मैंने मिशनरियोंके सम्मेलनमें तथा कलकत्तेमें अन्य ईसाई संगठनोंके सम्मुख जो बातें कही, उन्हें यहाँ दुहरानेकी जरूरत नही है।[1] मैं जानता हूँ कि किसीके सलाह देनेसे ईसाइयोंके प्रयत्नोंमें ऐसा क्रान्तिकारी परिवर्तन नही हो सकता, और किसी गैर-ईसाई व्यक्तिके सलाह देनेसे तो, चाहे उस सलाहके पीछे कितनी भी सदाशयता क्यों न हो, इस बात-की और भी कम सम्भावना है। यह परिवर्तन तभी सम्भव है, जब स्वयं सम्बन्धित व्यक्तियोंको ऐसा लगने लगे कि यह चीज जरूरी है या फिर इसके लिए ईसाइयोंमें कोई आम आन्दोलन हो। इन जातियोंके बीच भक्त कहे जा सकने योग्य लोगोंकी अच्छी खासी तादाद है। ये लोग खादीमें विश्वास रखते हैं। स्त्री-पुरुष दोनों चरखा चलाते हैं; अपने हाथकी बनी खादी पहनते हैं। इनमें से बहुत-से लोग चरखोंको अपने कन्धों पर लादकर मीलोंका फासला तय करके आये थे; और जिस सभामें बोलनेका मुझे सुअवसर मिला उसमें मैंने उनमें से लगभग चार सौ लोगोंको बहुत मनोयोगपूर्वक चरखा चलाते देखा। उनके अपने अलग भजन हैं, जिन्हे वे समवेत स्वरमें गाते हैं।

छोटा नागपुरमें

मैंने छोटा नागपुरकी अपनी लगभग पूरी यात्रा मोटर गाड़ियोंमें ही तय की। सड़कें काफी अच्छी हैं और उनके दोनों ओरके दृश्य बड़े सुहावने हैं। चोईबासासे हमें लौटकर फिर चक्रधरपुर आना पड़ा और वहाँसे मोटरमें बैठकर हम राँची पहुँचे। रास्तेमें हम खूंटी तथा एक-दो और स्थानोपर रुके। हम ६ बजे शामको राँची पहुँचे। महिलाओंकी एक सभाका आयोजन पहलेसे ही किया गया था। मैं नही समझता कि सभाके संयोजकगण या उपस्थित महिलाएँ यह मानकर कि मैं तो देशबन्धु स्मारक कोषमें पैसा देनेकी अपील करूँगा ही, पहलेसे ही तैयार बैठे थे। लेकिन, चूँकि मैं किसी भी सार्वजनिक सभामें इसके लिए अपील करनेसे शायद ही चूकता हूँ, इसलिए इस सभामें भी इसके लिए अपील कर बैठा। अधिकांश महिलाएँ बंगाली थीं। बहुत-सी इसके लिए पहलेसे तैयार नही थी और इसलिए उनके पास देनेको पैसे नहीं थे। अतएव उन्होंने कोषके लिए अपने आभूषण ही दे दिये, जिनमें से कुछ काफी वजनी थे। अपने प्रिय नेताकी स्मृतिका सम्मान करनेके लिए इन बहनोंको अपने आभूषण आदि खुशी-खुशी देते देखकर आत्माको बड़ा तोष प्राप्त हो रहा था। कहनेकी जरूरत नहीं कि इन सभाओंमें मैं स्पष्ट बता देता हूँ कि सारी भेंटोंका उपयोग चरखा और खादीके प्रचार-प्रसारमें किया जायेगा।

१. देखिए खण्ड २७, पृष्ठ ४४९-५५ और "भाषण: ईसाइयोंकी सभामें", ४-८-१९२५।

रांचीमें मुझे गलकुण्ड[1] नामक एक छोटे-से गाँवमें ले जाया गया। यहाँ एक उत्कट खादी प्रेमी सज्जन, बाबू गिरीशचन्द्र मजूमदार, सहकारी समितिके तत्त्वावधानमें हाथ कताईका प्रयोग कर रहे हैं। यह प्रयोग अभी प्रारम्भ ही हुआ है। अगर ठीक संगठन किया गया और उपयुक्त किस्मके चरखोंसे काम लिया गया तो अन्य स्थानोंकी तरह वहाँ भी चरखेके कामके सफल होनेमें कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए।

रांचीमें शौकिया नाटक मण्डलियोंकी ओरसे देशबन्धु स्मारक कोषके लिए दो नाटक भी खेले गये। एक नाटक बंगालियोंने खेला और एक बिहारियोंने। चूंकि ये नाटक शौकिया नाटक मण्डलियोंकी ओरसे खेले जानेवाले थे, इसलिए मुझे उनके निमन्त्रण स्वीकार करनेमें कोई संकोच नहीं हुआ। लेकिन बंगालियोंका नाटक देखकर मुझे बड़ी निराशा हुई। उनका प्रदर्शन तो व्यवसायी नाटक मण्डलियोंकी पूरी नकल ही ही था। तमाम पोशाकें विदेशी वस्त्रोंसे बनी हुई थी। मुँहपर रंग-रोगन भी लगाया गया था, जबकि मैं आशा यह कर रहा था कि ये प्रदर्शन संयत ढंगके होंगे और कमसे-कम पोशाकें तो खादीकी बनी हुई होंगी। निदान, बिहारियोंका नाटक देखनेका निमन्त्रण स्वीकार करते हुए, मैंने यह शर्त रख दी कि अगर आप लोग चाहते हैं कि मैं आपका नाटक देखूँ तो पोशाकें खादीकी बनवानी होंगी — और सो भी केवल इसी प्रदर्शनके लिए नहीं, बल्कि सभी प्रदर्शनोंके लिए। और मुझे बड़ी प्रसन्नता और आश्चर्य भी हुआ, जब वे तत्काल इस बातपर राजी हो गये। कुछ ही घंटोंमें सारे हेर-फेर करने थे; लेकिन उन्होंने सब-कुछ कर लिया और व्यवस्थापकने मुझे दिये गये वचनकी घोषणा करते हुए ईश्वरसे प्रार्थना की कि वह उन्हें अपना वचन पूरा करनेमें सहायता दे। बिहारियोंके नाटकमें चमक-दमकके अभावके कारण जो कमी रह गई थी, उसे मेरे खयालसे, जो परिवर्तन किये गये, उसकी सौम्यताने पूरा कर दिया। मैं सभी शौकिया नाटक मण्डलियोंसे इन परिवर्तनोंको अपनानेका अनुरोध करता हूँ। दरअसल तो ये पेशेवर नाटक मण्डलियाँ भी जिनमें देशभक्तिकी भावना हो, इन परिवर्तनोंको आसानीसे अपना सकती हैं, और इस प्रकार भारतके करोड़ों मानवोंके आर्थिक उत्थानमें योगदान कर सकती हैं, चाहे यह योगदान कितना भी थोड़ा हो।

इस यात्राके दौरान और भी बहुतसे दिलचस्प अनुभव आये; जिनमें से एक तो उद्योग विभागके सर्वश्री एन० के० राय और एस० के० रायके साथ मेरी बातचीत और दूसरा कासिमबाजारके महाराजाकी दानशीलताके परिणाम-स्वरूप स्थापित ब्रह्मचर्याश्रम-को मेरी भेंट। लेकिन, इस सबकी चर्चा तो यहाँ छोड़नी ही पड़ेगी। रांचीसे मोटरमें सवार होकर हम हजारीबाग पहुँचे। वहाँ जो सामान्य कार्यक्रम थे उनमें भाग लेनेके अलावा मुझे सेंट कोलम्बस मिशनरी कालेजके विद्यार्थियोंके सामने भाषण भी देना पड़ा। यह कालेज बहुत पुराना है। यहाँ मैं विद्यार्थियोंके सम्मुख समाज-सेवापर बोला,[2] और यह समझानेकी कोशिश की कि चारित्र्यके बिना समाज-सेवा असम्भव है

१. ऐसा लगता है कि गाँवका यह नाम गांधीजी गलतीसे लिख गये हैं। देखिये "टिप्पणियाँ", २२-१०-१९२५ का उपशीर्षक, 'भूल-सुधार।'

२. देखिए "भाषण: विद्यार्थियोंकी सभामें", १८-९-१९२५।

और भारतमें बड़े पैमानेपर ऐसी सेवा तभी की जा सकती है, जब कार्यकर्ता गाँव-गाँवमें प्रवेश करके यह काम करे। इसके अलावा इस कामके बदले किसी पुरस्कारकी आशा नही रखनी चाहिए; यह अपना पुरस्कार आप ही है, क्योंकि इस काममें सन-सनी-जैसी कोई बात नही है, न इसका विज्ञापन ही होता है और अकसर यह काम बहुत ही कठिन परिस्थितियोंमें तथा अन्धविश्वास और अज्ञानका सामना करते हुए करना पड़ता है। मैंने यह समझानेकी भी कोशिश की कि भारतमें समाज सेवा करनेका सबसे अच्छा तरीका चरखे और खादीका प्रचार-प्रसार करना ही हो सकता है, क्योंकि इससे नौजवान लोग ग्रामवासियोंके सम्पर्कमें आते हैं, इसके बलपर वे ग्रामीणोंकी जेबमें चार पैसे पहुँचा सकते हैं, जिससे उनके और ग्रामीण लोगोंके बीच एक अटूट सम्बन्ध स्थापित हो जाता है और साथ ही यह उन सेवकोंके लिए अपने स्रष्टाको जाननेमें भी सहायक होता है, क्योंकि दीन-दुखियोंकी निःस्वार्थ सेवाका मतलब ईश्वरकी सेवा करना है।

खुदाबख्श पुस्तकालय

हजारीबागसे मोटरसे चलकर एक दो स्थानोंमें रुकते हुए हम गया आये और वहाँसे पटना पहुँचे। पटना जानेका मुख्य उद्देश्य अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी बैठकमें शामिल होना और अखिल भारतीय चरखा संघका उद्घाटन करना था। पटनामें ही मैंने ऐसा महसूस किया कि अब लगातार यात्रा करनेसे मेरा स्वास्थ्य खराब हो जायेगा। हमारे गयाके करीब पहुँचनेके समयसे ही भीड़का शोरगुल और जय-जयकार मेरे लिए लगभग असह्य हो गया और गयामें तो मुझे ऐसा लगा कि अगर इस शोरगुलको और सुनते रहना पड़ा तो मुझे गश आ जायेगा। इसलिए मैंने अपने कान बन्द कर लिये। इसलिए राजेन्द्रबाबूने इस विवेकशून्य किन्तु सदाशयतापूर्ण स्नेहके शोरगुल-भरे प्रदर्शनको रोकनेके लिए काफी एहतियात बरती और कृपापूर्वक उन्होंने मेरे कार्यक्रममें परिवर्तन करके उसे कम कर दिया। इसलिए पटनामें मैं अपेक्षाकृत आरामसे रहा। मुझे खुदाबख्श ओरिएण्टल पुस्तकालय देखनेकी इच्छा बहुत दिनोसे थी। इस बार मैंने अपनी इच्छा पूरी की। मैंने इसके विषयमें बहुत-कुछ सुन रखा था। लेकिन, यह नहीं सोचता था कि इसके पास इतनी सारी मूल्यवान् निधियाँ पड़ी हुई हैं। इसके लगनशील संस्थापक खान बहादुर खुदाबख्श एक वकील थे। इसके लिए पुस्तकें जुटाना उन्होंने अपना निष्काम कर्त्तव्य बना लिया था — वे विदेशोंसे भी अरबी और फारसीके बहुत-से प्राचीन और दुर्लभ ग्रंथ ले आये हैं। मैंने 'कुरान'की जो हस्तलिखित प्रतियाँ देखी, उनकी सजावट बहुत सुन्दर थी। उन अज्ञात कलाकारोंने निश्चय ही इसपर वर्षोंतक धैर्यपूर्वक काम किया होगा। 'शाहनामा' के अलंकृत संस्करणका एक-एक पृष्ठ एक-एक नयनाभिराम कला-कृति है। मुझे बताया गया है कि इस पुस्तकालयमें सुरक्षित कुछ पाण्डुलिपियोंका साहित्यिक महत्त्व भी कम नही है। राष्ट्रको यह महान् देन देनेके लिए इस संस्थाके संस्थापकको जितना सम्मान दिया जाये, कम है।

एक सरकारी प्रयोग

पटनामें मैंने जो दूसरी दिलचस्प चीज देखी, वह थी उद्योग विभाग द्वारा संचालित शिल्पशाला। इसके अधीक्षक श्री राव हैं। शिल्पशालाका भवन बिलकुल आधुनिक ढंगका है, जिसमें प्रकाश और हवा आने-जानेकी पूरी व्यवस्था है। यह बहुत ही सुनियोजित ढंगसे बना हुआ है और बड़ा साफ-सुथरा रखा जाता है। इसमें खास तौरपर खिलौने बनाने और हाथ-करघेपर बुनाईका काम होता है। इन चीजोंके लिए पटना बड़ा मशहूर भी है। फीते और पलंगकी निवाड़ बुननेके सुधरे ढंगके करघे प्रशंसनीय हैं। फिर भी, एक बात मुझे बहुत खटकी, वह यह कि इस प्रशंसनीय शिल्पशालामें मुख्य वस्तु अर्थात् चरखेका अभाव था। सुधरे हुए तरीकोंसे खिलौने बनाकर शिल्पी लोग बेशक बेहतर कमाई कर सकते हैं; इसलिए पटना-जैसे नगरमें स्थापित शिल्पशालामें इस शिल्पको स्थान देना उचित ही था। भारतीय शिल्पशाला हाथ-करघापर बुनाई करनेके शिल्पकी व्यवस्थाके बिना भी अधूरा ही माना जायेगा, किन्तु जो राष्ट्रीय उद्योग विभाग हाथ-कताईकी ओर और इस तरह उन करोड़ों भारतीयोंकी ओर, जिनके पास आज कोई पूरक धन्धा नहीं है, ध्यान नहीं देता तो उसे किसी तरह पूरा नहीं माना जा सकता। हाथ-कताईको सफल बनानेके रास्तेमें मुझे जो अड़चनें बताई गईं, वे मुख्यतः दो हैं:

(१) हाथ-कता सूत मिलमें तैयार सूतके मुकाबलेमें नहीं टिक सकता। क्योंकि अबतक तो वह मिलके सूतके समान मजबूत कभी नहीं पाया गया।

(२) चरखेपर इतना कम सूत निकलता है कि वह लाभदायक नहीं हो पाता।

जो लोग वर्षोंसे खादी पहनते आ रहे हैं, उनका कहना तो यह है कि अगर खादी अच्छे हाथ-कते सूतकी बनी हो तो यह बराबर उतने ही नम्बरसे मिलके सूतसे बने कपड़ेकी अपेक्षा अधिक टिकाऊ होती है। उदाहरणके लिए कुछ आन्ध्रवासी भाइयोंने मुझे बताया है कि उनकी धोतियाँ चार-चार सालतक, बल्कि इससे भी ज्यादा चली हैं, जब कि मिल-कते सूतसे बनी धोतियाँ साल-भरके अन्दर ही फट जाती हैं। लेकिन, मैं जो बात कहना चाहता हूँ वह यह नहीं कि हाथ-कते सूतसे बुना कपड़ा ज्यादा टिकाऊ होता है। मैं तो यह कहना चाहता हूँ कि चूँकि भारतकी विशाल कृषक आबादीके लिए, जो देशकी कुल आबादीका ८५ प्रतिशत है, सिर्फ हाथ-कताई ही सहायक धन्धा हो सकती है। इसलिए हम अपने देशके लिए कपड़ेकी जो भी व्यवस्था करें वह इस बातका खयाल रखते हुए करें कि इस जरूरतको हाथकते सूतसे ही पूरा करना है। इसलिए हमें अपनी शक्ति चाहे जहाँ और जिस तरह कता हुआ, बढ़िया और सस्ता सूत प्राप्त करनेमें नहीं, बल्कि सस्तेसे-सस्ता और अच्छेसे-अच्छा हाथ-कता सूत प्राप्त करनेमें लगानी चाहिए। अगर मेरी बात ठीक हो तो देशके तमाम उद्योग विभागोंमें चरखेको अपनी प्रवृत्तियोंका केन्द्र मानकर चलाया जाना चाहिए। इसलिए, उद्योग विभागोंको चरखेकी उत्पादन-क्षमता बढ़ानेके लिए उसमें उपयुक्त सुधार करना चाहिए। उन्हें सिर्फ हाथ-कता सूत ही खरीदना चाहिए, जिससे हाथ-कताईको सहज ही उत्तेजन मिले। उन्हें हर किस्मके हाथ-कते सूतका उपयोग करनेका उपाय ढूँढ़ना चाहिए। उन्हें सबसे अच्छा और बारीक सूत कातनेवालोंको पुरस्कार देनेकी व्यवस्था

करनी चाहिए। उन्हे अच्छा हाथ-कता सूत प्राप्त करनेके लिए जो कुछ सम्भव हो वह सभी करना चाहिए। इसका मतलव यह नही है कि हाथ-वुनाईको कम उत्तेजन दिया जाये। इसका मतलव तो सिर्फ यह है कि हाथ-वुनाई और हाथ-कताई दोनों को और भी उत्तेजन दिया जाये तथा इस तरह उन लोगोंकी सेवा की जाये, जो सवसे ज्यादा जरूरतमन्द है।

आपत्ति है कि हाथ-कताई लाभदायक काम नही है, किन्तु जिन लोगोंके पास काफी अवकाश है और जिनके लिए आयमें एक पैसे की वृद्धिका भी वड़ा महत्त्व है, उनके लिए तो यह लाभदायक है ही। अगर करोड़ों किसानोंको वर्षमें कमसे-कम चार महीने मजवूरन वेकार वैठे रहना नही पड़े तव तो पूरा चरखा-कार्यक्रम एक निरर्थक चीज है। जहाँ-जहाँ खादी कार्यकर्त्तागण निष्काम भावसे अपना काम करते रहे, है वहाँ हाथ-कताई न केवल लाभदायक सावित हुई है, वल्कि ग्रामवासियोंको उनके सूतके खरीदार मिल जानेसे, उनके लिए यह वरदान-रूप सिद्ध हुई है। जिन लोगोंकी मासिक आय सिर्फ पाँच-छ रुपये है और जिनके पास समय है, वे उस कामको दौड़कर करेंगे जो उनकी आयमें प्रतिमास दो रुपये की वृद्धि कर सकता है।

मलखाचक और दूसरे केन्द्र

मेरे सामने एक रिपोर्ट पड़ी हुई है, जिसमें स्वयंसेवकोंके एक दल द्वारा विहारके कई स्थानोंमें किये गये कामका विवरण दिया गया है। उद्योग शाला देखनेके वाद मैं मलखाचकमें उनका केन्द्र देखने गया। यह स्थान पटनासे लगभग वारह मील दूर है। सिर्फ मलखाचकमें ही, जहाँ की आवादी लगभग एक हजार है, चार सौ चरखे चलते है और तीस वुनकर हाथ-कते सूतसे कपडा वुनते है। मैंने कुछ वहनोंको अपना-अपना चरखा चलाते हुए भी देखा। चरखे ठीकसे वने हुए नही थे। फिर भी कातनेवाले लोग उनसे सन्तुष्ट थे। उन्हे प्रतिमास औसतन दो रुपये मिल जाते है। एक हजारकी आवादी वाले गाँवके लिए आठ सौ रुपयेकी अतिरिक्त मासिक आयको हर हालतमें अच्छी आय ही माना जायेगा। इनके अलावा वुनकर लोग भी प्रतिमास प्रतिव्यक्ति पन्द्रह रुपये कमा लेते है, जो उक्त राशिमें शामिल नही है। हो सकता है, वे पहले भी इतना कमा लेते हों। कताई-कार्यका सगठन करनेके साथ-साथ ये कार्यकर्त्ता अपने सीमित साधनों और उससे भी सीमित डाक्टरी ज्ञानके वलपर ग्रामवासियोंको इलाजकी जितनी सुविधा दे सकते है, दे रहे है। उन्होंने अपना काम १९२१ में प्रारम्भ किया था। इस रिपोर्टमें वताया गया है कि आज वे छ. केन्द्रोमें — अर्थात् मलखाचकके अलावा मधुवनी, कपासिया, शकरी, मधेपुरी और पुपरीमें — काम कर रहे है। १९२२ में उन्होंने ६२,००० रुपयेकी खादी तैयार की, १९२३ में ८४,००० रुपयेकी और १९२४ में ६३,००० रुपयेकी। और इस वर्षके गत नौ महीनेमें वे एक लाख रुपये की खादी वुन चुके है। १९२४ में वे रुईकी कमीके कारण अधिक नही वुन पाये। रिपोर्टमें कहा गया है कि अगर उन्हें नियमित रूपसे रुई मिलती रहे और यह भरोसा रहे कि उनका माल विक जायेगा, तो उनकी विस्तारकी क्षमता लगभग अपरिमित है। उनका खयाल है कि आसपासके लगभग सभी गाँव चाहेंगे कि ये कार्यकर्त्ता वहाँ जाकर काम करें। उनकी तैयार की हुई

खादी बहुत अच्छी होती है। और वे सिर्फ बहुत मोटी किस्मकी ही खादी तैयार करते हों, सो भी नही है। निर्मित खादीमें से कुछ तो बहुत महीन और अच्छी होती है। वे १० नम्बरका चालीस तोला सूत कातनेके लिए चार आने देते हैं। और ४५ इंच चौड़ा थान बुननेके लिए प्रति गज २॥ आना देते हैं। कुल मिलाकर २८ कार्यकर्त्ता हैं। इन केन्द्रोंकी व्यवस्थामें औसतन प्रति कार्यकर्त्ता प्रति मास २५ रुपयेका खर्च पड़ता है। इसमें भोजन और यात्राका खर्च भी शामिल है। ये केन्द्र घाटेपर नही चल रहे हैं। अपने मालकी बिक्रीकी व्यवस्था ये खुद ही करते हैं। उनके यहाँ जो सूत आता है, उसकी किस्म देखनेसे पता चलता है कि हर महीने कुछ-न-कुछ प्रगति हो रही है। मैं उद्योग विभाग तथा आम तौरसे जनताको भी आमन्त्रित करता हूँ कि वे खुद ही आकर इन गाँवोंकी स्थितिका अध्ययन करे और देखें कि ऊपर दिये गये तथ्य सही हैं या नही। इन कार्यकर्त्ताओंको गाँवोंमें ७,००० चरखे और हाथ-कते सूतसे बुनाई करनेवाले २५० करघे चलवानेका श्रेय प्राप्त है।

बिहारकी स्थिति दूसरे प्रान्तोंसे भिन्न नही है। बंगाल, आन्ध्र, तमिलनाड और संयुक्त प्रान्तके कई हिस्सोंमें भी ऐसी ही स्थिति है। मैंने इन प्रान्तोंका उल्लेख इसलिए किया है कि इनमे ऐसे लोगोंकी स्थितिका अध्ययन किया जा सकता है, जिन्होंने कताईका काम अपना लिया है। इस समय दूसरे प्रान्तोंसे भी अधिकांशमें यही वस्तु-स्थिति देखनेको मिलेगी। उदाहरणके लिए, उड़ीसाको, जहाँके लोग किसी तरह गुजारेके लायक कमा लेते हैं, सिर्फ कुशल कार्यकर्त्ताओं और अच्छे सगठनका इन्तजार है। राजस्थानमें वैसे तो बहुतसे लखपति लोग हैं, लेकिन वहाँ भी कताईकी कला अभी जीवित है और आम जनता बहुत गरीब है। अगर सिर्फ राजा-महाराजा लोग इस आन्दोलनको हार्दिक सहयोग दे, अपने-अपने राज्योंमें लोगोंको खादी पहननेके लिए बढ़ावा दें और खादीकी राहमे जहाँ-कही कोई बाधा हो उसे दूर कर दें तो अकसर अकालका शिकार होते रहनेवाले इस प्रदेशको बिना कोई बड़ी पूंजी लगाये और बिना किसी आडम्बरके, गरीब जनताके लिए हर वर्ष लाखों रुपयेकी अतिरिक्त आय होने लगे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ८-१०-१९२५

१६८. असहयोगियोंका हश्र

एक भाई पूछते हैं :

> अगर आप सब कुछ स्वराज्य दलके सुपुर्द कर देंगे तो उनका हश्र क्या होगा जिन्होंने असहयोगको अपना राजनीतिक धर्म बना लिया है?

प्रश्नकर्त्ता भूल जाते हैं कि आज भी मैं उतना ही पक्का असहयोगी हूँ जितना पहले था और यह मेरा राजनीतिक ही नही, बल्कि पारिवारिक और सामाजिक धर्म भी है। जैसा कि मैंने इन पृष्ठोंमें बार-बार कहा है, अवस्था-विशेष और परिस्थिति-विशेषमें असहयोगकी सम्भावना रखे बिना स्वेच्छया और कल्याणकर सहयोग असम्भव है। कांग्रेस किसी व्यक्तिके लिए उसका धर्म निर्धारित नही करती। वह तो एक सवेद-नशील बैरोमीटर (वायुभार मापक यन्त्र) है, जो समय-समयपर भारतके राजनीतिक दृष्टिसे जागरूक लोगोंकी बदलती हुई भावनाका संकेत देता रहता है। कोई भी कांग्रेसी अपने राजनीतिक धर्मके खिलाफ काम करनेके लिए बाध्य नही है। लेकिन, उसे असहयोगको आगे बढानेके लिए कांग्रेसके नामका उपयोग करनेकी छूट नही है। इस प्रस्तावके अन्तर्गत ऐसी व्यवस्था है कि कांग्रेसकी प्रतिष्ठा और उन आर्थिक साधनोंका उपयोग, जो किसी विशेष कामके लिए निर्धारित करके नही रखे गये हैं, स्वराज्यवादियोंकी कौंसिल-नीतिको ही सफल बनानेके लिए किया जायेगा, और इस-लिए कांग्रेस संगठनोंको न केवल स्वराज्यवादियोंकी नीतिको आगे बढानेके लिए पैसे आदि मंजूर करनेका अधिकार है, बल्कि उनके लिए यह लाजिमी है कि जहाँ कही वे कौसिलों सम्बन्धी प्रचारके लिए पैसा खर्च करें, वहाँ वे उसका उपयोग स्वराज्यवा-दियोंकी नीतिकी सफलताके लिए ही करे। इसके विपरीत, ऐसा कोई भी कांग्रेस-संगठन, जिसमें सदस्योंका स्पष्ट बहुमत किसी भी विशुद्ध राजनीतिक कार्यके लिए पैसा खर्च करने या जुटानेके विरुद्ध हो, इस प्रस्तावकी रू से अपनी इच्छाके विरुद्ध वैसा करनेके लिए बँधा हुआ नही है। कांग्रेसके सभी प्रस्ताव मार्ग-दर्शन और दिशादर्शन-के लिए हैं; वे किसीके साथ जोर-जबर्दस्ती करनेके लिए नही हैं।

पत्र-लेखक आगे पूछते हैं कि

> असहयोगके विषयमें चरखा संघकी स्थिति क्या होगी?

संघका राजनीतिक असहयोगसे कोई सरोकार नही है। संघके विधानकी प्रस्ता-वना ही ऐसी है कि उसके लिए राजनीतिकी कोई गुंजाइश नही रह जाती। मैं इस संघका अध्यक्ष हूँ, लेकिन एक पक्के असहयोगीकी हैसियतसे नही, बल्कि एक प्रबल खादी-प्रेमीके रूपमें। यह लोकोपकारी उद्देश्योंसे गठित एक व्यापारिक या आर्थिक संगठन है। यह खादीका व्यापार तो करेगा, लेकिन सदस्योंके लाभार्थ नहीं, राष्ट्रके लाभार्थ सदस्यगण लाभांश प्राप्त करनेके बजाय इसमें वार्षिक चन्दा दिया करेंगे, ताकि उनके चन्देसे राष्ट्र लाभान्वित हो सके। इसके दरवाजे राजनीतिक विचार रखनेवाले

सहयोगियों और असहयोगियों, राजाओं-महाराजाओं और विभिन्न जाति तथा मतके उन सभी लोगोंके लिए खुले हुए हैं जिनका आर्थिक साधनके रूपमें चरखे और खादीके कारगर होनेमें विश्वास है।

पत्र-लेखकने यह भी लिखा है कि :

> **पाँच-सूत्री बहिष्कारके बिना चरखा संघका कार्यक्रम पूरा नहीं हो सकता।**

मुझे तो ऐसा बिलकुल नही लगता। कोई कारण नही कि नामीसे-नामी वकील भी खादी न पहनें, वास्तवमें ऐसे कुछ वकील खादी पहन भी रहे हैं। कोई कारण नही कि सरकारी स्कूलोंमे भी विद्यार्थी और अध्यापक खादी न पहनें। और जहाँतक स्वराज्यवादियोंका सम्बन्ध है, पार्षदगण तो खादी पहन ही रहे हैं। उन्होंने खादीको विधान सभा और विधान परिषदोंमें भी दाखिल कर दिया है। कई खिताबयाफ्ता लोग भी बराबर खादी ही पहनते हैं।

पत्र-लेखकका अन्तिम प्रश्न यह है :

> **अगर कट्टर असहयोगी कांग्रेससे निकाल दिये जाते हैं और उन्हें चरखा संघमें भी स्थान नहीं मिलता तो क्या वे अपना एक अखिल भारतीय संघ कायम कर सकेंगे?**

यह प्रश्न बहुत बेतुके ढंगसे पूछा गया है। कांग्रेससे कभी किसीको निकाला नही जाता। जब लोग बहुमतका काम अपनी अन्तरात्माके विरुद्ध पायें तो वे स्वयं कांग्रेससे बाहर निकल सकते हैं; और वास्तवमें ऐसा प्रसंग आनेपर करते भी यही हैं। किन्तु, बहुमत अगर अल्पमतवालोंकी अन्तरात्माके अनुकूल नही बन पाता तो इसके लिए उसे दोष नही दिया जा सकता। और अगर ऐसे असहयोगी हों जिन्हें इस कारणसे कि कांग्रेस कौंसिल-प्रवेशका समर्थन करती है, उसमें बने रहना अपनी अन्तरात्माके खिलाफ जान पड़ता है, तो वे बखूबी उससे अलग हो सकते हैं। बल्कि मैं तो यह भी कहूँगा कि अगर वे कांग्रेसमें रहकर कौंसिल सम्बन्धी कार्यक्रमके रास्तेमें रोड़े अटकाना चाहते हों तो उनका निकल जाना हीं बेहतर है। मेरे विचारमें, कांग्रेस संगठनको आज इस बातकी जरूरत है कि वह बिना किसी आन्तरिक द्वन्द्व और झगड़ेके काम कर सके। यह तो मैं बता ही चुका हूँ कि चरखा संघमें जिस प्रकार सहयोगियोके लिए स्थान है, उसी प्रकार असहयोगियोंके लिए भी है। यदि इस सबके बावजूद ऐसे असहयोगी हों जो एक अलग अखिल भारतीय संगठन बनाना अपना कर्त्तव्य मानते हों तो वे शौकसे ऐसा कर सकते हैं; लेकिन मैं तो ऐसे किसी कामको जरा भी ठीक नही समझूँगा। अगर असहयोगी लोग फिलहाल व्यक्तिगत रूपसे ही असहयोग करते रहें तो इतना काफी है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ८-१०-१९२५

१६९. यूरोपवालोंसे

जब एक ओर मैं अपनी लघुता और सीमाओंके बारेमें और दूसरी ओर लोग मुझसे जो अपेक्षाएँ रखते हैं उनके बारेमें सोचता हूँ तो घबरा जाता हूँ। किन्तु तत्काल ही यह ख्याल आता है कि वैसे तो मैं भी सत्प्रवृत्तियों और दुष्प्रवृत्तियोंका एक विचित्र मिश्रण-मात्र हूँ। लेकिन मुझमें सत्य और अहिंसा, ये दो गुण, चाहे जितने भी अपूर्ण रूपमें हों किन्तु अन्य लोगोंकी अपेक्षा अधिक मूर्तिमन्त हुए हैं; और तब मैं प्रकृतिस्थ हो जाता हूँ और मेरे सामने यह रहस्य स्पष्ट हो जाता है कि इन अपेक्षाओं-के भीतरसे मेरा नहीं बल्कि उन दो अमूल्य गुणोंका सम्मान झलकता है। अतएव, मुझे पाश्चात्य संसारके सत्यान्वेषी भाइयोंकी, जो भी सहायता मैं कर सकता हूँ, करनेसे जी नहीं चुराना चाहिए।

अमेरिकासे आये हुए एक पत्रका उत्तर मैं दे चुका हूँ। जर्मनीसे प्राप्त एक दूसरा पत्र मेरे सामने है। पत्र तर्कपुष्ट है। लगभग एक महीनेसे यह मेरे पास है। पहले मैंने सोचा था कि इसका निजी उत्तर दे दूँ और यदि पत्र-लेखक चाहें तो जर्मनीमें उसे प्रकाशित करायें। किन्तु दोबारा पढ़नेपर मैंने यही फैसला किया कि 'यंग इंडिया' के स्तम्भोंमें ही उत्तर दिया जाये। पत्र नीचे पूराका-पूरा दे रहा हूँ।[1]

आजकल मैं दौरेपर हूँ, इसलिए 'यंग इंडिया' की फाइल मेरे साथ नहीं है। परन्तु अपने इस कथनकी कि "सत्याग्रह पूर्ण अहिंसाकी अपेक्षा रखता है और किसी स्त्रीको बलात्कारका खतरा रहते हुए भी हिंसाका अवलम्बन करके अपनी रक्षा न करनी चाहिए" पुष्टि करनेमें मुझे कोई कठिनाई नहीं है। ये दोनों ही बातें आदर्श स्थितिसे सम्बन्धित हैं और इसलिए ये उन्हीं स्त्रियों और पुरुषोंको ध्यानमें रखकर कही गई हैं, जिन्होंने अपने आपको इतना शुद्ध बना लिया है कि उनके अन्दर द्वेष, क्रोध या हिंसाका लेश भी नहीं रह गया हो। इसका मतलब यह नहीं है कि हमारी कल्पनाकी वह आदर्श सत्याग्रही स्त्री चुपचाप अपने ऊपर बलात्कार होने देगी। अव्वल तो ऐसी स्त्रीको कभी बलात्कारका भय रहेगा ही नहीं, और दूसरे, यदि रहेगा भी तो वह हिंसाका अवलम्बन किये बिना उस दुष्टसे अपनी इज्जतकी पूरी-पूरी रक्षा कर सकेगी।

लेकिन, मैं यहाँ छोटी-छोटी तफसीलोंपर विचार नहीं करूँगा। ऐसी स्त्रियाँ भी, जो हिंसाके द्वारा अपनी रक्षा कर सकें, बहुत नहीं हैं। और खुशीकी बात है कि ऐसे पाशविक आक्रमणोंकी घटनाएँ भी बहुतेरी नहीं होतीं। जो भी हो, मेरा तो इस सिद्धान्तमें सोलहों आना विश्वास है कि पूर्ण शुद्धता अपनी रक्षा आप ही कर लेती है। तेजोमय पवित्रताके सामने दुष्टसे-दुष्ट व्यक्ति भी कुछ समयके लिए तो नम्र हो जाता है।

१. पत्रके पाठके लिए देखिए परिशिष्ट ३।

पत्र-लेखकको जनरल डायरके सम्बन्धमें मेरी स्थितिकी सही जानकारी नहीं है। उन्हें यह जानकर प्रसन्नता होगी कि बात केवल इतनी ही नहीं है कि मैंने उन्हें सजा देनेकी सिफारिश नहीं की, बल्कि मेरे साथियोंने भी, मुख्यतः मेरा खयाल करके ही, डायरको सजा देनेकी अपनी माँग छोड़ दी। लेकिन मैंने जिस बातकी माँग की थी और जिसपर अब भी मेरा आग्रह है, वह है जनरल डायरकी पेन्शन बन्द कर देना। अत्याचारीको उसके अत्याचारके लिए पुरस्कार देना अहिंसाका अंग नहीं है; पर यदि मैं जनरल डायरको पेन्शन देनेकी बात खुशी-खुशी मान लूँ तो मेरा यह कार्य प्रायः इसी श्रेणीका होगा। परन्तु मेरे कथनका कोई गलत अर्थ न समझे। अवस्था-विशेषमें मैं अत्याचारियोंको सजा देनेकी भी सिफारिश कर सकता हूँ। उदाहरणके लिए, समाजकी वर्तमान अवस्थाको देखते हुए, मैं चोरों और डाकुओंको बन्दकर रखनेमें बिलकुल आगा-पीछा नहीं करूँगा; यह अपने-आपमें एक प्रकारकी सजा तो है ही। लेकिन साथ ही मैं यह भी स्वीकार करूँगा कि यह सत्याग्रह नहीं है और उस उच्च सिद्धान्तसे पतन है। मगर यह चीज इस बातकी सूचक नहीं होगी कि खुद इस सिद्धान्तमें कोई कमी है; इसका मतलब सिर्फ मुझे अपनी कमजोरीको स्वीकार करना होगा। आज समाजकी जो अवस्था है, उसको ध्यानमें रखते हुए मेरे पास ऐसे लोगोंका दूसरा कोई इलाज नहीं है। इसलिए मैं जेलखानोंको दण्डगृहके बजाय सुधार-गृह बनानेके विचारका प्रतिपादन करके सन्तुष्ट हो रहा हूँ।

लेकिन मैं मृत्यु-दण्ड और कैद तथा शारीरिक दण्डके बीच फर्क करता हूँ। मेरे खयालसे, यहाँ सिर्फ मात्रा-भेद ही नहीं, प्रकार-भेद भी है। मैं चाहूँ तो कैदकी सजा किसी समय रद भी कर सकता हूँ, और इसी प्रकार जिस व्यक्तिको शारीरिक दण्ड दिया हो, उसकी क्षतिपूर्ति भी कर सकता हूँ। लेकिन, किसीको एक बार मार देनेके बाद न उसे जिलाया जा सकता है, न उसकी क्षतिपूर्ति की जा सकती है। प्राण लेनेका अधिकार तो सिर्फ ईश्वरको ही है, क्योंकि किसीको प्राण देनेकी शक्ति सिर्फ उसीमें है।

पत्र-लेखकने सत्याग्रही द्वारा आत्म-बलिदान और दूसरोंके द्वारा उसे दिये जानेवाले दण्डकी चर्चा साथ-साथ की है। मैं मानता हूँ कि ऐसा करते समय वे दोनों स्थितियोंको एक-सा मानकर नहीं चले होंगे। लेकिन, अगर ऐसी किसी उलझनकी सम्भावना भी हो, तो उससे बचनेके लिए मैं यह स्पष्ट कर दूँ कि अहिंसाका सिद्धान्त सिर्फ एकके द्वारा दूसरेको पहुँचाई गई किसी प्रकार की चोटपर ही लागू होता है। इसके विपरीत, स्वयं चोट और कष्ट सहना तो अहिंसाका मूल-मन्त्र है, और दूसरोंके प्रति हिंसाका सबसे अच्छा विकल्प है। मैं सत्याग्रहके लिए हजारों स्वयंसेवकोंके खुशी-खुशी अपनी जान दे देनेके पक्षमें हूँ — सो इसलिए नहीं कि मैं जिन्दगीको कुछ कम मूल्यवान मानता हूँ। बल्कि इसलिए कि मैं जानता हूँ कि इसका परिणाम अन्ततः मानव-जीवनकी रक्षा ही होता है; और जो बात इससे भी बड़ी है वह यह है कि इससे प्राण उत्सर्ग करनेवाले लोगोंकी आत्माका उन्नयन होता है और उनके बलिदानके कारण संसार नैतिक दृष्टिसे समृद्ध होता है। मैं समझता हूँ, पत्र-लेखकका यह कथन

बिलकुल ठीक है कि असहयोग केवल एक आदर्श ही नहीं, बल्कि "भारतको स्वतन्त्रता दिलानेका एक सुरक्षित और छोटा रास्ता भी है।" मैं तो कहूँगा कि राज्योंके पारस्परिक सम्बन्धोंके लिए भी यह सिद्धान्त बहुत उपयुक्त है। इस सन्दर्भमें अगर मैं गत महायुद्धकी बात करूँ तो मैं जानता हूँ कि इसका मतलब एक बहुत ही नाजुक विषयकी चर्चामें पड़ना होगा। फिर भी मुझे लगता है, अपनी स्थिति स्पष्ट करनेके लिए यह जरूरी ही होगा। जहाँतक मैं समझता हूँ, दोनों पक्ष अपने स्वार्थ, अपनी लोलुपताको तुष्ट करनेके लिए ही इस युद्धमें पड़े थे। यह युद्ध कमजोर जातियोंकी लूटके मालको — जिसे मीठे शब्दोंमें व्यापार कहा गया है — आपसमें बाँटनेके लिए किया गया था। अगर जर्मनी आज अपनी नीति बदल दे और अपनी स्वतन्त्रताका उपयोग शक्तिशाली राष्ट्रोंके बीच विश्व-व्यापारके बँटवारेके लिए नहीं, बल्कि अपनी नैतिक श्रेष्ठताके बलपर दुनियाकी कमजोर जातियोंकी रक्षाके लिए करनेका संकल्प कर ले तो निश्चय ही इसके लिए उसे किसी सैन्य-बलकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी। जरा सोच कर देखनेसे स्पष्ट हो जायेगा कि अगर यूरोपमें आम निःशस्त्रीकरणका श्रीगणेश होना है और यूरोपको आत्म-विनाशसे बचानेके लिए यदि इसे किसी-न-किसी दिन करना ही है, तो एक-न-एक राष्ट्रको बहुत बड़ी जोखिम उठाकर सबसे आगे आकर अपने आपको निःशस्त्र करनेका साहस दिखाना ही होगा। अगर सौभाग्यसे यह बात हो जाये तो उस राष्ट्रकी अहिंसाका स्तर बहुत ऊँचा उठ जायेगा और सारी दुनिया उसकी कद्र करेगी। फिर उसके निष्कर्ष बराबर सही और उसके निश्चय अटल हुआ करेंगे। उसमें शौर्यपूर्ण आत्म बलिदानकी जबर्दस्त शक्ति आ जायेगी और उसे जितनी चिन्ता अपने कल्याणकी होगी उतनी ही अन्य राष्ट्रोंके कल्याणकी भी होगी। मैं जानता हूँ कि मैं एक व्यावहारिक प्रश्नपर, जिसके व्यापक अर्थोंका मुझे ज्ञान नहीं है, सैद्धान्तिक तौरपर विचार कर रहा हूँ। इसके लिए मैं सिर्फ यही सफाई दे सकता हूँ कि अगर मैंने ठीक समझा है तो पत्र-लेखकने मुझसे इसी बातकी अपेक्षा की है।

बेशक, मैं अहिंसा-मात्रको उचित समझता हूँ और मानव-मानव और राष्ट्र-राष्ट्रके आपसी सम्बन्धोंमें उसका प्रयोग शक्य मानता हूँ। किन्तु इसका मतलब "बुराइयोंके खिलाफ सभी प्रकारके सही संघर्षकी ओरसे विरक्त हो जाना" नहीं है। इसके विपरीत, मेरी कल्पनाकी अहिंसाके उपयोगका मतलब प्रतिहिंसाके तरीकेको अपनानेकी अपेक्षा कहीं अधिक सक्रिय और वास्तविक संघर्ष करना है, क्योंकि प्रतिहिंसा तो चीज ही ऐसी है जिससे बदी और भी बढ़ती है। मैं अनैतिकताका मानसिक और इसलिए, नैतिक प्रतिरोध चाहता हूँ। मैं अत्याचारीकी तलवारकी धारको बिलकुल ही कुण्ठित कर देना चाहता हूँ, लेकिन उसके मुकाबलेमें तीक्ष्णतम धारवाला हथियार उठाकर नहीं, बल्कि उसकी इस आशाको निराशामें बदलकर कि मैं उसका शारीरिक प्रतिरोध करूँगा। इसके बदले मैं जिस आत्मबलसे उसका मुकाबला करूँगा, वह उसे चक्करमें डाल देगा। पहले तो वह हक्का-बक्का रह जायेगा और अन्तमें उसे उसकी श्रेष्ठता स्वीकार करनी पड़ेगी; लेकिन इस स्वीकृतिसे वह अपमानित नहीं होगा, बल्कि ऊपर

उठेगा, उसका उद्धार होगा। अब कोई कह सकता है कि यह भी तो विचारोंकी दुनियासे सम्बन्धित एक आदर्श स्थिति ही है। ऐसा कहना ठीक ही है, जिन अवधारणाओंके आधारपर मैंने अपनी दलीलें खड़ी की हैं, वे यूक्लिडकी परिभाषाओंके समान ही सच्ची हैं — यूक्लिडकी परिभाषाएँ महज इसलिए कुछ कम सत्य नहीं हो जातीं कि व्यवहारतः हम उसके द्वारा परिभाषित रेखा भी नहीं खींच सकते। लेकिन, किसी ज्यामिति-शास्त्रीके लिए भी यूक्लिडकी परिभाषाओंको ध्यानमें रखे बिना आगे बढ़ना असम्भव हो जाता है। इसी प्रकार हम भी, यद्यपि पत्र लिखनेवाले जर्मनभाई, उनके मित्र, सहयोगी तथा स्वयं मैं भी, उन बुनियादी अवधारणाओंकी उपेक्षा नहीं कर सकते, जिनके आधारपर सत्याग्रहके सिद्धान्तका यह महल खड़ा है।

अब एक ही कठिन प्रश्नका उत्तर देना शेष रह जाता है। पत्र-लेखकने बड़ी खूबीके साथ अंग्रेजोंके विश्वको ज्ञान और सभ्यताका पाठ पढ़ानेके अहंकारपूर्ण दावेकी तुलना विवाहित व्यक्तियोंके बीच सम्बधोंपर मेरे विचारोंसे कर दी है। लेकिन यह तुलना विचार करनेपर ठीक नहीं जान पड़ती। विवाह-बन्धनमें तो एक-दूसरेसे सिर्फ पारस्परिक सहमतिसे ही मिलनेकी बात होती है। लेकिन निश्चय ही, संयमके लिए दूसरे पक्षकी सहमतिकी आवश्यकता नहीं है। अगर एक पक्ष संयमके तमाम बन्धन तोड़ दे तो विवाहित जीवन असह्य हो जायेगा और ऐसा होता भी रहता है। विवाह किसी दम्पतीके इस अधिकारकी पुष्टि करता है कि जब दोनोंकी इच्छा हो तो दोनोंका एक-दूसरेके साथ, किसी तीसरे व्यक्तिके साथ नहीं, समागम हो सकता है। लेकिन इससे किसी एक पक्षको इच्छा होनेपर दूसरे पक्षको समागमके लिए मजबूर करनेका अधिकार नहीं मिल जाता। जब एक पक्ष नैतिक अथवा किसी अन्य कारणसे दूसरेकी इच्छाका पालन न कर सकता हो, तब क्या किया जाये, यह एक अलग सवाल है। मेरी अपनी राय पूछें तो मैं कहूँगा कि अगर एकमात्र विकल्प तलाक ही हो और अगर यह मान लिया जाये कि मैं सिर्फ नैतिक कारणोंसे ही ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहता हूँ तो अपने इस नैतिक उत्थानके मार्गमें बाधा पड़ने देनेके बजाय इस विकल्पको मैं ज्यादा खुशीसे स्वीकार कर लूँगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ८-१०-१९२५

१७०. सर्वव्यापी तकली

यह देखकर मुझे सचमुच आश्चर्य होता है कि कताई-मिलोंके हमलेके बावजूद यह सीधा-सादा औजार — तकली — आज भी टिका हुआ है। यह तो मैं देख ही रहा हूँ कि भारतमें इसका व्यापक प्रयोग हो रहा है; डा० अन्सारीने एक पोस्टकार्ड भेजा है, जिसपर आरामसे बैठकर तकली चलाती हुई एक स्त्रीकी तस्वीर है। मिट्टीके एक बर्तनमें रखी तकलीको वह दाहिने हाथमें थामे हुए है और बायें हाथसे पूनी पकड़े हुए वह उसमें से सूत निकाल रही है। यह दृश्य बेल्तका है। तकलीमें कहीं और किसी भी समय चलाई जा सकनेकी अद्‌भुत क्षमता है। अगर कोई आदमी बहुत व्यस्त हो और उसे लगातार आधे घंटेतक बैठकर चरखा चलाना कठिन लगे तो उसके लिए सर्वोत्तम बात यही है कि वह अपने पास बराबर एक तकली रखे और अपने हिस्सेका सूत काता करे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ८-१०-१९२५

१७१. टिप्पणियाँ

मनोनीत अध्यक्ष

तो सरोजिनी देवी[1] अगले वर्षके लिए कांग्रेसकी अध्यक्ष चुन ली गई हैं। यह सम्मान उन्हें पिछले वर्ष ही दिया जानेवाला था, वे इसकी सर्वथा उपयुक्त पात्र हैं। उनकी असीम कार्य-क्षमता तथा उन्होंने पूर्व आफ्रिका और दक्षिण आफ्रिकामें राष्ट्रके दूतके रूपमें जो महान् सेवाएँ की, उनको देखते हुए वे सभी तरहसे इस सम्मानकी अधिकारिणी हैं; और आज, जबकि नारी समाजमें उत्तरोत्तर जागृति आती जा रही है, स्वागत समितिने भारतकी सर्वाधिक गुणसम्पन्न सुपुत्रियोंमें से एकको अध्यक्ष चुनकर भारतकी नारी-जातिको बहुत ही उपयुक्त ढंगसे सम्मानित किया है। उनके अध्यक्ष चुने जानेसे हमारे प्रवासी भाइयोंको बड़ा सन्तोष होगा और इससे उन्हें उस संघर्षका सामना करनेका साहस प्राप्त होगा, जो उनके समक्ष उपस्थित है। राष्ट्रने उन्हें अपना यह उच्चतम पद भेंट किया है; मेरी यही कामना है कि उनके कार्य-कालमें हम स्वतन्त्रताकी मंजिलके और भी समीप पहुँच सकें।

बड़े भाईका संकल्प

मौलाना शौकत अली अखिल भारतीय चरखा संघकी परिषद्में अपने स्थानका औचित्य सिद्ध करनेको कटिबद्ध हैं। वे खादीके प्रति अपना विश्वास अपने कामके

१. सरोजिनी नायडू।

द्वारा साबित करना चाहते हैं। यद्यपि वे पहले भी कमोबेश नियमित रूपसे ही चरखा चलाते रहे हैं, फिर भी अब वे यह काम यथासम्भव अधिक नियमित ढंगसे करनेका आग्रह रखेंगे और अपने हिस्सेका सूत मुझे हर महीने भेजा करेंगे। उन्होंने इस वर्षके आखिरतक प्रथम श्रेणीके कमसे-कम ३,००० मुसलमान सदस्य बनानेका संकल्प किया है। मैंने मौलाना साहबसे कहा है कि यदि वे इस सालके आखिरतक प्रथम श्रेणीके ३,००० सदस्य बना लेंगे तो मुझे पूर्ण सन्तोष हो जायेगा। किन्तु साथ ही मैंने उनसे यह भी कहा है कि ऐसे ३,००० मुसलमान सदस्य बनानेमें, जिनका पेशा कातना न हो, लेकिन जो नियमपूर्वक कातें और हर महीने अपना सूत भेज दें, उनको बहुत अधिक जोर लगाना पड़ेगा। अभी तो स्थिति यह है कि सारे भारतमें भी कांग्रेसकी सदस्य सूचीमें ऐसी ३,००० स्त्रियों और पुरुषोंके नाम नहीं हैं, जो अपने हिस्सेका २,००० गज सूत समयसे देते आये हों। यह बात दुःखद तो बहुत है, लेकिन सत्य भी है। इसमें सन्देह नहीं कि सूतकी मात्रा आधी कर देनेसे कुछ फर्क आ जायेगा। लेकिन अनुभव तो यह बताता है कि लोग तनिकसे उकसानेपर और उत्साहमें आकर कोई काम करनेके लिए तैयार तो बहुत खुशी-खुशी हो जाते हैं, लेकिन ऐसे लोगोंकी संख्या ज्यादा नहीं होती, जो दिन-प्रतिदिन उस कामको बराबर नियमित रूपसे करते रहें। फिर भी मेरा निश्चित मत है कि जबतक हमें ऐसे लोग नहीं मिलते, जो राष्ट्रकी खातिर अंगीकार किये गये अपने दीर्घकालीन कर्त्तव्योंका पालन करना अपने लिए प्रतिष्ठाका सवाल बना लें, तबतक हम कोई सच्ची प्रगति नहीं कर सकते। इसलिए मैं मौलाना साहबकी पूरी सफलताकी कामना करता हूँ।

हिन्दुओंका अड्डा?

मौलाना साहबने मुझे बताया कि उनके एक मुसलमान मित्रने उन्हें इस बातकी चेतावनी दी है कि खादी-कार्य जिस प्रकार खादी निकायके अधीन सिर्फ हिन्दुओंका बनकर रह गया था, उसी प्रकार चरखा संघके अधीन भी यह कार्य सिर्फ हिन्दुओंके हाथकी बात बनकर रह जायेगा। मौलाना साहब तो पहले ही उस मुसलमान मित्रके इस कथनको निराधार बताते हुए उससे कह चुके हैं कि उन्हें मालूम है कि श्री बैंकरने मुसलमान कार्यकर्त्ताओंकी किस तरह जी-जानसे तलाश की थी। अब मैं अपना निजी अनुभव भी बता देता हूँ। मैं जहाँ-कहीं गया हूँ, मैंने खादी-संगठनके संचालकोंसे यही प्रश्न किया है कि उनके साथ कुछ मुसलमान कार्यकर्त्ता भी हैं या नहीं। इसके जवाबमें सभीने एक स्वरसे शिकायत की है कि खादी-कार्यके लिए मुसलमान कार्यकर्त्ताओंका मिलना कठिन होता है। खादी-प्रतिष्ठानमें कुछ मुसलमान अवश्य हैं, पर वे अपेक्षाकृत साधारण वर्गके लोग हैं। अभय-आश्रममें भी एक दो मुसलमान सज्जन हैं। पर मुझे ऐसे ज्यादा उदाहरण मालूम नहीं हैं। बात यह है कि खादी-कार्य अभी अधिक लोकप्रिय नहीं हुआ है। इसमें काम करनेसे ज्यादा पैसा नहीं मिल सकता। कुछ समय पहले मैंने इसके आँकड़ोंकी छानबीन की तो मुझे मालूम हुआ कि इसमें १५० रु० मासिकसे अधिक वेतन कहीं नहीं दिया जाता। यह १५० रु० भी बड़े योग्य संगठनकर्त्ताको दिया जाता है। ज्यादातर श्रेष्ठ खादी-कार्यकर्त्ता तो सर्वत्र स्वयंसेवी

लोग ही हैं। इसमें काम करनेकी शर्तें तो कठिन होंगी ही। ऐसे लोगोंको सारा समय देनेवाले खादी-कार्यकर्त्ताओंके रूपमें नहीं रखा जा सकता, जो खुद अपने हाथसे न कातते हों, अथवा हमेशा खादी न पहनते हों। यदि उपयुक्त ढंगके बहुत-से नेक मुसलमान अपनी सेवाएँ अर्पित करें, तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी। वे सभी मौलाना साहबको अर्जी भेजें। उन्होंने प्रत्येककी अर्जीकी जाँच करके संघमें उसके लिए सिफारिश करनेका काम खुद अपने हाथमें ले रखा है। पर मैं सभी सम्बन्धित लोगोंको चाहे वे मुसलमान हों या ईसाई, पारसी हों या यहूदी समय रहते सचेत कर देता हूँ कि यदि उनके प्रयत्न, योग्यता और खादी-प्रेमके अभावमें खादी-कार्य सिर्फ हिन्दुओंका बनकर रह जाये तो फिर इसके लिए वे परिषद्को दोष न दें।

बिना लिखा-पढ़ीका कर्ज

कुछ समय पूर्व मैंने 'नवजीवन' के पृष्ठोंमें इस बातका उल्लेख किया था[1] कि गुजरातके कुछ कांग्रेसी कर्जदारोंने कर्ज अदा नहीं किया और अब अखिल भारतीय चरखा संघका भार अपने सिर लेते ही मुझे जो सबसे पहला उपहार मिला है, वह है — श्री बैंकर द्वारा भेजी गई बिहार प्रान्तीय खादी निकायके ७० कर्जदारोंकी एक सूची। ये कर्ज कांग्रेसियोंने लिये हैं और ये सब बहुत दिनोंसे बकाया ही चले आ रहे हैं। इनमें से बहुतसे कर्जदार ऐसे हैं जिन्होंने 'खादी बेची, लेकिन उसका पैसा निकायको नहीं दिया। कुल कर्जकी राशि २०,००० रु० से अधिक है। यह बहुत शर्म और दु:खकी बात है कि इतने कर्जोंका भुगतान नहीं हो पाया है। मेरे विचारमें खादी निकाय हदसे ज्यादा उदार रहा है। सभी सार्वजनिक संस्थाएँ सार्वजनिक न्यास हैं। इसलिए उनके प्रबन्धकोंके लिए अक्सर यह जरूरी हो जाता है कि वे अपने हृदय-को कठोर बनाकर अपने अधीनस्थ न्यासोंके कर्जोंको कड़ाईके साथ वसूल करें। सार्व-जनिक न्यासके प्रबन्धमें उदारता बरतना उदारताका दुरुपयोग करना है, और इसके परिणामस्वरूप अक्सर ऐसी गलतियाँ हो जानेकी सम्भावना रहती है, जो अक्षम्य हैं। मैं जानता हूँ कि असहयोगकी झूठी भावना अक्सर कर्ज न चुकानेवाले कर्जदारोंके खिलाफ कानूनी कार्रवाई करनेके आड़े आई है। किन्तु जैसा कि मैंने कई बार बताया है, कोई संस्था अपने नियम-कानून अपनी रक्षाके लिए ही बनाती है, आत्मविनाशके लिए नहीं। इसलिए जब उसके नियम उसकी उन्नतिके मार्गमें बाधक हो जाते हैं तब वे बेकार ही नहीं, बल्कि इससे भी बदतर बन जाते हैं। उस हालतमें उनकी कोई परवाह न करना ही उचित है। अदालतोंका बहिष्कार झूठ और जालसाजीको बढ़ावा देनेके लिए और अपराधियोंके अपराध छिपानेके लिए नहीं, बल्कि राष्ट्रमें नई शक्ति और स्फूर्ति भरनेके लिए, लोगोंको छोटी-छोटी बातोंपर अदालतोंमें पहुँच जानेसे रोकनेके लिए, पंच-फैसलेको लोकप्रिय बनानेके लिए शुरू किया गया था। इसे ऐसा मानकर शुरू किया गया था कि कांग्रेसी लोग अदालत तो क्या, पंच-फैसले-का भी सहारा लिये बिना कमसे-कम एक-दूसरेके प्रति और कांग्रेस संस्थाके प्रति अपने

१. देखिए खण्ड २७, पृष्ठ ४०७-८।

दायित्वोंका निर्वाह करेंगे। इसलिए मुझे आशा है कि जिन सज्जनोंपर खादी निकाय-का कोई कर्ज है वे उसका जल्दीसे-जल्दी भुगतान कर देंगे और निकायको ऐसी दु:खद स्थितिमें नहीं डालेंगे जिससे उसे उनके खिलाफ कानूनी कार्रवाई करनेके लिए मजबूर होना पड़े।

कताई-परीक्षकोंके लिए सुझाव

एक सज्जनने एक पत्र लिखा है, जिससे स्पष्ट है कि उन्होंने चरखेके सम्बन्धमें कुछ गहरा विचार किया है। उन्होंने पत्रमें जो सुझाव भेजे हैं, वे नीचे दिये जा रहे हैं:

> इस सम्बन्धमें निम्न ढंगसे प्रशिक्षण दिया जा सकता है और परीक्षाएँ ली जा सकती हैं। यही तरीका कांग्रेस-सप्ताहमें कताईकी प्रतियोगिताओंमें भी उपयोगमें लाया जा सकता है।
>
> कताईकी कलाको 'धुनाई', 'कताई' और 'यन्त्र' इन तीन वर्गोंमें बाँटा जा सकता है।
>
> धुनाई
>
> १. देखें कि ओटी हुई रुई निश्चित समयके भीतर कितनी और कैसी धुनी गई है।
>
> २. पूनियाँ कड़ी बनी हैं या मुलायम।
>
> ३. धुनकीके विभिन्न हिस्सों तथा सहायक साधनोंका उपयोग करना आता है या नहीं।
>
> कताई
>
> १. अपनी धुनी हुई रुईकी पूनियों और किसी दूसरेकी धुनी हुई रुईकी पूनियोंसे नियत समयके भीतर काते गये सूतकी अच्छाई और उसका एक-सा होना।
>
> २. दिये हुए अंक (इसका नमूना दिया जा सकता है) का सूत कातनेकी योग्यता।
>
> ३. चरखेके हिस्सोंको जमाना-खोलना — विभिन्न हिस्सोंका उपयोग।
>
> यन्त्र (व्यावहारिक क्रिया)
>
> १. कुछ समयसे बेकार पड़े हुए चरखेको ठीक करनेके लिए कहा जा सकता है (बेशक, इसमें बढ़ईके कामकी जरूरत हो तो वह शामिल नहीं है)।
>
> २. किसी ऐसे चरखेको, जिसके हिस्से ढीले कर दिये गये हों ठीकसे कसनेके लिए दिया जा सकता है। इसके लिए अलग-अलग ढंगके चरखोंके नमूने काममें लाये जा सकते हैं। (टाइपराइटर, सतहको सम करनेवाले और अन्य वैज्ञानिक उपकरणोंकी व्यावहारिक परीक्षाओंमें ऐसा ही किया जाता है।)

जैसे-जैसे वर्ष बीतते जायें, धीरे-धीरे प्रतियोगिताओंमें भी विभिन्न परीक्षाएँ लागू की जा सकती हैं।

चरखा संघके काम-काजकी व्यवस्था और संचालनके लिए तपे-परखे चरित्रवान और ईमानदार लोग चुने जाने चाहिए, ताकि कमसे-कम यह प्रणाली सफल हो सके। इससे पहले किये गये प्रयत्न जो ऊपरसे देखनेमें असफल हो गये जान पड़ते हैं, उसका कारण सच्चे और आत्मत्यागी कार्यकर्त्ताओंका अभाव था। हमारी वर्तमान राष्ट्रीय संस्थाओंमें अनेक अवांछनीय लोग घुस आये हैं और अनेक लोग इस समय इस नई संस्थामें भी योजना बनाकर घुसनेकी तैयारी कर रहे हैं।

परीक्षकोंके लिए दिये गये ये सुझाव अच्छे है और जहाँतक अवाछनीय लोगोंका सम्बन्ध है, सभी जानते है कि लोकतान्त्रिक पद्धतिपर गठित संस्थाओमें तो बुरे लोगोके घुस आनेका खतरा सर्वत्र रहता है। जबतक दुनिया बिलकुल बदल नही जाती तबतक तो ऐसी संस्थाओको इन कठिनाइयोंका सामना करते ही रहना पड़ेगा और इसलिए अभी तो हमें इस तथ्यको ध्यानमें रखकर चलना होगा एव तदनुसार व्यवस्था करनी होगी। चूंकि चरखा संघका गठन उसे किसी परिवर्तनशील नीतिवाली लोकतान्त्रिक सस्था बनानेके लिए नही बल्कि एक लोकोपकारी व्यापारिक संस्था बनानेके खयालसे किया गया है, इसलिए लोकतान्त्रिक तत्त्वको समुचित नियन्त्रणमें रखा गया है। फिर भी इस ओरसे पूरी तरह आश्वस्त नही हुआ जा सकता कि ऐसी लोकोपकारी संस्थामें भी बुरे लोग घुस ही नही पायेंगे। इस हालतमें, हम तो सिर्फ यही आशा कर सकते है कि चरखा सघमें ऐसी कोई बात नही चलेगी जिससे बुरे विचारके लोगोके लिए उसमें आनेका कोई आकर्षण हो।

नैतिक साहसकी कमी

एक मित्रने मुझे 'यग इडिया' में उद्धृत करनेके लिए निम्न कतरन[1] भेजी है:

इस उद्धृत अंशमें हममें से बहुत-से लोग जो-कुछ प्रतिदिन करते हैं, उसीकी प्रतिध्वनि मिलती है। हम कुछ समयके लिए जिनके अधीन काम करते हैं, उनके आदेशके सामने ईश्वरके स्पष्ट आदेशकी उपेक्षा कर देते हैं। यदि हम यह जाननेका कोई उचित उपाय निकाल सके कि हमें कब सत्ताधारियोकी आवाजके सामने झुकना

१. यहाँ नहीं दी जा रही है। इस कतरनमें कहा गया था कि ईसाइयोंमें नैतिक साहसका अभाव हो गया है, जो एक बहुत बड़ी बुराई है। लोग इसका कोई खयाल नहीं करते कि उनकी अन्तरात्मा, जहाँ ईश्वरका निवास है, क्या कहती है, और वही करते हैं, जो उनके वरिष्ठोंकी इच्छा होती है। वे यह नहीं समझते कि अच्छाईके विरुद्ध और बुराईके हितमें कभी कोई काम न करना ही ईश्वर और अपने वरिष्ठोंके प्रति अपने कर्त्तव्यका पालन करना है। लेखकने सलाह दी थी कि आवश्यकता हो तो हम अपने वरिष्ठोंके चरणोंपर अपने प्राण-न्योछावर कर दें, लेकिन अपनी अन्तरात्माकी आवाजकी उपेक्षा कभी नहीं की जानी चाहिए।

चाहिए और कब प्राण भय मोल लेकर भी उसका प्रतिरोध करना चाहिए, तो हम एक क्षणमें स्वतन्त्र हो जायेंगे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ८-१०-१९२५

१७२. सन्देश 'फॉरवर्ड'को

किशनगंज
१० अक्तूबर, १९२५

'फॉरवर्ड'के लिए मैं दीर्घजीवनकी कामना करता हूँ। सुभाष बोस-जैसे नौजवानों-को न्यायालयमें उचित सुनवाईके अधिकारसे वंचित रखकर, जितने अधिक दिन बन्दी बनाकर रखा जायेगा, हम उतनी ही तेजीसे अपने लक्ष्यकी ओर अग्रसर होंगे। आजादीकी लड़ाई कोई मखौल नही है। वह इतनी सच्ची और इतनी कठिन है कि उसके लिए हममें से हजारों अच्छेसे-अच्छे व्यक्ति दरकार होंगे। यह कीमत चुकाते हुए हमें पीछे नही हटना चाहिए।

मो० क० गांधी

अंग्रेजी प्रति (जी० एन० ८०५०) की फोटो-नकलसे।

१७३. पत्र : रमणीकलालको

शनिवार, १० अक्तूबर, १९२५

भाईश्री रमणीकलाल,

तुम्हारी स्कूल सम्बन्धी रिपोर्टको[1] मैंने आज काठियावाड़ जानेवाली ट्रेनमें दिलचस्पीसे पढ़ा। अभी ट्रेन खड़ी है और लोग मुझे देख रहे हैं; पर इसकी परवाह किए बिना मैं तुम्हें यह पत्र लिख रहा हूँ।

तुम्हारे विवरणमें शिक्षकोंमें हुए परिवर्तन उभर कर सामने आये हैं। लेकिन कौन-सा परिवर्तन रोका जा सकता था — यह कहना मुश्किल है। यदि सम्भव हो तो हमें आज भी इसका हल खोजना चाहिए।

काकाके[2] दुःखसे मुझे दुःख होता है। अब तो काका शरीर सुधारते-सुधारते यदि दुःखको भी भूल जाये तो कितना अच्छा हो! गीताभ्यासीको दुःख क्या और सुख क्या? लेकिन यह ज्ञान कौन दे सकता है? यह तो अनुभवसे ही आयेगा।

१. सम्वत् १९८०-८१ के लिए आश्रम स्कूलकी रिपोर्ट।

२. काका कालेलकर।

रिपोर्ट वापस भेज रहा हूँ। किशोरलालका[1] निर्णय मुझे बहुत अच्छा लगा है। आशा है तुम दोनो आरामसे हो और तबीयत ठीक होगी।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (एस० एन० १०६८३) की माइक्रोफिल्मसे।

१७४. जाति-बहिष्कार

जिस समाजके अगुआ बिना विचारे केवल मोह, भ्रम, अज्ञान या ईर्ष्यासे प्रेरित होकर व्यक्तियोका बहिष्कार करते है उस समाजमें रहनेके बनिस्वत उसके द्वारा हमारा त्याग कर दिया जाना ही इष्ट है। जो समाज एक भी सत्यनिष्ठ मनुष्यका त्याग करता है, उसमें अन्य सत्यनिष्ठ व्यक्ति कैसे रह सकते है?

यह तो सिद्धान्तकी बात हुई। यद्यपि सिद्धान्तपर सदा अमल सम्भव नही होता तो भी हमें उसको याद तो रखना ही चाहिए। जान पडता है, आजकल समाजके अगुओका जुल्म बढ़ रहा है। ऐसे भी पंच पडे है जो अन्त्यजको भोजन कराना भी दोष मानते हैं। उन्हे पक्तिमें बिठानेवाले और इसमे अपनी सहमति जतानेवाले हिन्दू तो पापी ही समझे जाते हैं। यदि ऐसे लोग पापी माने जायें तब तो हमारे बीच जो-जो पुण्यात्मा हो उन सभीका उनमें शामिल हो जाना ही उचित है।

बहिष्कारको सहना बहुत कठिन है, बहिष्कृत व्यक्ति किसीके यहाँ भोजमें नही बुलाया जाता, उसका धोबी और नाई बन्द हो जाता है। फिर डाक्टर भी बन्द कर दिया जा सकता है? अब केवल जानसे मार डालना ही बाकी रहा न? बहिष्कृत सुधारकमें मृत्यु-पर्यन्त अटल रहनेकी शक्ति तो अवश्य ही होनी चाहिए। खरे हिन्दू अन्त्यजोकी आत्यन्तिक सेवा अपने मरणके द्वारा ही कर सकते हैं। किसीके यहाँ भोजन करनेकी आवश्यकता ही क्या है? हम अपने ही घर स्वयंपाकी बनकर शान्तिसे भोजन क्यो न करे? धोबी यदि कपडे न धोयें तो हाथसे धो ले। उतने पैसोकी बचत हुई। हजामत हाथसे कर लेना तो आजकल सामान्य बात हो गई है। लेकिन कन्याका ब्याह कहाँ करेगे? और पुत्रके लिए कन्या कहाँ ढूँढेगे? यदि अपनी जातिमे से ही वर या वधू ढूँढ़नेका आग्रह हो और वह न हो पाये तो संयमित जीवन यापन किया जाना चाहिए। यदि ऐसी शक्ति न हो तो दूसरी जातिमें सम्बन्ध करनेके लिए खोज करनी चाहिए। यदि उसमें भी निराश होना पडे तो जो वस्तु अपरिहार्य है उसके प्रति उदासीन ही रहना चाहिए।

वर्ण तो चार ही हैं। जाति चार हों या चालीस हजार हों। छोटी-छोटी जातियोंका एक-दूसरेमें मिल जाना तो स्वागतके ही योग्य है। छोटी जातियोंसे हिन्दू-धर्मको बड़ी हानि उठानी पड़ी है। जो वैश्य है वह समस्त हिन्दुस्तानकी वैश्य जातिमें कही भी सम्बन्ध जोड़नेका प्रयत्न क्यों न करे? ब्राह्मण जातिके अपने समान श्रेणीके

१. किशोरलाल मशरूवाला।

आचार-विचारवाले ब्राह्मण परिवारोंमें गुजरातके ब्राह्मण वर अथवा कन्या क्यों न ढूँढे। यदि इतना सुधार करनेकी भी हिम्मत नहीं की जाती तो हिन्दू-धर्मके अति संकुचित हो जानेका भय है। बंगालकी लड़की गुजरातमें आये और गुजरातकी लड़की बंगालमें जाये यह बात कुछ सर्वथा अनिष्ट नहीं है। वर्णकी रक्षा करनेवाले यदि छोटी-छोटी जातियोंकी रक्षा करनेका भी प्रयत्न करेंगे तो ये छोटी-छोटी जातियाँ तो गई-गुजरी हो ही चुकी हैं, सम्भव है कि वर्ण भी नष्ट हो कर रहें।

आज वर्ण भी तो छिन्न-भिन्न हो गये हैं। सभीको इस विषयपर पूरा-पूरा विचार करना चाहिए। पहले गुजरातके ही वर्ण मिलकर अपने व्यवहारका विस्तार बढ़ायें तो वे बहुत-कुछ आगे बढ़ सकेंगे। क्या सभी वर्णोका अपनी छोटी-छोटी जातियोंको एक कर सकना सम्भव नहीं है?

छोटी-छोटी जातियोंके अगुओंमें यदि इसपर विचार करने जितना उत्साह भी न हो तो अन्य व्यक्तियोंको ही पहल करनी चाहिए।

लेकिन मुझे बात तो बहिष्कार ही की करनी थी। छोटी-छोटी जातियोंके बारेमें मैंने केवल बहिष्कृत व्यक्तियोंकी मानसिक शान्तिके विचारसे ही इतनी बातें कही। जुल्म चाहे घरका हो, चाहे बाहरका, उसे मिटानेका उपाय एक ही है। आज तो बहिष्कृत व्यक्तिके सामने मार्ग बहुत ही सरल है। लेकिन मान लें कि छोटी-छोटी जातियोंका आज जो वातावरण है उसमें किसी छोटी जातिसे बहिष्कृत व्यक्तिको वर्णमें भी स्थान नहीं बच रहता तो? तो भी चिन्ताकी क्या बात है? आज देशके प्रत्येक क्षेत्रमें ऐसे सुधारकोंकी आवश्यकता है, जिनमें एकाकी खड़े रहनेकी शक्ति हो।

लेकिन जो खरा व्यक्ति इस प्रकार एकाकी खड़े रहनेकी हिम्मत करता है वह क्रोध और द्वेष नहीं करता और सहनशील होता है। वह जालिमका भी तिरस्कार नहीं करता। वह उसका भी भला चाहता है और मौका मिलनेपर उसकी सेवा करता है। सेवाका धर्म कोई कभी न छोड़े। सेवा करानेका अधिकार तो हो ही कैसे सकता है? धर्म तो यह कहता है: "मैं तो सेवक हूँ, मुझे विधाताने अधिकार दिया ही नहीं।" जिसको कुछ प्राप्त ही नहीं हुआ वह क्या खो सकता है? बहिष्कृतको तो सेवा लेनेकी छोटीसे-छोटी इच्छाका भी त्याग कर देना चाहिए। जो ऐसा करते हैं उन्हे सेवा प्राप्त भी हो जाती है, ऐसा कुछ विचित्र नियम है। लेकिन इससे सेवकको कुछ मतलब नहीं कि सेवा प्राप्त हो जायेगी। इस खयालसे जो सेवा पानेकी इच्छाका दावा करता है, वह चोर है। उसे अवश्य ही निराश होना पड़ेगा।

अन्त्यजोंके सेवकगणो! तुम्हे जो कष्ट पहुँचाये तुम रजकणके समान नम्र रहकर उन्हें कष्ट पहुँचाने दो। पृथ्वीको हम सदा पैरोंके नीचे दबाते रहते हैं, कुचलते रहते हैं फिर भी वह हमें अभय प्रदान करती है। इसीलिए हम उसे माता कहते हैं, और रोज सुबह उठकर उसका स्तवन करते हैं।

> समुद्र जिसका वसन है, पर्वत जिसका स्तन-मण्डल, विष्णु-जैसे रक्षा करनेवाले जिसके पति हैं, उसे कोटि-कोटि नमस्कार हों। हे माता! हमारा पादस्पर्श क्षमा करो।

जिन्होंने ऐसी मातासे उत्तमोत्तम नम्रता सीखी है, उन सेवकोंका बहिष्कार किया जाय तो भी उन्हें उससे कुछ भी हानि न होगी।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ११-१०-१९२५

१७५. 'गीता' का अर्थ

एक मित्र इस प्रकार प्रश्न करते हैं:

> 'गीता' का सन्देश क्या है? हिंसा या अहिंसा? मालूम होता है यह प्रश्न कभी हल नहीं होगा। यह बात और है कि हम 'गीता' में किस सन्देशको देखना चाहते हैं और उसमें से कौन-सा सन्देश निकालना चाहते हैं; और यह दूसरी ही बात है कि उसको पढ़ते ही क्या छाप पड़ती है। जिसके दिलमें यह बात जम गई है कि अहिंसातत्त्व ही जीवन-सन्देश है उसके लिए तो यह प्रश्न गौण है। वह तो यही कहेगा कि 'गीता' में से अहिंसा निकलती हो तो मुझे वह ग्राह्य है। इतने भव्य ग्रन्थमें से अहिंसा-जैसा भव्य धार्मिक सिद्धान्त ही निकलना चाहिए। किन्तु यदि न निकलता हो तो भी कोई बात नहीं है। हम 'गीता' को आदरसे पूजेंगे; लेकिन उसे प्रमाण-ग्रन्थ नहीं मानेंगे।[1]
>
> कामकी भीड़में से कुछ समय निकालकर आप इसका जवाब दें तो अच्छा हो।

ऐसे प्रश्न तो हुआ ही करेंगे और जिसने कुछ अध्ययन किया है उसे उनका यथाशक्ति जवाब भी देना होगा। किन्तु इनका समाधान कर देनेपर भी आखिर यह तो कहना ही पड़ेगा कि मनुष्य करेगा वही जिसे उसका हृदय उससे करनेको कहेगा। पहले हृदय है, फिर बुद्धि। प्रथम सिद्धान्त, फिर प्रमाण। प्रथम स्फुरणा, फिर उसके अनुकूल तर्क। प्रथम कर्म और फिर बुद्धि। इसलिए बुद्धि कर्मानुसारिणी कही गई है। मनुष्य जो-कुछ भी करता है या करना चाहता है उसका समर्थन करनेके लिए प्रमाण भी ढूंढ निकालता है।

इसलिए मैं यह समझता हूँ कि 'गीता' का मेरा अर्थ सबके अनुकूल न होगा। ऐसी स्थितिमें यदि मैं इतना ही कहूँ कि 'गीता' के अपने अर्थपर मैं किस तरह पहुँचा और धर्मशास्त्रोंका अर्थ निकालनेमें मैंने किन-किन सिद्धान्तोंको मान्य रखा है तो यही बस होगा। "परिणाम चाहे जो हो मुझे तो युद्ध करना चाहिए। जो शत्रु मरने योग्य हैं, वे तो स्वयं ही मरे हुए हैं। मुझे तो उनको मारनेमें मात्र निमित्त बनना है।"

१. इसके आगे पत्र-लेखकने विस्तारपूर्वक यह सिद्ध करनेका प्रयत्न किया था कि यदि 'गीता' का सन्देश अहिंसाका है तो फिर उसका पहला और ग्यारहवां अध्याय परस्पर असंगत है। पत्रका वह अंश छोड़ दिया गया है।

सन् १८८९ में 'गीताजी' से मेरा प्रथम परिचय हुआ। उस समय मेरी उम्र २० सालकी थी। उस समय मैं अहिंसा-धर्मको बहुत ही थोडा समझता था। शत्रुको भी प्रेमसे जीतना चाहिए यह मैंने गुजराती कवि शामल भट्टके[1] छप्पय "पाणी आपे ने पाय भलु भोजन तो दीजे'से सीखा था।[2] इसमें निहित सत्य मेरे हृदयमें अच्छी तरह बैठ गया था। किन्तु उस समय मुझे उसमें से जीवदयाकी स्फुरणा नही हुई थी। इसके पहले मैं देशमें ही मासाहार कर चुका था। मैं मानता था कि सर्पादिका नाश करना धर्म है। मुझे याद आता है कि मैंने खटमल इत्यादि जीवोंको मारा है। मुझे तो यह भी याद आता है कि मैंने एक विच्छूको भी मारा था। मैं अब यह समझ गया हूँ कि ऐसे विषैले जीवोंको भी नही मारना चाहिए। उस समय मैं यह मानता था कि हमें अंग्रेजोंके साथ सशस्त्र युद्धकी तैयारी करनी होगी। 'अंग्रेज राज्य करते हैं इसमें आश्चर्य ही क्या है' मैं इस मतलबकी एक कविता गुनगुनाया करता था। मैंने मांसाहार इसीकी तैयारीके विचारसे किया था। विलायत जानेसे पहले मेरे ऐसे विचार थे। मैं मासाहार आदिसे बच गया इसका कारण माताको दिये हुए वचनोंका मरणपर्यन्त पालन करनेका मेरा संकल्प था। सत्यके प्रति मेरे प्रेमने बहुत-सी आपत्तियोंमें मेरी रक्षा की है।

फिर दो अंग्रेजोंसे सम्बन्ध होनेपर मुझे 'गीता' पढ़नी पड़ी। 'पढनी पड़ी' इसलिए कहता हूँ क्योंकि उसे पढ़नेकी मुझे कोई खास इच्छा न थी। लेकिन जब इन दो भाइयोंने मेरे साथ 'गीता' पढनी चाही तब मैं शर्मिन्दा हुआ। मुझे अपने धर्मशास्त्रोंका कुछ भी ज्ञान नही है, इस खयालसे मुझे बड़ा दुःख हुआ। मालूम होता है, इस दुःखका कारण अभिमान था। मेरा संस्कृतका अध्ययन ऐसा तो था ही नही कि 'गीताजी'के सब श्लोकोंका अर्थ मैं बिना किसी मददसे ठीक-ठीक समझ लेता। ये दोनों भाई तो कुछ भी नहीं समझते थे। उन्होने सर एडविन आर्नोल्डका 'गीताजी'का बहुत ही अच्छा काव्यानुवाद मेरे सामने रख दिया। मैंने फौरन ही उस पुस्तकको पढ़ डाला और उसपर मैं मुग्ध हो गया। तबसे लेकर आजतक दूसरे अध्यायके अन्तिम १९ श्लोक मेरे हृदयमें अंकित हैं। मेरे लिये तो सब धर्म उसीमे आ गया है। उसमे सम्पूर्ण ज्ञान है। उसमे कहे हुए सिद्धान्त अचल हैं। उसमें बुद्धिका भी सम्पूर्ण प्रयोग किया गया है। लेकिन यह बुद्धि संस्कारी बुद्धि है। उसमे अनुभवज्ञान है।

इस परिचयके बाद मैंने बहुतसे अनुवाद पढ़े, बहुत-सी टीकाएँ पढ़ी, बहुतसे तर्क किये और सुने; लेकिन पहली बार पढ़नेपर ही जो छाप मुझपर पडी थी वह दूर नही हुई। ये श्लोक 'गीताजी'के अर्थ समझनेकी कुंजी हैं। उससे विरोधी अर्थवाले वचन यदि मिलें तो मैं उनका त्याग करनेकी भी सलाह दूँगा। नम्र और विनयी मनुष्यको तो उन्हें त्यागनेकी भी जरूरत नही है। वह तो सिर्फ यही कहे कि दूसरे श्लोकोंका आज इसके साथ मेल नही मिलता तो यह मेरी बुद्धिका ही दोष है; समय

१. (१७००-१७६५) अनेक नीतिपरक कविताओंके रचयिता।
२. शत्रुको पानी दे और सम्भव हो तो उत्तम भोजन भी कराये।

बीतनेपर इनका और इन उन्नीस श्लोकोमें कहे गये सिद्धान्तोंका भी मेल मिलकर रहेगा। अपने मनसे और दूसरोसे यह कहकर वह निश्चिन्त हो जायेगा।

शास्त्रोका अर्थ करनेमें सस्कार और अनुभवकी आवश्यकता है। 'शूद्रको वेदाध्ययन करनेका अधिकार नही' यह वाक्य सर्वथा गलत नही है। शूद्र अर्थात् असस्कारी, मूर्ख, अज्ञानी। ऐसे व्यक्ति वेदादिका अध्ययन करके उनका अनर्थ करेगे। वडी उम्रके भी सब लोग बीजगणितके कठिन प्रश्न अपने-आप समझनेके अधिकारी नही है। उनको समझनेके पहले उन्हे कुछ प्रारम्भिक शिक्षा ग्रहण करनी पड़ती है। व्यभिचारीके मुखमें 'अह ब्रह्मास्मि' क्या शोभा देगा? उसका वह क्या अर्थ (या अनर्थ) करेगा?

अर्थात् शास्त्रका अर्थ करनेवाला यमादिका पालन करनेवाला होना चाहिए। यमादिका शुष्क पालन जैसा कठिन है वैसा ही निरर्थक भी है। शास्त्रोने गुरुका होना आवश्यक माना है, लेकिन इस जमानेमें गुरुओका तो करीब-करीब लोप-सा हो गया है। ज्ञानी लोग इसीलिए भक्तिप्रधान प्राकृत ग्रन्थोका पठन-पाठन करनेकी शिक्षा देते है। किन्तु जिसमें भक्ति नही, श्रद्धा नही, वह शास्त्रका अर्थ करनेका अधिकारी नही होता। विद्वान् लोग विद्वत्तापूर्ण अर्थ उसमें से भले ही निकालें, लेकिन वह शास्त्रार्थ नही है। शास्त्रार्थ तो अनुभवी ही व्यक्त कर सकता है।

परन्तु प्राकृत मनुष्योके लिए भी कुछ सिद्धान्त तो है ही। शास्त्रोके वे अर्थ जो सत्यके विरोधी है, सही नही हो सकते। जिसे सत्यके सत्य होनेके बारेमें ही शका है उसके लिए शास्त्र है ही नही; अथवा यो कहिए उसके लिए सब शास्त्र अशास्त्र है। किसीमें उसका समाधान करनेकी शक्ति नही है। जिसे शास्त्रमें से अहिंसा नही प्राप्त हुई, उसके लिए भय है, लेकिन उसका उद्धार न हो यह बात नही है। सत्य स्वीकारात्मक है, अहिंसा निषेधात्मक है। सत्य जो वस्तु होनी चाहिए उसकी साक्षी भरता है, अहिंसा जो [वाह्यत.] है उसका निषेध करती है। सत्य है, असत्य नही है। हिंसा है, अहिंसा नही है। फिर भी अहिंसा ही होनी चाहिए यही परम धर्म है। सत्य स्वय सिद्ध है। अहिंसा उसका 'सम्पूर्ण फल' है, सत्यमे वह छिपी हुई है। वह सत्यकी तरह व्यक्त नही है। इसलिए उसको मान्य किये विना मनुष्य शास्त्रका चाहे जितना शोध करे, सत्य आखिर उसे अहिंसाका ही पाठ पढायेगा।

सत्यके लिए तपश्चर्या तो करनी ही पडती है। सत्यका साक्षात्कार करनेवाले तपस्वीने चारों ओर फैली हुई हिंसामें से अहिंसा देवीको ससारके सामने प्रकट करके कहा: हिंसा मिथ्या है, माया है, अहिंसा ही सत्य वस्तु है। ब्रह्मचर्य, अस्तेय, अपरिग्रह भी अहिंसाके लिए ही है। ये अहिंसाको सिद्ध करनेवाली शक्तियाँ है। अहिंसा सत्यका प्राण है। उसके विना मनुष्य पशु है। सत्यार्थी अपनी शोधके लिए प्रयत्न करते हुए यह सब बडी जल्दी समझ लेता है। फिर उसे शास्त्रका अर्थ करनेमें कोई दिक्कत पेश नही आती।

शास्त्रका अर्थ करनेमें दूसरा नियम यह है कि उसके शब्दोको पकड़ कर नही बैठना चाहिए, उसकी ध्वनिको देखना चाहिए, उसके मर्मको समझना चाहिए।

तुलसीदासजीकी 'रामायण' उत्तम ग्रन्थ है। क्योंकि उसकी ध्वनि है -- स्वच्छता, दया, भक्ति। उसमें 'शूद्र गँवार ढोल पशु नारी, ये सब ताड़नके अधिकारी' लिखा है; इसलिए यदि कोई पुरुष अपनी स्त्रीको ताड़े तो उसकी अधोगति होगी। रामचन्द्रजीने सीताजीपर कभी प्रहार नहीं किया, इतना ही नहीं उन्हें कभी दुःख भी नहीं पहुँचाया। तुलसीदासजीने केवल एक प्रचलित वाक्य लिख दिया। उन्हे इस बातकी कल्पना भी न रही होगी कि इस वाक्यका आधार लेकर अपनी अर्द्धांगिनीकी ताड़ना करनेवाले पशु भी निकल आयेंगे। और यदि स्वय तुलसीदासजीने रिवाजके वशवर्ती होकर अपनी पत्नीका ताड़न किया हो, तो भी क्या होता है? ताड़ना अवश्य ही दोषपूर्ण बात है। 'रामायण' पत्नीके ताड़नेके लिए नहीं, पूर्ण पुरुषका दर्शन करानेके लिए, सती शिरोमणि सीताजीका परिचय करानेके लिए और भरतकी आदर्श भक्तिका चित्र-चित्रित करनेके लिए लिखी गई है। दोषयुक्त रिवाजोंका जो समर्थन उसमें पाया जाता है वह त्याज्य है। तुलसीदासजीने भूगोल सिखानेके लिए अपना अमूल्य ग्रन्थ नही बनाया है, इसलिए उनके ग्रन्थमें यदि भूगोलकी दृष्टिसे गलत बातें पाई जायें तो उनको अस्वीकार करना उचित है।

अब 'गीताजी'की बात लें। ब्रह्मज्ञान प्राप्ति और उसका साधन यही 'गीताजी' का विषय है। दो सेनाओंके बीच युद्धका होना निमित्त है। यह भले ही कहा जा सकता है कि कवि स्वयं युद्धादिको निषिद्ध नही मानते थे और इसलिए उन्होंने युद्धके प्रसंगका इस प्रकार उपयोग किया है। किन्तु महाभारत पढ़नेके बाद तो मेरे ऊपर भिन्न ही छाप पड़ी है। व्यासजीने इतने सुन्दर ग्रन्थकी रचना करके युद्धके मिथ्यात्वका ही वर्णन किया है। कौरव हारे तो उससे क्या हुआ? और पाण्डव जीते तो उससे भी क्या हुआ? विजयी कितने बचे? उनका क्या हुआ? कुन्ती माताका क्या हुआ? और आज यादव कुल कहाँ है?

जहाँ मुख्य विषय युद्ध वर्णन और हिंसाका प्रतिपादन नही है वहाँ उसपर जोर देना केवल अनुचित ही माना जायेगा। और यदि कुछ श्लोकोका सम्बन्ध अहिंसाके साथ बैठाना मुश्किल मालूम होता है तो सारी 'गीताजी'को हिंसाके चौखटेमें मढ़ना उससे कही ज्यादा मुश्किल है।

कवि जब किसी ग्रन्थकी रचना करता है तो वह उसके सब अर्थोंकी कल्पना नहीं कर लेता है। काव्यकी यही खूबी है कि वह कविसे भी आगे बढ़ जाता है। जिस सत्यका वह अपनी तन्मयतामें उच्चारण कर जाता है उसके जीवनमें अक्सर वह नही आया करता। इसलिए बहुतेरे कवियोंका जीवन उनके काव्योंके साथ सुसगत मालूम नहीं होता। 'गीताजी'का तात्पर्य कुल मिलाकर हिंसा नही, अहिंसा है; यह बात दूसरा अध्याय, जिससे विषयका आरम्भ होता है और १८वाँ अध्याय जिसमें उसकी पूर्णाहुति होती है, देखनेसे प्रतीत हो जायेगी। मध्यमें देखेंगे तो भी यही प्रतीत होगा। बिना क्रोधके, रागके या द्वेषके हिंसाका होना सम्भव नही। और 'गीता' तो क्रोधादिको पार करके गुणातीतकी स्थितिमें पहुँचानेका प्रयत्न करती है। गुणातीतमें क्रोधका सर्वथा अभाव होता है। अर्जुनने कानतक खींचकर जब-जब धनुष चढ़ाया उस समयकी उसकी लाल-लाल आँखें मैं आज भी देख सकता हूँ।

अर्जुनने अहिंसाके लिए युद्ध छोड़नेकी हठ कब की थी। वह तो बहुतसे युद्ध लड़ चुका था। उसे तो एकाएक मोह हो गया था और उसी कारण वह अपने सगे-सम्बन्धियोंको नही मारना चाहता था। जिन्हे वह पापी मानता हो उन्हें न मारनेकी बात अर्जुनने कहाँ की थी? श्रीकृष्ण तो अन्तर्यामी हैं। वे अर्जुनका यह क्षणिक मोह समझ लेते हैं और इसलिए उससे कहते हैं, "तुम हिंसा तो कर चुके हो। अब इस प्रकार एकाएक समझदार बननेका दंभ करके तुम अहिंसा नही सीख सकोगे। इसलिए जिस कामको तुमने आरम्भ किया है उसे अब तुम्हे पूरा करना ही चाहिए।" घटेमें चालीस मीलके वेगसे जानेवाली रेलगाड़ीमें बैठा हुआ शख्स एकाएक प्रवाससे विरक्त होकर यदि चलती हुई गाड़ीसे कूद ही पड़े तो यही कहा जायेगा कि उसने आत्महत्या की है। इससे प्रवास या रेलगाडीमें बैठनेके मिथ्यात्वको उसने नही सीखा है। अर्जुनका भी यही हाल था। अहिंसक कृष्ण अर्जुनको दूसरी सलाह दे ही नही सकता था। लेकिन उससे यह अर्थ नही निकाल सकते कि 'गीताजी' में हिंसा ही का प्रतिपादन किया गया है। यह अर्थ निकालना उतना ही अनुचित है जितना कि यह कहना कि शरीर-व्यापारके लिए कुछ हिंसा अनिवार्य है और इसलिए हिंसा ही धर्म है। सूक्ष्मदर्शी इस हिंसामय शरीरसे अशरीरी बननेका अर्थात् मोक्ष प्राप्त करनेका ही धर्म सिखाता है।

लेकिन धृतराष्ट्र कौन था? दुर्योधन, युधिष्ठिर और अर्जुन कौन थे? कृष्ण कौन थे? क्या ये सब ऐतिहासिक पुरुष थे? और क्या 'गीताजी' में उनके स्थूल व्यवहारका ही वर्णन किया गया है? अकस्मात् अर्जुन सवाल करता है और कृष्ण सारी 'गीता' सुना जाते है। और अर्जुन जिसका मोह नष्ट हो गया है यह कहकर भी फिर इसे भूल जाता है और कृष्णसे दुबारा अनुगीता कहलवाता है।

मैं तो दुर्योधनादिको आसुरी और अर्जुनादिको दैवी वृत्ति मानता हूँ। यह शरीर ही धर्मक्षेत्र है। उसमें द्वन्द्व चलता ही रहता है और अनुभवी, ऋषि-कवि उसका तादृश वर्णन करते हैं। कृष्ण तो अन्तर्यामी हैं और हमेशा शुद्ध चितमें घड़ीकी तरह टिक-टिक करते रहते हैं। यदि चित्तको शुद्धिरूपी चाबी नहीं दी गई हो तो अन्तर्यामीका यद्यपि वहाँ निवास है, लेकिन उनका टिकटिकाना तो बन्द हो ही जाता है।

कहनेका आशय यह नही है कि इसमें स्थूल युद्धके लिए अवकाश ही नहीं है। जिसे अहिंसा सूझी ही नहीं है उसे यह नहीं सिखाया गया है कि कायर बनना चाहिए। जिसे भय लगता है, जो संग्रह करता है, जो विषयमें रत है वह अवश्य ही हिंसामय युद्ध करेगा। लेकिन उसका वह धर्म नही है। धर्म तो एक ही है। अहिंसाके मानी हैं मोक्ष और मोक्ष सत्यनारायणका साक्षात्कार है। पर इसमें पीठ दिखानेको तो कहीं अवकाश ही नहीं है। इस विचित्र संसारमें हिंसा तो होती रहेगी। उससे बचनेका मार्ग 'गीता' दिखाती है। लेकिन साथ-साथ 'गीता' यह भी कहती है कि कायर होकर भागनेसे हिंसासे नही बच सकोगे। जो भागनेका विचार करता है वह मारेगा या मरेगा।

प्रश्नकर्त्ताने जिन श्लोकोंका उल्लेख किया है उनका रहस्य यदि अब भी उनकी समझमें न आये तो मैं समझानेमें असमर्थ हूँ, सर्वशक्तिमान ईश्वर कर्त्ता, भर्ता और संहर्ता है, और उसे ऐसा ही होना चाहिए। इस विषयमें तो कोई शंका उत्पन्न न होगी। जो उत्पन्न करता है वह उसका नाश करनेका अधिकार भी अपने पास रखता है। फिर भी वह किसीको नहीं मारता, क्योंकि वह अकर्त्ता है, वह कुछ भी नही करता। नियम यह है कि जिसने जन्म लिया है मरनेके लिए जन्म लिया है। ईश्वर भी इस नियमको नही तोड़ता। यह उसकी दया है। यदि ईश्वर ही स्वच्छन्द और स्वेच्छाचारी बन जाये तो हम सब कहाँ जायेंगे?

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ११-१०-१९२५

१७६. पत्र: डाह्याभाई म० पटेलको

रविवार

[११ अक्तूबर, १९२५][1]

भाई डाह्याभाई,

तुम्हारा पत्र आज ही पढ़ पाया हूँ। इसका तो यह तात्पर्य हुआ कि खादीका कार्य जिस तरहसे गुजरातमें चला सो ठीक नही चला; चरखेकी मार्फत गाँवोंमें प्रवेश नही किया जा सकता, सेवक नाम-मात्रके हैं और मैंने डा० सुमन्तकी[2] बातको केवल तर्कोंके बलपर उड़ा दिया है।

मैं मानता हूँ कि गुजरातमें खादी कार्यमें सुधारकी गुंजाइश थी। परन्तु जहाँ कार्यकर्त्ता सब अनुभवहीन थे, वहाँ किसे दोष दिया जा सकता है? भूल किसीने जानबूझकर नही की।

हम सही अर्थोंमें केवल चरखेके द्वारा ही गाँवोंमें प्रवेश कर सकेंगे, मेरी यह मान्यता मिट नही सकती। जहाँ लोग भूखसे पीड़ित हैं, वहाँ एक यही साधन है। जहाँ लोग सुखी परन्तु आलसी हैं वहाँ भी उनका आलस्य दूर करनेका साधन यही है। अभी पूरी सफलता नही मिली, इसका कारण यही है कि बहुत कम व्यक्ति इसपर विश्वास रखकर गाँवोंमें बैठे हैं।

गुजरातमें जो लोग सेवाकार्यमें लगे हैं वे केवल नाम-भरके नही हैं। यदि तुम्हारा आक्षेप लक्ष्मीदासपर[3] है तो तुम उसे जानते नही। उसने अपने साथ अपनी पत्नी और बच्चीको भी होम दिया है। किस आश्रममें लाखों रुपये स्वाहा कर दिये गये हैं?

१. डाककी मुहर १२-१०-१९२५ है।

२. डा० सुमन्त मेहता जिन्होंने सुझाव दिया था कि स्वयंसेवकोंको समाजमें विधिपूर्वक शिक्षा दी जानी चाहिए।

३. लक्ष्मीदास आसर।

यदि किसी आश्रममें ऐसा हुआ ही है तो वह केवल सत्याग्रह आश्रममें ही हुआ है। लेकिन उसका हिसाब बिलकुल साफ है। बारडोलीके मकानमें नाहक खर्च अवश्य हुआ, लेकिन उसमें भी अनुभवकी खामी थी। सरमोणमें[1] कोई विशेष खर्च नहीं हुआ। गोधरामें मकानपर जितना चाहिए उससे अधिक खर्च हुआ, लेकिन वह फलीभूत होगा; अन्त्यजोंके लिए ऐसा मकान और कैसे निर्मित हो सकता था? अधिक स्पष्ट लिखोगे तो मैं और अधिक समझाऊँगा।

डाक्टर सुमन्तकी बातको मैंने दलीलोंसे नहीं उड़ा दिया। मैं तो एक बालककी बातको भी न उड़ाऊँ; तब फिर जिन डाक्टर सुमन्तपर मुझे गर्व है, उनकी बात मैं कैसे उड़ा सकता हूँ। लेकिन मुझे जो समझमें न आये उसका मैं क्या करूँ? जो मेरी समझमें आया सो मैंने किया। सत्याग्रह आश्रम यदि सेवक समाज नहीं है तो और क्या है? अपनी कल्पनासे बाहर इससे अधिक अच्छा रूप मैं कैसे देता? दूसरे समाज भी अस्तित्वमें आयें यह मैं चाहता हूँ; परन्तु जिन्हें तदनुसार सूझे वे लोग उन्हें बनायें कि मैं बनाऊँ?

बात यह है कि तुम मेरी मर्यादाको नहीं समझे हो। मैं सर्वशक्तिमान नहीं हूँ। मुझमें जितनी शक्ति है उसे मैं बचाकर नहीं रखता; पूरीकी पूरी खर्च कर डालता हूँ। इससे ज्यादा और क्या कर सकता हूँ?

मैं धोलका जानेवाला हूँ, यह निश्चित है। ईश्वर ही न जाने दे तो नहीं जानता। जब मैं आश्रम पहुँचूँ तब मुझे पकड़ लेना। उससे तुम्हारी और मेरी, दोनोंकी चिन्ता कम हो जायेगी। इसका जवाब मत लिखना। लेकिन जब हम लोग मिलें तब मेरे साथ खूब चर्चा कर लेना।

बापूके वन्देमातरम्

गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० २६९३) से।
सौजन्य: डाह्याभाई म० पटेल

१७७. पत्र : लखनऊके एक कार्यकर्त्ताको

[पटना]
१२ अक्तूबर, १९२५

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मुझे एक तार मिला है, जिसमें यह शिकायत की गई है कि मैं सीतापुरके कार्यक्रममें व्याघात डाल रहा हूँ। मुझे आपका तार भी मिला था। इसलिए मैंने आपको इस आशयका तार भेजा कि आप सीतापुर कमेटीकी सहमतिसे अपने यहाँका कार्यक्रम निर्धारित करें। फिर भी मैं यह बता दूँ कि यदि लखनऊमें बीचमें पाँच घंटेका भी अन्तर पड़े तो इतना समय मुझे आरामके लिए मिलना चाहिए।

१. गुजरातके सूरत जिलेका एक गाँव, जहाँ उन्हीं दिनों स्वराज्य आश्रमकी इमारतें बनाई गई थीं।

लेकिन यदि यह सम्भव न हो तो आप मुझे लखनऊमें पाँच घंटे व्यस्त न रखें, बल्कि मोटरसे सीतापुर पहुँचा दें। मोटर-यात्राकी अपेक्षा रेल-यात्रा मैं ज्यादा पसन्द करूँगा पर देरतक काम करनेसे तो मोटर-यात्रा करना ही ज्यादा पसन्द करूँगा। मैं इतना ज्यादा कमजोर हो गया हूँ कि शामको ७ बजेतक थककर चूर हो जाता हूँ। जब रातकी सभाओंमें शामिल होता हूँ, तो मुझे जम्हाइयाँ आने लगती हैं। इस तरह मैंने अपनी हालत और मेरी इच्छा क्या है सो सब बता दिया। अब आप सार्वजनिक हितमें जो भी ठीक समझें, कर सकते हैं। कारण, अब मैं भाषण आदि नहीं देना चाहता। इससे कहीं अच्छा तो यह होगा कि आप मुझसे कताई-प्रदर्शन करनेके लिए कहें।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी पत्र (सी० डब्ल्यू० ७७५०) की फोटो-नकलसे।

१७८. पत्र: फूलचन्द शाहको

१२ अक्तूबर, १९२५

भाईश्री फूलचन्द,

तुम्हारा पत्र मिला। १००० रुपयोंके बारेमें चि० छगनलालको लिख रहा हूँ। देवचन्दभाईसे कहना, परिषद्-समितिकी[1] बैठकके बारेमें कच्छमें[2] मुझसे बात कर लें।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च:] तुम्हारी माताजीको आराम है न?

गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० २८७१) की फोटो-नकलसे।

१. काठियावाड़ राजनीतिक परिषद्की कार्यकारिणी समिति।

२. २२ अक्तूबरसे ३ नवम्बरतक गांधीजी कच्छमें थे।

१७९. भाषण: विशनपुरमें[1]

१३ अक्तूबर, १९२५

उत्तरमें, अन्य बातोंके अतिरिक्त, महात्माजीने यह भी कहा कि स्वागत समितिने पर्याप्त सबूतोंके बिना, दरभंगा महाराजाके विरुद्ध आरोप लगाकर अच्छा नहीं किया है। मानपत्रमें यह सब कहना और भी ठीक नहीं लगता। यदि आपको सचमुच कुछ शिकायतें हैं, तो आपको चाहिए कि आप उन्हें दूर करवानेका प्रयत्न करें।

[अंग्रेजीसे]

सर्चलाइट, १६-१०-१९२५

१८०. बिहारके अनुभव – २

हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न

पटनासे हम भागलपुर गये। भागलपुरमें एक विशाल सार्वजनिक सभा हुई, जिसमें मुझे हिन्दू-मुस्लिम प्रश्नपर थोड़े बहुत विस्तारसे बोलना पड़ा।[2] जो लोग इस सवालको लेकर व्यस्त हैं, उन पर मेरा प्रभाव यद्यपि खत्म हो गया है, फिर भी लोग इससे उठनेवाली विभिन्न समस्याओंपर मुझसे बातचीत करते रहते हैं। इसलिए मुझे लगा कि मैं अपने विचार, फिर उनका चाहे जो मूल्य हो, फिर स्पष्ट रूपसे दोहरा दूँ। यहाँ मैं यह एक बात स्पष्ट कह देना चाहता हूँ कि दोनों पक्ष ऐसे मामलोंको भी, जिन्हें बातचीतके जरिये या बल-प्रयोगके द्वारा आपसमें ही निबटाया जा सकता है, बार-बार सरकारके पास ले जाते हैं यह सही है अथवा गलत, सो अलग बात है; लेकिन इतना जरूर है कि मुझे यह अच्छा नहीं लगता। इसलिए मैंने सभामें उपस्थित लोगोंसे कहा कि चूँकि कोई भी पक्ष समझौतेके लिए तैयार नहीं है, और दोनों ही एक-दूसरेसे डरते हैं, इसलिए यही अच्छा है कि सरकारसे बीच-बचाव करनेको कहे बिना, विवादास्पद मामलोंको वे शरीर-बलका उपयोग करके ही तय कर डालें। डरकर पीछे हटना तो कायरता है, और कायरतासे न तो जल्दी समझौता ही हो सकता है और न अहिंसाका मार्ग ही प्रशस्त हो सकता है। कायरता एक प्रकारकी हिंसा ही है, जिसे छोड़ सकना बहुत ही कठिन होता है। हिंसाकी प्रवृत्तिवाले व्यक्तिको तो हिंसा

१. रिपोर्टके अनुसार, बिहारके पूर्णिया जिलेके भीतरी क्षेत्रमें बसे इस महत्त्वपूर्ण गाँवमें आयोजित स्वागत समारोहमें पचास हजार लोगोंका एक अनुशासित समुदाय सम्मिलित हुआ था। विशेष रूपसे बनाई गई दो मील लम्बी सड़कपर बहुतसे हाथियों और घोड़ोंको सजाकर सुन्दर झाँकियाँ निकाली गई थीं। सभामें गांधीजीको अभिनन्दन-पत्र भेंट किया गया था और देशबन्धु स्मारक कोषके लिए चन्दा भी।

२. देखिए "भाषण: भागलपुरकी सार्वजनिक सभामें", १-१०-१९२५।

छोड़कर अहिंसाकी श्रेष्ठ शक्तिको अपनानेके लिए राजी कर सकनेकी आशा की जा सकती है, लेकिन कायरता शक्ति मात्रके अभाव, अर्थात् अशक्तिकी सूचक है। इसलिए जहाँ बिल्लीके मुकाबले चूहेका सवाल हो, वहाँ चूहेको अहिंसाका पाठ पढ़ाना असम्भव है। चूँकि उसमें बिल्लीके खिलाफ हिंसात्मक तरीकेसे जूझनेकी शक्ति नहीं है, इसलिए वह समझ ही नहीं सकेगा कि अहिंसा क्या चीज हो सकती है। क्या किसी अन्धेसे बदसूरत चीजें न देखनेके लिए कहना हास्यास्पद नहीं होगा? १९२१ में मैं और मौलाना शौकत अली बेतिया गये थे। बेतियाके समीपवर्ती एक गाँवके लोगोंने मुझे बताया कि जिस समय पुलिसवाले उनके घरोंको लूट रहे थे और उनकी स्त्रियोंको सता रहे थे, उस समय वे लोग भाग खड़े हुए।[1] उन लोगोंने जब यह कहा कि वे वहाँसे इसलिए भाग खड़े हुए कि मैंने उनसे अहिंसक बननेको कहा था, तो मेरा सिर शर्मसे झुक गया। मैंने उन्हें समझाया कि अहिंसासे मेरा यह अभिप्राय कदापि नहीं है। मैं तो आपसे यह आशा करता हूँ कि जो लोग आपके संरक्षणमें हैं, उनका अनिष्ट करनेके लिए बड़ीसे-बड़ी ताकत भी आगे बढ़े तो आप उसकी राह रोक कर खड़े हो जायें और प्रतिकारमें अपना हाथ उठाये बिना सारी चोट अपने ऊपर झेल लें, अपने प्राणों तककी बलि चढा दें, लेकिन मैदान छोड़कर कभी न भागें। तलवारके जरिये अपनी सम्पत्ति, सम्मान और धर्मकी रक्षा करनेमें भी मर्दानगी है और अन्यायीको क्षति पहुँचानेकी कोशिश किये बिना इन सबकी रक्षा करना और भी बड़ी मर्दानगी और नेकीका काम है। लेकिन अपने कर्त्तव्य-स्थलसे भाग खड़ा होना, अपनी जान बचानेके लिए अपनी जमीन-जायदाद, धर्म या आबरू अन्यायीकी दयापर छोड़ देना नामर्दी है; यह अस्वाभाविक और अपमानजनक है। जो मरना जानते हैं, उन्हें मैं अहिंसाका सन्देश सफलतापूर्वक दे सकता हूँ; लेकिन जो मृत्युसे डरते हैं, उन्हें नहीं। फिर, मैंने श्रोताओंसे कहा कि मुझ-जैसे लोग, जो विचारकर चुकनेके बाद ही लड़नेका विरोध करते हैं, लेकिन साथ ही कोई समझौता करानेमें भी असमर्थ हैं, उन मुसलमानोंका अनुकरण कर सकते हैं, जो प्रथम चार खलीफाओंके समयमें, जब भाई-भाई परस्पर लड़ने लगे थे, गुफाओंमें चले गये थे। आजके युगमें पर्वत-गुफाओंमें जाकर वैसी शान्ति और एकान्त पा सकना लगभग असम्भव है, लेकिन आप अपनी आन्तरिक गुफाओंमें —मनकी गुफाओंमें आश्रय जरूर ले सकते हैं। परन्तु ऐसा वही लोग कर सकते हैं, जिनके मनमें एक-दूसरेके धर्म और रीति-रिवाजोंके प्रति आदरभाव है।

जाति-बहिष्कारकी भूल

इसके बाद एक प्रान्तीय मारवाड़ी सम्मेलनमें मैं सामाजिक बहिष्कार और सामाजिक सुधारोंकी आकुल आवश्यकताके विषयमें बोला।[2] मैंने मारवाड़ी भाइयोंको बताया कि जाति-बहिष्कारका अस्त्र केवल उन्हीं लोगोंके हाथमें न्यायसंगत है जो महाजनोंकी श्रेणीमें रखे जाने लायक हैं; और महाजनका मतलब है ऐसा सात्विक पुरुष जो अपने दल या जातिका सच्चा प्रतिनिधि होता है, जो किसीको व्यक्तिगत ईर्ष्याद्वेषके

१. देखिए खण्ड १९, पृष्ठ ९०-९३।

२. देखिए "भाषण: मारवाड़ी अग्रवाल सभा, भागलपुरमें", १-१०-१९२५।

कारण नहीं, अपितु समाजके हितोंकी रक्षार्थ निस्वार्थ भावसे जाति-बहिष्कृत घोषित करता है। जो व्यक्ति ज्ञानोपार्जन अथवा किसी अन्य उचित लाभके लिए समुद्र यात्रा करता है, अथवा जो अपने पुत्र या पुत्रीके लिए योग्य जीवन-साथी प्राप्त करनेके लिए अपनी उप-जातिसे बाहर सम्बन्ध करता है अथवा जो अपनी कम उम्रकी विधवा कन्याका पुनर्विवाह करनेका साहस करता है, उसे जाति-बहिष्कृत करना इस सत्ताका अनैतिक उपयोग है। वर्णाश्रम धर्मका हिन्दू समाज-व्यवस्थामें बड़ा उपयोगी तथा उचित स्थान है; यदि उसे विनष्ट होनेसे बचाना है तो समयका तकाजा है कि अनगिनत उप-जातियों-को शीघ्र ही एक हो जाना चाहिए। उदाहरणके लिए, कोई कारण नहीं कि एक मारवाड़ी ब्राह्मण या वैश्य, बंगाली ब्राह्मण या वैश्यसे विवाह-सम्बन्ध न करे। कोई महाजन वास्तवमें तभी महाजन माना जायेगा, जब वह उप-जातियोंकी इस सम्मेलनकी प्रवृत्तिको दबानेके बजाय बढ़ावा दे।

आजकल सचमुच जाति-बहिष्कारके पात्र तो ऐसे लोग हैं जो अपनी पुत्रियोंका विवाह कच्ची उम्रमें अर्थात् कमसे-कम १६ वर्षकी आयुके पहले ही कर देते हैं। यदि पर्देकी आड़में चलनेवाले व्यभिचारको कम करना है तो बाल-विधवाओंके माता-पिताओंका यह कर्त्तव्य है कि वे उनके पुनर्विवाहको प्रोत्साहन दें।

पण्डे

भागलपुरसे हम मोटर द्वारा बाँका पहुँचे, जहाँ मौलाना शफी साहबकी अध्यक्षतामें एक जिला सम्मेलन हो रहा था। कोई उल्लेखनीय बात यहाँ देखनेमें नहीं आई। अलबत्ता इतना जरूर हुआ कि वहाँकी परेशान कर देनेवाली भारी भीड़के बीचसे जब मैं गुजरा तो मेरा अँगूठा कुचला गया और मैं बड़ी मुश्किलसे उससे निकल पाया। वहाँसे हम देवघर गये, जिसे लोग वैद्यनाथ धामके नामसे भी जानते हैं। एक प्रसिद्ध तीर्थस्थल होनेके अलावा यह पहाड़ियोंसे घिरा एक सुरम्य स्वास्थ्यवर्धक स्थान भी है। बंगालियोंको यह स्थान अत्यन्त प्रिय है। अन्य तीर्थस्थलोंकी तुलनामें यहाँ एक अन्तर देखनेको मिला वह यह कि यहाँके पण्डे काफी सुसंस्कृत और सभ्य थे। अधिकांश स्वयंसेवक चुस्त पण्डा युवक थे, और मुझे बताया गया कि ये यात्रियोंको काफी सहायता देते हैं। उनमें कई तो शिक्षित व्यक्ति हैं और एक तो उच्च न्यायालयका वकील भी है। कुछ वयोवृद्ध पण्डे मुझसे मिलने भी आये। उन्होंने मुझसे यह जाननेका आग्रह किया कि वे किस तरहसे जनताकी सेवा कर सकते हैं। इसपर मैंने कहा कि यात्रियोंसे पैसा ऐंठनेके बजाय आपको उनकी सेवा करनी चाहिए तथा स्वयं पवित्र एवं संयमित जीवन अपनाकर तीर्थस्थलोंको सचमुच पवित्र बनानेका प्रयास करना चाहिए। उन्होंने बड़ी आतुरतासे मेरी इस बातसे सहमति प्रकट की और जिस तरह उन्होंने मेरे सुझावोंको स्वीकार कर लिया, उसे देखकर मुझे तो यही लगा कि वे सच्चे हृदयसे ऐसा कर रहे हैं और विनम्रताके साथ इस बातको स्वीकार कर रहे हैं कि मैंने जिन बुराइयोंकी ओर उनका ध्यान आकृष्ट किया, वे सचमुच मौजूद हैं। मुझे यह जानकर आश्चर्य और सुख हुआ कि वह महान् मन्दिर तथाकथित अस्पृश्योंके लिए खुला है। दौरेमें आम तौरपर स्त्रियोंकी सभाएँ हुआ करती थी। यहाँ उनका

आयोजन मन्दिरके ठीक सामनेके विशाल प्रांगणमें किया गया था। देवघरमें जहाँ-कहीं भी मैं गया, सर्वत्र उन पण्डा स्वयंसेवकोंने ऐसी सुव्यवस्था बना रखी थी जैसी अन्यत्र कहीं देखनेको नहीं मिली।

कष्ट-सहनका पुण्य

सार्वजनिक सभा बहुत अच्छी तरह आयोजित की गई थी। वहाँ पूर्ण शान्ति थी। जनताके मानपत्रमें जिलेके निवासियोंको १९२१-२२ में जो घोर यातनाएँ सहनी पड़ी थी, उनका स्पष्ट उल्लेख था। यहाँ यह बात ध्यानमें रहे कि यह जिला संथाल परगना कहलाता है। यह बिहारका ऐसा इलाका है, जहाँ विधानके नियम नहीं लागू होते इसलिए कमिश्नरकी मर्जी ही यहाँका कानून है। मानपत्रमें यह भी कहा गया था कि जहाँ १९२१–२२ में संथालोंके बीच मद्यपानकी आदत करीब-करीब खत्म हो गई थी, वहाँ अब फिरसे बढ़ रही है। खादी प्रचारकी यहाँ काफी गुंजाइश बताई गई। अपने उत्तरमें मैंने कहा कि आजतक कोई भी राष्ट्र काफी कष्ट-सहनके बिना अपना स्वत्व प्राप्त नहीं कर सका है। इसलिए १९२१–२२ में लोगोंको जो कष्ट सहने पड़े, उसकी मुझे चिन्ता नहीं है। हाँ, कष्ट-सहन लाभदायक हो, इसके लिए जरूरी है कि कष्टोंको स्वेच्छासे और आनन्दके साथ सहना चाहिए। जब लोग इस तरह स्वेच्छासे हँसते-हँसते कष्ट सहते हैं, तो अन्तमें यह उनके लिए शक्तिदायी और सुखकर साबित होता है। इसलिए मुझे यह जानकर दु:ख हुआ है कि इस जिलेकी जनताको जो कष्ट सहना पड़ा, उससे उसमें अनुत्साह आ गया है। इससे तो यही लगता है कि वह सारा कष्ट स्वेच्छासे और खुशी-खुशी नहीं सहा गया था। अब यह काम कार्यकर्त्ताओंका है कि वे विशुद्ध एवं स्वेच्छाया कष्ट-सहनका उदाहरण पेश करें। संथालोंमें मद्यपानके विरुद्ध बराबर आन्दोलन चलाना चाहिए और चरखेका कार्य विधिवत् संगठित किया जाना चाहिए।

दो तस्वीरें

नगरपालिकाकी ओरसे भी अलगसे एक मानपत्र भेंट किया था। मैं इस घटनाका उल्लेख विशेष रूपसे इसलिए कर रहा हूँ कि इस समारोहका आयोजन खुले मैदानमें बहुत ही सुरुचिपूर्ण, किन्तु आडम्बरहीन तरीकेसे किया गया था। जाहिर था कि उपस्थित लोग टिकट खरीदकर आये थे और उनकी संख्या इतनी कम थी कि किसी बड़ी इमारतमें भी उन सबको बैठानेकी व्यवस्था बड़ी आसानीसे की जा सकती थी। लेकिन नगरपालिकाने एक सुन्दर प्राकृतिक दृश्यावलीके बीच एक छोटा पण्डाल खड़ा कर दिया था, जिसे फूल-पत्तियोंसे सुरुचिपूर्ण ढंगसे सजाया गया था। इसलिए नगरपालिकाके मानपत्रका उत्तर देते समय मैं मन्दिरको जानेवाली गन्दी सड़क और उसके आसपासके मलबेकी चर्चा किये बिना न रह सका। मैं भारतके लगभग सभी तीर्थस्थलोंमें गया हूँ। हर जगह मन्दिरोंके अन्दर और बाहरकी दशा शोचनीय है। अव्यवस्था, गन्दगी, शोर-गुल और दुर्गन्ध, हर जगह यही देखनेको मिलता है। देवघरमें यह सब शायद और स्थानोंसे कम है। लेकिन फिर भी मन्दिरके परिवेश और जहाँ

मानपत्र भेंट किया गया था, उस स्थानकी स्थितिमें जो अन्तर था, उसे देखकर बड़ा दु.ख हुआ। यदि नगरपालिका, पण्डे और तीर्थयात्री साथ मिलकर काम करें तो वे मन्दिर और उसके अहातेको, जैसा कि उसे होना चाहिये, सुन्दर, सुवासित और दर्शनार्थियोंके मनपर पावन प्रभाव डालनेवाला वना सकते हैं। मैंने उनसे कहा कि यदि ऐसी व्यवस्था कर दी जाये जिससे मन्दिरका प्रवन्ध ठीक-ठीक और ईमानदारीके साथ किया जा सके तो मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं कि अमीर तीर्थयात्री ऐसे तीर्थस्थानों-पर मिलनेवाली सुख-सुविधाके लिए खुशी-खुशी धन देंगे।

निरर्थक और असुन्दर

देवघरसे हम खड़गडीहाके लिए चल पड़े। रास्तेमें गिरीडीह पड़ता है, जहाँसे खड़गडीहा पहुँचनेके लिए मोटरसे २६ मीलका फासला तय करना पड़ता है। यहाँ कार्यक्रम स्त्रियोंकी सभासे[1] आरम्भ हुआ। सभाओंमें मुझे कुछ ऐसी महिलाएँ भी देखनेको मिलती हैं, जो भारी-भरकम गहने पहने होती हैं। यह चीज मुझे अकसर बहुत अखरी है, फिर भी अबतक मैं इनके खिलाफ कुछ कहनेसे अपने-आपको रोके रहा हूँ। लेकिन यहाँ तो जब मैंने उन्हे कलाईसे लेकर लगभग कोहनीतक चूड़ियाँ पहने और नाकोंमें लगभग तीन-तीन इंच व्यासवाली ऐसी बड़ी-बड़ी और मोटी-मोटी नथें पहने देखा, जिन्हें बड़ी मुश्किलसे दो छेदोंमें लटका रखा गया था, तो मुझसे सहा नही गया। मैंने नम्रताके साथ कहा कि इन भारी आभूषणोंसे व्यक्तिके सौन्दर्यमें कोई वृद्धि नही होती, बल्कि इससे काफी तकलीफ होती है। कई बार बीमारियाँ भी हो जाती हैं, और मैं साफ देख रहा हूँ कि ये मैलके तो घर ही हैं। मैंने लोगोको इतने अधिक आभूषण पहने अन्यत्र कहीं नहीं देखा था। लोगोंको इससे भारी आभूषण पहने मैंने जरूर देखा है—जैसे काठियावाड़की स्त्रियोंके पैरोंके भारी कड़े, जिन्हे मैं छल्ले नही कह सकता—लेकिन कभी भी शरीरका इतना अधिक भाग चूड़ियों और न जाने किस-किस जेवरसे लदा नहीं देखा। मुझे बताया गया कि इतनी बड़ी नथोंसे कई बार नाककी नाजुक झिल्ली कट जाती है। मैं कुछ घबरा-सा रहा था कि महिला श्रोताओंपर मेरी इन सीधी बातोंका जाने क्या असर होगा। इसलिए मेरा भाषण समाप्त होनेपर जब देशबन्धु स्मारक कोषके लिए मेरी अपीलके उत्तरमें वे मेरे चारों ओर घिर आईं और उन्होंने खुले हाथ दान दिया, तो मुझे बड़ी राहत मिली। मैंने अपना आशय दान देनेवाली हर महिलाको अलग-अलग समझाया और उससे कहा कि वह अपने बहुत सारे वाहियात आभूषणोंको त्याग दे। उन्होने बड़ी शालीनता-के साथ मुस्कराते हुए मेरी बातें सहर्ष सुनीं और कुछने तो अपने कई गहने भी मुझे दिये। मैं नही जानता कि आभूषणोंकी मात्रा या प्रकारका व्यक्तिके चारित्रिक विकाससे कोई सम्बन्ध है या नहीं। लेकिन विवेकसे इसका कुछ सम्बन्ध जरूर है, यह बात अनेक दृष्टान्तोसे प्रमाणित की जा सकती है। यह भी स्पष्ट है कि इनका संस्कृतिसे, जहाँतक वह चरित्रसे एक अलग चीज है, कुछ सम्बन्ध है। किन्तु चूंकि

१. देखिए "भाषण: गिरीडीहकी महिला सभामें", ७-१०-१९२५।

मैं चरित्रको संस्कृतिसे भी अधिक महत्त्व देता हूँ, इसलिए स्वभावतः मेरे मनमें एक प्रश्न उठता है कि भारतके विभिन्न भागोंमें मुझे जो हजारों स्त्रियोंके सामने बोलनेका अवसर मिलता रहता है, उसका उपयोग सजने-सँवरनेके सुधारके पक्ष-समर्थनके लिए करना क्या मेरे लिये उचित होगा। जो भी हो, इन सीधी-सादी स्त्रियोंके माता-पिताओं और पतियोंसे मैं यह समझनेका अनुरोध करूँगा कि स्वास्थ्य और मितव्ययिताकी दृष्टिसे यह जरूरी है कि वे उन्हें शरीरको अलंकृत करनेके साधनोंमें काफी कमी करनेके लिए प्रेरित करें।

माहुरी

यहींपर माहुरियोंसे, जिन्हे माथुरी भी कहते हैं, मेरा परिचय हुआ। वे वैश्य जातिके हैं और कहते हैं, पीढियों पहले मथुरा और उसके आसपासके इलाकेसे विहार-में जाकर बस गये थे। वे अच्छे खाते-पीते और उद्यमी लोग हैं। उनका मुख्य धन्धा व्यापार है। उनमें कुछ लोग तो कट्टर सुधारक भी हैं। उन्होंने खादीको अपना लिया है और वे अच्छी तरह समझते हैं कि गरीबोंके लिए वह कितनी लाभदायक है। उनमें से अछूतोंने माँसाहार और मदिरापान छोड़ दिया है। उन्होंने अपने अभिनन्दन-पत्रमें कहा कि वे असहयोग आन्दोलनको विशुद्ध रूपसे आत्मशुद्धिका प्रयत्न मानते हैं और उसने उनके आन्तरिक जीवनमे क्रान्ति ला दी है। वे राजनीतिमें कोई हिस्सा नही लेते। लेकिन वे अपनी छोटी-सी जातिमे सब प्रकारके सुधार करनेको कटिबद्ध हैं। हिन्दुस्तान-भरके इतने सारे लोगोपर असहयोग आन्दोलनका यह जो नैतिक असर पड़ा है, वह शायद उसका सबसे अधिक स्थायी परिणाम है। उसके ऐसे बड़े-बड़े सुपरिणाम निकल सकते हैं, जिनका अभीतक हमें ठीक अनुमान भी नही हो सकता। मुझे बताया गया कि संथाल जातिमें भी ऐसे ही सुधार हुए हैं। बहुत-से पियक्कड़ संथाल लोग अब शराब-को छूतेतक नही हैं। धरना देना बन्द होनेपर उनके बीच इस सुधारमें कुछ व्याघात पड़ गया लेकिन अब वह आन्दोलन फिर चल पड़ा है और १९२१ में उसमें जो हिंसाका तत्त्व आ गया था, इस बार वह उससे मुक्त है। यदि संथालों-जैसी सीधी-सादी किन्तु अज्ञान जातियोंकी शराबखोरीकी लत छुड़ाई जा सके तो यह उनके लिए जीवनदानके समान होगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १५-१०-१९२५

१८१. राष्ट्रीय शिक्षा

अपनी यात्राके दौरान मैं जहाँ कही गया हूँ राष्ट्रीय शिक्षामें दिलचस्पी रखनेवाले लोगोंने वहाँ मुझसे कहा है कि मैं खादी, अस्पृश्यता और हिन्दू-मुस्लिम एकताकी बातें करते हुए तो थकता नही हूँ, किन्तु आजकल राष्ट्रीय शिक्षाकी चर्चा तो 'यंग इडिया' में भी शायद ही कभी देखनेको मिलती है। वास्तवमें देखा जाये तो यह बात सच है, लेकिन यह बात मेरे खिलाफ एक शिकायतके तौरपर नही कही जानी चाहिए — चाहे फिर इसका सिर्फ यही एक कारण क्यो न हो कि भारतके सबसे बड़े राष्ट्रीय विश्वविद्यालयसे मेरा सीधा सरोकार है। लेकिन, राष्ट्रीय शिक्षा ऐसी चीज नही है जिसे अब मेरे लेखों आदिके बलपर आगे बढाया जा सकता हो। इसकी प्रगति तो अब पूरी तरहसे मौजूदा राष्ट्रीय शिक्षण सस्थाओंको ठीकसे चलानेपर निर्भर करती है। अब हम इस देशकी सरकारी संस्थाओंमें शिक्षा प्राप्त कर रहे नौजवानोसे उन सस्थाओंको छोड देनेका आग्रह नही कर सकते और न हमें यह आग्रह करना ही चाहिए, क्योकि अब वे इस विषयकी खूबियों और खामियोंको खुद ही बहुत अच्छी तरह जान गये हैं। वे आज भी सरकारी स्कूलोंमें पढ रहे हैं, उसका कारण या तो उनकी अपनी कमजोरी या सरकारी स्कूलोके प्रति उनका मोह अथवा राष्ट्रीय स्कूलोके प्रति विश्वासका अभाव है। कारण चाहे जो भी हो, उनकी कमजोरी, सरकारी स्कूलोंके प्रति मोह अथवा राष्ट्रीय स्कूलोके प्रति विश्वासके अभावको दूर करनेका एक-मात्र उपाय शिक्षकोंके चरित्र और योग्यताके बलपर राष्ट्रीय सस्थाओंको मजबूत और लोकप्रिय बनाना है।

अभी मेरे सामने दक्षिण कलकत्ताके राष्ट्रीय स्कूलकी एक अपील रखी हुई है। अपीलपर काफी सख्यामें गण्यमान व्यक्तियोंके हस्ताक्षर हैं। उसके साथ भेजे गये पत्रमें मुझे यह याद दिलाई गई है कि अपनी कलकत्ता यात्राके दौरान मैंने उस सस्थाको भी एक क्षणिक भेंट दी थी। मुझे यह भी स्मरण कराया गया है कि वहाँ हाथ-कताई एक अनिवार्य विषय है। स्कूलमें सौ विद्यार्थी और अट्ठारह शिक्षक हैं। स्कूलको २०० रुपयेका वार्षिक अनुदान मिलता है। इस तरहकी सस्थाएँ भारत-भरमें फैली हुई हैं, और उनके शिक्षक मुझसे बराबर ऐसा अनुरोध करते ही रहते हैं या तो मैं इन स्तम्भोंमे उनके पक्षमें लिखकर उन्हें प्रसिद्धि दूं, या इससे भी अच्छा यह हो कि कोषके लिए निकाली गई सीधी अपीलपर अपने हस्ताक्षर कर दूं। लेकिन कुछ अत्यन्त सुपात्र संस्थाओंको नजरअन्दाज कर देनेका जोखम उठाकर भी मुझे इस लोभका संवरण ही करना होगा। किसी सस्थाके जल्दबाजीमें किये गये मुआइनेसे मनपर पड़ी छाप अगर प्रतिकूल हो तो इतनेसे ही उस सस्थाका कोई नुकसान नही होने देना चाहिए। इसी तरह अगर कोई संस्था सचमुच अच्छी न हो और उसे देखनेसे मनपर पड़ी छाप अनुकूल किन्तु सही न हो तो ऐसी संस्थाका

साथ भी नहीं देना चाहिए। मेरा यह निश्चित विश्वास है कि कोई भी योग्य संस्था समर्थनके अभावमें कभी बन्द नहीं होती। जो संस्थाएँ बन्द हुई हैं वे या तो इस कारण बन्द हुई हैं कि उनमें ऐसी कोई चीज ही नहीं थी जिससे जनता उनकी ओर आकृष्ट होती या फिर इस कारण कि उनके कर्ता-धर्त्ता ही आत्मविश्वास खो बैठे थे अथवा उनमें उद्यम करनेके लिए उत्साह, जो शायद आत्म विश्वाससे अलग चीज नहीं है, नहीं रह गया था। इसलिए इस संस्थाके और ऐसी ही दूसरी संस्थाओंके संचालकोंसे मेरा अनुरोध है कि वे इस आम निरुत्साहके वातावरणसे पस्त न हों। ऐसे ही समयमें तो योग्य संस्थाओंकी परीक्षा होती है। आज भारतमें ऐसी बहुत-सी संस्थाएँ हैं जो अपना अस्तित्व कायम रखनेके लिए बहुत ही प्रतिकूल परिस्थितियोंमें संघर्ष कर रही हैं और जहाँ अभावग्रस्त रहनेके बावजूद शिक्षकोंका अपने-आपमें और अपने उद्देश्यकी महत्तामें विश्वास है। मैं जानता हूँ कि अन्ततः वे संस्थाएँ फूले-फलेंगी और आज वे जिस अग्नि-परीक्षामें से गुजर रही हैं, उसमें से वे और भी सशक्त होकर, कुन्दन बनकर निकलेंगी। जनताको मेरी सलाह है कि वह ऐसी संस्थाओंको निकटसे देखे-परखे और यदि ये उसे आवश्यक और योग्य जान पड़ें तो इनकी सहायता करे।

मैंने जिन संस्थाओंका निरीक्षण किया है, उनमें से बहुतोंमें कताईको स्थान देनेकी प्रवृत्ति महज इसलिए देखी गई है कि इसका आजकल एक फैशन-सा हो गया है। इस तरह न इस महान् उद्देश्यके साथ और न विद्यार्थियोंके साथ ही न्याय होता है। अगर कताईको एक अनिवार्य धन्धेके रूपमें फिरसे जीवित करना है तो उसपर गहराईसे विचार करना चाहिए और उसकी शिक्षा उसी तरह समुचित और शास्त्रीय पद्धतिसे दी जानी चाहिए जिस तरह किसी भी सुव्यवस्थित स्कूलमें अन्य विषयों की शिक्षा दी जाती है। तब चरखे बिलकुल दुरुस्त और अच्छी हालतमें होंगे, इन स्तम्भोंमें मैं उनकी उपयुक्तता परखनेके लिए समय-समयपर जो कसौटियाँ बताता रहा हूँ उन सभीपर वे खरे उतरेंगे और जिस तरह विद्यार्थियोंके दूसरे अभ्यासोंको प्रतिदिन नियमपूर्वक जाँचा जायेगा या जाँचना चाहिए उसी तरह उनके चरखे-सम्बन्धी अभ्यासको भी जाँचा जायेगा और जबतक सभी शिक्षक कताई-कलाको, उससे सम्बन्धित तमाम बारीकियोंके साथ सीख नहीं लेंगे तबतक यह सब होना असम्भव है। कताई-विशेषज्ञ रखना तो पैसेकी बरबादी है। अगर कताईकी शिक्षा कारगर ढंगसे देनी हो तो हरएक शिक्षकको कताई विशेषज्ञ बनना होगा और अगर शिक्षकको कताईकी आवश्यकतामें विश्वास हो तो प्रतिदिन सिर्फ दो घंटे देकर वह बिना किसी कठिनाईके इस कलाको महीने-भरमें सीख सकता है। लेकिन, मैंने कहा है कि अगर लड़के और लड़कियाँ अपने-अपने घरोंपर चरखेका प्रयोग करना चाहें तो, इस विचारसे कि वे उस योग्य बन सकें। उन्हें चरखा चलानेकी शिक्षा दी तो जा सकती है, किन्तु कक्षामें बैठकर कताई करनेकी दृष्टिसे तो तकली सबसे कम खर्चका और लाभदायक यन्त्र है। पाँच सौ बालक प्रतिदिन एक नियत समयपर आधा घंटा लगाकर प्रति बालक पचीस गज के हिसाबसे सूत कातें, यह बात

इससे तो हर हालतमें अच्छी ही है कि पचास लड़के अन्तराल देकर उसी आधे घटेमें प्रति लड़का सौ गजके हिसाबसे सूत निकाले। पाँच सौ लडके तकलीपर प्रति दिन १२,५०० गज सूत कात लेंगे, जबकि पचास लड़के चरखेपर सिर्फ ५,००० गज सूत कत पायेंगे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १५-१०-१९२५

१८२. शिक्षित वर्गोंके विषयमें

मेरी बिहार-यात्राके दौरान एक भाईने मुझे निम्नलिखित प्रश्न इन स्तम्भोंमें उत्तर दिये जानेके अभिप्रायसे भेजे है .

आपकी शिकायत है कि भारतके शिक्षित वर्गोंके लोग आपके कहे अनुसार नहीं चलते और अब आपका उनपर वश नहीं है। क्या इसका कारण यह नहीं है कि आपने पहले आन्दोलनके आरम्भमें ही उनकी उपेक्षा कर दी और उनसे वशके बाहर त्याग करनेको कहा?

मुझे कभी ऐसी कोई शिकायत करनेकी अपनी बात याद नही आती कि शिक्षित वर्गके लोग मेरे कहे अनुसार नही चलते। अगर मैंने कुछ कहा ही है तो अपनी ही इस कमीकी बात कही है कि मैं समस्त शिक्षित वर्गको ही अपनी वास्तविक स्थितिका औचित्य नही समझा सका हूँ। मैंने शिक्षित वर्गकी कभी उपेक्षा की हो, ऐसा कहना तो मुझे बिलकुल गलत समझना है। क्या कोई सुधारक कभी किसीकी उपेक्षा करता है? वह तो लोगोंको सिर्फ किसी सुधार-विशेषमें शामिल होनेको ही आमन्त्रित करता है; और उस सुधारका आरम्भ वह खुद अपनेको तदनुसार ढालकर करता है। दूसरे शब्दोंमें, वह अपने आपको समाजसे विलग कर लेता है और जबतक समाज उसके सुधारकी खूबीको नहीं समझ पाता, उसे इसी अवस्थामे रहना पड़ता है। अगर समाज किसी सुधार-विशेषको हृदय या बुद्धिके धरातलपर समझ या सराह नहीं पाता तो इसमें समाजका कोई दोष नहीं है। सुधारक जिस समाजमें रहता है, उस समाजमें अगर उसे ऐसे लोग नही मिलते जो उसके सुधार-कार्यको अपना लें, तो स्पष्ट ही उस सुधारमें या स्वयं उस सुधारकमें कोई कमी है। मैं समझता हूँ, यह बात स्वीकार कर ली जानी चाहिए कि यह नया आन्दोलन जिन-जिन त्यागोंकी अपेक्षा रखता था, वे एक वर्गके रूपमें शिक्षित लोगोके लिए असम्भव ही थे, फिर भी उनमें से जो थोड़े-बहुत लोग अपवाद-स्वरूप आगे आये, क्या उन्होंने अद्भुत बलिदान करके नही दिखाया?

अगर मुझे ठीक याद है तो आन्दोलनके प्रारम्भमें आपने ऐसी घोषणा की थी कि यदि सर्वसाधारण मेरे साथ हो तो मैं बुद्धिजीवी वर्गकी कोई परवाह नहीं करता। अगर यह बात सही हो तो अब क्या आपके विचार बदल गये हैं? यदि सचमुच आपके

विचार बदल गये हों तो बुद्धिजीवी वर्गको अपने विचारोंसे सहमत करनेके लिए आप क्या कर रहे हैं या क्या करनेका इरादा रखते हैं?

मैं तो यही समझता हूँ कि मैंने कभी ऐसी कोई 'घोषणा' नहीं की कि "मैं बुद्धिजीवी वर्गकी कोई परवाह नहीं करता।" किसी सुधारकके लिए ऐसा कहने या करनेकी गुंजाइश ही नहीं होती। मैंने यह जरूर कहा था — और आज भी मेरा यही विचार है — कि अगर सर्वसाधारण असहयोगकी भावनाको ग्रहण कर ले तो शिक्षित वर्गोंकी सहायताके बिना भी स्वराज्य प्राप्त हो सकता है। जहाँतक सर्वसाधारणका सम्बन्ध है, इस दिशामें उसे जो मुख्य कार्य करना है, वह है विदेशी और मिलके बने सूतसे तैयार कपड़ेके साथ अपना सारा सम्बन्ध तोड़कर अपने हाथसे कते सूतसे अपने ही हाथों बुने कपड़ेसे निकटतम सम्बन्ध जोड़ना। किन्तु, दुर्भाग्यकी बात है कि यह बहुत साधारण दिखनेवाला काम भी शिक्षित वर्गकी सहायताके बिना नहीं किया जा सकता। मैं कृतज्ञतापूर्वक इस बातको पूरी तरह स्वीकार करता हूँ कि अगर सैकड़ों शिक्षित स्त्री-पुरुष चरखा और खादीके सन्देशके प्रचारमें मेरी सहायता न कर रहे होते तो इसने जितनी प्रगति की है, उतनी प्रगति यह नहीं कर पाता। यदि प्रगतिकी रफ्तार जितनी तेज हो सकती थी उतनी तेज नहीं है तो उसका भी कारण यही है कि एक समूहके रूपमें शिक्षित वर्ग खादी आन्दोलनसे किनाराकशी करके बैठा हुआ है।

क्या आप सचमुच ऐसा मानते हैं कि सर्वसाधारण आपके साथ हैं, या वह महात्मा कहकर आपकी प्रशंसा-भर करता रहता है और आपकी सलाहकी ओर कोई ध्यान नहीं देता?

निश्चय ही मैं ऐसा मानता हूँ कि सर्वसाधारण मनसे पूरी तरह मेरे साथ है। लेकिन, जिस चीजको उसका मन ठीक कहता है, उसे करनेका उसमें उत्साह और साहस नहीं है। इस सम्बन्धमें मैंने हजारों लोगोंसे पूछताछ की है और सभीने निरपवाद रूपसे लगभग यही कहा है: "हम क्या कर सकते हैं? हम आपकी बात अच्छी तरह समझते हैं। लेकिन, हममें उसे करनेकी शक्ति नहीं है। आप हमें उसके लिए शक्ति दीजिए।" अगर ऐसी शक्ति देना मेरे बसमें होता तो अबतक सर्वसाधारणका कायाकल्प हो चुका होता। लेकिन, मैं जानता हूँ कि इस विषयमें मैं कितना लाचार हूँ। उनका मुझसे शक्तिको पानेकी आशा करना व्यर्थ है; शक्ति तो उन्हें सिर्फ ईश्वर ही दे सकता है।

क्या आप समझते हैं कि जनताको इस तरह संगठित किया जा सकता है, कि वह पूरी तरहसे सामूहिक सविनय अवज्ञाके योग्य बन जाये? क्या उसके विषयमें बराबर ऐसा खतरा नहीं बना रहता कि वह किसी भी क्षण उन्मत्त होकर अपने अत्युत्साह और अनुशासनहीनताके कारण किसी भी राजनीतिक आन्दोलनको निष्फल बना दे सकती है?

यद्यपि जो-कुछ दिखाई देता है वह इसके विपरीत ही मालूम होता है, फिर भी मैं निस्सन्देह ऐसा मानता हूँ कि सर्वसाधारणको सामूहिक सविनय अवज्ञाके लिए

पूरी तरह संगठित किया जा सकता है; अर्थात् हिंसाकी अपेक्षा इसके लिए उसे ज्यादा जल्दी संगठित किया जा सकता है। क्रोधके अतिरेकमें आकस्मिक रूपसे यत्र-तत्र फूट पड़नेवाली हिंसा और योजनाबद्ध सामूहिक हिंसामें मैं भेद मानता हूँ। यदि कोई भारतको, मान लीजिए, जर्मनीकी तरह सैनिक शिविर बना देना चाहे तो मेरे विचारसे उसमें कई युग लग जायेंगे, किन्तु यहाँकी जनताको सगठित रूपसे अनाक्रामक बने रहने अर्थात् कष्टोंको सहते हुए शान्त रहनेकी शिक्षा दे सकना अपेक्षाकृत सुगम कार्य है। बम्बई, चौरी-चौरा और अन्यत्र हुई कुछ चूकोंके बावजूद १९२१ में हमने यह बात बहुत अच्छी तरह सिद्ध करके दिखा दी थी। लेकिन, मैं यह निस्सकोच भावसे स्वीकार करूँगा कि देशको निकट भविष्यमें सामूहिक सविनय अवज्ञाके लिए सगठित कर सकनेके विषयमें मैं खुद ही निराश हो गया हूँ। इसके कारण बतानेकी यहाँ जरूरत नही। लेकिन, मैं इतना जानता हूँ कि अगर भारतको सर्वसाधारण जनताके लिए स्वराज्य प्राप्त करना है तो यह सामूहिक सविनय अवज्ञाकी क्षमताके विकासके जरिये ही प्राप्त किया जा सकता है। प्रश्नके अन्तिम हिस्सेसे प्रकट होता है कि प्रश्नकर्त्ताको सर्वसाधारणकी योग्यतामें या तो विश्वास नहीं है या फिर वे उसके सम्बन्धमें अधैर्यसे काम ले रहे हैं। हम सर्वसाधारणके सम्पर्कमें आये ही कितने दिनसे हैं कि उसपर अनुशासनहीन और अत्युत्साही होनेका आरोप लगायें? यह एक ऐसा अपराध है जिसके लिए शायद हम खुद सर्वसाधारणसे कही अधिक दोषी हैं। अपनी बिहार-यात्राके दौरान भी मैं इस बातकी पुष्टि होते देखता हूँ। कार्यकर्त्ताओंने देख लिया है कि मेरा स्वास्थ्य ऐसा नही है कि मैं अधिक शोर-गुल और भीड़-भाडको बर्दाश्त कर सकूँ। वे मेरे स्वागतमें एकत्र होनेवाली भारी भीड़ोंको पहलेसे ही शोरगुल और किसी प्रकारका प्रदर्शन न करनेके लिए समझा देते हैं, और यह देखकर मुझे आश्चर्य और सुख होता है कि लोग यहाँ भी बंगालकी ही तरह उनकी बात मानकर तदनुसार व्यवहार कर रहे हैं। जहाँ कही भी कार्यकर्त्ताओंने सर्वसाधारणसे जरा भी सम्पर्क स्थापित किया है, उन्हे यही बात देखनेको मिली है।

सर्वसाधारणको संगठित और अनुशासनबद्ध करनेके लिए आप क्या कर रहे हैं?

सर्वसाधारणको सगठित या अनुशासनबद्ध करनेके लिए मैं या कोई भी जो कदम उठा सकता है, वह है नि:स्वार्थ-भावसे उसकी सेवा करना और उसकी नि:स्वार्थ भावसे सेवा सिर्फ खादी कार्यके जरिये ही सम्भव है।

क्या आपको कांग्रेस संगठनमें बहुतसे अवांछनीय तत्त्वोंके प्रवेश कर जानेका पूरा एहसास नहीं है? अगर है तो आप इस आन्दोलनको उनसे मुक्त करनेके लिए क्या कदम उठा रहे हैं?

इस दुर्भाग्यपूर्ण तथ्यको मैं भली-भाँति जानता हूँ। लेकिन यह चीज लोकतान्त्रिक संगठनोंके भाग्यमें ही बदी हुई है। इसलिए मुझसे या और किसी व्यक्तिसे यह पूछना बेकार है कि आप इसके लिए क्या कदम उठा रहे हैं। जो लोग अपने-आपको 'वांछनीय तत्त्व' समझते हैं, उन सबको कांग्रेस सगठनको शुद्ध बनाये रखनेके लिए सम्मिलित प्रयास करना चाहिए।

क्या आपको यह मालूम नहीं है कि आपके नेतृत्वमें चलनेके खातिर जिन लोगोंने अपनी जीविकाका एकमात्र धंधा छोड़ दिया है, वे सब अपने-अपने परिवारों और समाजके लिए बोझ बन गये हैं और इन सारे निठल्ले लोगोंके पालन-पोषणका भार इनके उन सगे-सम्बन्धियोंपर आ पड़ा है जो अच्छी स्थितिमें हैं? यदि आपको यह बात मालूम है तो आप इसके निराकरणके लिए क्या करने जा रहे हैं?

यहाँ मेरा प्रश्नकर्त्ताके दृष्टिकोणसे सहमत होना सम्भव नही है। इसमें शक नही कि कुछ लोगोंको काफी कष्ट उठाना पड रहा है। लेकिन, इसका कारण यह है कि ये लोग अपना रहन-सहन नहीं बदल पाये और अपना खर्च कम करनेमें असमर्थ रहे। इन लोगोंने फिरसे वकालत करने या नौकरीमें चले जानेकी अपेक्षा कष्ट सहन करना और अपनी जीविकाके लिए अपने परिजनों और मित्रोंपर निर्भर रहना कहीं अच्छा समझा। मेरे विचारसे तो उनके इस निर्णयमें अपमानकी कोई बात नहीं है।

क्या यहाँ न्यासियोंके एक बोर्डके अधीन एक ऐसे सार्वजनिक कोषकी स्थापनाकी आवश्यकता नहीं है जिससे सभी सच्चे सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं और उनके परिवारोंका भरण-पोषण हो सके?

जिस तरहके कार्यकर्त्ताओंका प्रश्नकर्त्ताने उल्लेख किया है, उस तरहके कार्यकर्त्ताओंके भरण-पोषणके लिए सार्वजनिक कोषका निर्माण करना मुझे ठीक नहीं लगता। इससे तो सचमुच निठल्लोंका एक पूरा समुदाय ही खड़ा हो जायेगा। हर सच्चे सार्वजनिक कार्यकर्त्ताको कांग्रेसकी किसी-न-किसी शाखामें सेवक बनकर रहने और उसके लिए पारिश्रमिक लेनेमें गर्वका अनुभव करना चाहिए।

स्वराज्यदलको प्रान्तीय विधान परिषदों और विधान सभामें कांग्रेसका प्रतिनिधित्व करनेका अधिकार देते हुए आपने एक तरहसे कोरे कागजपर दस्तखत कर दिया है। क्या ऐसा करते समय आप इस ओरसे पूरी तरह आश्वस्त थे कि वे लोग आपकी बात मानकर चलते रहेंगे? क्या उस दलके नेताओं द्वारा हालमें कही गई बातोंसे यह प्रकट नहीं होता कि वे कांग्रेसके किसी प्रस्तावके अनुसार अपने सिद्धान्त या कार्यक्रममें परिवर्तन करनेके बजाय उससे निकल जाना ज्यादा पसन्द करेंगे?

स्वराज्यदलको किसी भी अर्थमें कोरे कागजपर दस्तखत करके नहीं दिये गये हैं। प्रश्नकर्त्ताका ऐसा खयाल करना गलत है। मुझे पूरा भरोसा है कि यह दल — स्वराज्यदल — कांग्रेसकी हर सुव्यक्त रायको मानकर चलेगा — फिर उसका कारण सिर्फ यही क्यों न हो कि एक लोकतांत्रिक संस्था होनेके नाते उसे हर बातमें जनमतके समर्थनपर निर्भर करना है।

आपने चरखा संघकी जो स्थापना की है, उससे मुझे लगता है कि चूंकि कांग्रेसको आपने स्वराज्यवादियोंके हाथमें सौंप दिया है, इसलिए अब आप अपना रचनात्मक कार्यक्रम कांग्रेसकी मुख्य प्रवृत्तिके रूपमें न चलाकर एक गौण प्रवृत्तिके रूपमें ही चलायेंगे। अगर ऐसा है, तो क्या आप कांग्रेससे लगभग अलग ही नहीं हो रहे हैं

और उन सबकी उपेक्षा नहीं कर रहे है, जिन्होंने उस नाजुक वक्तपर आपके नेतृत्व-में चलना स्वीकार किया था जब गया-कांग्रेसके बाद स्वराज्यदल आपके खिलाफ लगभग विद्रोह कर उठा था?

मैंने न कांग्रेसको स्वराज्य दलके हाथमें सौंप दिया है और न उसके अथवा किसी और दलके हाथमें उसे सौंपनेका मुझे कोई अधिकार है। अगर कांग्रेसजन स्वराज्यदलके साथ न हों तो वह एक भी दिन काँग्रेसको अपने हाथमें नही रख सकता। मुझे उम्मीद है कि काग्रेसमें रचनात्मक कार्यक्रमका स्थान कभी गौण नही होगा। अखिल भारतीय काग्रेस कमेटीने सिर्फ इतना ही तो किया है कि कौंसिल कार्यक्रमको रचनात्मक कार्यक्रमके बराबरीका दर्जा दे दिया है और चरखा तथा खादीके कार्यक्रमें संचालनके लिए विशेषज्ञोंकी एक अलग सस्था कायम कर दी है। जबतक कांग्रेस अखिल भारतीय चरखा सघको अपना सरक्षण देती रहेगी, तबतक ऐसा नहीं कहा जा सकता कि मै काग्रेससे अलग हो गया हूँ। जैसा कि मै कह चुका हूँ, उपेक्षा तो मै किसीकी नही कर रहा हूँ। जिनका विश्वास सिर्फ चरखेमें ही है, और जिनका कौंसिलोंपर तनिक भी भरोसा नही है, वे अ० भा० च० सघके सदस्य तो अब भी हो सकते हैं।

अगर स्वराज्यदल अपने वादे पूरे करनेमें विफल रह जाता है तो देशकी राज-नीतिक मुक्तिके लिए आप चरखे और खादीके अतिरिक्त अन्य किसी भावी कार्यक्रमके विषयमें क्या सोचते है?

मुझे नही मालूम कि इस प्रश्नमें उल्लिखित वादोंसे प्रश्नकर्त्ताका तात्पर्य क्या है। देशकी राजनीतिक स्वतन्त्रता तो उसके सशस्त्र अथवा सविनय प्रतिरोधके लिए तैयार हो जानेपर ही सम्भव है। सशस्त्र प्रतिरोधकी शक्ति तो दीर्घकालतक दबी-छुपी तैयारीके बाद ही आ सकती है और सविनय प्रतिरोधकी क्षमता उत्तरोत्तर अधिकाधिक लोगों द्वारा अपने भीतर रचनात्मक शक्तिका विकास करनेसे प्राप्त होगी। चूंकि मै मानता हूँ कि भारत अभी कई पीढियोंतक अपने भीतर सशस्त्र प्रतिरोधकी शक्तिका पूरा विकास नही कर सकता, इसलिए मै अपनी सारी आशा और आस्था चरखेकी उस शान्त, अचूक और अमोघ क्रान्तिपर लगाये बैठा हूँ।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १५-१०-१९२५

१८३. यूरोपीयन सभ्यता

डेन्मार्कके एक मित्रने मुझे 'गैड्स डानस्के मैगासिनमे' छपे एक लेखसे लिये गये कुछ अंशोंका अनुवाद भेजा है। उन्होंने इन अंशोंका शीर्षक "यूरोपीय सभ्यता और गांधी" दिया है। 'यंग इंडिया' मे उस शीर्षकमें से मैंने अपना नाम निकाल दिया है, क्योंकि मैंने उन उद्धृत अंशोंमें से वे हिस्से भी निकाल दिये हैं, जिनका सम्बन्ध मेरे विचारोंसे था। मेरे विचारोंसे तो 'यग इंडिया' के पाठक अवगत ही हैं। प्राप्त अनुवाद इस तरह है:[1]

इन अंशोंमें जो चित्र उपस्थित किया गया है वह बहुत भयावह है। किन्तु कदाचित् वह तत्त्वतः सही है। मेरे विचारसे, इस बातसे इनकार नही किया जा सकता कि यूरोपके राष्ट्र जो-कुछ कर रहे हैं सक्षेपमे उसे ईसा मसीहके पर्वत-प्रवचनके विपरीत आचरण कहा जा सकता है। हमे यूरोपके शस्त्रास्त्रोंकी चमक-दमक और चकाचौंधमे नही वह जाना चाहिए, यह मेरी चेतावनी है और इसपर जोर देनेके लिए ही मैंने इन अशोंको यहाँ छापा है। यदि उक्त चित्र समस्त यूरोपका चित्र होता तो वह यूरोप और दुनिया दोनोके लिए दुर्भाग्यकी बात होती। सौभाग्यसे यूरोपमें ऐसे स्त्री-पुरुषोंका एक खासा बड़ा समुदाय है, जो युद्धोन्माद और भौतिक सुख-समृद्धिके लिए मची हुई भाग-दौडके विरुद्ध अपनी पूरी शक्ति लगाकर सघर्ष कर रहे हैं। ऐसी आशा करनेके लिए पर्याप्त कारण है कि यह समुदाय दिन-प्रतिदिन संख्यामें बढ़ रहा है और उसके प्रभावका भी विस्तार हो रहा है। यूरोपके मनीषी लोग वहाँकी भौतिकवादिताके इस अतिरेककी तीव्रतम शब्दोंमे भर्त्सना कर रहे हैं और उसको नियन्त्रणमें लानेके लिए बड़े साहसके साथ सघर्ष कर-रहे हैं। मेरी यही कामना है कि भारत उस भौतिकवादिताके अतिरेकके प्रवाहमे वहकर इस नवजागरणके मार्गमें वाधक होनेका भागी बननेके बजाय, इस नवजागरणमें शामिल होकर इसे आगे वढानेका सौभाग्य प्राप्त करे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १५-१०-१९२५

१. अनुवादके पाठके लिए देखिए परिशिष्ट ३।

१८४. एक अच्छा संकल्प

पिछले अगस्त महीनेमें जब मैं कलकत्तासे लौटते हुए मनमाडसे गुजर रहा था, तब कुछ मित्र स्टेशनपर आकर मुझसे मिले। मैंने सदाकी तरह पूछा कि मनमाडमें नियमसे कातनेवाले कितने लोग हैं, किन्तु उन्होने उसका कोई उत्तर नही दिया। उसके बाद कुछ लोगोंने सोचा कि हमें अब सूत कातना आरम्भ कर देना चाहिए और अभी मेरे सामने उनका एक पत्र पडा हुआ है। यह कई सप्ताहसे मेरी फाइलमें रखा हुआ है। उसमें उन्होने सूचित किया है कि पत्र लिखनेके समयतक, अर्थात् ३ सितम्बरतक २० व्यक्तियोने निष्ठाके साथ सूत कातना आरम्भ कर दिया है। मैं इन मित्रोंको इनके संकल्पपर बधाई देता हूँ। वैसे तो पिछले साल भी बहुत-से लोगोंने ऐसा ही सकल्प किया था, किन्तु उसे पूरा शायद ही कोई कर पाया हो। मुझे पूरी उम्मीद है कि इस सकल्पकी गति वैसी नही होगी। हममे से हरएक की बात उस लिखित दस्तावेजकी तरह पक्की होनी चाहिए, जिसका उल्लंघन करनेपर तत्काल कड़ा दण्ड दिया जा सकता है। मनमाडके भाइयोंने जैसा सकल्प किया है वैसे संकल्पोंको मैं राष्ट्रको दिये गये वचनके रूपमे मानता हूँ। ऐसा सकल्प करनेवाले लोग आम तौरपर वयस्क और अपने दायित्वको भली-भाँति समझने वाले होते हैं। मैं आशा करता हूँ कि मनमाडके मित्र अपने नाम अखिल भारतीय चरखा संघको भेज देंगे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १५-१०-१९२५

१८५. टिप्पणियाँ

अपना-अपना सूत भेजिए

अखिल भारतीय चरखा संघका वर्ष इसी महीनेसे शुरू होता है, इसलिए जो लोग इसके सदस्य होना चाहते हों, उन्हे तुरन्त सूतका अपना मासिक चन्दा भेजना शुरू कर देना चाहिए। जो लोग कताई मताधिकारके अन्तर्गत कांग्रेसके नियमित सदस्य रह चुके है, उनके लिए तो अ० भा० च० संघका सदस्य बननेमें कोई कठिनाई नही होनी चाहिए। और अनियमित सदस्योंको भी, अर्थात् जो लोग चन्देका पूरा सूत नही दे सके थे उनको भी, चन्दा चुकानेमें कोई कठिनाई नही होनी चाहिये क्योंकि अब चन्देमें दिये जानेवाले सूतकी मात्रा पहले कांग्रेसके चन्देमें जितना देना पड़ता था, उससे आधी कर दी गई है। जो भी हो काग्रेसके चन्देका पूरा सूत न देनेवाले इन सदस्योंको अ० भा० च० संघ के द्वितीय श्रेणीके सदस्य बननेमें तो कोई कठिनाई होनी ही नहीं चाहिए।

सर्वोत्तम सहायक धन्धा

एक भाईने मुझे कीटिंगकी पुस्तक 'एग्रिकलचरल प्रोग्रेस इन वेस्टर्न इंडिया' ('पश्चिमी भारतमें कृषिकी प्रगति')से निम्नलिखित उद्धरण भेजा है:

> इस बातके लिए प्रयत्न किये गये हैं कि किसान लोग हाथसे सूत कातने-जैसे कुछ ऐसे काम अपनायें, जिनके लिए किसी विशेष प्रशिक्षण या कुशलताकी जरूरत नहीं होती। किन्तु, कताई मिलोंकी कार्य-क्षमताको देखते हुए, ऐसे कार्योंको आर्थिक दृष्टिसे उचित बतानेका कारण सिर्फ यह मान्यता ही हो सकती है कि आजकल किसान लोग अपना इतना ज्यादा समय व्यर्थ गँवा देते हैं कि वे चाहे जितना भी कम पैसा देनेवाला काम करें, वह कुछ न करनेसे तो बेहतर ही होगा। दुर्भाग्यवश बहुतसे किसानोंके सम्बन्धमें जो तथ्य हमारे सामने मौजूद हैं, उनको देखते हुए ऐसा मान लेना ठीक ही लगता है; किन्तु इसी कारण किसानोंको ऐसी कठिन, विषम और स्पर्धाकी स्थितिमें डालनेवाले सुझावको तो हताश मनका ही सुझाव माना जायेगा। किसानोंके लिए सर्वोत्तम सहायक धन्धा पशुधनको बढ़ाना और पशु-पालन ही होना चाहिए। इससे उन्हें सभी मौसमोंमें धन्धा मिल जाता है और आमदनी होती है, एवं खेतमें डालनेके लिए खाद उपलब्ध हो जाती है, जो जमीनकी उर्वरा-शक्तिको ठीक रखनेके लिए आवश्यक है।

यह सवाल इस दृष्टिसे बड़ा महत्त्वपूर्ण है कि इसमें दो बातोंको स्पष्ट रूपसे स्वीकार किया गया है। एक बात यह है कि भारतके बहुत-से किसानोंका बहुत-सा समय बर्बाद होता है और दूसरी बात यह है कि उस समयमें उनको चाहे जितना कम पैसा देनेवाला धन्धा मिल जाये, वह कुछ न करनेसे तो बेहतर ही है। फिर भी, लेखक हाथ-कताईके पक्षमें नहीं है, क्योंकि मिलें अच्छा और ज्यादा सूत कातती हैं। जरा ध्यानसे देखनेपर स्पष्ट हो जायेगा कि यह दलील गलत है। किसानोंको अपने घरपर तो अच्छा सूत कातनेवाली मिलोंसे स्पर्धा नहीं करनी है। उनको जिस चीजसे स्पर्धा करनी है वह है मिलोंके बने भौंड़ी लगें झिरझिरे कपड़के प्रति उनमें उत्पन्न नई रुचि। यदि वे अपने भीतर इस पुरानी रुचिको फिरसे जगा लें, सादी किन्तु मुलायम और सुन्दर खादी फिर पहनने लगें तो उनको विवश होकर जो बेकारी उठानी पड़ती है, तत्काल उसका खतरा समाप्त हो जाये। अच्छे-अच्छे होटल और रोटी, बिस्कुट आदि बनानेके कारखाने करोड़ों लोगोंको कहाँ लगाते हैं? इनसे उन्हें कोई स्पर्धा नहीं करनी पड़ती है; बल्कि वे सुन्दर ढंगसे काटे-तराशे और अच्छी तरह पकाये मसालेदार बिस्कुटोंके मुकाबले अपने घरकी टेढ़ी-मेढ़ी चपातियाँ ज्यादा पसन्द करते हैं। लेखक द्वारा सुझाया गया पशु-पालनका सहायक धन्धा, निस्सन्देह, बड़ा अच्छा धन्धा है और सूत कातनेकी अपेक्षा उससे ज्यादा आमदनी तो हो ही सकती है। किन्तु इसके लिए पूँजीकी आवश्यकता होती है और पशु-पालनका ज्ञान भी चाहिए, जो सामान्य किसानोंमें नहीं होता। पहलेसे बहुत तैयारी किये बिना यह ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता और न होगा ही। इसलिए आप इस समस्याको चाहे

जिस तरहसे देखिए, भारतकी परिस्थितियाँ ऐसी है कि यहाँ हाथ-कताईके मुकाबले कोई दूसरा सहायक धन्धा टिक ही नही सकता। यह चीज कितनी महत्त्वपूर्ण है, इसका अनुमान नही लगाया जा सकता। किन्तु इसका महत्त्व इस बातमे निहित नही है कि इसकी बदौलत मुट्ठी-भर लोग खूब पैसा कमा सकते ह; वह तो इस तथ्यमे निहित है कि इससे करोड़ों लोगोंको तत्काल एक लाभप्रद धन्धा मिल जाता है। इसलिए एकमात्र यही ऐसा सहायक धन्धा है, जिसको यहाँ सफलतापूर्वक संगठित किया जा सकता है। इस तरह पशुपालन अपने आपमें चाहे जितना अच्छा धन्धा क्यों न हो वह भारतके लिए सर्वोत्तम सहायक धन्धा नहीं है। यहाँ तो ऐसा धन्धा हाथसे सूत कातना ही है।

शारीरिक श्रमकी आवश्यकता

एक बहुत ही सजग और तत्पर भाईने लिखा है:

> २० अगस्तके 'यंग इंडिया' में आपका जमशेदपुरकी सभामें दिया गया भाषण[1] प्रकाशित हुआ है। उसके पहले पैरेमें शारीरिक श्रमको बौद्धिक श्रमसे अधिक महत्त्वपूर्ण बतानेके बाद, रिपोर्टके अनुसार, आप कहते हैं: 'सम्पूर्ण हिन्दू-धर्म ऐसे ही विचारसे ओतप्रोत है।' जो श्रम किये बिना खाता है, वह पाप खाता है, वह सचमुच चोर है। यह भगवद्‌गीताके एक श्लोकका शब्दार्थ है।' अब इस सवालको तो अलग रहने दीजिए कि गीतामें (तथाकथित) शारीरिक श्रम और (तथाकथित) मानसिक श्रमके बीच ऐसा कोई भेद किया गया है या नहीं, लेकिन मैं यह कह सकता हूँ कि यदि गीताके किसी भी अंशका वह अर्थ लगाया जा सकता है जो (रिपोर्टके अनुसार) आप कहते हैं कि गीताके एक श्लोकका शब्दार्थ है तो वह अंश है गीताके तीसरे अध्यायके श्लोक १२ और १३। इस प्रकार प्रथम तो अपने 'श्रम' विषयक विचारको पुष्टिके लिए आपने एक नहीं, बल्कि दो श्लोकोंका सहारा लिया है। दूसरे, इनमें से किसी भी श्लोकमें शारीरिक अथवा मानसिक किसी प्रकारके 'श्रम' का कोई उल्लेख नहीं है। पहले श्लोकमें यज्ञके कर्त्तव्यकी व्याख्याके रूपमें ऐसा जरूर कहा गया है कि मनुष्यको दैवी शक्तियोंकी कृपासे जो-कुछ मिला है, उसका उपभोग वह उसे दैवी शक्तियोंके साथ बाँटकर या उन्हें अर्पित करके करे और अगर वह ऐसा नहीं करता "तो 'वह सचमुच चोर है।" दूसरे श्लोकमें कहा गया है कि 'जो लोग सिर्फ अपने लिये ही भोजन पकाते हैं, वे पाप खाते हैं।' सो खुद आपके ही पत्रमें म० दे० द्वारा लिखी रिपोर्टके अनुसार 'गीता' के 'एक श्लोकका जो शब्दार्थ मैंने बताया है, उससे यह बात काफी दूर पड़ती है। आशा है, सुविधानुसार आप इस बातपर ध्यान देंगे।

बारीकीसे देखा जाये तो मानना पड़ेगा कि पत्र-लेखकका यह कथन ठीक ही है कि म० दे० की रिपोर्टके अनुसार मैंने जो शब्दार्थ बताया है, वह एक श्लोकका

१. देखिए "भाषण: इण्डियन एसोसिएशन, जमशेदपुरमें", ८-८-१९२५।

नहीं, बल्कि दो श्लोकोंके अंशोंके मिश्रणका अनुवाद है; और मैं इस बिलकुल ठीक भूल-सुधारके लिए पत्र-लेखकका आभारी हूँ। लेकिन, उनके तर्कका सार मुझे यह जान पड़ता है कि 'गीता'के प्रसिद्ध शब्द 'यज्ञ'की मेरे भाषणकी रिपोर्टमें जैसी व्याख्या की गई है, वैसी व्याख्या करनेका कोई औचित्य नहीं है। लेकिन, मैं तो अब भी यही मानना चाहता हूँ कि वह व्याख्या ठीक है, और मैं कहना चाहूँगा कि पत्र-लेखक द्वारा उद्धृत 'गीता'के अध्याय ३ के श्लोक १२ और १३ में जो 'यज्ञ' शब्द आता है, उसका केवल एक ही अर्थ हो सकता है। १४वें श्लोकसे तो यह बात बिलकुल स्पष्ट हो जाती है। उस श्लोकका अर्थ है:

> सभी प्राणियोंका जीवन अन्नसे ही है; अन्न वर्षासे उत्पन्न होता है, यज्ञसे वर्षा होती है और यज्ञ कर्मसे समुद्भूत है।[1]

इसलिए मेरे विचारसे यहाँ न केवल शारीरिक श्रमके सिद्धान्तका प्रतिपादन किया गया है, बल्कि इस सिद्धान्तकी भी स्थापना की गई है कि श्रम जब मात्र अपने लिये ही नहीं, वरन् दूसरोंके लिए भी किया जाता है, तब और केवल तभी वह यज्ञरूप होता है। वर्षा महान् बौद्धिक कृतित्वोंसे नहीं, बल्कि सिर्फ शारीरिक श्रमसे होती है। यह एक सुसिद्ध वैज्ञानिक तथ्य है कि जहाँ जंगलोंको वृक्ष-विहीन कर दिया जाता है, वहाँ वर्षा नहीं होती, जहाँ पेड़ लगाये जाते हैं, वहाँ वर्षा खिंच आती है और वनस्पतिकी वृद्धिके साथ वर्षाके जलमें भी वृद्धि हो जाती है। प्रकृतिके नियमोंकी खोज अभी बाकी है। अभी तो हम सिर्फ ऊपरी सतह ही खरोंच पाये हैं। कौन है जो यह जानता हो कि शारीरिक श्रम न करनेके क्या-क्या नैतिक तथा भौतिक कुपरिणाम होते हैं? लेकिन मेरी उन बातोंका कोई गलत अर्थ न लगाये। इस सबका मतलब यह नहीं कि मैं बौद्धिक श्रमके महत्त्वको कुछ कम आँकता हूँ, लेकिन चाहे जितना भी बौद्धिक श्रम किया जाये, वह शारीरिक श्रमके स्थानकी पूर्ति नहीं कर सकता। सबके सामूहिक कल्याणके लिए शारीरिक श्रम करना हमारा जन्मजात कर्त्तव्य है। इसमें सन्देह नहीं कि बौद्धिक श्रम शारीरिक श्रमसे बहुत ऊँची चीज हो सकती है और वह अक्सर ऐसा होता भी है, लेकिन जिस प्रकार बौद्धिक आहार, हम जो अन्न खाते हैं, उससे बहुत श्रेष्ठ होते हुए भी अन्नाहारका स्थान नहीं ले सकता, उसी प्रकार शारीरिक श्रमके स्थानपर बौद्धिक श्रमसे काम नहीं चलता, न चल सकता है। सच तो यह है कि धरतीकी उपजके बिना बुद्धिकी उपजकी कल्पना ही नहीं की जा सकती।

सम्मान या अपमान?

एक कार्यकर्त्ता लिखते हैं:

> मैं आपको यकीन दिलाता हूँ कि अधिकांश कार्यकर्त्ताओंको कांग्रेसके कोषमें से वेतन लेनेमें अपमान महसूस होता है, लेकिन वे लाचार हैं। इसलिए मैं आपसे अनुरोध करता हूँ कि आप 'यंग इंडिया'में कुछ लिखकर उन्हें इसके लिए उत्साहित करें।

१. यहाँ गांधीजीने आर्नोल्डका अंग्रेजी अनुवाद दिया है, और यह हिन्दी अनुवाद उसी अंग्रेजी अनुवादपर से किया गया है।

सिविल सर्विसमें दाखिल होनेके लिए युवक गण क्यों इतना कठिन परिश्रम करते हैं, और पानीकी तरह पैसा बहाते हैं? वे उसमें अपना अपमान तो नहीं ही समझते, साथ ही वे उसमें गौरव मानते हैं। जब वे परीक्षामें उत्तीर्ण होते हैं, उनके मित्र उनका सत्कार करते हैं, और जब सिविल सर्विसमें उन्हें कहीं नौकरी मिल जाती है, उन्हें बधाईके तौरपर अभिनन्दन-पत्र भी दिये जाते हैं। लाखों लोगोंपर हुक्म चला सकना, संगीनके जोरपर कर उगाहना और वह भी अक्सर ऐसे लोगोंसे जिनमें कर देनेकी सामर्थ्य नहीं है, यह सब क्या कांग्रेसकी सेवा करनेसे अधिक मानास्पद है? कांग्रेसमें तो प्रेम और सेवाके अधिकारके सिवाय दूसरा कोई अधिकार नहीं होता और वेतन भी मात्र निर्वाहके लायक ही दिया जाता है। यदि यह दलील दी जाये कि कांग्रेसमें एक अस्वस्थ परम्परा है कि उसमें एक ही साथ वैतनिक और अवैतनिक दोनों तरहके लोग होते हैं, तो सरकारी नौकरियोंमें भी यही पाया जाता है। इस सरकारका जहाँ एक वैतनिक नौकर है, वहाँ इसके साथमें दसों अवैतनिक सेवक भी हैं। और यह स्थिति हर सरकारके लिए अनिवार्य है। सरकारके सेवकोंके इन दो वर्गोंमें अक्सर एक-दूसरेके प्रति ईर्ष्या भी हुआ करती है। इसलिए जहाँतक इस बातको मैं समझ सका हूँ, कांग्रेसकी नौकरीमें दाखिल होनेसे अनिच्छा होनेका सिर्फ एक ही कारण है, और वह है उसका नयापन और अस्थायित्व। दूसरे सब कारण कमोवेश काल्पनिक ही हैं। सच तो यह है कि जब कांग्रेसको भी सच्ची प्रतिष्ठा मिल जायेगी — आज उसे यह प्राप्त नहीं है और वह लोकप्रिय भी पूरी तरहसे नहीं, बल्कि तुलनात्मक दृष्टिसे ही है — उस समय एक चपरासी भी राष्ट्रकी सेवा करनेमें और अपनी योग्यतासे कुछ कम वेतन लेनेमें अपनी इज्जत समझेगा। इस बीचमें कांग्रेस संगठनके तमाम ईमानदार वैतनिक कार्यकर्त्ताओंसे — चाहे वे केन्द्रमें हों या शिक्षा, खादी अथवा स्वराज्यवादी दलसे सम्बन्धित काममें लगे हुए हों — अनुरोध करूँगा कि वे अपनी ईमानदारी, निष्ठा और लगनशीलताके बलपर कांग्रेसकी सेवा और कांग्रेस संस्थाके प्रति लोगोंमें आकर्षण और रुचि पैदा करें। जिन्हें इस बातका एहसास है कि वेतन लेकर राष्ट्र-सेवाका काम स्वीकार करते समय उन्होंने उसमें जितना भी समय और ध्यान देना तय किया था उतना वे दे रहे हैं, उनको कांग्रेसके वैतनिक सेवक होनेका कुछ भी बुरा नहीं मानना चाहिए। जैसे-जैसे हम रचनात्मक कार्यमें प्रगति करते जायेंगे, वैसे-वैसे हमें अधिक वैतनिक सेवकोंकी आवश्यकता होती जायेगी। हम लोग राष्ट्रकी हैसियतसे इतने गरीब हैं कि हमें अपना सब समय देनेवाले बहुत-से अवैतनिक सेवक मिल ही नहीं सकते हैं। हमें अधिकाधिक वैतनिक सेवकोंका ही सहारा लेना होगा। इसलिए देश-सेवाका काम करनेके लिए जरूरत होनेपर वेतन लेनेमें अपमानका अनुभव करनेकी प्रवृत्तिसे हम जितनी जल्दी छुटकारा पा जायें, राष्ट्रके लिए उतना ही अच्छा होगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १५-१०-१९२५

१८६. भाषण : बलियाकी जिला परिषद्में

१६ अक्तूबर, १९२५

लोगोंसे शान्त रहनेका अनुरोध करने और मानपत्र भेंट करनेवाली संस्थाओंको धन्यवाद देनेके बाद श्री गांधीने कहा कि १९२१ में मैं बलिया आना चाहता था, लेकिन मुझे अफसोस है कि मैं न आ सका। तब मैंने पण्डित मोतीलाल नेहरूसे यहाँ आकर आप लोगोंको तसल्ली देनेका अनुरोध किया था। अब चार साल बाद आप लोगोंके बीच आकर मैं बहुत खुश हूँ। अगर समयकी कमी न होती तो मैं आप लोगोंके साथ ज्यादा समयतक रहता। एक बात ऐसी है, जिससे मुझे दुःख पहुँचा है, और मैं उसे छिपाना नहीं चाहता। बलियाके निवासियोंकी शक्तिमें मुझे पूरा विश्वास है, लेकिन साथ ही मैं यह भी मानता हूँ कि कार्यकर्त्ताओंकी संगठन-क्षमतासे ही शक्तिको नियन्त्रणमें रखा जा सकता है। चूँकि मैं अब कमजोर और अशक्त हो गया हूँ और भीड़के शोरगुलको नहीं सह पाता हूँ, इसलिए मैंने उम्मीद की थी कि इस प्रकारकी सभाओंसे स्वभावतः मुझे जो तकलीफ होती है उसका अवसर नहीं आयेगा।

आगे बोलते हुए गांधीजीने कहा कि बलियाके कार्यकर्त्ताओंने जो रचनात्मक कार्य किया है, उसे देखकर मुझे बहुत खुशी हुई है और उसके लिए मैं उनको बधाई देता हूँ। मुझे यह जानकर भी प्रसन्नता हुई है कि यहाँ दोनों कौमें मिल-जुलकर रह रही हैं। ईश्वरसे मेरी यही प्रार्थना है कि आपकी मित्रताकी यह टेक पूरी हो और आप दूसरोंके लिए इस दिशामें आदर्श स्थापित कर सकें। हिन्दुस्तानकी गरीबीका जिक्र करते हुए महात्माजीने पूरे विश्वासके साथ कहा कि गरीबी दूर करनेके लिए चरखेसे बढ़कर कोई और कारगर उपाय नहीं है। बहुत-सी स्त्रियोंको अपने जीविकोपार्जनके लिए पत्थर तोड़ने पड़ते हैं और मैं यह भी जानता हूँ कि कुछ ओवरसियर उनके साथ कैसा सलूक करते हैं। मैं अपने निजी अनुभवसे बोल रहा हूँ। आप लोगोंसे यही अनुरोध है कि विदेशी वस्त्रोंका त्याग करके और चरखा चलाकर आप भारतीय नारियोंको सीताके समान पवित्र बननेमें सहायता दें। "खादी पहनो और चरखेकी शक्ति बढ़ाओ।" लोगोंको मादक द्रव्यों, जुए और व्यभिचारसे बचनेकी सलाह देते हुए उन्होंने कहा, यादव-कुलके नाशका कारण यही था कि वे धर्मका त्याग करके जुएमें लिप्त रहने लगे थे। आपने मुझे याद दिलाया है कि आपकी भूमि बाल्मीकि, गंगा और सरयूकी भूमि है और आप भारतकी सेवा करनेको कटिबद्ध हैं। इसमें शक नहीं कि आपने १९२१ में जो-कुछ भी सम्भव था, किया। लेकिन उन दिनों आपने जो गलतियाँ की हैं, उनके लिए आपको प्रायश्चित्त करना चाहिए।

अन्तमें महात्माजीने देशबन्धु कोषके लिए दान देनेकी अपील की, और कहा कि उसका उपयोग चरखेके प्रचारार्थ किया जायेगा। उन्होंने भारतके पुनरुद्धारके लिए वास्तविक और ठोस काम करनेकी आवश्यकतापर जोर दिया।

[अंग्रेजीसे]

लीडर, २१-१०-१९२५

१८७. भाषण : काशी विद्यापीठमें

शनिवार, १७ अक्तूबर, १९२५

बाबू भगवानदास, अध्यापकगण, विद्यार्थीगण, तथा भाइयो और बहनो,

यह सच है कि इस विद्यापीठका आरम्भ मेरे हाथसे हुआ था; परन्तु विद्यापीठकी हस्ती आज भी बनी हुई है, इसका कारण एक तो है शिवप्रसादजी की उदारता और प्रेम, उसे प्रेम या मोह कहो। दूसरा कारण है श्री भगवानदासजी का प्रेम। उनकी भावनाके लिए मैं मोह शब्दका प्रयोग नहीं कर सकता क्योंकि वे कोई भी काम अपना कर्त्तव्य समझकर विवेकपूर्वक ही करते हैं। आज इन दोनोंके उत्साह—एकके बुद्धिप्रयोग और दूसरेके द्रव्य प्रयोगसे यह विद्यापीठ मौजूद है

मुझसे पूछा गया है कि क्या अब भी राष्ट्रीय विद्यापीठोंपर मेरा विश्वास है। सन् १९२१ में मैंने विद्यार्थियोंसे जो यह कहा था कि आप सरकारी पाठशालाओंसे निकल जायें, क्या वह ठीक किया था या वह मेरी गलती थी? मैं कई बार अपनी आत्मासे यह प्रश्न पूछ चुका हूँ। आप जानते हैं कि मैं गलती स्वीकार करनेको लज्जाकी बात नहीं मानता और प्रायश्चित्त करनेको भी तैयार रहता हूँ। मैं अपनी गलती जनताके सामने स्वीकार कर लेता हूँ। मैं अपनी आत्मासे अपने कामके अच्छे अथवा बुरे होनेके बारेमें प्रश्न करता रहता हूँ। मेरा तजुरबा है कि उससे जो ध्वनि निकलती है, वह सच्ची होती है। मुझे पता नहीं कि कभी उस ध्वनिके सच्चे न निकलनेका मुझे अनुभव है। इस सम्बन्धमें इतने कटु अनुभव के बाद भी यही ध्वनि निकलती है कि मैं ठीक रास्तेपर था। सन् १९२१ में जो कुछ हुआ, वह योग्य ही था। विद्यापीठोंका आरम्भ करना भी ठीक था। विद्यापीठोंकी स्थापना बालक-बालिकाओंके लिए आवश्यक है। हिन्दुस्तानमें जितने विद्यापीठ स्थापित हुए उनमें से काशी, पटना, पूना और गुजरात, इन चार स्थानोंके विद्यापीठ आज भी चल रहे हैं। उत्तम रीतिसे चल रहे हैं यह तो नहीं कहता; परन्तु मैं चाहता हूँ कि ये चलते रहें और उन्नति करें। उन्नतिका अर्थ मैं यह नहीं करता कि उनमें हजार-हजार विद्यार्थी हों। मधुपुरमें एक राष्ट्रीय अध्यापकने मुझसे कहा कि विद्यार्थी नहीं मिलते। मैंने उनसे कहा कि इससे आप निराश न हों। आप अपने दिलसे पूछें; जिस सिद्धान्तपर आपने इसे चलाया है यदि आप उस सिद्धान्तपर अटल हैं तो एक विद्यार्थी रह जानेपर भी आप पाठशाला चलाते

रहें। उनको संख्याका मोह था, इससे उनके दिलको आघात पहुँचा। हमारी तो यह प्राचीन प्रथा है कि चाहे किसी विद्यालयमें एक ही विद्यार्थी और एक ही अध्यापक हो किन्तु यदि दोनोंमें एक दूसरेपर श्रद्धा हो; गुरु समझे कि विद्यादान अच्छा है और विद्यार्थी समझे कि यह मेरे उत्थानके लिए है, इससे मेरा इहलौकिक और पारलौकिक जीवन बनेगा तो वह विद्यालय चलता रहना चाहिए। यही बात इस विद्यापीठपर भी लागू होती है। मैं श्री भगवानदासजी और श्री शिवप्रसादजीसे कहना चाहता हूँ कि आप लोग भी सख्याके बारेमें चिन्ता न करें। काग्रेसके आदेशका बन्धन तो अब दूर ही हो गया है। यदि आप लोगोंकी भीतरी आवाज कहे कि इसको चलाना चाहिए तो इसे जीवन अर्पित कर दिया जाये। संस्कृत श्लोक भी है कि जो काम आरम्भ करो उसके लिए जीवन दे दो। परन्तु यह अर्द्ध सत्य है। क्या कोई शराब पीना आरम्भ करे तो जीवन-भर पीता ही चला जाये? शास्त्रने यह बात श्रद्धा दृढ़ करनेके लिए कही है। अगर आप अपने सिद्धान्त-पर कायम हैं और नया प्रयोग करना चाहते हैं तो जनताके प्रतिकूल रहनेकी भी कुछ चिन्ता न करें। यदि विद्यापीठसे पाँच अथवा एक भी विद्यार्थी ऐसा निकल सके जो अपना सारा जीवन हिन्दुस्तानके लिए अर्पण कर दे तो समझ लीजिए कि विद्यापीठ सफल हो गया। क्योंकि हिन्दुस्तानके लिए जीवन अर्पण करनेकी शिक्षा देना ही विद्यापीठका ध्येय है। जबतक ध्येय सामने है तबतक विद्यार्थी ५ हैं या १ इसकी कोई फिक्र नही करना। ३५ वर्षोंके अपने सार्वजनिक जीवनमें यह मैं एक नही अनेक बार अनुभव कर चुका हूँ कि यदि हमारी श्रद्धा दृढ़ रहे और उसके साथ हम प्रयत्न करते जायें तो लोग अधिकाधिक संख्यामें हमारे साथ हो जाते हैं। इसलिए आप सिद्धान्तको समझकर चलते रहें; इसीमें हिन्दुस्तानका भला है। विद्यार्थियोंसे प्रार्थना है कि वे भी इस विद्यापीठमें संख्याके कम ज्यादा होनेकी चिन्ता न करें; आजीविकाकी भी चिन्ता न करें। आजीविकाके लिए गारंटी नही दी जा सकती; फिर भी शरीरसे श्रम और सेवा करें तो खाने पीने-भरके लिए मिल ही जायेगा; मौज-शौक और आभूषण आदिके लिए नही मिलेगा। परन्तु जो विद्यार्थी यह सोचते हैं कि उन्हें पढ़-लिख लेनेके बाद दूसरोंकी तरह अधिक पैसा कमानेके लिए नौकरी करनी है, उनका यहाँसे भाग जाना ही अच्छा है। यहाँका ध्येय अच्छी तरह समझ कर ही यहाँ रहें।

मैंने अपने कार्यक्रममे चरखेको प्रधान स्थान दिया है, इसके लिए मुझे कोई संकोच नहीं होता। अगर सारा हिन्दुस्तान चरखा चलाना छोड़ दे, तो मुझे रोज ८–१० घंटे चरखा चलानेको मिल जायेंगे। क्योंकि तब लोगोंके सामने बकवास करनेसे मैं बच जाऊँगा। मेरे नजदीक देशको दरिद्रतासे छुटकारा दिलानेवाली चरखेको छोड़कर दूसरी कोई वस्तु नहीं है। जहाँ चरखे चलने लगे हैं वहाँ लोगोंके जीवनमें परिवर्तन हो रहा है। यह मैंने बिहारके दौरेमें देखा है। आप लोग आध घंटे, पाव घंटे ही चरखा चलायें और चरखा चलाते-चलाते हिन्दुस्तानका ध्यान करें। आप ईश्वरका नाम लेकर, मुसलमान खुदाका नाम लेकर चरखा चलायें तो देखेंगे कि

इसमे से कैसी शक्तिका निर्माण होता है। कितने ही लोग मूर्तिको पत्थर समझते हैं परन्तु भावनासे क्या नही हो जाता? भावनासे पूर्ण होनेके कारण ही आज श्री रामदासजी गौड़ मुझे अपने घर श्री रामकी मूर्ति दिखाने ले गये थे।

मै देहातका अर्थशास्त्र जानता हूँ, इसीसे मै अपनेको जुलाहा कहता हूँ। मै भंगी-चमार बनता हूँ, क्योकि मै उनके कष्टोको जानता हूँ। मै चरखेका दीवाना हूँ—लैला-मजनूसे भी बढकर दीवाना! किसी विद्यार्थीको चरखेमें विश्वास न हो, तो भी वह केवल विद्याके ध्यानसे विद्यापीठमें आ सकता है। किन्तु विद्यापीठ किसी सिद्धान्तके लिए ही चलाया जाना चाहिए। ईश्वर इस विद्यापीठकी उन्नति करे।

महात्माजीका भाषण समाप्त हो जानेपर श्री भगवानदासजीने विद्यार्थियोंकी ओरसे महात्माजीसे प्रश्न किया कि आप चरखे द्वारा देशकी उन्नति करना चाहते हैं; क्या इसका यह अर्थ है कि आप इसीको हमारा उपास्यदेव बनाना चाहते हैं?

महात्माजीने कहा कि हाँ, यही उसका ठीक अर्थ है।

श्री भगवानदासजी : यदि देशकी उन्नतिका और भी कोई उपाय हो तो उसका उपदेश देकर कृतार्थ कीजिए। प्रत्येक विद्यापीठका कोई विशेष प्राण-सिद्धान्त होता है। यह विद्यापीठ किस सिद्धान्तको विशेष प्राणकी तरह अपनाये? मेरा खब्त यह है कि इस विद्यापीठके विद्यार्थी जो कि हिन्दू हैं, "कर्मणा वर्णः" के सिद्धान्तको ग्रहण करें तो यही सिद्धान्त इस विद्यापीठका विशेष प्राण हो जाये। मै चरखेको आपद्-धर्म मानता हूँ परन्तु, देवताकी — लक्ष्मी, सरस्वती और अन्नपूर्णाकी उपासना केवल चरखेसे कैसे होगी यह मै नहीं समझ पाया। हमें राजनीतिक और सामाजिक परिवर्तन करना है, स्वराज पाना है। यह 'कर्मणा वर्णः' के सिद्धान्तपर चलनेसे हो सकता है। अस्पृश्यता दूर करनेमें भी इसका मनपर कुछ प्रभाव पड़ेगा।

महात्माजीने कहा :

मै वर्ण केवल कर्मणा नही, जन्मना भी मानता हूँ। चरखेको मैने प्रधान स्थान दिया है, परन्तु इसीको मै सर्वस्व नही कहता। चरखेको प्रधान स्थान इसलिए देना होगा कि करोडों हिन्दुस्तानियोंकी कंगालीको दूर करनेका इससे बढ़कर उपाय नही है। इससे लक्ष्मीकी व्यक्तिगत नही, सामाजिक शक्ति मिलती है। सरस्वतीके लिए विद्यापीठ है। हमारी पुरानी सभ्यतामें बड़ा मैल भर गया है। अस्पृश्यताका रोग मिट जानेसे सारा मैल दूर हो जायेगा। हम अस्पृश्यताको निकाल सकें तो हमारा सुधार हो जायगा। चौवीस घंटेमें आधा घंटे ही चरखा काते और साढ़े तेईस घंटे चाहे जो करे, परन्तु अनिवार्य रूपसे आधा घंटा कातना चाहिए। इस विद्यापीठका विशेष प्राण-सिद्धान्त क्या होना चाहिए मै यह बता सकनेके अयोग्य हूँ। यह बात श्री भगवानदासजी ही बता सकते हैं।

आज, १९-१०-१९२५

१८८. भाषण: लखनऊ नगरपालिकाकी सभामें[1]

[१७ अक्तूबर, १९२५][2]

सदर साहब, भाइयो, और बहनो,

आपने जो यह ऐड्रेस मुझको दिया है उसके लिए मैं आप लोगोंका एहसान मानता हूँ। आपने बड़ी अच्छी लखनवी जबानमें मुझे यह ऐड्रेस दिया है। मैंने यरवदा जेलमें उर्दूका इतना मश्क किया फिर भी आपकी यह लखनवी उर्दू समझनेमें मुझे मुश्किल होती है। इसलिए मैं आप लोगोंसे कहता हूँ कि आपकी यह लखनवी जबान आपको मुबारक रहे। मैं तो ऐसी उर्दू चाहता हूँ कि जिसे वह भी समझ ले जो यू० पी०का रहनेवाला न हो। वह हिन्दुस्तानी जबान हो। हिन्दुस्तानी जबानमें मैं उसे कहता हूँ जिसमें संस्कृत और फारसीके ऐसे लफ्ज आते हों जिन्हें मुझ-जैसा किसान आदमी भी समझ सके।

कलकत्तेके कारपोरेशनने जब मुझे मानपत्र दिया था तो मैंने जवाब में दो-तीन बातें कही थी। वे ही बातें मैं यहाँ भी कहना चाहता हूँ। बिहारमें जिन म्युनिसिपैलिटियोंने मुझे मानपत्र दिये थे उन्होंने उनमें अपनी त्रुटियाँ भी स्वीकार की थी। आप लोगोंने मानपत्रमें त्रुटियाँ स्वीकार नहीं की हैं। जब मैं मोटरमें आ रहा था तो पण्डित मोतीलालजीने बताया था कि यहाँकी सड़कें कैसी हैं? सो मैं आप लोगोंसे कहता हूँ कि जैसी अच्छी आप लोगोंकी लखनवी उर्दू जबान है वैसी ही अच्छी यहाँकी सड़कोंको भी आप बना दें। (हँसी) जिससे इक्केकी सवारी करनेवाले और मुझ-जैसे मोटरकी सवारी करनेवाले दोनोंको आराम मिले। कई म्युनिसिपैलिटियाँ मुझे मानपत्र देते समय पैसेकी कमीकी बात उठाती हैं। अगर आपकी म्युनिसिपैलिटीमें भी काफी पैसा नहीं है तो मैं चेयरमैनसे कहूँगा कि वे कुदाल ले ले और कांग्रेसके स्वयंसेवकोंकी मददसे यहाँकी सड़कोंको ठीक कर दें, जिससे इक्केकी सवारी करनेवालोंको आराम मिले।

मानपत्रमें डेरी फार्मका जिक्र किया गया है। मैं नहीं जानता कि ये गौशालाएँ शहरके लोगोंको अच्छा दूध पहुँचानेका साधन बन सकती हैं या नहीं। काफी गायें और भैंसें रखनेपर ही आप शहरके लोगोंको अच्छा दूध दे सकेंगे।

यह खुशीकी बात है कि जो लोग आपके विरुद्ध राजनीतिक मत रखते हैं वे आपके प्रबन्धका विरोध नहीं करते। मैं आप लोगोंको इसके लिए मुबारकबादी देता हूँ कि पिछले बोर्डकी अपेक्षा आपने अच्छा काम किया है। बोर्डका फिर चुनाव होनेवाला है। मेरी लखनऊके वोटरोंको सलाह है कि वे ऐसे ही लोगोंको चुनें जो उन्हें लखनऊ-

१. यह सभा नगरपालिकाके अहातेमें ५ बजे शामको हुई थी। सभामें मोतीलाल नेहरू, जवाहरलाल नेहरू और सैयद महमूद भी थे।

२. हिन्दुस्तान टाइम्सके २०-१०-१९२५ के अंक और पायनियरके १९-१०-१९२५ के अंकमें प्रकाशित रिपोर्टके अनुसार।

की सडकोंको ठीक कर देनेका, अच्छे दूधका प्रवन्ध करनेका और ऐसी जवानमें जिसे सव लोग समझ सकें काम करनेका वचन दे। अगर लखनऊके अगले बोर्डने इस प्रकार अच्छा काम कर दिखाया तो मैं काग्रेसकी सभानेत्री सरोजिनी देवीसे कहूँगा कि वे काग्रेससे आपके लिए मुवारकवादीका प्रस्ताव पास करा दें।

हिन्दू-मुस्लिम एकताके प्रश्नपर मानपत्रमे कुछ भी चर्चा नही की गई है। यह खेदकी वात है। यह शर्मकी वात है कि यहाँके हिन्दुओं और मुसलमानोमें वहुत अनवन है। इस वक्त सारे हिन्दुस्तानकी आवोहवा खराव हो गई है। मैं कहता हूँ कि यदि हिन्दू और मुसलमान दोनोंको लडना है तो लड लें; पर आखिर अन्जाम क्या होगा? दोनोंको यही रहना है। न हिन्दू हिन्दुस्तान छोड़ सकते हैं और न मुसलमान ही। आखिरमे दोनोंको यही रहना होगा, दोनोको मिलना होगा। अगर लखनऊमें हिन्दू-मुसलमान नही मिल सकते तो कहाँ मिल सकेंगे? यह वड़े शर्मकी वात है। अगर दोनों जातियाँ मिलकर रहे तो क्या कारण है कि हम जो चाहते हैं वह न मिल जाये? सारे संसारमें हमारी हँसी हो रही है। डा० अन्सारीने कहा कि वाहरवालोको आश्चर्य है कि क्या गाय और वाजा ऐसी वाते हैं कि जिनके लिए हिन्दुस्तानी हिन्दू और मुसलमान लडते रहे और एक-दूसरेका सिर फोडते रहें।

मैं अभिनन्दन-पत्र नही चाहता। मै प्रशसा सुनते-सुनते थक गया हूँ। पर मैं आप लोगोको यह जिम्मेदारी सौंपना चाहता हूँ कि जव मैं दूसरी वार लखनऊ आऊँ तो आप यह कह सके कि लखनऊमें इस वीच झगड़ा नही हुआ और हिन्दू-मुसलमानोमें मेल है। ईश्वर यहाँके रहनेवालोको समझ दे। मैं अन्तमें इस मानपत्रके लिए आपको धन्यवाद देता हूँ।

आज, २४-१०-१९२५

१८९. भाषण: लखनऊकी सार्वजनिक सभामें[1]

१७ अक्तूबर, १९२५

. . .महात्माजीने यह कहते हुए अपना भाषण शुरू किया कि मुझे पहलेसे कुछ मालूम नहीं था, मै नहीं जानता था कि मुझे लखनऊमें किसी आम सभामें बोलना पड़ेगा। मुझे वहुत दुःख है कि लखनऊ, जिसके वारेमें मेरा खयाल वहुत अच्छा था, साम्प्रदायिक झगड़ोंका अखाड़ा हो गया है। जव मैं दिल्लीमें २१ दिनका उपवास कर रहा था तव मुझे लखनऊके हिन्दू और मुसलमान नेताओंका एक पत्र मिला था, जिसमें मुझे मामलेमें वीच-बचाव करनेके लिए आमन्त्रित किया गया था। मै उसके लिए तैयार हो गया, लेकिन फिर कोई आया ही नहीं। मै समझता हूँ कि अच्छा हो कि आप मेरी सहायताके विना खुद ही अपने झगड़े सुलझा लें। लेकिन यदि

१. यह सभा हरकरणनाथ मिश्रकी अध्यक्षतामें अमीनुद्दौला पार्कमें हुई थी।

आप समझते हैं कि उनका एकमात्र समाधान तलवार ही है, तो ठीक है; आप उसीको आजमा कर देख लीजिए, बजाय इसके कि आप मेरे जैसे असहाय और अहिंसक व्यक्तिसे सहायता माँगें। यूरोपसे लौटनेपर डा० अन्सारी यूरोपके अपने अनुभवोंका हाल सुनाने भागे-भागे मेरे पास आये। उनको यूरोपमें सभी तरहके लोगोंसे मिलनेका मौका मिला, विशेषकर तुर्कोंसे। सबने यही कहा कि यह हिन्दुओं और मुसलमानोंका पागलपन ही है कि वे बड़े लक्ष्योंकी बलि देकर छोटी-छोटी बातोंपर झगड़नेमें अपनी शक्ति गँवा रहे हैं। इसलिए श्रोताओंसे मेरा निवेदन है कि सब अपने मतभेद दूर करके यथासम्भव जल्दी ही एकता प्राप्त करें। लेकिन वह एकता असली एकता होनी चाहिए, नकली नहीं।

महात्माजीने कहा अगर मैं लखनऊके फैशनपरस्त नागरिकोंसे खद्दरके लिए अपील करूँ तो यह आशंका तो है ही कि आप उसे अनसुनी कर दें। लेकिन मैं अपने इस भयके बावजूद भारतके गरीबोंकी ओरसे यह अपील करता हूँ। उन्होंने श्रोताओंसे खद्दर पहननेका निवेदन किया और उसके कुछ लाभ समझाये। उन्होंने कहा :

खद्दरका मतलब है, प्रत्येक सात आनेमें से पाँच आने गरीबोंको मिलना। और मिलके कपड़ेका मतलब है, हर पाँच आनेमें से एक पैसा गरीबोंको मिलना। लेकिन विदेशी कपड़ेसे इंग्लैंडके गरीबोंको भी फायदा नहीं होता। उसका सारा लाभ पूँजीपतियोंको मिलता है।

उसके बाद उन्होंने कहा कि भारतके ऊँचे सामाजिक दर्जेके लोगोंको चरखेका उपयोग करना चाहिए, ताकि गरीबोंको इस बातकी प्रतीति हो जाये कि चरखेमें हमारा सच्चा विश्वास है और हम जो कहते हैं उसके लिए ईमानदारीसे प्रयत्न भी करते हैं।

इसके बाद उन्होंने अस्पृश्यताकी प्रथाकी निन्दा की। उन्होंने कहा कि यह हिन्दू धर्मका हिस्सा नहीं है। यह अधार्मिक और ईश्वरके विरुद्ध है। हमें भारतके कुत्सित कलंकको दूर कर डालना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दुस्तान टाइम्स, २०-१०-१९२५

१९०. भाषण : सीतापुरमें

१७ अक्तूबर, १९२५

सीतापुरकी नगरपालिकाने लालबागमें महात्मा गांधीको एक अभिनन्दन-पत्र भेंट किया। अभिनन्दन-पत्र नगरपालिकाके अध्यक्ष बाबू शम्भूनाथने पढ़ा। उसमें महात्माजीसे अनुरोध किया गया कि उन्हें तो देश-विदेशकी नगरपालिकाओंके कार्य-कलापोंका विस्तृत अनुभव है, इसलिए वे कुछ ऐसे सुझाव दें, जिनको आदर्श मानकर सीतापुरकी नगर-पालिकाके सदस्य नगरको सुधारनेके लिए प्रयत्न कर सकें। उन्होंने कहा कि यह मानपत्र भेंट करनेके लिए सिर्फ एक रुपयेका खर्च स्वीकार किया गया है।

उत्तरमें महात्मा गांधीने कहा कि अगर मैं सीतापुर नगरपालिकाका सदस्य होता तो इस कामके लिए एक पैसा भी स्वीकृत न करता। उन्होंने कहा कि मैं कांग्रेसियोंके अपने देशभाइयोंकी सेवा करनेके लिए नगरपालिका और जिला बोर्डमें प्रवेश करनेके खिलाफ नहीं हूँ। लेकिन अपनी महत्त्वाकांक्षाओंकी पूर्तिके लिए और स्वार्थपूर्ण उद्देश्योंसे किसीको इन स्थानीय संस्थाओंका सदस्य बननेकी कोशिश नहीं करनी चाहिए। सेवा और आत्मत्यागकी सच्ची भावनाके बिना नगरपालिकामें प्रवेश करना बेकार है। मुझे नगरपालिकाका एकमात्र आदर्श यही मालूम है कि नगरको साफ-सुथरा और रोगोंसे मुक्त रखा जाये, गरीबोंकी मदद की जाये और उनके हलकोंको गन्दगीसे दूर रखा जाये तथा ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी जाये जिससे गन्दी बस्तियाँ पनप ही न सकें।

आर्थिक तंगीकी आड़ नहीं लेनी चाहिए। अगर पैसा न हो तो नगरपालिकाके सदस्योंको अपने हाथसे काम करनेके लिए तैयार रहना चाहिए। इस प्रकार वे ऐसा उदाहरण पेश करेंगे जिसका सभी अनुकरण करेंगे और नगरपालिकाके कार्यकलापोंकी प्रगतिके मार्गकी सारी कठिनाइयाँ निश्चित रूपसे दूर हो जायेंगी।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, २४-१०-१९२५

१९१. भाषण: अभिनन्दन-पत्रोंके उत्तरमें

सीतापुर
१७ अक्तूबर, १९२५

. . .महात्मा गांधीने कहा कि मैं इन दो सभाओं[1] द्वारा अभिनन्दन-पत्र पानेके योग्य नहीं हूँ; क्योंकि मैं इन दोनों सभाओंका आलोचक रहा हूँ। इनकी टीका-टिप्पणीके सिवाय मैंने कुछ नहीं किया है। लेकिन मैं यह कह सकता हूँ कि मैंने इनकी आलोचना सचाईके साथ और सहानुभूतिपूर्वक एक मित्र तथा हितैषीके नाते उनको मदद पहुँचानेकी इच्छासे की है। हिन्दू-सभाकी सच्ची सेवा करनेके लिए सच्चा हिन्दू होना जरूरी है। हिन्दू धर्म सनातन धर्म है। वेदों तथा हिन्दू धर्मको मैं अनादि मानता हूँ। सत्य भी अनादि है। इसलिए मुझे हिन्दू धर्म और सत्यमें कोई अन्तर दिखाई नहीं देता। जो असत्य है उसका हिन्दू धर्मसे सम्बन्ध नहीं हो सकता। मैं किसी भी दशामें सत्यका त्याग नहीं कर सकता। चाहे कितना भी विरोध हो, चाहे मेरे खिलाफ हजारों लोग तलवारें उठाकर खड़े हो जायें, फिर भी मैं सत्य ही कहूँगा। सत्य और अहिंसामें कोई अन्तर नहीं है। एक हिन्दूके रूपमें मैं किसीके विरुद्ध अपने हृदयमें द्वेषभावको पनपने नहीं दे सकता। यदि मेरा कोई शत्रु भी हो तो मैं उसे प्यारसे ही जीतूँगा। अगर हिन्दू लोग अपने धर्मको आगे बढ़ाना चाहते हों और उसकी सेवा करनेको इच्छुक हों तो उसका सबसे अच्छा तरीका यह है कि वे अहिंसाके मार्गपर चलें। अपने धर्मका पुनरुद्धार करनेके लिए अवश्य कार्य करें, किन्तु अपने मुसलमान भाइयोंके प्रति उनके हृदयमें तनिक भी दुर्भावना नहीं होनी चाहिए।

कुछ लोगोंका ऐसा विचार है कि मैं अहिंसाके नामपर कायरताका प्रचार कर रहा हूँ। यह बिलकुल गलत है। बेतियाके हिन्दुओंने मुझे गलत समझा। यदि वे अपनी माँ-बहनकी इज्जतके लिए लड़ते हुए मर जाते हैं, तो मैं इसे अच्छा समझूँगा। और यदि ऐसा मौका आनेपर वे भाग खड़े होते हैं तो यह निरी कायरता ही होगी। और इससे अधिक लज्जाजनक बात और कुछ नहीं हो सकती। हिंसाका मुकाबला अहिंसासे करना तो अच्छी चीज है; लेकिन कायरता अच्छी चीज नहीं है। सच्ची अहिंसाके लिए सच्ची बहादुरीकी जरूरत होती है। हिन्दू-संगठनके लिए चरित्र-निर्माण सबसे ज्यादा जरूरी है। जबतक यह नहीं होता और जबतक हर हिन्दू सत्य और सच्चरित्रतापर आरूढ़ नहीं होता, तबतक सच्चा संगठन असम्भव है। उस हालतमें हिन्दू धर्म कहींका नहीं रह जायेगा।

१. हिन्दू सभा और वैश्य सभा।

वैद्य सभाके मानपत्रका उत्तर देते हुए उन्होंने कहा कि अखबारोंमें और सभा-मंचोंसे उन बातोंके लिए मेरी तीव्र आलोचना की गई है, जो मैंने वैद्योंके बारेमें कही हैं। लेकिन मेरा अब भी वही विचार है। मैं अपनी बात वापस नहीं ले रहा हूँ और न यह मानता हूँ कि उसका एक भी शब्द अनुचित है। मुझे लगता है कि लोगोंने मुझे गलत समझा है। मैंने जो टीका-टिप्पणी की, वह आजके वैद्योंको लक्ष्य करके की है, न कि उस आयुर्वेदिक प्रणालीको लक्ष्य करके, जिसकी वे लोग सेवा कर रहे हैं। मैं खुद इस प्रणालीके खिलाफ नहीं हूँ। लेकिन उनका आत्म-सन्तोषी रुख मुझे पसन्द नहीं है और न वे तरीके ही मुझे पसन्द हैं जिनपर वैद्यगण चल रहे हैं।

मैंने उनकी आलोचना इसलिए की है कि उन्होंने आयुर्वेदको नहीं समझा है और उसके साथ न्याय नहीं किया है। मैंने आयुर्वेदकी प्रगतिके लिए अपनी तरफसे भरपूर कोशिश की है और वैद्योंकी जितने तरीकोंसे सहायता हो सकती है, करनेका प्रयत्न किया है, लेकिन उनका काम देखकर निराशा होती है। वैद्योंको आगे बढ़ना चाहिए। यह सोचना गलत है कि उन्हें पश्चिमसे कुछ भी नहीं सीखना है। यद्यपि मैंने आत्माकी उपेक्षाके लिए पश्चिमी दुनियाकी भर्त्सना की है, फिर भी उसने कई क्षेत्रोंमें जो कर दिखाया है, उसके प्रति मेरी आँख बन्द नहीं है। वैद्योंको पश्चिमसे जरूरी बातें सीखकर अपने ज्ञानको पूरा करनेके लिए तैयार रहना चाहिए। उन्हें ऐसा मानकर निश्चिन्त नहीं बैठना चाहिए कि उनकी चिकित्सा-प्रणालीमें जो-कुछ है, उससे आगे चिकित्सा-शास्त्रमें कुछ है ही नहीं। उन्हें जागरूक और क्रियाशील रहना चाहिए और उनका लक्ष्य "प्रगति" होना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]
अमृतबाजार पत्रिका, २४-१०-१९२५

१९२. अस्पृश्यताके सम्बन्धमें

एक मित्रने अस्पृश्यताके सम्बन्धमें कुछेक प्रश्न पूछे हैं, मैं अपनी अल्प-बुद्धिके अनुसार नीचे उसके उत्तर दे रहा हूँ।[1]

मेरे विचारानुसार हम आज जिस अस्पृश्यताका पालन करते हैं वह हिन्दू धर्मका अंग नहीं है और न होना चाहिए। हमारी आजकी अस्पृश्यतामें केवल अज्ञान और

१. पत्र-लेखकने अस्पृश्यता और रोटी-बेटी व्यवहारकी तुलना हिन्दू समाजको बचानेके लिए खड़ी की गई तीन दीवारोंसे की थी और पूछा था कि (१) क्या हिन्दुओंके लिए रोटी-बेटी व्यवहारकी दीवारोंकी भाँति तीसरी अस्पृश्यताकी दीवार भी मूल सिद्धान्तमें नहीं आती तथा (२) बाहरी दीवारको गिरा देनेसे क्या अन्दरकी दो दीवारें कमजोर न पड़ जायेंगी। उसका तीसरा प्रश्न था कि चूँकि अस्पृश्यता-निवारण आन्दोलन करनेवाले अधिकांश लोग जाति सुधार भी चाहते हैं तथा आप भी अन्त्यजोंके हाथसे पानी-पीनेमें कोई हानि नहीं देखते तो फिर क्या अस्पृश्यता निवारण-सम्बन्धी आन्दोलन रुक जायेगा।

क्रूरता है। अस्पृश्यताको मैं हिन्दू धर्मकी विकृति मानता हूँ। इससे धर्मकी सुरक्षा नहीं होती; बल्कि उसकी गति रुक जाती है। सूतक आदि नैमित्तिक अस्पृश्यता एक अलग बात है; जो लोग उसका जितना पालन करना चाहते हैं, करते हैं। सब जातियाँ एक ही प्रमाणमें उसे नहीं मानतीं। इसे शौचके नियमोंमें सम्मिलित माना जाता है। ऐसे थोड़े-बहुत नियम संसारमें सब जगह पाये जाते हैं। किन्तु अन्त्यजोंसे सम्बन्धित अस्पृश्यता एक प्रकारका निर्दय बहिष्कार है। यह प्रथा जिस समय प्रचलित हुई उस समय इसके चाहे जितने भी सबल कारण क्यों न रहे हों, आज इसके लिए कोई भी कारण नहीं है। इसीसे यह क्षय रोगकी भाँति हिन्दू धर्मके शरीरको खाये जा रही है।

जिस तरह यदि मकानके पुराने और निरर्थक भागोंको गिरा नहीं दिया जाता तो वे उसके अन्य भागोंको कमजोर बना डालते हैं उसी तरह अस्पृश्यताकी दीवार रोटी-बेटीकी आन्तरिक मर्यादाकी रक्षा करनेके बदले उसे कमजोर बनाती है। आज हम जिस तरह अस्पृश्यताको दोष मानते हैं उसी तरह रोटी-बेटी व्यवहारकी मर्यादाको भी दोष माना जाने लगा है और उसपर आपत्ति की जाने लगी है। रोटी-बेटी व्यवहारमें निहित नियम ही तो योग्य है। जो मांसाहारी हों उनके यहाँ निरामिष व्यक्तिका भोजन करना धार्मिक दृष्टिसे अयोग्य बात है। लेकिन जिस नियमका हम पालन करते हों और दूसरे न करते हों उन्हें अस्पृश्य माननेमें मैं कोई धर्म नही देखता; ऐसे धर्म का पालन नही किया जा सकता। यदि कोई उसका पालन करना चाहे तो उसे सारे संसारको अस्पृश्य मानना पडता है।

अस्पृश्यता निवारणके साथ जातिभेदका कोई सम्बन्ध नहीं है। लेकिन एक बड़े सुधारसे दूसरा सुधार अपने आप पैदा होता है; इसी नियमके अनुसार सुधारकोंकी दृष्टि जातिभेदकी ओर भी गई है। मैं उप-जातियोंका नाश चाहता हूँ और वह हो रहा है। लेकिन मैं इनमें अस्पृश्यता-जैसा दोष नहीं देखता हूँ। इसमें असुविधा है और इससे कुछ अर्थोमें सामाजिक व्यवहारमें अड़चनें आती हैं। लेकिन इन सुधारोंके प्रति धैर्यसे काम लिया जा सकता है; अस्पृश्यताके प्रति नहीं। इसी कारण इन दोनोंको अलग रखने और समझनेकी बड़ी आवश्यकता है।

स्वच्छ अन्त्यजके हाथों स्वच्छतापूर्वक भरा हुआ पानी लेनेमें मैं कोई हानि नही देखता। जिस तरह अन्य वर्णोंके लोग घाटी,[1] कुनबी,[2] आदिके हाथका पानी लेनेमें सामान्यतया कोई हानि नहीं देखते, ठीक वही नियम अन्त्यजोंपर भी लागू होना चाहिए। सामान्य रूपसे जो आचार तथाकथित उच्च जातिके लोग अन्य जातियोंके सम्बन्धमें पालते हैं वही अन्त्यजोंके सम्बन्धमें भी पाले जाने चाहिए। दक्षिणमें जहाँ ब्राह्मणकी दृष्टिमें ब्राह्मणेतर मात्र अस्पृश्य हैं, वहाँ तो यह विकृतिकी भी विकृति हो चुकी है। उसके पक्षमें खड़ा होनेवाला कोई व्यक्ति नहीं दिखाई पड़ता; और दक्षिणमें धीरे-धीरे यह सम्प्रदाय नष्ट होता जा रहा है।

१. गुजरातमें एक किसान जाति।
२. महाराष्ट्रमें एक जाति।

अन्त्यज बालक गन्दे ही होते हों, यह अनिवार्य बात नहीं है। अनेक अन्त्यज बालकोंको मैंने अन्त्यजेतर बालकोंसे अधिक साफ-सुथरा देखा है। नियम तो यह हो सकता है: कोई बालक जबतक सफाईका अमुक स्तर प्राप्त नहीं कर लेता तबतक या तो उसे स्कूलमें न लिया जाये अथवा उसे गन्दे बच्चोंके लिए नियत किये गये वर्गमें भेज दिया जाये और वहाँ उसे खास तौरपर सफाईकी शिक्षा दी जाये। अन्त्यज बालक गन्दा ही होगा, और इसलिए उसे साफ-बच्चोंके स्कूलमें दाखिल नहीं करना चाहिए, यह नियम तो वैसा ही हुआ जैसा उपनिवेशोंमें भारतीय-मात्रके साथ होता है। भारतीयके रूपमें पैदा होना ही वहाँ अपराध है। सामान्य रूपसे व्यावहारिक बात तो यह है कि अन्त्यज बालकोंके लिए काफी तादादमें स्कूल खोले जायें। चाहे जितनी भी कोशिश क्यों न की जाये लेकिन सभी अन्त्यज बालक सर्वसाधारण प्राथमिक स्कूलोंमें आते ही नहीं हैं। अतएव यदि वे स्वच्छताके नियमोंका पालन करते हैं तो उन्हें सामान्य प्राथमिक स्कूलोंमें दाखिल होनेकी छूट मिलनी चाहिए, और साथ ही उनको खास उत्तेजन देनेके लिए अलग स्कूल भी होने चाहिए।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १८-१०-१९२५

१९३. मारवाड़ियोंके सम्बन्धमें

किसी एक ही प्रश्नपर सन् १९२१ की जागृतिका असर हुआ हो सो बात नहीं है। यह एक ऐसी व्यापक प्रवृत्ति थी इसका सब जातियों और सब प्रश्नोंपर असर हुआ। यदि कोई बिना सोचे यह मानना चाहे कि यह प्रवृत्ति चार दिनकी चाँदनी थी तो यह उसकी मर्जीकी बात है; लेकिन समयके साथ यह मान्यता बिलकुल झूठी सिद्ध होकर रहेगी। आन्दोलनका स्वरूप भले ही बदला हुआ दिखाई दे; परन्तु वास्तवमें तो मूल वस्तु वही बनी है यह स्पष्ट हुए बिना नहीं रहेगा। यह विचार भागलपुरमें मारवाड़ी सम्मेलनमें[1] दिये गये भाषणपर विचार करते हुए मेरे मनमें आता है। मारवाड़ी समाजमें अनेक प्रकारके सुधारोंके प्रयत्न किये जा रहे हैं। यह सम्मेलन अग्रवाल मारवाड़ियोंका था। गुजरातमें जिस तरह किसी-किसी स्थानपर पंच लोग अन्त्यज प्रश्नके निमित्त बहिष्कारके शस्त्रका उपयोग कर रहे हैं उसी तरह मारवाड़ी समाजमें भी उनके प्रमुख लोग अन्य प्रसंगोंमें इसी शस्त्रका उपयोग कर रहे हैं।

विधवा-विवाह, बाल-विवाह, आदि प्रश्न थोड़े-बहुत लगभग समस्त हिन्दू समाज-पर लागू होते हैं। इसीसे मारवाड़ी समाजसे मैंने जो बातें कही थीं उनमें से यद्यपि थोड़ी-सी बातें मैं 'यंग इंडिया' में दे चुका हूँ तथापि मैं यहाँ उनपर कुछ विस्तारसे कहना चाहता हूँ। बहिष्कार एक भयंकर शस्त्र है और यदि इसका उपयोग सावधानीसे न किया जाये तो यह केवल हिंसाका स्वरूप पकड़ लेता है और जब बहिष्कार हिंसा-

१. सम्मेलन १ अक्तूबरसे ४ अक्तूबर, १९२५ तक हुआ था। भाषणके लिए देखिए "भाषण: मारवाड़ी अग्रवाल सभा, भागलपुरमें", १-१०-१९२५।

का स्वरूप ग्रहण कर लेता है तब तो वह जातिका नाशक ही बन जाता है। इसीसे मैंने मारवाड़ी भाइयोंको सलाह दी है कि बहिष्कारके शस्त्रका कदापि उपयोग न करें। जबतक पंच ज्ञानी, स्वार्थहीन और प्रेममय नही बनते तबतक उन्हे बहिष्कारका विचार ही छोड़ देना चाहिए। सुधार करनेवालेको सुधार अवश्य करने दिया जाये। उसमें जातिको क्या हानि पहुँच सकती है? जिस वस्तुको समस्त संसारने अनीतिके रूपमें माना हो उसके विरोधमे कुछ उपाय करनेकी बात तो समझी जा सकती है। जहाँ एक व्यक्ति धर्म समझकर अन्त्यजका स्पर्श करता हो, दूसरा अपनी पुत्रीको पूर्ण वय प्राप्त होनेपर ही व्याहना चाहता हो, तीसरा जो बाल-विधवाकी शादी करनेको कटिबद्ध हो और चौथा अपने पुत्रके लिए उसी वर्णकी उपजातिमें से लडकी लेनेकी तैयारीमें हो, तो वहाँ इन सबको जातिसे बहिष्कृत करनेकी क्या बात हो सकती है? इनका बहिष्कार करनेसे सुधार-मात्र रुक जायेंगे और धर्मकी, जातिकी और देशकी उन्नति भी अवरुद्ध हो जायेगी। बहिष्कारका ऐसा दुरुपयोग कदापि नही किया जा सकता, ऐसा मेरा विश्वास है। मै जितना-जितना विभिन्न प्रान्तोंमें जाता हूँ, मुझे विधवाओंके दुःखकी गाथा, बाल-विधवाओंके साथ होनेवाली अनीति तथा कोमल वयके बालकोंके विवाहके विषयमें उतना ही ज्यादा सुननेको मिलता है। यह सब जानकर मैं भयभीत हो उठता हूँ। ऐसे हिन्दू संसारकी सन्तान यदि वीर्यहीन हो तो इसमें आश्चर्यकी क्या बात है? पंच यदि अपने धर्म और मर्यादाको समझें तो समाजसे ऐसी गन्दगी दूर करनेवाले सुधारकोंको प्रोत्साहन देना उनका कर्त्तव्य है।

इस सम्मेलनके सम्मुख मैंने जिस तरह सुधारोंकी बातचीत की थी उसी तरह गोरक्षाके सम्बन्धमें भी कहा था। दिन-प्रतिदिन जैसे-जैसे मुझे गोशालाओंका अनुभव होता जाता है वैसे-वैसे मैं देखता हूँ कि समाजको उनका पूरा लाभ नही मिलता। नौ करोड़ रुपयोंका मुर्दार चमडा प्रतिवर्ष जर्मनी चला जाता है तथा हम मारे गये जानवरोंके चमड़के जूते पहनते हैं और फिर भी मानते हैं कि हम अपने धर्मका पालन करते हैं। यह कितने दुःखकी बात है? हिन्दुस्तानमें सबसे अधिक गोशालाएँ मारवाड़ियों द्वारा सचालित होती हैं। वे लोग ही गोरक्षाके नामपर सबसे अधिक दान दे रहे हैं। लेकिन इस दानका उपयोग समझदारीके साथ नही होता इसीसे गाय-बैल आदिका कटना घटनेके बजाय बढ़ता जाता है और पशु-धनका ह्रास होता जाता है। यह कैसा अन्धेर है? अपने व्यापारमें तो मारवाड़ी भाई ऐसी गफलत नहीं करते। फिर गोशालाओंको दान देते समय वे उदासीन क्यो रहते हैं? क्या धर्ममें कार्य-दक्षता और व्यवहार-बुद्धिकी आवश्यकता नही है? कत्ल किये गये पशुओंके चमड़ेके उपयोगको कम करनेका उपाय उनके हाथमें है। मरे हुए पशुओके चमड़ेका व्यापार केवल परोपकार बुद्धिसे हाथमें लेना उनका धर्म है। धर्मके नामपर और केवल भ्रमवश होकर गोशालाओंमें मरनेवाले जानवरोके चमड़ेका उपयोग न करके हम गोवधको उत्तेजन देते हैं। हम इन मृत जानवरोंके चमड़ेका उपयोग ही न करे तब तो अलहदा बात है। लेकिन गोरक्षाका ऐसा अर्थ कोई हिन्दू नही करता। इतना ही नहीं बल्कि हिन्दू धर्ममें अपने-आप मृत पशुके चमड़ेके उपयोगकी छूट है। जैसे

हम गायकी पूजा करते हैं, किन्तु उसके दूधके उपयोगको पवित्र मानते हैं और उसके उपयोगको उत्तेजन देते हैं। मैं इस वस्तुके सम्बन्धमें तटस्थ रूपसे विचार कर सकता हूँ; क्योंकि मैं गाय-भैंसके दूधका बिलकुल भी उपयोग नहीं करता और चमड़ेका तो बहुत ही थोड़ा उपयोग करता हूँ। मैंने अनुभवसे देखा है कि यदि हम गाय-भैंसकी रक्षा करना चाहते हैं तो हमें उनके दूध, चमड़े और खाद आदिका पूरा-पूरा उपयोग करना पड़ेगा। ऐसे समयकी कल्पना की जा सकती है, जब हम [अहिंसाके विचारसे] दूध तकका उपयोग बन्द कर देंगे, हम उस परिस्थितिका स्वागत करेंगे। लेकिन जब ऐसा समय आयेगा तब हम गोशाला रखना बन्द कर देंगे और जिस तरह प्रकृति अपने नियमानुसार ऐसे अनेक जानवरोंकी रक्षा करती है, जिन्हें हम पालते नहीं हैं, उसी तरह वह गाय-भैंसोंकी भी रक्षा करेगी। फिलहाल तो मैं पाले हुए और पालनेके लिए उपयोगी जानवरोंकी रक्षाके तत्त्व गोरक्षामें देखता हूँ। इस रक्षाका अर्थ यह है कि भोजन अथवा मनोरंजनके निमित्त हम उनकी हत्या न करें और जबतक वे जीवित रहें तबतक जितने यत्नसे हम अपने शरीरकी रक्षा करते हैं उतने ही यत्नसे उनके शरीरकी भी रक्षा करें। इसे साध्य बनानेके लिए यदि उनके मरनेके बाद हम उनके चमड़े आदिका उपयोग नहीं करते तब तो उनकी हत्यामें दिन-प्रतिदिन वृद्धि ही होती जायेगी। इसीसे मैं गो-सेवक मारवाड़ी भाइयोंसे प्रार्थना करना चाहता हूँ कि वे अपने दानमें अपनी बुद्धि और व्यापार-शक्तिका उपयोग करें। उनके कब्जेमें जितनी गोशालाएँ हैं उन सब गोशालाओंका आदर्श बदलकर वे एक ही वर्षके अन्दर लाखों गायों और भैंसोंको बचा सकते हैं और कालान्तरमें गाय-भैंस आदिकी हत्या-मात्रको वे बिना किसीसे अनुनय-विनय किये रुकवा सकते हैं। जिन्हें गोमांस आदि खानेमें कोई बाधा नहीं है वे जबतक गोमांस सस्ता रहेगा तबतक हिन्दुओंकी भावनाकी खातिर, उसका त्याग नहीं करेंगे। उसके सस्ते रहते हुए भी त्याग करनेके लिए बहुत ऊँचे प्रकारकी भावनाकी जरूरत है। लेकिन यह तो धर्मभावना हुई; यह भावना बलात्कारसे प्रकट नहीं हो सकती और न विनय भावसे। इसीसे जो बात मैंने मारवाड़ी भाइयोंसे कही है, वही बात अन्य हिन्दुओंसे भी कहना चाहता हूँ। चर्मालय चलानेके प्रति अपनी अरुचि न प्रकट करें। इतना ही नहीं, वरन् मैंने कहा है कि उस मर्यादाके अन्दर वैसे चर्मालय चलाना गोशालाका अनिवार्य अंग समझना चाहिए।

मारवाड़ी भाइयोंने जैसे गोरक्षाको अपना खास कर्त्तव्य मान रखा है वैसे ही हिन्दी प्रचारको भी उन्होंने अपने दानकी एक दिशा माना है। उसमें भी पैसेकी जितनी आवश्यकता है उतनी ही बुद्धि की भी है। यह विषय गुजराती भाषा-भाषीको मारवाड़ी भाइयोंके समान दिलचस्प नहीं लग सकता, यह मैं समझता हूँ; तथापि गुजराती भी हिन्दीके प्रचारमें अधिकसे-अधिक रस लेने लगें, इस दृष्टिसे मैं 'नवजीवन' में इसकी चर्चा कर देता हूँ। हिन्दी प्रचारके तीन भाग हो सकते हैं:

एक तो जहाँ हिन्दी मातृभाषा है वहाँ उसका विकास करें। हिन्दी जाननेवालोंको इसे विशेषकार्य मानना चाहिए। उनमें आज एक भी रवीन्द्रनाथ नहीं है, इसके लिए मैं अपना दुःख प्रकट करनेके अलावा और कुछ नहीं कहना चाहता।

दूसरे जहाँ हिन्दी नहीं बोली जाती वहाँ उसका प्रचार करें। यह कार्य दक्षिण प्रान्तोंमें सुव्यवस्थित रूपसे चल रहा है, ऐसी मेरी मान्यता है। लेकिन बंगाल-जैसे प्रदेशमें कुछ भी नहीं होता, यदि यह कहें तो वह ठीक ही होगा। वहाँ अच्छी हिन्दी जाननेवाले अध्यापकोंको रखा जाये और निःशुल्क वर्गोंकी व्यवस्था की जाये तथा जिस तरह दक्षिण प्रान्तोंमें हुआ है उसी तरह बंगलाके माध्यमसे हिन्दी सीखने योग्य आसान पुस्तकें प्रकाशित की जायें।

तीसरे देवनागरी लिपिका प्रचार किया जाये। यदि अपनी भाषाके उपरान्त लोग देवनागरी लिपि भी जान लें तो हिन्दी समझना और एक-दूसरे प्रान्तकी भाषाएँ जो संस्कृतसे उद्भूत हुई हैं, उनको समझना अत्यन्त सहल हो जाये। इस दृष्टिसे बंगला भाषाके अच्छेसे-अच्छे ग्रन्थ देवनागरी लिपिमें और हिन्दीमें शब्दार्थो सहित प्रकाशित किये जायें; यह [हिन्दी सीखनेका] आसानसे-आसान रास्ता है। इस कार्यको यदि मारवाड़ी, गुजराती और अन्य धनिक-वर्ग तथा साक्षर-वर्गके लोग अपने हाथमें ले लें तो थोड़े समयमें बहुत सुन्दर कार्य हो सकता है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १८-१०-१९२५

१९४. भाषण: उ० प्र० हिन्दी साहित्य सम्मेलनमें[1]

१८ अक्तूबर, १९२५

अपने स्वागतमें भेंट किये गये अभिनन्दन-पत्रका उत्तर देते हुए श्री गांधीने कहा कि हिन्दी ही भारतकी राष्ट्रभाषा हो सकती है। मुझे इस बातसे बड़ी प्रसन्नता है कि मद्रासमें हिन्दीको लोकप्रिय बनानेके लिए काम किया जा रहा है, लेकिन खेद है कि बंगाल और अन्य स्थानोंमें कोई काम नहीं किया जा रहा है। अभिनन्दन-पत्रकी भाषाके विषयमें बोलते हुए गांधीजीने कहा कि जिस प्रकार कल लखनऊ नगरपालिका द्वारा भेंट किये गये अभिनन्दन-पत्रोंमें फारसी शब्दोंकी भरमार थी, उसी प्रकार इसमें संस्कृत शब्दोंका बाहुल्य है। ऐसी भाषा समझना मेरे लिए मुश्किल है। किसी भाषाको राष्ट्रभाषा पदपर आरूढ़ होनेके लिए ऐसा होना चाहिए जिससे उसको सर्वसाधारण आसानीसे समझ सकें।

[अंग्रेजीसे]

लीडर, २१-१०-१९२५

१. यह सभा सीतापुरमें पण्डित रामजीलाल शर्माकी अध्यक्षतामें राजा स्कूलमें हुई थी।

१९५. भाषण: संयुक्त प्रान्त राजनीतिक सम्मेलनमें[1]

१८ अक्तूबर, १९२५

श्री गांधीसे, जो अभीतक सूत कात रहे थे, . . . परिषद्के सम्मुख भाषण करनेका अनुरोध किया गया। उन्होंने कहा, मैं हिन्दू-मुस्लिम समस्याके सम्बन्धमें कुछ नहीं कहूँगा, क्योंकि अब दो में से किसी जातिपर, कमसे-कम उन लोगोंपर, जो झगड़ रहे हैं — मेरा कोई वश नहीं रह गया है। मैं चरखे और अस्पृश्यताके विषयमें विस्तारसे बोलूँगा। अध्यक्ष महोदयने चरखेका उल्लेख-मात्र किया और गैर-हिन्दू होनेके नाते उन्होंने अस्पृश्यताके विषयमें कुछ नहीं कहा। किन्तु, चरखा और खादी, ये दोनों चीजें तो मेरा धर्म है और मैं इनके सम्बन्धमें अपनी बात कहे बिना नहीं रह सकता। मैं तो समझता हूँ कि अगर भारतका हर आदमी चरखेको अपना ले तो कोई भी भूखों न मरे। मैंने ग्रामीण क्षेत्रोंका दौरा करके देखा है कि किसान लोग किस तरह गरीबीमें पिस रहे हैं। वर्षमें कमसे-कम चार महीने वे बेकार रहते हैं, और अगर वे अपने खाली समयमें कताई किया करें तो उनकी अल्प आयमें काफी वृद्धि हो जाये।

यन्त्रोंपर उन किसानोंके श्रमका उपयोग नहीं हो सकता। जहाँ कहीं भी लोग चरखा चला रहे हैं, उनकी आय अवश्य बढ़ी है। बंगालमें मैंने देखा कि हर मजदूर परिवारकी आयमें प्रति मास २ रुपयेकी वृद्धि हुई है, जब कि लॉर्ड कर्जनके अनुसार प्रति व्यक्ति उनकी वार्षिक आय सिर्फ ३० रुपये है। इस प्रकार चरखेसे आपको प्रति व्यक्ति २४ रुपयेकी अतिरिक्त वार्षिक आय हो सकती है। हर ६ रुपयेपर रुईकी कीमतके रूपमें २ रुपये किसानोंको मिलेंगे, ५ या ४ रुपये कतैयों और बुनकरोंको।

अभी कुछ ही समय पहले मैं अटरियामें था। वहाँ मैंने देखा कि कताईको एक सहायक धन्धेके रूपमें अपना लेनेसे हजारों परिवारोंकी दशा कितनी सुधर गई है। लेकिन अगर गाँवोंमें यह सहायक धन्धा रूढ़ करना है तो यह जरूरी है कि लोग खादी पहनना शुरू करें। उन्होंने आगे कहा कि आम जनताके सहयोग और सहायताके बिना स्वराज्य सम्भव नहीं है। यह सहयोग और सहायता ग्राम-संगठनके बिना नहीं मिल सकती, और दूसरे इस संगठनका एकमात्र उपाय चरखा है। जो लोग मेरे इस चरखा-प्रेमके कारण कहते हैं कि यह आदमी तो पागल हो गया है, वे अगर ऐसी कोई दूसरी चीज सुझा सकें जिससे इसी लक्ष्यको इतनी ही अच्छी तरह या इससे भी अच्छे ढंगसे प्राप्त किया जा सकता हो तो मुझे चरखा छोड़ते हुए कोई

१. यह सम्मेलन शौकत अलीकी अध्यक्षतामें सीतापुरके लाल बागमें हुआ था। उपस्थित लोगोंमें मुहम्मद अली, मोतीलाल नेहरू, जवाहरलाल नेहरू और डा० सैयद महमूद भी थे।

हिचकिचाहट नहीं होगी। लेकिन, अबतक तो ऐसा कोई विकल्प सुझाया नहीं जा सका है।

मैंने चरखा-संघकी स्थापना लोगोंको संगठित करनेके लिए की है। इस संघका राजनीतिसे कोई सरोकार नहीं है। यहाँतक कि चाहें तो लॉर्ड रीडिंग और भारतीय सैनिक भी इसमें शामिल हो सकते हैं।

भाषणके दौरान महात्माजीने कहा कि शीघ्र ही इस सम्मेलनसे अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी पटनाकी बैठकमें पास किये गये प्रस्तावको अपना सहयोग और समर्थन देनेको कहा जायेगा। लोगोंको कांग्रेसका सदस्य बननेके लिए और अधिक सुविधा प्राप्त करानेके उद्देश्यसे इस प्रस्तावमें सदस्यताकी योग्यतामें एक बुनियादी परिवर्तन किया गया है। यह कांग्रेसको पूरी तरहसे एक राजनीतिक संगठन बना देता है। तदनुसार कांग्रेस अपना सारा काम स्वराज्यवादी दलके जरिये करेगी और स्वराज्यवादी दलकी नीतिपर कांग्रेसका नियन्त्रण रहेगा। स्वराज्यवादी दल तमाम स्थानीय केन्द्रीय विधायिका संस्थाओंमें अपनी नीति और नियम स्वयं निर्धारित करेगा। इस दलके अपने कार्यक्रम हैं, अपने नियम हैं। इन कार्यक्रमों और नियमोंको कांग्रेसने अंगीकृत कर लिया है। स्वराज्यवादी दलके राजनीतिक कार्यमें कांग्रेस हर तरहकी सहायता देगी। कांग्रेसने बेलगाँव, दिल्ली और पटनामें स्वराज्यवादी दलको यह वचन दिया है कि वह उसे कांग्रेसके नामपर अपना काम करनेकी पूरी छूट देगी और उसमें पूरा सहयोग भी करेगी। स्वराज्यवादियोंने विधायक संस्थाओंमें खादी पहननेका चलन दाखिल कर दिया है — यहाँतक कि विधानसभाके अध्यक्ष भी खादी ही पहनते हैं। वे लोग नशाखोरी बन्द करने और जनताकी गरीबी दूर करनेके लिए विधायक संस्थाओंके जरिये बहुत-कुछ कर सकते हैं।

अगर कोई दूसरा दल इससे एक कदम आगे जाता, या कमसे-कम विधायक संस्थाओं और स्थानिक निकायोंमें ही हमारे रचनात्मक कार्यक्रमको स्थान दिला देता हो तो मैं उसे भी अपना समर्थन देनेमें कोई संकोच नहीं करता। अपना भाषण समाप्त करते हुए उन्होंने हिन्दुओंसे अनुरोध किया कि वे हिन्दू धर्मसे अस्पृश्यताके महा कलंकको दूर करें।[1]

[अंग्रेजीसे]

हिन्दुस्तान टाइम्स, २१-१०-१९२५

लीडर, २१-१०-१९२५

१. अन्तमें सभाने देशबन्धु दास और सर सुरेन्द्रनाथकी मृत्युपर अध्यक्ष द्वारा रखा गया प्रस्ताव पास किया। मोतीलाल नेहरूने सभामें अन्य एक प्रस्ताव भी जिसमें पटनामें हुई अ० भा० कां० कमेटीकी बैठकमें किये गये निर्णयोंकी ताईद की गई थी, पेश किया था।

१९६. भाषण: सीतापुरके अस्पृश्यता विरोधी सम्मेलनमें[1]

१८ अक्तूबर, १९२५

गांधीजीने कहा कि मैं स्वर्गीय गोखलेके कथनसे पूरी तरह सहमत हूँ कि भारतीय अपने कुछ देशवासियोंको अस्पृश्य मानकर स्वयं सारी दुनियामें अस्पृश्य हो गये हैं। मैं स्वामी श्रद्धानन्दके इस सुझावको भी ठीक मानता हूँ कि अस्पृश्यताको दूर करनेका व्यावहारिक मार्ग यही है कि हरएक उच्च वर्ण हिन्दू घर परिवारमें एक तथाकथित अस्पृश्य व्यक्तिको रखे। मेरा निश्चित विश्वास है कि हिन्दू धर्ममें अस्पृश्यताके लिए कोई स्थान नहीं है। किसी भी मानवके प्रति अस्पृश्यताका व्यवहार करना पाप है। अतः तथाकथित उच्च जातिके लोगोंको अस्पृश्योंके बजाय स्वयं अपनी ही शुद्धि करनी चाहिए। उन्होंने अछूतोंसे भी अनुरोध किया कि वे अपनेको शारीरिक रूपसे और नैतिक दृष्टिसे भी स्वच्छ रखें एवं चरखेको अपनायें और खद्दर खरीद-पहनकर उसे बढ़ावा दें।

[अंग्रेजीसे]

लीडर, २१-१०-१९२५

१९७. सन्देश: कानपुरके कांग्रेस सदस्योंको

१९ अक्तूबर, १९२५

मेरी उमेद है की महासभाको सफल करनेके लीये सब भाई बहन सर्व प्रकार से सहायता देंगे।

मोहनदास गांधी

मूल प्रति (सी० डब्ल्यू ९२७०) से।

सौजन्य: परशुराम मेहरोत्रा

१. यह सम्मेलन महेवाके राजा साहबकी अध्यक्षतामें सन्ध्या समय हुआ था।

१९८. पत्र : महादेव देसाईको

[२१ अक्तूबर, १९२५ से पूर्व][1]

चि० महादेव,

तुम्हारा पत्र मिला। इसे चि० छगनलालके नाम लिखे लिफाफेमें रख मैं एक आना बचा रहा हूँ। दुर्गा चाहे तो बाएँ हाथसे लिखनेकी कोशिश करे।

हरिलालके बारेमें तुम जो कहते हो, मैं वही मानता हूँ। पठान गाड़ीका डिब्बा तो कबसे खड़ा है लेकिन वह कुछ कोई आनेवाला थोड़े ही है। मोनाने तो यह लिखा था कि हरिलालका सारा कर्ज भोंबलेने अदा कर दिया है।

डाह्याभाईके बारेमें यहींसे निश्चित करना सम्भव नहीं है। डाह्याभाई चाहे तो कच्छमें मेरे पास आ जाये। तुम यदि तैयार हो तो उसे लेते आना। वल्लभभाई भी आ रहे हैं।

तुम्हारी बात सच है। तुम बीमार तभी पड़े हो जब मुझसे दूर रहे हो। इसका फलितार्थ तो भयंकर है। तुम मुझसे अलग रह ही नहीं सकते। फिर दुर्गाका क्या [होगा]? ऐसी स्थिति कितनी ही बार पोलककी[2] हुआ करती थी। और मैं कहा करता था कि पोलकने दो विवाह किये हैं और वह भी तब जब अंग्रेजी रिवाजके मुताबिक केवल एक ही की अनुमति है।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

मैं आज 'यंग इंडिया' के लिए कुछ और सामग्री भेज रहा हूँ।

गुजराती पत्र (एस० एन० ११४३५) की फोटो-नकलसे।

१. पत्रमें कच्छ-यात्राकी जो चर्चा मिलती है उससे पता चलता है कि यह पत्र गांधीजीके २१ अक्तूबर, १९२५ को कच्छके लिए बम्बईसे रवाना होनेसे पहले लिखा गया था।

२. हेनरी पोलक।

१९९. भाषण : बम्बईमें[1]

२१ अक्तूबर, १९२५

महात्माजीने कहा, . . .बम्बई तथा कच्छमें रहनेवाले कच्छियोंने मुझे कच्छ आनेका जो निमन्त्रण दिया है, उसके लिए मैं उनको धन्यवाद देता हूँ। मैं नहीं जानता कि मैं कच्छ क्यों जा रहा हूँ। शायद इसका एकमात्र कारण कच्छी लोगोंका प्रेम ही है, वही मुझे वहाँ खींचे लिये जा रहा है। आप सभी जानते हैं कि कौन-सी चीजें मेरे हृदयको भाती हैं, और मैं उनके सम्बन्धमें कोई नई बात नहीं कहना चाहता। मैं दिन-दिन मृत्युके समीप पहुँच रहा हूँ, लेकिन फिर भी मेरे आदर्शों और मेरी आकांक्षाओंका कोई अन्त नहीं है। सच तो यह है कि मैं अपने अन्तके जितना ही समीप पहुँचता जा रहा हूँ, मेरी आकांक्षाएँ उतनी ही ऊँची और विस्तृत होती जा रही हैं। आपसे मेरा इतना ही निवेदन है कि आप मुझे अपना आशीर्वाद देते रहिए और ईश्वरसे प्रार्थना कीजिए कि वह मुझे अपने आदर्शोंपर अटल रहने और काममें लगे रहनेकी शक्ति और साहस दे। यहाँ मैं आपको इतना और याद दिला देना चाहता हूँ कि मैं जो-कुछ भी करता हूँ, सत्य और धर्मके प्रति प्रेमसे ही प्रेरित होकर करता हूँ। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं कच्छमें ऐसा कोई काम नहीं करूँगा जिससे आपको लगे कि मुझे निमन्त्रित करके आपने ठीक नहीं किया।

महात्माजीने आगे कहा कि मुझे आरामकी बहुत जरूरत है और मैं उम्मीद कर रहा हूँ कि कच्छमें मुझे आराम मिल सकेगा। मैं चिन्ताओंके भारसे दबा जा रहा हूँ। मुझे कच्छी लोगोंकी शिकायतों और उनकी अपरिहार्य आवश्यकताओंसे अवगत कराते हुए कई पत्र लिखे गये हैं। मैं तो आपसे इसके अलावा और कुछ नहीं कहना चाहता कि अगर मैं उनका कोई उपाय नहीं कर सका तो आप ऐसा मानिए कि वह मेरी अरुचिका लक्षण न होकर मेरी कमजोरीका परिणाम है।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, २२-१०-१९२५

1. गांधीजीने यह भाषण कच्छ जाते समय समुद्र तटपर उन्हें विदाई देनेके लिए आये हुए लोगोंके सम्मुख दिया था।

२००. बहिष्कार बनाम रचनात्मक कार्य

आन्ध्र प्रदेशके एक भाईने मुझे गंजम जिला सम्मेलनमें शामिल होनेका फौरी निमन्त्रण देते हुए निम्नलिखित पत्र लिखा है :

> कांग्रेसके रचनात्मक कार्यक्रमको सबसे अच्छी तरह हीरामण्डलम्‌के आस-पासके स्थानोंमें अंजाम दिया गया। अधिकांश लोग खादी पहनते हैं। आप शायद जानते हैं कि आन्ध्रदेशको विधान परिषदोंमें जाकर काम करनेवाली बात पसन्द नहीं है। आन्ध्रदेश अपरिवर्तनवादियोंके साथ है। बहिष्कार योजना छोड़ देनेपर वह आपसे रुष्ट है। हम तो रचनात्मक कार्य द्वारा ही सफलताकी आशा करते हैं। लोग हताश होते जा रहे हैं। उनका उत्साह बहुत मंद पड़ गया है। हीरामण्डलम् खादी उत्पादनका एक बहुत बड़ा केन्द्र है। फिरका कांग्रेस कमेटी कई किस्मका खद्दर तैयार करती है, और उसकी दूकान जिले-भरकी अच्छीसे-अच्छी दूकानोंमें से है। जिलेमें एक राष्ट्रीय पाठशाला भी है। यहाँ वैश्योंकी खासी बड़ी आबादी है। ये सब खद्दर पहननेवाले हैं। लेकिन इस सबसे क्या लाभ? स्वराज्यके लिए उनका उत्साह लगभग मर चुका है। बहिष्कारके बिना लोगोंको रचनात्मक कार्यमें कोई विश्वास नहीं है। इस उत्साहको फिरसे जीवित करनेके हमारे प्रयत्नोंका कोई असर नहीं हो रहा है। मैंने अपनी सारी सांसारिक श्री-संपदाका त्याग कर दिया है, बिलकुल कंगाली ओढ़ ली है, और इसके बावजूद निराशाओंसे जूझता हुआ स्वराज्य पानेके लिए कार्यरत हूँ।

मैंने पत्र-लेखक मित्रको सूचित कर दिया है कि मैं कितना भी चाहूँ, लेकिन मेरे लिए गंजम जिला सम्मेलनमें शामिल हो सकना असम्भव है। मैं इस वर्षका अपना दौरेका कार्यक्रम बड़ी कठिनाईसे और मेरी दृष्टिसे देखा जाये तो, धीरे-धीरे पूरा कर रहा हूँ। इस लगातार यात्राके बाद मैं कुछ आराम पानेकी आशा करता हूँ। इसलिए मुझे दुखके साथ अपने आन्ध्र भाइयोंको निराश करना पड़ रहा है। लेकिन ऊपर जो पत्रांश मैंने उद्धृत किया है उसका उद्देश्य इस बातका प्रचार करना नहीं है कि मेरे थके शरीरको आरामकी जरूरत है। बल्कि, इसका उद्देश्य उस भ्रमका निवारण करना है जिसके कारण पत्र-लेखकने ऐसा मान लिया है कि रचनात्मक कार्यमें लोगोंकी रुचि न होनेसे कांग्रेस द्वारा बहिष्कार कार्य स्थगित कर दिया गया है। पहली बात तो यह है कि यदि आन्ध्र देशको विधान परिषदोंमें जाकर काम करना पसन्द नहीं है तो कांग्रेस उन्हें इस बातपर विवश नहीं करती कि वे उसे पसन्द करें ही। उसने तो सिर्फ, जिन लोगोंको विधान परिषदोंके काममें विश्वास है उन्हें कांग्रेसकी ओरसे और कांग्रेसके नामपर उस कामको हाथमें लेनेका अधिकार प्रदान किया है। जिन लोगोंने किसी आन्तरिक विश्वासके कारण नहीं बल्कि कांग्रेसके प्रति अपनी निष्ठाके कारण इस कामको छोड़ दिया था उनपर से कांग्रेसने कौंसिल प्रवेश विषयक

प्रतिबन्ध हटा लिया है। कांग्रेस विधानमण्डलोंमें प्रवेशकी निन्दा करनेके हेतु अपने नामका इस्तेमाल करनेका निर्देश करती है। और अन्तमें जो लोग इस तरहके राजनीतिक कार्यमें विश्वास रखते हैं, उन्हें वह अपना काम उत्साहके साथ करनेके लिए प्रोत्साहित करती है। लेकिन वह किसी भी कांग्रेसीकी अन्तरात्मापर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाती। बाह्य सहायताके अभावमें जिन लोगोंका उत्साह ठण्डा पड़ जाता है, निश्चय ही उन्हें अपने आपपर कोई भरोसा नहीं होता। फिर पत्र-लेखक महोदय भूल जाते हैं कि कांग्रेसने विदेशी वस्त्रोंका बहिष्कार छोड़ा तो नहीं ही है, वह उक्त बहिष्कार करनेवालोंको धन्यवाद और योग्यताका प्रमाण-पत्र भी देगी। मैं स्वयं इस प्रमाणको पाने योग्य बननेके लिए भरसक कोशिश कर रहा हूँ, और दूसरे सभी लोगोंको इस प्रयत्नमें अपने साथ शामिल होनेका न्यौता देता हूँ। यह बहिष्कार पूरी तरह सफल तभी हो सकता है जब खद्दर इतना लोकप्रिय हो जाये कि उसका उपयोग घर-घरमें होने लगे। इसी उद्देश्यसे अखिल भारतीय चरखा संघकी स्थापना हुई है। हर बहिष्कारका एक रचनात्मक पहलू होता है। यह संघ रचनात्मक दिशामें अपनी पूरी शक्तिके साथ काम करेगा। अन्य दूसरे, बहिष्कारोंका, मसलन उपाधियों, स्कूलों और अदालतोंके बहिष्कारोंका भला खद्दरके उत्पादन और खद्दरके उपयोगसे क्या वास्ता है? इन बहिष्कारोंकी खूबसूरती इसीमें है कि हर आदमी निजी तौरपर बहिष्कार करे और उसमें अकेले खड़े होनेकी हिम्मत हो। तभी इन सभी या किसी एक बहिष्कारमें भाग लेनेवाला व्यक्ति स्वयं लाभान्वित होता है; और काफी बड़ी संख्यामें लोगोंके इन बहिष्कारोंमें शामिल होनेपर राष्ट्रमें स्वराज्य पानेकी योग्यता आ जाती है। कोरे उत्साह और अन्धी आस्थासे कोई स्थायी लाभ नहीं हो सकता। इसलिए यह समझ लेना जरूरी है कि रचनात्मक कार्यक्रम हमें स्वराज्य प्राप्त करनेके योग्य बना देनेकी असंदिग्ध क्षमता तो रखता है ही, साथ ही वह अपने आपमें एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण चीज भी है।

पत्र-लेखक महोदयने अपनी सभी लौकिक सम्पत्तिका त्याग करके और अपनेको सर्वथा कंगाल बनाकर बहुत उत्तम काम किया है। लेकिन वे इस त्यागमें ही सन्तोष मानें। हजारों लोगोंको ऐसा ही त्याग करना होगा, तब कभी देशको स्वराज्य मिलेगा। जिसने स्वराज्यके लिए अपना सब-कुछ बलिदान कर दिया हो उसने अपनी हदतक तो स्वराज्य निश्चय ही प्राप्त कर लिया है। इसलिए किसी ऐसे व्यक्तिके लिए 'निराशामें भी आशा' रखनेकी जरूरत ही नहीं है, क्योंकि यदि उसका त्याग स्वैच्छिक और विवेकपूर्ण है तब तो आशा ही आशा है, निराशाका सवाल ही नहीं उठता। दूसरोंमें विश्वास वही कर सकता है, जिसका अपना विश्वास प्रखर और विवेकपूर्ण हो। अतः जिसका खद्दर तथा १९२१ के कार्यक्रमके अन्य अंगोंमें विश्वास है उसे कांग्रेसकी नीति, राजनीति और कार्यक्रममें परिवर्तनोंके बावजूद अपनी जगह अडिग रहना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २२-१०-१९२५

२०१. टिप्पणियाँ

भूल-सुधार

८ अक्तूबरके अंकमें बिहारकी टिप्पणियोंमें[1] मैंने लिखा था, राँचीमें मुझे गलकुण्डा ले जाया गया। यह मेरी अज्ञानभरी भूल थी। अब बिहारी मित्र मेरे भौगोलिक अज्ञानपर हँस रहे हैं और उन्होंने मुझे बताया है कि गलकुण्डा राँचीके पास नहीं, बल्कि पुरुलियाके पास है। मैं इस भारी भूलके लिए पुरुलियाके लोगोंसे क्षमा माँगता हूँ। फिर भी जब कई गाँवोंमें, और एक ही गाँव या शहरके कई स्थानोंमें एक ही दिन जाना होता है और कार्यक्रमोंको एकके बाद एक करके जल्दी-जल्दी पूरा करना होता है तब इतने स्थानोंको ठीक-ठीक याद रखना कठिन होता है। इसलिए मैं बाध्य होकर कई स्थानों और सम्बन्धित व्यक्तियोंके नामोंका उल्लेख करना छोड़ देता हूँ और केवल घटनाओंका वर्णन करता हूँ, इसलिए जब लोग यह देखें कि उनकी रायमें मुझे जिन व्यक्तियों या स्थानोंके नामोंका उल्लेख करना चाहिए था और मैंने किया नहीं है तब वे समझ लें कि जानकारीके अभावमें ही मैंने ऐसा किया है; और इसका कारण विशुद्ध रूपसे मेरी दुर्बल स्मृति है।

कताई-निबन्ध प्रतियोगिता

पाठकोंको याद होगा कि इस सालके शुरूमें श्रीयुत रेवाशंकर जगजीवनने हाथ-कताई, उसके इतिहास और उसके उपयोगपर सर्वोत्तम निबन्ध लिखनेवाले व्यक्तिको एक हजार रुपयेका पुरस्कार देनेकी घोषणा की थी। उसकी शर्तें ये थीं:[2]

बादमें श्रीयुत अम्बालाल साराभाईको भी निर्णायक बननेके लिए निमन्त्रित किया गया और उन्होंने यह निमन्त्रण कृपापूर्वक स्वीकार कर लिया। इस निबन्धकी पहुँचकी तिथि १५ मार्च निश्चित की गई थी। यह तिथि बादमें बढ़ाकर ३० अप्रैल कर दी गई और इस निर्धारित समयके भीतर ६० से अधिक निबन्ध प्राप्त हुए। प्रत्येक निर्णायकने निबन्धोंकी स्वतन्त्र जाँच की। हममें से दो ने एक व्यक्तिको प्रथम पुरस्कार दिया, तीसरेने एक अन्य व्यक्तिको प्रथम पुरस्कार दिया और चौथेने एक तीसरे व्यक्तिको। आपसमें सलाह करनेके बाद हमने यह तय किया कि इस पुरस्कारके दो भाग कर दिये जायें और इसे श्रीयुत एस० वी० पुणताम्बेकर और श्री एस० एन० वरदाचारीमें बाँट दिया जाये। निर्णायकोंने प्रस्ताव किया है कि इन दोनों निबन्धोंको मिलाकर एक बना दिया जाये और यह काम दोनों लेखक मिलकर करें या यदि इसे दोनों न कर सकें तो जिसे भी अवकाश हो और जो ऐसा करनेके लिए तैयार हो वह उसे पूरा करके प्रकाशनके लिए दे दे। खेद है कि इसके कारण कुछ

१. देखिए "बिहारके अनुभव–१", ८-१०-१९२५।

२. शर्तोंके लिए देखिए खण्ड २५, पृष्ठ ५८२-८३।

और विलम्ब हो जायेगा। अबतक जो भी विलम्ब हुआ है वह अनिवार्य था। सब निबन्धोंको अच्छी तरह जांचना जरूरी था, और उन्हे पूरी तरह जांचा भी गया। इसीमे बहुत समय लग गया। अब जो विलम्ब हो रहा है वह भी उतना ही अनिवार्य है। खयाल यह है कि जनताके लिए हाथ-कताईपर एक संक्षिप्त पुस्तिका प्रस्तुत कर दी जाये। मैं पुरस्कार पानेवाले सज्जनोंको बधाई देता हूँ और जो लोग पुरस्कार प्राप्त नहीं कर सके है उनको भी उनके उद्योगके लिए बधाई देता हूँ, क्योंकि कुछ निबन्धोंको देखनेसे पता चलता है कि उनको लिखनेमें बहुत परिश्रम किया गया है।

कातनेवाले कृपया ध्यान दें

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके प्रस्तावके अनुसार गत वर्ष प्राप्त होनेवाले सूतकी बुनाईका जिम्मा जिन लोगोंपर था, उन्होंने मुझसे अ० भा० चरखा संघके सदस्य बननेवालोंको यह चेतावनी देनेके लिए कहा है कि वे ऐसा सूत न भेजे जो एकसार और बराबर बटदार न हो। बहुत-सा खराब सूत अभीतक बेकार पड़ा हुआ है। जिस प्रकार कहीं पतली, कही मोटी, कही कच्ची, कही जली हुई रोटी सुपाच्य न होनेसे रोटी नहीं कही जा सकती, उसी तरह सरलतासे न बुना जा सकनेवाला असम और कच्चा-पक्का सूत सूत नही है। सदस्य बननेके लिए सिर्फ अपने हाथका कता १००० गज सूत भेजना ही काफी नही है बल्कि प्रतिमास भेजे जानेवाले इस १००० गज सूतका अच्छा बटा हुआ और एकसार होना आवश्यक है। यह तो 'क' वर्गकी बात हुई। उसी प्रकार 'ख' वर्गके सदस्योंको भी सालमें स्वयं काता हुआ ऐसा ही बटदार और एकसार २००० गज सूत भेजना चाहिए। इसलिए यदि संघके मन्त्री अपने कर्त्तव्यका पूरी तरह पालन करना चाहते है तो उनके लिए यह आवश्यक है कि वे उस सूतको लेनेसे इनकार कर दे जो निर्धारित स्तरसे नीचा हो। सूतकी किस्म बहुत ऊँची हो यह तो जरूरी नहीं है, लेकिन उसे कमसे-कम बुनाईके लिहाजसे तो ठीक होना ही चाहिए। यदि चन्दा नकद लिया जाये तो नकद चन्देमें कोई खोटे रुपयेको रुपया मानकर नही ले सकता। उसी तरह जब चन्दा सूतके रूपमें लिया जाता है तब खराब सूत भी स्वीकार नही किया जा सकता।

आपने क्या किया है?

यदि आप कातनेमें विश्वास करते है और आपको अ० भा० चरखा संघमें आस्था है, तो क्या आप उसके सदस्य बन गये हैं? यदि अभीतक नही बने हैं तो क्यों नही बने, क्या आप इसका कारण लिखेंगे? यदि आप उसके सदस्य बन गये हैं तो अपने हाथका अच्छा कता हुआ एकसार सूत चन्देके रूपमें भेजनेके अलावा खादीको लोकप्रिय बनानेके लिए आप क्या प्रयत्न कर रहे हैं? क्या आपने अपने कुटुम्बके लोगोंको और मित्रोंको भी चरखा संघमें दाखिल होनेके लिए आमन्त्रित किया है? क्या आप अपने कुटुम्बके बच्चोंसे भी देशके लिए कुछ काम करनेके लिए कहते हैं? ऐसा प्रशिक्षण कुछ कम महत्त्व नही रखता जिससे बच्चे बचपनमें ही बुद्धिपूर्वक आत्मत्याग करना सीख जाये और संगठनकी शक्तिको समझने लगे। संगठनके अभावमें

आधा घंटा प्रतिदिनकी मेहनत शायद बेकार सिद्ध होगी; किन्तु संगठित संस्थाके लिए देशके किसी भी कोनेमें बैठकर मेहनत करनेमें वह शक्ति है जो राष्ट्रीय जीवनमें क्रान्ति ला सकती है। यदि छोटे बच्चे रोजाना नियमित रूपसे कुछ काम करके अपने देशको याद करते रहें तो यह भी कुछ कम नहीं है। इससे उन्हें अनुशासनका अमूल्य पाठ पढ़नेको मिलेगा। जब आप शरीर-श्रमके इस सीधे-सादे कामको बच्चोंके सामने स्वयं करके दिखायेंगे तब आपने स्वयं जैसा कभी नही सोचा होगा, चरखेका वैसा महत्त्व अनायास ही आपके सामने प्रकट हो जायेगा। यह पूछकर कि जब सारा भारत आलस्यमें डूबा हुआ है, आपके आधा घंटा कातनेसे क्या लाभ होगा, कृपया अपने सामने कठिनाईका पहाड़ खड़ा न करें। आपके लिए यही काफी है कि आप स्वयं अपना कर्त्तव्य अच्छी तरहसे पूरा करें; बाकी तो सब-कुछ अपने-आप हो जायेगा। सारे संसारपर हमारा कोई वश नहीं है। लेकिन अपने-आपपर तो हमारा वश है ही। और यही हमारे हाथकी बात है। लेकिन साथ ही यही तो सब कुछ है। अंग्रेजीकी इस कहावतमें बहुत-कुछ सत्य है कि 'कौड़ी बचानेसे रुपया तो बच ही जायेगा'।

आखिर लोहानी मिल गई

जब मैं लोहानीका पता लगनेकी सब आशाएँ छोड़ चुका था तब मुझे एक अप्रत्याशित सूत्रसे सहायता मिली, और अब मेरे पास अखबारोंकी कतरनके रूपमें पूरा विवरण मौजूद है। मैं देखता हूँ कि मैंने 'यंग इंडिया'के पृष्ठोंमें लोहानीका प्रथम बार जो उल्लेख किया था[1], ये कतरनें उसीपर आधारित हैं। ये अखबारी रिपोर्टें लिखनेवालोंका ख्याल रहा होगा कि मैं उनके विवरणोंको देख लूंगा। जाहिर है कि उन्हें यह बात मालूम नहीं कि समाचारपत्रोंके दयालु सम्पादक और मालिक लोग 'यंग इंडिया' या 'नवजीवन'के बदलेमें जो असंख्य अखबार मुझे भेजते हैं मैं उन्हें पढ़नेका समय नहीं निकाल पाता। मैंने बहुत बार प्रार्थना की है और मैं उसे यहाँ फिर दोहराता हूँ कि जो लोग मुझे कोई सूचना देना चाहें या मेरी भूल बताना चाहें या अखबारोंमें लेख लिखकर मुझे सलाह देना चाहें, वे कृपा करके मुझे उसकी सम्बन्धित कतरनें भेजें। एक कतरनमें एक लेखकने इस बातपर आश्चर्य प्रकट किया है कि मैं यह भी नहीं जानता कि लोहानी कहाँ है। उसके इस खेदमें मैं भी शामिल हूँ। लेकिन उसे आश्चर्य क्यों होना चाहिए? मैं तो काफी पहले स्वीकार कर चुका हूँ कि मैं अपने देशका भूगोल नहीं जानता? वर्नाक्यूलर स्कूलमें मुझे भारतके भूगोलकी बिलकुल मोटी रूपरेखा पढ़ाई गई थी, और अंग्रेजी स्कूलमें पहले दर्जेमें मुझे इंग्लैंडकी सब तहसीलोंके नाम और अन्य बहुतसे विदेशी नाम जबानी याद कर लेनेको कहा गया था; नहीं तो मेरी बेंतोंसे पिटाई होगी। इन नामोंका उच्चारण करनेमें और इन्हें कण्ठस्थ करनेमें मुझे बहुत कष्ट हुआ। लोहानीके बारेमें तो मुझे किसीने नहीं बताया, और मुझे निश्चय है कि मेरा शिक्षक भी यह नहीं जानता था। अब मैं देखता हूँ लोहानी भिवानीके पास है; किन्तु भिवानी कहाँ है, यह भी पंजाब जानेसे

१. देखिए "टिप्पणियाँ", २७-८-२५ का उपशीर्षक 'लोहानी कहाँ है?'।

पहले मुझे मालूम न था। मेरे पास जो कतरन है उसके अनुसार लोहानी भिवानीसे ६ मील दूर हिन्दुओंकी एक छोटी-सी बस्ती है। कतरनमें आगे कहा गया है कि यहाँके हिन्दू जमीदारोंने कुछ मुसलमानोंको बसा लिया था। अब वहाँ हिन्दुओं और मुसलमानोंमें जमीनके एक टुकड़ेपर लड़ाई हो रही है। मुसलमानोंका दावा है कि यह जमीन धार्मिक कार्यके लिए दे दी गई है और हिन्दू कहते हैं कि यह सदासे उनकी सम्पत्ति है और इसपरसे उनका अधिकार कभी नहीं हटा। अब मामला अदालतमें पेश है। अब मुझे इस मामलेको यहीं छोड़ देना चाहिए। अखबारमें प्रकाशित अपने लेखमें लेखकने मुझसे कहा है कि मैं इस मामलेकी जाँच करूँ और इसके सम्बन्धमें अपनी राय दूँ। यदि मुझे वही अधिकार प्राप्त होता जो किसी समय मैं मानता था कि मुझे है, तो मैं निश्चय ही इसकी जाँच करता और झगडेको अदालतके जरिये तय करानेसे रोकता। किन्तु अब मुझे स्वीकार करना होगा कि मैं ऐसा करनेमें असमर्थ हूँ। फिर भी मैं दोनों पक्षोंको यह सलाह देना चाहता हूँ कि वे उन लोगोंके पास जायें जिनपर उनका विश्वास हो और उनसे पंच-फैसला करायें।

पूर्ण खण्डन

मद्रासके स्वराज्यवादियोंके विरुद्ध नगरपालिकाके पिछले चुनावोंके सम्बन्धमें रिश्वतखोरी, भ्रष्टाचार और आतंकके आरोप लगाये गये थे। उनका उल्लेख इन स्तम्भोंमें अभी हालमें किया जा चुका है। उन्हींके सम्बन्धमें मुझे श्रीयुत पी० एस० डोरायस्वामी मुदालियरका एक लम्बा पत्र मिला है। इस पत्रमें उन्होंने उन आरोपोंमें से प्रत्येकको बिलकुल गलत बताया है। इसके विपरीत उन्होंने यह भी कहा है कि पराजित दलने स्वराज्यवादियोंपर जो आरोप लगाये हैं वे स्वयं उस दलपर चरितार्थ होते हैं। पत्र-लेखकका कहना है कि स्वराज्यवादियोंको केवल अशिक्षित जन-साधारणने ही पूरा समर्थन नहीं दिया, बल्कि अनेक वकीलों, डाक्टरों और अन्य प्रमुख लोगोंने भी दिया था। उनका यह भी कहना है, उन लोगोंने ऐसा इसलिए किया कि वे दूसरे दलकी चालबाजियोंसे तंग आ गये थे। मैं पूरा पत्र नहीं छाप रहा हूँ, क्योंकि मैं नहीं चाहता कि 'यंग इंडिया' के पाठक एक स्थानीय विवादमें दिलचस्पी लें, और साथ ही मैं इस विषयपर कोई पत्र-व्यवहार भी नहीं छापना चाहता।

स्वाधीन भारतमें गोआवासियोंका स्थान

एक गोआनी मित्र पूछते हैं :

> स्वराज्य मिल जानेपर आपका और समस्त भारतवासियोंका उन गोआ-वासियोंके प्रति क्या रुख रहेगा जो कि इसी देशमें रहते हैं और यहीं अपना जीविकोपार्जन करते हैं?

इसका अत्यन्त संक्षिप्त उत्तर यह है कि गोआवासियोंके प्रति वही रुख रहेगा जो कि किसी भी अन्य भारतीयके प्रति रहता है, क्योंकि गोआके लोग उतने ही भारतवासी हैं जितने कि भारतके किसी भी हिस्सेमें रहनेवाले अन्य लोग। वे एक विदेशी सरकारके अधीन हैं, इस कारणसे उनके साथ किये जानेवाले व्यवहारमें कोई

अन्तर नहीं किया जा सकता। यदि उक्त प्रश्नमें छिपा हुआ उनका डर धर्म-भेदके कारण हो तो इन स्तम्भोंमें यह बार-बार बताया जा चुका है कि स्वराज्य किसी एक मजहबके लिए नहीं होगा। वह सब धर्मोंके लिए होगा और जिनका जन्म भारतमें नहीं हुआ है या जो भारतके अधिवासी नहीं, उनकी भी पूर्ण रूपसे रक्षा की जायेगी — उतने ही पूर्णरूपसे जितनी कि वर्तमान सरकारकी छत्रछायामें होती है; हाँ, यदि आज किसीके साथ अनुचित रूपसे पक्षपात होता होगा तो तब वैसा जरूर नहीं होगा। मेरी कल्पनाका यही स्वराज्य है। अन्तमें वह कैसा होगा यह इस बातपर निर्भर करता है कि आगे चलकर भारतके विचारवान पुरुष क्या करेंगे। भावी भारतका निर्माण गोआवासियोंके हाथोंमें भी उतना ही है जितना कि अन्य किसी जातिके। इसलिए किसीको भी यह पूछनेकी आवश्यकता नहीं कि स्वराज्यके अन्तर्गत उसका क्या होगा, क्योंकि तब सिर्फ बेवकूफ और कायर ही ऐसे होंगे जो राज्यकी दयापर आश्रित होंगे। यदि राज्य व्यक्तियोंके अधिकारोंपर आक्रमण करेगा तो हरएक व्यक्ति अपनी स्वतन्त्रताकी स्वयं ही रक्षा करेगा। जबतक बहुतसे व्यक्तियोंमें इस प्रकारकी प्रतिरोध शक्ति नहीं आती तबतक भारतवर्ष सच्ची स्वतन्त्रता हासिल नहीं करेगा।

अपराध कब अनैतिक नहीं होता?

एक महिला मित्रने मुझे डैन ग्रिफिथ्सके अपराधके सम्बन्धमें कुछ चटपटे सुभाषित भेजे हैं और वे चाहती हैं कि मैं उनको इन पृष्ठोंमें स्थान दूँ। यहाँ मैं उनमें से कुछ देता हूँ। उन्हें सत्याग्रही मजेसे अंगीकार कर सकते हैं:

> आवश्यक नहीं कि राज्यका कानून नीति-सम्मत हो; और अपराधका अनैतिक होना भी आवश्यक नहीं है।
>
> अवैधता और अनैतिकतामें बहुत बड़ा अन्तर है।
>
> सब गैर-कानूनी बातें अनैतिक नहीं होतीं और न सब अनैतिक बातें गैर-कानूनी होती हैं।

एक अधिकारीके आदेशपर पेटके बल न रेंगना गैरकानूनी हो सकता है किन्तु यह कौन कह सकता है कि वह अनैतिक भी होता है? बल्कि क्या यह सच नहीं है कि पेटके बल रेंगनेसे इनकार करना गैरकानूनी भले ही हो किन्तु वह ऊँचे दर्जेका नैतिक कार्य होगा? नीचे एक दूसरा ज्ञानवर्द्धक उद्धरण दिया जाता है:

> आधुनिक समाज अपने-आपमें अपराधोंका कारखाना है। सेनावादी हत्यारेका मौसेरा भाई है और चोर सट्टेबाजका संगाती।

तीसरा उद्धरण इस प्रकार है:

> कानूनकी दृष्टिसे जो व्यक्ति अपनी लिप्सा भावनाको समाज द्वारा अमान्य तरीकोंसे तुष्ट करता है वह चोर है। किन्तु सच्चा चोर तो वह व्यक्ति है जो समाजको जितना देता है उसकी अपेक्षा उससे अधिक लेता है। किन्तु समाज उस व्यक्तिको जो उसे चिढ़ाये दण्ड देता है; लेकिन उसे दण्ड नहीं देता जो उसे चोट पहुँचाता है, — अर्थात् वह छोटे-मोटे अपराध करनेवालोंको दण्डित करता है, बड़े अपराधियोंको नहीं।

सात सामाजिक पाप

यही महिला मित्र यह चाहती हैं कि यदि 'यंग इंडिया' के पाठकोंको नीचे सात सामाजिक पापोंकी खबर न हो तो वे उन्हे बता दिये जाये :

सिद्धान्तहीन राजनीति
श्रमहीन सम्पत्ति
विवेकहीन सुख
चरित्रहीन ज्ञान
नीतिहीन व्यापार
दयाहीन विज्ञान
त्यागहीन पूजा

स्वभावतः यह महिला यह नही चाहती कि पाठक इन बातोंको मात्र समझ लें बल्कि वे चाहती हैं कि वे इन्हे हृदयंगम कर ले जिससे वे इन पापोंसे बच सकें।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया २२-१०-१९२५

२०२. शाश्वत समस्या

हिन्दू-मुस्लिम प्रश्नसे मैं चाहे कितना भी क्यों न बचना चाहूँ, वह मुझे नही छोड़ता। मुसलमान मित्र इसके निबटारेमें मुझसे बीचमें पड़नेका आग्रह करते हैं और हिन्दू मित्र इसपर मुझसे बहस करना चाहते हैं। कुछ तो यह भी कहते हैं कि जब ऊखलमें सिर दिया है तो मूसलोंसे क्या डरना। जिन दिनों मैं कलकत्तेमें था, मुझे एक बिहारी मित्रका क्षोभ और क्रोधमें लिखा गया एक पत्र मिला था। उसमे उन्होंने हिन्दू बच्चों, खास कर लड़कियोंके कथित अपहरणोंकी कहानी बयान की थी। अपने पत्रमें मैंने उनसे साफ कह दिया था कि मुझे उनके आरोपोंपर विश्वास नही है और यदि उनके पास सबूत हो तो वे भेजें; मैं बड़ी खुशीसे उनकी जाँच करूँगा और यदि मुझे यकीन हो गया तो चाहे मैं और कुछ न कर सकूँ, तो भी मैं उसकी निन्दा अवश्य ही करूँगा। तबसे उन्होंने समाचारपत्रोंमे से अपहरणके मामलोंके रोमांचक वर्णनकी कतरनें मेरे पास भेजी हैं। मैंने उन्हे लिख दिया है कि समाचारपत्रोंके वर्णनोंको जुर्मके सबूतकी तरह स्वीकार नही किया जा सकता। ऐसे बहुतसे मामलोंमे समाचारपत्रोंके बयान तो ज्यादातर भड़कानेवाले, गुमराह करनेवाले और सरासर झूठे होते हैं। हिन्दू और मुसलमानोंके कुछ ऐसे समाचारपत्र हैं जो एक-दूसरेको बुरा कहनेका ही काम करते हैं। और यदि उनके आधारपर दोनों ही पत्रोंकी बाते सही मान ली जाये तो हिन्दू मुसलमान दोनों ही वर्ग घृणित हैं। किन्तु मैंने इस बातकी तसल्ली ठीकसे कर ली है कि अपहरणके जो मामले छापे गये हैं, उनमे से बहुतसे

मामले झूठे नहीं तो अतिरंजित अवश्य होते हैं। इसलिए मैंने ऐसे अकाट्य प्रमाण माँगे हैं जो किसी भी अदालतमें स्वीकार किये जा सकते हैं। टीटागढ़का मामला सचमुच ऐसा ही है। मुसलमान एक हिन्दू लड़कीको भगा ले गये हैं। कहा जाता है कि उसने इस्लाम स्वीकार कर लिया है। और जहाँतक मुझे मालूम है अदालतके हुक्म देनेके बावजूद भी अभीतक वह उसके सामने पेश नहीं की गई है। और विशेष बात तो यह है कि लड़कीको पेश न करनेमें प्रतिष्ठित लोगोंका भी हाथ है। जिस वक्त मैं टीटागढ़में था मैंने देखा कि कोई भी उस लड़कीके बारेमें अपने ऊपर जवाबदेही लेनेको तैयार नहीं था। पटनामें भी मुझे कुछ ऐसी ही चौंकानेवाली खबर दी गई और उनके सबूत भी मेरे सामने पेश किये गये। इस समय मैं अधिक बारीकीमें नहीं जाना चाहता, क्योंकि उसकी पूरी तस्वीर मेरे सामने नहीं है। ऐसे मामलोंको सुनकर सोचमें पड़ जाना पड़ता है। ये ऐसे मामले हैं जिनपर सभी देश-हितैषियोंको ध्यान देनेकी जरूरत है। फिर, मस्जिदोंके सामने बाजा बजानेका सवाल भी है। मैंने यह सुना है कि मुसलमानोंकी यह माँग है कि मस्जिदोंके सामने किसी भी समय धीरे या जोरसे बाजा बजाया ही न जाये। उनकी यह भी एक माँग है कि मस्जिदोंके समीपवर्ती मन्दिरोंमें नमाजके वक्तपर आरती भी बन्द कर दी जानी चाहिए। कलकत्तेमें मैंने सुना है कि प्रातःकालके समय कुछ लड़के रामधुन करते हुए एक मस्जिदके पाससे जा रहे थे, उन्हें भी रोका गया।

तो अब क्या किया जाये? ऐसे मामलोंमें अदालतोंका सहारा लेना तो सड़े बाँस-पर खड़े होने जैसा है। यदि मैं अपनी लड़कीको भगा ले जाने दूँ और फिर अदालतमें जाऊँ तो अदालत मुझे संरक्षण देनेमें असमर्थ ठहरेगी और यदि कहीं मजिस्ट्रेट मेरी कायरताको देखकर मुझपर नाराज हो जाये, तो वह मुझे घृणाके साथ, जिसके कि मैं लायक होऊँगा, अपने सामनेसे हट जानेको ही कहेगा। अदालत साधारण जुर्मोंपर ही फैसले देती है। लड़कों और लड़कियोंको, आम तौरपर भगा ले जानेका जुर्म साधारण जुर्म नहीं है। ऐसे मामलोंमें तो लोगोंसे खुद अपनी मदद आप करनेकी आशा की जाती है। अदालत तो उन्हींकी मदद करती है, जो काफी हदतक अपनी मदद आप कर सकते हैं। इसमें अदालतकी तरफसे जो सुरक्षा प्राप्त होती है, वह सिर्फ पूरक सहायता होती है। जबतक लोग निर्बल बने रहेंगे, तबतक उनकी निर्बलता-से लाभ उठानेवाले भी रहेंगे। इसलिए आत्म-रक्षाके लिए अपना संगठन करना ही एकमात्र उपाय है। ऐसे मामलोंमें यदि लोग अहिंसात्मक ढंगसे अपना बचाव करनेमें अपनेको असमर्थ पाते हैं और हिंसात्मक उपाय अपनाते हैं तो मैं उसको बिलकुल उचित मानूँगा। अवश्य ही जहाँ गरीब और लाचार माँ-बापके लड़के और लड़कियाँ भगा लिये जाते हैं, वहाँ बात जरूर बड़ी पेचीदा हो जाती है। वहाँ उसका उपाय किसी एक व्यक्तिको ही नहीं बल्कि सारी बिरादरी या जातिके लोगोंको ही ढूँढ़ना चाहिए। लेकिन जनमतको इसके लिए सुसंगठित करनेके पहले, यह परम आवश्यक है कि लड़के-लड़कियोंको भगा ले जानेके सच्चे और प्रामाणिक मामलोंको प्रकाशमें लाया जाये।

बाजेका सवाल तो अपहरणके सवालकी अपेक्षा कही अधिक सीधा है। बाजोंका लगातार बजाना, आरती, रामधुन गाना क्या सचमुच ही धार्मिक आवश्यकता है या नही? यदि यह धार्मिक आवश्यकता है, तो किसी भी अदालतका हुक्म बाध्य नही हो सकता। परिणाम चाहे कुछ भी क्यो न हो। बाजा बजाना ही चाहिए, आरती करनी ही चाहिए और रामनामकी धुन लगानी ही चाहिए। अगर मेरा तरीका स्वीकार किया जाये तो वह यह है कि अत्यन्त विनम्र स्वभाववाले स्त्री-पुरुषोका एक जुलूस निकले। उनके हाथोमें कुछ न हो, यहाँतक कि लाठियाँ भी न हो। और अगर मान लिया जाये कि रामनामकी धुन लगानेपर ही यह झगड़ा है, तो यह जुलूस रामनाम रटता हुआ चले और शान्तभावसे मुसलमानोको सारा गुस्सा अपने ऊपर उतार लेने दे। लेकिन अगर मेरा बताया तरीका जुलूसवालोको पसन्द न हो, तो भी वे रामनामकी रट लगाते हुए जरूर चलें, और आगे बढ़ते हुए उन्हें हर कदमपर मुसलमानोंसे लड़ना पड़े तो लड़ें, लेकिन न रामधुन रुके और न कदम। झगड़ेके डरसे या अदालतके हुक्मसे संगीत रोक देना तो अपने धर्मसे इनकार करना है।

लेकिन इस प्रश्नका दूसरा पहलू भी है। हमेशा बाजा बजाना और नमाजके वक्त मस्जिदके पाससे गुजरते हुए भी बाजा बजाते जाना क्या कोई धार्मिक आवश्यकता है? क्या रामनामकी रट लगाना भी ऐसी ही आवश्यक वस्तु है? इस आक्षेपका क्या जवाब है कि आजकल ज्यादातर मुसलमानोंको चिढ़ानेके लिए ही जुलूस निकालनेका रिवाज हो गया है, नमाजके वक्तपर ही आरती की जाती है और रामनामकी धुन लगाई जाती है, और वह भी इसलिए नहीं कि वह कोई धार्मिक आवश्यकता है, बल्कि इसलिए कि लड़नेका अवसर प्राप्त हो? यदि यह सच है, तो इससे तो हिन्दुओंके उद्देश्यको हानि पहुँचेगी। धार्मिक उत्साह न होनेके कारण अदालतका हुक्म, फौजी कार्रवाई, ईंटोंकी वर्षा उस धार्मिक प्रदर्शनको जरामें ही समाप्त कर देगी।

इसलिए पहले यह तय कर लेना चाहिए कि उसकी धार्मिक आवश्यकता है या नही। जहाँतक हो उत्तेजनाका हरेक काम बचाया जाना चाहिए। आपसमें समझौता करनेके लिए भरसक दिली कोशिश की जानी चाहिए। और जहाँ समझौता होना सम्भव नही है वहाँ विपक्षियोंकी भावनाओंको ध्यानमें रखते हुए, हमें अदालतकी मदद के बिना एक ऐसी न्यूनतम हद बाँध लेनी चाहिए कि उससे फिर हम किसी प्रकारसे भी पीछे न हटें। अदालतकी निषेधाज्ञा होनेपर भी हमें उस हदपर कायम रहनेके लिए लड़ना चाहिए। कोई मुझपर यह दोष कदापि न लगावे कि मैं कमजोर बननेकी सलाह देता हूँ, या कमजोरीको प्रोत्साहन दे रहा हूँ या किसीसे अपना सिद्धान्त छोड़ देनेके लिए कहता हूँ। लेकिन मैंने यह अवश्य कहा है, और आज भी कहता हूँ कि हरएक छोटी-मोटी बातको सिद्धान्तका रूप देकर उसे महत्त्व नही देना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २२-१०-१९२५

२०३. बिहारके अनुभव – ३

. स्थानीय निकायके सदस्योंका कर्त्तव्य

गिरीडीहमें जो अभिनन्दन-पत्र[1] दिये गये थे, उनमें उल्लिखित कई बातें बड़ी दिलचस्प थीं और चोईबासाकी तरह यहाँ भी गोशाला समितिकी तरफसे एक अभिनन्दन-पत्र दिया गया था। स्थानीय निकायवाले अभिनन्दन-पत्रमे उसकी देखभालमें आनेवाली सड़कोंकी खराब हालतका उल्लेख किया गया था और उसका सबब धनकी कमी बताया गया था। मैंने बिना हिचक इसका उत्तर दिया कि जब स्थानीय निकायोंका संचालन कांग्रेसवालोंके हाथमें है, तो यह बहाना नहीं चल सकता कि धनकी कमीके कारण सड़क खराब हालतमें है। आखिरकार सड़कें तो राष्ट्रीय सम्पत्ति हैं। कांग्रेसी राष्ट्रके सेवक हैं और स्थानीय निकायमें जानेसे सड़कोंकी देखभाल करना जब उन्हींके जिम्मे आ पड़ा है, तब चाहे रुपये हों या न हों, उनका तो यह फर्ज है कि वे सड़कोंको दुरुस्त रखें। वे हरएक अच्छी बातके लिए सरकारसे भले ही युद्ध करें, लेकिन उन्हें रचनात्मक कार्यके प्रति जरा भी लापरवाही नहीं दिखानी चाहिए। यदि वे अपने इस कार्यभारको अच्छी तरह नहीं सम्भाल सकते, तो उन्हें अपने पदसे इस्तीफा दे देना चाहिए। रुपयोंकी कमीके कारण इस्तीफा दे देनेकी जरूरत नहीं है, क्योंकि स्वेच्छासे प्रयत्न करके भी रुपयोंकी कमी पूरी की जा सकती है। ऐसे निकायोंके सदस्योंको चाहिए कि वे स्वयं कुदाली और फावड़ा लेकर, कमर कसकर सड़कोंपर कार्य करनेके लिए निकल पड़ें और अपनी मददके लिए स्वयंसेवकोंका एक दल बुला लें। इससे जनता उनको आशीर्वाद देगी, मूक पशुओंका आशीर्वाद भी उन्हें प्राप्त होगा और बड़े अधिकारी भी उनकी इज्जत करेंगे। हर जगह नगरपालिकाका बहुत-सा कार्य तो बेशक उसके सदस्य ही, अधिकारीकी रूसे नहीं, बल्कि प्रजाकी स्वेच्छापूर्वक दी गई मददसे अपने आप करते हैं। स्वर्गीय श्री जोजेफ चेम्बरलेन,[2] सिर्फ नगरपालिकाके तनख्वाह पानेवाले नौकरोंकी मददसे नहीं, बल्कि बर्मिंघम निवासियों द्वारा स्वेच्छापूर्वक दी गई आर्थिक और दूसरे प्रकारकी मददसे ही बर्मिंघमको मूर्तियों और दूसरी सजावटोंसे युक्त एक स्वच्छ नगर बना सके थे। अपने नागरिकोंसे हार्दिक और पूरी-पूरी मदद मिलनेके कारण ही तो ग्लासगोकी नगरपालिका तुरत-फुरत अनुकरणीय ढंगसे प्लेगके आक्रमण दूर कर सकी थी। यह तो मेरे अनुभवकी बात है कि जोहानिसबर्गकी नगरपालिकाने भी प्लेगके जबर्दस्त आक्रमणको तुरत-फुरत नष्ट कर दिया था। उसने प्लेगका समूल नाश करने के लिए बड़ीसे-बड़ी आर्थिक हानिका विचार नहीं किया। उसने बाजारकी इमारतों और रहनेके मकानोंको जला दिया और इसमे उसे अपने कृतसंकल्प नागरिकोंकी पूरी मदद प्राप्त थी। मैंने अपने

१. देखिए "भाषण: गिरीडीहकी सार्वजनिक सभामें", ७-१०-१९२५।

२. १८३६–१९१४; ब्रिटिश राजनीतिज्ञ। बर्मिंघमके मेयर (१८७३-७६)।

श्रोताओंसे कहा कि यदि स्थानीय निकायके पास काफी रुपया नहीं है तो उसके सदस्योंको कांग्रेसके स्वयंसेवकोंकी मददसे सड़कोंकी मरम्मत करनी चाहिए। यह कोई बड़ी बहादुरीका काम करनेको नहीं कह रहा हूँ। यदि हमने नगरपालिका और स्थानीय निकायोंपर कब्जा कर लिया है, तो अधिकारकी रू से हमारे जिम्मे जो-जो रचनात्मक काम आयें उन्हें अच्छी तरह पूरा करनेमें हमें भली-भाँति अपनी सामर्थ्य सिद्ध करनी चाहिए।

गोरक्षा

गिरीडीहकी गोशाला समितिके अभिनन्दन-पत्रमें लिखा था कि उसको दान इत्यादिसे सालाना ९,००० रुपयेकी आमदनी होती है। और दूध इत्यादिसे केवल २०० रुपयेकी ही। इससे पाठकोंको याद आ जायेगा कि चाईबासाका-सा हाल यहाँ भी है। बातें तो बहुत होती हैं लेकिन काम कुछ भी नहीं होता। आदर्श गोशाला तो वह होगी जो अपने शहरको अपने ही पाले हुए ढोरोंका अच्छा और सस्ता दूध काफी परिमाणमें पहुँचा सके और कत्ल किये हुए ढोरोंके नहीं, बल्कि मरे हुए ढोरोंके चमड़ेसे बने सस्ते और टिकाऊ जूते तैयार करके दे। ऐसी गोशाला शहरके मध्यमें या उसके आसपास कहीं नजदीकमें एक या दो एकड़ जमीनपर नहीं हो सकती है। वह तो शहरसे कुछ दूरीपर ऐसी ५०–१०० एकड़ जमीनपर ही हो सकेगी, जहाँसे शहरतक आसानीसे आना-जाना हो सकता हो। डेरी और चर्मालय भी वहाँ होगा और वे पूर्ण व्यवसायकी दृष्टिसे किन्तु राष्ट्रीय आधारपर चलाये जायेंगे। इस गोशालामें मुनाफा कमानेकी बात भी नहीं होगी और न वह नुकसानमें ही चलेगी। कुछ समयके बाद जब सारे हिन्दुस्तानमें जगह-जगह ऐसी गोशालाएँ बन जायेंगी, तब वह समय हिन्दूधर्मकी सम्पूर्ण सफलताका समय होगा, और वह गोरक्षा अर्थात् चौपायोंकी रक्षाके सम्बन्धमें हिन्दुओंकी सच्ची भावनाका प्रमाण होगा। इससे हजारों आदमियोंको, शिक्षित मनुष्योंको भी अच्छी रोजी मिलेगी; क्योंकि डेरी और चमड़ेके काममें बड़े ही ऊँचे प्रकारकी वैज्ञानिक जानकारीकी आवश्यकता है। डेरी सम्बन्धी उत्तमोत्तम प्रयोगोंके लिए हिन्दुस्तानको ही आदर्श राज्य होना चाहिए, डेन्मार्कको नहीं। हिन्दुस्तानको सालाना ९ करोड़ रुपयोंका मरे हुए ढोरोंका चमड़ा विदेशोंको भेजकर कत्ल किये गये ढोरोंका चमड़ा खुद इस्तेमाल करना पड़ता है, इसकी नौबत नहीं आनी चाहिए। यदि यह भारतके लिए लज्जाकी बात है तो हिन्दुओंके लिए तो यह और भी अधिक लज्जाकी बात है। मैं चाहता हूँ कि गिरीडीहके अभिनन्दन-पत्रका उत्तर देते हुए मैंने जो कुछ कहा है, उसपर सभी गोशाला समितियाँ ध्यान दें और वे अपनी गोशालाओंको आदर्श डेरी और चर्मालयोंमें बदल दें और उन्हें सभी प्रकारकी बुड्ढी और निकम्मी गौओंका आश्रयस्थान बना दें।

कौन काते?

गिरीडीहके अभिनन्दन-पत्रमें जो तीसरी दिलचस्प बात कही गई थी वह थी मजदूरों द्वारा कताई न करना। गिरीडीहमें अभ्रककी कई खानें भी हैं। उन खानोंमें

बहुतसे मजदूर काम करते हैं। इन मजदूरोंको कातनेसे जितनी मजदूरी मिल सकती है उससे कही अधिक मजदूरी खानोंमें मिलती है इसलिए वे बिलकुल ही नही कातते हैं। सच बात तो यह है कि उस अभिनन्दन-पत्रमें इसके लिए कोई क्षमा माँगनेकी आवश्यकता न थी। 'यंग इंडिया' के पाठक जानते है कि मैंने यह कभी नही कहा कि वे लोग भी, जो किसी ऐसे व्यवसायमें लगे हुए हैं, जिससे कि उन्हें अच्छी आमदनी होती है, अपने व्यवसायको छोड़कर कातनेको अपना लें। मैंने तो बार-बार यही कहा है कि कातनेकी आशा उनसे ही रखी जा सकती है और उन्हीसे कातनेके लिए कहा जाना चाहिए जो किसी आमदनी देनेवाले व्यवसायमें नही लगे हुए हैं, और वे भी उस समय कातें जो उनका अवकाशका समय हो। कताईका सारा सिद्धान्त ही इस बातको मानकर तैयार किया गया है कि इस देशमें लाखों स्त्री-पुरुष ऐसे हैं जिनके लिए सालमे कमसे-कम चार महीनें कुछ भी काम नही होता है, और वे आलसी बने बैठे रहते हैं। इसलिए दो ही वर्गके लोगोंसे कातनेकी आशा रखी जा सकती है। एक तो वे जो मजदूरी लेकर कातते हैं और जिनका मैं ऊपर जिक्र कर चुका हूँ। तथा दूसरे भारतके वे विचारशील लोग हैं जिन्हें त्याग-भावसे उदाहरण पेश करनेके लिए और खद्दरको सस्ता करनेके लिए कातना चाहिए। लेकिन यद्यपि मैं यह समझ सकता हूँ कि ये मजदूर लोग कातते क्यों नहीं हैं, फिर भी मैं यह नही समझ सकता कि वे लोग खादी क्यों नही पहनते। उस बड़ी सभामें एक भी शख्स ऐसा नहीं था जो खादी न पहननेके लिए कोई उचित कारण बता सकता हो। गिरीडीह अपना सूत आप तैयार कर सकता है और उससे बिना किसी कठिनाईके अपने लिए खादी भी तैयार कर सकता है, और नहीं तो बिहारके दूसरे भागोंमें से बना-बनाया और अपेक्षतः सस्ता खद्दर लेकर अपनी मांग पूरी कर सकता है। लेकिन मैं देख रहा हूँ कि उन अभिनन्दन-पत्रोंमें खादी और चरखेके सम्बन्धमे यद्यपि उन्होंने अपनी त्रुटियोंको स्वीकार किया था, फिर भी मेरा ख्याल है कि उनकी यह स्वीकृति निकट भविष्यमें कोई सुधार करनेकी इच्छासे नहीं की गई थी। वह तो आजकी-सी हालत कायम रखनेकी लाचारी-भर व्यक्त करनेकी दृष्टिसे की गई थी। अपनी त्रुटियोंको स्वीकार करना तभी उपयोगी हो सकता है जबकि उसको स्वीकार कर लेनेके साथ ही मनमें उसे दूर करनेका निश्चय भी हो। यदि ऐसी स्वीकृतिका प्रयोजन सुधारके बजाय उस दोषको कायम रखना हो तो उससे कुछ भी लाभ न होगा। इतना ही नही, वह हानिकर भी है। आशा है कि मुझे दिये गये अभिनन्दन-पत्रोंमें उनका अपनी त्रुटियोंको स्वीकार करना एक निश्चित सुधारकी दिशामें पहला कदम साबित होगा।

राष्ट्रीय पाठशालाएँ

गिरीडीहसे हम लोग मधुपुर गये। वहाँ मुझसे एक छोटेसे सुन्दर नये टाउन हॉलका उद्घाटन करनेको कहा गया था। मैंने उसका उद्घाटन करते हुए और नगरपालिकाको उसका अपना मकान तैयार हो जानेपर मुबारकबादी देते हुए यह आशा व्यक्त की कि वह नगरपालिका मधुपुरको उसकी आबोहवा और उसके आसपासके कुदरती दृश्योंके अनुरूप ही एक बहुत सुन्दर जगह बना देगी। बम्बई और कलकत्ता-

जैसे बड़े शहरोंका सुधार करनेमें बड़ी ही मुश्किलें पेश आती हैं। लेकिन मधुपुर-जैसी छोटी जगहोंमें नगरपालिकाकी आमदनी बहुत ही थोड़ी होते हुए भी उन्हें अपनी-अपनी हदमें आनेवाले क्षेत्रको साफ-सुथरा और रोगमुक्त रखनेमें मुश्किलोंका सामना भी नहीं करना पड़ता। मैं मधुपुरकी राष्ट्रीय पाठशालामें भी गया। प्रधानाध्यापकने अपने अभिनन्दन-पत्रमें पाठशालाके भविष्यका बड़ा ही अन्धकारमय चित्र खींचा था। उन्होंने कहा कि लड़कोंकी संख्या घट रही है और लोगोंकी तरफसे आर्थिक सहायता भी कम होती जा रही है। उन्होंने यह भी कहा कि कुछ माँ-बापोंने अपने बच्चोंको सिर्फ इसलिए पाठशालासे हटा लिया है कि पाठशालामें हाथ-कताईको अनिवार्य कर दिया गया है। उस अभिनन्दन-पत्रमें मुझसे इन मुश्किलोंसे बाहर निकलनेका उपाय बतानेको कहा गया था। मैंने उन्हें जवाब दिया कि यदि शिक्षकोंको अपने उद्देश्यमें श्रद्धा है तो उन्हें निराश नहीं होना चाहिए। सभी नई संस्थाओंको अच्छे-बुरे दिन देखने पड़ते हैं; यह स्वाभाविक ही है। उनकी ये कठिनाइयाँ उनका परीक्षा-काल सूचित करती हैं। दृढ़ विश्वास वही है, जो तूफानोंमें भी अडिग रहे। यदि शिक्षकोंको पूरा विश्वास है कि पाठशालाके जरिये उन्हें आसपासके लोगोंतक एक सन्देश पहुँचाना है तो उन्हें बड़ेसे-बड़ा त्याग करनेके लिए तैयार होना चाहिए। फिर, यदि उनको इस बातका यकीन हो जाये कि उन्होंने अपनी पाठशालाको अच्छा बनानेकी दिशामें जितना कर सकते थे वह सब-कुछ किया है और माँ-बाप और लड़के उनकी त्रुटियोंके कारण पाठशालासे विमुख नहीं हो रहे हैं किन्तु जिस सिद्धान्तके लिए वे प्रयत्न कर रहे हैं वही उन्हें ठीक नहीं जँच रहा है, तो फिर उनकी पाठशालामें एक लड़का हो या १०० लड़के हों, उसकी कुछ भी परवाह नहीं करनी चाहिए। यदि उनके कताईमें श्रद्धा रखनेके कारण माँ-बाप अपने बच्चोंको पाठशालासे निकाल लेते हैं तो उन्हें इसकी कोई चिन्ता नहीं करनी चाहिए; किन्तु यदि उन्होंने कताईको अपने आन्तरिक विश्वासके कारण नहीं, सिर्फ इसीलिए रखा है कि वह एक रिवाज हो गया है, या कांग्रेसके प्रस्तावमें उसका होना आवश्यक बतलाया गया है, तो उन्हें लोगोंका सद्भाव कायम रखनेके लिए कताईको निकाल देनेमें जरा भी नहीं हिचकिचाना चाहिए। अब समय आ गया है कि राष्ट्रीय शिक्षकगण स्वयं निर्णय लें। क्योंकि जब ये सुधार किये जाते हैं, तो उन सबका या एकाधका विरोध करनेवाले कुछ लोग तो हमेशा ही निकल आते हैं और मात्र वे ही शिक्षक जिन्हें अपनेमें और अपने उद्देश्यमें श्रद्धा है, जिन सुधारोंको आवश्यक समझते हैं, उनके विरोधका सामना कर सकते हैं और शायद यही उनके नये प्रयासको उचित प्रमाणित करता है।

फुटकर बातें

मधुपुरसे हम लोग पूर्णिया जिलेकी ओर रवाना हुए अर्थात् एक नये वातावरण और नये प्रदेशकी ओर चले। पूर्णिया जिला गंगाके उत्तरी किनारेपर उत्तर-पूर्वकी ओर है। सारा ही जिला हिमालयकी तराईमें बना है। यहांकी आबोहवा और यहांके निवासी करीब-करीब चम्पारनके जैसे हैं। हम लोग सकरीगली घाटसे नावमें मनियारी घाट

गये। यह सफर करीब दो घंटेका था। हम लोग तड़के ही मनियारी पहुँचे। यहाँके लोगोंने देशबन्धु स्मारक कोषके लिए एक थैली भेंट की। वहाँसे हम लोग रेल गाड़ीसे कटिहार जंकशन पहुँचे। वहाँ भी सार्वजनिक सभाएँ की गईं और एक थैली मिली। दूसरे दिन हम लोग किशनगंज पहुँचे जहाँ हस्बमामूल सभाएँ हुईं और एक थैली भेंट की गई। किशनगंजमें मारवाड़ियोंकी खासी आबादी है। उन्होंने काफी चन्दा इकट्ठा किया था। वहाँ एक शिष्टमण्डलने आकर मुझसे यह शिकायत की कि यद्यपि वे खादी पहनना चाहते हैं और तैयार भी हैं लेकिन किशनगंजमें खादी मिलती ही नहीं है। उन्होंने कहा कि कपड़ेका सारा ही व्यापार मारवाड़ी लोगोंके हाथोंमें है और वे सिर्फ विदेशी कपड़ा ही बेचते हैं। शिष्टमण्डलने बताया कि मारवाड़ी व्यापारी कहते हैं कि विदेशी कपड़ा बेचनेमें उन्हें बहुत फायदा होता है। मैंने शिष्टमण्डलसे कहा कि यद्यपि मैं मारवाड़ी मित्रोंसे इस सम्बन्धमे सहर्ष कहूँगा, लेकिन आपका बताया हुआ कारण माना नहीं जा सकता। क्योंकि यदि किशनगंजमें खादीकी बहुत माँग है तो आप लोग वहाँपर एक सहकारी भण्डार खोल सकते हैं। उन मारवाड़ी व्यापारियोंपर, जो किशनगंजमें व्यापारके लिए आये हैं, दोष लगानेसे कुछ लाभ न होगा। आप-जैसे लोगोंका ही, जिन्हें खादीपर श्रद्धा है, यह फर्ज है कि खादीका रिवाज डालें, उसका संग्रह करनेके लिए कुछ तकलीफ उठायें और फिर मारवाड़ियोंको भी वही माल रखनेके लिए कहें। लेकिन मैंने देखा कि वे यह करनेके लिए तैयार न थे। मैंने उनसे यह भी कहा कि यदि वे यह गारंटी दें कि कमसे-कम इतनी खादी जरूर बिकेगी तो मैं श्री राजेन्द्रबाबूको किशनगंजमें एक खादी भण्डार खोलनेके लिए भी कहूँगा। लेकिन यह जोखिम उठानेके लिए भी वे तैयार न थे। मैंने फिर बड़े-बड़े मारवाड़ी व्यापारियोंसे बातचीत की। उन्होंने कहा कि कुछ मारवाड़ियोंने कुछ अरसेके लिए कुछ खादी भी अपने यहाँ रखी थी, लेकिन उसकी कोई ठीक खपत नहीं हुई। उन्होंने इस बातको स्वीकार किया कि मारवाड़ी व्यापारियोंने खादीको लोकप्रिय बनाने या बेचनेका कोई प्रयत्न नहीं किया।

गोलमाल

हम लोग किशनगंजसे अरेरिया गये और अरेरियासे फारबिसगंज पहुँचे। यह बिहारकी उत्तर-पूर्वकी सीमा है और यहींसे नेपालकी हद शुरू होती है। मुझे बताया गया कि जब आकाश स्वच्छ हो तो यहाँसे हिमालयकी बरफसे ढँकी हुई सुन्दर कतारें भी दिखाई देती हैं। फारबिसगंज पहुँचनेसे पहले मुझे यह इच्छा हुई थी कि मैं राजेन्द्रबाबू और उनके साथ काम करनेवाले कार्यकर्त्ताओंको लोगोंपर अच्छा अधिकार प्राप्त करनेके लिए मुबारिकबादी दूँ, क्योंकि पहलेकी तरह इस बार लोगोंकी बड़ी भीड़ होनेपर भी वह व्यवस्थित और शान्त थी और मेरे पैर छूनेके लिए लोगोंने मुझे घेरा भी नही और इस प्रकार उन्होंने संयमका परिचय दिया। लेकिन फारबिसगंजमें मेरा यह भ्रम दूर हो गया। वहाँ कोई व्यवस्था नहीं रह सकी। भीड़ बहुत ही अधिक थी। बड़ी सख्त धूपमें सभा रखी गई थी। लोगोंके सिरपर कोई छाया न थी और वे सुबहसे राह देखते हुए बैठे थे। शोरगुल बहुत हो रहा था। मेरे

लिए जरा-सी भी शान्ति पाना असम्भव हो गया। स्वयंसेवक गण ऐसी भारी भीड़को मेरे पास आनेमे और मुझे छूनेसे रोकनेमे असमर्थ थे। सच बात तो यह थी कि पहले यहाँ कुछ अधिक कार्य हुआ ही न था। स्वयंसेवकोंके लिए भी वह काम बिलकुल ही नया था। बेचारोंने भरसक कोशिश की। उसमें दोष किसीका भी न था। उनके लिए तो यह नई बात और नया अनुभव था। और लोग तो मेरे नजदीक आकर मुझे छूनेके इस मौकेको, जिसे वे अपूर्व मानते थे, छोड़ना नही चाहते थे। यह प्रेम-युक्त वहम है, लेकिन मुझे यह बहुत ही तकलीफ देता है। मैंने उनसे खादी, चरखा, शराबखोरी, जुआ इत्यादिके सम्बन्धमे बहुत कुछ बातें कहीं। लेकिन मुझे लगता है कि शायद उसमे से वे कुछ भी न समझ सके होंगे। ईश्वरकी लीला विचित्र है। हजारों लोग उस व्यक्तिके प्रति या उस चीजके प्रति अपने आप खिचे चले जाते हैं जिसका कि उन्हे नाममात्र ज्ञान है। मै नही जानता कि मेरे-जैसे एक अजनबीको देखकर उन्हें कुछ लाभ हुआ होगा या नही। मैं यह भी नही जानता कि मैंने फारबिसगंज जानेमे अपने समयका सदुपयोग किया था या दुरुपयोग। यदि हम ईश्वर और मनुष्योंकी सेवाके लिए ही सब कुछ करते हों और जिसे हम बुरा समझते हैं उसे न करते हों, तो फिर शायद समस्त कार्योंके परिणामोंको न जान सकनेकी हमारी विवशता ही अच्छी है।

उपसंहार

फारबिसगंजसे हम लोग विशनपुरकी ओर गये। विशनपुर पूर्णियासे २५ मील दूर है, और चूंकि पक्का रास्ता नही है, मोटरमे बैठकर जानेसे जरा तकलीफ होती है। इस गाँवमे एक बडी सभा हुई।[1] और इस छोटेसे गाँवमे, जो रेलवे लाइनसे दूर है, सार्वजनिक कामोंमे लोगोंका ऐसा उत्साह देखकर मुझे बड़ा ताज्जुब हुआ। लोगोंने स्मारकके लिए अच्छा चन्दा दिया। इस सभाकी सबसे नई बात तो यह थी कि सभाके लिए एक स्थायी मंच तैयार किया गया था। वह करीब १५ फीट ऊँचा था और ईंटोंका पक्का बना हुआ था। इसके नीचेके हिस्सेमें खादी-भण्डार रखा गया है। इसके निर्माणमे उपयोगिताके साथ सुन्दरताका मिश्रण किया गया है। इस गाँवमें एक सुनिर्मित पुस्तकालय और वाचनालय भवनका उद्घाटन करके मुझे सबसे अधिक खुशी हुई। पुस्तकालयके चारों ओर खुला हुआ विशाल बाड़ा है और उसमें संगमरमरकी बेंचे पड़ी रहती हैं। यह पुस्तकालय चौधरी लालचन्दकी स्वर्गवासी पत्नीकी स्मृतिमे बनाया गया है। विशनपुर-जैसी जगहमे ऐसा स्मारक खोलनेका विचार किया गया, इसीसे यह प्रमाणित होता है कि वहाँ लोगोंको सही ढंगकी राजनैतिक शिक्षा अच्छी तरह मिली है। विशनपुरसे हम लोग पूर्णिया लौट आये। यह इस जिलेका सदर मुकाम है और यही एक तरहसे सामान्य समारोहोंके साथ विहारकी यात्रा समाप्त हुई। यों इस यात्राकी समाप्ति तो असलमे हाजीपुरमे हुई थी। वहाँके कुछ युवक कार्यकर्ताओंके उत्साहके कारण वहाँ एक राष्ट्रीय पाठशाला स्थापित की गई थी, जिसकी

१. देखिए "भाषण: विशनपुरमें", १३-१०-१९२५।

वजहसे मैं उसके प्रति चार वर्ष पूर्व आकर्षित हुआ था। पूर्णिया जिलेसे कोई सत्रह हजार रुपये मिले। उनमें से कुछ तो बिहार [राष्ट्रीय] विद्यापीठके लिए दिये गये हैं। बाकीके १५,००० रुपये देशबन्धु स्मारक कोषके लिए हैं। बिहार-यात्रामें इन रुपयोंको मिलाकर कुल ५०,००० रुपये स्मारक कोषके लिए मिले हैं।

बिहारके नेक और सीधे-सादे लोगोंको छोड़कर जाते हुए मुझे रंज होता है। मैं आशा करता हूँ कि यदि सब ठीक-ठाक रहा तो बिहारका बाकी दौरा मैं अगले वर्षके आरम्भमें ही पूरा करूँगा। मुझे आशा है कि बिहारी लोग इस बीच चरखा और खादीमें बहुत-कुछ प्रगति कर दिखायेंगे। उसके खादी भण्डारोंमें जो सुन्दर खादी पड़ी हुई है, वह सब बिक जानी चाहिए। अखिल भारतीय चरखा संघके बहुतसे सदस्य बन जाने चाहिए और वे केन्द्र, जहाँ कि गरीब लोग स्वयंसेवकोंके आनेकी राह देख रहे हैं, कताईके लिए अच्छी तरह व्यवस्थित हो जाने चाहिए। शराबखोरी-की बुराईपर भी रोकथाम की जानी चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २२-१०-१९२५

२०४. दुविधा

एक मित्र बड़ी दुविधामें पड़े हैं। वे एक भारतीय संस्थानमें नौकरी कर रहे हैं। वहाँ उन्हें ८ बजे सुबहसे लेकर ९ बजे राततक काम करना पड़ता है। मेरा खयाल है कि बीचमें भोजनकी छुट्टी होती होगी। किन्तु मालिकोंने अभी यह नियत नहीं किया है कि उनकी वर्दी किस किस्मके कपड़ेकी होगी, इसलिए वह अपनी पसन्दके मुताबिक खद्दर पहनते हैं। एक विदेशी पेढ़ी उनको इससे कम घंटे काम करनेपर दुगुना वेतन देनेके लिए तैयार है; लेकिन वह यह नहीं चाहती कि उनकी पोशाक खद्दरकी हो। अब उसके सामने कठिनाई यह है: विदेशी पेढ़ीकी नौकरी मंजूर कर लेनेसे उनकी आर्थिक स्थिति सुधर जाती है; इतना ही नहीं, उन्हें प्रतिदिन सूत कातनेके लिए पर्याप्त समय भी मिल जाता है और उन्हें इसमें विश्वास भी है। किन्तु इसमें उन्हें खद्दरके कपड़ोंसे वंचित होना पड़ता है जो कि उन्हें बहुत प्यारे हैं। यदि वह जहाँ हैं वहीं रहते हैं तो उन्हें १२ घंटे काममें पिसना पड़ता है, कष्ट उठाना पड़ता है और सूत कातनेका समय भी नहीं मिलता। अब वह क्या करें? इस बारेमें मुझे अपनी राय देनेमें तनिक भी झिझक नहीं है। यदि खद्दरके प्रश्नको छोड़ भी दें तो भी किसी भी स्वाभिमानी मनुष्यके लिए विदेशी पेढ़ीका प्रलोभन-भरा प्रस्ताव बिलकुल अस्वीकार्य होगा। इसका सीधा-सादा कारण है कि उसके साथ उसकी स्वतन्त्रतापर बेजा प्रतिबन्धकी शर्त जुड़ी है, खास तौरसे तब जब यह प्रतिबन्ध राष्ट्रीय हितके विरुद्ध है और उक्त तथ्योंसे मालूम होता है कि इसके पीछे खद्दरके विरुद्ध उस पेढ़ीका द्वेषभाव है। गुणावगुणोंपर विचार करनेपर भी मैं हर तरहसे खद्दर पहननेकी आजादी पसन्द करूँगा, भले ही समयाभावके कारण फिलहाल सूत कातनेकी इच्छाकी

कुर्बानी करनी पडे। यदि सब लोगोंको मजबूर होकर खद्दर पहनना छोड़ देना पड़े तो सूत कातनेका कोई महत्त्व नही रहेगा। सूत कातनेका महत्त्व निरपेक्ष नही, बल्कि सापेक्ष है। यदि सूत कातनेसे बनी चीज बाजारमें न बिके तो लाखों-करोड़ों अधभूखे स्त्री-पुरुषोंको सूत कातनेके लिए कहना उनके साथ क्रूर मजाक जैसा होगा। इसलिए इस समय जरूरत इस बातकी है कि खद्दरको लोकप्रिय बनाया जाये। सूत कातना निस्सन्देह आवश्यक है, किन्तु जब सूत कातने और खादी पहननेके बीच एक चीज चुननी पड़े तो स्वभावत खादी पहननेको निर्विवाद रूपसे तरजीह देनी होगी। सूत कातनेकी जरूरत उन लोगोंको है, जिनकी आमदनी बहुत कम है और जो उसे कुछ बढ़ाना चाहते हैं। ऐसे लोगोंको भी फुर्सतके वक्तमे ही सूत कातना है। उन लोगोंको भी सूत कातनेकी जरूरत है जो राष्ट्रको बिना पारिश्रमिक लिए कताईके रूपमें अपने फुर्सतके थोड़ेसे क्षण देना चाहते हैं। इस मामलेमें यदि मनमें सूत कातनेका संकल्प हो तो कुछ समयमें उसके लिए अवकाश भी निश्चय ही मिल जायेगा। सम्भवत: इन पत्र-लेखकको ट्रामसे या रेलगाड़ीसे दफ्तर जाना होता है। वह अपने साथ तकली रखे और जब-जब उन्हे कुछ समय मिले उसका उपयोग वह सूत कातनेमें करें। मैं ऐसे कई लोगोको जानता हूँ जो बीच-बीचमें मिलनेवाले अपने फुर्सतके समयका उपयोग इस तरह करते हैं; इसलिए मैं आशा करता हूँ कि चाहे कितने ही प्रलोभन क्यों न दिये जायें, किन्तु पत्र-लेखक महोदय खद्दर पहनना कभी नहीं छोड़ेंगे। मैं सोचता था कि विदेशी व्यापारिक पेढियोंसे खद्दरके प्रति विद्वेष चला गया है। मैंने कलकत्ताके जिन यूरोपीय व्यापारियोंसे बातें की हैं उन्होंने खद्दरके कपडोके विरुद्ध कोई द्वेषभाव नही दिखाया। मैं चाहता हूँ कि जो प्रभावशाली यूरोपीय व्यापारी इस अनुच्छेदको पढ़ें, वे अपने प्रभावको काममे लाकर पत्र-लेखक द्वारा बताये गये द्वेषभावको दूर करेगे। अब समय आ गया है जब कि भारतीय पेढ़ियोंको भी अपने व्यापारको इस प्रकार पुनर्गठित करना होगा जिससे अपने कर्मचारियोके कामके घटोंमे कमी हो। सारे संसारका अनुभव यही बताता है कि बहुत देरतक काम करनेसे काम अधिक नही होता, बल्कि वास्तवमें उस तरह काम कम ही होता है। इसके लिए केवल थोड़ासा साहस और थोड़ी पहल करनेकी जरूरत है जिससे कि यह आवश्यक सुधार स्वेच्छा और उदारतासे किया जा सके। अन्यथा यह सुधार तो हर हालतमें होकर रहेगा; किन्तु जब वह दबावसे होगा तब उसकी सारी शोभा जाती रहेगी। कर्मचारियोके लिए कामके घटे घटानेका आन्दोलन संसार-भरमें हो रहा है और उसे कोई रोक नही सकता। क्या भारतीय वाणिज्य परिषद् अथवा ऐसी ही अन्य कोई व्यापारिक संस्था इस दिशामें मार्गदर्शन करेगी?

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २२-१०-१९२५

२०५. पत्र : मगनलाल गांधीको

[२२ अक्तूबर, १९२५][1]

चि० मगनलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। भाई पुरुषोत्तमके साथ जो प्रबन्ध उचित जान पड़े सो करना। उतने पैसे रेवाशंकरभाईसे[2] लेनेका विचार है अथवा जैसी जरूरत जान पड़ेगी वैसा कर लेंगे। बच्चोंको[3] भेजनेके बारेमें विचार कर रहा हूँ। अभी तो यहाँ बीमारीका कोई हिसाब ही नहीं है।

बापूके आशीर्वाद

श्री मगनलाल खु० गांधी
सबसिडियरी ऑक्यूपेशन कोर्ट
शो ग्राउण्ड
पूना

गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ७७४५) से।
सौजन्य : राधाबहन चौधरी

२०६. पत्र : रणछोड़लाल पटवारीको

कार्तिक सुदी ५ [२२ अक्तूबर, १९२५][4]

पूज्य रणछोड़भाई,

कच्छसे किस रास्तेसे लौटूँ, यह प्रश्न उपस्थित है। [क्या] आप चाहते हैं कि मैं मोरबीके रास्ते वहाँ जाऊँ? यदि यह ठीक हो तो मोरबीमें राजनीतिक परिषद्की[5] बैठक भी बुलाऊँ? यदि आप मुझे आने देंगे तो मैं आपसे खादीके और गोरक्षाके काममें अवश्य मदद माँगूंगा। आपकी अर्थात् आपके राज्यकी नहीं। वह तो मिलनी होगी तो मिलेगी। मुझे तो आपकी ही मदद चाहिए। इसका जवाब यदि आप तारसे दें तो अच्छा हो। भुजसे वह मैं जहाँ होऊँगा वहाँ मुझे भेज दिया जायेगा।

मोहनदासके प्रणाम

१. डाककी मुहरसे।
२, रेवाशंकर झवेरी।
३. सम्भवतः साबरमती आश्रममें; आश्रमके व्यवस्थापक, मगनलाल गांधी उस समय पूनामें थे।
४. पत्रमें कच्छ-यात्राके जिक्रसे मालूम होता है कि यह सन् १९२५ में लिखा गया था।
५. काठियावाड़ राजनीतिक परिषद्।

[पुनश्च :]

मेरा दायाँ हाथ दु:खता है इससे फिलहाल यथासम्भव बाएँ हाथसे लिखता हूँ।

गुजराती पत्र (जी० एन० ४११३) की फोटो-नकल से।

२०७. भाषण : अभिनन्दनके उत्तरमें

२२ अक्तूबर, १९२५

गांधीजी 'एस० एस० रूपवती'से मांडवी जा रहे थे। द्वारकावासियोंकी विशेष प्रार्थनापर जहाज द्वारकामें रुका। गांधीजीके प्रति अपना सम्मान व्यक्त करनेके लिए और लौटते समय द्वारका आनेका अनुरोध करनेके लिए द्वारकावासियोंने अपना एक शिष्टमण्डल भेजा था। शिष्टमण्डलने अपने अभिनन्दनमें उपयुक्त विनम्रता सहित निवेदन किया कि हिन्दू धर्मके, जिसका कि द्वारका एक मान्य तीर्थ-स्थल है, हम तुच्छ प्रतिनिधिगण चाहते हैं कि आप हमें अपनी सलाह और उपदेशोंसे लाभान्वित करें।

गांधीजीने इसका उपयुक्त उत्तर देते हुए कहा कि इस बार मेरे लिए द्वारका आना सम्भव न हो, लेकिन यदि आप वास्तवमें सुधार कार्य करना चाहते हैं तो आप सभी विदेशी कपड़ोंका बहिष्कार करके सभी अवसरोंपर शुद्ध खद्दर पहनना आरम्भ करके इसकी अच्छी शुरुआत कर सकते हैं। उन्होंने कहा कि भारतके तीर्थ-स्थानोंके निवासियोंको विदेशी कपड़ेका बहिष्कार करनेमें सबसे आगे होना चाहिए। गांधीजीने यह भी कहा कि यद्यपि हिन्दू मूर्तिपूजक होते हैं, लेकिन वे वास्तवमें मूर्तिकी नहीं, अपितु उस मूर्तिमें अधिष्ठित भगवानकी शक्तिकी पूजा करते हैं। उन्होंने शिष्टमण्डलसे अपील की कि वे पूजी जानेवाली मूर्तिसे सम्बद्ध शक्तिको अपने जीवनमें उतारनेकी कोशिश करें।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, २४-१०-१९२५

१. माण्डवी जाते समय गांधीजीका जहाज रास्तेमें कुछ देरके लिए द्वारकामें रुका था।

२०८. भाषण: भुजकी सार्वजनिक सभामें[1]

२२ अक्तूबर, १९२५

आपके मानपत्रसे तो मैंने यह सोचा था कि आप अपनी सभामें अपने और अन्त्यजोंके बीच कोई हद नही बाँधेंगे, लेकिन मैंने देखा कि आपने विभाजन किया है। तब मुझे लगा कि अब मेरा स्थान अन्त्यज भाइयोंमें ही हो सकता है, क्योंकि मैंने स्थान-स्थानपर अपने आपको भंगी ही कहा है। यह दावा मिथ्याभिमानपूर्ण नही है; यह मेरे अज्ञानका स्वरूप भी नही है और न इसमें पश्चिमके प्रभावकी ही कोई बात है। यह दावा मैंने सर्वथा सेवाभावसे किया है और सो भी जन्मसे हिन्दू-धर्मका अध्ययन करके और अपने धर्मनिष्ठ माता-पिताका सावधानीसे अनुकरण करनेके पश्चात् किया है, न कि पश्चिमकी हवासे प्रभावित होकर, शरीर और शरीरीको पहचाननका मैंने अभ्यास किया है; एक प्राकृत मनुष्य शास्त्रका जितना अध्ययन कर सकता है, उतना मैंने किया है और उस अध्ययनको अनुभवमें भी उतारा है। इस अध्ययन और अनुभवके अन्तमे मैं इस दृढ़ निश्चयपर आया हूँ कि हिन्दूधर्म यदि अस्पृश्यताको बनाये रखेगा तो इससे उसका — हिन्दुओंका और हिन्दुस्तानका — नाश ही होगा। भारतमें भटकते हुए अनेक शास्त्रियों और पण्डितोंसे मिलकर तथा इसपर चर्चा करनेके बाद मैं अपने निश्चयमें और भी दृढ़ होता चला जा रहा हूँ। इसलिए आपसे स्पष्ट कहे देता हूँ कि ऐसे विचार रखनेवाला मैं यदि आपके लिए अस्पृश्य होऊँ, त्याज्य होऊँ तो आप आग्रह-पूर्वक मेरा त्याग करें और कहे कि तुम अपनी यात्रा एक दिनमें ही पूरी करके यहाँसे चले जाओ। इससे मुझे दुःख नहीं होगा, सुख मिलेगा। मैं यह समझूँगा कि कच्छके लोगोंमें आत्मसम्मान है, साहस है; बड़े कहे जानेवाले व्यक्तिके सम्मुख भी मतभेद प्रकट करते हुए कच्छी पीछे नहीं हटते। इसलिए यदि आप मुझे निकालेंगे तो यह अकेले आपके लिए ही नहीं बल्कि मेरे और अन्त्यजोंके लिए भी श्रेयस्कर बात होगी। विश्वास रखें कि आपके द्वारा मेरा त्याग किये जानेसे आपके और मेरे सम्बन्धमें कोई अन्तर नही आयेगा। आप मेरा त्याग करें तो इसमें मेरा अनादर नही है। लेकिन मुझे बुलाकर अन्त्यजोंका अनादर करना तो मेरा भारी अनादर है। मैं हिन्दू-धर्मसे ओत-प्रोत हूँ। हिन्दू धर्मके लिए जीता हूँ और हिन्दू-धर्मके लिए ही मरना चाहता हूँ। यदि मुझे आज लगे कि मेरे मरनेसे हिन्दू-धर्मका लाभ है तो जितने प्रेम और उत्साहसे मैं आज आपका आलिंगन करता हूँ, उतने ही प्रेम व उत्साहसे मृत्युका भी करूँगा। इस हिन्दू-धर्मकी सेवा करते हुए मैं अस्पृश्यताको बहुत बड़ा कलंक मानता हूँ। अन्त्यजोंको मैं अपने प्राणके समान मानता हूँ। अतएव जिस तरह 'रामायण'का अनुरागी, जहाँ रामनामका अपमान होता है वहाँसे दूर भागता है उसी तरह जहाँ

१. भुज तत्कालीन कच्छ राज्यकी राजधानी था। मानपत्र नागरवाडीमें हुई एक सार्वजनिक सभामें भेंट किया गया था। यह भाषण महादेव देसाईके कच्छ यात्रा-विवरणसे उद्धृत किया गया है।

अन्त्यजोंका अनादर हो वहाँ मैं भी खड़ा नहीं रहूँगा; वहाँसे भाग जाऊँगा; क्योंकि वहाँ मेरी आत्माको क्लेश होता है। आपने मेरे सत्याग्रहकी प्रशंसा की है तो फिर आज मैं उसका पदार्थ-पाठ पढ़ानेका बीड़ा उठाता हूँ। इसलिए आप कातें और अन्त्यजोंको अपने बीच आने दें अथवा मुझे उनके मध्य जाकर बैठने दें। लेकिन याद रखें, मेरे प्रति झूठमूठका सम्मान दिखाते हुए घर जाकर नहा लेनेकी वृत्तिसे यदि आप कुछ करेंगे तो वह उचित नहीं है। मैंने तो आपको कच्छ आनेसे पहले पत्र द्वारा प्रार्थना करते हुए सावधान कर दिया था। परिणामतः यदि आप अन्त्यजोंको अपने मध्य आने दें तो इसी निश्चयसे कि ऐसा करके आप पुण्य करते हैं, पाप नहीं; हिन्दूधर्मको स्वच्छ करते हैं, भ्रष्ट नहीं। यदि आप मानते हों कि ऐसा करना पाप है तो आप निःसन्देह मुझे उनके बीच बैठने दें। दोमें से चाहे जो करें, पर करें निश्चयपूर्वक। किसीके डर अथवा शर्मके बिना यदि आप ऐसा करेंगे तो मैं समझूँगा कि आपने मूल्यवान चाँदीके इस चरखे और चाँदीकी इस मंजूषाकी अपेक्षा कहीं अधिक मूल्यवान मानपत्र मुझे दिया है। लेकिन ध्यान रहे, आज अन्त्यजोंको आने देकर मगरोलकी[1] भाँति बादमें उनका तिरस्कार करेंगे तो आप उनकी सेवा नहीं बल्कि असेवा ही करेंगे। और यह भी कह दूँ कि आज जो सुधार आप करें सो विचारपूर्वक अपनी शक्तिका माप लेकर, स्थायी सुधारके रूपमें करें।

अब हमें दूसरा कदम उठाना है। सेनाके भीतर जिस तरह चुपचाप आन्दोलन करना पड़ता है वैसा ही हमें करना पड़ेगा। सभामें उपस्थित अधिकांश लोग चाहते हैं कि अन्त्यजोंको अपने सामने लगाई गई बाड़को नहीं लाँघना चाहिए; तो आप स्वयंसेवकोंके सामनेकी मेजको उठाकर अन्त्यजोंवाले भागमें रखनेकी अनुमति दें ताकि मैं अपने भाषणके दूसरे अंश वहाँसे सुना सकूँ। आपके प्रेम अथवा आग्रहके अधीन होकर मैं यहाँ बैठा-बैठा व्याख्यान देता रहूँ यह बात मेरे लिए दुखदायी है और यदि आप मुझे उनके बीच बैठने दें तो वह मेरे लिये सुखदायी है। अस्पृश्यताका नाश जबर्दस्ती नहीं होगा; सत्याग्रहसे होगा; प्रेमके आग्रहसे होगा। संकट सहकर और तपश्चर्यासे धर्ममें सुधार हो सकता है, दूसरे तरीकेसे नहीं। रोषसे अथवा दुखसे अथवा घृणासे नहीं होता। सत्यका विरोध करनेवाले व्यक्तिका मनसे भी बुरा न चाहे, यह सत्याग्रहीका धर्म है। आपके इस बहुमतसे मुझे दुःख नहीं होता, और उससे क्रोध तो होता ही नहीं। अब अन्य लोग जहाँ बैठे हैं वे वहीं बैठे रहें — केवल मैं ही वहाँ चला जाऊँगा; क्योंकि इस प्रसंगमें वहाँ जाना मेरा विशेष धर्म है, जैसे आश्रममें एक बालाको[2] अपने पास रखकर उसका लालन-पालन करना मेरा विशेष धर्म हो गया है, उसी तरह आज अन्त्यजोंके बीच जाकर बोलना मेरा विशेष धर्म है — आप तो जैसे बैठे हैं वैसे ही बैठे रहें, तब आप शान्तिसे सुन सकेंगे।

यदि शास्त्र और इतिहासमें यह बताया गया होता कि शासनकी बागडोर केवल रामके हाथमें ही हो सकती है तो मैं राजतन्त्रका कट्टर दुश्मन होता। लेकिन

१. सौराष्ट्रमें ७ अप्रैल, १९२५ को मंगरोलमें गांधीजीने अन्त्यजोंसे भेंट की थी।
२. लक्ष्मी, दूदाभाईकी पुत्री।

रावणकी वात करनेवाला इतिहास रामकी वात भी करता है और संसारको पुकार कर कहता है कि रावणका राज्य स्थायी नहीं रहा, रामने ही विजय प्राप्त की। राजाओंके शासनमें धर्मका प्रवेश होनेपर ही उनका राज्य चलता रह सकता है। जिसके राज्यके अन्दर एक भी व्यक्ति भूखों न मरे, जिसके राज्यमे कोई भी बालिका निर्भय होकर चारों ओर विचरण कर सके और उसपर एक भी दुराचारी कटाक्ष न कर पाये, जो राजा प्रजाको अपनी सन्तान माने और पराई स्त्रीको माँ-वहनके रूपमें जाने, जो राजा शराव न पीये, व्यसन न करे, रैयतको सुलाकर सोये और खिलाकर खाये ऐसे राजाके राजतन्त्रका मैं पुजारी हूँ। मै इसकी रट लगाये रहता हूँ। ऐसे राजा हों, इसके लिए मैं राजा व प्रजाके वीच प्रेम चाहता हूँ। जब ऐसे राजा होंगे तव देशमें अकाल और भुखमरी नही होगी, व्यभिचार नही होगा, शराबखोरी नही होगी। लेकिन आज तो राज्योमें ये सब वस्तुएँ भरी हुई हैं, इससे क्या मालूम होता है? राजा अपना धर्म भूल गये हैं — अपनी प्रजाके जान-माल और धर्मकी रक्षा करनेके धर्मको भूल गये हैं। वे स्वयं पवित्रताका पालन नही कर सके हैं। शास्त्र तो पुकारकर कहते हैं कि जिस कुलमें श्रीकृष्ण हुए उसमें भी व्यभिचार, शराव और जुएका त्रिदोष दाखिल हुआ और इसी कारण श्रीकृष्णके जीते-जी ही उस कुलका नाश हो गया। श्रीकृष्णको यादव वंशके सत्यानाशका साक्षी होना पड़ा। इसीसे कहता हूँ कि ऐसे राजा वनो जिससे कच्छकी जनताकी कोई शिकायत न रहे। राजा पवित्र और अच्छा हो तवतक तो जनता उसकी मदद करती है, न्याययुक्त शासनको चलानेमें मदद देती है, कर चुकाती है और यदि वह अत्याचारी हो तो? तो शास्त्रका कहना है कि प्रजाका धर्म यह हो जाता है कि वह सारी वात राजासे कह दे। क्योंकि यह वात ध्यानमें रहनी चाहिए कि '*यथा राजा तथा प्रजा*' वाली कहावत जितनी सच्ची है उतनी ही '*यथा प्रजा तथा राजा*' कहना भी सच है; यही वात दूसरे शब्दोंमें एक अंग्रेजी कहावतमे भी कही गई है '*आप जैसे शासनके योग्य होंगे, आपको वैसा ही शासन मिलेगा।*' इसलिए दोनोंका परस्पर एक-दूसरेपर प्रभाव पडा ही करता है। प्रजाके सत्य, शौर्य, दृढ़ताका राजापर प्रभाव हुए विना नही रहता और राजाके अत्याचार व असत्यका भी प्रजापर प्रभाव अवश्य पड़ता है। तो फिर कच्छकी साहसिक, दरिया लाँघनेवाली और पृथ्वीकी प्रदक्षिणा करके पैसा इकट्ठा करनेवाली प्रजाका क्या कर्त्तव्य है? आपने अप्रत्यक्ष रूपसे मुझसे दुखकी जो-जो वातें कही हैं वे यदि सच हैं तो सारे दु:खोंको, सब शिकायतोंको विनय व प्रेमके साथ राजाके सम्मुख रखनेमें किस वातका संकोच है? महारावसे मिले विना मैं इन सब दु:खोंपर टीका कैसे कर सकता हूँ? लेकिन यदि ये सब वातें सच हों तो मैं आपसे कहता हूँ कि इसका उपाय आपके हाथमे है। और वह उपाय अविनय अथवा अमर्यादाका नहीं बल्कि सत्य और प्रेमका है। सत्य, शौर्य और प्रेमकी त्रिवेणीका जहाँ संगम होता है वहाँ कुछ भी असम्भव नहीं होता। अपने ३० वर्षके सतर्क राजनीतिक अनुभवके आधारपर मैं आपसे कहता हूँ कि आपके पास जो शिकायतें हों उन्हें एक वार दृढ़ता, सत्य और विनयके साथ महारावके सामने रखें। मैंने जो कहा है उसे

दिलमें उतारें और उसपर अमल करे; आप देखेंगे कि मैंने आपको संजीवनी बूटी दे दी है।[1]

यदि आपको ऐसी व्यवस्था पसन्द न हो तो मैं केवल अन्त्यजेतरोकी सभामें जानेको तैयार हूँ लेकिन जहाँ अन्त्यजोंको दूर बिठाया जाता है वहाँ जानेके लिए मैं तैयार नही हूँ। इसलिए आप जो कार्यक्रम बनायें सो मेरे स्वभावको ध्यानमें रखकर बनायें। मैं कहनेकी खातिर नही, बल्कि जानबूझकर सच कहता हूँ कि आज सभाने जो किया है वह विवेकपूर्वक किया है तथा मेरे प्रति अपने प्रेमको ही व्यक्त किया है। आपने मेरा कहा माना और मेरे सुझावको स्वीकार किया, इसके लिए मैं आपका ऋणी हूँ। ऐसा करके आप मंगरोल तथा भादरणके[2] लोगोसे आगे बढ गये है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १-११-१९२५

२०९. तार : तुलसी मेहरको

[२३ अक्तूबर, १९२५ या उससे पूर्व][3]

तुम्हारी बढ़ती हुई कमजोरीकी खबर सुनकर मनको बहुत दुःख पहुँचा। तुम्हे दूध व दूसरी चीजें लेनी चाहिए। अगर वहाँ तुम्हारा पूर्ण स्वस्थ होना असम्भव हो तो स्थान बदलकर ठण्डी जलवायुमें भी जाना चाहिए।

बापू

अंग्रेजी प्रति (जी० एन० ६५२२) की फोटो-नकलसे।

१. इसके बाद गांधीजीने अगले दिन होनेवाली सभाकी व्यवस्थाके सम्बन्धमें कार्यकर्ताओंको सुझाव दिया कि वे लोगोंको आगाह कर दें कि अन्त्यज भी अन्य लोगोंके साथ बैठेंगे, लेकिन जिन्हें यह व्यवस्था पसन्द न हो उनके लिए अलग जगहका प्रबन्ध किया जायेगा।

२. गुजरातके खेड़ा जिलेमें; ११ फरवरी, १९२५को गांधीजीने एक सार्वजनिक सभामें भाषण दिया, जिसमें अन्त्यजोंको अलग बिठाया गया था।

३. महादेव देसाई द्वारा किशोरलाल मशरूवालाके नाम भेजे गये २३-१०-१९२५के पत्रमें इस तारको उद्धृत किया गया है।

२१०. भाषण : भुजकी सार्वजनिक सभामें[1]

२३ अक्तूबर, १९२५

मैं महाराव-श्रीके पास हो आया हूँ। उन्होंने मेरी बात शान्तिसे सुनी। एक कम महत्त्वकी बातके सिवा बाकी सभी बातें, सभी शिकायतें मैंने उन्हे कह सुनाईं। परिणाम क्या होगा, सो नही कह सकता। लेकिन इतना कहता हूँ कि मैंने जो सलाह कल दी है यदि आप लोग उसपर अमल करेंगे तो आपके दुःखका उपाय सीधा है। राजाओंको भी मेरी बात किसलिए सुननी पड़ती है? कारण वे सब जानते हैं कि मैं जो बात मनसे मानता हूँ वही व्यक्त करता हूँ। मेरे बोलनेमें विनय है, मेरे तीखेपनमें मिठास है; मेरे मनमे कटुता, मैल, तिरस्कार अथवा द्वेप नही है। सत्यमें स्वतः इतना बल होता है कि उसे बढ़ा-चढ़ाकर बतानेकी अथवा उसमें मिर्च-मसाला लगानेकी कोई जरूरत नही होती। कहा है कि 'सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्' अर्थात् सत्यमें प्रेम होना चाहिए, द्वेष नही होना चाहिए, हिंसा नहीं होनी चाहिए। आज तो सत्यको जाननेके बावजूद हम सत्यका दिवाला निकाल बैठे हैं। इसलिए आप डरे बिना जो-जो आपको सच लगे वह राजासे कहें — सच्ची शिकायतें करना आपका अधिकार है। इतना ही नही, यह आपका धर्म है।

गोरक्षाके प्रश्नको तथाकथित गोसेवकोंने ही बिगाड़ा है। मुसलमान लोग कुर-बानीकी खातिर जितनी गायोंकी हत्या करते हैं, हिन्दू लोग व्यापारकी खातिर उनसे कहीं सौ-गुनी अधिक गायोंकी हत्या करते हैं। हिन्दुस्तानमें बूचड़खाने केवल मुसल-मानोंके लिए ही नहीं चलते; वे सेना और चमड़ेकी खातिर चलते हैं। कसाईगिरीके फलने-फूलनेका कारण हिन्दुस्तानके करोड़पतियोंका हिन्दूधर्म सम्बन्धी अज्ञान और वैष्णव धर्मावलम्बियों तथा हमारे धर्म शिक्षकोंमें धर्मके ज्ञानकी कमी अथवा शिथिलता है। गायें हिन्दुओंकी ही हैं, इसलिए गाय बेचनेवाले भी हिन्दुओंके सिवा दूसरे कोई नही हैं। लोग आज जो जूता पहनते हैं सो ज्यादातर मारे हुए पशुओंके चमड़ेका ही होता है, और यह इसलिए कि मरे हुए पशुके चमड़ेको आसानीसे नहीं पकाया जा सकता। यदि इन पशुओंकी रक्षा करनी हो तो करोड़पतियोंको दूधके और चमड़ेके व्यापारको अपने हाथमें लेना ही होगा। यह साध्य बन सके, इसीलिए मैं आप सबसे चन्दा माँगता हूँ।

आप चाहते हैं कि मैं जो चन्दा इकट्ठा करूँ उसका उपयोग केवल कच्छमें ही हो। केवल कच्छके लिए मैं आपके पास क्यों आऊँ? इसके लिए तो आप स्वयं पैसा इकट्ठा कर सकते हैं। मेरे हाथसे जो पैसा इकट्ठा होता है वह हिन्दुस्तानके गरीबोंके लिए इकट्ठा होता है। १९२१में जब हमने बम्बईमें ३८ लाख रुपया इकट्ठा किया था तब क्या कच्छी लोगोंने अपने पैसेका उपयोग कच्छमें करनेकी शर्त रखी

१. महादेव देसाईके यात्रा विवरणसे उद्धृत।

थी? ऐसी शर्त रखकर यदि मेरे कच्छी मित्र मुझे पैसे देते हों तो मैं उनसे एक कौड़ी भी न लूँगा। मैं तो हिन्दुस्तानकी गरीब गायोंके लिए पैसा माँगता हूँ, गरीब बहनोंके शीलकी रक्षाके लिए पैसा माँगता हूँ, भूखों मरनेवाले करोड़ों व्यक्तियोंका पेट भरनेके लिए पैसे माँगता हूँ। यदि आप इस स्वल्प दृष्टिवाली नीतिका आग्रह करेंगे कि "कच्छीका पैसा कच्छमें" तब तो पृथ्वी रसातलमें चली जायेगी। आप मुझे जो पैसा देते हैं मुझमें उसका उपयोग करनेकी शक्ति अथवा विवेक है या नहीं —यदि आपके मनमें इस विषयमें सन्देह हो तो आप मुझे कुछ भी न दें। आप याद रखें कि कच्छ तो हिन्दुस्तानमें बिन्दु-मात्र है और इस बिन्दुको चाहिए कि वह विशाल हिन्दुस्तानके लिए त्याग करे अपनी आवश्यकताके लिए आप अपने नामसे पैसा इकट्ठा करें। मेरे नामसे आप इकट्ठा करें, यह बात आपको शोभा नहीं देती और न मुझे देती है। मुझे मारवाड़ियोंने पैसा दिया है सो क्या उसका उपयोग मारवाड़में ही करनेकी शर्तके साथ दिया है। उन्होंने मुझे मद्रासमे हिन्दीके प्रचारके लिए पैसा दिया है—एक लाख रुपया दिया है। गोरक्षाके लिए भी वे आज प्रचुर धन दे रहे हैं। उन्होंने बिहारके लिए ढेरों दिया। मैं कल ही बिहारके मारवाड़ियोंसे ढेरों रुपया लेकर आया हूँ। उनमें से किसीने भी मुझसे यह नहीं कहा कि अमुक पैसा मारवाड़में लगाना। ऐसी शर्त मैंने अत्यन्त दुःखके साथ कच्छियोंके मुखसे ही सुनी है। समस्त हिन्दुस्तानको पैसा देना आपका धर्म है; कारण, उससे आप पैसा प्राप्त करते हैं, उसके साथ व्यापार करके ही पैसा प्राप्त करते हैं। उसका बदला तो आपको देना ही चाहिए।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १-११-१९२५

२११. ईश्वर-भजन

२५ अक्तूबर, १९२५

एक पारसी भाईने ईरानसे एक पत्र[1] लिखकर कुछ गम्भीर प्रश्न किये हैं। मैं उन्हें यहाँ उन्हींकी भाषामें दे रहा हूँ। उन्होंने दो-तीन जगहोंपर अंग्रेजी शब्दोंका भी प्रयोग किया है। मैं यहाँ उनके पर्याय ही दूँगा।

ईश्वरकी इच्छाके बिना एक पत्ता भी नहीं हिल सकता तो फिर मनुष्यके हाथमें करनेको बाकी ही क्या रह जाता है, यह प्रश्न अनादि है और सदा उठता ही रहेगा। लेकिन इसका जवाब भी तो सवालके अन्दर है; क्योंकि सवाल पूछनेकी शक्ति भी तो ईश्वरकी ही दी हुई है। जिस प्रकार हम लोग अपने किन्हीं नियमोंके अधीन चलते हैं, उसी प्रकार ईश्वर भी किसी नियमके अनुसार चलता है। हमारे नियम-कानून और ज्ञान अपूर्ण होते हैं, इसलिए हम लोग अपने कानूनोंका सविनय-अविनय

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

भंग भी कर सकते हैं। लेकिन ईश्वर तो सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान है और इसलिए वह अपने कानूनको कभी भंग नही करता। उसके कानूनमे न कोई संशोधन होता है, न कोई परिवर्तन। उसके नियम-कानून अटल हैं। उसने हमें अनेक विचार करने-की और उसमें से कुछ पसन्द करनेकी, अच्छा-बुरा समझनेकी शक्ति दी है। हमारी स्वतन्त्रता इसी बातमें है। यह स्वतन्त्रता बहुत ही कम है। इतनी कम कि एक ज्ञानीको यह कहना पड़ा कि यह स्वतन्त्रता जहाजके तख्तेपर घूमने फिरने जितनी स्वतन्त्रतासे भी कम है। वह चाहे जितनी कम क्यों न हो, है तो आखिर स्वतन्त्रता ही। कम होनेपर भी वह इतनी अवश्य है कि मनुष्य इसके द्वारा मुक्ति प्राप्त कर सकता है। दैव और पुरुषार्थका युग्म कभी एक दूसरेका साथ नही छोड़ता। लेकिन दैव मुक्तिके पथपर चलनेवालोंके कभी आड़े नहीं आता है।

इसलिए हमे अब इसी बातका विचार करना चाहिए कि ईश्वरकी सेवा किस प्रकार की जाये, उसका भजन कैसे किया जाये। ईश्वरकी सेवा एक ही प्रकारसे हो सकती है। गरीबोंकी सेवा ही ईश्वरकी सेवा है। एक चींटीकी भी सेवा करें तो वह ईश्वरकी सेवा होगी। लेकिन चींटियोंके घरोंके पास आटा डालनेसे उनकी सेवा न होगी ईश्वर चींटीको कन और हाथीको मन देता है। चींटीको भी जो जानबूझ कर नही कुचलता है, वह उसकी सेवा करता है। इस तरह जो ज्ञानपूर्वक चींटीको भी दुःख नहीं पहुँचाता वह अन्य प्राणियोंको और अपनी ही जातिके प्राणी मनुष्यको कभी दुःख नही पहुँचायेगा। हर जगह और हर समय सेवाका प्रकार बदलता रहता है; यद्यपि सेवावृत्ति एक ही बनी रहती है। दुःखी मनुष्यकी सेवा करनेमें ईश्वर ही की सेवा होती है; लेकिन उसमें विवेक होना चाहिए। भूखे मनुष्यको भोजन देनेसे सेवा ही होगी, यह मान बैठनेका कोई कारण नही है। जो मनुष्य आलसी है, और दूसरेके भरोसे बैठा रहकर भोजनकी आशा रखता है, उसे भोजन देना पाप है। उसे काम देना पुण्यका काम है और यदि वह काम करनेके लिए तैयार नही है तो उसे भूखा ही रहने देनेमें उसकी सेवा होगी। ईश्वरका नाम जपना, पूजा-पाठ करना आवश्यक है; क्योंकि उससे आत्माकी शुद्धि होती है और जिस मनुष्यकी आत्मा शुद्ध है वह अपना मार्ग स्पष्ट रूपसे देख सकता है। लेकिन केवल पूजा-पाठ ही ईश्वरकी सेवा नही है। यह सेवाका साधन है; इसीलिए गुजराती कवि नरसिंहने गाया है:

"शुं थयुं स्नान पूजाने सेवा थकी
शुं थयुं माल ग्रही नाम लीवे[१]"

इस उत्तरमे से तीसरे प्रश्नका भी उत्तर मिल जाता है। तीसरा प्रश्न है जीवन-का हेतु? अपनेको पहचानना है। नरसिंहकी भाषामें कहे तो:

"ज्यां लगी आतमा तत्त्व चीन्यो नहि
त्यां लगी साधना सर्व जूठी"

और आत्मतत्त्व-आत्मज्ञान, जीव-मात्रके साथ अर्थात् ईश्वरके साथ ऐक्य, तन्मयता सिद्ध

१. स्नान और पूजा-अर्चा और माला लेकर नाम जपनेसे क्या होता है।

करनेसे ही प्राप्त होता है। जीव-मात्रके साथ ऐक्यका अर्थ है उनके दुखोंको समझकर स्वयं दुखी होना और उनके दु:खका निवारण करना।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २५-१०-१९२५

२१२. टिप्पणियाँ

चरखा संघमें अपने नाम दर्ज करवाएँ

जो लोग कांग्रेसमें स्वेच्छासे अपना कता हुआ सूत दिया करते थे उन्हे चाहिए कि अब वे अपने नाम चरखा सघको भेज दें। इस वर्गके सब लोग अपनी इच्छानुसार हर महीने एक हजार गज सूत अथवा वर्षभरका १२,००० गज सूत एक ही बारमें भेज सकते हैं। डाक खर्च एक बड़ा खर्च है। उसमें जितनी बचत की जा सके, की जानी चाहिए। इसलिए सूतका एक बारमें भेजा जाना ही अभीष्ट है। और अनेक लोगोंका सूत एक ही पार्सलमें इकट्ठा करके भेजा जाना भी अभीष्ट है। कुछ इसी विचारसे मुझे श्री दास्तानेने रास्तेमें पड़नेवाले भुसावल स्टेशनपर ५७ सदस्योंका सूत नाम-धाम सहित दिया। अब सभी स्थानोंसे सूत आना शुरू हो जाना चाहिए।

खादीका अर्थ

जिस तरह कितने ही लोग मोटे कपड़ेको, यद्यपि वह मिलका कता व बुना हो, खादी समझकर पहनते हैं उसी तरह कुछ अन्य लोग ऐसे भी दिखाई पड़ते हैं जो खादीको हाथसे कते सूतका मोटा व खुरदरा कपड़ा मानते हैं। यह बात तथ्यपूर्ण नही है। हाथकते सूतका हाथसे बुना हुआ कपड़ा, फिर चाहे वह कितना ही महीन क्यों न हो, खादी है। खादी रुई, रेशम अथवा ऊनकी हो सकती है। जिसे जैसी खादी अनुकूल पड़े, वैसी पहने। आन्ध्रकी खादी काफी महीन होती है। आसाममें थोड़ी रेशमी खादी मिलती है और काठियावाड़में ऊनकी — मतलब यह कि खादीकी विशेषता और खासियत उसके हाथसे कते और हाथसे बुने होनेमें है। सामान्य रूपसे हाथकी खादी मोटी व खुरदरी देखनेमें आती है। इससे कुछ लोग खादीके बारेमें भूलसे यही मानते हैं कि वह ऐसी ही होती है। ६० से ८० अंकके सूतकी महीन खादी भी बनती है तथापि जिन्होंने मोटी खादीका उपयोग किया है, वे जानते हैं कि खुरदरी मोटी खादीका स्पर्श एक तो शरीरको सुखकर लगता है, दूसरे खुरदरी होनेसे वह त्वचाकी रक्षा भी अधिक करती है।

कानपुरका अधिवेशन

कानपुर अधिवेशनके[1] लिए अब बहुत ज्यादा दिन शेष नहीं हैं। स्वागत समितिके सम्मुख अप्रत्याशित कठिनाइयाँ आ गई थी। जमीन मिलनेमें ही समितिको जो

१. कानपुर कांग्रेस दिसम्बर १९२५ के अन्तिम सप्ताहमें हुई थी।

कठिनाई हो रही थी वह अब दूर हो गई है। लेकिन जितना समय बाकी है उतने समयमें पूरी तैयारी करनेके लिए बहुत सारे स्वयंसेवकों और धनकी मददकी जरूरत होगी। मुझे उम्मीद है कि स्वागत समितिको यह मदद मिलेगी और काम शीघ्रतासे चलेगा।[1]

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २५-१०-१९२५

२१३. पत्र: तुलसी मेहरको

कार्तिक सुदी ८ [२५ अक्तूबर, १९२५][2]

चि० तुलसी मेहर,[3]

तुम्हें बुखार आनेकी बात मैंने सुनी थी लेकिन मैंने उसकी कोई चिन्ता नहीं की थी। अब भाई किशोरलाल लिखते हैं कि तुम्हारा शरीर अत्यन्त दुर्बल हो गया है और संभल नहीं रहा है, फिर भी तुम दूध रहित आहारसे चिपके हुए हो। उस पत्रके मिलनेपर मैंने तुम्हें तार[4] तो भेज ही दिया था। तुमने दूध शुरू कर दिया होगा। कोई व्रत तो नहीं लिया है न? दूध छोड़नेके प्रयोग मुझे पसन्द हैं, लेकिन जबतक उस प्रयोगको मैं सफल नहीं बना सकता तबतक साथियोंके आरोग्यको जोखिममें डाल देनेकी बातसे मैं सहमत नहीं हो सकता। इसलिए तुम दुर्बल हो जानेके बावजूद दूधके त्यागसे चिपके रहो, यह बात बरदाश्त नहीं की जा सकती। तुमने दूध शुरू न किया हो तो कर देना। अभी तो दूध और फलपर ही रहना। जैसे-जैसे शरीरमें ताकत आती जाये वैसे-वैसे गेहूँ, चावल आदि लेना। यदि दस्त ठीक तरहसे न होता हो और जरूरत जान पड़े तो किसी विशेष ठण्डे स्थानपर जाकर रहो।

मुझे ब्योरेवार उत्तर देना। तुम्हें ईश्वर जल्दी स्वस्थ करे।

साथका पत्र शान्ति-मेनलीको देना। जवाब माण्डवी लिख भेजोगे तो मुझे मिल जायेगा। मैं आज भुज छोड़नेवाला हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (जी० एन० ६५२१) की फोटो-नकलसे।

१. "टिप्पणियाँ", २९-१०-१९२५ का उपशीर्षक 'आगामी कांग्रेस अधिवेशन' भी देखिए।

२. डाककी मुहरसे।

३. एक नेपाली रचनात्मक कार्यकर्त्ता।

४. देखिए "तार: तुलसी मेहरको", २३-१०-१९२५ या उससे पूर्व।

२१४. पत्र : फूलचन्द शाहको

कोटडा, कच्छ
रविवार
[२५ अक्तूबर, १९२५][1]

भाईश्री ५ फूलचन्द,

तुम्हारा पत्र मिला। १००० रुपये तो मिल ही गये होंगे। जबतक गोंडलकी[2] जनता स्वयं कुछ नही करती तबतक तुम और मैं भी उसके लिए अधिक कुछ नहीं कर सकते।

एक चरित्रहीन परिवारकी दूसरा कोई क्या मदद कर सकता है? भाई शिवजी[3] के सम्बन्धमें कुछ हो सकता है, उसका कारण यह है कि वे जिन प्रवृत्तियोंसे सम्बद्ध हैं उनके प्रबन्धमें हमारा हाथ है। [परन्तु] वैसी सस्था चलानेवाले अन्य लोगोंके बीच पड़नेका हमें अधिकार नहीं। हममें चरित्रविजयजीके मामलेमें हस्तक्षेप करनेकी शक्ति उतनी नही है।

हम संसारके काजी नही बन सकते। इसलिए मैं चाहता हूँ कि तुम गोंडल अथवा ऐसे राज्योंके बारेमें फिक्र न करो। संसारको सुधारनेका सबसे अच्छा रास्ता यह है कि हम खुद अपनेमें सुधार करें। ठीक यही है कि मनुष्य अनायास प्राप्त धर्मको स्वीकार करे। यदि मेरा यह कहना ठीक हो तो फिर मैं समझता हूँ कि हमें गोंडलके बारेमें धीरज रखना चाहिए। इस बारेमें तुम मुझसे जब मिलोगे तब अधिक चर्चा करेंगे।

इसके अलावा तुम्हारे पत्रसे ऐसा अनुमान होता है कि गोंडलके दोषोंके बारेमें मेरे पास बहुत ज्यादा प्रमाण इकट्ठे हो गये हैं, तुम ऐसा मानते हो।

ऐसी तो कोई बात नहीं है। मेरे पास कोई भी प्रमाण नहीं है। मैंने तो समितिके[4] आगे यह कहा था कि मैं गोंडलके शासकसे मिलनेके लिए जितने प्रयत्न कर सकता था सो कर चुका हूँ, लेकिन मैं उसमें सफल नही हुआ हूँ। इस समय मैं तात्कालिक उपाय एक ही जानता हूँ और वह यह है कि जो सेवक हैं, उन्हें अपनी शक्ति बढ़ानी चाहिए। इससे भविष्य सुधरेगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० २८२८) की फोटो-नकलसे।
सौजन्य: शारदाबहन फू० शाह

१. इस तारीखको गांधीजी कोटडामें थे।
२. काठियावाड़की एक तत्कालीन देशी रियासत।
३. मढडा काठियावाड़में, तीन आश्रमोंके संचालक।
४. सम्भवतः काठियावाड़ राजनीतिक परिषद्की कार्यकारिणी समिति।

२१५. पत्र: देवचन्द पारेखको

सोमवार [२६ अक्तूबर, १९२५][1]

भाई देवचन्दभाई,

मुझे तुम्हारा उपजातियोंके बारेमें लिखा पत्र मिला है। हम थोड़े ही समयमें कहीं-न-कहीं मिलनेवाले तो हैं ही। उस समय तुम्हारे मसौदेके बारेमें थोड़ी बातें करके बादमें जो उचित होगा सो करेंगे।

मैंने पटवारीसे एक निजी पत्र लिखकर कहा है कि यदि वे सहमत हों तो मैं मोरबी जाते हुए आश्रममें रुक सकता हूँ और वहाँ समितिकी बैठक बुलाई जा सकती है। जवाब अभी आया नहीं है। आ जाना चाहिए था। यदि नहीं ही आया तो फिर मैं जामनगर होता जाऊँगा। जामनगरमें समितिकी बैठक नहीं की जा सकेगी। ऐसा लगता है कि अब तो समय भी नहीं रहेगा। इसलिए समितिकी बैठक आश्रममें ही करनी पड़ेगी। मुझे आश्रममें ७ तारीखतक पहुँच ही जाना चाहिए।

इस बारेमें यदि तुम्हें कोई सुझाव देना हो तो माण्डवी लिखना। मैं २९, ३० को माण्डवी रहूँगा, रविवार और सोमवारको अँजारमें।

मोहनदासके वन्देमातरम्

गुजराती पत्र (जी० एन० ५७२३) की फोटो-नकलसे।

२१६. पत्र: मणिबहन पटेलको

सोमवार [२६ अक्तूबर, १९२५][2]

चि० मणि,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हारे जल जानेकी बात भी सुनी। अब तो थोड़े ही दिनोंमें वहाँ आना है, इसलिए मिलेंगे तब बातें करेंगे। हाथ बिलकुल अच्छा हो गया होगा। डाह्याभाईके साथ लम्बी बातचीत हुई है। आजकल ही में फिर बात करूँगा। वहाँ पहुँचनेसे पहले किसी निश्चयपर पहुँच जायेंगे। तुम्हारे लिये मैंने तो निश्चय कर ही लिया है।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो — मणिबहेन पटेलने

१. पत्रमें, गांधीजीने देवचन्द पारेखको माण्डवी (कच्छ) उत्तर देनेके लिए कहा है। वे ३० और ३१ अक्तूबरको वहाँ थे। पिछला सोमवार २६ अक्तूबरको पड़ा था।

२. साधन-सूत्रके अनुसार।

२१७. टिप्पणियाँ

ऊनी या सूती

एक मित्र पूछते हैं कि पहाड़ी लोग, जो सूती कपड़ेका कभी इस्तेमाल ही नहीं करते हैं और जिनके पास बहुत-सी ऊन रहती है और जो ऊनके ही कपड़े पहनते हैं, क्या वे सूतके बजाय कता हुआ ऊन भेजकर कांग्रेसके सदस्य बन सकते हैं। पहाड़ी लोग कता हुआ ऊन भेजकर अवश्य ही कांग्रेसके सदस्य बन सकते हैं। रुईका महत्त्व नहीं बल्कि हाथ-कताईका है। और मैं आशा करता हूँ कि कांग्रेसके जो कार्यकर्त्ता पहाड़ी इलाकोंमें भरसक काम कर रहे हैं, ऊन कातनेवालोंके नाम कांग्रेस और अखिल भारतीय चरखा संघमें दर्ज करायेंगे।

एक कातनेवालेकी कठिनाई

एक पत्र-लेखक लिखते हैं:

> अखिल भारतीय चरखा संघके चन्देका सूत भेजनेमें जो डाक खर्च आता है, वह सूतके दामोंसे भी ज्यादा पड़ जाता है। क्या इस खर्चको बचानेका कोई रास्ता नहीं है? क्या सब पैकेट रजिस्ट्री कराके ही भेजने चाहिए? यदि नहीं तो क्या वे बैरंग भेज दिये जायें?

अहमदाबादके प्रस्तावके अनुसार जब सूत अ० भा० खादी-संघको भेजा जाता था तभी इस आपत्तिपर विचार कर लिया गया था। अभी या कभी भी सारा-का-सारा डाकखर्च बचा लेना तो असम्भव मालूम होता है। लेकिन आज भी बहुत कुछ बचाया जा सकता है। सूतके पैकेटोंको रजिस्ट्री कराके भेजनेकी कुछ भी आवश्यकता नहीं है। और बैरंग पैकेट भेजनेसे भी काम नहीं चलेगा। डाकखर्च तो सूत भेजनेवालोंको ही देना होगा। लेकिन इसकी कोई वजह नहीं मालूम होती है कि हरएक सदस्य अपना सूत अलग-अलग क्यों भेजे। हरएक गाँवमें या मुहल्लेमें जहाँ सदस्य एक दूसरेके नजदीक-नजदीक रहते हों, वहाँ उनमें से एक शख्स सब सूत एक जगह जमा कर ले और फिर सारा ही एक पार्सलमें बाँधकर भेज दे। यदि उनमें से कोई काम करनेके लिए आगे बढ़े और उसकी जवाबदेही अपने सिर ले ले तो यह आसानीसे हो सकेगा। और सालाना चन्देका बारह किश्तोंमें अलग-अलग भेजना भी जरूरी नहीं है। जिन्हें काफी समय मिलता है, वे एक महीनेमें ही १२,००० गज सूत कातकर उसका एक पार्सल बनाकर भेज सकते हैं। या फिर यदि चाहें तो उतनी किश्तोंमें भी भेज सकते हैं जितनीमें उन्हें आसानी मालूम हो। अब प्रश्न यह है कि इसमें रोजाना नियमपूर्वक कातनेकी बात कहाँ रही। चन्दा दे देनेपर भी रोजाना नियमपूर्वक कताई करनी चाहिए और इस प्रकार जो सूत तैयार हो, वह खुद कातनेवालेके अपने उपयोगमें आ सकता है। हाथकता १२,००० गज

सूत भेजनेके कर्त्तव्यसे रोजाना नियमपूर्वक कातनेका कर्त्तव्य भिन्न है। और राष्ट्रीय दृष्टिसे इसके आर्थिक पहलूपर विचार किया जाये तो भी यह आवश्यक है कि डाक-खर्च बचानेके लिए जितनी भी जल्दी हो सके १२,००० गज सूत कात देना चाहिए। मुझे आशा है कि कुछ समयके बाद यह डाकखर्च बचानेके लिए सूत जमा करनेवाले उपयुक्त केन्द्रोंकी स्थापना की जायेगी।

हजार रुपयेका इनाम

गोरक्षाके विषयपर एक पाठ्य पुस्तकका होना आवश्यक पाया गया है। एक अमेरिकी मित्र गोरक्षाके प्रश्नमें बड़ी दिलचस्पी ले रहे हैं। उन्होंने मुझसे इस विषय-की एक पुस्तक माँगी थी। मुझे ऐसी कोई पुस्तक नहीं मिली जिसमें उन सब बातोंका पूरा-पूरा वर्णन होता जो वे जानना चाहते हैं। इसलिए, मैं श्री रेवाशंकर जगजीवनके पास गया और उनसे पूछा कि क्या आप गोरक्षापर निबन्ध लिखनेके लिए भी कोई इनाम निकालेंगे? तो इस विषयपर सबसे उत्तम निबन्धके लेखकको वे कृपापूर्वक एक हजार रुपया इनाम देनेके लिए राजी हो गये हैं। शर्तें ये हैं: ३१ मार्च १९२६ को या उसके पहले अखिल भारतीय गोरक्षा मण्डलके पास सत्याग्रहा-श्रम, साबरमतीमें सब निबन्ध पहुँच जाने चाहिए। वह अंग्रेजी, संस्कृत या हिन्दी इनमें से किसी एक भाषामें लिखा जा सकता है। उसमें गोरक्षाका मूल, उसका अर्थ और उसकी उलझनों और फलितार्थोंपर विचार किया गया हो, और जो-कुछ कहा जाये उसके समर्थनमें अधिकांश ग्रन्थोंके प्रमाण दिये जाने चाहिए। उसमें शास्त्रोंकी परीक्षा भी करनी चाहिए और यह मालूम करना चाहिए कि गोरक्षामें रुचि रखने-वाली संस्थाएँ यदि डेरी और चर्मालय खोलें, तो उसके लिए शास्त्रोंमें कोई निषेध तो नहीं किया गया है। भारतमें गोरक्षा कार्यका इतिहास भी देना चाहिए और भारतमें समय-समयपर गोरक्षाके लिए किन-किन उपायोंका अवलम्बन किया गया, यह भी दिखाना चाहिए। भारतके चौपायोंकी संख्या दिखानेके लिए उसके आँकड़े देने चाहिए और चरागाहके प्रश्नकी परीक्षा की जानी चाहिए और हिन्दुस्तानमें चरागाहके लिए जमीनके सम्बन्धमें सरकारकी नीतिका क्या असर होता है; यह भी लिखना चाहिए कि गोरक्षाके लिए क्या-क्या उपाय करने चाहिए। मैं आचार्य आनन्दशंकर ध्रुव और श्री सी० वी० वैद्यसे इस लेख प्रतियोगिताके परीक्षक बननेके लिए अनुरोध कर रहा हूँ। इन शर्तोंमें यदि तबदीली करनी आवश्यक मालूम होगी तो इसके प्रकाशित हो जानेपर १५ दिनके भीतर ही वह की जा सकेगी, ताकि जो मित्र गोरक्षाके विषयमें दिलचस्पी ले रहे हैं, उनकी राय भी मुझे अखिल भारतीय गोरक्षा मण्डलके दृष्टिकोणसे मालूम हो जायेगी और उसका उपयोग भी किया जा सकेगा। यदि १५ दिनके अन्दर शर्तोंमें कोई तबदीलीकी घोषणा न हो तो इन्हीं शर्तोंको आखिरी शर्त माना जाये।

आगामी कांग्रेस अधिवेशन

आगामी कांग्रेस अधिवेशनकी तैयारियोंके सिलसिलेमें कानपुरको असाधारण कठिनाइयोंका अनुभव करना पड़ रहा है, लेकिन सौभाग्यसे कठिनाइयाँ पार भी की

जा रही है। अधिवेशनके लिए अपेक्षित जमीनको अन्तिम रूपसे मुहैया करनेकी कठिनाई अभी-अभी तय हुई है। फिर वहाँ पार्टीमें कुछ आन्तरिक झगड़े भी हैं। मैं आशा करता हूँ कि डॉ० मुरारीलाल और उनकी समितिको आदमियोंकी और धनकी — सभी तरहकी वांछित मदद मिलेगी। कांग्रेस अधिवेशनोंकी सफलता बहुत हदतक स्वागत समितिके सदस्योंकी लगन, बुद्धिमत्ता होशियारी और साधन-सम्पन्नतापर निर्भर करती है, और समूची स्वागत समितिकी सफलता स्थानीय लोगोंके सक्रिय सहयोग और सद्भावपर निर्भर है। मुझे आशा है कि कानपुरकी स्त्रियाँ यह याद रखेंगी कि कांग्रेसके लम्बे और विषम इतिहासमें प्रथम बार भारतकी एक बेटी[1] कांग्रेसके अधिवेशनकी अध्यक्षता करने जा रही है। इस अधिवेशनमें महिला प्रतिनिधियों और दर्शकोंके विशेष रूपसे अधिक संख्यामें आनेकी सम्भावना है। मैं आशा करता हूँ कि इनकी जरूरतों और आरामका ध्यान रखनेके लिए योग्य महिला स्वयंसेवकोंका दल भी वहाँ होगा।

अ० भा० चरखासंघके सदस्योंसे

मेरा विचार प्रति सप्ताह उन सदस्योंके नाम प्रकाशित करनेका है, जो अपने हिस्सेका सूत भेज चुके हों। यदि अ० भा० चरखा संघ नामोंकी लम्बी सूची प्रति सप्ताह न दे सके तो फिर और समयके अन्तरसे मैं उसे प्रकाशित करूँगा। संघकी तरफसे चन्देकी यही रसीद होगी। इस योजनासे न केवल कामके सुचारु रूपसे चलनेमें मदद मिलेगी, वरन् डाकखर्च बचेगा और केन्द्रीय कार्यालयका रोजमर्राका काम भी कुछ कम हो जायेगा। इन स्तम्भोंमें जिन्हें अपने नाम चन्दा भेजनेवालोंमें छपे न दिखें, उनको सीधे केन्द्रीय कार्यालयमें शिकायत भेजनी चाहिए। अपना सूत भेजते समय सदस्योंको अपना पूरा नाम, पूरा पता, तहसील और कांग्रेस प्रान्त, सदस्यता वर्ग सभी लिखनेकी सावधानी बरतनी चाहिए और यह भी लिखना चाहिए कि सदस्य कांग्रेसका भी सदस्य बनना चाहता है या नहीं। यह ध्यान रखना चाहिए कि कांग्रेसके सदस्य बननेके लिए किसी अतिरिक्त चन्देकी जरूरत नहीं है। इस प्रकार स्वयं काता हुआ २००० गज सूत भेजनेसे प्रेषक चाहे तो संघके साथ-साथ कांग्रेसका भी सदस्य बन सकता है। सूतकी हर लच्छीके साथ एक कार्ड लगाना चाहिए जिसमें सूतकी कुल लम्बाई, फिरकीकी गोलाईकी माप, सूतका वजन, उसका अंक, रुईकी किस्म आदिका विवरण होना चाहिए और यह भी बताना चाहिए कि सूत चरखेपर काता गया है या तकलीपर। यदि सदस्य ये सब बातें ठीक-ठीक लिखनेकी सावधानी बरतेंगे, तो वे राष्ट्रका काफी समय बचायेंगे।

नकली खादी

एक मित्रने किसी हिन्दुस्तानकी मिलमें बुनी हुई नकली खादीके थानका एक लेबिल निकालकर मुझे भेजा है। लेबिलपर एक चरखा छपा हुआ है। और उसके पास ही पूनियोंसे भरी हुई एक टोकरी रखी हुई है और सूतसे लपेटी कुछ फिरकियाँ उसके सामने रखी हुई हैं। ये पत्र-लेखक महोदय लिखते हैं कि ऐसी खादी करीब-

१. सरोजिनी नायडू।

करीब सभी हिन्दुस्तानी मिलोंमें तैयार की जाती है और जापान भी ऐसा ही माल तैयार करके यहाँ भेजता है। वे कहते हैं कि उन गरीब लोगोंको जो समझते हैं कि उन्हे खादी पहनना चाहिए, जब माँगनेपर खादी जैसा लगनेवाला यह कपड़ा दिया जाता है और जबसे वे उसपर चरखा छपा देखते हैं तो बिना सन्देह किये उसे खरीद लेते हैं, और मनमें यह मानकर खुश होते हैं कि चलो हमने भी देशकी गरीबी दूर करनेमें कुछ योगदान दिया है। यह बड़े ही दुःखकी बात है कि मिल-मालिकोंमे लेशमात्र भी स्वदेशाभिमान नही है। नफा उठानेके लिए या अब यों कहें कि मिलोंको कायम रखनेके लिए वे राष्ट्रकी आकांक्षाका कुछ खयाल नही करते। और फिर भी ऐसे लोगोंकी कमी नही है जो कि भारतीय मिलोंकी सहायतासे विदेशी कपड़ेका बहिष्कार सफल बनानेकी आशा रखते हैं। इसमें उनका यह मानना बड़ी भारी भूल है कि खादी उद्योगकी स्थिति व्यावसायिक दृष्टिसे सुदृढ़ हुए बिना भी मिलोंका राष्ट्रीय हितकी पूर्तिके लिए उपयोग किया जा सकता है। मुझे इसमें कोई सन्देह नही है कि एक दिन सभी मिले राष्ट्रके हित-साधनके कार्यमें योगदान देंगी। लेकिन जबतक खादी, सारी दुनियाके विरोधके बावजूद अपनी स्थिति सुदृढ़ नही कर लेती, अर्थात् दूसरे शब्दोंमे कहें तो जबतक आम जनताकी रुचिमें इतना क्रान्तिकारी परिवर्तन नही आ जाता कि वे खादीके सिवा और दूसरा कपड़ा पहननेसे ही इनकार कर दे, और इतने होशियार हो चुके हों कि सिर्फ देखकर ही असली और नकली खादीको पहचान सकें। तबतक वह दिन कभी नहीं आयेगा।

पतेमें रद्दोबदल

अखिल भारतीय गोरक्षा मण्डलके साथ जो पत्र-व्यवहार हो वह मण्डलके सचिवको बम्बई नहीं, सत्याग्रहाश्रम, साबरमतीके पतेसे भेजा जाये।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, २९-१०-१९२५

२१८. प्रश्नोत्तर

जब मैं लखनऊमे था, वहाँके 'इंडियन डेली टेलीग्राफ' के सहायक सम्पादकने मुझे उत्तर देनेके लिए एक प्रश्नमाला दी थी। वे प्रश्न बड़े दिलचस्प हैं, इसलिए मैं उनमें से सबसे महत्त्वके प्रश्नोंको अपने उत्तरोंके साथ यहाँ प्रकाशित कर रहा हूँ।

१. क्या आप एक साल या किसी निश्चित समयके अन्दर ही अन्दर सामूहिक सविनय अवज्ञा आन्दोलन आरम्भ करनेका विचार रखते है?

अभी तो मैं ऐसी कोई आशा नहीं रखता हूँ कि निर्धारित किसी समयके अन्दर ही अन्दर मैं सामूहिक सविनय अवज्ञा आन्दोलन आरम्भ कर सकूँगा।

२. क्या आप इस सिद्धान्तको मानते हैं कि परिणामसे ही साधनोंका औचित्य सिद्ध होता है?

मैंने इस सिद्धान्तको कभी नहीं माना।

३. एक साल पहले आपके बारेमें यह कहा गया था कि आप सविनय अवज्ञा आरम्भ करना चाहते हैं और एक बार यदि आपने उसका आरम्भ कर दिया, फिर छुट्पुट हिंसापूर्ण दंगे हो जानेपर भी आप उसको जारी रखेंगे। जनताके लिए सम्पूर्ण अहिंसाका पालन करना असम्भव होनेके कारण क्या अब आप कुछ अंशोंमें (आपकी अपनी शक्तिभर कमसे-कम) हिंसा की भी जोखिम उठाकर सविनय अवज्ञा आरम्भ करेंगे?

एक साल पहले मैंने जो-कुछ कहा था और आज भी जिसे मैं दुबारा कहना चाहता हूँ वह यह है कि अब मैं जो भी कदम उठाऊँगा, मुझे आशा है कि अब उसमें अगर-मगरकी कोई बात नही होगी, वह बिलकुल पक्का और अडिग होगा। जब कभी मैंने सविनय अवज्ञा आन्दोलन रोका है, वह हिंसात्मक उपद्रवोके आरम्भ हो जानेके कारण नही, बल्कि यह पता चलनेपर कि ये हिंसात्मक उपद्रव उन कांग्रेसियों द्वारा, जिन्हे इस सम्बन्धमें अपने कर्त्तव्यका ज्यादा ज्ञान होना चाहिये था, शुरू किये गये थे या उन्ही कांग्रेसियोने और लोगोको इन उपद्रवोके लिए प्रोत्साहित किया था। किसी हिंसाके विस्फोटके कारण, जैसे कि मोपला काण्डके कारण, सविनय अवज्ञा रोकी नही जा सकती थी। लेकिन चौरी-चौरा काण्डके कारण उसे रोकना जरूरी हो गया, क्योंकि उसमे कांग्रेसियोका हाथ था।

४. कलकत्तेके दंगेमें आपने सारा ही दोष हिन्दुओंके मत्थे मढ़ा था। मारवाड़ी संघ या किसी अन्य हिन्दू संगठनने आपको रायको गलत बताया था और यह साबित करनेके लिए प्रमाण भी पेश किये थे कि हिन्दुओंको भड़कानेकी काफी जिम्मेदारी मुसलमानोंकी थी। आपने यह वचन दिया था कि यदि आपको अपनी पहली राय गलत मालूम होगी तो आप उसे जाहिरा तौरपर स्वीकार कर लेंगे। तो क्या अब आप अपने पहलेकी राय जाहिर तौरपर बदलेंगे।

मुझे अपनी पहले राय बदलनेका अबतक कोई कारण नही मिला है।

५. आप नगरपालिका (जो आजकल स्वराज्यवादी दलके हाथोंमें है)का अभिनन्दन-पत्र तो स्वीकार करनेके लिए राजी हो गये, लेकिन आपने हिन्दू-सभाके अभिनन्दन-पत्रको टाल दिया। आप हिन्दू होकर भी हिन्दू जनताकी प्रतिनिधि संस्थाके प्रति ऐसा अनुचित भेद-भाव क्यों रखते हैं?

मैंने लखनऊ हिन्दू-सभाके अभिनन्दन-पत्रको कभी नहीं टाला था, बल्कि मैंने तो उनसे यह कहा था कि जब मैं लखनऊ आऊँगा, उनका अभिनन्दन-पत्र खुशीसे स्वीकार करूँगा। नगरपालिकाके स्वराज्यवादी सदस्य इसके बाद मुझसे मिले और जब मैं लखनऊ होकर गुजर रहा था, उसी बीच उनका अभिनन्दन-पत्र स्वीकार करनेके लिए मुझे आग्रह करने लगे। हिन्दू-सभा भी ऐसा ही कर सकती थी। इसमें उसे टाल देनेकी तो कोई बात थी ही नही। मैंने तो यही सोचा था कि जब मैं लखनऊ होकर सिर्फ गुजर ही रहा था, उस समय शायद सभा मुझे अभिनन्दन-पत्र देना न चाहे, खास करके जब वह लखनऊमें हिन्दू-मुसलमानोके बीच तनावके बारेमें

मुझसे चर्चा करना चाहती है। सीतापुरमें मैंने हिन्दू-सभाका अभिनन्दन-पत्र बड़ी खुशीसे स्वीकार किया था।

अमीनाबादके आरती-नमाजके प्रश्नकी तलवार एक सालसे ज्यादा अरसेसे लटक रही है। यदि दोनों दल आपके निर्णयको कबूल करनेका वचन दें, तो क्या आप उस प्रश्नपर अपना निर्णय जाहिर करनेकी कृपा करेंगे?

मैंने अपने संयुक्त-प्रान्तके यात्रा-विवरणमें इस मामलेकी चर्चा की है।[1]

७. एक हिन्दूकी हैसियतसे इस मामलेमें आपकी निष्पक्ष राय क्या है?

मुझे सारी बातें मालूम नहीं है इसलिए मैं कोई राय नहीं दे सकता। यदि मैंने पहले से ही अपनी राय कायम कर ली होती तो दोनों दल भले ही मेरा निर्णय कबूल करनेको राजी होते, तो भी उनकी मध्यस्थताके लिए मैं कभी भी राजी नहीं हो सकता था।

८. मोहर्रमके दिनोंमें या किसी भी अवसरपर मुसलमानोंके बाजा बजानेका हिन्दू लोग तो कभी विरोध नहीं करते हैं। तो फिर हिन्दुओंके बाजोंका मुसलमानोंको क्यों विरोध करना चाहिए? क्या हिन्दुओंको हर उपायसे अपने धार्मिक हकोंकी रक्षा करनेका हक नहीं है?

इस प्रश्नमें दो बातें ऐसी हैं जिनके बारेमें असल तथ्य मुझे मालूम नहीं है। रहा प्रश्नका तीसरा हिस्सा, तो हिन्दुओंको अपने धार्मिक हकोंकी हर उपायोंसे नहीं, बल्कि हर ईमानदारीयुक्त उपायसे, और मेरी रायमें प्रत्येक अहिंसात्मक उपायसे ही उन हकोंकी रक्षा करनेका अधिकार है।

९. पटनामें दो अपहृत लड़कियाँ आपके सामने लाई गई थीं। सारे हिन्दुस्तानमें अपहरण करनेकी जो बीमारी फैल रही है, उसके खिलाफ एक हिन्दूकी हैसियतसे आप हिन्दुओंको क्या करनेकी सलाह देंगे?

मैंने गत सप्ताहमें इस नाजुक प्रश्नकी चर्चा की है।[2]

१०. क्या हिन्दुओंका मुसलमानोंके खिलाफ कोई आक्रमणात्मक कार्य करनेके लिए नहीं, लेकिन अपने धार्मिक हकोंकी रक्षा करनेके लिए और अपहरण आदि जैसी बुराइयोंको दूर करनेके लिए और हिन्दू जातिकी शारीरिक, सामाजिक, नैतिक और भौतिक उन्नतिके लिए अपना संगठन करना उचित नहीं है?

मैं नहीं समझता कि इस प्रश्नमें जिस प्रकारके संगठनकी बात कही गई है वैसे संगठनका कोई भी शख्स विरोध कर सकता है। मैं तो निश्चय ही विरोध नहीं करता।

११. मौलाना शौकत अलीने आपके जरिये बिहार खिलाफत सम्मेलनको एक सन्देश भेजा था। यदि लाला लाजपतराय और पण्डित मालवीयजी किसी हिन्दू-

१. देखिए अगला शीर्षक।

२. देखिए "शाश्वत समस्या", २२-१०-१९२५।

सभाको आपके जरिये कोई सन्देश भेजना चाहें तो आपको उसमें क्या कोई आपत्ति होगी?

मौलाना शौकत अलीने मेरे द्वारा बिहार खिलाफत सम्मेलनको कोई भी सन्देश नही भेजा। यदि उन्होने ऐसा किया भी होता, तो यदि वह सन्देश आपत्तिजनक न होता, तो मै अवश्य ही उनका सन्देश पहुँचा देता। यदि पण्डित मालवीयजी और लाला लाजपतराय मुझे ऐसा ही कोई काम सौंपे, तो मै उसे भी अवश्य ही करूँगा।

[अंग्रेज़ीसे]

यंग इंडिया, २९-१०-१९२५

२१९. संयुक्त प्रान्तके अनुभव

जर्जर मंच

हाजीपुरमें मेरी बिहार-यात्रा समाप्त हुई। हाजीपुरमें व्यवस्था और शान्ति बडी अच्छी रही। हमें राष्ट्रीय पाठशालाके छोटे-छोटे मकानोमें ठहराया गया था और यद्यपि उसीके सामने एक बडी भारी सार्वजनिक सभा की गई थी, लेकिन स्वयंसेवकगण अनुशासित थे और भीडके लोगोंको पहले ही से इत्तिला दे दी गई थी कि मै शोर, धक्का-मुक्की और भीड़ द्वारा पैर छूना इत्यादि सहन करने लायक नही हूँ। इससे उस पाठशालाके अहातेके चारों ओर सैकड़ो आदमियोके होते हुए भी मुझे पूरी शान्ति मिल गई थी। बिहारमें जितनी भी राष्ट्रीय पाठशालाएँ है, उनमें शायद इसी पाठशालाकी व्यवस्था सबसे उत्तम है और इसमें शिक्षक भी उत्तम कोटिके है। उत्तम चरित्रवाले असहयोगी वकील जनकधारी बाबू इसके प्रधानाचार्य हैं। हाजीपुरमें करीब ५,००० रु०की एक थैली भी भेंट की गई थी। इस प्रकार ऐसी आह्लादजनक समाप्तिके साथ और सोनपुरमे एक सेवाश्रमका उद्घाटन करते हुए मैंने अपनी बिहार यात्रा समाप्त की। सेवाश्रम उन हजारो लोगोंको आराम पहुँचाने और उनकी आवश्यकताओंको पूरा करनेके लिए खोला गया है जो हिन्दुओके नववर्षके प्रथम मासकी पूर्णिमाको सोनपुरके अनोखे मेलेमें प्रति वर्ष जमा होते है। सोनपुरके इस मेलेमें उत्तमोत्तम घोड़े, हाथी, गाय, बैल इत्यादि पशु दूर-दूरसे आते है। इसके बाद बिहारका दौरा समाप्त हो गया और मैंने संयुक्त प्रान्तमें प्रवेश किया। पहला मुकाम बलियामे रहा।

यद्यपि सोनपुरसे बलियाका रास्ता सिर्फ चार घटेका था, लेकिन इसमें मुझे वड़ी तकलीफ हुई। यहाँकी सभा भी मुझे एक वड़ी ही कष्टप्रद कसौटी लगी और बिहारमें मैंने जो देखा और अनुभव किया था, उसके ठीक विपरीत यहाँ अनुभव किया। जिस रेलगाड़ीसे हम लोग छपरासे बलिया गये वह बहुत धीमी चलती थी और कुछ मिनिटोके अन्तरपर ही स्टेशन आ जाते थे। हरएक स्टेशनपर एक बड़ी भारी भीड़ होती थी। लोग बड़ा शोर मचाते थे और स्वयंसेवक उन्हें नियन्त्रित रखनेमें असमर्थ रहते थे। मै यह जानता हूँ कि इन सबका कारण उनका मेरे प्रति अन्धा और अतिशय प्रेम ही है। मुझे १९२१ में ही बलिया जाना चाहिए था, लेकिन

मैं उस समय नहीं जा सका था। लोगोंको विश्वास नही रह गया था कि मैं वहाँ पहुँचूंगा। लेकिन जब मैं सचमुच वहाँ जा पहुँचा, तो वे खुशीसे पागल हो उठे। स्वयंसेवक उनपर कतई काबू नही रख पाये। लेकिन ज्यों ही मैंने उन्हें अपनी बात सुनाई और देशबन्धु स्मारक कोषके लिए दान देनेकी बात कही त्यों ही उन्होंने उदारतासे रुपये देने शुरू कर दिये। खास बलिया स्टेशनपर जो भीड़ थी, वह तो बहुत ही बेकाबू थी। अमेरिकन मिशनके पादरी पेरिल साहबने मेरे लिए अपनी मोटर स्टेशनपर लानेकी कृपा की थी। मैं बड़ी मुश्किलसे उस मोटरतक जा सका और उस मोटरके कारण ही उस जबर्दस्त भीड़में से सहीसलामत बाहर निकल सका। स्टेशनसे हम लोग सीधे वहाँकी सार्वजनिक सभामें गये। वहाँ एक बड़ा भारी और ऊँचा मंच तैयार किया गया था। उसे एक नजर देखते ही मैं यह समझ गया कि किसी अनाड़ीने उसकी रचनाकी है और उसपर जितने आदमियोंके बैठनेकी जगह रखी गई है उतने आदमियोंका वहाँ बैठना खतरेसे खाली नहीं था। वहाँ सब मिलाकर सात अभिनन्दन-पत्र दिये जाने थे। जिन-जिन लोगोंका इनके साथ सम्बन्ध था, उन सबका वहाँ मंचपर होना स्वाभाविक था। उस मंचपर जानेके लिए जो सीढ़ियाँ बनाई गई थी वे भी हिलती थीं, उनपर पैर फिसलता था और उनमें चढ़ना-उतरना खतरनाक था। जब कोई मंचपर थोड़ा भी चलता-फिरता तो सारा मंच हिलने लगता था। १० आदमियोंका वजन भी वह नही सँभाल सकता था और उसके कुछ भागोंपर तो एक आदमीका भी चलना जोखिमका काम था। अध्यक्षने फौरन ही यह समझ लिया कि यदि किसी भी प्रकारकी दुर्घटनासे बचना है, तो यह आवश्यक है कि मेरे अलावा और सबको वहाँसे हट जाना चाहिए। इसलिए वे सब मुझे राजेन्द्रबाबूके हाथोंमें सौंपकर धीरे-धीरे नीचे उतर गये। जिन्हें अभिनन्दन-पत्र पढ़ने थे वे एक-एक करके आते थे। इतना खयाल रखनेपर भी यह अन्देशा बना रहता था कि किसी भी समय वह मंच कहीं भरभरा कर गिर न पड़े। इतने खतरनाक रूपसे कमजोर मंच देखनेका मेरा यह पहला अनुभव था। मुझे कमसे-कम दो अवसर और याद हैं। लेकिन वह मंच तो उनमें भी कमजोर था। बारीक दृष्टिवाले लोग तो देखते ही उसकी कमजोरी ताड़ सकते थे। लेकिन आयोजकोंको मंच-निर्माणका कोई अनुभव नही था और जिसने मंच बनाया उसे तो कतई नही था। कांग्रेसके कार्यकर्ताओंको बलियाके इस उदाहरणसे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए और उन्हें बड़े मंच बनानेका प्रयत्न नही करना चाहिए। यदि वे ऐसा मंच बनाना ही चाहें, तो यह काम उन्हें ऐसे कुशल व्यक्तियोंको सौंपना चाहिए जो अपना काम ठीकसे जानते हों।

स्वयंसेवक सभाकी भी ठीक-ठीक व्यवस्था नहीं रख सके। अभिनन्दन-पत्र पढ़ते वक्त भी शोर होता रहता था। लेकिन जब मैंने लोगोंसे अपनी बातें सुन लेनेकी विनती की तो वे सबके-सब बिलकुल शान्त हो गये। इससे मैंने यह निष्कर्ष निकाला कि बिहारकी तरह यदि यहाँपर भी कुछ पहलेसे तैयारी की गई होती तो उसका परिणाम भी बिहारके जैसा होता और बलियामें जो-कुछ भी कार्य मैं कर सका उससे कहीं ज्यादा और ठोस कार्य कर सकता। शान्त रहकर लगातार काम करनेकी ही

आवश्यकता है। बलियामें कुछ बडे अच्छे कार्यकर्त्ता भी हैं और इसलिए उसे आजके बनिस्बत अधिक अच्छे कार्यका केन्द्र भी बनाया जा सकता है। मैं जानता हूँ कि बलियाके लोग बडे धैर्यवान और कष्टसहिष्णु हैं। उन्होंने १९२०-२१में बड़ा त्याग किया था।

काशी विद्यापीठ

बलियासे हम लोग बनारस गये। वहाँसे सीतापुर जानेके लिए हमें लखनऊवाली गाड़ी बदलनी थी। बनारसमें पाँच घंटेका मुकाम रहा। बाबू भगवानदासने इस बीच काशी विद्यापीठके विद्यार्थियोंकी एक सभाका प्रबन्ध कर लिया।[1] नगरपालिकाके अधीन चलनेवाले मिडिल स्कूलोंमें कताई और बुनाईके सम्बन्धमें जो अच्छा कार्य किया गया है, उसे देखनेके लिए भी वे मुझे ले गये। पाठकोंको शायद याद होगा कि इस कार्य-का आरम्भ श्री रामदास गौड़ने किया था और तबसे वह बराबर होता चला आ रहा है। इन पाठशालाओंमें चरखे और तकली दोनोका उपयोग होता है। यह प्रयोग काफी हदतक सफल कहा जा सकता है। विद्यापीठमें मुझे उसका कारखाना दिखाया गया। वहाँ बढईगिरीमें बडी अच्छी तरक्की हो रही है। विद्यापीठमें चरखेकी उन्नति अच्छी हुई नही कही जा सकती है। मैंने अपने व्याख्यानमें विद्यार्थियोसे और अध्यापको-से कहा कि यदि उन्हें चरखेमें श्रद्धा नही है, तो वे उसे विद्यापीठके पाठ्यक्रमसे बिलकुल ही निकाल दें। महज इसलिए कि चरखेको राष्ट्रीय आन्दोलनका एक अंग माननेका रिवाज पड़ गया है, उसे इस प्रकार स्थान देनेसे कोई लाभ न होगा। अब समय आ गया है कि प्रत्येक राष्ट्रीय पाठशाला अपनी शिक्षा सम्बन्धी नीतिका स्वयं विकास करे और दूसरोंके द्वारा उसका विरोध किये जानेपर भी वह उसे सफल बनानेका प्रयत्न करे।

लखनऊमें

बनारससे हम लोग लखनऊ गये। वहाँ कोई तीन घंटेसे ज्यादा ठहरे। वहाँ मुझे लखनऊ नगरपालिकाने अपनी तरफसे एक अभिनन्दन-पत्र देकर सम्मानित किया। वह अभिनन्दन-पत्र बड़े ऊँचे दर्जेकी उर्दूमें लिखा हुआ था। जो सयुक्त प्रान्तका निवासी नही है उस मेरे जैसे एक सादे मनुष्यको समझनेकी दृष्टिसे, भाषा जितनी मुश्किल बनाई जा सकती है, उसे उतना मुश्किल बनानेकी मानो खास कोशिश की गई थी। उसमें अरबी और फारसीके बड़े-बड़े कठिन शब्दोका प्रयोग किया गया था और ऐसा मालूम होता था कि मानो मामूली बोल-चालके शब्द और जिनका मूल संस्कृतसे हो ऐसा एक भी शब्द उसमें न आने देनेकी खास कोशिश की गई थी। इसलिए मुझे उसका जो अंग्रेजी अनुवाद दिया गया सो ठीक ही था। मैंने नगरपालिकासे कहा[2] कि मैं उन्हे उनकी बड़े ऊँचे दर्जेकी उस उर्दूके लिए मुबारकबाद नही दे सकता। मै अन्तर्प्रान्तीय व्यवहार के लिए एक राष्ट्रीय भाषाकी आवश्यकताको स्वीकार करता

१. देखिए "भाषण: काशी विद्यापीठमें", १७-१०-१९२५।
२. देखिए "भाषण: लखनऊ नगरपालिकाकी सभामें", १७-१०-१९२५।

हूँ, लेकिन वह भाषा लखनवी उर्दू या संस्कृतनिष्ठ हिन्दी नहीं हो सकती। वह भाषा तो हिन्दुस्तानी ही होगी और हिन्दी और उर्दू जाननेवाले लोग जिन शब्दोंका आमतौर पर प्रयोग करते हैं, वह उन्ही शब्दोंसे मिलकर बनेगी। उसे हिन्दू और मुसलमान दोनों आसानीसे समझ सकेंगे। लखनऊकी नगरपालिका खास करके स्वराज्यवादियोंके हाथोंमें है। उनके पहलेके सदस्योंके कार्यके मुकाबले उनका काम किसी तरह कम नही है। लेकिन मैंने अपने उन श्रोताओंसे कहा कि सिर्फ अपने पहले कार्यकर्त्ताओंके बराबरके स्तरका ही काम कर सकनेपर सन्तोष मान लेना ठीक नहीं है। कांग्रेसके लोग जहाँ कहीं, जिस किसी भी संस्थाको अपने हाथमें लेते है, वहाँ उन्हें अधिक अच्छा काम करके दिखाना चाहिए। और इसीलिए लखनऊकी सड़कोंका इतना खराब होना, विचारणीय बात है। रुपयेकी कमीका कोई बहाना नहीं है, क्योंकि कांग्रेसियोंसे तो यह आशा रखी जाती है कि वे स्वयं कुदाली और फावडा लेकर स्वेच्छासे मेहनत करके सड़कोंको दुरुस्त करेंगे। मैंने नगरपालिकाको उसके डेरीके प्रयोगके लिए मुबारक-बाद दिया और उसे यह चेतावनी भी दे दी कि जबतक वह अपनी हदमें रहनेवाली जनताको सस्ता और अच्छा दूध न पहुँचा सके, तबतक उसे कदापि सन्तोष नही होना चाहिए।

नगरपालिकाके अभिनन्दन-पत्रमें हिन्दू-मुस्लिम प्रश्नपर जानबूझकर कोई बात नहीं कही गई थी। फिर भी मित्रों (नगरपालिकाके बहुतसे हिन्दू और मुसलमान सदस्य मेरे मित्र थे) के साथ बातचीतके दौरान इस प्रश्नको छोड़ना सम्भव नहीं था और इसलिए इन दोनों समाजोंमे जो तनाव बढ़ता जा रहा है, उसपर मुझे कुछ कहना पड़ा। मैंने उनसे कहा कि हिन्दुस्तानके दूसरे हिस्सोंमें कुछ भी क्यो न हो, कमसे-कम लखनऊमे तो दोनों समाजोंको अपने मतभेद दूर करके ऐसी एकता स्थापित कर लेनी चाहिए कि कैसी भी स्थिति उत्पन्न क्यों न हो जाये और हिन्दुस्तानके दूसरे भागोंमें कैसे भी झगड़े क्यों न चलते रहें, यहाँ एकता कभी टूटे ही नही।

समय निकालकर थोडी देरके लिए मै लखनऊके महिला कालेजमें भी गया। यह विद्यालय अमेरिकी मिशनका है और यह कहा जाता है कि सारे एशियामें अपने ढंगका यह सबसे पुराना कालेज है। मैंने देखा कि हिन्दुस्तानके सभी प्रान्तोंकी लड़कियाँ वहाँ पढ़ती है। उन्होंने अपनी हस्ताक्षर पुस्तिकामें मेरे हस्ताक्षर करानेके लिए मुझे घेर लिया। इसके पहले अपनी शर्त बताकर बहुतोंको अपने हस्ताक्षर दे चुका हूँ, शर्त यह है कि जो लोग मुझसे मेरे हस्ताक्षर चाहें, उन्हें खादी पहननी चाहिए और नियमपूर्वक कातना चाहिए। मैंने लड़कियोंको भी यह शर्त सुनाई। उन्होने बिना हिचक फौरन ही उसे स्वीकार कर लिया और वहाँकी लेडी सुपरिटेंडेंटने मुझे इस बातका यकीन दिलाया कि वह स्वयं इस बातका ध्यान रखेगी कि लड़कियाँ अपना वादा धर्म-भावनासे निभाएँ।

सीतापुरमें

लखनऊसे हम लोग मोटर द्वारा सुबह कोई १० बजे सीतापुर पहुँचे। मै अपने मुकामपर पहुँचूं उसके पहले ही मुझे हिन्दू-सभाका अभिनन्दन-पत्र ग्रहण करनेके लिए

उसके द्वारा आयोजित सभामें जाना पड़ा। मैंने उस अभिनन्दन-पत्रका उत्तर[1] देते हुए कहा कि मैं उस अभिनन्दन-पत्रके योग्य नहीं हूँ, क्योंकि मैंने हिन्दू-सभाके लिए अबतक कुछ भी काम नहीं किया है, उलटे मैंने उसके कुछ कार्योंकी — हालाँकि मित्रभावसे — आलोचना अवश्य की है। मैंने इस अभिनन्दन-पत्रको स्वीकार किया है, क्योंकि हिन्दू-धर्मके प्रति मेरी भक्ति किसीसे कम नहीं है। मैंने उनसे यह भी कहा कि धार्मिक आन्दोलनोंसे सच्ची सेवा तभी हो सकती है जब कि वे सम्पूर्ण रूपसे सत्य और अहिंसापर संचालित हों। इसके बाद मुझे सार्वजनिक सभामें ले जाया गया। वहाँ नगर-पालिकाकी तरफसे अभिनन्दन-पत्र दिया जानेवाला था। दूसरे दिन मैं अली भाइयोंके साथ हिन्दी साहित्य सम्मेलनकी सभामें[2] गया। सम्मेलनके अध्यक्षका व्याख्यान जो कई अर्थोंमें अच्छा था पर उसमें आग्रहपूर्वक फारसी और अरबीके मूल शब्दोंको नहीं आने दिया गया था। इसलिए मुझे वहाँ भी फिर वे ही बातें दोहरानी पड़ी, जो मैंने लखनऊकी नगरपालिकाके अभिनन्दन-पत्रका उत्तर देते समय कही थी। कृत्रिम संस्कृत-निष्ठ हिन्दी उसी प्रकार त्याज्य है जैसे कि फारसी मिली हुई क्लिष्ट उर्दू। मैंने हिन्दुस्तानीको इसीलिए एक सामान्य बोलचालकी साधारण भाषा माना है, क्योंकि उसे कोई २० करोड़से अधिक लोग समझते हैं। यह भाषा न तो कृत्रिम लखनवी उर्दू है और न सम्मेलनी हिन्दी। कमसे-कम सम्मेलनसे तो ऐसे ही अभिनन्दन-पत्रकी आशा की जा सकती थी, जिसे साधारण हिन्दू या मुसलमान कोई भी समझ सकता हो। वह आदमी जो 'ईश्वर'का नाम लेता है, लेकिन खुदा कहनेसे डरता है, अथवा वह जो हर बार 'खुदा' कहता है और 'ईश्वर'का नाम लेनेमें पाप समझता है, कोई अच्छा आदमी नहीं हो सकता। मैंने अपने श्रोताओंको यह भी याद दिलाया कि संयुक्त प्रान्तमें हिन्दी प्रचारके लिहाजसे जरूरत केवल इसी बातकी है कि हिन्दी साहित्यको और उन्नत किया जाये, वातावरण ऐसा बने कि उसमें भी कोई रवीन्द्रनाथ पैदा हो। सम्मेलनको तो सयुक्त प्रान्तके बाहर हिन्दुस्तानी भाषाको लोकप्रिय बनानेमें और दूसरी भाषाओंकी पुस्तके देवनागरी लिपिमें प्रकाशित करनेमे ही अपना सारा ध्यान लगाना चाहिए। मौलाना मुहम्मद अलीने मेरी पहली बातपर जोर देकर कहा कि यदि हिन्दुस्तानी भाषाको अपने ही प्रान्तमें लोकप्रिय बनानेके लिए कृत्रिम उपायोंकी आवश्यकता हो तो फिर उसे सर्वदेशीय सम्पर्क भाषा बनानेका प्रयत्न छोड़ देना होगा। दोपहरको मौलाना शौकत अलीके सभापतित्वमें एक सभा हुई। उनका व्याख्यान हिन्दू-मुस्लिम एकतापर एक सारगर्भित व्याख्यान था। जिसके अन्तमें उन्होने लोगोसे चरखा और खादीको अपनानेका आग्रह किया। उनके बाद मुझसे व्याख्यान देनेके लिए कहा गया। इसलिए मैंने उसी विषयपर व्याख्यान देना शुरू किया जिसकी चर्चा मौलाना साहबने अन्तमें की थी। मैंने श्रोताओंको चरखा और खादीकी आवश्यकता समझाई और यह कहकर अपनी बात समाप्त की कि पटनामें जो निर्णय हुआ है उसमें उन्हे सहायता करनी चाहिए। वह निर्णय मेरी समझमें कोई जबर्दस्ती नहीं हुआ

१. देखिए "भाषण: सीतापुरमें", १७-१०-१९२५।

२. देखिए "भाषण: उ० प्र० हिन्दी साहित्य सम्मेलनमें", १८-१०-१९२५।

था, बल्कि कांग्रेसकी विचारधारावाली आम जनताकी रायका वह एक स्पष्ट संकेत था। मेरे बाद पण्डित मोतीलालजीने व्याख्यान दिया। उन्होंने पटनाके निर्णयको विस्तारपूर्वक समझाया, और चरखा और खादीमें अपनी व्यक्तिगत श्रद्धा प्रकट करते हुए साथ ही यह भी कहा कि जबतक कांग्रेस प्रधानतः राजनैतिक संस्था न बन जायेगी तबतक वह पूरी तरहसे लोगोंकी प्रतिनिधि संस्था नही बन सकेगी। पण्डितजीका प्रस्ताव जिसमें पटनाके निर्णयका समर्थन किया गया था, पास करने और चरखा संघकी स्थापनाका अनुमोदन करनेके बाद सब प्रतिनिधि गुजराती तम्बूमें गये और वहाँ उन्होंने सीतापुरमे रहनेवाले गुजराती व्यापारियों द्वारा दिया गया जलपान ग्रहण किया।

मेरा संयुक्त प्रान्तका दौरा, यदि उसे दौरा कहा जा सके तो, लखनऊसे आये हुए हिन्दू-सभाके एक प्रतिनिधि मण्डलके साथ हुई लम्बी और हार्दिकतापूर्ण बातचीतके साथ समाप्त हुआ। यह शिष्टमण्डल लखनऊमें हिन्दू-मुस्लिम तनावके बारेमें बात करने आया था। मैंने बताया कि विवादमें पच बननेका मैंने जो वादा किया था उससे मैं हटा नहीं हूँ। मैंने उनसे कहा कि पिछले वर्ष मैंने दोनों पक्षोंसे दिल्लीमें उनके साक्ष्य सुननेको कहा था; लेकिन साथ ही मैंने उन्हें यह भी बताया कि अब बदली हुई परिस्थितियोंमें शायद दोनों ही पक्ष विवादग्रस्त मामलेको मेरे सामने न रखना चाहें। किन्तु यदि वे चाहेंगे तो मैं खुशीसे लखनऊ जानेका समय निकालूँगा और उनके मामलेमे पंच बनकर निर्णय दूँगा। जब उन्होंने कहा कि हिन्दू लोग चाहेंगे कि मैं पंच-फैसला करूँ तब मैंने उन्हे सलाह दी कि वे मुसलमानोंके पास भी जायें और फिर मुझे इस बातकी इत्तिला दें कि दोनों दलोंके नेतागण मेरे दिये हुए फैसलेको कुबूल करनेके लिए तैयार हैं या नहीं।

इस प्रकार मेरी बिहार और संयुक्त प्रान्तकी यात्रा समाप्त हुई। यह विवरण लिखते समय मैं कच्छमें हूँ जहाँ महादेव देसाई मेरे साथ हैं, और वे इस अनोखे और सबसे अलग पड़े प्रदेशके दिलचस्प अनुभवोंका विवरण लिखनेका कार्यभार संभालेंगे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २९-१०-१९२५

२२०. नगरपालिका-जीवन

जान पड़ता है नगरपालिकाओं और स्थानीय निकायों द्वारा प्रमुख कांग्रेसीजनोंको मानपत्र देनेका रिवाज अब स्थायी हो गया है। इसके फलस्वरूप मुझे लगभग समस्त भारतमें नगरपालिकाओंकी कार्यप्रणालीको थोडा-बहुत देखनेका अवसर मिला है। एकाधिक नगरपालिकाओंके अवलोकनके बाद मैं इस निष्कर्षपर पहुँचा हूँ कि उनके सन्मुख सबसे बडी समस्या सफाईकी है जिसे उन्हे हल करना है। मैं मानता हूँ कि यह बहुत ही बडी समस्या है। हमारी कुछ राष्ट्रीय आदतें इतनी बुरी हैं कि जिनका वर्णन नही किया जा सकता। और वे इतनी गहरी जमी हुई है कि वे सभी मानवीय प्रयत्नोंको व्यर्थ कर देती हैं। जहाँ भी मैं जाता हूँ यह गन्दगी किसी न किसी रूपमें मेरी दृष्टिको अपनी ओर खीचती है। पजाब और सिन्धमें स्वास्थ्यके प्रारम्भिक नियमोकी परवाह न करते हुए हम अपने चबूतरों और छतोंको गन्दा कर देते हैं। वहाँ करोड़ो रोगाणु पैदा हो जाते हैं और मक्खियोकी वहाँ बस्ती बन जाती है। दक्षिण भारतमें हम अपनी गलियोको गन्दा करनेमें भी नही झिझकते। सुबहके वक्त किसी भी संकोचशील व्यक्तिके लिए इन गलियोंमें से होकर निकलना असम्भव होता है, क्योंकि इनमें लोग शौच करनेके लिए पक्ति बाँधे बैठे होते हैं। सामान्यत. यह क्रिया एकान्तमें और ऐसे स्थानोमें पूरी की जाती है जहाँ साधारणतः लोगोंको जानेकी जरूरत नही होती। बगालमें भी ऐसी ही स्थिति है, लेकिन वहाँ उसका दूसरा रूप है। लोग जिस तालाबमें नहाते और कपडे और बर्तन धोते हैं एवं जिसमें पशु भी पानी पीते है, उसीके जलको पीनेके काममें भी लाते हैं। यहाँ कच्छमें स्त्री-पुरुष उन्ही बातोंको बिना ध्यान दिये करते रहते है जो कि मैंने मद्रासमें देखी हैं। कच्छके ये लोग मूर्ख नही हैं; ये निरक्षर भी नही हैं; उनमें से बहुतसे भारतसे बाहर दूसरे देशोंकी यात्रा कर चुके हैं। उनको इन बातोंकी अधिक जानकारी होनी चाहिए; किन्तु उन्हे नही है। उन्हें सफाईके बारेमें प्रारम्भिक बातोंकी शिक्षा देनेकी कोई भी चिन्ता नही करता। नगरपालिकाओं और स्थानीय निकायोंका यह विशेष कर्त्तव्य है या होना चाहिए कि वे अपनी सीमाके अन्दर गन्दगी दूर करनेका खास ध्यान रखें। यदि हमें शहरोंमें रहना है, यदि हमें सगठित जीवन बिताना है, यदि हमें अपना स्वास्थ्य और बुद्धिबल बढ़ाना है तो हमें कभी-न-कभी गन्दगीसे मुक्त होना ही पड़ेगा। हम इस कामको जितनी जल्दी कर ले, उतना ही अच्छा है। हमें हर कामको स्वराज्य मिलनेतक स्थगित नही कर रखना चाहिए। निस्सन्देह कुछ काम ऐसे हैं जो तभी किये जायेंगे जब हमें अपनी अत्यन्त वाछित वस्तु, अर्थात् स्वराज्य, मिल जायेगा। किन्तु यदि हम उन बहुतसे कामोंको, जिन्हें कि हम आज भी उसी आसानीसे कर सकते हैं, जिस आसानीसे स्वराज्य मिलनेपर कर सकेंगे और जो हमारे सामूहिक और सभ्य राष्ट्रीय जीवनके प्रतीक हैं, नही करते तो स्वराज्य कभी नही मिलेगा।

इस समस्याका समाधान जितनी अच्छी तरह और जितनी जल्दी हमारी नगरपालिकाएँ कर सकती हैं उतनी जल्दी और उतनी अच्छी तरह कोई अन्य संस्था नहीं कर सकती। जहाँतक मैं जानता हूँ उनको इस सम्बन्धमें जितने अधिकारोंकी जरूरत है, वे सब उन्हें प्राप्त हैं; और यदि आवश्यकता हो तो उन्हें अधिक अधिकार भी मिल सकते हैं। अभाव प्रायः केवल संकल्पका ही देखा जाता है। इस बातको लोग अभी अनुभव ही नहीं करते कि जो नगरपालिका आदर्श पाखाने नहीं बनाती और जिसके क्षेत्रमें सड़कें और गलियाँ चौबीसों घंटे बिल्कुल साफ-सुथरी नहीं रखी जाती उसको कायम रहनेका कोई हक नहीं है। किन्तु यह सुधार नगरपालिकाओं और स्थानीय निकायोंके सदस्योंके अथक उद्योगके बिना नहीं किया जा सकता। यह खयाल करना कि जब नगरपालिकाएँ ऐसा करने लगेंगी तो हम भी काम शुरू करेंगे, सुधारको अनन्त कालतक टालना है। जिन लोगोंमें सच्चे दिलसे सुधार करनेकी इच्छा और क्षमता है, उन्हें उसे प्रारम्भ कर देना चाहिए, शेष कार्य अपने आप हो जायेगा।

इस उद्देश्यको ध्यानमें रखकर ही मैं अहमदाबादके डाक्टर हरिप्रसाद देसाईके लिखे हुए एक विनोदपूर्ण पत्रका अनुवाद अन्यत्र छाप रहा हूँ। यह पत्र अभी हालमें 'नवजीवन' में छप चुका है।[1] अहमदाबादकी नगरपालिकाने इस समस्याको गम्भीरता-पूर्वक हाथमें लिया है। अहमदाबाद ऐसा शहर है जहाँ सफाईकी दृष्टिसे व्यवस्था करना साधारणतः कठिन है। यह बहुत गन्दा शहर है। मैंने इससे ज्यादा गन्दा शहर दूसरा कोई नहीं देखा। इसके नाबदान दुर्गन्ध और गन्दगीसे सड़ते रहते हैं। लोगोंमें अन्ध-विश्वास और पूर्वग्रह इतना ज्यादा है कि उनपर काबू पाना मुश्किल है। गन्दगीको प्रायः धार्मिक मान्यता प्राप्त है। गन्दी आदतोंके पक्षमें अहिंसाके सिद्धान्ततक की दुहाई दी जाती है। मेरा पाठकोंसे अनुरोध है कि वे उक्त पत्रके अनुवादको ध्यानसे पढ़ें और उसपर सोचें तब वे समझेंगे कि अहमदाबादमें सुधारकोंके सामने कितनी बड़ी कठिनाइयाँ हैं। इस कठिन और अप्रशंसित कार्यको करनेके लिए स्वयंसेवक भी पर्याप्त नहीं मिलते। पाठक यह भी देखेंगे कि इस कामको नगरपालिकाके वे सदस्य कर रहे हैं जो अहमदाबादको सफाईकी दृष्टिसे आदर्श नगर बनाना चाहते हैं। वे इस कामको अपने दफ्तरके वक्तके अलावा और बिना कुछ पानेकी आशा किये कर रहे हैं। यदि कोई नगरपालिका केवल अपना रोजमर्राका काम पूरा करके और अपने अधिकारियोंको हिदायतें देकर सन्तुष्ट हो जाती है तो उससे किसी विशेष अच्छे परिणामकी आशा नहीं की जा सकती। यदि भारतके नगरोंको इस योग्य बनना है कि उनमें गरीबसे-गरीब लोग भी साफ और अच्छी हालतमें रह सकें तो नगर-पालिकाके प्रत्येक सदस्यको अपने शहरमें स्वयं भंगी बनना होगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २९-१०-१९२५

१. देखिए "अहमदाबादमें सफाई", ५-११-१९२५।

२२१. तार : रणछोड़लाल पटवारीको

कच्छ मांडवी
३० अक्तूबर, १९२५

दीवान साहब
मोरवी जंक्शन,

विशुद्ध व्यक्तिगत पत्रका[1] दफ्तरी जवाब देखकर चकित। यदि मैं इस छोटी-सी कार्यसमितिकी, जो अपने गठनके समयसे ही बड़ी सावधानीके साथ राजनीतिक मामलोंसे . . .[2] या काठियावाड़के राज्योसे दूर रही है, बैठक नही कर सकता तो मोरवीसे गुजरनेकी कोई इच्छा नही है।

गांधी

अंग्रेजी तार (जी० एन० ४१२१) की फोटो-नकलसे।

२२२. भाषण : माण्डवीमें[3]

३१ अक्तूबर, १९२५

खतरा कौन उठाता है और किसलिए उठाता है? व्यभिचारके लिए, स्त्रीके लिए और धनके लिए लोग खतरा उठाते हैं। लेकिन यह तो कुएँमें कूदनेके साहसके समान है। साहस तो भवसागर पार करनेके लिए, पुरुषार्थके लिए, आत्मदर्शनके लिए किया जाना चाहिए। व्यापार तो ऐसा ही किया जाये जिसमें किसीके प्रति अपराध न हो, जिसमें किसीकी कौड़ी भी न लेनी पड़े। मेरे साथ बैठनेवाले, कलतकके मेरे साथी कितने ही करोड़पतियोंको मैंने "शाह आलमके सगे सम्बन्धियों" की तरह बाजारोंमें भीख माँगते देखा है।[4] तब जो वस्तु क्षणिक है, उसके लिए इतना प्रयत्न किसलिए, छल और चोचले किसलिए? साहस तो हमें परमात्माकी महिमा देखने और उसके गुण गानेमें दिखाना चाहिए। परमात्माकी लीला निहारनेमें दीवाना बनना ही सच्चा साहस है। इस गगनमें चमकते अनेक सितारे किसके प्रकाशका विस्तार करते हैं, इसकी शोधमें अनेकों जन्म चले जायें तो वे सब सार्थक हैं। श्रीमद् राजचन्द्रने मृत्युके समय असह्य दुःख भोगा लेकिन उन्हें उस दुःखका विचार नहीं

१. देखिए "पत्र : रणछोड़लाल पटवारीको", २२-१०-१९२५।
२. यहाँ एक शब्द स्पष्ट नहीं है।
३. महादेव देसाईके यात्रा विवरणसे उद्धृत।
४. गुजरातके पारसी कवि बहरामजी मलबारी द्वारा रचित एक कवितासे।

था। उन्हें तो उस समय ईश्वर-दर्शनकी ही लगन लगी हुई थी। आज जबकि मेरे जीवनमें विनयके साथ कड़वी बातें सुननेका कठिन प्रसंग उपस्थित हो गया है तब ऐसे श्रीमद् राजचन्द्रका स्मरण करके, उनकी अहिंसाकी स्तुति करके मैं सौभाग्यका अनुभव करता हूँ। आइये आज हम उस वस्तुको जो हमारी आत्माको दूधके समान स्पष्ट दिखाई देती हो, जगतमें किसीका भय किये बिना प्रकट करनेकी शक्ति इस पुरुषकी स्मृतिसे प्राप्त करें। भय एकमात्र 'चैतन्य' का रखें; इस बातकी चिन्ता रखें कि जो २४ घंटे निरन्तर हमारी चौकसी करता है कहीं उसे ठेस तो नहीं पहुँचती। राजचन्द्रके जीवनसे उनकी अनन्त तपश्चर्या सीखें, और जिस अनन्त तपश्चर्याके फलस्वरूप वे चैतन्यकी ही आराधना करने लगे, उसे समझें। और हम अपनी क्षुद्रताका विचार करके बकरीके समान निरीह बनें तथा अपनेमें विराजमान चैतन्यका विचार कर सिंहके समान समर्थ बनें तो हमारा जीवन सार्थक है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ८-११-१९२५

२२३. गोरक्षाकी योजना

गोरक्षाका काम चींटीकी तरह धीरे-धीरे रेंग रहा है। मैं गो-सेवकोंसे इतना कह सकता हूँ कि उसकी गति एक क्षणके लिए भी रुकी नहीं है। मैं दिन-रात इसपर विचार करता हूँ। बहस भी काफी करता हूँ। कच्छमें बहुतसे गो-सेवक हैं और मैं फिर कभी कच्छ आ सकूँगा, इसकी मुझे कोई आशा नहीं है। इसलिए मैंने अपनी यह योजना बनाकर कुछ रुपये भी इकट्ठे किये हैं। यह लिखते समयतक लगभग तीन हजार रुपये इकट्ठे हो गये हैं और मुझे आशा है कि अभी और भी होंगे।

कुछ मित्रोंने मुझे गोरक्षाकी योजना उसके आँकड़ोंके साथ प्रकट करनेको कहा है। योजना इस प्रकार है।

(१) मरे हुए ढोरोंका चमड़ा विदेशोंमें चला जाता है और कत्ल किये गये ढोरोंका चमड़ा हम लोग अपने इस्तेमालमें लाते हैं। इसमें जो पाप होता है उसके लिए हम ही जवाबदेह हैं। उसे रोकनेके लिए चर्मालय हमें अपना धर्म समझकर चलाने होंगे। इसमें मुझे अब कोई सन्देह नहीं रहा है कि गोरक्षाका यह एक अंग ही बन जाना चाहिए। इस कार्यका आरम्भ स्वयं एक चर्मालय हाथमें लेकर ही किया जा सकेगा। इस कार्यके लिए आज सवा लाख रुपयेकी जरूरत है। इस कार्यमें आखिर कुछ नुकसान नहीं होना चाहिए — नफा तो कोई करना ही नहीं है, इसलिए इसमें किसीसे भी स्पर्धाका कोई डर नहीं है।

(२) इस कार्यके लिए काम करनेवालोंको भी तैयार करना होगा। इसमें कुछ अध्ययनकी भी आवश्यकता है। योग्य काम करनेवाले सीखनेके लिए तैयार हों

तो उन्हें छात्रवृत्ति भी दी जायेगी। इसमें मेरे हिसाबसे सालाना कोई ५,००० रुपये खर्च होंगे।

(३) मण्डलके लिए एक पुस्तकालयकी भी आवश्यकता है। उसमें पशु-संवर्धन, उनके पालन-पोषण, दूध शोधक सयन्त्र और चर्मालय इत्यादि विषयोंसे सम्बन्ध रखने-वाली पुस्तकें होनी चाहिए। इसके लिए कोई ३०० रुपयोंकी आवश्यकता है। यह महज एक अन्दाज है।

(४) डेरीका प्रयोग करनेके लिए अर्थात् डेरीके कार्यमें कुशल व्यक्तिको नियुक्तकर उससे उसकी रिपोर्ट तैयार करानेमें, किसी शहर-विशेषकी उस दृष्टिसे जाँच कराने इत्यादिमें आरम्भिक व्ययके लिए कोई १०,००० रुपयेकी आवश्यकता होगी।

इस प्रकार एक सालमें इस योजनामें १,४३,००० रुपये खर्च होंगे। चर्मालयमें तो रुपये लागतके तौरपर लगेंगे। और यह कुल रकम १,३०,००० रुपये होती है। अन्य आरम्भिक खर्च प्रशिक्षण और जाँच-पड़तालका है।

मण्डलका सामान्य खर्च इसमें नहीं गिना गया है, क्योंकि यदि उसके सभासदोंके चन्देमें से ही उसका खर्च न चल सके तो मैं मण्डलका होना निरर्थक मानता हूँ। मन्त्री-की नियुक्ति हो गई है। इसके लिए मैंने श्री वालजी गोविन्दजी देसाईको पसन्द किया है। ये पहले गुजरात कॉलेजमें और फिर हिन्दू विश्वविद्यालयमें अध्यापकका काम करते थे। उन्हें २०० रुपये माहवार वेतन देना निश्चय हुआ है। इसके अलावा उनको मकानका किराया भी देना होगा। अभी तो वे आश्रममें रहते हैं इसलिए मकानका किराया नहीं दिया जाता है। लेकिन फिर कभी मकानके किरायेके २५ रुपये भी शायद उन्हें देने होंगे। कार्यालयके लिए अभी कोई दूसरा खर्च नहीं किया गया है। दूसरे कार्यकर्त्ताओंको भी रखना होगा। लेकिन जैसे-जैसे सभासद बढ़ते जायेंगे वैसे-वैसे इस काममें भी सुविधा होती जायेगी। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि किसी भी हालतमें क्यों न हो १,४३,००० रुपये तो खर्च करना ही होगा, क्योंकि चर्मालय और डेरी धर्मभावसे चलाये बिना गोरक्षाको मैं असम्भव मानता हूँ।

मुझे आशा है कि गोसेवक इस महान कार्यमें अवश्य ही मदद करेंगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १-११-१९२५

२२४. कुछ शिकायतें और सुझाव

मेरे पास एक लम्बा पत्र पड़ा हुआ है, जिसमें बहुत सारी शिकायतें और सुझाव दिये गये हैं। पत्र एक स्वयंसेवकका है। इस कारण मैं इसे प्रकाशित करनेकी जरूरत समझता हूँ। महत्त्वपूर्ण अंशोंको छोड़े बिना मैं उसे संक्षेपमें नीचे दे रहा हूँ।[1]

गुजरातमें चरखे नही चल सकते, यह मैं नही मानता। गुजरातके किसानोंके पास अन्य लोगोंके जितना नहीं तो भी थोड़ा-बहुत समय तो बचता ही है। उनके आलस्यको दूर कर उन्हे सात्विक उद्यम सिखाना हमारा कर्त्तव्य है। लेकिन अभी हम गाँवोंमें दृढ़ आसन जमाकर बैठे ही नही हैं। फिर भी मैं जानता हूँ कि फिलहाल उस ओर प्रवृत्ति है। इसमें सन्देह नही कि इस कार्यमें समय चाहिए। लेकिन यह भी सही है कि जबतक मेरे जैसा एक भी व्यक्ति अपना विश्वास अविचल रखेगा और उसके अनुरूप काम करेगा तबतक चरखेका कभी नाश नहीं होगा। चरखेके चारों ओर हम चाहे जितनी अन्य प्रवृत्तियोंकी रचना करें परन्तु चरखा आधार है, मध्य-बिन्दु है, केन्द्र है।

गुजरातमें कुछ पैसा व्यर्थ ही खर्च हुआ है, यह मैं मानता हूँ। लेकिन वह अनिवार्य था। सब नौसिखिये थे, सबको एक बिलकुल नये क्षेत्रमें काम करना था। इस क्षेत्रमें हमारे पास किसीका अनुभव न था। अन्य प्रान्तोंके पास गुजरातका अनुभव था। क्या इतना ही पर्याप्त नही कि संचालक प्रामाणिक और त्यागी थे? यदि सभी गुजराती, जिनके साथ हमें काम पड़ा, व्यवहारकुशल और ईमानदार होते तो हमें एक दमड़ीका भी नुकसान न होता और यदि होता भी तो उतना ही जितना हमने सोच-समझकर होने दिया होता।

आश्रमोंके बारेमें किये गये आक्षेप यदि ब्यौरेवार होते तो उनकी जाँच हो सकती थी। सत्याग्रह आश्रमका[2] तो पत्रलेखक जिक्र ही नही करता। ऐसा क्यों? लाख रुपयेसे ऊपर खर्च तो उसीपर हुआ है। उसका हिसाब अथसे इतितक मौजूद है। और ऐसे अन्य आश्रमोंमें भी, जिनके साथ मेरा अथवा प्रान्तीय कमेटीका सम्बन्ध है, मैं कोई गलत खर्च हुआ नही जानता। अलबत्ता, अविचारके कारण कुछ खर्च हुए हैं। परन्तु जबतक हमें सम्पूर्ण रूपसे कुशल सेवक नही मिलते तबतक विचार-दोषके फलस्वरूप होनेवाले खर्च तो होते ही रहेंगे। सत्याग्रह आश्रमकी नीव यदि मुझे आज रखनी हो तो आजतकके अनुभवके आधारपर मैं उसकी रचना अलग ढगकी करना चाहूँगा। लेकिन जो हुआ है उसका मुझे बिलकुल भी पश्चाताप नही है। सर्वस्व अर्पण करनेके बाद मनुष्य और क्या दे सकता है? सभी संस्थाओंका निरीक्षण एक ही नियमके अनुसार करना चाहिए। क्या संचालकोंने उन्हें अपना मानकर उनकी

१. यहाँ नहीं दिया गया है।

२. साबरमती आश्रम, अहमदाबाद।

रक्षा की है? और दूसरी ओर यह याद रखकर कि वे दूसरोंकी भी हैं तथा उनका हिसाब देखनेवाले अन्य लोग भी हैं, पाई-पाईका हिसाब रखा है या नही। और क्या संचालकोंमें उस कामको करनेकी सामान्य शक्ति है? जिस सस्थाके सम्बन्धमें ऐसे प्रश्नोंका सन्तोषजनक उत्तर मिलता है वह टीकाकी पात्र नही है।

पत्र-लेखक मुझपर आरोप लगाता है कि डा० सुमन्तके[१] सुझावको मैंने हँसीमें उडा दिया है। पत्र-लेखकको यह बात नही मालूम कि मैं डॉ० सुमन्तसे १९१५ में मिला था और तबसे मैं उन्हे आदरकी दृष्टिसे देखता आया हूँ। उनकी त्यागवृत्ति मुझे हमेशा उनकी ओर आकर्षित करती रही है। मेरा स्वभाव एक बालकके सुझावपर भी गम्भीरतासे विचार करनेका है तो फिर मैं भला डॉ० सुमन्तके सुझावको किस तरह हँसीमें उडा सकता हूँ? और फिर जिसके मनमें सेवावृत्तिके सिवा और कोई भी वृत्ति नही है वह भला किसी भी सुझावको हँसीमे क्यों उडाना चाहेगा?

उपर्युक्त आरोपसे सूक्ष्म रूपसे मेरी स्तुति की गई है। पत्र-लेखक ऐसा मानता दिखता है कि मैं सब बातोंको तुरन्त समझ जाता हूँ। मुझे स्वीकार करना चाहिए कि मुझमें ऐसी शक्ति नही है। इसके विपरीत मैं यह जानता हूँ कि कितनी ही वस्तुएँ मैं अत्यन्त परिश्रमसे ही समझ पाता हूँ। ऐसा हो सकता है कि मैं डॉ० सुमन्तके सुझावको न समझ पाया होऊँ। मैं तो इतना ही जानता हूँ कि मैंने अपने जीवनमें एक भी सुझावको तुच्छ मानकर उसकी अवज्ञा नही की है।

इसके अतिरिक्त पत्र-लेखक सलाह देता है कि मुझे गोखलेके सेवक-समाज जैसे एक सेवक-समाजकी स्थापना करनी चाहिए। यहाँ भी ऊपरकी बात लागू होती है। सत्याग्रहाश्रम सेवक-समाज ही तो है। वह संस्था जैसे भी हो मेरी शक्तिकी माप है। अपनी बुद्धिके तमाम प्रयोग मैंने वहाँ किये है और अभी भी कर रहा हूँ। उसमें निहित त्रुटियोंको मैं अच्छी तरह जानता हूँ। मैं यह कहना और स्वीकार करना चाहता हूँ कि आश्रमकी त्रुटियाँ मेरी त्रुटियोंका प्रतिबिम्ब हैं। इस आश्रमके गुण-दोषोंका मूल्यांकन करनेपर यदि गुणोका प्रमाण कम पाया जाये तो मेरा जीवन निरर्थक गया, ऐसा कहनेका जगत्‌को अधिकार है। ऐसा कहना उसका धर्म है क्योंकि उसमें मैंने अपनी आत्माको उँडेलनेका प्रयत्न किया है। वहाँ कोई मेरे आडे नही आता, वहाँ रहनवाले स्त्री-पुरुष मेरी इच्छाके अनुसार चलते हैं। मेरे द्वारा निमन्त्रित व्यक्ति अथवा मेरे द्वारा पसन्द किये गये व्यक्ति ही वहाँ रह रहे हैं। मैं नम्रतापूर्वक कबूल करता हूँ कि इससे अधिक अच्छी वस्तु निर्माण करनेकी शक्ति मुझमें नही है।

तो किसी दूसरे सेवक-समाजकी मैं किस तरह और कहाँ स्थापना करूँ? यदि स्थापना करूँ भी तो वह इसी आश्रमका प्रतिबिम्ब होगा, इसीकी शाखा-जैसा होगा।

वल्लभभाई और मैंने एक अन्य — छोटी कहो अथवा बड़ी — संस्थाकी स्थापनाका विचार करके भी देखा है। हम उसकी स्थापना करें तो धन भी मिल सकता है। लेकिन हम कोई निर्णय नही कर सके और जैसे चलता है वैसे ही चलने दिया।

१. डॉ० सुमन्त मेहता, सामाजिक और राजनीतिक कार्यकर्त्ताने सुझाव दिया था कि समाज सेवाके लिए कार्यकर्त्ता गुजरात विद्यापीठ और आश्रममें तैयार किये जाने चाहिए।'

मैं यह भी खूब जानता हूँ कि सत्याग्रहाश्रम सर्वाङ्ग पूर्ण नहीं है। यह आश्रम सब कुछ करने अथवा सबको सन्तुष्ट करनेका दावा कदापि नहीं करता। भिन्न स्वभाववाले लोगोंको जो ज्यादा अनुकूल सिद्ध हों ऐसी अनेक संस्थाओंकी स्थापना के लिए अवकाश हो सकता है; परन्तु उनका प्रणेता मैं नहीं हो सकता। वह कार्य दूसरोंका है। उन संस्थाओंमें भी यदि ऐसी कोई चीज हो जहाँ मैं उपयोगी हो सकता हूँ तो मैं उनकी उतनी सेवा अवश्य करूँगा। परन्तु प्रत्येक वस्तुका बोझ मुझपर नहीं डाला जा सकता। ऐसा करना मोह है। मेरी शक्तिकी सीमा है। यदि मैं इस सीमासे बाहर जाऊँ तो मेरा नाश हो जाये।

पत्र-लेखकने जिस त्रिविध कार्यका[1] सुझाव दिया है वह मेरे विचारानुसार तो हो रहा है। वह अभी ज्यादा सफल नहीं हुआ है, कारण अभी इतने सेवक तैयार नहीं हुए हैं। यदि प्रत्येक सेवक और सेविका विश्वासपूर्वक अपने-अपने कार्योमें लगे रहें तो सब-कुछ अपने-आप हो जायेगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १-११-१९२५

२२५. भाषण: मुन्द्रामें[2]

१ नवम्बर, १९२५

यह बात सच है, कच्छकी समस्याने समस्त हिन्दुस्तानको हिला दिया है, लेकिन मेरे लिये अन्यत्र कहीं भी ऐसे सम्बोधनके[3] उपयोगका अवसर उपस्थित नहीं हुआ, क्योंकि यहाँ इस प्रश्नने जो स्वरूप ग्रहण किया है वैसा किसी भी स्थानपर नहीं किया है। बादलोंका घिरना भुजसे आरम्भ हुआ था। मुन्द्राके लोगोंको जब यह समाचार मिला तब उन्होंने तुरन्त ही स्वागत समितिके मन्त्रीको तार भेजा कि "कहीं आप [अस्पृश्यों और सवर्णोंकी] खिचड़ी तो नहीं कर रहे हैं?" इस तरहका दोषारोपण वहीं किया जा सकता है जहाँ लोग मिथ्या वहमके शिकार होकर, एक गजको सौ गज मापते हैं। भुजमें जब शुरूमें इस बातपर झगड़ा हुआ तब मैंने भुजके लोगोंको उसका एक सीधा आसान-सा हल ढूँढ निकालनेपर बधाई दी थी, लेकिन उसके बाद अन्य स्थानोंपर लोगोंको बधाई देनेकी बात मेरे हृदयने स्वीकार नहीं की। भुजमें तो जो हुआ सो अनायास ही हो गया। लेकिन अनायास जो स्थिति उत्पन्न हुई यदि दिन-प्रतिदिन उसकी पुनरावृत्ति होने लगे और हम उसे स्थायी बना दें तो यह बधाई देनेकी बात न होकर दुःख प्रकट करनेकी बात हो जाती है। मैं तो जो सोचता हूँ

१. ग्रामीणोंके साथ बड़े पैमानेपर सम्पर्क, समाज सेवाकी तालीम और खादीका प्रचार।

२. महादेव देसाईके यात्रा-विवरणसे उद्धृत।

३. भाषणका आरम्भ करते हुए गांधीजीने सभाको इस प्रकार सम्बोधित किया था: 'अन्त्यज भाइयो और बहनो, उनके प्रति सहानुभूति रखनेवाले सज्जनो तथा अन्य हिन्दू भाई-बहनो!'

वही राजा और प्रजा दोनोंसे कहता हूँ। कारण-कि मैं एक ऐसी शक्तिके प्रति उत्तरदायी हूँ जो मेरे पल-पलका हिसाब रखती है। इसलिए मुझे आपको भी यह बता देना चाहिए कि आपका व्यवहार कैसा था और कैसा है। आपने जो तार दिया था वह शिष्टताकी मर्यादाके बाहर था। मैंने तारका उत्तर लिखवाया, 'खिचड़ी' किसीने नही की है। केवल जो लोग अस्पृश्यताको पाप समझते हैं उन्हें तो अन्त्यजोंके साथ बैठना ही पड़ेगा। लेकिन जहाँ सारी जनता ही अस्पृश्यताको माननेवाली हो वहाँ मुझे बुलाना अनुचित कहा जायेगा। जहाँ अन्त्यजोंकी अवमानना ही होती हो वहाँ मुझे बुलाना मेरा अपमान करना है। यहाँ आकर मैंने अन्त्यजोंके स्कूलकी बात सुनी। मुझे लगा कि चलो, मुन्द्रामें अन्त्यजोंकी सेवा तो की जाती है। लेकिन इस स्कूलके लिए मैं इब्राहीम प्रधान साहबको बधाई देता हूँ; इसके लिए हिन्दू जनता बधाईकी पात्र नही है। इसपर हिन्दुओंको लज्जित होना चाहिए। कोई मुसलमान मेरे लिये शिवालय बनवाये तो यह मेरे लिये शर्मकी ही बात होगी। स्कूलकी कातने और बुननेकी प्रवृत्ति देखकर मुझे खुशी हुई, लेकिन तुरन्त ही मेरे मनमें विचार आया कि मैं अथवा हिन्दू लोग इसके पुण्यके भागी कैसे बन सकते हैं? यदि मेरे बदले कोई मुसलमान गायत्री पढ़कर सुनाये तो इससे मेरा काम कैसे चल सकता है? मैं तो तभी सन्तुष्ट होऊँगा जब कोई ब्राह्मण आकर गायत्रीका उद्घोष करे। लेकिन यहाँ तो जो काम हिन्दुओंके करनेका था उसे खोजा लोग कर रहे हैं। यहाँ तो अन्त्यजोकी किसीको कोई परवाह नही है। मेरे सामने ये जो अन्त्यज बैठे हैं, मेहमानोके अलावा मुझे उनके बीच कोई अन्य अन्त्यजेतर बैठे दिखाई नही देते। जो लोग दिन-भर मेरे साथ घूमते रहे हैं वे भी अन्त्यजोंको छोड़कर भद्रजनोंके घेरेमें बैठे हुए हैं। आज अगर आप मेरे हृदयको चीरकर देखें तो आप पायेंगे कि वह रो रहा है। वह रो-रोकर कह रहा है, हे भगवान्! यह हिन्दू धर्म कैसा है, जहाँ अन्त्यजोंकी किसीको कोई परवाह नही। नगर-भरमें अन्त्यजोकी सहायतार्थ आगे आनेवाला एक भी व्यक्ति नही है।

मतभेद और मतभेद

मतभेद सब जगह होता है। लेकिन मतभेदमें भी मर्यादा तो होनी ही चाहिए। जहाँ मतभेद इतना ज्यादा हो कि मिलनेकी कोई गुंजाइश ही न हो वहाँ मुझे बुलानेका सवाल ही नही उठता। मुझमें और अली भाइयोंमें बहुत निकटका सम्बन्ध है। किन्तु धर्मकी बातोमें हम एक दूसरेके साथ बहस नही करते। अपने अहिंसाके धर्मको मैं उन्हे किस तरह समझा सकता हूँ? केवल अपने व्यवहारसे ही मैं इन्हे बता सकता हूँ कि मेरे धर्ममे क्या है? इससे आगे जाऊँ तो मैं अपनी मर्यादाका भग करूँगा और वे भी मर्यादाका भंग करेंगे। इनके मनमें भले ही यह बात उठती हो कि मैं मुसलमान बन जाऊँ, लेकिन मेरे कानमें किसी भी दिन इन्होंने यह नही कहा कि तू मुसलमान बन जा, तू कलमा पढ। यदि वे ऐसा करे तो मैं अपनी बच्चीको उनकी गोदमें कैसे बिठा सकता हूँ। कोई किसीसे धर्म छोडनेकी बात करके धर्मका अपमान नही कर सकता। मौलाना शौकत अलीका शरीर भारी है। नमाज पढ़नेके

लिए उन्हें झुकना भी कठिन पड़ता है तथापि यात्रामें भी पटियापर बैठकर जैसे-जैसे नमाज पढ़ लेते हैं और इस तरह मुझे बताते हैं कि उनका धर्म कैसा है? मैं भी अपने व्यवहारसे उन्हे बताता हूँ कि मेरा धर्म कैसा है। आइए, इस तरह हम एक दूसरेसे सीखें और अपने सम्बन्ध मधुर बनायें, लेकिन मुझे इस तरह बुलाकर सम्बन्ध मधुर नहीं बनाये जा सकते। आपका धर्म जुदा है, मेरा जुदा है। हम एक दूसरेके प्रति प्रेमभाव रखें लेकिन हमारे बीचमें मेल नही हो सकता। हमारे बीच छोटी-मोटी खाड़ी नही बल्कि विशाल समुद्र पड़ा हुआ है। फलतः आप मुझे इस तरहके स्वागतको स्वीकार करनेके लिए बुलाये इसकी अपेक्षा मेरे विचार सुननेके लिए आप साबरमती आये, यह ज्यादा उचित है। मुझे तो जिसे अन्त्यज-सेवा प्रिय हो, जिसे अन्त्यज-सेवाके सम्बन्धमें कुछ जानना हो वे ही बुलायें। लेकिन जो लोग पल-भरके लिए भी अन्त्यजोंके पास नही बैठ सकते, वे किसलिए बुलाये? आज तो आप जिस धर्मका पालन कर रहे हैं उस धर्मको देखकर मेरे मनमें होता है कि उस धर्मका नाश हो। जैसे बोअर युद्धके समय एक अंग्रेज प्रार्थना किया करता था कि मेरा देश हार जाये, जैसे भीष्म कौरवोंके साथ थे लेकिन उनका आशीर्वाद पाण्डवोंके लिए था, — जैसे कृष्ण भगवानका आशीर्वाद केवल पाण्डवोंके लिए ही था वैसे ही ईश्वरके निकट मेरी यही प्रार्थना रही है कि यदि हिन्दू धर्म ऐसा ही है तो उसका नाश हो जाये। मैंने तो अपनी पत्नीसे कहा कि यदि तेरा और मेरा धर्म अलग-अलग हो तो हम अलग-अलग कुटिया बनाकर रहेंगे। यह उचित होगा; लेकिन तू मुझसे यह आग्रह न करेगी कि आप लक्ष्मीको[1] अपने साथ न रखें और मैं भी आग्रह नही करूँगा कि तू लक्ष्मीको अपने साथ रख। यदि आप सभी लोग अन्त्यजोंको अस्पृश्य मानते हों तो आपका यह धर्म था कि आप दूर बैठे-बैठे मेरे लेखोंको पढ़कर मेरे विचारोंको जाननेका प्रयत्न करते; दूरसे ही मेरे दर्शन करते। मैं तो हिन्दुस्तानका गुलाम हूँ। मैं अपने धर्मकी सेवा करते हुए, इस धर्मका पालन करते हुए अकेला भी खडा रह सकता हूँ। लेकिन अपना धर्म छोड़कर फिर चाहे उसमे सारी दुनिया भी मेरा साथ दे मैं जीवित नही रह सकता। इसलिए आपका धर्म यह था कि आप मुझे स्पष्ट रूपसे कह देते कि "तुम्हें यहाँ आनेकी जरूरत नही है। अमेरिकाके लोग तुम्हे 'महात्मा माने तो माने'। आप मुझे 'विश्ववैद्य' कहते हैं; इसका अर्थ क्या है? मुझमें यदि कुछ भी वन्दनीय है तो यह मेरा सत्याग्रह है। सत्याग्रह यानी अंग्रेजोंके विरुद्ध विद्रोह नही। सत्याग्रह यानी धर्मकी वह अनुभूति जो १९८७ मे मुझमें उत्पन्न हुई थी और जो अबतक बढ़ती रही है।" १९८७ में मेरी जातिके लोगोंने विलायत जाने-पर मुझे जातिसे बाहर निकालनेकी धमकी दी थी। मैंने उनसे कहा कि आप भले ही मुझे जातिसे बहिष्कृत कर दें, मैं तो विलायत जाऊँगा। मेरा सत्याग्रह तबसे शुरू हुआ। सरकारके साथ सत्याग्रह तो मेरे सत्याग्रहका अंश-मात्र है। मेरा पहला सत्याग्रह तो जातिके पंचोंके खिलाफ था जिन्हे मैं पितातुल्य मानता था। इस सत्याग्रहको समझनेकी खातिर आप मुझे बुला सकते थे। मुझमें जो मूल्यवान है वह यह सत्याग्रह

१. एक अन्त्यज बाला।

और उसके साथ संयुक्त मेरा अन्त्यज-प्रेम और खादी-प्रेम ही है। यह आपको प्रिय हो तो ही आप मुझे अपना मान सकते हैं।

वे [अन्त्यज] यदि सुई चुराते हैं तो हम निहाईकी चोरी करते हैं और बदलेमें कुछ नही देते। आपने अपने लाखों रुपये कहाँसे प्राप्त किये हैं? खड़गपुर, कलकत्ता, जजीबार, दक्षिण आफ्रिका आदि स्थानोमें मुझे कच्छी लोगोंने बहुत पैसा दिया किन्तु उन्होंने क्या कोई शर्त रखी थी? तथापि आज कच्छमें आकर मुझे ऐसे कटु वचन सुनने पडते हैं और वह भी करोड़पतियोंसे। मुझे कोई अन्त्यज पैसा दे तो वह कह सकता है कि मेरी कमाईके पैसेको कच्छमें ही लगाना, लेकिन गरीब अन्त्यजोंने तो ऐसी कोई शर्त मुँहसे नही निकाली। बेचारे गोकुलदासको आपने ५०० रुपये भेजे; वे आप गिनाते हैं और कहते हैं कि ये ५०० रुपये और ले लो। इसकी अपेक्षा आप मुझसे यह क्यों नही कहते कि हमें आपको कुछ नही देना है। मुझे वणिक वृत्ति अच्छी नही लगती। बनियोंके कुलमें जन्म लेकर मैंने वणिक विद्याको जाना और उसे तिलाजलि दे दी। मै काठियावाड़में पला-बढा इसलिए राजनीतिक दाँव-पेंचोंको भी मैंने जाना। किन्तु मैंने उन्हें भी तिलांजलि दे दी। आज तो मैं हरएकसे, वह करोड़पति हो या बादशाह या कोई गरीब, नि.संकोच कहता हूँ कि मेरे साथ बनिया-पन मत करो, चालाकी मत करो, चतुराई मत दिखाओ; सीधा हिसाब रखो।

मै तो गायकी रक्षाके लिए चमड़ेका धन्धा सीखना चाहता हूँ।[1] जो शिक्षक [आपसे] अपना धन्धा भुलाकर पढनेकी बात कहता है उससे कहो कि पहले हमें धन्धा सिखाओ, पढनेकी बात बादमे करना। अब ऐसा जमाना आ रहा है जब अन्त्यजोंको ही नही बल्कि प्रत्येक हिन्दूको गायको बचानेकी खातिर ही चमड़ेका धन्धा सीखना पडेगा। धन्धेमे कोई अपमानकी, लज्जाकी बात नही है। क्या मैंने पाखाना नही उठाया है? मैंने तो आप-जैसे अनेक लोगोंका पाखाना उठाया है, और इसीलिए आज दौलतराम-जैसे नागर ब्राह्मणसे अपना पाखाना उठवाता हूँ। नही तो कहाँ ये ब्राह्मण और कहाँ मैं? अगर पाखाना किसीको उठाना चाहिए तो मुझे इनका उठाना चाहिए। लेकिन इन्हे अपना उठाने देता हूँ और लज्जित नहीं होता, क्योंकि आप-जैसे अनेक लोगोंका पाखाना उठाते समय मैंने लज्जाका अनुभव नही किया और आज भी नही करता हूँ। इसमें लज्जाकी कोई बात नही है; बल्कि यह हमारी सेवा है। माँ इसीलिए प्रात.स्मरणीय बनती है कि वह हमारा मैला उठाती है। वैसे ही हम भंगीको क्यों न प्रात.स्मरणीय मानें।

यहाँ आकर आज मैं कच्छके लोगोकी कजूसीका और निर्दयताका अनुभव कर रहा हूँ। आप 'भगवद्गीता'के श्लोकोंका पाठ करते है, गायत्री मन्त्रका जाप करते हैं, नवकार मन्त्र पढ़ते हैं — लेकिन अन्त्यजके लिए आपके हृदयमें स्थान नहीं है। यह हिन्दू धर्म नही है, जैन धर्म नही है। जो खटमलको बचानेको तैयार होता है वह अन्त्यज रूपी गरीब गायको बचानेके लिए तैयार क्यों नही होता? आप कुछ तो

१. अन्त्यज पाठशालाके एक विद्यार्थीने कहा था कि अब मैं चमड़ेका धन्धा नहीं करूँगा; अब तो मैं पढ़ूँगा। उस विद्यार्थीके इसी कथनको ध्यानमें रखकर गांधीजी यह बात कह रहे हैं।

सीखिये। मेरे पास सीखनेकी चीज मेरा लड़नेका बल नहीं, मेरा प्रेम है। लड़नेका बल तो मेरे जीवनका अंश-मात्र है। यह बल भी मेरे सत्यसे ही निःसृत हुआ है, मेरी दयासे, मेरे प्रेमसे उत्पन्न हुआ है। इस प्रेमके बिना मेरी सारी लड़ाई और लड़नेका प्रयास व्यर्थ है। इस प्रेमको जीवनमे उतारनेवाला व्यक्ति ही अन्त्यजोंका और गायका आशीर्वाद ले सकेगा। आप अपने नेत्रपटल खोलिए। उस परदेको हटाइये जिसने आपके हृदयको ढँक रखा है। कुछ तो चेतिए। ईश्वर आपका कल्याण करे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ८-११-१९२५

२२६. कच्छके संस्मरण – १

२ नवम्बर, १९२५

आशाका हवाई किला

कच्छ आनेके लिए स्टीमरपर सवार होनेके पहले ही मैंने सहज भावसे यह कहा था कि मुझे यह खबर नहीं है कि मैं कच्छ किसलिए जा रहा हूँ। और अब इस लम्बे सफरको पूरा होनेमे केवल एक ही दिन बाकी है, फिर भी मैं यही सोचता हूँ कि मैं यहाँ किसलिए आया था? हरएक जगह जानेके पहले मैं यह विचार कर लेता हूँ कि मुझे वहाँ क्या करना होगा और मुझे वहाँसे क्या आशा रखनी चाहिए। कच्छके बारेमें तो मुझे कुछ भी खबर न थी। सिर्फ कुछ कच्छी मित्रोंके प्रेम और आग्रहके वश होकर ही मैं कच्छ आनेके लिए तैयार हुआ था। 'कुछ' शब्दका मैंने जानबूझकर प्रयोग किया है। क्योंकि मैंने यहाँ आकर देखा कि कुछ लोगोंने तो यह भी कहा कि मुझे कच्छ बुलानेके पहले उनसे कुछ भी पूछा नहीं गया था; उन्हें तो आखिरकार लोगोंका साथ ही देना पड़ा था। मैंने तो बिना किसी आधारके ही आशाके हवाई महल बनाये थे। इसलिए अब ऐसा मालूम होता है कि मानो मेरे चारों ओर निराशा ही निराशा है। लेकिन 'गीता' जिसकी मार्गदर्शक हो उसे कभी निराश नहीं होना पड़ता है; अथवा यों कहें कि उसे कभी आशा रखनी ही नहीं चाहिए। इस बार मैंने आशाका हवाई किला बना लिया था, इसलिए 'गीता' का गायक हँसता हुआ लेकिन लाल-लाल आँखें दिखाकर यह कह रहा है कि "तू भूला क्यों? अब अपनी भूल की सजा भी भोग। आशा रखी थी इसलिए अब कटु निराशाका भी अनुभव कर। तुझे इस बातका अनुभव तो है ही कि निराशासे आरम्भ करनेपर उसके फल बड़े मधुर होते हैं। अब फिर भूल न करना। निराशा भी मनकी एक तरंग है। इसलिए जो सावधान रहता है उसे कभी निराशा नहीं होती; क्योंकि वह आशाको मनमें कभी स्थान नहीं देता।"

यह तो हुई तत्वज्ञानकी, अध्यात्मकी बात। आत्माके आनन्दके लिए इसकी आवश्यकता थी। अब इतिहास कहता हूँ।

कच्छके रास्ते

माण्डवी, भुज, कोटडा, कोठारा, वीझाण, नारणपुर, डुमरांव, गोधरा, माडवी, खाखर, भुजपर, मुन्द्रा, केरो, भुज, क्रोकवा, अंजार और तुणी हमारी यात्राका यह क्रम निर्धारित हुआ था। यह मै मुन्द्रामें लिख रहा हूँ, पूरा होगा भुजमें और अजार पहुँचनेके पहले डाकमें हाल दिया जायेगा।

यात्राके पहले चौबीस घटे तो बहुत शान्तिसे, मानो एक क्षणमें बीत गये।[1] माण्डवी पहुँचनेपर अव्यवस्था आरम्भ हुई — पहले लाचमें बैठे, फिर मछवामें[2], फिर तरीमें[3], उसके बाद रथमें और फिर घोड़ा-गाड़ीमें। रथको पानीमें से चलना पडा था। यात्राके इस हिस्सेको मैने अव्यवस्था कहा है, क्योंकि इस व्यवस्थामें कोई नियम नही था। लोगोंका शोरगुल इतना ज्यादा था कि एक वाहनसे उतरकर दूसरे तक पहुँचना कठिन हो जाता था। यहाँ मैंने एक पुरानी गोदी देखी किन्तु आजकल उसका उपयोग नही होता।

हम २२वी अक्तूबरको माण्ड्वी पहुँचे थे। आज दूसरी नवम्बर है। हिन्दुस्तानके दूसरे भागोंमें तो अबतक मैंने बहुतसे गाँवोंको देख लिया होता। लेकिन कच्छमें जिस-पर मोटर जा सके ऐसे रास्ते बहुत कम हैं, शायद तीन या चार ही होगे। रेल-गाडी तो उससे भी बहुत कम चलती है। भुजसे तूणी बन्दर या खारी बन्दर जानेके लिए ही रेल है। माण्डवीसे भुज, भुजसे कोटडा, और मुन्द्रासे भुज जानेके लिए ही मोटरमें सफर किया जा सकता है। दूसरी जगहोंको जानेके लिए तो बैलगाडीकी ही जरूरत होती है और मार्ग बड़े विकट होते है। हरएक जगह जहाँ देखा वहाँ, रेत और धूल का तो कुछ ठिकाना ही न था। बैलगाड़ी भी एक छोटा-सा इक्का होता है और उसमें केवल एक ही मनुष्य शान्तिसे बैठ सकता है, वह उसमें सो नही सकता है। पहले ही दिन मोटरसे जानेपर भी, मेरा हाल तो खराब हो गया था। कुछ बुखार-सा भी आ गया था। इसलिए बादमें स्वागत-समितिने मोटरमें या बैलगाड़ीमें मेरे सोनेके लिये भी व्यवस्था की थी। मेरे लिए वे एक बडी बैलगाड़ी अर्थात् रथ ले आये थे। कोटडासे कोठारा जानेका रास्ता बहुत ही खराब था इसलिए मुझे आधा रास्ता पालकीमें तय कराया गया था। पालकीमें बैठना मुझे पसन्द न था लेकिन यहाँपर या तो बीमार पड़ना, या कोठारा जाना ही छोड देना; या फिर पालकीमें बैठनेकी बात स्वीकार करना, तीनमें से एक बात पसन्द करनी थी। मेरी बीमारीका जोखिम उठानेके लिए स्वागत समिति भी तैयार न थी। इसलिए मैंने पालकीमें बैठना स्वीकार किया। मुझे यहाँपर स्वीकार कर लेना चाहिए कि मुझे कोठाराकी तरफसे बहुत बड़ा लालच दिया गया था। वहाँ बड़े अच्छे कार्यकर्त्ता हैं, वहाँ बहुत रुपये मिलेंगे और जहाँ जानेपर मैं कच्छके दुष्कालके बारेमें भी बहुत-कुछ जान सकूँगा आदि अनेक बातें मुझसे कही गई थी। इसलिए मैं पालकीके

१. गांधीजी कच्छकी यात्रापर बम्बईसे एक स्टीमरमें २१ अक्तूबर, १९२५ को रवाना हुए थे और दूसरे दिन माण्डवी पहुँचे थे।

२ और ३. छोटी नावोंके प्रकार।

जालमें फँस गया। पालकी उठानेवाले कहार राज्यके मुँहलगे मालूम होते थे। वे रास्तेभर स्वयंसेवकोंपर सरदारी दिखाते थे और यदि वे कुछ कहते तो क्रोध करते थे और उन्हे बहुत-कुछ सुनाते थे। रास्तेभर उन्होंने, क्लेश और असन्तोष प्रकट किया। ऐसे मनुष्योंके द्वारा उठाया जाना मुझे बहुत अखरा। पैदल चलनेकी इच्छा हुई, लेकिन यह हो ही कैसे सकता था? यह तो केवल झूठा दिखावा होकर ही रह जाता। इसलिए जिस प्रकार शवको ले जाते हैं और वह कुछ भी नही बोलता उसी प्रकार मैं भी चुपचाप पड़ा सुनता रहा। अब फिर कभी पालकीमें बैठनेके पहले मैं सौ वार सोचूँगा।

मेरे सम्वन्धमें जो वहुतसे वहम प्रचलित हैं उनमें से एक यह भी है कि मुझे मोटर, रेल इत्यादि विलकुल ही पसन्द नहीं है। एक भाईने गम्भीरतापूर्वक मुझसे यह भी प्रश्न पूछा था कि मुझे कच्छके जैसे रास्ते पसन्द है या पक्की सड़कें? यह वहम दूर करनेका मुझे यह ठीक अवसर मिला है। मेरा यह विश्वास है कि मानव-जातिकी सभ्यताके लिए न रेलकी आवश्यकता है और न मोटरकी। लेकिन यह तो एक आदर्श परिस्थितिकी वात हुई। आज तो हिन्दुस्तानमें रेलने घर कर लिया है और जहाँ सव जगह रेल और मोटरें हैं वहाँ एक ही शहरको रेलसे अलग रखनेकी वेवकूफी मैं कभी नही करूँगा। माण्डवीतक यदि स्टीमरें जाती हैं तो फिर वहाँसे भुजतक रेलगाडीका मै द्वेष नही करूँगा वल्कि मै उसे पसन्द ही करूँगा। और यही मोटरके वारेमें भी। मैं मानता हूँ कि पक्की सड़कें तो होनी ही चाहिए। मोटर और रेलसे वेग वढ़ता है; लेकिन उसमे धर्म कुछ नही है। लेकिन पक्की सड़कें वनवानेसे तो धर्मकी भी रक्षा होती है। कच्चे धूलसे भरे हुए रास्तोंमें जानवरोंको कितनी तकलीफ होती है? मैं बैलगाड़ी और बैलगाड़ीके रास्तेमें हमेशा ही सुधार करना चाहूँगा। अच्छे रास्ते होना सुव्यवस्थित राज्यका भूषण है। पक्के और अच्छे रास्ते वनवाना राजा और प्रजा, दोनोंका फर्ज है। मोटरके लिए पक्की सडकें होनी चाहिए तो जानवरोंके लिए क्यों नही चाहिए? क्या वे वोल नही सकते हैं इसलिए? यदि राजा यह साहस न करे तो धनिक वर्ग क्यों न करे? कच्छमें इतना साहस करना आसान है; क्योंकि वहाँके एक गाँवसे दूसरेके बीचका अन्तर कोई बहुत बडा नहीं है। प्रजाके लिए ऐसा साहस करना कठिन अवश्य है लेकिन अशक्य नही है। पहले तो यह वात प्रजाको राजाके सामने ही पेश करनी चाहिए।

अन्त्यज प्रश्न

अन्त्यज प्रश्नके सम्वन्धमे कच्छमें जो कठिनाइयाँ उपस्थित हुईं, वैसी कठिनाइयोंका मुझे और कहीं भी अनुभव न हुआ था। कच्छके अन्त्यजोंमें जागृतिका होना भी इसका एक कारण है। प्रत्येक स्थानकी सभामें उनके झुण्डके-झुण्ड आते थे, उन्हें स्वयंसेवकोंने इसके लिए उत्साहित भी किया था। लेकिन दूसरी तरफसे स्वागत-समितिने सबको खुश रखनेकी नीति ग्रहण की थी। इसलिए सब जगह एक ऐसा पक्ष खड़ा हो गया था जो अन्त्यजोंके साथ वैठनेमें विरोध करता था। यह विरोध मैंने भुजमें पहली बार देखा। लेकिन मैंने यह मान लिया था कि वहाँ उसका निवटारा अच्छी तरहसे हो

गया है। किन्तु मैंने देखा कि आखिर उसका अनर्थ किया गया। भुजमें जो बात शोभास्पद मालूम हुई थी वही और दूसरी जगहोंपर अविवेकयुक्त और निष्ठुर प्रतीत हुई। सभी जगहोंपर लगभग दो विभाग हो गये और आखिर स्वागत समिति भी ऐसी ही बन गई, मानो वह अस्पृश्यताको धर्म मानती हो। हरएक जगहके अनुभव विचित्र, करुण और हास्यास्पद थे। हास्यास्पद इसलिए कि किसीने भी जानबूझकर अविवेक नही किया था। कुछ तो मेरे व्याख्यानोंका अनर्थ हुआ था और कुछ जगह लोगोने निर्दोष बुद्धिसे ही किन्तु बडा अविवेक दिखाया था।

मैं यहाँ अलग-अलग हर जगह मुझे क्या अनुभव हुए, इसका वर्णन नही करना चाहता। महादेव देसाईके यात्रा-विवरणमें यथास्थान उनका उल्लेख हुआ ही है। मेरे मनपर कुल मिलाकर जो छाप पडी है, इतना ही मैं बताना चाहूँगा और सो भी यह स्पष्ट करनेके लिए कि यदि इसपर से कोई यह मान ले कि कच्छमें अस्पृश्यताका बहुत जोर है तो यह गलत होगा। यदि स्वागत समितिके प्रधान-प्रधान व्यक्तियोंने कमजोरी न दिखाई होती और भुजमें मैंने जो कार्य किया था उसका दूसरे स्थानोंमें अनर्थ न किया गया होता तो कच्छके लोगोंकी ऐसी हँसी कभी न होती। कच्छके शहरोंमें भी अन्त्यजोका मोहल्ला अलग होता है। अंजार और मुन्द्रामें भी मैंने यह देखा। भाटिया समाजके एक सज्जन द्वारा अन्त्यज बालकोंके लिए एक बाल-आश्रम भी चलाया जा रहा है। बाल-आश्रमके पास ही अन्त्यजोंका मोहल्ला है। यहाँके अन्त्यज भी काठियावाड़के अन्त्यजोंके बनिस्बत ज्यादा निडर मालूम हुए। शायद कुछ अधिक बुद्धिमान भी होंगे। बहुतसे अन्त्यज बुनाईका काम करते हैं। भुजमें तो एक अन्त्यज कुटुम्ब बढ़ईका काम करता है। कच्छमें सभाओमें जिस तादादमें अन्त्यज लोग आते थे, उन्हे उतनी तादादमें और कही भी आते हुए मैंने नही देखा। सभाओंमें अन्त्यजोंसे प्रश्न पूछता था और वे निर्भय होकर बडे विचारके साथ उसका उत्तर देते थे। वे अपनी तकलीफें भी समझाते थे। माण्डवीके अन्त्यजोमें से कोई २५ कुनबों अर्थात् १०० आदमियोंने मद्य-मासादि न खानेकी और खादी पहननेकी प्रतिज्ञा ली थी। अजारमें भी बहुतसे अन्त्यजोंने एक विशाल सभाके समक्ष मुर्दार मास न खानेकी और मद्यपान न करनेकी प्रतिज्ञा ली। मुझे कुछ ऐसा भास होता है कि कच्छके अन्त्यजोंमें मद्य-पानका रिवाज कुछ कम है। साधारण जनसमाजमें तो अस्पृश्यता दिखाई भी न देती थी। केवल उच्च मानी जानेवाली कौमें, जैसे ब्राह्मण, बनिये, भाटिया और लोहाना ही अस्पृश्यताका ढोंग करते हुए दिखाई देते थे। ढोग इसलिए कहता हूँ कि बहुतेरे तो केवल डरके मारे भद्र लोगोंमें जाकर बैठे थे। उनमें से बहुतसे लोगोंने मुझसे यह कहा था कि वे अस्पृश्यताको नही मानते लेकिन उन्हें जातिसे बहिष्कृत हो जानेका डर है; इसीलिए वे जाहिरमें उसका विरोध नही कर सकते। जो जुलूस निकलते थे उनमें अन्त्यज लोग भी शामिल हो जाते थे और इसपर कोई एतराज नही करता था। और यह तो मैंने कई जगहोंपर देखा कि वहाँ उच्च वर्णके युवक निर्भय होकर अन्त्यजोंकी सेवा कर रहे हैं। इसलिए यद्यपि कच्छमें अन्त्यजोंके सम्बन्धमें कुछ दु:खद अनुभव अवश्य हुए हैं फिर भी वहाँ

अस्पृश्यताका जोर भी बहुत-कुछ कम हो गया है। कुछ धर्मान्ध लोग उसको पकड़े बैठे हैं लेकिन उनका यह प्रयत्न निरर्थक है।

मुन्द्राका अनुभव तो सबसे कड़वा रहा। वहाँ तो दंभ, कृत्रिम दिखावा और नाटक ही देखा। वहाँ तो उन्होंने मुसलमानोंको भी स्पर्शास्पर्शको माननेवालोंके वाड़ेमें बिठाया था मानो वे भी अस्पृश्यताका पालन करते हों। परिणाम यह हुआ कि अन्त्यजोंके विभागमें केवल मेरे साथी और मुसलमान स्वयंसेवक ही रह गये थे। हिन्दू स्वयंसेवकोंमें अधिकांश यद्यपि, जैसा कि उन्होंने स्वयं कहा था, अस्पृश्यताको बिलकुल न माननेवालोंमें से थे किन्तु उन्हे उसी स्पर्शास्पर्शको माननेवालोंके ही वाड़ोंमें बिठाया गया था।

मुन्द्रामें एक अन्त्यज पाठशाला चलती है किन्तु उसे एक उदार मुसलमान सेठ इब्राहीम प्रधान अपने पैसेसे चलाते हैं।

यह पाठशाला बहुत हदतक अच्छी कही जा सकती है। बालकोंको बहुत साफ रखा जाता है। मकान शहरके मध्य भागमें है। बालकोंको संस्कृतके श्लोक भी रटाये गये थे; अलबत्ता उनका उच्चारण बहुत टूटा-फूटा था। कताई, धुनाई, ओटाई और बुनाईकी क्रियाएँ पाठशालामें ही होती थी। एक ही कमी थी — बालकोंकी पोशाक खादीकी न थी। किन्तु संचालकोंने जो कपड़ा पहना था वह उसे शुद्ध खादी मानकर ही पहना था। पाठकोंको लगेगा कि इस पाठशालाको देखकर तो अवश्य ही मुझे सन्तोष हुआ होगा। लेकिन मुझे सन्तोष नहीं हुआ, उलटा दुःख हुआ। कारण, इसका श्रेय अथवा पुण्य किसी हिन्दूके हिस्से नहीं आता। पाठशालाका खर्च उठानेवाले सेठका नाम ऊपर दे चुका हूँ। संचालक आगाखाँके मुन्द्रा-स्थित प्रतिनिधि हैं। सेठ इब्राहीम प्रधान अपनी दानशीलताके लिए हमारे धन्यवादके पात्र हैं क्योंकि मुझे बताया गया है कि यह पाठशाला अन्त्यजों अथवा उन बालकोंको मुसलमान बनानेके लिए नहीं चलाई जाती। उसे चलानेमें संचालकोंका उद्देश्य यही है कि उन्हें हिन्दूके रूपमें अपनी उन्नति करने योग्य बनाया जाये। मुन्द्राके निवासियोंने मुझे यह भी बताया कि संचालक श्री मेघजी वेदान्ती और ज्ञानी हैं। यह सब अवश्य सन्तोषप्रद कहा जायेगा। किन्तु इसमें हिन्दुओंने तो कुछ किया नही। अस्पृश्यता हिन्दूधर्मका मैल है, हिन्दू धर्मका पाप है। इसका प्रायश्चित्त तो हिन्दुओंको ही करना होगा। मेरे शरीरका मैल मैं स्वयं ही निकालूं तभी निकलेगा। यह संस्था सेठ इब्राहीम प्रधानके लिए जितनी सम्मानजनक है, हिन्दुओंके लिए उतनी ही लज्जाजनक।

लेकिन जिस तरह इस यात्रामें दुर्भाग्यवश ऐसी कुछ दुःखद चीजें देखनेमें आईं उसी तरह बहुत-कुछ ऐसा भी हुआ जो सुखद था। 'नवजीवन' के पाठक श्री जीवराम कल्याणजीके नामसे तो परिचित ही हैं। अन्त्यजोंकी सेवाको उन्होंने अपना धर्म बना लिया है। उनकी दानशीलता प्रशंसाके योग्य है लेकिन यह उनका सबसे बड़ा गुण नहीं है; उनका सबसे बड़ा गुण तो उनका स्वयं सेवा करनेका आग्रह है। वे अपना धन और अपना समय खादी और अन्त्यजोंके कार्यमें लगाते हैं। माण्डवीके श्री गोकलदास खीमजी भी निर्भय भावसे खूब अन्त्यज सेवा कर रहे हैं। वे एक सुन्दर अन्त्यज

पाठशाला चला रहे हैं और उसका सारा खर्च स्वयं उठाते हैं। ऐसे निष्ठावान अन्त्यज सेवक मैंने कच्छमें जगह-जगह देखे। अतः कुल मिलाकर वहाँ अस्पृश्यता-निवारणके सम्बन्धमें मैं निराशाका कोई कारण नहीं देखता। सभाओंमें जब-तब जो लज्जाजनक दृश्य देखे गये, उन्हें मैं क्षणिक मानता हूँ। स्थायी कार्य तो हो ही रहा है और मुझे इसमें कोई शंका नहीं है कि वह होता रहेगा।

लेकिन राज्यकी ओरसे अन्त्यजोंको काफी कष्ट है। अन्त्यजोंके सम्बन्धमें वहाँ एक कानून है जिसे कुछ भाइयोंने तो व्यभिचार [सम्बन्धी अपराधोंके लिए दण्ड देने]का इजारा कहकर वर्णित किया है। उस कानूनके अनुसार अन्त्यजोंमें व्यभिचारकी जो घटनाएँ होती हैं, उनके अपराधियोंको सजा दी जाती है। ऐसे अपराधियोंको सजा देनेका यह कार्य कुछ लोगोंको इजारेकी तरह सौंप दिया जाता है। होता यह है कि जो सबसे ज्यादा पैसा देता है, उसे राज्य अधिकार देता है कि ऐसे अपराधियोंको वही पकड़ सकता है और अपराधके लिए उनपर जो जुर्माना किया जायेगा उसकी रकम भी उसीको मिलेगी। परिणाम यह होता है कि ऐसे अपराधोंको बढ़ाना उक्त इजारेदारका धन्धा हो जाता है। वह जहाँ व्यभिचार न हो वहाँ उसे पैदा करके या झूठमूठ उसका आरोपण करके पैसा कमाता है। अन्त्यजोंको इससे बहुत कष्ट है।

बुनकरोंको भी ऐसी ही एक अन्य तकलीफ भोगनी पड़ रही है। तकलीफ यह है कि जिन साहूकारोंसे उन्होंने पैसा लिया हो उनका पैसा जबतक पूरा चुक नहीं जाता तबतक वे दूसरोंके लिए नहीं बुन सकते। इसलिए उन्हें अपने इन एक-दो साहूकारोंका गुलाम होकर रहना पड़ता है। वे उसे उसके कामका जितना पैसा दें उतना स्वीकार करना और उन्हींके लिए बुनते रहना पड़ता है। साहूकार अपनी रकमपर उनसे मनचाहा ब्याज माँगता है और उनके कामका उन्हें मनचाहा दाम देता है। फलतः साहूकारोंके पंजेसे अन्त्यज छूट ही नहीं सकते। इससे हैरान होकर कईको तो अपना धन्धा ही छोड़ देना पड़ा है। कच्छमें हजारों अन्त्यज बुनकर हैं और यदि ऐसा निर्दय कानून न हो तो वे सुखपूर्वक अपनी जीविका चला सकते हैं। मैं आशा करता हूँ कि कच्छ-नरेश इन दुखी लोगोंको इन दो आपत्तियोंसे मुक्त करेंगे। मैंने उनके सामने इन दोनों शिकायतोंको पेश तो किया ही है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १५-११-१९२५

२२७. भाषण : अंजारमें[1]

२ नवम्बर, १९२५

कच्छमें यह मेरी अन्तिम सभा है। अभी कार्यक्रममें दो-तीन चीजें रह गई हैं परन्तु सभा तो यह अन्तिम ही है। अब मेरी इच्छा यह नहीं है कि मैं जो बातें अनेक सभाओंमें अनेक ढंगसे कह चुका हूँ, उन्हें फिर दोहराऊँ। मेरे विचार आप अनेक स्थानोंपर अनेक प्रकारसे जान चुके हैं — उन्हें बार-बार सुनाना निरर्थक है।

मैं इतना ही कहता हूँ कि जिस तरह समस्त भारतवर्षमें उसी तरह कच्छमें भी प्रत्येक स्थानपर मैंने अपने प्रति प्रेम — और केवल प्रेमभावका ही अनुभव किया है। मुझे अपने लिये जितनी सेवाकी जरूरत है उससे कहीं अधिक सेवा मुझे कच्छसे प्राप्त हुई है। प्रत्येक स्थानपर भाई-बहनोंने मुझे सुखी करनेमें, मेरी निजी आवश्यकताओं-

१. महादेव देसाईने अपनी टिप्पणियोंमें कट्टरपंथी हिन्दुओंकी इस सभाकी पूर्व-पीठिकाका वर्णन किया है। इससे इस बातपर भी प्रकाश पड़ता है कि अस्पृश्यता-निवारणके काममें गांधीजीके सामने यहां किस प्रकारकी कठिनाइयाँ आने लगी थीं। यहाँ उसका जो अंश दिया जा रहा है उससे इस समस्याके प्रति गांधीजीके अपने रवैयेका भी खुलासा होता है। अंश इस प्रकार है :

"उन्होंने (गांधीजीने) कट्टरपंथियोंके अध्यक्षको, जो हमारे मेजबान भी थे, सुझाव दिया कि कट्टर-पंथियोंकी सभा करने और मानपत्र भेंट करनेका खयाल छोड़ दिया जाये और उसके बदले अस्पृश्योंके हल्केमें एक आम सभा बुलाई जाये, और तब अगर जरूरी हो तो कट्टरपंथियोंके साथ भी एक विचार-गोष्ठी आयोजित की जाये। इसपर अध्यक्षने कहा : "लेकिन हमने तो पहलेसे ही सारा इन्तजाम कर रखा है। अगर हम आपके कुछ विचारोंसे सहमत न हों तो इसमें अस्वाभाविक क्या है? हम आपका सम्मान करना चाहते हैं और आपको हम लोगोंको आपकी सलाह सुननेके सौभाग्यसे वंचित नहीं करना चाहिए।" गांधीजीने कहा : "लेकिन जब आप उसी चीजको स्वीकार नहीं करते जो मेरे हृदयको सबसे अधिक भाती है, जब आप उन्हीं लोगोंका अपमान करते हैं जो मुझे प्राणोंसे भी प्यारे हैं, तब फिर मेरा सम्मान करनेमें क्या तुक है? और फिर कुछ औचित्यका खयाल भी होना चाहिए, थोड़ी शिष्टता भी बरतनी चाहिए। मैंने ऐसे यूरोपीयोंकी सभाओंमें भाषण दिये हैं, जो मेरे एक भी विचारसे सहमत नहीं थे। लेकिन, वे अपना कर्तव्य बहुत अच्छी तरह समझते हैं। वे इस बातको छिपाते नहीं कि सभामें मेरे साथ कोई मुरौवत नहीं की जायेगी। लेकिन वे स्वागत और सम्मान करना जानते हैं। कलकत्तामें सिर्फ मेरा खयाल करके उन्होंने विशुद्ध निरामिष भोजकी व्यवस्था की थी। और यहाँ? यहाँ तो आप ऐसा करते हैं कि मैंने भुजमें जिस अस्थायी व्यवस्थाका सुझाव दिया था उसको तोड़-मरोड़कर आपने ऐसा रूप दे दिया जो आपके मनके अनुकूल था और मुन्द्रामें तो आप उस छूटका उपयोग बेहूदगीकी सीमातक करनेमें भी नहीं हिचकिचाये। अगर मैं अपने लड़केसे कहूँ कि तुम मुझे जितनी गालियाँ देना चाहो, दो और वह मुझे हर सुबह जी-भर कर गालियाँ देना अपना कर्तव्य बना ले तो यह कैसा लगेगा? आपने यही तो किया है। माण्डवीमें पहले दिनकी सभामें मैंने कहा कि अध्यक्ष महोदय जरा दूरसे ही मानपत्र मेरे हाथमें डाल दे सकते थे; और दूसरे दिनकी सभाके अध्यक्षने मेरे इस सुझावका लाभ उठानेमें तनिक भी विलम्ब नहीं किया। क्या आप इसी तरहसे मेरा सम्मान करना चाहते हैं?"

को पूरा करनेमें कोई कसर नही उठा रखी; इसके लिए उन्होंने बहुत परिश्रम किया है। लेकिन आपको समझना चाहिए कि मैं स्वय अपनी सेवा करवानेके लिए कच्छमें नही आया था। मैं हिन्दुस्तानमें भ्रमण करता हूँ सो अपनी सेवा करवानेके लिए नही करता। उलटे, मेरी सेवा जितनी ज्यादा की जाती है, जितना ज्यादा सुख और सुविधा मुझे प्रदान की जाती है, वस्तुत: देखा जाये तो, मुझपर उतना ज्यादा बोझ पड़ता है, ज्यादा कर्ज चढता है। अतएव मुझपर उपकार करनेका उपाय है, अपनी जितनी आवश्यकताएँ मैं बताऊँ आप मेरी उतनी ही आवश्यकताएँ पूरी करे। यदि मुझे जितने चाहिए उससे अधिक स्वयसेवक अथवा गाड़ियाँ मिले तो मैं घबरा जाता हूँ। मेरी निजी सेवा करनेमें कच्छने कोई कसर नही उठा रखी। इस बातमें कच्छ अन्य प्रान्तोसे तनिक भी कम नही उतरता।

अध्यक्षने आग्रहपूर्वक कहा, "नहीं, लेकिन आपको अपने विचार बार-बार दोहराते रहना चाहिए, ताकि किसी दिन वे लोगोंके हृदयमें जड़ पकड़ लें।"

गांधीजीने अपना पक्ष विस्तारसे समझाते हुए कहा: "मैं उन उपदेशकोंके साथ होड़ करने नहीं जा रहा हूँ जो अनिच्छुक श्रोताओंके सामने दिन-रात अपना उपदेश झाड़ते रहते हैं। अगर आप मेरे विचार जानना और समझना चाहते हैं तो अच्छा होता, आप साबरमती चले आते। उस छोटे-से स्थान भुजपारमें जब संयोजकोंने देखा कि मेरी शर्तोंपर मेरा स्वागत नहीं किया जा सकता और मुझे मानपत्र नहीं दिया जा सकता, तो उन्होंने स्वागत करने और मानपत्र भेंट करनेका इरादा छोड़ दिया और अस्पृश्योंके हल्केमें सभा की। यह उनकी ईमानदारी और साहसका सूचक था। मैं आपसे विनती करता हूँ कि इन झूठ-मूठके प्रदर्शनोंसे आप बाज आयें। मैं तो यह भी नहीं चाहता कि आप मेरी और मेरे साथियोंकी खातिरदारी करें। अस्पृश्योंका अतिथि होनेमें ही मुझे खुशी होगी। अपनी शक्तिके अनुसार वे मेरा जो भी थोड़ा-बहुत किन्तु सच्चा आतिथ्य करेंगे, उससे मेरी आत्मा प्रसन्न होगी।"

लेकिन, अध्यक्ष महोदय इतनेसे ही अपना आग्रह छोड़नेवाले नहीं थे। उन्होंने कहा: "लेकिन हमने तो सारा इन्तजाम कर दिया है। स्वागत समिति मानपत्र भेंट करनेको बहुत उत्सुक है। आपकी बात मैं समझता हूँ, लेकिन हमने तो आपको ठीक-ठीक जाने बिना सारा प्रबन्ध कर लिया है।"

"आप मुझे जान भी कैसे सकते हैं? मुझे तो आप लोग तभी जानेंगे, जब मैं दुनियामें नहीं रहूँगा।"

अगर कट्टरपंथियोंकी सभा पहले की जाती और अस्पृश्योंकी बादमें तो अध्यक्ष महोदय शायद सन्तुष्ट हो जाते। लेकिन, जो बात गांधीजीने सुझाई थी, वह उनके लिए अपमानजनक थी। इसपर गांधीजीने उनसे स्वागत समितिकी बैठक बुलाकर अपना सुझाव उसके सामने रखनेकी सलाह दी उसके बाद ही निर्णय लेनेको कहा। अन्तमें उन्होंने साफ कहा कि "लेकिन याद रखिए, बीचके रास्तेसे काम नहीं चलेगा। या तो मेरा सुझाव ज्योंका-त्यों स्वीकार कीजिए या फिर आपने जैसा प्रबन्ध किया है, उसके अनुसार अपना कार्यक्रम पूरा कीजिए।"

समितिकी बैठक दो घंटेतक चली। उसने बाड़ें और मंच बनानेकी एक विस्तृत योजना बनाई। तय पाया गया कि अध्यक्ष जरा दूरीसे ही भाषण करेंगे, समितिके आठ सदस्य अस्पृश्योंके बीच बैठेंगे, और शहरके सेठ गांधीजीको मानपत्र भेंट करेंगे; न कि माण्डवीकी तरह दूरसे उनके हाथमें डाल देंगे। अलबत्ता, इसके बाद घर जाकर वे शुद्धिके लिए स्नान करेंगे! अब दलीलके लिए कोई गुंजाइश ही नहीं रह गई थी। सब-कुछ जानकर गांधीजीने कहा, "तो आप मेरी इच्छाके अनुसार नहीं चलना चाहते, बल्कि चाहते हैं, मैं ही आपकी इच्छाके अनुसार चलूँ।" इसपर अध्यक्षने कहा, "हाँ श्रीमन्, समितिकी यही इच्छा है।" गांधीजीने इस पराजयको खुशी-खुशी स्वीकार कर लिया, और सभामें जाकर मानपत्र स्वीकार किया।

लेकिन मुझे चाह इस चीजकी नहीं। मैं जिस वस्तुका भूखा हूँ, जिसके लिए तरसता हूँ वह अलग ही वस्तु है। ईश्वर चींटीको कन और हाथीको मन देता है, देता ही रहेगा। इसलिए पेट भरने और आवश्यकताएँ पूरी करनेकी बातमें कोई विशेषता नहीं है। यह वस्तु तो मनुष्य और पशुमें समान है। चींटी कन प्राप्त करके जितने आनन्दका अनुभव करती होगी उतने आनन्दका अनुभव शायद हम पकवान खाकर भी नहीं करते होंगे।

इसलिए आपके असीम प्रेमको स्वीकार करके मैं इतना ही कहूँगा कि आप मुझपर ऐसे प्रेमका बोझ न लादें। जिस प्रेमपर मै रीझता हूँ उस प्रेमकी बात मुझे आज नहीं करनी है। यदि करूँगा तो आपको दुःख होगा — यद्यपि आप उसे सुनेंगे अवश्य, तो भी मैं उसे नहीं सुनाऊँगा।

संसारके सभी धर्मशास्त्रोंमें लिखा है कि जब मनुष्यपर दुःख पड़े तब उसे ईश्वरका स्मरण करना चाहिए। जब द्रौपदीके पति उसकी सहायता न कर सके तब उसने कृष्णके आगे रोकर सहायता प्राप्त की। सीताजी जब अशोक वनमें अकेली थीं तब उन्होंने एक रामनामकी रट लगाकर ही आश्वासन प्राप्त किया। मेरे साथ जेलमें मेरे भाई-बन्धु भी ईश्वरका नाम लेकर अपने दुःखको भूलते थे, आश्वासन पाते थे।

मेरे साथ एक सुशिक्षित और सरल हृदय नवयुवक था — शंकरलाल बैंकर। उसे जेलका तो कोई दुःख न था परन्तु उसे अपने मनका दुःख था। उसके मनमें अनेक तरंगें उठा करती थीं, मन ही मन वह निरन्तर सुलगता रहता था। उसने क्या उपाय किया? सवेरे चार बजे उठकर कड़कती सर्दीमें, ठण्डकी परवाह किये बिना, उसका पहला काम यह होता था कि बत्ती जलाकर वह चरखा चलाया करता था। लेकिन मैं आज चरखेकी बात भी नहीं करना चाहता।

लेकिन उसने चरखे चलानेके साथ-साथ जो किया सो कहना चाहता हूँ। उसने रामनाम रटना शुरू किया। रामनाम लेनेसे वह प्रसन्न चित्त रहने लगा। उसमें इतना परिवर्तन हो गया कि उसका दारोगा उसके पास बार-बार जाता था लेकिन वहाँसे थककर चला आता था और आकर मुझसे कहता था कि वह तो अपनी धुनमें ही रहता है। वह भला, उसका चरखा भला — उसके साथ क्या बात की जाये?

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ८-११-१९२५

२२८. सन्देश : कच्छवासियोंको[1]

[५ नवम्बर, १९२५]

अपनी कच्छ यात्राके असाधारण अनुभवोंको सक्षेपमें कह सकना मेरे लिये कठिन है। जहाँतक खुद मेरा सवाल है, मुझे तो राज्य और जनता दोनोंसे स्वागत सत्कार और स्नेह प्राप्त हुआ है। जिस चीजको लेकर मैं सबसे अधिक परेशान रहा, वह था अस्पृश्योंका सवाल। रूढिवादी लोगोंने उनकी अन्तरात्माको सन्तुष्ट करनेके लिए तरह-तरहके उपाय किये, लेकिन स्वयं अस्पृश्योंके बीच मैंने वहाँ भारी जागृति देखी। वे अपने अधिकारोंके प्रति जागरूक हैं। वे अपनी जिम्मेदारियाँ समझते हैं। बहुतोंने मरे हुए पशुओंका मांस खाना, मदिरा पीना छोड़ दिया है। आम लोगोके मनमें उनके खिलाफ कोई पूर्वग्रह नही है। ये तो तथाकथित उच्च वर्णके मुट्ठीभर लोग ही हैं, जो प्रकटतः तो अस्पृश्यतामें विश्वास दिखाते हैं किन्तु उनसे कोई अकेलेमें पूछे तो वे भी यही कहेंगे कि अस्पृश्यता अनुचित है और सच्चे धर्मके विरुद्ध है। लेकिन उनमें भी कुछ ऐसे नेक लोग हैं, जो अपने जाति-बन्धुओंके अत्याचारकी परवाह न कर पैसेसे और व्यक्तिगत श्रमके द्वारा अस्पृश्योंकी सेवा कर रहे हैं। इन गरीबोंको तबतक किसीसे कोई नया करार करनेकी इजाजत नही है, जबतक कि वे उन लोगोंका कर्ज न चुका दें, जिनसे इन्होने पहले कर्ज ले रखा हो। परिणाम यह होता है कि ये सदाके लिए अपने प्रारम्भिक ऋणदाताओंके गुलाम बन जाते है और वे इनके साथ मनमानी करते रहते हैं।

मैंने ये बातें महाविभवके सामने रख दी है और मुझे विश्वास है कि वे इन गम्भीर कठिनाइयोंको दूर करेंगे। यहाँ खादी प्रचारकी बहुत अधिक गुंजाइश है। वह खादी-प्रेमियों द्वारा अपना पूरा विकास किये जानेकी प्रतीक्षामें है। कच्छ-जैसे खुश्क आबोहवावाले क्षेत्रमे, जहाँ लोगोको अच्छा आहार मिलता है, और जो बलिष्ठ भी होते हैं, महामारी और हैजा असम्भव ही होना चाहिए; किन्तु शहरी लोगोकी गन्दी आदतोके कारण यहाँ भी ये बीमारियाँ फैलती हैं। वृक्ष-रक्षणके लिए भी तत्काल एक संस्था खोलनेकी आवश्यकता है। आज पानीके अभावमें कच्छके बिलकुल वीरान हो जानेका खतरा है, किन्तु पेड़-पौधे लगानेकी ओर उचित ध्यान देकर यहाँ वर्षाको बढ़ाया जा सकता है।

उक्त चीजोंपर देशभक्त कच्छी बखूबी अपना ध्यान केन्द्रित कर सकते हैं। फिलहाल कच्छकी राजनीतिके विषयमें मैं कुछ न कहना ही पसन्द करूँगा। मुझसे जो

१. कच्छसे विदा लेते वक्त महात्माजीने तूना बन्दरगाहपर वहाँकी जनताको यह सन्देश दिया था। यह गुजरातीमें भी ८-११-१९२५ को प्रकाशित हुआ था।

कुछ कहा गया था वह सब मैंने महाविभवके ध्यानमें ला दिया है और उन्होंने मेरी बात काफी देरतक बड़े धैर्यके साथ सुनी।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, ६-११-१९२५

२२९. टिप्पणियाँ

हम भूल न जायें

श्रीयुत जे० एम० सेनगुप्तने[1] मुझे लिखा है कि बंगालने बिना मुकदमा चलाये लोगोंको नजरबन्द करने और कैदमें रखनेके विरोधमें रविवार, ८ नवम्बरको सर्वदलीय अखिल बंगाल प्रदर्शनका आयोजन करनेका निर्णय किया है। उनका सुझाव है कि सभाएँ समस्त भारतमें की जानी चाहिए। जहाँतक मेरी बात है, मैं इस सुझावका हार्दिक समर्थन करता हूँ। मैंने सुझाव पण्डित मोतीलाल नेहरूको सूचित कर दिया है और अगर उनकी सहमति और स्वीकृति मिल गई तो इस लेखके छपनेसे पहले ही हिदायतें प्रकाशित हो चुकी होंगी। मैं यह टिप्पणी कच्छमें लिख रहा हूँ। कच्छ भारतका है, राष्ट्रीय हलचलके समस्त मुख्य केन्द्रोंसे अलग-थलग एक भाग। इसलिए इस समय बाहर दिन-प्रतिदिन जो घटनाएँ हो रही हैं, उनकी यहाँ जानकारी रखना और उनके सम्बन्धमें समय रहते ठीक निर्णय ले सकना मेरे लिए कठिन है। इसलिए मैं इस सुझावपर केवल अपना मत ही प्रकट कर सकता हूँ। मेरा मत यह है कि हो सकता है, इससे हम उस सरकारपर, जो लोकमतकी परवाह नहीं करती, कोई प्रभाव न डाल सकें। किन्तु श्रीयुत सेनगुप्त द्वारा सुझाया गया प्रदर्शन हमें इस बातकी याद तो दिलायेगा ही कि हमारे देशमें ऐसे लोग भी हैं जिन्हें हम यद्यपि निर्दोष मानते हैं, फिर भी उनपर किसी तरहका मुकदमा चलाये बिना उन्हें नजरबन्द या कैद करके रखा गया है। जबतक इन लोगोंपर खुली अदालतमें मुकदमा नहीं चलाया जाता या उसके अभावमें जबतक इन्हें रिहा नहीं कर दिया जाता, इस सरकारके विरुद्ध लगाया गया हमारा यह आरोप अधिकाधिक गम्भीर होता चला जायेगा। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि इस सम्बन्धमें राष्ट्रीय भावनाको प्रदर्शित करनेके लिए सभी दल मिल-जुलकर पूरे देशमें सभाएँ करेंगे।

गोरक्षाकी योजना

मैंने निजी बातचीतमें अपने मित्रोंसे बहुत बार इस आन्दोलनके रचनात्मक पक्षमें रुचि लेने और सहायता पहुँचानेको कहा है। इन मित्रोंमें से कुछके साथ बातचीत करके मैंने जो योजना बनाई है, उसे मैं उनकी इच्छाके अनुसार प्रकाशित कर रहा हूँ।

१. बंगाल विधान परिषद्में स्वराज्यवादी दलके नेता, कलकत्ताके महापौर और बंगाल प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीके अध्यक्ष।

१. गोरक्षा कार्यक्रमके अंगके रूपमें चमडा पकानेके कारखानोंके स्थानकी जाँचके लिए आवश्यक है कि ऐसा एक कारखाना हाथमें ले लिया जाये और फिर उसका उपयोग मुनाफा कमानेके लिए नही, बल्कि विशुद्ध गोरक्षाके लिए किया जाये। इसके लिए ऐसे किसी मौजूदा कारखानेमें लगानेके लिए १,२५,००० रुपयेकी जरूरत है। मुझे जो जानकारी मिली है, उससे प्रकट होता है कि ज्यादातर कारखानोमें वध किये गये मवेशियोंका चमड़ा ही खरीदा और पकाया जाता है और मरे हुए मवेशियोंकी खालका ज्यादातर तो भाग भारत विदेशोको भेजता है। इस वस्तुस्थितिके निराकरणका उपाय यही है कि गो-प्रेमी लोग चर्मालयोको अपने हाथमें ले और अपनी परोपकार वृत्तिके द्वारा चमड़ेको व्यापारिक स्पर्धाकी वस्तु बननेसे रोके।

२. इस बातका पता लगानेके लिए कि मुनाफा कमानेके लिए तो नही, किन्तु साथ ही जिनमें लाभ न हो तो अन्तत. नुकसान भी न हो, ऐसी गौशालाएँ बडे पैमाने-पर चलाना कहाँतक सम्भव है, कुछ प्रारभिक अनुसन्धान भी किया जाना चाहिए। इस प्रारम्भिक कार्यके लिए बारह महीनेके भीतर कमसे-कम दस हजार रुपये खर्च करने होंगे। इस रुपयेसे दुग्धशाला-विशेषज्ञ रखे जायें और ऐसे उपयुक्त स्थान ढूंढे जायें जहाँ हजारो पशु रखे जा सके। जबतक हम इस कामको इस तरह अपने नियन्त्रण मै नही लेते तबतक हमें मवेशियोके वधसे होनेवाली भयकर हानि सहते ही रहनी पडेगी। हम इन पशुओंको सिर्फ या तो इनका ठीक उपयोग न करने या अपने अज्ञानके कारण ऐसा बना डालते हैं जिससे ये लाभदायक नही रह जाते। इसीलिए भारतके विभिन्न नगरोमें रहनेवाले ग्वाले इन्हे वध कर दिये जानेके लिए बेच देते हैं। अगर पशु आर्थिक दृष्टिसे लाभप्रद न रहे तो उन्हे किसी तरह कसाईके छुरेसे नही बचाया जा सकता।

३. छात्रोंको चमडा कमाने और दुग्धशालाका काम सीखनेके निमित्त छात्र-वृत्तियाँ दी जानी चाहिए। इसके लिए ५००० रुपया एक वर्षके लिए जरूरी है।

४ पशु-पालन, दुग्ध-व्यवसाय, चर्म-शोधन आदिसे सम्बन्धित पुस्तकोंके लिए ३००० रुपयेकी जरूरत है।

इस प्रकार १,२८,००० रुपयेकी रकम पूंजीगत खर्चके लिए और १५,००० रुपयेकी रकम अनुसन्धान और तैयारीके लिए आवश्यक है। मै यहाँ चालू खर्चको छोड देता हूँ; यह खर्च अखिल भारतीय गोरक्षा सघकी सदस्यतासे होनेवाली साधारण आयमें से निकालना होगा। यदि सघ अपना खर्च नही निकाल सकता तो वह भंग कर दिया जाना चाहिए। मुझे जो अधिकार दिया गया है, उसके अन्तर्गत मैंने एक वैतनिक मन्त्रीकी सेवाएँ प्राप्त कर ली हैं। जो काम करना है, उसके लिए श्री वा० गो० देसाईको चुना गया है। मेरे सामने जिन व्यक्तियोंके नाम थे, उनमें सबसे अधिक उपयुक्त मुझे वे ही जान पडे। वे अंग्रेजी और सस्कृतके विद्वान हैं। उन्हें पशुओसे प्रेम है और गोरक्षामे उनका सदासे विश्वास रहा है। वे चाहते तो कोई और काम भी कर सकते थे; किन्तु उन्होने गोरक्षाका काम ही चुना है, और मुझे आशा है कि उनका यह निर्णय अन्तिम होगा और वे इस काममें जीवन-भर लगे रहेंगे।

१९१५ मे वे जब भारत आये थे, तभीसे मैं उन्हे काफी करीबसे जानता हूँ। उनको २०० रुपये मासिक वेतन दिया जायेगा। फिलहाल उनके रहनेकी व्यवस्था सत्याग्रहाश्रम-मे की गई है, जहाँ उन्हें कोई किराया नही देना है। किन्तु मकान किरायेके रूपमें पच्चीस रुपये और देनेकी जरूरत हो सकती है। यदि इस योजनाके लिए अनुदान मिले तो वैतनिक कर्मचारियोंकी संख्या बढ़ाना जरूरी होगा। इस समय तो दफ्तरमें एक चपरासी भी नही रखा गया है। जनता कैसा उत्साह दिखाती है, इसी बातपर कामका विस्तार निर्भर है। अपने कच्छके दौरेमे मैं अपने कच्छी मित्रोंके सामने इस योजनाकी चर्चा करता रहा हूँ और वे मुझे ३००० रुपयेसे ज्यादा रकम दे चुके हैं; इसमें एक खोजा मित्रसे मिले ५०० रुपये भी शामिल हैं। फिर भी अनुदान और सदस्यता, दोनोंकी बातोंमें लोगोंको अधिक उत्साह दिखाना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ५-११-१९२५

२३०. अहमदाबादमें सफाई

डा० हरिप्रसाद व्रजराय देसाईने एक पत्र लिखा है। हम उसे नीचे अविकल प्रकाशित कर रहे हैं।[1]

डा० हरिप्रसादने यह पत्र २ अक्तूबरको शुरू किया था और ४को पूरा किया। 'पुनश्च:' वाला अंश उसके बाद शायद उसी तारीखको जोडा गया है। यह पत्र नही, एक छोटी-मोटी पुस्तिका है। किन्तु यह विनोद और शिष्ट व्यंगसे ओत-प्रोत है और इसकी शैली इतनी अच्छी है कि मुझे विश्वास है कि पाठक इसे वैसी ही दिलचस्पीसे पढ़ेंगे जैसी दिलचस्पीसे मैंने पढ़ा है। डाक्टर हरिप्रसाद हमारी गन्दगी और मलिनता-का चित्र अत्यन्त दिलचस्प ढंगसे ही नहीं, बल्कि पूर्ण स्पष्टताके साथ प्रस्तुत करनेमें सफल हुए हैं। मै चाहता हूँ कि वे अपने प्रयत्नमे पूरी तरह सफल हों। किन्तु यह तो केवल प्रशंसा करना ही हुआ। मेरी हार्दिक इच्छा तो यह थी कि मैं फावड़ा, झाड़ू, चूनेकी बालटी और कूची लेकर उनके साथ होता। किन्तु जिस शहरमें वल्लभभाई-जैसा भंगियोंका राजा रहता है, वहाँ मेरे करनेके लिए बहुत ही थोड़ा काम हो सकता है। इसलिए अहमदाबादमे जो-कुछ हो रहा है, उसको मैं एक प्रेक्षकके रूपमें दिलचस्पीसे देख रहा हूँ और यही कामना कर रहा हूँ कि अहमदाबादकी नगरपालिका सफाई, संगठन, प्रारम्भिक शिक्षा तथा सस्ता और स्वच्छ दूध देनेकी

१. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। यंग इंडिया २९-१०-१९२५ और ५-११-१९२५ के अंकोंमें इसका अंग्रेजी अनुवाद भी प्रकाशित किया गया था। पत्रमें अहमदाबादके विभिन्न छोटे-बड़े मोहल्लोंकी गन्दगीका आँखों देखा हूबहू चित्रण था। नगरकी इस दुर्दशामें किस धार्मिक सम्प्रदायका कितना हाथ है, यह भी पत्रमें वर्णित था। नगरकी गन्दगीको दूर करनेके लिए छेड़े गये अभियानका वर्णन करनेके बाद लेखकने गांधीजीके समर्थनकी प्रार्थना की थी।

दृष्टिसे भारतमे प्रथम स्थान प्राप्त करे। मुझे विश्वास है कि यदि वह इस कार्यको सफलतापूर्वक कर सकी तो यह मान सकते हैं कि अहमदाबादने स्वराज्यके आन्दोलनमें खासा हिस्सा अदा कर दिया।

किन्तु यह काम बहुत बडा है। यह एक-दो आदमियोके करनेका नही है। इस छप्परको उठानेके लिए हर स्त्री-पुरुष, हर युवक-युवती, हर स्वराज्यवादी और अपरिवर्तनवादी, हर उपाधिधारी और सामान्य-जन एव हर अमीर और गरीबको कन्धा लगाना चाहिए; केवल तभी अहमदाबाद आदर्श नगर बन सकता है। यदि हममें से हरएक व्यक्ति शहरके किसी भी हिस्सेकी गर्द और गन्दगीको हटानेका अलग-अलग जिम्मा ले ले और यदि हम शहरके सब हिस्सोंको ऐसा ही साफ रख सकें जैसा हम अपने घरोंको साफ रखते हैं, तभी अहमदाबाद आदर्श नगर बनेगा।

धनिकोंको धनसे, सफाईके विशेषज्ञोंको अपने ज्ञानसे और अन्य प्रत्येक व्यक्तिको अपनी ऐच्छिक सेवासे इसमें सहायता देनी चाहिए। आज हम जो काम कर रहे हैं उसके मार्गमें अज्ञान, उदासीनता और विरोधकी भावना बाधा डालती है। शहरको साफ करनेके लिए स्वयसेवक क्यो नही मिलने चाहिए? स्कूलों और कॉलेजोके लड़कोंको सफाईकी शिक्षा क्यों नही मिलनी चाहिए और उन्हे इस काममें स्वयसेवक रूपमें आगे क्यों नही आना चाहिए?

डाक्टर हरिप्रसादके पत्रमें कई अन्य विचार भी मिलते हैं; किन्तु मैं नही चाहता कि इस पुस्तिकाके बाद एक और पुस्तिका लिख दूँ। हम सबको डाक्टर हरिप्रसादके मीठे व्यंग्यको समझना और सराहना चाहिए और मानव हितके इस कार्यमें सहायता देनी चाहिए। यदि उनके पत्रका फल ऐसा निकलता है तो मैं मानूँगा कि पत्र लिखनेमें किया गया उनका श्रम व्यर्थ नही हुआ और मैंने भी इस पत्रको व्यर्थ नही छापा।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, २९-१०-१९२५ तथा ५-११-१९२५

२३१. कवि-गुरु और चरखा

कुछ समय पहले जब सर रवीन्द्रनाथकी चरखेकी आलोचना[1] प्रकाशित हुई थी, उस समय कई मित्रोंने मुझसे उसका उत्तर देनेके लिए कहा था। उस समय काममे बहुत व्यस्त होनेके कारण मैं आलोचनाका सागोपांग अध्ययन नही कर पाया था। लेकिन उसे मैंने इतना तो पढ़ा ही था कि यह जान सकूँ कि उसका रुझान किस ओर है। उसका उत्तर देनेकी मुझे कोई जल्दी नही थी और यदि मेरे पास तब समय होता और मैं उत्तर देता भी तो जिन्होंने वह आलोचना पढ़ी थी वे उस समय इतने उद्वेलित थे या उससे इतने प्रभावित थे कि मैं जो-कुछ भी लिखता, उसको वे ठीक रूपमें ग्रहण नही कर पाते। इसलिए उस विषयपर मेरे उत्तर लिखनेका तो

१. देखिए परिशिष्ट ५।

उचित समय अब आया है, क्योंकि अब कवि-गुरुकी टीका और मेरे उत्तरपर, यदि उसे उत्तर कहा जा सकता है तो, उद्वेगरहित राय कायमकी जा सकेगी।

यह आलोचना चरखेके विषयमें कवि गुरु और आचार्य सीलके रवैयेके प्रति आचार्य रायके[1] असहिष्णुतापूर्ण रुख रखनेके कारण उनको बताई गई एक कड़ी फटकार और चरखेके प्रति एकांगी और अत्यधिक प्रेम रखनेके कारण मुझपर की गई एक मीठी चोट है। लोगोंको मालूम होना चाहिए कि कवि-गुरु चरखेकी जबर्दस्त आर्थिक महत्ताको अस्वीकार नहीं करते और यह भी मालूम होना चाहिए कि अपनी आलोचनाके बाद उन्होंने अखिल भारतीय देशबन्धु स्मारकके लिए की गई अपीलपर दस्तखत भी किये हैं और दस्तखत करते समय मुझे उन्होंने यह सन्देशा भी भेज दिया कि उन्होंने चरखेके विषयमें कुछ ऐसी बात लिखी है जो शायद मुझे अच्छी न लगे। इसलिए मुझे इस बातका आभास मिल गया था कि क्या होने जा रहा है। किन्तु उनकी आलोचनासे मुझे कोई नाराजगी नहीं हुई। मेरे विचारोंसे उनके असहमत होने-भरसे मैं क्यों नाराज हो जाऊँ? यदि इस तरह हरएक मतभेदको लेकर आदमी नाराज होने लगे तब तो जीवन कष्टकर भावनाओंका घर और इस तरह भाररूप ही बन जाये, क्योंकि किसी भी मुद्देपर कोई दो व्यक्ति सोलहों आने एकमत नहीं होते। इसके विपरीत दो टूक आलोचनाएँ पढ़कर तो मुझे बड़ी खुशी होती है। कारण, मतभेदोंके कारण हमारी मित्रता और भी गहरी हो जाती है। मित्रोंको मित्र होनेके लिए यह जरूरी नहीं कि वे सब तो क्या, अधिकांश बातोंमें भी परस्पर एकमत हों। हाँ, इतना जरूर है कि मतभेदमें तीव्रता नहीं होनी चाहिए और कटुता तो बिलकुल ही नहीं। मैं साभार स्वीकार करता हूँ कि कवि-गुरुकी आलोचनामें ऐसी कोई तीव्रता या कटुता नहीं है।

मुझे प्रारम्भमें इतनी बातें इसलिए कहनी पड़ी कि मैंने ऐसी अफवाह सुनी कि इस आलोचनाका मूल कारण ईर्ष्या ही है। ऐसी निराधार शंकाएँ दुर्बलता और असहिष्णुताके वातावरणकी द्योतक हैं। जरा ध्यानसे सोचनेपर स्पष्ट हो जायेगा कि यह हृदयहीन आरोप बिलकुल निराधार है। मुझमें ऐसा क्या है, जिससे कवि-गुरु मुझसे ईर्ष्या करेंगे? ईर्ष्याके लिए पहले प्रतिद्वन्द्विताकी सम्भावना होनी चाहिए। सो मैं तो अपने जीवनमें कभी एक तुकबन्दी भी नहीं कर पाया हूँ। कवि-गुरुमें जो-कुछ है, उसका अंश भी मुझमें नहीं है। उनकी महत्ताको प्राप्त करनेकी आकांक्षा मेरे मनमें कभी नहीं आ सकती। वे अपनी महत्ताके निर्विवाद अधिकारी हैं। आज संसारमें कोई दूसरा कवि उनकी बराबरी नहीं कर सकता। वे अपने क्षेत्रमें जिस निर्विवाद स्थितिके अधिकारी हैं, उससे मेरे "महात्मापन" का कोई सम्बन्ध नहीं है। यह बात समझ लेनी चाहिए कि हमारे कार्यक्षेत्र अलग-अलग हैं और वे कहीं भी एक-दूसरेसे नहीं टकराते। कवि-गुरु अपनी ही कल्पनाके भव्य लोकमें — अपने विचारोंकी दुनियामें रहते हैं, जबकि मैं किसी दूसरेकी बनाई चीजका — चरखेका गुलाम हूँ। कवि अपनी बंसीकी तानपर अपनी गोपियोंको नचाता है और मैं अपनी

१. प्रफुल्लचन्द्र राय।

प्यारी सीता — चरखेके पीछे भटकता फिरता हूँ और उसे दैत्य दशाननसे — जापान, मैन्चेस्टर, पेरिस इत्यादिसे — मुक्ति दिलानेका प्रयत्न करता हूँ। कवि नया आविष्कार करता है। वह सृष्टि करता है, उसे मिटाता है और फिर सृष्टि करता है और मै तो केवल शोधक हूँ और इसलिए एक वस्तुका शोध कर लेनेपर मुझे तो उसीको पकड़कर बैठे रहना है। कवि दिन-प्रतिदिन दुनियाके सामने नई और मोहक चीजें रखता है। मै तो सिर्फ पुरानी, बल्कि जीर्ण-शीर्ण वस्तुओमें छिपी हुई सम्भावनाओको ही दिखा सकता हूँ। नई-नई और चमत्कृत कर देनेवाली चीजें पेश करनेवाले जादूगरको ससारमें बडी आसानीसे गौरवका स्थान प्राप्त हो जाता है। किन्तु मुझे तो अपनी जीर्ण-शीर्ण चीजोंके लिए इस विस्तृत ससारमें एक छोटा-सा कोना हासिल करनेके लिए भी घोर परिश्रम करना है। इसलिए हम दोनोमें कोई स्पर्धा ही नही है। लेकिन मैं सम्पूर्ण नम्रताके साथ इतना कह दूँ कि हमारे कार्य और व्यापार एक-दूसरेके पूरक है।

सच तो यह है कि कवि-गुरुकी आलोचना कवि सुलभ स्वच्छन्दताका एक नमूना है, और इसलिए यदि कोई उसे शब्दश पकडकर चलेगा तो किसी भी क्षण उसकी स्थिति बडी ही अटपटी बन सकती है। एक प्राचीन कविने कहा है कि अपने तमाम ठाठ-बाटके साथ भी सॉलोमन[1] किसी पुष्पकी शोभाकी समता नही कर सकता। यहाँ कविने स्पष्टतः सॉलोमनके कृत्रिम ठाठ-बाट और अनेक सत्कर्मोंके बावजूद उसके पापरत रहनेकी तुलनामें पुष्पकी प्राकृतिक छबि और निर्दोषिताकी ओर सकेत किया है या फिर इसी वाक्यमें निहित काव्यात्मक स्वच्छन्दताको देखिए· "सुईके छेदमें से ऊँटका निकल जाना धनवान मनुष्यके स्वर्गके साम्राज्यमें प्रवेश कर सकनेसे कही आसान है।" हम यह जानते है कि सुईके छेदमें से कभी भी कोई ऊँट नही निकला है और हम यह भी जानते है कि जनक-जैसे धनवान व्यक्तियोने स्वर्गके साम्राज्यमे प्रवेश किया है। अथवा आदमीके दाँतोकी सुन्दर उपमाको ही लीजिए। उसकी तुलना अनारके दानोके साथ की जाती है। इसके शब्दार्थके पीछे भागनेवाली मूढ स्त्रियोंको अपने दाँतोंकी सुन्दरताको बिगाडते बल्कि उन्हे नुकसान पहुँचाते भी देखा गया है। चित्रकार और कवियोको सच्चा चित्र प्रस्तुत करनेके लिए कुछ अति-रंजनासे काम लेना पडता है। इसलिए जो लोग चरखेके खिलाफ कवि-गुरुकी कही गई बातोका शब्दश. अर्थ करते है, वे उनके प्रति अन्याय करते है और स्वय अपना भी अपकार करते हैं।

कवि-गुरु 'यग इडिया' नही पढते हैं, न उनसे इसे पढनेकी आशा की जा सकती है। उन्हें इसकी कोई जरूरत भी नही है। इस आन्दोलनके बारेमें वे जो-कुछ भी जानते हैं, वह सब उन्होने सिर्फ इधर-उधरकी बातचीतसे ही जाना है और इसलिए उन्होने जिस बातको चरखा-धर्मकी अतिशयता मान लिया है, उसकी भर्त्सना की है।

उदाहरणके लिए वे समझते है कि मै चाहता हूँ, सब लोग अपने और सब काम छोडकर दिन-रात काता ही करे। अर्थात् मै यह चाहता हूँ कि कवि अपनी

१. इजराइलका प्रसिद्ध राजा जो अपनी बुद्धिमत्ताके लिए विख्यात् था।

काव्य-साधना छोड़ दें, किसान हल छोड़ दें, वकील वकालत छोड़ दें और डाक्टर अपना धन्धा छोड़ दें। लेकिन यह बात सत्यसे बहुत दूर है। मैंने किसीसे भी यह नहीं कहा है कि वह अपना धन्धा छोड़ दे; जो कहा है वह बस इतना ही कि वह समग्र राष्ट्रके लिए यज्ञके रूपमें प्रतिदिन सिर्फ तीस मिनट कताईके लिए देकर अपने धन्धेको और भी शोभान्वित करे। हाँ, मैंने ऐसे दुष्काल पीड़ित स्त्री-पुरुषोंसे, जो किसी तरहका काम न मिलनेके कारण बेकार बैठे रहते हैं, आजीविकाके लिए और अधभूखे किसानोंसे अपने फुर्सतके समयमें अपनी अल्प आयमें कुछ वृद्धि करनेके लिए कातनेके लिए अवश्य कहा है। यदि कवि-गुरु भी इस प्रकार रोजाना आधा घंटा कातें तो उनकी कविता और भी निखरेगी। कारण, तब उनकी कवितामें गरीबोंके दु:ख दर्दोंका आजकी अपेक्षा कहीं अधिक सशक्त चित्रण होगा।

कवि-गुरुका खयाल है कि चरखेकी अवधारणा राष्ट्रमें मृत्यु-जैसी एक रसता लानेके लिए की गई है और ऐसा मानकर वे कहते हैं कि यदि उनसे बन पड़े तो वे इससे दूर ही रहना चाहेंगे। सचाई यह है कि चरखेका उद्देश्य हिन्दुस्तानके करोड़ों लोगोंके हितोंमें जो बुनियादी और जीवन्त ऐक्य है, उसे मूर्त्त करना है। प्रकृतिके भव्य और क्षण-क्षण बदलते हुए रूपके भीतर भी हेतु, योजना और आकृतिकी एकता दिखाई देती है, जो उतनी ही स्पष्ट है, जितना कि उसका वैविध्यमय बाह्य रूप। दो मनुष्य कभी एकसे नहीं होते — यहाँतक कि जुड़वाँ लड़के भी एकसे नहीं होते हैं। और फिर भी मनुष्यजातिमें बहुत-सी बातें अनिवार्यत: एक-सी होती हैं। और आकृतिकी समानताके पीछे भी एक ही जीवनतत्त्व व्याप्त है। इस एकता या समरूपताके सिद्धान्तकी चरम परिणति शंकराचार्यमें हुई। उन्होंने बताया है कि सत्य एक ही है, ब्रह्म एक ही है; नाम-रूप तो माया है, भ्रम है और क्षणभंगुर है। यहाँ हमें इस बातपर बहस करनेकी कोई जरूरत नहीं है कि जिसे हम देख रहे हैं, क्या वह असत् है और क्या इस असत्के मूलमें जिसे हम देख नहीं सकते वही सत् है। यदि आप कहना चाहें तो दोनोंको समान रूपसे सत् कह लीजिए। मैं जो-कुछ कहना चाहता हूँ, वह इतना ही है कि इस विविधता और अनेकतामें भी एक प्रकारका ऐक्य है, समानता या तादात्म्य है। और इसी तरह मैं यह मानता हूँ कि धन्धोंकी विविधताके पीछे एक कोई अनिवार्य समानता भी है। क्या खेतीका काम मानव-जातिके अधिकांश सदस्योंका सामान्य धन्धा नहीं है? इसी प्रकार अभी थोड़े समय पूर्व तक क्या कताई भी मनुष्य-जातिके अधिकांश हिस्सेका एक सामान्य धन्धा नहीं था? जिस प्रकार राजा और किसान, दोनोंको खानेकी और कपड़े पहननेकी आवश्यकता है, उसी प्रकार दोनोंको अपनी-अपनी बुनियादी आवश्यकताओंको पूरा करनेके लिए मेहनत करना भी जरूरी है। राजा भले ही केवल यज्ञके भावसे और सांकेतिक तौरपर ही शारीरिक श्रम करे, लेकिन यदि वह स्वयं अपने प्रति और अपनी प्रजाके प्रति ईमानदारी बरतना चाहता है तो उसके लिए कमसे-कम इतना करना अनिवार्य है। आज यूरोप शायद इस महत्त्वपूर्ण आवश्यकताको न समझ सके, क्योंकि उसने गैर-यूरोपीय राष्ट्रोंका शोषण करना अपना धर्म बनाया है। लेकिन यह धर्म भ्रम-

मूलक है, जो निकट भविष्यमें ही नष्ट हो जायेगा। गैर-यूरोपीय राष्ट्र इस शोषणको सदा ही बर्दाश्त नही करते रहेंगे। मैंने इसमें से निकलनेके लिए एक ऐसा रास्ता दिखाया है, जो शान्तिपूर्ण मानवके लिए शोभनीय है और इसलिए गौरवका रास्ता है। हो सकता है कि वे इस रास्तेको अस्वीकार कर दें; लेकिन तब फिर मात्र शक्ति-परीक्षाका ही मार्ग बाकी रह जायेगा, जिसमें एक पक्ष दूसरेको नीचा दिखानेका प्रयत्न करेगा। उस समय जब वे गैर-यूरोपीय राष्ट्र यूरोपीय राष्ट्रोंके शोषण करनेका प्रयत्न करेंगे, तब यूरोपवालोंको चरखेकी शक्ति, उसमें छिपे सत्यको समझना पड़ेगा। अगर हमें जीवित रहना है तो सांस भी लेनी होगी, भोजन भी करना होगा और कपड़ा भी पहनना ही होगा। किन्तु, जिस प्रकार हम इंग्लैंडसे हवा मँगाकर सांस नही लेंगे और न वहांसे भोजन मँगाकर खायेंगे उसी प्रकार हमें कपडे भी वहांसे नही मँगाने चाहिए। इस सिद्धान्तको अपनी चरम परिणतितक ले जानेमे भी मुझे कोई हिचकिचाहट नही होती। इसलिए मैं तो कहूँगा कि बंगालको बम्बईसे या बंगलक्ष्मीसे भी अपने लिए कपड़े नही मँगाने चाहिए। यदि बंगाल शेष हिन्दुस्तानका या बाहरके किसी देशका भी शोषण किये बिना अपना स्वाभाविक और स्वतन्त्र जीवन बिताना चाहे तो जिस प्रकार वह अपने लिये अपने गाँवोमें भी अनाज पैदा कर लेता है, उसी प्रकार उसे अपने लिए कपड़े भी अपने गाँवोंमें ही तैयार करने चाहिए। मशीनोंका अपना स्थान है, और अब इसने अपने पाँव जमा भी लिये हैं। किन्तु जिस हदतक मानवीय श्रम अनिवार्य है, उस हदतक मशीनोंको उस श्रमका स्थान नही लेने देना चाहिए। सुधरे किस्मका हल एक अच्छी चीज है। लेकिन अगर संयोगवश कोई व्यक्ति ऐसे यन्त्रका आविष्कार कर ले जिससे वह हिन्दुस्तान-भरकी सारी जमीन अकेले ही जोत सके और हिन्दुस्तानकी सारी कृषि और कृषि-उत्पादन उसीके हाथमें चले जायें तो लाखों लोग भुखमरीकी स्थितिमें पहुँच जायेंगे और रोजगारके अभावमें वे जड़ हो जायेंगे। सच यह है कि आज बहुतसे लोग इस स्थितिमें पहुँच चुके हैं; और हर घड़ी और भी बहुत-से लोगोंके उसी अवांछनीय स्थितिमें पहुँच जानेका खतरा बना हुआ है। चरखेमें मैं हर तरहके सुधारका स्वागत करूँगा। लेकिन मैं जानता हूँ कि जबतक करोड़ों किसानोंको उनके घरमें कोई दूसरा धन्धा करनेके लिए न दिया जाये, तबतक हाथकी मेहनतसे चरखा चलानेके स्थानपर शक्ति-चालित कताई-यन्त्रोंको प्रतिष्ठित कर देना गुनाह है।

आयरलैंडवाला उदाहरण कोई विशेष तर्कसंगत नहीं जान पडता। जहाँतक वह हमें आर्थिक सहयोगकी आवश्यकताकी प्रतीति करानेमें सहायक है, वहाँतक तो बिलकुल ठीक है। लेकिन हिन्दुस्तानकी परिस्थिति जुदा होनेके कारण हम लोग जुदा तरीकेसे ही ऐसे सहयोगको सफल बना सकते हैं। भारतकी समस्याको देखते हुए तो यदि आर्थिक सहयोगका लाभ १,९०० मील लम्बे और १,५०० मील चौड़े इस देशके अधिकांश लोगोंको देना हो तो इस दिशामें हर प्रयत्न चरखेको केन्द्र मानकर ही किया जाना चाहिए। सर गंगाराम-जैसा कोई व्यक्ति हमारे सामने आदर्श फार्मका नमूना पेश कर सकता है, लेकिन पैसे-पैसेके लिए मोहताज भारतीय किसानके

लिए वह फार्म आदर्श फार्म नही हो सकता, क्योंकि उसके पास तो मुश्किलसे दो-तीन एकड़ जमीन होती है, और उसके इस रकवेके भी कम हो जानेका अन्देशा वरावर बना रहता है।

राष्ट्रकी सेवा करनेवाला व्यक्ति चरखेको केन्द्र बनाकर अर्थात् जिन्होंने अपने आलस्यको त्याग दिया है और सहयोगके महत्त्वको समझ लिया है, उन लोगोके बीच ऐसा व्यापक कार्यक्रम तैयार करेगा, जिसके अन्तर्गत मलेरियाके उन्मूलनके लिए प्रयत्न किये जायेंगे, सफाई-स्वच्छताकी स्थितिमें सुधार किया जायेगा, गाँवोके झगडोंको वहीं निपटा देनेकी कोशिश की जायेगी, पशु-रक्षण और पशु-पालन किया जायेगा तथा ऐसे ही और भी सैकड़ो लाभदायक काम किये जायेंगे। जहाँ-कही चरखेका ठीक-ठीक प्रचार हुआ है, वहाँ सम्बन्धित ग्रामवासियों और कार्यकर्त्ताओंकी क्षमताके अनुसार समाजको उन्नत बनानेवाली इस प्रकारकी प्रवृत्तियाँ चल भी रही है।

यहाँ मेरा इरादा कवि-गुरुकी तमाम दलीलोंका तफसीलवार खण्डन करनेका नही है। जहाँ हमारे मतभेद बुनियादी नही है — और ऐसे मतभेदोको बतानेकी मैंने कोशिश की है — वहाँ कवि-गुरुकी दलीलमे ऐसी कोई बात नहीं है जिसको स्वीकार करते हुए भी मैं चरखेके विषयमें अपनी स्थिति कायम न रख सकूँ। चरखेके सम्बन्धमें उन्होंने जिन बातोंका मजाक उड़ाया है, उनमें से बहुत-सी तो ऐसी है जो मैंने कभी कही ही नही है। मैंने चरखेमे जिन गुणोके होनेका दावा किया है, कवि-गुरुके प्रहारोसे उन गुणोंकी सचाईपर कोई आँच नही आई है।

सिर्फ एक ही बातसे, मेरे दिलको चोट पहुँची है। कवि-गुरुने फुरसतके समय इधर-उधरकी बातचीतोंमें सुना और विश्वास कर लिया है कि मैं राममोहन रायको बहुत "मामूली आदमी" समझता हूँ। मैंने उस महान सुधारकको कभी "मामूली आदमी" नही कहा, उन्हें मामूली माननेकी बात तो दूर रही। जिस प्रकार कवि गुरुकी दृष्टिमें वे बहुत बड़े आदमी है, उसी प्रकार मेरी दृष्टिमें भी हैं। मुझे याद नही है, एक प्रसंगको छोड़कर और कभी मैंने उनका जिक्र किया हो। वह प्रसंग पश्चिमी शिक्षाकी चर्चाका था। यह बात कटकके समुद्र तटपर चार साल पहले की है।[1] जहाँतक मुझे याद है, मैंने कहा था कि पश्चिमी शिक्षा प्राप्त किये बिना भी परम सुसंस्कृत हो सकना सम्भव है। और जब किसीने इस सम्बन्धमें राममोहनरायका नाम लिया, तब मुझे याद है, मैंने यह कहा था कि वे उपनिषद् इत्यादि ग्रन्थोंके अज्ञात रचयिताओंकी तुलनामें बहुत मामूली आदमी थे।[2] ऐसा कहना एक बात है और राममोहनरायको मामूली आदमी मानना बिलकुल दूसरी बात है। यदि मैं कहता हूँ कि टेनीसन, मिल्टन या शेक्सपियरकी तुलनामे बहुत साधारण कवि थे तो इसका मतलब यह नहीं कि उन्हे मैं छोटा आदमी मानता हूँ। मेरा दावा है कि ऐसा कहकर मैं दोनोंके बड़प्पनको और भी बढ़ाता हूँ। यदि कवि-गुरुके प्रति मेरा

१. देखिए खण्ड १९, पृष्ठ ४८२-८५।

२. यहाँ गांधीजीकी याददाश्तमें कुछ चूक हो गई है। कटकके भाषणमें उन्होंने राममोहन रायकी वास्तवमें चैतन्य, शंकर, कबीर और नानकके साथ तुलना की थी।

भक्ति-भाव है — और वे जानते हैं कि मतभेदोंके बावजूद भी उनके प्रति मेरा भक्ति-भाव है — तो मेरे लिए यह सम्भव नहीं कि मैं उस व्यक्तिके बड़प्पनको घटाकर दिखानेका प्रयत्न करूँ, जिसके कारण बंगालका वह महान् सुधारवादी आन्दोलन सम्भव हो सका था, और जिसकी एक सर्वोत्तम देन कवि-गुरु स्वयं हैं।[1]

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ५-११-१९२५

२३२. उड़ीसामें संकट

मुझे श्री एन्ड्रयूजका एक तार मिला है। उसमें उन्होंने सूचित किया है कि उड़ीसामें मवेशी और मनुष्य, दोनो ही भयकर सकटमें हैं। उन्होंने मुझसे अनुरोध किया है कि मवेशियोंके प्राण बचानेके लिए मैं १०,००० रुपयेकी व्यवस्था करूँ और उन्होंने एक पत्रमें लिखा है कि वहाँ स्त्रियोंके लिए खद्दर चाहिए, क्योंकि वे प्राय: बिना कपडेके हैं। मैं एक ऐसा विश्वस्त एजेंट (अभिकर्ता) ढूँढनेका प्रयत्न कर रहा हूँ, जो इस कार्यको सभाल ले। फिलहाल मेरा धनके लिए जनतासे अपील करनेका कोई विचार नहीं है, क्योंकि मलाबार सहायता कोषमें 'यग इडिया' और 'नवजीवन'के पाठकोंने जो चन्दा दिया था, उसकी एक बडी रकम अभी बची है और वह खर्च नहीं हुई है। चूँकि मैं यह पत्र कच्छसे लिख रहा हूँ, इसलिए मैं नहीं जानता कि ठीक-ठीक कितनी रकम अभी सुलभ है। किन्तु दान देनेवालोंकी स्वीकृतिके बिना मुझे उडीसाको सहायता पहुँचानेके लिए मलाबार सहायता कोषमें से कुछ भी खर्च करनेका कोई अधिकार नहीं है। इसलिए मैं मलाबार सहायता कोषमें चन्दा देनेवालोंसे अनुरोध करता हूँ कि यदि उन्हें मेरा सुझाव पसन्द हो तो वे अपने चन्देके शेष धनको उडीसाके इस सकटमें राहत पहुँचानेके लिए उपयोगमें लानेकी अनुमति दें। जो लोग मुझे अपनी अनुमति भेजें, उनसे प्रार्थना है कि वे दी हुई मूल रकमका उल्लेख भी कर दें, जिससे मैं उस रकमकी ठीक-ठीक जाँच कर सकूँ।

[अग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ५-११-१९२५

१. इस लेखपर कई समकालीन पत्र-पत्रिकाओंने, जैसे इंडियन डेली मेल, ट्रिब्यून और मॉडर्न रिव्यू (दिसम्बर, १९२५, पृष्ठ ७२५-८)ने टिप्पणियाँ लिखीं। गांधीजीने एक पत्र-लेखकको उत्तर देते हुए टिप्पणियोंका जवाब दिया था; देखिए खण्ड २९।

२३३. ये अटपटे सवाल

'यंग इंडिया' के कुछ पाठक मुझे काफी परेशान करते हैं। वे अक्सर बड़े अटपटे सवाल पूछ बैठते हैं। लेकिन चूंकि उन्हें इसमें आनन्द आता है, इसलिए चाहे वे प्रश्न कितने भी पशोपेशमें डालनेवाले क्यों न हों, मुझे इस असुविधाको बर्दाश्त करके उनके प्रश्नोंके उत्तर देने ही चाहिए। एक पत्र-लेखक महाशय अपना पहला वार इस प्रकार करते हैं :

पहली अक्तूबरके 'यंग इंडिया' में प्रकाशित चरखा-संघकी कार्यकारिणी परिषद्के सदस्योंकी नामावलीमें आपके नामके आगे 'महात्मा' शब्द लिखनेके लिए कौन जिम्मेदार है?

पत्र-लेखक सज्जन सच मानें कि चरखा-संघके सदस्योंकी सूचीमें मेरे नामके आगे महात्मा शब्द जोड़ दिये जानेके पीछे इस पत्रके सम्पादकका कोई हाथ नहीं है। जिन्होंने चरखा संघका संविधान पास किया, वे ही इसके लिए जिम्मेदार हैं। यदि मैंने उसके विरुद्ध सत्याग्रह किया होता तो वह शब्द वहाँ न रहता, लेकिन मैंने इस गुनाहको इतना गम्भीर नहीं माना कि उसके लिए सत्याग्रह-जैसे जबर्दस्त हथियारका उपयोग करता। जबतक कोई भारी अनर्थ ही न हो जाये, तबतक तो यह आपत्तिजनक शब्द मेरे नामके साथ हमेशा लगा ही रहेगा; और जिस प्रकार मैं उस शब्दको सहन करता हूँ, उसी प्रकार धैर्यवान आलोचकोंको भी सहन करना होगा।

आप कहते हैं कि आपके साथ काम करनेवाले अन्य लोगोंकी तरह ही आप भी उन मित्रोंकी दानशीलतापर जीवन-निर्वाह करते हैं जो सत्याग्रहाश्रमका खर्च उठाते हैं। क्या आप यह उचित मानते हैं कि जिस संस्थामें तन्दुरुस्त और काम करनेकी पूरी क्षमता रखनेवाले लोग हों, वह संस्था मित्रोंकी दानशीलतापर चले?

पत्र-लेखक सज्जन 'दानशीलता' के शब्दार्थपर बहुत ज्यादा जोर दे रहे हैं। इस संस्थाका हरएक सदस्य, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, इसके कार्यमे अपने शरीर और बुद्धि दोनोंका पूरा उपयोग करता है। लेकिन फिर भी इस संस्थाके बारेमें ऐसा कहा जा सकता है कि वह मित्रोंकी 'दानशीलता' पर चलती है, क्योंकि वे मित्र जो-कुछ भी उसे दानमे देते हैं उसके बदलेमें उन्हें तो कुछ मिलता नहीं। संस्थाके लोगोंकी मेहनतका फल तो राष्ट्रको मिलता है।

जिसे टॉल्स्टाय "रोटीके लिए मेहनत करना" कहते हैं, उसके बारेमें आपका क्या विचार है? क्या आप सचमुच शारीरिक मेहनत करके जीविकोपार्जन करते हैं?

सच पूछा जाये तो 'रोटीके लिए मेहनत करना', ये शब्द टॉल्स्टायके नहीं हैं। उन्होंने एक दूसरे रूसी लेखक बॉन्डरिकसे इन्हें ग्रहण किया था, और उसका अर्थ यह है कि हरएकको इतनी शारीरिक मेहनत जरूर करनी चाहिए, जिससे वह रोटी पानेका सच्चा अधिकारी बन सके। इसलिए अगर आजीविकाका व्यापक अर्थ

किया जाये तो कहना होगा कि यह आवश्यक नही कि शारीरिक मेहनत करके ही आजीविका प्राप्त की जाये। लेकिन हर आदमीको कुछ-न-कुछ उपयोगी शारीरिक मेहनत अवश्य करनी चाहिए। जहाँतक मेरा सम्बन्ध है, अभी तो मैं शारीरिक मेहनतके रूपमें सिर्फ सूत कातनेका ही काम करता हूँ। यह साकेतिक ढंगकी चीज है। मैं काफी शारीरिक मेहनत नही कर रहा हूँ। और मैं जो अपनेको मित्रोके दानपर जीनेवाला कहता हूँ, उसका एक कारण यह भी है; लेकिन मैं यह भी मानता हूँ कि हरएक राष्ट्रमें ऐसे लोगोंका होना भी जरूरी है जो अपना शरीर, मन और आत्मा सब कुछ राष्ट्रको अर्पण कर दें और अपनी आजीविकाके लिए अपने देशभाइयोंपर, अर्थात् ईश्वरपर, निर्भर रहे।

मुझे खयाल है कि आपने कहींपर यह कहा है कि युवकोंको अपनी आवश्यकताएँ घटा देनी चाहिए और इस तरह उन्हें सिर्फ ३० रुपये माहवारपर ही गुजारा करना चाहिए। क्या शिक्षित युवकोंके लिए बिना पुस्तकोंके, बिना किसी भी प्रकारका सफर किये, या बड़े-बड़े आदमियोंके सम्पर्कमें आनेकी इच्छातक मनमें लाये बिना रह सकना मुमकिन है? यह सब करनेके लिए पैसेकी आवश्यकता तो होगी ही। उन्हें बीमारी, वृद्धावस्था या ऐसी ही दूसरी स्थितियोंमें अपनी आवश्यकताओंको पूरा करनेके लिए कुछ बचाना भी चाहिए ही।

सुव्यवस्थित समाजमें राष्ट्रके ऐसे सेवकोंके लिए, जिनका कि पत्र-लेखक महाशय उल्लेख कर रहे हैं; नि:शुल्क पुस्तकालय रहेंगे, जिनका वे उपयोग कर सकेंगे। उनके सफरका खर्च भी राष्ट्र देगा। और इन राष्ट्र-सेवकोंका कार्य ही ऐसा होता है, जो उनको सहज ही बड़े-बड़े आदमियोंके साथ सम्पर्कका सुअवसर देगा। बीमारी, वृद्धावस्था इत्यादिमें भी राष्ट्र उनकी आजीविकाकी व्यवस्था करेगा। हिन्दुस्तानके लिए या किसी भी देशके लिए यह कोई नई बात नही है।

ऐसा लगता है कि पंचम भाइयोंकी हालत सुधारनेके लिए आप उनके लिए मन्दिर बनवानेकी सलाह देते हैं। क्या यह सच नहीं है कि पीढ़ियोंसे हिन्दुओंका मानस मन्दिरों-जैसी चीजोंसे ही इतना ज्यादा बँधा रहा है कि आम तौरपर उनमें इन मन्दिरोंसे परे ईश्वरके व्यापकतर रूपकी कल्पना करनेकी शक्ति ही नहीं रह गई है? जब आप अस्पृश्यताको दूर करना चाहते हैं, जब आप अस्पृश्योंको ऊपर उठाना चाहते हैं और समाजमें उन्हें स्वतन्त्रता और इज्जतकी जगह देना चाहते हैं, तब क्या आपके लिए यह जरूरी है कि आप उन्हें आजकलके सवर्ण हिन्दुओंकी बुराइयों, पापाचारों और अन्धविश्वासोंका भी अनुकरण करनेके लिए प्रोत्साहित करें? अस्पृश्योंका सुधार करते समय हम तमाम हिन्दू जातिका भी सुधार क्यों न करें — कमसे-कम मन्दिरके देवताओंकी पूजाकी हदतक? अस्पृश्योंकी वर्तमान सामाजिक निर्योग्यताओंको दूर करनेके प्रयासके क्रममें क्या हमें उनके मन और विचारको भी बन्धनोंसे मुक्त करनेका प्रयत्न नहीं करना चाहिए ताकि सामाजिक सुधारके साथ-साथ उनमें एक व्यापकतर धार्मिक और बौद्धिक दृष्टिकोण भी आ सके?

इसीसे मिलती-जुलती एक और बात भी है, जिसकी ओर ध्यान दिला देना यहाँ अनुचित न होगा। वह यह कि अगर खादी प्रचारके कामको सचमुच सफल बनाना है तो उसका उद्देश्य केवल विदेशी कपड़ोंका बहिष्कार ही नहीं होना चाहिए, बल्कि साथ ही पोशाकके मामलेमें अराष्ट्रीय और यहाँकी आवोहवाके प्रतिकूल पड़नेवाले फैशनों और रुचियोंको भी दूर करनेका प्रयत्न करना चाहिए। वैसे खादी-कार्य इस दिशामें एक हदतक तो कुछ परिणाम दिखा भी चुका है।

मन्दिरोंके अस्तित्वको मैं पाप या अन्धविश्वासका द्योतक नहीं मानता। कोई एक सामान्य पूजापद्धति और सामान्य पूजनस्थल मनुष्यके लिए आवश्यक प्रतीत होता है। मन्दिरोंमें मूर्तियाँ होनी चाहिए या नहीं, यह बात तो व्यक्तिकी मानसिक वृत्ति और रुचिपर निर्भर करती है। वैसे, मैं नहीं मानता कि हिन्दुओंका मन्दिर या रोमन कैथोलिकोंका गिरजाघर, जहाँ मूर्तियाँ रखी जाती हैं, बुरा और अन्धविश्वासको प्रश्रय देनेवाला स्थान ही है और मसजिद या प्रोटेस्टेंटोंका गिरजाघर महज इस कारण कि उसमें मूर्ति नहीं रखी जाती, अच्छा और अन्धविश्वासोंसे मुक्त स्थान है। पुस्तक या क्रास — जैसा कोई प्रतीक भी बड़ी आसानीसे मूर्तिपूजाका रूप ले सकता है, और इसलिए वह भी अन्धविश्वासमूलक बन जा सकता है। दूसरी ओर बालकृष्ण और कुमारी मेरीकी पूजा भी पूजा करनेवालोंका उद्धार करनेवाली और अन्धविश्वाससे रहित हो सकती है। यह बात तो भक्तके हृदयकी भावनापर निर्भर करती है।

खादी प्रचार और तथाकथित अस्पृश्योंके लिए मन्दिर बनवानेकी बातके बीच मुझे तो कोई सादृश्य दिखाई नहीं देता। लेकिन मैं पत्र-लेखककी इस दलीलको स्वीकार करता हूँ कि विदेशी वस्त्र-विरोधी आन्दोलनमें अनावश्यक और हानिकर विदेशी फैशनों और रुचियोंके त्यागकी बात भी शामिल रहनी चाहिए। मगर इसके लिए अलगसे प्रचार करनेकी जरूरत नहीं है। आम तौरपर तो यही देखा गया है कि जिन लोगोंने खादीको अपना लिया है, उन्होंने पहनावेके मामलेमें ऐसे फैशनों और रुचियोंको भी त्याग दिया जो हमारे यहाँकी आबोहवाके लिए बिलकुल गैर-जरूरी हैं।

मेरा तो ऐसा खयाल है कि आपने खिलाफतके काममें जो मदद की है, वह इसीलिए की कि इस मामलेमें आपके मुसलमान देशभाइयोंकी भावना बड़ी तीव्र थी। लेकिन किसी भी कामके वास्तविक औचित्य और महत्त्वके विषयमें अपने मनको पूरी तरह आश्वस्त किये बिना केवल इसलिए कि उसके सम्बन्धमें हमारे भाइयोंकी भावना, सही तौरपर या गलत तौरपर, बहुत तीव्र है, उस कामकी मदद करना क्या उचित या न्यायसंगत होगा? या आपका मन इस विषयमें आश्वस्त हो गया था कि खिलाफत अपने-आपमें एक उत्तम चीज है और यदि आपका मन इस विषयमें आश्वस्त हो गया था तो क्या आप उसके कारण बतायेंगे — विशेषकर इस बातको ध्यानमें रखते हुए कि आधुनिक तुर्कीने भी शायद इस खयालसे कि इससे इस्लामी दुनियामें नितान्त विवेकहीन और कट्टरतापूर्ण ढंगकी धर्मान्धताको बराबर प्रश्रय मिलता रहेगा, उसे बातकी-बातमें खत्म कर दिया है?

पत्र-लेखककी यह दलील बिलकुल सही है कि किसीको अपने भाईके काममें भी तभी मदद करनी चाहिए, जब उसपर पूरी तरह विचार करनेके बाद उसका मन यह स्वीकार करता हो कि वह काम न्यायसंगत है। मैंने जब मुसलमान भाइयोंका साथ देना तय किया तब खुद मेरा मन तो इस बातको पूरी तरह स्वीकार करता था कि उनका काम न्यायसंगत है। खिलाफतके कामको मैंने क्यों सही माना, इसके कारण जाननेके लिए मैं 'यंग इंडिया' के उस समयके अंकोंकी फाइलें देखनेकी सलाह दूँगा। आधुनिक तुर्की जो-कुछ भी करता है, कोई जरूरी नही कि वह सब उचित ही हो। इसके अलावा मुसलमान लोग अपने रीति-रिवाजोंमें चाहे जो नई बातें दाखिल कर सकते हैं, लेकिन जो मुसलमान नही है, वह उस धर्ममें कोई नई बात दाखिल करनेके लिए उन्हें नहीं कह सकता। वह तो सिर्फ इतना ही कर सकता है कि किसी पद्धति या रिवाजका समर्थन करनेके पहले यह देख ले कि सामान्य नैतिकताकी दृष्टिसे वह उचित है या नही। मेरा मन इस विषयमें आश्वस्त था कि खिलाफतकी संस्थामें कोई बात अनुचित नही है। जो मुसलमान नही हैं, ऐसे कितने ही लोगोंने, जिसमें स्वयं लायड जॉर्ज भी एक है, इस मामलेमें मुसलमानोके पक्षको सही माना था। और मैंने इस संस्थाका बचाव ऐसे लोगोंके प्रहारोके खिलाफ ही किया, जो मुसलमान नही हैं।

जब आप आफ्रिकामें और यहाँ भारतमें युद्धक्षेत्रमें काम करनेके लिए लोगोंको भरती कर रहे थे तब क्या आप वास्तवमें युद्धकार्यमें सहायता नहीं कर रहे थे? यह बात आपके अहिंसाके सिद्धान्तसे किस प्रकार संगत हो सकती है?

दक्षिण आफ्रिका और इंग्लैंडमें आहत सहायक दलके लिए लोगोंको भरती करके तथा भारतमें युद्ध-क्षेत्रमें काम करनेके लिए रंगरूटोंकी भरती करके मैंने युद्ध-कार्यमें नहीं, बल्कि ब्रिटिश साम्राज्य नामक उस संस्थाकी मदद की, जिसके बारेमें तब मेरा विश्वास था कि वह अन्ततः कल्याणकारी ही साबित होगी। उन दिनों भी युद्धसे मुझे उतनी ही वितृष्णा थी जितनी कि आज है, और तब भी मैं न तो अपने हाथमें बन्दूक संभाल सकता था और न वैसा करना पसन्द ही कर सकता था। लेकिन जिन्दगी कोई सीधी लकीर नही है; वह तो परस्पर विरोधी कर्त्तव्योंका एक समुच्चय है। और मनुष्यके सामने अक्सर ऐसे प्रसंग आते ही रहते हैं जब उसे दो परस्पर विरोधी कर्त्तव्योंमें से किसी एकको चुनना पड़ता है। एक नागरिककी हैसियतसे मुझे ऐसे लोगोंको सलाह और नेतृत्व देना था जो युद्धमें विश्वास तो करते थे, किन्तु कायरतावश अथवा किसी क्षुद्र उद्देश्यसे या ब्रिटिश सरकारके प्रति क्षोभके कारण सेनामें भरती होनेसे कतराते थे। युद्ध विरोधी आन्दोलनका नेतृत्व करनेवाले सुधारककी हैसियतसे मेरा वैसा करना न तब सम्भव था, न आज। लेकिन 'एक' नागरिककी हैसियतसे मैंने उस समय उनको नि.संकोच भावसे यह सलाह दी कि जबतक उनका युद्धमें विश्वास है और जबतक वे कहते हैं कि वे ब्रिटिश संविधानके प्रति वफादार हैं, तबतक भरती होकर उसकी सहायता करना उनका कर्त्तव्य है। यद्यपि मैं शस्त्रोंके प्रयोगमें विश्वास नहीं रखता, और यद्यपि यह चीज मेरे अहिंसाधर्मके विरुद्ध है, फिर

भी अगर इस पतनकारी शस्त्रास्त्र अधिनियमके खिलाफ, जिसे मैं भारतके साथ ब्रिटिश सरकार द्वारा किये गये जघन्यतम अपराधोंमे से मानता हूँ, कोई आन्दोलन चलाया जाये, तो मैं खुशी-खुशी उसमें शामिल होऊँगा। मैं प्रतिहिंसामे विश्वास नहीं करता, लेकिन चार साल पूर्व बेतियाके निकटके ग्रामवासियोंसे मुझे यह कहनेमें कोई हिचकिचाहट नहीं हुई कि आप लोग अहिंसाके बारेमें कुछ भी नहीं जानते और शस्त्र-बलसे अपनी स्त्रियों तथा सम्पत्तिकी रक्षा करनेसे जी चुराकर आपने कायरताका परिचय दिया है। और शायद पत्र-लेखक को भी मालूम होगा कि अभी हालमें भी मैंने हिन्दुओंसे बेहिचक कहा है कि अगर आपको पूर्ण अहिंसामें विश्वास न हो और आप उसका पालन न कर सकते हों, और तब भी अगर आप अपनी औरतपर हाथ डालनेवाले दुष्टका अपने शरीर बलसे मुकाबला नहीं करते तो यह अपने धर्म और मानवताके प्रति एक अपराध होगा। और इन तमाम सलाहों और अपने पिछले आचरणको मैं न केवल अपने इस कथनसे कि मैं पूर्ण अहिंसामें विश्वास रखता हूँ, संगत मानता हूँ, बल्कि अपने इस विश्वासका एक सीधा परिणाम भी मानता हूँ। उस उदात्त सिद्धान्तको मुँहसे कह देना आसान है; किन्तु संघर्षों, संक्षोभों और तरह-तरहके मनोविकारोंसे भरी इस दुनियामें उसे समझ पाना और उसके अनुसार चल पाना ऐसा काम है, जिसकी कठिनाईकी प्रतीति मुझे हर रोज अधिकाधिक होती जा रही है। किन्तु इसके बावजूद, मेरा यह विश्वास भी उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है कि इसके बिना जीवनका कोई अर्थ नहीं है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ५-११-१९२५

२३४. जातिगत श्रेष्ठताकी बीमारी

मैमनसिंहमे वहाँकी जिला वैश्य सभाने मुझे एक कागज दिया था। उसमे जो लिखा है वह काफी ध्यान देने लायक बात है और उसमें सबकी रुचि होनी चाहिए। वह निम्न प्रकार है:[1]

सम्भव है कि इन बातोंमें कुछ अतिशयोक्ति हो, लेकिन मैंने यह दिखानेके लिए ही यह पत्र यहाँ दिया है कि ऊँच-नीचकी भावनाकी बीमारी हिन्दू धर्मकी जड़ोंमें कितनी गहरी उतर चुकी है। यद्यपि खुद इस निवेदनको लिखनेवाले लोगोंको भी उनसे ऊँचे कहे जानेवाले लोग हेय दृष्टिसे देखते हैं, फिर भी इन्होंने उन लोगोंसे, जो उनसे भी अधिक तिरस्कृत हैं, अपने-आपको श्रेष्ठ और अलग बतानेमें तनिक भी संकोच नहीं किया है। इस प्रकार तिरस्कृत "अस्पृश्यों" में भी ऊँच-नीचका भेद-भाव भरा हुआ है। कच्छकी यात्रामें भी मैंने सब जगह यह देखा कि हिन्दुस्तानके दूसरे भागोंकी तरह यहाँ भी अस्पृश्योंमें भी ऊँची-नीची जातियाँ हैं और ऊँची

१. देखिए परिशिष्ट ६।

जातिका अन्त्यज नीची जातिके अन्त्यजका स्पर्श नही करता और वह नीची जातिके बालकोंके स्कूलोमें अपने लड़केको भेजनेके लिए कतई तैयार नही है। उनमें परस्पर रोटी-बेटीके सम्बन्धकी बात तो सोची भी नही जा सकती। यह तो वर्ण-व्यवस्था-का अनर्थ है। एक वर्ग द्वारा अपनेको दूसरे वर्गसे ऊँचा माननेके इस अहंकारका विरोध करनेके लिए मैं अपनेको भगी कहनेमें आनन्द मानता हूँ, क्योंकि जहाँतक मैं जानता हूँ, कोई भी जाति ऐसी नही है जो भंगीसे भी नीची मानी जाती हो। वही बेचारा हमारे समाजका वह कोढ़ी है, जिससे सभी दूर भागते हैं। फिर भी हकीकत यह है कि वह समाजके उस वर्गका सदस्य है जो वर्ग हमारी स्वच्छता और इसलिए हमारे शारीरिक अस्तित्वके लिए किसी भी अन्य वर्गकी अपेक्षा अधिक अनिवार्य है। जिनकी ओरसे उपर्युक्त कागज मुझे दिया गया है, उन सज्जनोंके प्रति मेरी पूर्ण सहानुभूति है। लेकिन मैं उन्हे आगाह किये देता हूँ कि जो लोग उनसे भी बुरी स्थितिमें पडे हुए हैं, उन्हे वे इस तरह अपनेसे अधम न मानें। उनका कर्त्तव्य तो यह है कि वे उन्हे भी अपने साथ मिला ले और जो सुविधाएँ उनसे नीच माने जानेवाले इन लोगोंको न दी जायें, वे स्वय भी उनका लाभ उठानेसे इनकार कर दें। यदि हम हिन्दूधर्मको अस्वाभाविक विषमताके कलंकसे मुक्त करना चाहते हों, तो हममें से कुछ लोगोंको प्राणपणके साथ इसके खिलाफ विद्रोह करना होगा। मेरे खयालसे तो जो लोग श्रेष्ठ होनेका दावा करते हैं, वे अपने इस दावेके कारण ही श्रेष्ठताके अधिकारको गँवा बैठते हैं। सच्ची और स्वाभाविक श्रेष्ठता तो उसका दावा किये बिना आती है। ऐसी श्रेष्ठताको लोग खुशी-खुशी स्वीकार करते हैं, और जो व्यक्ति इस प्रकार श्रेष्ठ होता है, वह इस सम्मानसे इनकार ही करता रहता है। लेकिन वह ऐसा पाखण्डके कारण या झूठी विनम्रताकी भावनासे नही, बल्कि इसलिए करता है कि वह ऐसा महसूस नही करता कि वह श्रेष्ठ है और जानता है कि स्वयं उसकी आत्मा और जो व्यक्ति अपनेको उससे छोटा मानता है, उसकी आत्मामें कोई अन्तर नही है। जीवनका अर्थ अधिकारों और सुविधाओंका समुच्चय नही; जीवनका अर्थ तो कर्त्तव्य है। जिस धर्मकी नीव ऊँच-नीचके भेदपर आधारित होगी, उसका नाश निश्चित है। वर्णाश्रम धर्मका मै ऐसा अर्थ नहीं मानता। मैं उसमें इसलिए विश्वास करता हूँ कि मैं मानता हूँ, वह अलग-अलग धन्धोंमें लगे लोगोंके कर्तव्योंको निर्धारित करता है। ब्राह्मण वही है जो सभीका सेवक है—शूद्रोंका और अस्पृश्योंका भी। सबकी सेवा करनेके लिए वह अपना सब-कुछ अर्पित कर देता है और स्वयं दूसरोके दान और अनुग्रहपर ही जीवन-निर्वाह करता है। अधिकार, सम्मान और विशेष सुविधाओंका दावा करनेवाला व्यक्ति क्षत्रिय नहीं है। क्षत्रिय तो वही है जो समाजका रक्षण करनेके लिए, उसकी प्रतिष्ठाके लिए आत्मार्पण कर देता है। और जो वैश्य सिर्फ अपने लिए ही कमाना और केवल धन-संग्रह करना ही अपना धर्म मानता है, वह वैश्य नही, चोर है। शूद्र चूँकि पारिश्रमिक लेकर समाजके लिए श्रम करता है, इसी-लिए उसे किसी भी तरहसे तीनों वर्णोसे अधम नही माना जा सकता। हिन्दूधर्मकी मेरी कल्पनाके अनुसार पंचम, अर्थात् अस्पृश्योंका कोई वर्ण है ही नही। जिन्हें अस्पृश्य

कहते हैं, वे भी समाजके श्रमिकोंके रूपमें उतने ही अधिकारों और सुविधाओंके पात्र हैं, जितनेके शूद्र। मेरे लेखे तो वर्णाश्रम-धर्म समाज के अधिकसे-अधिक कल्याणके लिए सोची गई व्यवस्था है। और आज हम जो-कुछ देख रहे हैं, वह उस व्यवस्थाके असली रूपकी विडम्बना और उपहास-मात्र है। और अगर वर्णाश्रम धर्मको जीवित रखना है, तो हिन्दुओंका कर्त्तव्य है कि वे उसे इस विडम्बनाकी स्थितिसे मुक्त करके, उसके मूल गौरवपर उसे पुनः प्रतिष्ठित करें।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ५-११-१९२५

२३५. भेंट : अहमदाबादमें पत्र-प्रतिनिधियोंसे

६ नवम्बर, १९२५ से पूर्व

श्री गांधी कच्छका अपना दौरा पूरा करके यहाँ वापिस आ गये हैं। ऐसा लगता है कि उनका स्वास्थ्य काफी गिर गया है।

अपने स्वास्थ्यके विषयमें पूछे जानेपर उन्होंने कहा :

मेरे स्वास्थ्यके बारेमें चिन्ता करनेका कोई कारण नहीं है। यह ठीक है कि बंगालका दौरा करनेके बाद मुझे जो कमजोरी आई थी उसकी तुलनामें इस बार मैं ज्यादा कमजोर हुआ हूँ। कारण यह है कि कच्छमें सड़कें बहुत खराब थीं और मुझे लगातार यात्रा करनी पड़ी। मैं बहुत थक गया हूँ और मेरा वजन करीब आठ पौंड कम हो गया है। लेकिन मैं जानता हूँ कि आश्रममें मुझे जो आराम मिलेगा, उससे मेरी खोई हुई शक्ति और वजनकी शीघ्र ही पूर्ति हो जायेगी। मैं एक बात साफ कर देना चाहता हूँ — कच्छके दौरेमें जो कठिनाइयाँ सहनी पड़ीं, उनका दोष किसीको नहीं दिया जा सकता। हम सब लोगोंका खयाल तो यह था कि इस दौरेमें मुझे लगातार परिश्रम करनेकी बाध्यतासे कुछ राहत मिलेगी। हमारे आसपास वहाँ जो लोग थे उन्होंने मुझे आराम देनेके प्रयत्नमें कोई कसर नहीं रखी। किन्तु बैल-गाड़ियोंमें ऊबड़-खाबड़ सड़कोंपर यात्रा करनेसे मेरे जर्जर शरीरपर कितना जोर पड़ेगा, इसकी कल्पना किसीको नहीं थी।

कानपुर-कांग्रेसमें वे क्या करेंगे, यह पूछनेपर महात्माजीने कहा :

कांग्रेसमें मैं क्या करूँगा — इसके बारेमें मैंने कुछ भी नहीं सोचा है। अलबत्ता, जहाँ सम्भव होगा वहाँ अपने वचनके अनुसार मैं स्वराज्यवादियोंकी सहायता करूँगा। किन्तु कांग्रेसके कार्यक्रमकी रचना तो पण्डित मोतीलाल नेहरूसे सलाह-मशविरा करके श्रीमती सरोजिनी देवी ही करेंगी।

यह पूछनेपर कि क्या उदारवादियों और निर्दलियोंको कांग्रेसमें लानेकी कोई कोशिश नहीं की जायेगी, गांधीजीने कहा :

उदारवादी और निर्दलीय कांग्रेसमें आयें और इसकी कोशिश करे कि स्वराज्यवादी उनको स्वीकार कर ले — इसके लिए रास्ता खुला हुआ है, मुझे इसमें कोई बाधा नही दिखती। जिस तरह वे विरोधियोंका और सरकारका विचार-परिवर्तन करने तथा उन्हे अपनी बात माननेके लिए राजी कर सकनेकी आशासे कौंसिलों और धारासभाओंमें गये थे वैसे ही वे कांग्रेसमें भी आ सकते है।

श्री गांधीका इरादा अभी पूरा एक महीना आश्रममें ही रहनेका है।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १-११-१९२५

२३६. पत्र : डा० मु० अ० अन्सारीको

७ नवम्बर, १९२५

प्रिय डा० अन्सारी,

आपके और हकीम साहबके हस्ताक्षरोंसे भेजा पत्र[1] मिला। कांग्रेस अध्यक्षके राष्ट्रसंघको तार भेजनेसे क्या बन सकता है? मै अपने-आपको पिंजड़ेमें बन्द शेरकी स्थितिमें महसूस करता हूँ। अन्तर सिर्फ इतना ही है कि जहाँ वह आजाद होनेकी बेकारकी कोशिश में बेचैन रहता है और अपने दाँत कटकटाता तथा क्रोधसे लोहेके सीकचोंपर झपटता रहता है, वहाँ मै अपनी सीमाएँ जानता हूँ, इसलिए बेकार हाथ-पाँव नही मारता। यदि हमारे पीछे कोई शक्ति हो तो मै आपके सुझावके अनुसार तुरन्त तार भेज दूँ। बहुत-सी बातें, जिनका मैं 'यंग इंडिया'में जिक्र नही करता, मेरे हृदयमें जाकर बैठ जाती है और वे प्रकाशित बातोंसे बहुत अधिक वजनदार होती है। लेकिन मै उस अदृश्य शक्तिके सामने उन बातोंके विषयमें भी रोज निवेदन करता हूँ। और जहाँतक नजर जाती है, वहाँतक जो-कुछ देखता हूँ, उसके बारेमें सोचकर मेरा मन दुःख और क्लान्तिसे भर उठता है और जब मै अपने अन्तरके उस क्षीण स्वरको सुनता हूँ तो अपने चारों और प्रज्वलित ज्वालाके बावजूद आशान्वित होकर मुस्करा उठता हूँ। दुनियाके सामने हमारी कमजोरीका ढिंढोरा पीटनेके लिए मुझे मजबूर न कीजिए।

हृदयसे आपका,

मो० क० गांधी

अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० १०५९७) की फोटो-नकलसे।

१. पत्रके सारके लिए देखिए "हमारी दुर्बलता", १२-११-१९२५ की पा० टि० १।

२३७. पत्र: पी० ए० नारियलवालाको

साबरमती
७ नवम्बर, १९२५

प्रिय भाई,

पत्र और अनुदानके लिए धन्यवाद। इसे आप सीधे मन्त्री, अ० भा० चरखा संघ, सत्याग्रहाश्रम, साबरमतीको भेजें तो अधिक सुविधा होगी।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्री [पी० ए०] नारियलवाला
"रोज ली" अल्टामाँट रोड
खम्बाला हिल
बम्बई

अंग्रेजी पत्र (सी० डब्ल्यू० ९२७५) से।
सौजन्य: पी० ए० नारियलवाला

२३८. पत्र: शान्तिकुमार मोरारजीको

कार्तिक बदी ८ [८ नवम्बर, १९२५][1]

भाई शान्तिकुमार,

तुम्हारी ओरसे मुझे दो पत्र कच्छमें मिले थे। यदि शोलापुरके बारेमें सही हकीकत तुम्हारे हाथ लगी हो तो मुझे खबर देना। क्या तुम्हे इस झगड़ेके मूल कारणका पता चला है?

मोहनदासके आशीर्वाद

[पुनश्च:]

मेरा दायाँ हाथ नही चलता इसलिए बायेंसे लिखा है।

गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ४६९९) की फोटो-नकलसे।
सौजन्य: शान्तिकुमार मोरारजी

१. पत्रमें कच्छके जिक्रसे पता चलता है कि यह पत्र १९२५में लिखा गया था।

२३९. हमारी दुर्बलता

हकीम साहब अजमल खाँ और डा० अन्सारी यूरोपकी और साथ ही सीरियाकी भी लम्बी यात्रा पूरी करके अभी ही लौटे हैं। उन्होंने मुझे नीचे लिखा पत्र भेजा है:[1]

कांग्रेसकी ओरसे राष्ट्र-संघ (लीग आफ नेशन्स) को तार भेजनेकी उनकी सलाह मुझसे स्वीकार करते नही बनी। और इसलिए मैंने उन्हें निम्नलिखित उत्तर भेज दिया है:[2]

उसके अभावमें मैं दूसरी सबसे अच्छी बात यही कर सकता था कि उस महत्त्व-पूर्ण पत्रको अपने उत्तरके साथ प्रकाशित कर दूँ। किसी निवेदनके पीछे जबतक नैतिक अथवा भौतिक बल न हो, तबतक मैं निवेदन करना बेकार मानता हूँ। नैतिक-बल निवेदकोंके कुछ करनेके संकल्पसे, निवेदनको सफल बनानेके लिए कुछ त्याग-बलिदान करनेके निश्चयसे उत्पन्न होता है। यहाँतक कि बच्चे भी इस प्राथमिक नियमको जानते हैं। अपनी बात मनवानेके लिए वे खाना-पीना छोड देते हैं, रोते-चिल्लाते हैं, और शैतान बच्चे तो, माँ अगर उनकी आग्रहपूर्ण माँगें पूरी न करे तो उसे मारनेमें भी नही हिचकिचाते। जबतक हम लोग इस नियमको समझकर इसपर अमल करनेके लिए तैयार नही हैं, तबतक किसीसे थोथा निवेदन करनेका परिणाम अधिक बुरा नही तो इतना तो होगा ही कि दुनिया कांग्रेसपर हँसेगी और हमपर भी।

शैतानी तो हम इच्छा होते हुए भी नही कर सकते; अलबत्ता, कष्ट अवश्य सह सकते हैं। मैं चाहता हूँ कि हम हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी, सब — भारतीयों या एशियाइयोंकी हैसियतसे यह महसूस करें कि सीरियाका जो अपमान किया जा

१. यह पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। इसमें पत्र-लेखकोंने फ्रांसके द्वारा सीरियापर किये जा रहे अत्याचारोंका वर्णन किया था। राष्ट्र-संघ (लीग आफ नेशन्स) ने सीरियाका शासनाधिकार (मैंडेट) फ्रांसको दे दिया था, और उसे वहाँका शासन वहाँके लोगोंके कल्याण और हित-साधनके लिए चलाना था। सीरियावालोंके आन्तरिक मामलोंमें स्वतन्त्र रहनेकी बात थी। किन्तु, पत्र-लेखकोंने वहाँ इससे बिलकुल उलटा ही देखा। उनका हितसाधन तो दूर, उनपर तरह-तरहके अत्याचार किये जा रहे हैं; उनपर बमबारीतक की जा रही है।

इस प्रकार वहाँका पूरा हाल बतानेके बाद पत्रमें कहा गया था कि "हम आपको यह पत्र इस उद्देश्यसे लिख रहे हैं कि हमारे इन एशियाई भाइयोंको आपकी सहानुभूति मिल सके और आप कांग्रेसके अध्यक्षकी हैसियतसे राष्ट्र-संघको, जिसने फ्रांसको सीरियाका शासनाधिकार दिया है, एक तार भेजें तथा अन्य कांग्रेस संगठनोंको भी वैसा ही करनेकी सलाह दें। हम जानते हैं कि भारतकी वर्तमान स्थिति ऐसी कोई कार्रवाई करनेकी दृष्टिसे बहुत उपयुक्त नहीं है, लेकिन भारतीयों, मुसलमानों और एशियाइयोंकी हैसियतसे हमारा यह सुविचारित मत है कि हमें एशियाकी समस्त शोषित-प्रताड़ित जनताके साथ सहानुभूति रखनी चाहिए और उनसे मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करना चाहिए, जो उनके और खुद हमारे लिये भी लाभदायक होगा।"

२. देखिए "पत्र: डा० मु० अ० अन्सारीको", ७-११-१९२५।

रहा है, उसपर जो जुल्म, डायरशाही, या जो भी कहिए, ढाई जा रही है, उसके सम्बन्धमें हम कितने लाचार हैं। हमारी लाचारीका जब हमें निश्चित एहसास होगा, तब हम, शायद और किसीका नहीं तो कमसे-कम जानवरोंका अनुकरण करना सीख सकेंगे, जो तूफान और वर्षाके समयमें एक जगह इकट्ठे होते हैं और एक-दूसरेसे गरमी और हिम्मत पाते हैं। वे उस तूफानके देवतासे अपने प्रकोपको कम करनेके लिए व्यर्थ प्रार्थना नहीं करते हैं, बल्कि सिर्फ उसका उपाय ही कर लेते हैं।

और हम हिन्दू और मुसलमान तो एक-दूसरेसे लड़ते हैं और दिन-ब-दिन दोनोंका मतभेद बढ़ता हुआ ही दिखाई दे रहा है। हम लोगोंने अभीतक चरखेका अभिप्राय भी नहीं समझा है; और जो समझते हैं वे खादी न पहनने और सूत न कातनेका कुछ-न-कुछ बहाना ढूँढ़ निकालते हैं। हमारे चारों ओर तूफान उमड़ रहा है और फिर भी हम एक-दूसरेसे हिम्मत और गरमी पानेकी कोशिश करनेके बजाय ठण्डमें ठिठुरते रहना या तूफानके देवताओंसे अपना हाथ रोक लेनेके लिए प्रार्थना करना ही पसन्द करते हैं। यदि मैं हिन्दुओं और मुसलमानोंमें एकता नहीं स्थापित कर सकता और लोगोंको चरखेको अपनानेके लिए नहीं समझा सकता, तो मुझमें कमसे-कम इतनी समझदारी तो है ही कि मैं दयाकी भीख माँगनेके लिए किसी याचिकापर दस्तखत न करूँ।

और राष्ट्र-संघ क्या है? सच पूछा जाये तो क्या वह सिर्फ फ्रान्स और इंग्लैंडका ही नहीं है? क्या दूसरी ताकतोंका उसपर कुछ भी वश चलता है। क्या फ्रांससे, जो समानता, न्याय और भाई-चारेके अपने आदर्शसे मुँह मोड़ रहा है, प्रार्थना करनेसे कुछ लाभ होगा? उसने जर्मनीके साथ न्याय नहीं किया है, रीफ[1] लोगोंके साथ उसका कोई भाईचारा नहीं है और सीरियामें वह समानताके सिद्धान्तको कुचल रहा है। यदि हमें इंग्लैंडसे प्रार्थना करनी है, तो उसके लिए राष्ट्र-संघतक जानेकी हमें कोई जरूरत नहीं है। वह तो हमारे घरके पास ही है। हाँ, यह बात अवश्य है कि वह ज्यादातर तो शिमलाके पहाड़ोंकी ठण्डी हवा ही लेता रहता है और हमारे बीच दिल्लीमें कभी-कभी ही आता है। उससे प्रार्थना करना वैसा ही है जैसा ऑगस्टसके खिलाफ सीजरसे प्रार्थना करना।

इसलिए हमें इस कठोर सत्यको खुली आँखों देखना चाहिए और राष्ट्रसे अपना फर्ज अदा करनेके लिए प्रार्थना करना सीखना चाहिए। भारतके जरिये ही सीरियाका दुःख दूर होगा। यदि हममें अपनी महत्ताको समझनेकी शक्ति नहीं है, तो फिर हमें अपनी लघुताको स्वीकार करके चुप ही रहना चाहिए। लेकिन हमें छोटा बननेकी जरूरत नहीं है। हम कमसे-कम एक काम तो अच्छी तरह करें। वह यह कि या तो चौपायोंकी तरह मरते दमतक लड़ें या फिर मनुष्यकी तरह, दुनियाने जैसा व्यापक सहयोग आजतक कभी नहीं देखा हो, ऐसे व्यापक सहयोगके जरिये खुद भी यह सीखें और दुनियाको भी सिखायें कि अपनेसे कमजोर लोगोंका शोषण

१. मोरक्को निवासी।

करना व्यर्थ है, बल्कि पाप है। और करोड़ों लोगोंमें ऐसा सहयोग केवल चरखेसे ही सम्भव है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १२-११-१९२५

२४०. टिप्पणियाँ

शान्ति-दूत

जितनी सेवा बन पड़े करो और फिर उसे भूल जाओ — श्री एन्ड्रयूजने अपने लिये तो यही तय किया है। उनकी सेवाका रूप अकसर झगड़ेको मिटाकर शान्ति स्थापित करना होता है। अभी उन्होंने उड़ीसामें दुःखी और पीड़ित मनुष्यों और मवेशियों तथा बम्बईके मिल-मजदूरोंके बीच अपना काम पूरा ही किया था कि उन्हें दक्षिण आफ्रिकामें जाकर वहाँके दुःखी भारतीय प्रवासियोंकी मदद देनेकी आवश्यकता महसूस होने लगी। लेकिन वहाँ वे केवल भारतीयोंकी ही नहीं, यूरोपीयोंकी भी मदद करेंगे। उनमें द्वेष अथवा क्रोधका लेश भी नहीं है। वे हिन्दुस्तानियोंके प्रति कोई विशेष अनुग्रह नहीं चाहते। वे तो सिर्फ न्याय ही चाहते हैं। श्री एन्ड्रयूज दक्षिण आफ्रिकाके लिए अजनबी नहीं हैं।[1] दक्षिण आफ्रिकाके राजनीतिज्ञ यह बात जानते और मानते हैं कि वे यूरोपीयोंके भी उतने ही मित्र हैं, जितने कि हिन्दुस्तानियोंके। भारतीयोंका प्रश्न बड़े ही नाजुक दौरमें पहुँच चुका है। और दक्षिण आफ्रिकामें रहनेवाले भारतीयोंके लिए जीवन-मरणका प्रश्न बन गया है। ऐसे कठिन समयमें श्री एन्ड्रयूजके वहाँ होनेसे उन्हें बड़ा ढाढ़स बँधेगा। ईश्वर करे, इस सज्जन व्यक्तिके प्रयत्न पहलेकी ही तरह सफल हों। लेकिन श्री एन्ड्रयूजके अपने बीच होने-भरसे दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंको सुरक्षाकी किसी झूठी भावनासे आश्वस्त होकर चुपचाप नहीं बैठ जाना चाहिए। उनके वहाँ होनेसे ही भारतीयोंके कष्ट दूर नहीं हो सकते। वे तो केवल उन्हें सलाह दे सकते हैं, मार्ग दिखा सकते हैं, और सुलह करानेके लिए प्रयत्न कर सकते हैं। लेकिन जबतक स्वयं वहाँ रहनेवाले भारतीयोंमें मिलकर काम करनेकी क्षमता और हिम्मत न होगी, तबतक उनकी सलाह, उनके मार्ग-दर्शन और सुलहकी बातचीतसे कोई लाभ न होगा।

अफीम सम्बन्धी रिपोर्ट

कांग्रेसकी तरफसे अफीमके सम्बन्धमें असममें की गई जाँचकी रिपोर्ट प्रकाशित हो गई है। यह कांग्रेस कार्यालय, जोरहाट, असम या श्री एन्ड्रयूज, शान्तिनिकेतन, के पतेपर लिखकर डेढ़ रुपये या दो शिलिंगमें प्राप्त की जा सकती है। रिपोर्ट बहुत अच्छी छपी है। उसमें १६६ पृष्ठ हैं। उसमें एक नक्शा, कुछ परिशिष्ट, आये

१. एन्ड्रयूज १९१४ में दक्षिण आफ्रिका गये थे जबकि गांधीजी भी वहीं थे, देखिए खण्ड १२।

हुए कठिन शब्दोंका कोष और विषयसूची भी है। रिपोर्ट स्वयं ४४ पृष्ठोंकी है। इसमें ९ प्रकरण हैं। उसमें श्री सी० एफ० एन्ड्रयूजकी लिखी प्रस्तावना भी है। वे जाँच-समितिके सहयोगी सदस्य थे, और इस जाँच-समितिके गठन और काममें मुख्य हाथ उन्हींका था। समितिके अध्यक्ष श्री कुलधर चेट्टी थे। श्री एन्ड्रयूज प्रस्तावनामें कार्यकर्त्ताओंकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं:[1]

देखता हूँ, इसमें मुझसे असम जानेका भी अनुरोध किया गया है। मैं अपनी बंगालकी यात्राके समय असम न जा सका, क्योंकि क्रूर मृत्युने तभी देशबन्धु दासको हमसे छीन लिया। इसके लिए मुझे बड़ा अफसोस है। फिर भी, मैंने श्री फूकनसे वादा कर रखा है कि यदि सब ठीक रहा तो अगले वर्ष मैं भारतके उस सुन्दर उद्यानको देखने अवश्य आऊँगा। मेरी शर्तें तो सभी जानते हैं। देशबन्धुका सिद्धान्त था, मनुष्य, गोला-बारूद और पैसा। यद्यपि आज वे सशरीर हमारे बीच नहीं हैं, फिर भी इस सिद्धान्तको तो कायम रखना ही है। हमारा गोला-बारूद हाथ-कते सूतकी गोलियाँ ही हैं। ये गोलियाँ किसीको हानि नहीं पहुँचाती, किन्तु ये रक्षा करनेकी असीम शक्तिसे युक्त हैं। यदि श्री फूकन और उनके साथी अपने शानदार उदाहरणके बलपर असम-निवासियोंको आलस्य त्याग करके चरखेको अपनानेके लिए प्रेरित करेंगे तो मैं उनकी अफीमकी बुरी आदतको दूर करनेका भार अपने सिर ले लूँगा। उनका विश्वास है, और मेरा भी यही विश्वास है कि असममें खादीके प्रचारकी बहुत सम्भावनाएँ हैं। ईश्वर करे वे सम्भावनाएँ शीघ्र ही चरितार्थ हों। फिर तो मैं हर शिक्षित असम-निवासीको विधानसभाके जालमें फँसनेके लिए भी माफ कर दूँगा।

गोरक्षापर निबन्ध

पाठकोंको यह जानकर बड़ी खुशी होगी कि आचार्य ध्रुव और श्रीयुत सी० वी० वैद्य, दोनोंने गोरक्षापर लिखे पुरस्कार-निबन्धोंका परीक्षक बनना स्वीकार कर लिया है। मुझे आशा है कि अब जो निबन्ध आयेंगे वे इन सुयोग्य विद्वानोंके और चुने गये विषयके गौरवके अनुकूल होंगे। आचार्य ध्रुवका सुझाव है कि मुझे इस बातको स्पष्ट कर देना चाहिए कि निबन्ध लिखनेवाले विद्वान् इस सन्दर्भमें शास्त्रोंका

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। कार्यकर्त्ताओंकी उद्यमशीलता और त्यागकी प्रशंसा करनेके बाद इसमें बताया गया था कि जाँचके लिए सबसे पहले असमको ही इसलिए चुना गया कि भारत-भरमें यही प्रान्त अफीमका सबसे अधिक शिकार रहा है। राष्ट्र-संघकी जाँचके अनुसार औषधके रूपमें जहाँ १०,००० व्यक्तियोंपर केवल छः सेर अफीम होनी चाहिए, वहाँ असममें यह परिमाण कमसे-कम ४५ सेर और अधिकसे-अधिक २३७ सेर आता था। इसके बाद असहयोग आन्दोलनके समय इस परिमाणमें जो भारी कमी आ गई थी, उसका उल्लेख करते हुए समितिकी सिफारिशें सूचित की गई थीं, इस प्रसंगमें सरकारी सहायता भी आवश्यक मानी गई थी, लेकिन साथ ही यह भी कहा गया था कि सबसे जरूरी तो यह है कि इसके पक्षमें लोकमत तैयार किया जाये। इसके लिए असमके कल्याणकी इच्छा रखनेवाले लोगोंसे अफीम-विरोधी समितियाँ गठित करनेकी अपील की गई थी।

अन्तमें गांधीजीसे यह अनुरोध किया गया था कि वे एक बार फिर असममें आकर अपने नेतृत्वमें ऐसे अफीम-विरोधी आन्दोलनका सूत्रपात करें, जो पूरी तरह शान्तिपूर्ण तरीकोंसे चलाया जा सके।

विवेचन निरर्थक तार्किक दृष्टिकोणसे नहीं, वरन् व्यापक ऐतिहासिक दृष्टिकोणसे करें। इसी तरह वे यह आशा भी रखते हैं कि निबन्ध लिखनेवाले चर्मालयों और दुग्धशालाओंके प्रश्नपर भी इसी प्रकार विचार करेंगे। इसलिए वे गो-रक्षा प्रयत्नके विकासका इतिहास बताते हुए, ऐसे ढंगसे, जो धार्मिक विधानोंसे असगत न हों, गायो और इसलिए, पशु-मात्रकी रक्षा करने और ठीक ढगसे उनके पालन सम्बन्धी उपायों-पर विचार करेंगे।

एक महाशयने पत्र लिखकर पूछा कि निबन्ध कितना बड़ा होना चाहिए। लेकिन इसकी कोई सीमा निर्धारित करना आवश्यक नही समझा गया है, क्योंकि यह बात तो लेखकोंके विषय प्रस्तुत करनेके अपने-अपने ढगपर निर्भर करती है। लेकिन मोटे तौर पर मैं इतना अवश्य कहूँगा कि निबन्ध जितना छोटा हो, उतना ही अच्छा। मैं परीक्षकोंके विषयमें इतना तो जानता ही हूँ कि यह कह सकूँ कि निबन्धोके आकारसे वे किसी भी तरह प्रभावित होनेवाले नही हैं। इसलिए हरएक लेखक खुद जैसा ठीक समझे, वैसा करे। हाँ, मैं उनसे यह आशा जरूर रखता हूँ कि वे निबन्ध लिखकर उसे दुबारा सावधानीसे पढ़कर देख लेंगे और जहाँ भी जरूरी होगा, उसे काट-छाँट कर ठीक कर देंगे। कताईपर लिखे निबन्धोंके सिलसिलेमें अपने अनुभवको देखते हुए ही मैं यह चेतावनी दे रहा हूँ।

एक दूसरे महाशयने समय बढानेके लिए लिखा है, और उसके लिए उचित कारण भी बताया है कि सस्कृतके जो आचार्यगण इसमें भाग लेना चाहेंगे, वे निर्धारित समयके भीतर शायद अपना काम पूरा न कर पायें। इसलिए मैं बड़ी खुशीसे अन्तिम तिथिको बढ़ाकर ३१ मार्च, १९२६ के बजाय ३१ मई, १९२६ कर देता हूँ।

अब एक सुझावपर विचार करना बाकी रह जाता है। एक महाशयने निबन्ध लिखनेके लिए दूसरी भाषाओंके साथ सस्कृत भाषाको भी चुननेकी उपयोगिताके बारेमें शका करते हुए पत्र लिखा है। सस्कृतको चुननेका कारण यह है कि हिन्दुस्तानमें संस्कृतके पण्डित काफी बडी तादादमें हैं। हम चाहते हैं कि उनको इस बातके लिए अवसर और प्रोत्साहन दिया जाये कि वे भी अपनी विद्याका लाभ राष्ट्रको दें। अपनी दक्षिण यात्रामें मुझे कई ऐसे पण्डितोंसे मिलनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ, जो वर्तमान आन्दोलनोंमें बड़ी दिलचस्पी लेते हैं, लेकिन जिनकी विद्याका हमें कुछ भी लाभ नहीं मिलता, क्योंकि संस्कृतको आजकल महत्त्व नही दिया जाता। मुझे आशा है कि संस्कृतके विद्वान्, जो अच्छी अंग्रेजी नही जानते हैं या अगर जानते हो तो भी, राष्ट्रको सस्कृतमें एक प्रामाणिक निबन्ध तैयार करके देंगे। कहनेकी जरूरत नहीं कि यदि सस्कृतका निबन्ध इनामके लिए पसन्द किया गया, न केवल हिन्दी और अंग्रेजीमें बल्कि उर्दू और दूसरी महत्त्वकी भाषाओंमें भी उसका अनुवाद तैयार कराया जायेगा। सब कुछ पुरस्कारके लिए लिखे गये निबन्धकी खूबियोंपर ही निर्भर रहेगा। मैं आशा करता हूँ कि कोई-न-कोई ऐसा अच्छा निबन्ध अवश्य लिखा जायेगा, जो हमारे धार्मिक साहित्यमें एक स्थायी स्थान प्राप्त कर सके; फिर वह किसी भी भाषामें क्यों न लिखा जाये।

कातो, कातो, कातो!

यदि आप इस अंकमें अन्यत्र प्रकाशित किये गये हकीम साहबके पत्रमें कही गई बातोंको महसूस करते हों, तो आप अखिल भारतीय चरखा संघमें अवश्य ही दाखिल होंगे और इस तरह राष्ट्र अगर चाहे तो जिस एक बड़ी चीजको आज भी हासिल कर सकता है, हासिल करानेमें मदद करेंगे। जब हममें से बहुत-से लोग उस कार्यको करेंगे, तभी तो राष्ट्र उसे हासिल कर सकेगा। और ऐसा करनेका सबसे अच्छा तरीका यही है कि हम सब लोग चरखा संघके सदस्य बनें और दूसरोंको भी बननेके लिए प्रेरित करें। खादी न पहनने और चरखा न चलानेके लिए बहाने न खोजिए, इसके विपरीत खादी पहननेके और चरखा चलानेके लिए हर तरहके कारण खोजिए। आप अपनी किसी भी दूसरी प्रवृत्तिका त्याग किये बिना उसके सदस्य बन सकते हैं। त्यागके नामपर आपको सिर्फ विदेशी और मिलके बने कपड़ेके प्रति अपनी रुचिका ही त्याग करना है। यदि आप उस त्यागके जबरदस्त राष्ट्रीय लाभपर विचार करें तो देखेंगे कि यह त्याग कोई बहुत बड़ा त्याग नहीं है। पिछले तीस सालसे हम लोग स्वदेशीकी बातें करते आ रहे हैं। १९०६ से हम लोग विदेशी, और कमसे-कम ब्रिटिश मालके बहिष्कारकी बातें तो बहुत करते आ रहे हैं, लेकिन उन्हें कार्यान्वित करनेमें हमने गम्भीरतासे काम नहीं किया। नतीजा यह है कि हम कुछ भी नहीं कर पाये हैं। अनुभवसे यह बात सिद्ध हो चुकी है कि अगर हम लोग कुछ कर सकते हैं तो वह विदेशी कपड़ेका बहिष्कार ही है। यदि हम जीवित रहना चाहते हैं, तो बुद्धिका तकाजा यही है कि हमें इस बहिष्कारको सफल बनाना होगा। ऐसा करनेका हमें अधिकार है और यह हमारा फर्ज भी है। मैं तो यह कहनेका भी साहस करता हूँ कि इस सीधे-सादे और आवश्यक बहिष्कार कार्यक्रमको पूरा करनेमें हम सफलताकी मंजिलके जितने समीप पहुँच पाये हैं, उससे अधिक समीप और किसी बातमें नहीं पहुँच पाये हैं। यदि अच्छे और सदाशयी लोग चरखा संघमें काफी तादादमें शामिल हो जायें तो इस काममें पूरी सफलता मिल सकती है।

खादीका सूचीपत्र

बम्बईकी प्रिंसेज स्ट्रीटमें अखिल भारतीय खादी मण्डलके (अब चरखा संघ)के अधीन चलनेवाले खादी भण्डारके व्यवस्थापकने मुझे ठीक तरहसे मुद्रित कीमतोंका सूचीपत्र भेजा है। खादीने जो प्रगतिकी है, वह उसपर से मालूम की जा सकती है। इस भण्डारको खुले चार साल हुए हैं और इस दरमियान कुल ८,३०,३२९ रुपयेकी बिक्री हुई। १९२२-२३ में सबसे ज्यादा बिक्री हुई थी, अर्थात् २,४५,५१५ रुपयेका माल बिका था और सबसे-कम बिक्री इस साल हुई है, अर्थात् १,६८,२८० रुपयेका माल बिका है। ऐसा कहा गया है कि १९२२-२३ में मेरे जेलमें होनेके कारण बिक्री अधिक हुई थी। लोगोंने यह खयाल किया, और उनका यह खयाल सही भी था कि वे जितनी अधिक खादीका इस्तेमाल करेंगे, उतना ही अधिक वे स्वराज्यके नजदीक पहुँचेंगे, और स्वराज्य मिल जायेगा तो मैं भी रिहा हो जाऊँगा। लेकिन, गलती ऐसा सोचनेमें थी कि खादी केवल अस्थायी रूपसे ही आवश्यक है। सचाई यह है

कि जिस प्रकार हमें सदा अपने ही देशके अनाज और हवाकी आवश्यकता है, उसी प्रकार खादीकी भी हर समय आवश्यकता है। मगर कम बिक्री होना भी एक तरहसे अच्छा ही है। बशर्ते कि यह इस बातका द्योतक हो कि इतनी बिक्री सदा ही होती रहेगी। इस भण्डार और दूसरे भण्डारोंके अस्तित्वसे यह साबित होता है कि वे एक ऐसी माँगकी पूर्ति कर रहे हैं, जिसे लोग सचमुच महसूस करते हैं। लेकिन सालाना एक लाखसे कुछ अधिक रुपयेकी बिक्री होनेसे तो खादी कोई राजनैतिक परिणाम नहीं दिखा पायेगी। इसके लिए कई करोड़, और ठीक-ठीक कहा जाये तो सालाना ६० करोड़की बिक्री होना आवश्यक है। इसलिए, बम्बईके लोगोंको खादीका इतना अधिक उपयोग करना चाहिए कि यहाँ इस तरहके सिर्फ एक-दो भण्डार ही नहीं, बल्कि जिस प्रकार विदेशी वस्त्रोंके कई सौ भण्डार चलते हैं उसी प्रकार कई सौ खादी भण्डार चल सकें। अब तो जनताके पास इस भण्डारको और ऐसे ही बहुतसे दूसरे भण्डारोंको सहारा न देनेका कोई बहाना भी नहीं रह गया है, क्योंकि अब उनमें सभी तरहकी विवेकसम्मत रुचियोंके अनुकूल माल बिकता है। सूचीपत्रमें कमीज-के लायक खादी, खादी मलमल, साड़ियाँ, धोतियाँ, तौलिये, रुमाल, तैयार कमीजें बनियानें, टोपियाँ, थैलियाँ, पलंगकी चद्दरें, शाल, परदे, ओढ़नेकी चद्दरें, मेजपोश, तकिया-गिलाफ, ब्लाउज, बच्चों और बड़ों, दोनोंके लिए जाँघिये, पाजामे इत्यादि बहुत-सी चीजें हैं। लेकिन इसपर टीका करनेवाले महाशय कहते हैं कि उनकी जरा कीमत भी तो देखिए। मैंने उनकी कीमतका भी हिसाब लगाकर देख लिया है और मेरे मनको पूरी तरह सन्तोष है कि ऊपरी तौरपर देखनेमें कीमत जहाँ कुछ अधिक मालूम होती है, वहाँ दरअसल वह अपेक्षाकृत कम है, क्योंकि आप खादीपर जो पैसा खर्च करते हैं, उससे खादी तो मिलती ही है, साथ ही उसका यह भी मतलब होता है कि आप स्वराज्यके लिए कुछ दे रहे हैं। यदि आपको यह विश्वास नहीं है कि खादीमें स्वराज्य प्राप्त करनेकी शक्ति है, तो आप यही समझें कि खादी खरीदकर आप कमसे-कम क्षुधार्त्त स्त्रियों और पुरुषोंकी सहायता तो कुछ अंशोंमें कर ही रहे हैं। यदि खादी पहननेवाले अपने कपड़ेके लिए सालाना औसतन १० रुपया भी खर्च करें तो ऐसे चार खादी पहननेवाले साल-भर एक क्षुधा-पीड़ित मनुष्यका पोषण तो अवश्य करते हैं। जिन्हें अपने देशसे प्रेम है और गरीबोंकी फिक्र है, उन्हें खादीकी इतनी शक्ति और सम्भावना देखते हुए भी क्या वह कभी महँगी लग सकती है?

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १२-११-१९२५

२४१. रामनाम और खादी

एक 'जूना जोगी' इस प्रकार लिखते हैं:[1]

यह पत्र दो महीनेसे मेरे पास ही पड़ा हुआ है। मैंने सोचा था कि कुछ फुर्संत मिलनेपर मैं उसे 'नवजीवन' के पाठकोंके सामने पेश करूँगा। आज फुर्संत मिली है अथवा यों कहिए कि मैंने ही इसके लिए कुछ फुर्सतका समय निकाला है। मुझे पत्र-लेखकने दोष न देखनेकी सलाह दी है। आज यदि मैं उनके पत्रकी टीका कर रहा हूँ तो इसका अर्थ यह नही है कि मैं उसके दोषोंको ही देख रहा हूँ, लेकिन उसका हेतु तो इस पत्रको 'नवजीवन' में कहीं-न-कहीं स्थान देकर रामनामकी महिमा प्रकट करना है। पत्र-लेखक महाशय और दूसरे लोग भी इस बातका यकीन रखें कि जो ग्रहण करने योग्य है, उसे मैं अवश्य ही ग्रहण करता हूँ। मुझे यह प्रतीत होता है कि रामनामकी महिमाके सन्दर्भमें मुझे अब कुछ नया सीखना बाकी नही है। क्योंकि मुझे उसका अनुभव है और इसीलिए मेरा अभिप्राय यह है कि खादी और स्वराज्यके प्रचारकी तरह रामनामका प्रचार नही हो सकता। इस कठिन कालमें रामनामका उलटा जाप होता है। अर्थात् मैंने बहुतसे स्थानोंमें केवल आडम्बरके लिए, कुछ स्थानोंमें अपने स्वार्थके लिए और कुछ जगहोंमें व्यभिचार करनेके लिए इसका जाप होते हुए देखा है। यदि जाप केवल अक्षरोंकी हदतक उलटा हो तो मुझे कोई आपत्ति नही है। यह हमने पढ़ा है कि शुद्ध हृदय लोगोंने उलटा जाप जपकर भी मुक्ति प्राप्त की है और इसे हम मान भी सकते हैं। लेकिन शुद्धोच्चारण करनेवाले पापी, पापकी पुष्टिके लिए रामनामके मन्त्रका जप करें तो हम उसे क्या कहेंगे? इसीलिए मैं रामनामके प्रचारसे डरता हूँ। जो लोग यह मानते हैं कि भजन मण्डलीमें बैठकर रामनामकी रट लगानेसे और शोर करनेसे भूत, भविष्य और वर्तमानके सब पाप नष्ट हो जायेंगे और कुछ भी करना बाकी न रहेगा, उन्हे तो दूर ही से नमस्कार कर लेना चाहिए। उनका अनुकरण नही किया जा सकता। रामनाम जपनेकी योग्यता प्राप्त करनेके लिए मैं तो प्रथम खादी प्रचार इत्यादिकी योग्यताकी ही अपेक्षा रखूंगा। रामनामके जापसे ही खादीके प्रचारके लिए वायुमण्डल तैयार होगा। आज वह मुझे कही भी दिखाई नही दे रहा है।

यह बात कि विद्वानोंको ससारमें कोई भी नही समझा सका है, यह वे किस प्रकार लिख सकते हैं जो रामके दास हैं? मुझे तो मालूम नही होता कि मुझे कोई मोह है। विद्वान् भी तो रामकी दुनियामें ही रहते हैं और बहुतेरे विद्वान् रामका नाम लेकर तर भी गये हैं। सच बात तो यह है कि विद्वानोंको बिना भक्तके और कोई नही समझा सकता। और भक्त होनेकी अभिलाषा रखनेवाला मैं विद्वानोंको समझानेका प्रयत्न भी कर रहा हूँ। और मुझे मोह न होनेके कारण जो लोग समझते नही हैं

१. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

उनपर मुझे क्रोध भी नही होता है; किन्तु मुझे अपनी भक्तिमें ही न्यूनता होनेके कारण स्वय अपनेपर क्रोध होता है। और मेरे हृदयमें राम सर्वदा निवास करे इसके लिए अधिक हृदयशुद्धिकी आवश्यकता है; यह उपदेश पानेके लिए मै सदा लालायित रहता हूँ और मै अपनेको सदा यही उपदेश देता रहता हूँ। यदि भक्तिमें रस पैदा न कर सके तो यह भक्तका दोष है, श्रोताका नही। रस हो तो श्रोता उसे अवश्य ही लूटेंगे। लेकिन यदि रस ही न हो तो श्रोताओंका क्या दोष? यदि कृष्णकी बसी गूँजती, किन्तु उसमें से कर्कश शब्द निकलता होता तो उसे सुनकर गोपियाँ भयभीत होकर भाग जाती और उससे निन्दा कृष्णकी ही होती, गोपियोंकी नही। अर्जुन बेचारा यह थोड़े ही जानता था कि वह पढ़ा हुआ मूर्ख है और अपनी विद्वत्ता दिखानेमें गोलमाल कर रहा है। लेकिन कृष्णकी शुद्धताने अर्जुनको शुद्ध कर दिया और उसका मोह दूर हुआ। इसलिए जो रामनामका प्रचार करना चाहता है उसे स्वयं अपने हृदयमें ही उसका प्रचार करके उसे शुद्ध कर लेना चाहिए और उसपर रामका साम्राज्य स्थापित करके उसका प्रचार करना चाहिए। फिर उसे संसार भी ग्रहण करेगा और लोग भी रामनामका जप करने लगेंगे। लेकिन जिस किसी स्थानपर रामनामका चाहे जैसा जप कराना तो पाखण्डकी वृद्धि करना और नास्तिकताके प्रवाहका वेग बढ़ाना है।

एक जगह बैठनेसे मनुष्य स्थिर थोड़े ही हो सकता है। जिसका मन सदा करोड़ों योजनकी मुसाफिरी करता है और जो शरीरको बाँधकर बैठा है उसका राम भी क्या सुधार कर सकेंगे। लेकिन जो दमयन्तीकी तरह जंगल-जंगल भटकता है और पेड़ोंसे, जगलके जानवरोंसे भी अपने रामरूपी नलकी खबर पूछता रहता है, उसे भटकता हुआ कहेगे? यह क्यों न कहें कि बैठे हुएको जो भटकता देखता है और भटकते हुएको जो स्थिर देखता है वही ठीक देखता है? कर्त्तव्य कर्मकी स्थापना कैसे की जा सकती है? कर्म करनेसे ही न? यदि ऐसा ही है तो मै संसार जीत चुका हूँ, क्योंकि जिसे मै नही करता उसका कभी उपदेश नही देता। इस 'पुराने जोगी' के मोहकी बात मुझे पाठकोंको सुनानी होगी। यदि दूसरे लोग यह नही जानें तो यह क्षन्तव्य है; लेकिन यह 'जोगी' तो यह जानते ही हैं कि मेरे पास ऐसे पार्षद हैं ही नही जो सद्भावसे लिखे गये ऐसे पत्र मेरे पास शीघ्र न पहुँचा दें। यह पत्र तो मुझे फौरन ही मिल गया था, लेकिन मैं आज दो महीनेके वाद उसका उत्तर दे सका हूँ। इसमें दोष किसका है? बेचारे गरीब निन्दापात्र बने हुए पार्षदोंका है, मेरा है, विधिका है या पत्र लिखनेवालेका ही है? इसमें हम लोग लिखने-वालेका ही दोष मान लेगें। जो लोग मुझे धर्मसंकटमें डालनेवाले ऐसे पत्र लिखते हैं उन्हें राह देखनी चाहिए, धीरज रखना चाहिए। उन्होंने जो समस्या मेरे सामने रखी है, वह ऐसी तो है ही नही कि जिस प्रकार मैं यह पलमें कह सकता हूँ कि मिलके सूतका बना कपड़ा खादी नही है उसी प्रकार उसका भी उत्तर दे सकूँ। ऐसे पत्रोंका उत्तर देनेसे रामनामकी महिमा घट जानेका भी डर मुझे लगा रहता है। इसलिए यह खयाल भी होता है कि इसका उत्तर ही न दें तो क्या नुकसान है? और फिर

यह किसे मालूम है कि उत्तर देते हुए कुछ मोह न रहा होगा? यदि इसमें कुछ मोह रहा हो तो भी जिस प्रकार थोड़े बहुत पुण्यकर्म रामके चरणोंपर रख दिये जाते हैं, उसी प्रकार यह मोह भी उसीको समर्पित है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १५-११-१९२५

२४२. टिप्पणियाँ

रेलकी यात्रा

एक समय था जब रेलके यात्रियोंकी तकलीफोंका मैं स्वयं अनुभव किया करता था और उस समय वे मुझे चुभती भी थीं। अब, वे दिन तो मेरे लिए चले गये। अब मैं तीसरे दर्जेकी यात्रा नही करता इसलिये मुझे रेल यात्रियोंके कष्टोंका व्यक्तिगत अनुभव कम ही मिलता है। और जिस वस्तुका निरन्तर अनुभव नही होता उसका ध्यान भी भला कैसे रह सकता है? इसके सिवा अन्य कार्य जिन्हें मन अधिक महत्त्व-पूर्ण मानता है, मेरा सारा समय ले लेते हैं। इसलिए यात्रियोंकी असुविधाओंके बारेमें जाँच करने और लिखनेकी बात सूझती ही नही। लेकिन मेरी कच्छकी यात्रामें श्री जीवराज नेणशीने मुझे, यात्रियोंके दुःखोंका स्मरण करनेके लिए सालमे जो एक दिन तय किया गया है, उसकी याद दिलाई और कुछ लिखनेके लिए कहा। ऐसा एक दिन रखना, उस दिन रेल-यात्रियोके कष्टोंका स्मरण करना, उन्हे दूर करनेके लिए उपाय खोजना तथा पिछले साल इस दिशामें जो उपाय किये गये हों उनका लेखा-जोखा करके नये उपायोंकी खोज करना — यह सब तो उचित ही है। परन्तु जैसे हर वस्तुके दो पहलू होते हैं, इस प्रश्नके बारेमें भी वैसा ही है। यात्रियोंको जो दुःख भोगना पड़ता है उसमें केवल सत्ताधारियोंका ही दोष होता है, यह बात नही। यात्रियों-का भी उसमें बड़ा हिस्सा होता है, इसका मुझे अनुभव है। यात्री जहाँ शिकायत ही नहीं करते अथवा यह भी नही जानते कि उनके भी कुछ अधिकार हैं वहाँ रेलवेके अधिकारी क्या कर सकते हैं? अथवा जहाँ यात्री स्वयं ही अपराध करनेमें पूरा-पूरा भाग लेते हों वहाँ भी रेलवेके अधिकारियोंको क्यों दोष दिया जाये? इसलिए मैं यह अपेक्षा करता हूँ कि जब ऐसे आयोजन हों तब उनमे थोड़ा-बहुत आत्मनिरीक्षण भी होना चाहिए। दूसरोंके दोष भले ही निकाले परन्तु साथ ही साथ अपने दोषों-पर भी विचार करें। 'यदि हमारी कुछ बुरी आदतें दूर न होंगी तो रेलवेके नियम कितने ही अच्छे क्यों न हों अधिकारी कितने ही ईमानदार हों फिर भी यात्रियोंकी काफी दिक्कतें शेष रह जायेंगी। इसके अतिरिक्त यात्रियोंको कुछ कष्ट तो इसलिए होते हैं कि समस्त सरकारी पद्धति ही दूषित है। वे तो जबतक पद्धति ही न बदलें तबतक दूर नहीं हो सकते। उदाहरणके लिए रेलवेका मूल उद्देश्य यात्रियोंको सुविधा देना नही बल्कि हिन्दुस्तानसे धन खींचकर ले जाना और यदि कहीं विद्रोह आदि हो

तो उसे दबाना है, यानी उसका मूल उपयोग सेना विभागके लिए है। रेल-यात्रामें जो तकलीफें होती हैं, उनका कारण यह बुनियादी दोष है। इसको मिटानेका उपाय केवल स्वराज्य है, और यह स्वराज्य नीतिराज्य होना चाहिए। इस तरह यात्रियोके दु:खोका स्मरण करनेपर उनके तीन पक्ष दिखते हैं। ये विचारणीय हैं और मेरी इच्छा है कि सचालक उसपर विचार करे।

कातनेवालोंसे

चरखा संघकी ओरसे निम्नलिखित पत्र मिला है।[1]

इसपर मुझे इतना ही कहना है कि चरखा सघमें शामिल होनेवाले लोग जैसे-जैसे इन सुझावोंको समझनेका प्रयत्न करेंगे और उनके अनुसार कार्य करेंगे वैसे-वैसे सघकी शक्ति बढ़ेगी; इतना ही नही, सघका धन भी बढ़ेगा। खराब सूतकी एक कीमत और अच्छेकी दूसरी। मेहनत दोनोंमें कातनेवालोंको एक समान करनी पड़ती है और फिर सूतके गुण-दोषपर से कातनेवालेकी परीक्षा हो सकती है। सूत अच्छा हो तो बुनाईका खर्च कम होता है। सूत अच्छी तरहसे बाँधा गया हो तो उसकी ज्यादा अच्छी रक्षा होती है। सुझावोंका पालन होनेसे व्यवस्थापकोंका समय बचेगा। इस तरह अल्प परिश्रमसे चरखा संघके धनमें अपने-आप इतनी वृद्धि हो सकती है जो सामान्य रूपसे समझमें नही आ सकती। उपर्युक्त पत्रके अन्तिम सुझावके सम्बन्धमे तो इतना ही कहा जा सकता है कि सदस्योके लिए यदि 'उ' वर्ग न भी हो तो भी जो लोग सम्पूर्ण खादीमय न बन गये हों वे भी यदि कातें और सूत भेजें तब भी लाभ तो है ही। चरखा संघ नामके लिए नही, कामके लिए है। इसलिए सब उसे यथाशक्ति और यथामति जितनी मदद देंगे, उतना पुण्य ही है।

कुछ प्रश्नोंके उत्तर

अलग-अलग खादी-प्रेमियोंने कई प्रश्न पूछे हैं। उनके उत्तर ही यहाँ देता हूँ। उत्तरपर से प्रश्न समझा जा सकता है।

१. सूतकी पहुँच सदस्योंको सीधे, अथवा पत्रकी मार्फत या ऐसे ही किसी अन्य तरीकेसे दी जायेगी।

२. 'अ' वर्गके सदस्य सूत प्रतिमास भेज सकते हैं। बारह महीनोंका इकट्ठा भी भेज सकते हैं। जिन लोगोंका एक मासका सूत रह गया होगा वे उन दिनों सदस्य नही माने जायेंगे लेकिन जब वे अपना बकाया और भविष्यका सूत भी भेज देंगे तब वे फिरसे सदस्य माने जाने लगेंगे।

३. मिलकी पूनी कातनेके लिए इस्तेमाल नहीं की जा सकती।

४. संघका वर्ष अक्तूबरसे शुरू हुआ है। जिसने कांग्रेसको १४ हजार गज सूत दिया है वह एक वर्षतक तो कांग्रेसका सदस्य रहेगा। परन्तु चरखा संघमें अक्तूबर से नया सूत अवश्य मिलना चाहिए।

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

दक्षिण आफ्रिकाके भारतीय

भले भाई एन्ड्रचूज जहाँ दुःख हो वहाँ अवश्य होते ही हैं। उड़ीसामें पशुओंके कष्टकी खबर सुनकर वे वहाँ पहुँचे थे। बम्बईके मजदूरोंके दुःखमें उन्होंने भाग लिया। अब दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंके दुःखमें भाग लेनेके लिए वहाँके लिए रवाना हो गये हैं। सेवा ही जिनका धर्म है उन्हें सेवामें ही सम्पूर्ण सन्तोष मिलता है। दक्षिण आफ्रिकाके भारतवासी यदि इस भले अंग्रेजकी सहायताका पूरा-पूरा उपयोग करना चाहते हैं तो उन्हें दो बातें ध्यानमें रखनी चाहिए। अनेक बार जब कोई सहायक हमारी सहायता करने आता है उस समय हम यह सोचकर ढीले पड़ जाते हैं कि वही सब कुछ कर देगा; यह स्थिति दक्षिण आफ्रिकाकी नहीं होनी चाहिए। श्री एन्ड्रचूजकी उपस्थितिसे यदि और भी सावधान हो जायें तथा अधिक प्रयत्नवान् बनें तभी उन्हें उनके जानेका लाभ मिल सकता है। उन्हें इकट्ठा होकर अपने पारस्परिक मतभेदोंको भूलकर दृढ़ता और हिम्मतके साथ कार्य करना है और यदि ऐसा हुआ तो बाजी अभी हाथसे गई नहीं है। सत्याग्रहका निश्चय करनेसे पहले पूरी तरह विचार करें। सत्याग्रहकी धमकी नहीं दी जा सकती है। सत्यका आग्रह रखनेवाला सत्य ही बोलता है, सत्य ही करता है। सत्याग्रह न करनेमें कोई बेइज्जती नही है। लेकिन करनेका निश्चय करनेके बाद न करनेमें बेइज्जती होगी। इतना ही नही इससे कौमका बहुत ज्यादा नुकसान होनेकी सम्भावना है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १५-११-१९२५

२४३. पत्र: सी० एफ० एन्ड्रूचूजको

सोमवार [१६ नवम्बर, १९२५][1]

प्रिय चार्ली,

तुम्हारे आदेशोंका पालन किया जा रहा है। आज प्रातः सरोजिनीको तार[2] भेज दिया गया है। तुम्हारे कामके बारेमें मैं एक सम्पादकीय[3] लिख रहा हूँ।

आशा है, तुम स्वस्थ सानन्द होगे। यात्राके दौरान भगवान तुम्हें स्वस्थ रखें। अत्यन्त स्नेह सहित।

तुम्हारा,
मोहन

अंग्रेजी पत्र (जी० एन० २६३२) की फोटो-नकलसे।

१. एन्ड्रचूज सरकारी शिष्टमण्डलसे, जिसने २५ नवम्बरको प्रस्थान किया था, कुछ दिन पहले ही दक्षिण आफ्रिकाके लिए रवाना हुए थे। इससे तथा यंग इंडियामें सम्पादकीयके उल्लेखसे प्रकट होता है, कि यह १६ नवम्बरको ही लिखा गया था, क्योंकि सोमवारको १६ नवम्बर ही था।

२. यह उपलब्ध नहीं है।

३. देखिए "दक्षिण आफ्रिकाके भारतीय", २६-११-१९२५।

२४४. मथुरादास त्रिकमजीको लिखे पत्रका अंश

[१८ नवम्बर, १९२५][1]

तुम्हारी तबीयतसे सम्बन्धित पत्र पढ़कर मैं चिन्तामें पड़ गया हूँ। पहले तो महादेव अथवा देवदासको भेजनेका विचार किया। बादमें नरगिसबहन[2] याद आई। वे यह पत्र लेकर आ रही हैं। उन्हें सब-कुछ बताना। वे अपनी स्वतन्त्र राय तो मुझे तारसे सूचित करेंगी; लेकिन तुम पूरी बात तफसीलसे बताना। जरा भी जरूरत जान पड़े तो उन्हें तार करनेके लिए कहना जिससे यहाँसे महादेव अथवा देवदास आयेंगे। तुम्हें आराम लेना चाहिए। बा आशीर्वाद भेजती है।

[गुजरातीसे]

बापुनी प्रसादी,

२४५. टिप्पणियाँ

नग्न सत्य

हमने भारतको भारतके लाभके लिए नहीं जीता। मैं जानता हूँ कि मिशनरियोंकी सभाओंमें ऐसा कहा जाता है कि हमने भारतीयोंका जीवनस्तर ऊपर उठानेके लिए ही भारतपर कब्जा किया है, यह पाखण्ड है। हमने भारतको इसलिए जीता कि ग्रेट ब्रिटेनके मालके लिए हमें बाजार मिले। हमने उसे तलवारके जोरसे जीता और तलवारके जोरसे ही हमें उसपर अपना आधिपत्य कायम रखना चाहिए। ("शर्म-शर्म" की आवाजें।) आप चाहें तो शौकसे "शर्म-शर्म" की आवाजें लगायें। लेकिन मैं तो वही कह रहा हूँ जो हकीकत है। भारतमें मिशनरियोंके काममें मेरी भी रुचि है और मैंने उस तरहका काफी काम किया है; लेकिन मैं ऐसा पाखण्डी नहीं हूँ कि कहूँ कि हम भारतीयोंकी भलाईके लिए ही भारतको अपने कब्जेमें रखे हुए हैं। सचाई यह है कि हम इसपर इसीलिए अपना कब्जा जमाये हुए हैं कि यह आम तौरपर ब्रिटेनके मालके लिए और खास तौरपर लंकाशायरके सूती कपड़ों वगैरहके लिए सबसे अच्छा बाजार है।

१. जैसा कि प्रकाशित साधन-सूत्रमें दिया गया है।
२. दादा भाई नौरोजीकी पौत्री।

ऐसी खबर है कि ये बातें सर विलियम जॉनसन हिक्सने कही। लेकिन, हमें हमारी गुलामीकी याद दिलानेवाले ये कोई पहले ही मंत्री नही हैं। मगर सत्य किसीको कड़वा क्यों लगे? यह जान लेनेमें हमारी भलाई ही होगी कि हमारी स्थिति यह है कि जो भी हमपर तलवारके बलपर अधिकार कर ले, उसके लाभके लिए लकड़ियाँ काटना और पानी भरना ही हमारे लिये बदा है। सर विलियमने जो लंकाशायरके मालपर विशेष जोर दिया है, वह भी हमारे लिए अच्छा ही है। उससे तो यही साबित होता है कि जिस क्षण भारतमें मैंचेस्टरके कपड़ेकी बिक्रीकी गुंजाइश नही रह जायेगी, उसी क्षण अंग्रेजोंकी तलवारें म्यानोंमे चली जायेंगी। और फिर सर विलियम की तलवारकी धार कुण्ठित करनेकी अपेक्षा मैंचेस्टरके कपड़ोंका उपयोग छोड देना बहुत कम व्यय-साध्य, अधिक आसान, और शीघ्र कार्यवाहीके लिये उपयुक्त है। अगर हम सर विलियमकी तलवारकी धार कुण्ठित करना चाहे तो उससे तलवारोंकी, लड़नेवालों-की संख्याकी और इस तरह दुनियाके दुःखकी भी वृद्धि होगी। जैसे अफीमकी पैदा-वारपर रोक लगानेकी जरूरत है, वैसे ही तलवार बनानेपर भी प्रतिबन्ध लगानेकी आवश्यकता है। बल्कि दुनियाके दुःखोके लिए तलवार, कदाचित्, अफीमसे भी अधिक दोषी है। इसीलिए मै कहता हूँ कि अगर भारत चरखेको अपना ले तो वह शस्त्रीकरणको रोकने और दुनियामें शान्ति स्थापित करनेमें जितना सहायक सिद्ध होगा उतना सहायक न अन्य कोई देश हो सकता है और न कोई और चीज।

सरकारी नौकर और अ० भा० च० संघ

एक सरकारी नौकरने लिख भेजा है कि वे पिछले चार वर्षोंसे बराबर खादी ही पहनते रहे हैं और वह खादी भी खुद उन्हीके काते सूतसे तैयार की हुई होती है। वे नियमित रूपसे कताई करते है, लेकिन सरकारी नौकर होनेके कारण अबतक वे ऐसे किसी संगठनमें शामिल नही हो पाये हैं। अब उन्होंने पूछा है कि अ० भा० च० संघ तो, जैसा कि उसके संविधानकी प्रस्तावनासे प्रकट होता है, एक गैर-राजनीतिक संस्था है, इसलिए क्या वे इसके सदस्य बन सकते है। मेरा तो निश्चित मत है कि अगर इसके उद्देश्योंमें वाइसरायका विश्वास हो तो वे भी इसके सदस्य बन सकते हैं और ऐसा करनेपर उन्हें कोई कुछ नही कह सकता। इसलिए अगर सरकारी नौकरीके नियमोंमें कोई ऐसी बात न हो, जिसके अनुसार सरकारी नौकरोंके लिए किसी संघका — चाहे वह गैर-राजनीतिक ही क्यों न हो — सदस्य बनना निषिद्ध हो, तो जिस सरकारी नौकरको अ० भा० च० संघसे सहानुभूति हो उसे इसका सदस्य बननेमें कोई हिचकिचाहट नहीं होनी चाहिए। वही पत्र-लेखक पूछते हैं कि क्या प्रतिदिन आधे घंटेतक कताई करना आवश्यक है, या अगर कोई चाहे तो अपने हिस्सेका सूत जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी कातकर निश्चिन्त हो जा सकता है। संघके संविधानके अनुसार तो हर सदस्यको ऐसी छूट है कि वह चाहे तो अपने वर्ष-भरका चन्दा अर्थात् बारह हजार गज सूत, एक साथ भेज सकता है। रोज कातनेका कोई बन्धन नही है। लेकिन, उचित यही है कि अपने हिस्सेका सूत पूरा कर लेनेपर भी प्रतिदिन काता जाये।

यात्री-दिवस

यात्री-दिवस मनानेका और भारतके एक हिस्सेको दूसरेसे जोड़नेवाले रेल मार्गोंसे या जलमार्गोंसे यात्रा करनेवाले करोड़ों लोगोंकी अवस्थामें हुए सुधारका जायजा लेनेका खयाल बड़ा अच्छा है। मेरे लिये वे दिन कितने अच्छे थे, जब मैं तीसरे दर्जेमें यात्रा किया करता था। तब मेरे पास रेलगाड़ीपर या जहाजपर तीसरे दर्जेमें चलनेवाले यात्रियोंकी अवस्थाके विषयमें कहनेको बहुत-कुछ होता था। लेकिन 'आँख ओझल-पहाड़ ओझल'वाली कहावतके अनुसार, अब चूँकि मैं अपनी शारीरिक असमर्थताके कारण रेलगाड़ीके तीसरे दर्जेमें यात्रा करनेकी हिम्मत नहीं करता, उसका अनुभव नही उठाता, इसलिए अब मैंने उसपर लिखना भी बन्द कर दिया है। लेकिन, आगामी यात्री-दिवस हमें उन करोड़ों मूक व्यक्तियोंके प्रति अपने कर्त्तव्यका स्मरण कराता है, जो निहायत असुविधापूर्ण ढंगसे बने गन्दे डिब्बोंमें बोरोंकी तरह ठूँस दिये जाते हैं और जिनकी आवश्यकताओंकी ओर कोई कभी ध्यान नही देता, लेकिन, रेलवे अधिकारियोंकी लापरवाहीके कारण होनेवाली असुविधाएँ तो इस कष्टका एक अंश-मात्र हैं। और उस हिस्सेपर जोर देना भी ठीक ही है। लेकिन इन यात्रियोंकी असुविधाओंके लिए खुद इनकी लापरवाही और अज्ञान भी उतना ही बड़ा कारण है। इसलिए, उस अवसरपर देशके विभिन्न भागोंमें की जानेवाली सभाओंमें बोलनेवाले लोग अगर यात्रियोंको यह समझायें कि अपने प्रति खुद उनका कर्त्तव्य क्या है, तो अच्छा हो। अगर हम यह चाहते हों कि रेलगाडीके तीसरे दर्जेके डिब्बोंमें यात्रा करना आदमीके लिए बरदाश्त करने लायक हो सके तो गन्दी आदतों, अपने पड़ौसके व्यक्तिका कोई खयाल न करनेकी प्रवृत्ति, डिब्बोंके भरे रहनेपर भी उनमें घुस जानेका आग्रह और ऐसी ही बहुत-सी दूसरी आदतोंको दूर करना जरूरी है। इसके लिए बहुत सावधानीकी जरूरत है और ऐसा अन्देशा है कि इस सम्बन्धमें हमें खुद अपने व्यवहारमें जो सुधार करने हैं, उनको हाथमें लेनेवाली संस्थाको प्रारम्भमें लोगोंकी नाराजीका भी सामना करना पड़ेगा। श्री जीवराज नेणशी और उनके साथी सगठनकर्त्ताओंके लिए मैं सम्पूर्ण सफलताकी कामना करता हूँ।

नैतिक दुर्बलता

एक सज्जन लिखते हैं:

मैं खुद हिन्दू हूँ और सबसे ऊँचे वर्गके ब्राह्मणोंमें से हूँ। किन्तु मैं प्रगतिशीलताके पक्षमें हूँ। मैं बुद्धिमें विश्वास करता हूँ, क्योंकि बुद्धि ही ईश्वर है और ईश्वर बुद्धिसे अलग नहीं है। सोऽहंके सिद्धान्तका आग्रह रखनेवाले हिन्दू-दर्शनने आज भेदकी एक ऐसी दीवार खड़ी कर दी है, जिसे पार करना एवरेस्टको पार करनेसे भी कठिन है। जिस धर्मका आधार-स्तम्भ मनकी पवित्रता थी वही आज थोथे कर्मकाण्डी रीति-रिवाजोंसे इतना ग्रस्त हो गया है कि उसका सच्चा स्वरूप दिखाई नहीं देता। जो संस्कृति इस बातका आग्रह करके चल रही थी कि "सृष्टिके सभी प्राणी भाई-भाई हैं और ईश्वर सबका पिता है", वही

> संस्कृति आज ब्रह्माकी उन सन्ततियों द्वारा, जिनमें अगर आपसमें कोई समानता है तो यही कि प्राचीन पौराणिक मान्यताओंके अनुसार वे सब एक ही वंशके हैं, करोड़ों मानवोंके शोषणका समर्थन कर रही है। अहिंसाके सिद्धान्तने हमें कर्त्तव्यसे जी चुरानेवाला पाखण्डी और कायर बना दिया है। हिन्दू हिन्दूके साथ ईमानदारीका बरताव कभी नहीं करता, जबकि मुसलमान मुसलमानके साथ और ईसाई ईसाईके साथ पूरी ईमानदारीका व्यवहार करता है। हिन्दू लोग दूसरोंके रीति-रिवाजोंके प्रति अधिक सहिष्णुतापूर्ण रुख रखते हैं, जो उनकी कायरताका एक दूसरा उदाहरण है। मुसलमान दूसरोंके रीति-रिवाजोंके प्रति कभी भी सहिष्णुता नहीं बरतते, और ईसाई लोग भी बहुत कम ही बरतते हैं। क्या शिक्षित हिन्दू लोग इस ढकोसलेको इसी तरह चलाते रहेंगे या कि वे हथियार उठाकर इसका अन्त भी करेंगे?

पत्र-लेखकने जो-कुछ कहा है, उसपर मैं कोई प्रकाश तो नहीं डाल सकता, लेकिन कुछ सलाह जरूर दे सकता हूँ। सुधारका प्रारम्भ तो स्वयं अपनेको ही सुधार कर करना चाहिए। 'वैद्यराज, पहले अपने-आपको ठीक करो', यह सिद्धान्त बिलकुल सही जान पड़ता है। जो लोग हिन्दुओंकी नैतिक दुर्बलता और कायरताको महसूस करते हैं, वे कमसे-कम अपनी नैतिक दुर्बलता और कायरताको दूर करके तो इस ओर कदम बढ़ा ही सकते हैं। यह माना जा सकता है कि यह आरोप आम तौरपर सही है; लेकिन कुछ मर्यादाओंके साथ ही ऐसा माना जा सकता है। फिर भी — क्या हथियार उठा लेनेसे यह बुराई दूर हो जायेगी? तलवारके जोरपर नैतिक दुर्बलताका इलाज कैसे किया जा सकता है? क्या अनगिनत उपजातियों या अस्पृश्यता अथवा कर्मकाण्डको, जो अक्सर निरर्थक ही हुआ करता है, जोर-जबर्दस्तीसे दूर किया जा सकता है? क्या इसका मतलब धर्ममें जोर-जबर्दस्तीके तरीकेको दाखिल करना नहीं होगा? अगर बुद्धि ही ईश्वर है तो मनुष्यको सही रास्तेपर लानेके लिए तलवारका नहीं, बल्कि बुद्धिका सहारा लेना चाहिए।

क्या पत्र-लेखकके मनमें यहाँ हिन्दू-मुस्लिम तनावकी बात है? क्या वे चाहते हैं कि हिन्दू तलवार उठाकर इसका निराकरण करें? ध्यानसे देखनेपर मालूम होगा कि अधिकांश प्रसंगोंमें तो तलवारका प्रयोग अनावश्यक ही नहीं हानिप्रद भी है। आवश्यकता सिर्फ कष्ट-सहनकी कलाकी है। मैं तो मानता हूँ कि हमारी कायरताका कारण अहिंसा धर्मका आधिक्य नहीं, बल्कि हमारे बीच उसका अभाव है। निश्चय ही, जो लोग हमारे विरुद्ध खड़े हैं, उनके अहितकी कामना करना अहिंसा नहीं है, बल्कि वह तो अहिंसा धर्मसे हमारी अनभिज्ञताकी द्योतक है। जो लोग तलवार नहीं उठाते वे अहिंसाकी भावनाके कारण ऐसा न करते हों, सो बात नहीं है। सचाई तो यह है कि वे मरनेसे डरते हैं। मैंने अकसर ऐसी कामना प्रदर्शित की है कि जिनके मनमें शस्त्र-प्रयोगके विषयमें कोई दुविधा न हो, उनका हथियार उठानेका साहस दिखाना ही अच्छा है। तब हम उन तथाकथित अहिंसावादियोंके

बोझसे मुक्त हो जायेंगे जो किसी प्रकारकी क्षति उठानेसे डरते हैं और फिर इस कारण अपनी कायरताको अहिंसाकी आड़में छिपाते हुए जीवनके इस परम सत्यको विकृत करते हैं। 'सोऽहं'के सिद्धान्तके बारेमें भी ऐसा ही कहा जा सकता है। यह एक वैज्ञानिक सत्य है, किन्तु अस्पृश्योंके कारण अपने व्यवहारमें हम इस सत्यको अस्वीकार करते हैं। अन्तिम हिस्सेमें जो आरोप लगाये गये हैं, उन्हें प्रमाणोंसे साबित नहीं किया जा सकता। इस सम्बन्धमें जैसी स्थिति हिन्दुओंकी है, बहुत अंशोंमें वैसी ही स्थिति दूसरे धर्मानुयायियोंकी भी है। समान परिस्थितियोंमें मानव-स्वभावकी प्रतिक्रियाएँ समान ही होती हैं। क्या मुसलमान दूसरे धर्मोंके प्रति कभी सहिष्णुता नहीं बरतता? अपने दौरोंमें मुझे ऐसे सैकड़ों मुसलमानोंसे मिलनेका मौका मिलता है जो उतने ही सहिष्णु हैं, जितने कि हिन्दू। मैंने सहिष्णु वृत्तिके ईसाई भी देखे हैं — और सो भी विरले नहीं अपितु अधिक संख्यामें। पत्र-लेखकको ध्यानसे देखनेपर पता चलेगा कि जो लोग दूसरे धर्मोंके प्रति असहिष्णु हैं, वे अपने धर्मवालोंके प्रति भी उतने ही असहिष्णु होते हैं।

एक ब्रह्मसमाजीकी कामना

एक ब्रह्मसमाजी भाईने लिखा है :

कुछ साल पहले राजा राममोहनरायको मामूली आदमी कहकर आपने ब्रह्मसमाजके प्रति अनजाने ही बहुत बड़ा अपराध किया था, किन्तु अब यह देखकर मुझे बड़ी खुशी हो रही है कि डा० रवीन्द्रनाथ ठाकुरका लेख पढ़कर आपने उस चीजको महसूस किया है।[1] अब चूँकि आपने यह स्पष्ट कर दिया है कि आपने किन परिस्थितियोंमें उस शब्दावलीका प्रयोग किया था और ब्रह्मसमाजके महान् संस्थापकके प्रति आपके मनमें कितने अधिक आदर-भाव हैं, मैं आशा करता हूँ कि बंगाल और अन्यत्र रहनेवाले मेरे ब्रह्मसमाजी भाई भी आपके स्पष्टीकरणको उसी उदारतासे स्वीकार कर लेंगे और आपके आध्यात्मिक और सामाजिक कार्यमें सहयोग करेंगे। क्योंकि सही दृष्टिसे देखें तो ब्रह्मसमाजका भी उद्देश्य यही है। प्रार्थना और जीवनकी सादगीमें आपका विश्वास, शास्त्रोंका अर्थ करनेमें बुद्धिसे काम लेनेका आपका आग्रह, सत्य चाहे जहाँ और जिस चीजमें भी हो, उसके प्रति आपका प्रेम, ईसा, बुद्ध, और मुहम्मद जैसे महान् सन्तों और नबियोंके प्रति आपकी श्रद्धा, साम्प्रदायिक एकता, अस्पृश्यता-निवारण और मद्य-निषेधके लिए किया गया आपका काम, इन सबने कई ब्रह्मसमाजियोंके मनमें आपके प्रति आदर और प्रशंसाके भाव भर दिये है। मुझे पूरी आशा और विश्वास है कि अब चूँकि आपने गलतफहमी दूर कर दी है, इसलिए ब्रह्मसमाज, मातृभूमिके आध्यात्मिक और सामाजिक पुनरुत्थानके

१. देखिए "कवि-गुरु और चरखा", ५-११-१९२५।

लिए आप जो प्रयत्न कर रहे हैं, उसका स्वागत करेगा। अब मेरी यही कामना है कि भगवत्कृपासे वस्तु-स्थितिके इस सही बोधके सुन्दर परिणाम निकलें।

जो काम ये भाई करते हैं, वही मेरी भी कामना है। किन्तु, मैं यहाँ इतना बता दूँ कि मैंने उस महान् पुरुषको कभी भी निरपेक्ष अर्थोंमे साधारण व्यक्ति नही कहा। मैंने 'यंग इंडिया'की पुरानी फाइलें देख ली हैं। १३–४–१९२१का अंक[1] देखनेसे वे परिस्थितियाँ स्पष्ट हो जाती हैं, जिनमें मैंने उन शब्दोंका प्रयोग किया था, और वह भाषण तो, जितना मुझे याद था, उससे भी अधिक सन्तुलित और सुन्दर है। इसके अलावा, मैंने तो कभी ऐसा भी नही पाया कि ब्रह्मसमाजी भाई मेरे कार्योंमे शरीक होनेसे कुछ खास तौरपर बचते रहे हों या यह कि कटकके भाषण-मे उस महान् सुधारकके विषयमें कही गई मेरी बातोंके कारण वे इससे अलग रहे हों। जो भी हो, अगर कुछ लोग ऐसा करते रहे हों तो मुझे आशा है और प्रभुसे मेरी प्रार्थना है कि अब वे मेरे कार्योंके प्रति ठीक उत्साह दिखायेंगे। देखता हूँ, इन ब्रह्मसमाजी भाईने पत्रमे एक बातकी कोई चर्चा नही की, जो बहुत खटकती है। मेरी सबसे बड़ी प्रवृत्ति तो चरखा-सम्बन्धी प्रवृत्ति ही है। इसे मैं अपनी सबसे बड़ी सामाजिक, राजनीतिक एवं आध्यात्मिक सेवा मानता हूँ। कारण, इसमे ये तीनों तरहकी सेवाएँ समाविष्ट हैं। मैंने इस देशके करोड़ों क्षुधा-पीड़ित लोगोंकी खातिर सबसे चरखा चलानेका आग्रह किया है। भले ही उनसे मैंने प्रतिदिन आधे घंटे ही कातनेको कहा हो, लेकिन इस आग्रहके कारण यह आन्दोलन एक ही साथ राजनीतिक और आध्यात्मिक भी बन जाता है। इसलिए, अब पत्र-लेखक महोदय और अन्य ब्रह्म समाजी भाइयोंसे मेरा यही कहना है कि वे इस छोटेसे चक्र और उसके उत्पादन खादीकी ओर ध्यान दें।

वृक्ष-रक्षण

सभी धर्म, शायद मनुष्यकी आकांक्षाओं और आवश्यकताओंकी ही उपज हैं। धर्ममें कुछ ऐसी शक्ति होती है, जो मनुष्यको सहज ही एक सूत्रमें पिरो देती है। गाय हमारे लिए एक अनिवार्य आवश्यकता थी; निदान हमने भारतमे गोरक्षा धर्मको अपनाया। जहाँ जलकी कमी हो, वहाँ कुआँ खोदना धर्म है, जहाँ जल अपरिमित मात्रामे मिलता हो वहाँ कुआँ खोदना हास्यास्पद ही होगा। इसी प्रकार त्रावणकोर जैसे स्थानोंमें जहाँ पेड़ लगाना निरर्थक होगा, वहाँ भारतके कुछ दूसरे हिस्सोंमे यह काम धर्म-रूप और आवश्यक है। कच्छ निःसन्देह ऐसी ही जगह है। इसकी जलवायु बड़ी अच्छी है, लेकिन इसके कुछ हिस्से ऐसे हैं कि यदि वहाँ ठीक वर्षा न हो तो उनके वीरान हो जानेका खतरा है। जंगलोंको काटकर या जंगल लगाकर वर्षाको लगभग वशमें किया जा सकता है। कच्छमें हर पेड़, हर झाड़ीकी रक्षा करनेकी जरूरत है। इसलिए कच्छमे मुझे जो-कुछ करना पड़ा, उसमें सबसे आनन्ददायक काम था पेड़ लगाना और एक वृक्ष-रोपण तथा वृक्ष-रक्षण संस्थाका उद्घाटन करना। यह सब एक ही व्यक्तिकी

१. देखिए खण्ड १९, पृष्ठ ४८३-४।

सूझ-बूझका परिणाम है। उनका नाम है जयकृष्ण इन्द्रजित। गुजरातमें विशेषज्ञ लोग कम ही हैं। श्रीयुत जयकृष्ण इनमें से सर्वप्रमुख लोगोंकी श्रेणीमें आते हैं। पेड़-पौधोंसे उन्हें बड़ा प्रेम है। उन्होंने पोरबन्दर राज्यकी बारडा पहाड़ियोंके पशु और वनस्पति-जीवनपर एक बहुत ही तथ्यपूर्ण पुस्तक लिखी है। अभी वे कच्छमें वन-अधिकारी हैं, और कच्छ तथा उस राज्यके निवासियोमें जगल लगाने तथा उसकी रक्षा करनेमें रुचि पैदा करनेकी कोशिश कर रहे हैं। वे मानते हैं कि अगर समझदारीके साथ पेड़-पौधे लगाये जायें तो कच्छमे दूध-दहीकी नदियाँ बहने लगें। उनका विचार है कि जो हिस्से आज हवाके साथ-साथ बालू उड़कर आनेके कारण बर्बाद होते जा रहे हैं, उन हिस्सोंमें रहनेवाले लोगोंमें से हरएक अगर यह सकल्प कर ले कि जिस तरह वह गाय खरीदता और पालता है, उसी तरह वह हर साल एक पेड भी लगायेगा और उसकी देखभाल करेगा तो उन अचलोंको सुन्दर उपवनोंका रूप दिया जा सकता है। उनके इस विचारसे सहमति प्रकट करनेकी धृष्टता मैं भी करता हूँ। वे वृक्ष-रोपण और वृक्ष-रक्षणकी जो लुभावनी सम्भावनाएँ बता रहे हैं, वे सब चाहे सच हों चाहे न हों, किन्तु इसमें कोई सन्देह नही कि कच्छमें बडे पैमानेपर पेड-पौधे लगानेकी आवश्यकता है। कच्छमें ईंधनके लिए एक भी पेडको काटना पाप है। राज्यको ईंधनके लिए जितनी भी लकड़ी या कोयलेकी आवश्यकता हो, सब बाहरसे मँगाना चाहिए। कच्छ-जैसे स्थानोंमें एक भी पेड़को काटना अपराध माना जाना चाहिए। इसलिए, मुझे आशा है कि माण्डवीमें स्थापित संस्था सारे कच्छमें अपनी शाखाएँ खोलेगी। जनता तथा राज्यके पारस्परिक सहयोगसे कच्छको शीघ्र ही हजारो पेड़-पौधोसे भर दिया जा सकता है। कच्छके निवासी कुछ विशेष खर्च किये बिना उस राज्यकी सम्पत्ति और सौन्दर्यमें अपरिमित वृद्धि कर सकते हैं। उनका मार्ग-दर्शन करनेके लिए एक सुयोग्य और उत्साही व्यक्ति उनके बीच मौजूद है। सवाल इतना ही है; क्या वे उसके मार्ग-दर्शनमें चलनेकी समझदारी और शक्ति दिखायेंगे।

जो बात कच्छपर लागू होती है, वह बात काठियावाडपर भी लगभग उतनी ही लागू होती है। असीम सम्भावनाओंसे पूरित यह प्रदेश छोटे-छोटे राज्योमें विभक्त है, जिनमें से प्रत्येक प्रभुसत्ता सम्पन्न — प्रभुसत्ता किसी की कुछ कम, किसी की कुछ ज्यादा — है। किन्तु उनके बीच आपसमे कोई ताल-मेल नही है। इसलिए भौगोलिक दृष्टिसे सुसम्बद्ध इस छोटेसे प्रायद्वीपमें रहनेवाले लोगोमें यद्यपि और बातोमें कोई भिन्नता नही है, फिर भी उनके शासक और जिन नियमोंसे वे शासित होते हैं, वे अलग-अलग हैं, अतः वहाँ एक सामान्य नीतिके बिना वन-रक्षण, व्यवस्थित ढगसे पेड़-पौधे लगाना, सिंचाई और दूसरे बहुतसे काम ठीक तरहसे नही किये जा सकते। कुछ दिन पहले मैंने इस विषयमें श्री एमहर्स्टका मत दृढ किया था। उन्होने कहा था कि अगर काठियावाडके रजवाड़े और लोग वृक्ष-रक्षणकी कोई सामान्य नीति बनाकर उसके अनुसार नही चलते तो सम्भव है, काठियावाड़में जलका इतना अभाव हो जाये कि एक समयमें वीर सेनानियोंको जन्म देनेवाली उस भूमिमें जीना दूभर हो जाये। कच्छ, राजपूताना, सिंध और ऐसे ही दूसरे क्षेत्रोंके सभी स्कूलोमें व्यावहारिक

वनस्पति शास्त्रका अध्ययन अनिवार्य कर दिया जाना चाहिए। रजवाड़ोंके लिए तो पेड़-पौधे लगाने और उनकी देखभाल तथा रक्षण करनेकी वृत्तिको प्रोत्साहन देनेसे अच्छा कोई काम ही नहीं है।

अखिल भारतीय देशबन्धु स्मारक

नीचे अखबारोंके लिए जारी की गई अखिल भारतीय देशबन्धु स्मारक कोषकी बारहवीं सूची दी जा रही है:

	रु०	आ०	पा०
जो रकम प्राप्त हो चुकी है,	६६,४४३	६	६
कच्छमें इकट्ठा की गई रकमका अंश	८,२५०	०	०
	७४,६९३	६	६

कच्छमें कुछ और संग्रह हुआ है, लेकिन अभी वह कोषाध्यक्षके पास नहीं पहुँच पाया है। लेकिन, कच्छमें संग्रह की गई राशिका बकाया हिस्सा मिलाकर भी रकम कोई बहुत मोटी नहीं बनती। कार्यकर्त्ताओंको मैं यह स्मरण करा देना चाहता हूँ कि वे चन्दा करनेकी सरगरमीमें कोई कमी न आने दें। और जिन लोगोंको चन्दा देना हो, उनके लिए भी यह ठीक नहीं है कि वे इस बातकी प्रतीक्षा करते बैठे रहें कि जब मैं उनके प्रान्तके दौरेपर आऊँगा तभी वे चन्दा देंगे। अखिल भारतीय देशबन्धु स्मारक कोषको जनताके उस सच्चे हमदर्द और मित्रकी गरिमा तथा जिस उद्देश्यमें यह कोष लगाया जायेगा उस उद्देश्यके गौरवके योग्य होना चाहिए। अगर हमारे पास पर्याप्त पैसा न हुआ तो खादी कार्यका संगठन सारे भारतमें नहीं किया जा सकेगा। पाठकोंको ध्यान रहे कि इस कोषमें दिये गये एक-एक रुपयेका मतलब है भारतके कमसे-कम आठ-आठ जरूरतमन्द श्रमिकोंको काम देना।

अखिल भारतीय चरखा संघकी परिषद्की पाँच दिनोंकी एक बैठक हुई थी। उसमें कोषकी कमीके कारण परिषद्को यह फैसला करना पड़ा कि जबतक पर्याप्त पैसा इकट्ठा नहीं हो जाता तबतक ऋण देनेके लिए नये आवेदन-पत्र न लिये जायें। इसलिए अगर खादी-कार्यका सम्यक् संगठन करना हो तो यह जरूरी है कि खादी-प्रेमी लोग चन्दा इकट्ठा करनेमें कोई विलम्ब न करें।

अखिल भारतीय गोरक्षा-मण्डल

आजतक सदस्योंसे सूतके रूपमें जो चन्दा प्राप्त हुआ है, उसकी निम्नलिखित सूची मन्त्रीने मुझे दी है:[1]

यह सूची मैं दूसरे लोगोंको भी इस मण्डलके कतैया सदस्य बननेके लिए प्रोत्साहित करनेके उद्देश्यसे प्रकाशित कर रहा हूँ। वाईकी सूची गोवर्धन संस्थाके श्री

१. सूची नहीं दी जा रही है। इसमें बम्बई मध्यप्रदेश (मराठी) गुजरात और महाराष्ट्रके सदस्यों द्वारा भेजे गये सूतकी तफसील दी गई थी। स्वयं गांधीजी और जमनालालजीके नाम भी सूचीमें थे। सूत भेजनेवाले व्यक्तियोंकी संख्या ३० थी, जिसमें से १६ केवल महाराष्ट्रके वाई नामक स्थानसे थे।

चौंडे महाराजके प्रयत्नोंका फल है। मुझे आशा है कि बहुत जल्दी ही मैं नकद चन्दा देनेवालोंकी भी सूची प्रकाशित कर सकूँगा। मण्डल अपना काम अच्छी तरह कर सके इसके लिए उसे और अधिक मदद देना जरूरी है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १९-११-१९२५

२४६. हमारी अस्वच्छता

अपनी यात्राओंके दौरान मुझे जिस चीजने सबसे ज्यादा दुःखी किया है, वह है हमारी अस्वच्छता। मैंने देखा है कि सारा देश इस रोगका शिकार है। मैं सुधार करनेके लिए जोर-जबर्दस्तीके तरीकेमें विश्वास नहीं रखता, लेकिन जब मैं सोचता हूँ कि जोर-जबर्दस्तीके बिना करोड़ों लोगोंके स्वभावमें रमी हुई आदतोंको दूर करनेमें कितना अधिक समय लगेगा तो जहाँतक अस्वच्छताके इस सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्नका सम्बन्ध है, मेरा मन जोर-जबर्दस्तीके तरीकेको भी स्वीकार करनेके लिए लगभग तैयार हो जाता है। कई रोगोंका कारण सीधे अस्वच्छतामें ढूँढ़ा जा सकता है। उदाहरणके लिए अंकुशकृमि (हुक वर्म) की बीमारी अस्वच्छतासे ही होती है। जो स्वच्छताके प्राथमिक नियमोंका भी पालन करेगा, उसे यह रोग कभी हो ही नहीं सकता। इस रोगका कारण गरीबी भी नहीं है। इसका एकमात्र कारण स्वच्छताके प्रारम्भिक नियमोंकी अनभिज्ञता है।

मेरे मनमें ये विचार माण्डवीकी घिनौनी गन्दगीको देखकर उठे हैं। माण्डवीके लोग गरीब नहीं है। उन्हें अज्ञोंकी श्रेणीमें भी नहीं रखा जा सकता। फिर भी, उनकी आदतें इतनी गन्दी हैं कि उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। स्त्रियाँ और पुरुष जिन सड़कोंपर नंगे पैर चलते हैं उन्हींको वे पाखाना करके रोज हर सुबह गन्दा करते हैं। उस बन्दरगाहमें शायद पाखाने हैं ही नहीं। मैं इन सड़कोंसे जैसे-तैसे ही गुजर पाया था।

मगर मैं बेचारे माण्डवी निवासियोंके साथ ही अन्याय क्यों करूँ? सच तो यह है कि मद्रासकी कई सड़कोंकी हालत मैंने इससे अच्छी नहीं देखी। वयस्क समझदार लोगोंका नदीके किनारोंपर कतार बाँधकर बैठ जाना और फिर पाखाना करके अपराधपूर्ण विचार-हीनताका परिचय देते हुए नदीमें जाकर गन्दगी साफ करना और इस तरह उसके पवित्र जलमें टायफाइड, हैजे और पेचिशके कीटाणु छोड़ आना — यह दृश्य मैं अभी भूला नहीं हूँ। यही पानी लोग पीते भी हैं। पंजाबमें हम ईश्वरके कानूनको तोड़कर अपनी छतोंको भी इसी तरह गन्दा करते हैं और करोड़ों कीड़ोंको जन्म देनेके भागी बनते हैं। बंगालमें जिस तालाबमें मनुष्य और पशु पानी पीते हैं, उसीमें लोग नहाते-धोते हैं और अपने बर्तन साफ करते हैं। लेकिन, इस लज्जाजनक परिस्थितिका अधिक वर्णन करना ठीक नहीं है। परिस्थिति ऐसी है, इसलिए उसे

छिपाना तो नहीं चाहिए; लेकिन, उसका जिक्र भी अधिक नहीं करना चाहिए। यों मैं जानता हूँ कि मैंने इसे कम करके ही पेश किया है।

माण्डवीके उद्यमी लोगोंसे मैं अनुरोध करूँगा कि वे सबसे आगे बढ़कर आदर्श स्वच्छताका मार्ग दिखायें। राज्य चाहे उनकी कोई मदद करे या न करे, वे किसी विशेषज्ञको बुलाकर अपनी स्वच्छताकी स्थितिमें सुधार करनेके लिए पैसा खर्च करें और अपने यहाँ पूर्ण स्वच्छता कायम करे। "साधुताके बाद स्वच्छता ही सबसे बड़ा गुण है।" जिस प्रकार मन अशुद्ध हो तो भगवत्कृपा प्राप्त नहीं हो सकती, उसी प्रकार यदि हमारा शरीर अस्वच्छ हो तो भी, ईश्वरकी कृपा नही पा सकते। और अस्वच्छ नगरमें रहनेवाले व्यक्तिका शरीर स्वच्छ कैसे हो सकता है।

हर चीजको स्वराज्य प्राप्त करनेतक टालते रहना गलत बात है। इस तरह तो हम कभी स्वराज्य भी प्राप्त नही कर पायेंगे। स्वराज्य तो बहादुर और शुद्ध-स्वच्छ लोग ही प्राप्त कर सकते हैं। यह सच है कि बहुत-सी बातोंमें हमारी दुरावस्थाके लिए सरकार ही जवाबदेह है, लेकिन मैं जानता हूँ, हमारी अस्वच्छताके लिए ब्रिटिश अधिकारी जिम्मेदार नही हैं। सच तो यह है कि अगर हम इस मामलेमें उन्हे पूरी छूट दे दें तो वे तलवारके जोरपर हमारी आदतें सुधार दें। वे ऐसा इस-लिए नही करते कि इससे उनको कोई लाभ होनेवाला नही है। लेकिन, स्वच्छताकी स्थितिके सुधारकी दिशामे वे किसी भी प्रयत्नका सहर्ष स्वागत करेंगे और उसको बढ़ावा देंगे। इस मामलेमे हम यूरोपसे बहुत-कुछ सीख सकते हैं। इस सम्बन्धमें हम मनुके जो कुछेक श्लोकोंको या अगर मुसलमान हुए तो, कुरान की आयतोंको बड़े गर्वके साथ उद्धृत करते हैं, लेकिन आचरण हम उनपर भी नहीं करते। तो हम उनसे ये बातें सीखे और अपनी आवश्यकताओं और आदतोंके अनुसार उनमें परिवर्तन करके उन्हें अपनायें। केवल शोभाके लिए नही बल्कि काम करनेके लिए अगर ऐसे सफाई-मण्डल स्थापित किये जायें, जिनके सदस्य झाड़ू, फावड़ा और बाल्टी लेकर काम करनेमें गौरव माने तो उन्हें देखकर मुझे कितनी खुशी होगी।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १९-११-१९२५

२४७. सच्चा कांग्रेसी

(१)

आप नहीं जानते कि हम (कांग्रेसी लोग) क्या है। मै बताऊँगा कि हम क्या है। एक बार कांग्रेसके एक बड़े मशहूर सदस्य किसीके घर जा पहुँचे। अनिमन्त्रित। मकान मालिकको उन्होंने कोई खबर भी नहीं दी थी। मकान जरूर सुन्दर और सुविधापूर्ण था। मकानके मालिकने उनसे पूछा, 'आप ठहरेंगे कहाँ?' उन्होंने उत्तर दिया: 'यहीं, और कहाँ?' मकान-मालिक इस अनुग्रहके लिए तैयार न था; फिर भी उसे उनके लिए यथासम्भव रहने-सहनेका अच्छा प्रबन्ध करना ही पड़ा। मगर 'मान न मान, मै तेरा मेहमान' बनकर आये इन सज्जनकी क्षुद्रताकी ओरसे बीच-बीचमें इशारा करनेसे वह नहीं चूका। यहाँतक कि उसने एकाध अवसरपर उनकी ओर अपनी अवज्ञा भी दिखाई, लेकिन ये सज्जन तो ऐसी अवज्ञा और अपमानोंपर ध्यान देनेकी स्थितिसे ऊपर उठ चुके थे। आपको यह भी बता दूँ कि अनिच्छुक मेजबान कांग्रेसी नहीं था।

(२)

एक दूसरे कांग्रसीने बिना किसी भी प्रकारकी इत्तिला दिये कांग्रेसके एक कार्यकर्त्ताके घरपर जाकर अड्डा जमा दिया। उनके साथ और बहुतसे लोग थे। जिस प्रकारकी सुख-सुविधाकी उन्होंने आशा की थी, वैसी न मिलनेपर वे उस कार्यकर्त्तापर बहुत बिगड़ उठे। हम कांग्रेसी अपनेको इतना बड़ा मानने लगे है कि हम समझते है, हमें कुछ भी खर्च किये बिना अच्छीसे-अच्छी सेवा प्राप्त करनेका पूरा हक है।

ये किस्से मुझे कांग्रेसके एक सच्चे कार्यकर्त्ताने ऐसे व्यथित मनसे सुनाये कि मैंने सोचा, इनका उल्लेख करके इनसे जो शिक्षा मिलती है, उसे लोगोंके सामने प्रस्तुत कर दूँ। लेकिन कोई यह न माने कि ये किस्से अमुक व्यक्तिको लक्ष्य करके लिखे गये है। इन घटनाओंके नाम-धाम जान बूझकर छोड़ दिये गये है। दूसरे पक्षका क्या कहना है, सो मैं नही जानता। इसलिए किसीको भी इस बातका पता लगानेका निरर्थक प्रयत्न करनेमें अपना समय गँवानेकी जरूरत नही है कि ये लोग है कौन।

बात इतनी ही है कि इन दृष्टान्तोंका कभी अनुकरण न किया जाये। कांग्रेसियोंको सच्चे कांग्रेसी बननेके लिए दोषकी शंकासे भी परे होना चाहिए। उसे याद रखना चाहिए कि वह उचित और शान्तिपूर्ण तरीकोसे स्वराज्य प्राप्त करने चला है। कोशिश करते-करते बहुत दिन बीत गये हैं, लेकिन वह अभी प्राप्त नही हो पाया है।

इसलिए इससे स्पष्ट निष्कर्ष यही निकल सकता है, कि हम लोगोंने अपने पारस्परिक व्यवहारमें भी ऐसे तरीकोंको नही अपनाया है जो परीक्षा करनेपर खरे उतर सकें। एक महाशयने तो पत्र लिखकर मुझे यह सलाह भी भेजी थी कि अपने प्रतिपक्षियोंके प्रति तो हमें सत्य और अहिंसाका ही व्यवहार रखना चाहिए; लेकिन हमारे पारस्परिक व्यवहारमे इसकी कोई आवश्यकता नही है। अनुभवसे ज्ञात होता है कि यदि हम सभी प्रसंगोंपर सत्य और अहिंसाका बरताव नही करते तो केवल कुछ मौकोंपर और कुछ लोगोंके साथ भी हम वैसा बरताव नहीं कर पाते। यदि हम आपसमें ही एक-दूसरेका खयाल नही रखेंगे तो बाहरी लोगोंका भी खयाल नहीं रख सकेंगे। यदि हम आपसमें और बाहरके लोगोंके साथ छोटीसे-छोटी बातोंमें भी अपना व्यवहार विचारपूर्वक शुद्ध नही रखेंगे, तो कांग्रेसने जो कुछ प्रतिष्ठा प्राप्त की है, सब धूलमे मिल जायेगी। अगर हम छोटी चीजोंका ध्यान रखें तो बड़ी चीजें स्वयं सध जाएँगी।

सच्चे कांग्रेसीका मतलब है, सच्चा सेवक। वह हमेशा सेवा करता है, लेता कभी नही। जहाँतक उसके अपने शारीरिक आरामका सवाल है, उसको बहुत थोड़े-से सन्तोष हो जाता है। सबसे पीछे बैठनेमें ही वह सुख मानता है। उसमें साम्प्रदायिकता या प्रान्तीयताकी भावना नही होती। उसके लिए देश सबसे बढ़कर है। समस्त सांसारिक आकांक्षाओंके प्रति विरक्त और मृत्युके भयसे मुक्त वह व्यक्ति दुनियाकी दृष्टिमें शायद दोषकी हदतक, बहादुर होता है, और चूँकि वह बहादुर होता है, इसलिए उदार भी होता है; चूँकि वह नम्र होता है और अपने दोषोंका और अपनी मर्यादाका उसे ज्ञान होता है, इसलिए वह क्षमाशील भी होता है।

यदि ऐसे कांग्रेसियोंका मिलना मुश्किल है, तो स्वराज्य बहुत दूर है और हमें अपने उद्देश्यको बदलना होगा। अभीतक हमे स्वराज्य नही मिला है, यही इस बातका सबूत है कि आज जितने चाहिए उतने सच्चे कांग्रेसी नही है। लेकिन चाहे जो हो, यदि मैंने इन अशोभन प्रसंगोंका, जिनकी संख्या अधिक भी हो सकती है, उल्लेख किया है, तो मै कृतज्ञताके साथ इस बातकी साक्षी भी अवश्य भरूँगा कि हमारे बीच ऐसे कांग्रेसी भी पड़े हैं, जो उन सारी कसौटियोंपर खरे उतरते हैं, जिनकी मैंने चर्चा की है। माना कि अभी वे थोड़े हैं, लेकिन उनकी संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। वे अभी ख्यातिसे बहुत दूर हैं। यह अच्छा ही है। यदि वे चाहने लगे कि उन्हे प्रसिद्धि मिले और इज्जतके साथ उनका नाम कांग्रेसके खरीतोंमें लिया जाये तो काम नहीं हो सकेगा। जो लोग 'विक्टोरिया क्रॉस' पाते हैं, वे ही मानवताके सबसे बड़े सेवक नहीं होते। दुनियाके असली बहादुरों और नायकोंके नाम तो कोई आखिरतक भी नहीं जान पायेगा। उनके कार्य अमर होते हैं। उनके कार्य ही उनके लिए पुरस्कार होते है। ऐसे लोग ही दुनियामें सच्चे परिमार्जनकारी होते हैं। उनके बिना दुनिया बुराई और गन्दगीसे इतनी भर जाये कि रहने लायक ही न रहे। मुझे कांग्रेसमें ऐसे स्त्री-पुरुषोंसे मिलनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। उनके बिना कांग्रेस ऐसी संस्था नही रह जायेगी, जिसका सदस्य बनकर किसीको गर्वका अनुभव हो। बेशक इस समय कांग्रेसके मुख्य पदोंपर कब्जा करनेके लिए और कांग्रेसको अपने

अधिकारमें लेनेके लिए बड़ी आपाधापी चल रही है। यह रोग अब उभरकर ऊपर आ गया है, और निश्चित है कि समय पाकर यह रोग दूर होगा और कांग्रेस एक स्वस्थ तथा बलिष्ठ संस्था बन जायेगी। लेकिन जबतक कांग्रेस ईमानदारी और नि:स्वार्थ-भावसे कठिन श्रम करनेवाले लोगोंकी संस्था नही बन जाती तबतक ऐसा नहीं होगा।

कांग्रेस चाहे जितनी लोकतान्त्रिक हो, उसमें कोई हर्ज नही। लेकिन लोकतन्त्रका मतलब दम्भ और अहंकार, लोगोंसे सेवा प्राप्त करनेका परवाना तो नही होना चाहिए। पंचोंकी वाणी परमेश्वरकी वाणी तभी हो सकती है, जब वह ईमानदारी, बहादुरी, नम्रता, विनय और आत्मत्यागकी वाणी हो। अगले वर्ष काग्रेसका नेतृत्व एक महिलाके हाथोंमें होगा। अगर स्त्री आत्म-त्याग और पवित्रताकी साक्षात् प्रतिमूर्ति नहीं हुई तो वह कुछ नही है। तो अब हम सभी कांग्रेस-जन — चाहे स्त्री हो या पुरुष — अपने-आपको नम्र बनायें, अपने हृदयको पवित्र बनायें और करोड़ों मूक लोगोंके सच्चे प्रतिनिधि बनें।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १९-११-१९२५

२४८. एक जर्मनका अनुरोध

बड़ो दादाको[1] जर्मनीसे एक पत्र मिला है। उसके कुछ अंश मैं नीचे दे रहा हूँ:

> भ्रष्टाचार तो धरतीसे उठकर आकाश तकमें छा गया है। सभी बुरे लोग सुख-समृद्धिका जीवन व्यतीत कर रहे हैं और अच्छे लोगोंका जीवन एक सतत संघर्ष बना हुआ है। सबसे गरीब हम टाउन क्लर्क लोग हैं, क्योंकि हमारा वेतन बहुत कम है—प्रति मास सिर्फ ३५ डालर। इसलिए हमारा जीवन सदा अभावग्रस्त रहता है।
>
> मनमें प्रायः यह प्रबल इच्छा उठती है कि भारत जाकर वहाँ श्री गांधीके चरणोंमें बैठूं। मैं बिलकुल अकेला हूँ। मेरे न स्त्री है न बच्चे। बेचारी एक बीमार-सी भतीजी है। मेरे सिवा उसका कोई सहारा नहीं है। वही मेरा घर संभालती है। अगर वह न हो तो मैं पादरी बन जाऊँ। उसे तो मैं कष्टमें छोड़कर जा नहीं सकता। लेकिन, मैं विद्या-व्यसनी व्यक्ति हूँ। मैंने प्राचीन और आधुनिक विदेशी भाषाओंका अच्छा अध्ययन किया है। मैंने रहस्यवाद और बौद्ध धर्मका भी अध्ययन किया है। मुझे न इससे अच्छी कोई जगह मिल पा रही है, न अच्छा पैसा। जर्मनीमें आज ऐसी ही स्थिति है।

१. द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर।

> भयंकर महायुद्धसे पन्द्रह वर्ष पूर्व मैं एक स्वतन्त्र व्यक्ति था और अनुसन्धानका काम करता था। किन्तु अब? अब तो जर्मन मुद्राका भारी अवमूल्यन हो जानेके बाद जर्मनीके अन्य हजारों विद्वानोंकी तरह मैं भी एक भिखारी हूँ। अब मैं ४५ वर्षका हो चुका हूँ। आप सोच नहीं सकते कि मैं किस तरह निराश और हताश हूँ और यूरोपमें रहता हुआ कितनी ऊब और परेशानी महसूस करता हूँ। यहाँ आदमीमें आत्मा तो है ही नहीं। वे एक-दूसरेको निगल जानेवाले जंगली जानवर हैं। क्या मेरा भारत पहुँचना सम्भव है? क्या मैं एक भारतीय दार्शनिक बन सकूंगा? मुझे भारतमें विश्वास है और मैं आशा करता हूँ कि वह हमें उबार लेगा।

इस पत्रकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ तो किसी भारतीय क्लर्कपर भी अक्षरशः घटती हैं — वह भी अपना हाल लिखने बैठता तो इन्हीं शब्दोंका प्रयोग करता। उसकी स्थिति जर्मन क्लर्कसे किसी तरह अच्छी नहीं है। भारतमें भी बुरे लोग सुख-समृद्धिका जीवन व्यतीत कर रहे हैं, किन्तु अच्छे लोगोंका जीवन एक सतत संघर्ष बना हुआ है। इसलिए यहाँ दूरके ढोल सुहावनेवाली बात ही लागू होती है। इन जर्मन सज्जन-जैसे भाइयोंको यह समझ रखना चाहिए कि भारतकी स्थिति जर्मनी या किसी भी देशसे बेहतर नहीं है। वे यह भी समझ लें कि धन-सम्पत्ति व्यक्तिकी अच्छाईकी कसौटी नहीं है। सच तो यह है कि इसकी एकमात्र कसौटी अक्सर गरीबी ही हुआ करती है। नेक आदमी स्वेच्छासे गरीबीका वरण करता है। अगर पत्र-लेखक सज्जन किसी समय सुख-समृद्धिका जीवन बिता रहे थे तो उन्हे याद रखना चाहिए कि उन दिनों जर्मनी दूसरे देशोंका शोषण कर रहा था। अपनी स्थितिका इलाज हर देशके हर व्यक्तिके हाथमें है। हरएकको अपने अन्दर ही शान्ति ढूंढ़नी है। सच्ची शान्ति तो तभी मिल सकती है, जब वह बाह्य परिस्थितियोंके प्रभावसे मुक्त हो। पत्र-लेखक कहते हैं कि अगर उनकी भतीजी नही होती तो वे पादरी हो जाते। मुझे तो इस बातमें विचार-दोष दिखाई देता है। उन्होंने जो लिखा है उससे मुझे तो ऐसा लगता है कि उनकी वर्तमान स्थिति उनकी कल्पनाके पादरीकी स्थितिसे अच्छी है। कारण, अभी उन्हें कमसे-कम एक बेसहारा व्यक्तिकी देख-भाल तो करनी पड़ती है, पादरीका बिल्ला लग जानेपर तो उन्हें किसीकी फिक्र करनेकी जरूरत नहीं बच रहेगी। किन्तु, सच तो यह है कि पादरीके रूपमें उन्हें ऐसी सैकड़ों भतीजियों, बल्कि भतीजोंकी भी देख-भाल करनी पड़ेगी। पादरीकी हैसियतसे उनकी जिम्मेदारीका दायरा विश्व-व्यापी होगा। इस समय तो वे सिर्फ अपने और अपनी भतीजीके लिए ही मेहनत करते हैं, किन्तु पादरी बन जानेपर उन्हें समस्त पीड़ित मानवताके लिए मेहनत करनी होगी। इसलिए मैं इन तथा ऐसे ही दूसरे भाइयोंको यह सलाह देनेकी धृष्टता करूँगा कि वे पादरीपनका जामा ओढ़े बिना ही समस्त दुःखी जनोंके साथ तादात्म्य स्थापित करें। फिर तो वे वह सब-कुछ करनेकी स्थितिमें आ जायेंगे जो पादरियोंका कर्त्तव्य होता है; साथ ही पादरियोंको जिन बड़े-बड़े प्रलोभनोंका खतरा रहता है उससे भी वे मुक्त रहेंगे।

वे जर्मन बन्धु भारतीय दार्शनिक बननेमें सुख मानेंगे। किन्तु, वे सच मानें कि तत्वज्ञानमें स्थान-भेद नहीं होता। एक भारतीय दार्शनिक भी उतना ही अच्छा या बुरा होता है, जितना कि कोई यूरोपीय तत्त्वदर्शी।

मेरे विचारसे, पत्र-लेखकने एक बातका अनुमान ठीक लगाया है। वैसे तो भारतमें भी आत्मा-शून्य दोपाये जंगली जानवर हैं, किन्तु शायद औसत भारतीय-मानसकी प्रवृत्ति अपने अन्दरके पशुको दुत्कार कर ही चलनेकी होती है। और मेरा यह निश्चित विश्वास है कि जो मार्ग भारतने १९२१ में चुना उसपर यदि वह आरूढ़ बना रहा तो यूरोप बखूबी उससे बहुत-कुछ आशा कर सकता है। उस समय उसने बहुत सोच-विचारकर सत्य और अहिंसाका मार्ग चुना था, और इसको व्यावहारिक रूप देते हुए उसने चरखा और तमाम बुराइयोंके प्रति असहयोगका धर्म स्वीकार किया था। मैं उसे जितना जानता हूँ उसके आधारपर कह सकता हूँ कि उसने उस धर्मको छोड़ा नहीं है और न ऐसी कोई सम्भावना है कि वह उसे छोड़ेगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १९-११-१९२५

२४९. अमेरिकामें कताई

एक मित्रने न्यू लन्दनसे प्रकाशित एक अमेरिकी अखबारकी कतरन भेजी है। कतरनसे अखबारके नामका पता मुझे नहीं चल सका। उसमें कैसी हार्डविक द्वारा कताईपर लिखा एक सुन्दर लेख है। इससे प्रकट होता है कि स्वातन्त्र्य-युद्धके समय इसका अमेरिकियोंके बीच कितना चलन था और लेखकके अनुसार यह किस तरह उनकी सफलतामें सहायक सिद्ध हुआ। लेकिन पाठकोंके लिए सबसे दिलचस्प बात यह है कि अमेरिकामें भी इस पुरानी कलाको फिरसे जीवित किया जा रहा है। नीचे मैं उसके कुछ दिलचस्प अंश दे रहा हूँ।[1]

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया १९-११-१९२५

१. देखिए परिशिष्ट ७।

२५०. सामाजिक सहकार

२२ नवम्बर, १९२५

अहमदाबाद शहरकी नगरपालिकाके सम्बन्धमें डॉ० हरिप्रसादका दूसरा पत्र मैं बिना किसी संकोचके इस अंकमें प्रकाशित कर रहा हूँ। मैं ज्यादातर 'नवजीवन'के पाठकोंका समय किसी एक शहर अथवा एक ही गाँवकी बात करनेमें नहीं लेता; मैं समस्त गुजरातसे अथवा समस्त हिन्दुस्तानसे सम्बन्धित सवालोंकी चर्चा ही करता हूँ और अभी अहमदाबादकी गलियोंके वर्णनमें 'नवजीवन'की जो जगह रोक रहा हूँ वह तो यह सोचकर रोक रहा हूँ कि 'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे'। कारण, हम जो गन्दगी, अहमदाबादमें देखते हैं और यह गन्दगी जिन बुरी आदतोंका परिणाम है उसका अनुभव हम सारे भारतवर्षमें करते हैं। यदि किसी एक स्थानमें भी लोगोंको सफाईकी तालीम मिल जाये और यदि हम उस स्थानको आदर्श बना सकें तो अन्य सब स्थानोंपर ऐसी तालीम देकर सफाई रखना आसान हो जाये।

हमारी भयंकर गन्दगीका कारण हमारी लापरवाही और हमारा सामाजिक असहकार है। जहाँ असहकार होना चाहिए वहाँ तो हम इच्छापूर्वक अथवा अनिच्छापूर्वक अपना सहकार करते हैं; उदाहरणार्थ, अपनी अनेक बुरी आदतोंके साथ हम सहकार करते हैं। सरकारके तन्त्रके साथ, यद्यपि हम देख रहे हैं कि वह राष्ट्रके सत्त्वका नाश कर रहा है, हम सहकार करते हैं। इसी प्रकार हम अपनी गन्दगीके साथ, जो हमारे शरीरका नाश करती है और हमें प्लेग आदि रोगोंका शिकार बना देती है, सहकार करते हैं। लेकिन अपने पड़ौसियोंके साथ, जिनके सुखमें हमारा सुख निहित है और हमारे प्रत्येक कार्यमें जिनकी सुविधाका विचार होना ही चाहिए हम असहकार करते हैं। कानूनमें एक कहावत है जो केवल वकीलोंके वितण्डावादके लिए नहीं रची गई है परन्तु जो धार्मिक सिद्धान्तकी सूचक है। कहावत यह है: 'अपनी वस्तुका उपयोग इस तरह करो जिससे दूसरोंको हानि न पहुँचे।' यही बात 'गीता'में दूसरी तरह कही गई है "जो मनुष्य अपनेको दूसरोंमें देखता है और दूसरोंको अपनेमें देखता है, वही सच्चा देखनेवाला है, वही ज्ञानी है।" अहिंसाके मूलगामी और सर्वस्पर्शी सिद्धान्तको हम कदम-कदमपर भंग करते हैं और शौचादि-क्रियाओंके सम्बन्धमें हम जो लापरवाही बरतते हैं उसमें तो उक्त सिद्धान्तका हमारा यह भंग बहुत भयंकर रूपमें प्रकट होता है।

अपने आँगनका कचरा मैं पड़ोसीके आँगनमें फेकूँ, अपनी खिड़कीसे काँचके टुकड़े फेकूँ, कचरा पानी बहाऊँ और थूकूँ तथा ऐसा करते हुए नीचे चलनेवाले व्यक्तियोंका खयालतक भी न करूँ — यह कितनी लापरवाहीकी बात है? कैसी हिंसा है? समाजके साथ कैसा घातक असहकार है? मेरी नालीका पानी दूसरोंका नुकसान करेगा, इस बारेमें लापरवाही दिखलाना कितना अविचारपूर्ण है। हम इतना ही समझ ले

कि जनता हमारा अंग है और हम जनताके अंग है, तो हमारी गन्दगी असम्भव हो जाये तथा हम रोगादिसे मुक्त होकर जनताके वलको वढ़ायें और उसके धनमें भी वृद्धि करे। एक लेखकने कहा है कि किसी वस्तुको उसके स्थानसे हटाकर दूसरे स्थान-पर रखना ही गन्दगी वन जाती है। नदी किनारे विखरी हुई रेत सृष्टिके सौन्दर्यमें तथा मनुष्य जातिके सुखमें वृद्धि करती है। पर यही रेत अगर आँखमें पड़े तो वह कचरा कहलायेगी और अनाजमें पड़ जाये तो उसे अखाद्य वना देगी। मैला मनुष्योंके चलनेके रास्तेपर डाल दें तो वह गन्दगी है, वहाँ वह दुर्गन्ध फैलाता है, रोगादि पैदा करता है; किन्तु यदि इसीको खेतमें गाड़ दें तो वही सोना हो जाता है; किसान उसका संग्रह करते है, खुशीसे पैसे देकर खरीदते हैं। ऐसा प्रत्येक वस्तुके वारेमें कहा जा सकता है। अत. यदि समाजको शौचके सामान्य नियमोंकी शिक्षा मिले और यदि समाज तदनुरूप व्यवहार करे तो सामाजिक सहकार उत्पन्न हो और मलमूत्रादि वस्तुओको जिनकी गिनती गन्दगीमें की जाती है, खेतमें जाकर डालें तो हम सोना उगलनेवाला खाद वना सकते हैं।

यह कार्य डॉ० हरिप्रसाद अकेले नही कर सकते। दस-वीस आदमी भी इसे नही कर सकते। इसमें सारे समाजकी मदद चाहिए। इसके दो ही तरीके हो सकते हैं। एक तो कडे कानून वनाकर और सख्ती करके और दूसरे लोगोंको समझा-बुझाकर ऐसे कार्यके प्रति उनके मनमें दिलचस्पी पैदा करके और इस तरह उन्हें इस किस्मके सुधार स्वेच्छासे अपनानेके लिए राजी करके।

डा० हरिप्रसादने अपने लेखमें जो चार दृष्टान्त दिये हैं वे अनुकरणीय है। धनिक वर्गोमें कितने ही व्यक्ति ऐसा मानते दिखाई देते है कि लाखों रुपया खर्च करके संगमरमरके सुन्दर महल वना लेने और आसपास वाड़ लगानेसे वे सुखी और सुरक्षित हो गये। सत्य तो यह है कि यदि उनके आसपास गन्दगी कायम रहती हो तो उनके इस सगमरमरके महलका इतना ही मतलव है कि उन्होंने अपने लिये मिट्टीके वजाय संगमरमरका कैदखाना वनाया है और वे अनेक प्रकारकी दुर्गन्ध तथा अनेक प्रकारके रोगोके भयसे घिर गये हैं। जितने पैसे वे लोग महलपर खर्च करते है यदि उससे आधा लोगोंको आसपासकी वायु शुद्ध करनेकी शिक्षा देनेमें खर्च करे तो वे महलका सच्चा सुख ले सकते हैं और दूसरोंको भी सुखी कर सकते हैं। इस तरह वे स्वार्थ और परमार्थ दोनोंका सुयोग साध सकते हैं।

अहमदावाद-जैसे शहरोंका सुधार, उनकी सफाई आदि केवल कर वढ़ानेसे नहीं हो सकती, ऐसी मेरी मान्यता है। यह सम्भव है कि इसके लिए कुछ हदतक करोंमें वृद्धि करना जरूरी हो लेकिन अधिकांशतः तो यह चीज धनिकोंकी उदारतासे ही हो सकती है। वच्चोंके घूमनेके लिए अहमदावादमें स्थान-स्थानपर छोटे-छोटे वगीचे क्यों नही हो सकते? रास्ते चौड़े क्यों नही हो सकते? गलियाँ ऐसी साफ क्यों नही हो सकती, जिनपर हम विना संकोच नंगे पाँव चल सकें?

ये सव सुधार तभी हो सकते है जब अमीरों और गरीबों अर्थात् सारे नागरिकोंके वीच—सामाजिक सहकार हो तथा अमीर लोग सारे शहरको अपना

मानकर अपना पैसा उसे सुन्दर बनानेमें लगायें। इस तरह पैसा खर्च करनेसे पैसेमें वृद्धि होती है, यह बात भी उन्हें समझ लेनी चाहिए। शहरमें यदि एक अच्छी सड़क हो तो उसके आसपास बने मकानोंकी कीमत बढ़ जाये। उसी तरह यदि अहमदाबादमें रास्ते आदि चौड़े हो जायें और साफ रहे तो आसपासकी जमीनकी कीमत भी अवश्य बढ़ेगी और लोगोंके स्वास्थ्यमें वृद्धि होनेसे उनके बल और आयुमें वृद्धि होगी और इससे जो आर्थिक लाभ होगा सो अलग। परन्तु अभी आरम्भ तो जो रास्ते और सड़कें आदि हैं उन्हें साफ करने और रखनेसे ही किया जाना चाहिए। इसका परिणाम अन्ततः तंग रास्तोंको चौड़ा करना, शहरमें स्थान-स्थानपर छोटे बगीचे बनवाना और शहरके मन्दिरों तथा मस्जिदोंको जो आज आसपासके कुरूप मकानोंसे ढंकसे गये हैं, उन्हें दीखने लायक बना देना और इस तरह शहरको सुन्दर बनाना होगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २२-११-१९२५

२५१. कच्छके संस्मरण – २

वृक्ष-रक्षण और वृक्षारोपण

कच्छकी यात्रामें जिन प्रश्नोंपर विचार करना पड़ा उनमें वृक्षारोपण और वृक्ष-रक्षणका प्रश्न भी था। कच्छ कुछ हदतक सिन्धका एक हिस्सा माना जा सकता है। परन्तु सिन्धको तो सिन्धु नदी मिली है, इसलिए सिन्धका निर्वाह हो सकता है। यदि सिन्धु नदी न हो तो सिन्ध बर्बाद ही जाये। कच्छको तो ऐसी किसी नदीका सहारा नहीं है। इसीसे कच्छमें अंजार, मुन्द्रा आदि थोड़ेसे हिस्सोंको छोड़कर अन्य स्थानोंपर वृक्षादिका दर्शन मुश्किलसे ही होता है और जहाँ वृक्षादि नहीं होते वहाँ बरसात हमेशा कम होती है। कच्छकी स्थिति ऐसी ही है। बरसात इतनी कम और अनियमित होती है कि ऐसा शायद ही होता है कि वहाँ अकालकी स्थिति न हो। पानीकी तंगी तो हमेशा बनी रहती है। यदि कच्छमे नियमपूर्वक और लगनके साथ वृक्ष लगाये जायें तो कच्छमें बरसातका प्रभाव बढाया जा सकता है और फल-स्वरूप यह प्रदेश अधिक उपजाऊ हो सकता है। इस दृष्टिसे श्री जयकृष्ण इन्द्रजित इस दिशामें जबर्दस्त प्रयास कर रहे हैं। माण्डवीमें शहरसे थोड़ी दूर एक सुन्दर मैदानमें उन्होंने मेरे हाथसे वृक्षारोपण कराया। मुझे कच्छमें मेरे हाथों हुई यह क्रिया सबसे अधिक प्रिय लगी। उसी दिन वहाँ वृक्ष-रक्षण सभाकी भी शुरुआत हुई। मेरी इच्छा है कि जिस हेतुसे यह सभा स्थापित की गई है और जिस हेतुसे मुझसे यह वृक्षारोपण कराया गया है, वह हेतु सफल हो।

श्री जयकृष्ण इन्द्रजित गुजरातके भूषण हैं। गुजरातमें अपने विषयमें जो तल्लीन हो गये हों ऐसे व्यक्ति इने-गिने ही हैं। ऐसे प्रमुख व्यक्तियोंमें श्री जयकृष्ण इन्द्रजित

भी हैं। बरडाके[1] हरएक वृक्षसे और पत्ते-पत्तेसे उनका परिचय है। वृक्षारोपणपर उन्हें इतना ज्यादा विश्वास है कि वे उसे प्रथम स्थान देते हैं और उससे अनेक सुन्दर परिणामोंकी आशा रखते हैं। इस विषयमें उनका उत्साह और विश्वास संक्रामक है। उनके इस उत्साह और विश्वासकी बू मुझे तो जाने कबसे लग गई है। यदि राजा और प्रजा दोनों चाहें तो जहाँ वृक्ष-शास्त्रका ज्ञान रखनेवाला ऐसा व्यक्ति रहता है वहाँ उनका सम्पूर्ण लाभ लेकर सुन्दर वाटिका बनवा सकते हैं।

जोहानिसबर्ग एक ऐसा ही प्रदेश था। वहाँ किसी समय घासके सिवा और कुछ नहीं होता था। मकान एक भी न था। ४० वर्षके अन्दर यही प्रदेश स्वर्णपुरी बन गया है। एक समय ऐसा था जब लोगोंको एक डोल पानीके लिए बारह आने देने पड़ते थे और अनेक बार तो सोडावाटरपर गुजारा करना पड़ता था। कभी-कभी तो हाथ-मुँह भी सोडावाटरसे धोनेकी नौबत आ जाती थी। वहाँ आज पानी है और वृक्ष हैं। शुरूसे ही सोनेकी खानोंके मालिकोंने अत्यन्त उत्साहसे दूर-दूरसे वृक्ष मँगवा-कर लगाये और इस तरह इस प्रदेशको पहलेकी तुलनामें बहुत हरा-भरा बना दिया। इससे बरसातकी मात्रामें भी वृद्धि हो गई। दूसरे भी ऐसे उदाहरण हैं जहाँ जंगल काटनेसे बरसात कम हो गई है और वृक्ष लगानेसे बरसात बढ़ गई है।

कच्छके धनिक-वर्गको यदि इस धर्मकार्यमें दिलचस्पी हो तो बहुत सुधार हो सकता है। जैसे गोरक्षा, वैसे इस प्रदेशमें वृक्ष-रक्षा भी धार्मिक कार्य है। एक गायको पालनेवाला पुण्य-फलका भागी होता है, ऐसा हम मानते हैं। उसी तरह, कच्छ, काठिया-वाड़ जैसे प्रदेशमें वृक्ष लगानेवाला पुण्य-फलका भागी होगा। ईंधनके लिए अथवा अन्य किसी कार्यके लिए एक भी वृक्ष नहीं काटा जाना चाहिए। ईंधनके लिए पासके वृक्षोंको काटकर उसका ईंधन बनवानेसे बाहरसे लकड़ियाँ मँगवाना अधिक सस्ता पड़ेगा। हालाँकि वृक्ष काटनेवालेको तत्काल तो लकड़ियाँ मुफ्त मिल जाती हैं, परन्तु कच्छको उससे जो नुकसान पहुँचता है उसकी क्षतिपूर्ति किसी तरह भी नहीं की जा सकती। जिससे लकड़ी मिल सकें, ऐसा वृक्ष दस वर्षसे पहले तैयार नहीं होता। जिसमें दस वर्षकी मेहनत लगी हो और जो अनेक प्रकारसे धरती तथा मनुष्यकी रक्षा करता हो, ऐसे वृक्षको काटनेकी बात सोचना ही अनुचित है।

जो स्थिति कच्छकी है वही स्थिति लगभग काठियावाड़की है। काठियावाड़में तो वृक्षोंकी रक्षाका प्रश्न दिन-ब-दिन अधिकाधिक महत्त्वपूर्ण होता जाता है। लेकिन काठियावाड़में स्थिति कच्छकी अपेक्षा ज्यादा कठिन है, क्योंकि काठियावाड़ यद्यपि एक छोटा और सुन्दर प्रायद्वीप है तथापि इसके इतने ज्यादा हिस्से हो गये हैं तथा वे एक दूसरेसे इतने ज्यादा स्वतन्त्र हैं कि जबतक उनके बीच ऐसे प्रश्नोंके सम्बन्ध-में मेल न हो तबतक वृक्षारोपण अथवा वृक्ष-रक्षणका कार्य सुव्यवस्थित रूपसे नहीं हो सकता। वैसा होनेपर भी यदि कच्छ और काठियावाड़को वीरान होनेसे बचाना हो तो समय रहते इसके सम्बन्धमें प्रभावकारी उपाय किये जाने चाहिए।

१. कच्छ प्रदेशका एक पहाड़ी जंगल।

माण्डवीकी गन्दगी

जिस दिन मैंने सुन्दर वातावरणमें, साफ जगह, जहाँ मन्द-मन्द वायु बह रही थी, वृक्षारोपण किया उसी दिन 'दर्शन देनेके लिए' लोग मुझे माण्डवी शहरमें ले गये थे। दर्शन देनेकी यह क्रिया मेरे लिये विषम सिद्ध हुई, क्योंकि इस क्रियाको करते हुए मुझे माण्डवीकी गन्दगीके दर्शन भी करने पड़े। प्रातःकाल जब पवित्र होकर पवित्र वातावरणमें लोगोंको ईश्वरका नाम लेते दिखाई देना चाहिए उस समय माण्डवीके वयोवृद्ध स्त्री-पुरुष और बालक अपनी गन्दगीसे गलियोंका शृंगार करते दिखाई देते हैं। इसमें उन्हें न तो शर्म आती है न संकोच होता है, न मनमें आरोग्यका विचार उठता है और न समाजपर दया आती है, माण्डवीके नागरिक अज्ञानी नहीं, मूर्ख नहीं, उन्होंने दुनिया देखी है, वे विदेशोंमें गये हैं, स्वच्छ शहर भी उन्होंने देखे हैं। ऐसा होनेपर भी अपनी गलियोंको, जहाँ उन्हें हमेशा नंगे पाँव चलना होता है जहाँ उनके बालकोंको सारा दिन खेलना होता है और जहाँ वे जातीय भोजोंका आयोजन भी करते हैं, बिगाड़ते हुए उन्हें कैसे संकोच नहीं होता, यह समझमें न आ सकनेवाली बात है। माण्डवीमें जो गन्दगी होती है उसका पूरा-पूरा वर्णन करते हुए मुझे शर्म आती है। मैंने जो लिखा है उससे पाठक अनुमान कर लें। मुझे स्वीकार करना चाहिए कि जो भयंकर दृश्य मैंने माण्डवीमें देखा सो और कहीं नहीं देखा, ऐसी बात नहीं। मुझे याद है ऐसा ही दृश्य मैंने बचपनमें पोरबन्दरमें देखा था। इस तरहकी गन्दगी शौचादि नियमोंका घोर अज्ञान और उनका भंग इस पवित्र भूमिमें मैंने हर जगह देखा है तथा मुझे उससे दुःख हुआ है।

परन्तु सारा जगत पाप करे तो भी हमें पाप करनेका अधिकार नहीं मिलता, इसी तरह अन्य स्थानोंकी गन्दगीसे माण्डवीका बचाव नहीं हो सकता और चूँकि कच्छके संस्मरण लिखना तथा मैंने जो देखा उसे कह देना मैं सेवाधर्मका अंग समझता हूँ इसलिए माण्डवीका यह दुःखद स्मरण लिखे बिना मैं रह नहीं सकता। जैसा माण्डवीमें होता है वैसा कच्छके शहरोंमें तथा गाँवोंमें अन्यत्र भी होता है। परन्तु माण्डवी बन्दरगाह है; वहाँके लोग अपेक्षाकृत अधिक साहसिक और सयाने माने जाते हैं, उनके पास धन है इसीसे उनका दोष ज्यादा बड़ा माना जाना चाहिए। राज्यकी मदद मिले या न मिले, परन्तु लोगोंको नगरका आवश्यक सुधार तुरन्त कर लेना चाहिए। शौचादि-के नियमोंमें माहिर लोगोंकी मदद लेकर नागरिकोंको निजी और सार्वजनिक पाखाने बनवाने चाहिए। जातीय प्रमुखोंने अस्पृश्योंका तिरस्कार करनेमें जितनी दिलचस्पी ली है, माण्डवीकी गन्दगी दूर करनेमें उन्हें उसकी अपेक्षा ज्यादा दिलचस्पी दिखानी चाहिए। जो शौचादि नियमोंको भंगकर निर्धारित पाखानोंसे बाहर क्रियाएँ करें अथवा पाखानोंका दुरुपयोग करें, पंचोंको उन लोगोंका बहिष्कार करना चाहिए और ऐसा करके वे अपनी पंचकी हैसियतको ज्यादा सुशोभित कर सकते हैं। यह काम आसान और सस्ता है। केवल थोड़े उत्साहकी आवश्यकता है। माण्डवीमें समय-समयपर प्लेगका प्रकोप होता रहता है। जहाँ धरती माताका इतना अधिक अपमान होता हो वहाँ प्लेगका न होना ही आश्चर्यकी बात कही जायेगी। माण्डवीकी स्वाभाविक हवा तो

इतनी अच्छी है कि वहाँ प्लेग, हैजा आदि रोग होना सम्भव ही नहीं। लेकिन हम अपने हाथों उस हवाको दुर्गन्धित करते हैं। हमारे आरोग्यके साथ अस्पृश्यता निवारणका निकटका सम्बन्ध है, यह बात समझदार पाठक मेरे कहे बिना समझ सकते हैं।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २२-११-१९२५

२५२. भाषण : विद्यार्थियोंकी सभा, अहमदाबादमें

२२ नवम्बर, १९२५

आज दोपहर बाद गांधीजीने अहमदाबादके छात्रों द्वारा आयोजित युवक सप्ताहका उद्घाटन किया। विद्यार्थियोंके सामने बोलते हुए उन्होंने कहा कि जब-कभी मैं आराम करनेके खयालसे अहमदाबाद आया हूँ, लोग मुझे औपचारिक सार्वजनिक समारोहोंमें भाग लेनेके कष्टसे मुक्त रखते हैं। लेकिन, इस बार जब मुझसे यह कहा गया कि बीमार हो जानेके कारण श्री जयकर युवक सप्ताहका उद्घाटन नहीं कर सकेंगे, इसलिए उनके बदले यह काम मैं कर दूँ तो मैं खुशीसे इसके लिए तैयार हो गया। मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि इस समारोहका आयोजन करनेमें सरकारी कालेज और राष्ट्रीय कालेजके छात्रोंने परस्पर पूरा सहयोग किया है। इन दिनों मैं सब जगह चरखेकी ही बात करता हूँ, उसीपर मेरा जोर रहता है, लेकिन आपके सामने उसकी चर्चा नहीं करूँगा। इस समय तो मैं आपसे यही कहूँगा कि आप भंगियोंकी तरह अहमदाबादकी सड़कोंको साफ कीजिए।[1]

इधर आप लोगोंमें मुझे निराशाकी भावना दिखाई दे रही है, किन्तु मैं चाहता हूँ, आप आशावादी बनें। मैं आपसे त्याग और संयमकी अपेक्षा रखता हूँ। इनके बिना आपका आन्दोलन सफल नहीं हो पायेगा। अगर आपका लक्ष्य धर्मराज्य हो तो त्यागके बिना उसे प्राप्त करना असम्भव होगा। अगर इसके बिना आपको यह मिल भी गया तो उसे आप कायम नहीं रख सकेंगे। अगर आप सचमुच कुछ करना चाहते हों तो आपको आत्मोत्थान और राष्ट्रोत्थानके लिए काम करना चाहिए। आप प्रतिज्ञा कीजिए — शैतानको नहीं, ईश्वरको साक्षी मानकर प्रतिज्ञा कीजिए कि आप अपना हृदय शुद्ध बनायेंगे और अपना जीवन सादा और सहज रखेंगे। अगर आप यह करेंगे तो उसका मतलब होगा कि आपने सचमुच युवक सप्ताह मनाया। ईश्वर आपको इसके लिए बुद्धि और शक्ति प्रदान करे!

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, २३-११-१९२५

हिन्दू, २३-११-१९२५

१. यहाँतकका अंश बॉम्बे क्रॉनिकलसे लिया गया है और शेष हिन्दूसे।

परिशिष्ट

परिशिष्ट १

स्वराज्य या मृत्यु

मैं आपके २५ जूनके 'यंग इंडिया' में कुछ ऐसी वाते छपी देख रहा हूँ, जिनको समझनेमे मैं सर्वथा असमर्थ हूँ। पृष्ठ २१९ पर 'कूदनेको तत्पर,' शीर्षकसे मैं समझता हूँ कि आपने अपने पत्र-लेखकसे यह स्पष्ट रूपसे समझानेको कहा है कि "आप यह क्यों सोचते है कि हमे जवतक स्वराज्य नहीं मिलता, हम तवतक सूत नहीं कात सकते और खद्दर नही पहन सकते या अस्पृश्यता निवारण नहीं कर सकते या मुसलमानोंसे हमारी एकता नहीं हो सकती? अंग्रेजोके चले जानेसे हिन्दुओंको मुसलमानोंका या मुसलमानोंको हिन्दुओंका विश्वास करनेमें, या धर्मान्ध रूढ़िवादियोंकी आँखें खोलने और दलित वर्गोकी दशा सुधारनेमें या काहिल लोगोंको चरखा चलानेके लिए और विगड़ी हुई रुचिके लोगोंकी रुचि सुधारने और उन्हें पुनः खद्दर पहननेके लिए तैयार करनेमें किस तरह मदद मिल जायेगी? निश्चय ही यदि हम इस समय मुसीवतोंके दवावसे इन कामोंको नहीं कर सकते तो हम नाम-मात्रके स्वराज्यकी झूठी स्वतन्त्रताकी भावनासे आश्वस्त होनेपर तो उन्हें शायद करेंगे ही नहीं। यदि हम इन कार्योंको या इनमें से किसी कार्यको इस समय पूरा नही करते या पूरा करनेका प्रयत्न नहीं करते तो इसका कारण हमारी अनिच्छा, काहिली या इससे भी निकृष्ट किसी अन्य अवगुणके अतिरिक्त और कुछ नही है।"

मैं कह नही सकता कि पत्र-लेखक आपके इन प्रश्नोंका क्या जवाव देगा, लेकिन मैं सादर आपका ध्यान इस तरफ दिलाना चाहता हूँ कि आप जो इस वातपर जोर देते हैं कि खद्दर, हिन्दू-मुस्लिम-एकता और अस्पृश्यता निवारणके बिना स्वराज्य नहीं मिल सकता यह भी झूठी धारणाओंपर आधारित प्रतीत होता है। आपके पत्र-लेखकने जिस दूसरी वातपर जोर दिया है, उसमें भी कुछ सच्चाई मालूम देती है और उसके समर्थनमें मेरा यह कहना है:

(१) कताई और खद्दरका व्यवहार केवल स्वराज्यकी स्थापनाके बाद ही पूरी तरहसे प्रचलित होगा, उससे पहले नहीं क्योंकि:

सरकार प्रत्येक समाजका एक अविभाज्य अंग है। हर व्यक्ति हर क्षण उसकी मदद माँगता है। सरकारके उतने कार्यकालमें उसके अधीन सभी व्यक्तियोंके जीवन, सम्मान और सम्पत्तिका जिम्मा उसका होता है। कुछ लोगोंको सरकारसे अपने मामले अपने हकमें निपटवाने होते हैं, कुछको उपाधियाँ और सम्मान पाने होते हैं और कुछको पदोंपर अपनी नियुक्ति करानी होती है, आदि-आदि। हर व्यक्ति

केवल कुछ निश्चित समयतक और वह भी थोड़े समयतक सरकारकी मददके बिना काम चला सकता है, लेकिन कोई व्यक्ति एक लम्बे अरसेतक काम नहीं चला सकता है। देशमें हर जगह, खासकर मेरे जिलेमें, खद्दरका प्रयोग सरकार विरोधी भावनाका प्रतीक है। यह विद्रोहियोंकी पोशाक मानी जाती है। इसे विद्रोहियोंकी पोशाक माननेके सम्बन्धमें कोई कानून भले ही न हो लेकिन व्यवहारमें ऐसा ही है। आपको मालूम ही होगा कि इस देशमे कानून एक वात है और उसको अमलमें लाना दूसरी वात। हर कोई सरकारको रुष्ट करनेसे डरता है। तो फिर इन सब कारणोंके रहते हुए खद्दरका प्रयोग आम कैसे हो सकता है? केवल बहादुर और सिपाही-जैसे लोग ही खद्दर अपनायेंगे, आम जनता नहीं। इस प्रकार स्वराज्यसे पहले खद्दरका प्रयोग आम नहीं होगा। वस्तुतः खद्दरका प्रयोग आजकल एक अपराध है। इसपर आप शायद यह सवाल करेंगे कि जब लोग इतने कायर हैं कि खद्दर भी नहीं इस्तेमाल कर सकते, तो फिर वे संघर्ष करके सरकारका तख्ता कैसे उलट सकते हैं? महात्माजी, संसारमें कोई भी महान् घटना केवल दैवी शक्ति द्वारा घटित होती है और उसके कारणोंकी व्याख्या कर पाना मनुष्यके लिए असम्भव होता है। इतनी ताकतवर सरकारका तख्ता उलटनेका काम वस्तुतः दैवी शक्तियोंके द्वारा ही सम्पन्न होगा और बाहरी तौरपर एक महान् राष्ट्रव्यापी जोश द्वारा — ऐसा जोश जिसमें सभी लोग या कमसे-कम अधिकांश भारतीय लोग कुछ समयके लिए पागल रहेंगे। और इस तरहके महान् जोशके दौरान हर व्यक्ति इस उद्देश्य (सरकारको पलटने) के लिए कुछ समयतक बहुत उतावला, निर्भय और बहादुर हो सकेगा।

स्वराज्यके बाद खद्दरका प्रयोग आम हो जायेगा क्योंकि तब उसके इस्तेमाल करनेमें डरकी कोई गुंजाइश नहीं होगी। इसके अलावा लोगोंको खद्दर इस्तेमाल करनेके लिए प्रोत्साहित किया जायेगा और वे सरकार बनानेवाले राष्ट्रवादियोंका अनुग्रह भी प्राप्त करना चाहेंगे। इसी तरहकी प्रवृत्ति हम आजकल राष्ट्रवादियोंके अधीन जिला परिषदों और नगरपालिकाओंमें पाते हैं। इस सबके अलावा विदेशी वस्त्रोंके प्रयोगको अपराध घोषित करनेवाला कानून भी बनेगा, जैसा कि हर राष्ट्रने किया है और अब गृह-उद्योगोंको बढ़ावा देनेके लिए कर रहा है।

(२) स्वराज्यसे पहले कोई स्थायी हिन्दू-मुस्लिम एकता कायम नहीं हो सकती। उसके कारण निम्नलिखित हैं:

बचपनमें मुझे मेरे एक चाचाने एक कहानी सुनाई थी जो इस तरह है — "एक समयमें दो नौजवान थे जो बड़े जिगरी दोस्त थे। ऐसा लगता था कि मानो वे दो शरीर एक प्राण हों। उनके माता-पिता यह पसन्द नहीं करते थे और इनकी मैत्रीको तोड़नेकी ताकमें रहते थे। शायद उन्होंने डुगी पिटवाकर उस व्यक्तिको काफी इनाम देनेकी भी घोषणा करवाई जो उन मित्रोंकी मैत्री तुड़वा सके। एक बुढ़ियाने जिसे लोग 'कुटनी' कहते थे, यह काम हाथमें लिया। वह उन मित्रोंके पास गई और उनमें से एकको अलग बुलाया तथा दूसरे मित्रकी आँखोंके सामने ही अपना मुँह उसके

कानके पास ले जाकर ऐसा दिखावा किया मानो उससे कुछ कह रही हो, लेकिन कहा कुछ नहीं और चली गई। जब वह लौटकर अपने मित्रके पास गया तो उससे मित्रने पूछा कि बताओ उस औरतने तुमसे क्या कहा। वह बोला कि उसने तो कुछ भी नही कहा। दूसरे मित्रके मनमें सन्देह पैदा होना स्वाभाविक था। खुद अपनी आँखोंसे सब-कुछ देखते हुए उसके बारेमे कुछ भी न मालूम हो सकनेके कारण उसका सन्देह बढ़ता गया। कुछ समय बीतनेपर उनकी मित्रता टूट गई और उस औरतको इनाम मिल गया।"

ठीक इसी तरहसे, महात्माजी, आप कृपया तबतक हिन्दू-मुसलमानोंमें पूरी एकता-की आशा न कीजिए जबतक कि तीसरा पक्ष हर क्षण बराबर लोगोंको आपसमें लड़ाते रखनेकी कोशिश कर रहा है और सो भी न केवल देशके वरन् सारे ब्रिटिश साम्राज्यके सुलभ साधनों द्वारा कर रहा है, और यह जानते हुए कर रहा है कि उस पक्ष (सरकार)का अस्तित्व ही इस देशमें बसी कई जातियोंके पारस्परिक मनमुटाव और झगड़ेपर निर्भर है। आप स्वराज्य प्राप्तिके साधनके रूपमें हिन्दू-मुस्लिम एकताके लिए बहुत उत्सुक हैं, लेकिन अगर आप इसपर बार-बार विचार करें तो मेरा विश्वास है कि आप इसी नतीजेपर पहुँचेंगे कि सरकारको उलटने और स्वराज्यकी स्थापना करनेसे इस देशमें शान्ति कायम होगी और देशकी अनेक जातियोंमें एकता स्थापित होगी, न कि शान्ति और एकता द्वारा स्वराज्य मिलेगा। स्वराज्यसे पहले स्थायी एकता होना असम्भव है।

(३) इस देशमें स्वराज्यकी स्थापना होनेसे पहले अस्पृश्यता भी दूर नही की जा सकती है। कारण निम्नलिखित हैं:

देशकी भलाईके लिए किये जानेवाले हरएक कार्यका वर्तमान सरकार और उसके उकसानेपर उसके भारतीय मित्र भी विरोध करते हैं। अस्पृश्यता निवारण क्योंकि देशकी भलाईका काम है, इसीलिए सरकार उसमें रुकावट डालती रही है और डालती रहेगी। आप एक सुधारक हैं। आपके अनुयायियोंको त्रावणकोर-वाइकोममें सरकारने बहुत तंग किया। अगर आप यह चाहें कि किसी हिन्दू मन्दिरमें अस्पृश्योंको कुछ हक और सुविधाएँ दी जायें तो वहाँके हिन्दू-समाजके कट्टर लोग इसका विरोध करेंगे, लेकिन क्या यह सच नहीं है कि यह सरकार अस्पृश्योंके खिलाफ उन कट्टर लोगोंकी मदद करने आ जाती है और आगे भी आयेगी? तब फिर जबतक आप इस सरकारको नही हटाते, इस मामलेमें आप कैसे सफल हो सकते हैं? अभी तो महात्माजी, इस देशमे विद्यमान हर बुराईके लिए केवल यह सरकार ही जिम्मेदार है। आपके इस अस्पृश्यता निवारण कार्यक्रममें अधिकांश भारतीय लोग आपका साथ दे रहे हैं, लेकिन सिर्फ इस सरकारकी वजहसे ही वह पूरा नही हो पाता है।

अपने त्रिसूत्री कार्यक्रमके सम्बन्धमें आप जो-कुछ कहते हैं, उसमें बहुत सच्चाई है, लेकिन मैं सादर निवेदन करता हूँ कि मानवीय क्रिया-कलापोंके व्यावहारिक पक्षको बहुत हदतक आपने ध्यानमें नही रखा है। देश और आपके सिपाही हम सब लोग

ईमानदारीसे आपके आदेशोंको जहाँतक पालन कर सकते हैं, कर रहे हैं। लेकिन मेरी आपसे विनती है कि कृपया पहले आप स्वराज्यकी बात सोचें और बादमें फिर किसी और चीजकी। केवल स्वराज्यसे ही राष्ट्रकी सभी समस्याएँ सुलझेंगी। आपने पहले ही घोषणा कर दी है कि यदि लोग यह साल पूरा होनेसे पहले खद्दर कार्यक्रम पूरा नहीं कर पाते तो आप देशके सामने ऐसा कार्यक्रम रखेंगे जिसको अपनानेसे या तो स्वराज्य मिलेगा या सभी देशभक्तोंको मौत। मैं समझता हूँ कि आपको अपनी यह बात याद होगी। कृपया वह कार्यक्रम जल्दी प्रस्तुत कीजिए, नहीं तो सब कामोंमें ढिलाई आ जायेगी। वह समय अब लगभग आ ही गया है कि आप अपना वह कार्यक्रम प्रकाशित कर दें और स्वराज्य हासिल करने या मर-मिटनेके लिए राष्ट्रका आह्वान करें।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २७-८-१९२५

परिशिष्ट २

अ० भा० कां० कमेटीके प्रस्ताव

मताधिकार

क. इस बातपर ध्यान रखते हुए कि कांग्रेसके काफी बड़े हिस्सेकी माँग है कि मताधिकारमें संशोधन किया जाये और आम राय है कि वर्तमान स्थितिको देखते हुए मताधिकार विस्तृत किया जाये। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी निश्चय करती है कि कांग्रेस संविधानकी धारा ७ रद्द कर दी जाये और उसके स्थानपर निम्नलिखित धारा रखी जाये :

अनुच्छेद ७ (१) ऐसा हरएक व्यक्ति जो अनुच्छेद ४ के अधीन अयोग्य नहीं है और हर साल ४ आना चन्दा पेशगी अदा करता है या अपने हाथका कता एक-सा २,००० गज सूत देता है, प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीके नियन्त्रणमें चलनेवाली किसी भी प्राथमिक संस्थाका सदस्य बननेका हकदार होगा, लेकिन कोई भी व्यक्ति एक ही समयमें एक साथ एक जैसी दो कांग्रेसी संस्थाओंका सदस्य नहीं होगा।

(२) उप-धारा (१)में उल्लिखित सूतका चन्दा कातनेवालेको सीधे सचिव अखिल भारतीय चरखा संघके पास या इस सम्बन्धमें सचिव द्वारा नामजद किये गये किसी व्यक्तिके पास भेजना होगा और अखिल भारतीय चरखा संघके सचिवकी ओरसे इस आशयका प्रमाणपत्र मिलनेपर कि उसे प्रमाणपत्र पानेवालेका सालाना चन्देका २,००० गज एक-सा कता हुआ सूत मिल गया है, वह प्रमाणपत्र पानेवाला उप-धारा (१)में उल्लिखित सदस्यताका हकदार होगा, बशर्ते कि अखिल भारतीय चरखा संघके ब्यौरे बिलकुल सही हैं, इसकी जाँच करनेके लिए अ० भा० कां० कमेटी या प्रा० कां० कमेटी या उसके अधीन किसी उप-समितिको अखिल भारतीय चरखा संघ या उसकी अधीनस्थ किसी संस्थाका हिसाब-किताब, माल व पुर्जियाँ जाँच सकनेका हक

होगा और यह भी कि जाँच करनेवाली संस्था द्वारा जाँचे गये हिसाब-किताब, माल व बीजक (वाउचरों) में कोई गलती या भूल पानेपर, जिन व्यक्तियोंकी सदस्यतासे सम्बन्धित हिसाब-किताबकी जाँच हुई होगी, अखिल भारतीय चरखा संघ द्वारा जारी किये गये उनके प्रमाणपत्र रद्द घोषित कर दिये जायेंगे; लेकिन अखिल भारतीय चरखा संघको या इस तरह सदस्यतासे निर्योग्य किये गये व्यक्तिको कार्य समितिसे अपील करनेका अधिकार होगा। कांग्रेसकी सदस्यताके लिए कातनेकी इच्छा रखनेवाले हर स्त्री अथवा पुरुषको उचित जमानतपर कातनेके लिए रुई दी जाये।

(३) सदस्यताके सूतकी गिनती पहली जनवरीसे ३१ दिसम्बरतक की मानी जायेगी और सालके मध्यमें शरीक होनेवाले सदस्योंके चन्देमें कोई कमी नहीं की जायेगी।

(४) कोई भी व्यक्ति जिसने उप-धारा (१) की शर्तें पूरी नहीं की हैं, या जो राजनैतिक और कांग्रेसी आयोजनोंमें या कांग्रेसका काम करते समय हाथका कता बुना खद्दर नहीं पहनता है, वह किसी भी समिति या उप-समिति या किसी कांग्रेसी संस्थाके प्रतिनिधियोंके चुनावमें वोट देनेका अथवा प्रतिनिधि चुने जानेका और कांग्रेसकी किसी बैठकमें या किसी कांग्रेसी संस्था या उसकी किसी समिति या उप-समितिमें हिस्सा लेनेका अधिकारी नहीं होगा। कांग्रेस कांग्रेसियोंसे यह अपेक्षा रखती है कि वे अन्य सभी अवसरोंपर भी खद्दर पहनेंगे और वे किसी भी हालतमें विदेशी वस्त्र नहीं पहनेंगे और न प्रयोगमें लायेंगे।

(५) सालके अन्तमें विद्यमान सभी सदस्य ३१ जनवरीतक सदस्य बने रह सकेंगे, भले ही उन्होंने चाहे नये सालका अपना चन्दा अदा न किया हो।

व्यावृत्ति खण्ड: उप-धारा (१) का असर उन लोगोंपर नहीं होगा जो रद्द किये गये अनुच्छेदके अधीन पहले ही से सदस्य पंजीयित हो चुके हों बशर्ते कि उनकी सदस्यता अन्यथा नियमानुकूल हो और यह भी कि जो लोग सितम्बर १९२५ तक सूतका चन्दा, चाहे खुदका कता सूत हो या किसीके भी हाथका कता, दे चुके हों, वे चालू वर्षभर सदस्य रहेंगे, भले ही फिर वे और सूत न दें।

ख. जबकि कांग्रेसने बेलगाँवके अपने ३९वें अधिवेशनमें एक तरफ महात्मा गांधी और दूसरी तरफ स्वराज्य दलकी तरफसे देशबन्धु चित्तरंजन दास और पण्डित मोतीलाल नेहरूके बीच हुए एक समझौतेको स्वीकृति प्रदान की थी जिसके अनुसार कांग्रेसकी गतिविधि उक्त समझौतेमें उल्लिखित रचनात्मक कार्यक्रमतक सीमित कर दी गई थी और यह व्यवस्था रखी गई थी कि "केन्द्रीय तथा प्रान्तीय विधान सभाओंसे सम्बन्धित कार्य कांग्रेसकी तरफसे स्वराज्य दलको और वह भी कांग्रेस संगठनके अभिन्न अंगकी हैसियतसे चलाना चाहिए और ऐसे कार्योंके लिए स्वराज्य दलको अपने नियम बनाने चाहिए और अपने कोषकी व्यवस्था करनी चाहिए।" और:

जबकि बादकी घटनाओंने दिखा दिया है कि देशके सामने जो बदली हुई परिस्थितियाँ हैं, उनमें यह प्रतिबन्ध जारी नहीं रहना चाहिए और अबसे कांग्रेसको ही प्रमुख राजनीतिक संस्था होना चाहिए;

यह निश्चय किया जाता है कि जितना भी राजनैतिक कार्य देशके हितमें जरूरी हो, उसे कांग्रेस हाथमें ले और चलाये और इसके लिए वह कांग्रेसकी सारी मशीनरी और कोषको काममें लाये, सिवाय ऐसे कोषों और सम्पत्तिके जो किसी विशेष कामके लिए निर्धारित हैं और ऐसे कोष व सम्पत्ति जो अखिल भारतीय खादी मण्डल और प्रान्तीय खादी मण्डलोंकी है और जो महात्मा गांधी द्वारा शुरू किये जा रहे कांग्रेस संगठनके एक अभिन्न अंगकी तरह अखिल भारतीय चरखा संघको मौजूदा सभी वित्तीय देन-दारियोंके सहित सौंप दिये जायेंगे, लेकिन चरखा संघका स्वतन्त्र अस्तित्व होगा और अपने उद्देश्यकी पूर्तिके लिए उसे इन अन्य कोषोंको व्यवहारमें लानेके पूरे अधिकार होंगे;

बशर्ते कि भारतीय तथा प्रान्तीय विधान सभाओंमें काम स्वराज्य दल द्वारा निर्धारित उस नीति और कार्यक्रमके अनुसार चलाया जायेगा जो दलके बनाये हुए अपने संविधान और उसके अन्तर्गत ऐसे नियमोंके अधीन होगा जिसमें कि कांग्रेस समय-समयपर ऐसे सुधार कर सकेगी जिन्हे उक्त नीतिको अमलमें लानेके लिए जरूरी समझेगी।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १-१०-१९२५

परिशिष्ट ३

यूरोपसे

केवल भारतने ही नहीं, वरन् शेष संसारने भी सत्याग्रह और स्वदेशीका आपका सन्देश सुना है। यूरोपमें काफी बड़ी संख्यामें नवयुवक आपके सिद्धान्तमें आस्था रखते हैं। वे उसमें राजनीतिक मामलोंमें एक नया दृष्टिकोण कार्यान्वित होता हुआ देख रहे हैं — ऐसा दृष्टिकोण जिसकी वे अबतक केवल कल्पना ही कर पाये थे।

लेकिन जिन नवयुवकोंको आपके सन्देशकी सच्चाईमें विश्वास है, उनमें बहुतेरे ऐसे हैं कि आप जो अपेक्षाएँ मानवसे रखते हैं, उनमें से कुछ अपेक्षाओंको वे गलत समझते हैं और उनसे सहमत नहीं हो पाते, उन्हीं की ओरसे यह पत्र लिखा गया है।

एक प्रश्नके उत्तरमें आपने २१ मार्चको कहा था कि सत्याग्रह पूर्ण अहिंसाकी अपेक्षा रखता है, यहाँतक कि बलात्कारका खतरा होनेपर भी किसी स्त्रीको हिंसा द्वारा अपना बचाव नहीं करना चाहिए। दूसरी ओर यह भी विदित ही है कि आपने अंग्रेज-सरकार द्वारा जनरल डायरको दण्ड दिये जानेकी सिफारिश की थी, जिससे यह जाहिर होता है कि आप हिंसाके जरिये कानूनको प्रत्याभूत करनेकी जरूरत समझते हैं। इस सबसे मैं केवल यही निष्कर्ष निकाल सकता हूँ कि आप मृत्युदण्डपर भी आपत्ति नहीं करते हैं और इसलिए सामान्यतया प्राण-हरणको भी निन्दनीय नहीं समझते हैं। आप जीवनका मूल्य इतना कम आँकते हैं कि आप हजारों भारतीयोंको

सत्याग्रहके लिए अपना जीवन अर्पित करनेकी अनुमति दे देते हैं और निस्सन्देह आप यह तो जानते ही हैं कि मानव-जीवनमें नाममात्रका भी हस्तक्षेप — यथा जेल-यात्रा — मुख्यतः उसी सिद्धांतपर आधारित है जिसपर सबसे प्रबल हस्तक्षेप अर्थात् प्राण-हरण है, क्योंकि ऐसे प्रत्येक मामलेमे लोग बाहरी दबावके कारण अपने धर्मसे च्युत होते हैं। जो व्यक्ति तर्क-सम्मत बुद्धिसे विचार करता है, जानता है कि वह एक ही सिद्धान्त है जो उसके लिये कुछ दिनोंकी कैदका या उसके मृत्युदण्डका कारण है और दोनोंमें अन्तर केवल हस्तक्षेपकी मात्रामें है, प्रकारमें नहीं। वह यह भी जानता है कि जो व्यक्ति दण्ड देनेका हिमायती है, उसे हत्या करनेमे भी संकोच नही होना चाहिए।

असहयोगमे आप न केवल एक आदर्श, वरन् भारतकी आजादीका निष्कंटक और छोटा रास्ता भी देखते हैं — ऐसा रास्ता जो सिर्फ वही सम्भव है जहाँ एक समूची जनताको ऐसी सरकारके विरुद्ध विद्रोह करना हो जिसके पास शस्त्रबल हो। लेकिन जब एक पूरा राज्य दूसरे राज्यसे अपने अधिकार पाना चाहता है, तब वहाँ असहयोगका सिद्धान्त असमर्थ होता है, इसके लिए कोई अन्य राज्य उक्त राज्यके साथ दूसरे राज्योंका एक मित्रगुट बना सकता है, जबकि कुछ अन्य राज्य निष्पक्ष बने रह सकते हैं। जबतक एक ऐसा सच्चा राष्ट्रसंघ नहीं बनता जिसमें हर राज्यका योग हो, तबतक असहयोग सच्ची ताकत नही बन सकता, क्योंकि कोई भी राज्य अन्य सभी राज्योंसे अलग नहीं रह सकता। इसीलिए हम राष्ट्र-संघके लिए प्रयत्नशील हैं। और इसी कारणसे हम एक मजबूत पुलिस शक्ति बनाये रखनेका प्रयत्न करते हैं, कि कहीं आन्तरिक विद्रोह और अव्यवस्था सारी विदेशनीतिको असम्भव न बना दे। इसीलिए हम समझते हैं कि अन्य सरकारें वही काम कर रही हैं जिसे करनेसे हमें उन्होंने मना किया — याने कि कहीं शत्रु हमला करें, इसके लिए अपनेको शस्त्रोंसे लेस कर रही हैं। फिलहाल वे ऐसा करनेको मजबूर हैं और यदि हम भी चाहते हों कि हम शत्रुओंसे सतत परेशान न किये जायें, तो हमें भी सचमुच वही करना चाहिए। हम आशा करते हैं कि आप हमारे इस दृष्टिकोणको समझेंगे। यदि आप हमारी बात समझे तो इस पत्रके जवाबमें आप वैसा कहें; हम आपके बहुत आभारी होंगे; क्योंकि यूरोपके नवयुवकोंके लिए इन प्रश्नोंके प्रति आपके सही रुखको समझना जरूरी है। लेकिन कृपया आप यह न समझें कि हम यह चाहते हैं कि आप अपने सिद्धान्तकी एक मुख्य चीज सत्याग्रहको शपथपूर्वक छोड़ दें।

लेकिन हम सत्याग्रहको पूर्ण अहिंसाके भीतर नही पाते; वैसा अहिंसक सत्याग्रह कभी कहीं भी नही किया गया है। न तो आपने ही किया और न स्वय ईसामसीहने भी किया, जिन्होंने सूदखोरोंको मन्दिरसे बाहर खदेड़ दिया था। हमारे लिये सत्याग्रह भाईचारेकी भावनाकी और त्यागकी सहज निष्कपट प्रवृत्ति है और आप भारतीय जनताको साथ लिये इतने सुन्दर ढँगसे जिसका परिचय हमें करा रहे हैं; तथा हम आशा करते हैं कि हम भी वैसी मानसिक स्थितिमें विकास करेंगे, क्योंकि यह तो माना ही जा चुका है कि एक तरीका बुरा हो सकता है, लेकिन एक समूचा वर्ग या समूचा जनसमूह कभी दुष्ट नहीं हो सकता है (इसके बारेमें आपने १३ जुलाई १९२१को

लिखा था) और यह भी कि दुष्टताको विना सोचे आँख मूँदकर संरक्षण देनेवाले लोगोंपर दया ही आनी चाहिए, उनसे घृणा नहीं करनी चाहिए। जो लोग इस बातको समझ गये हैं वे सारे मनुष्योंमें आपसी भाईचारेके नये रास्तेपर पहला कदम रख रहे हैं और यह रास्ता उन्हें अपने लक्ष्य, सत्यकी विजय और सत्याग्रहतक ले जायेगा।

हमारा आपसे निवेदन है कि अपने जवाबमें आप हमें जिस ढँगसे हम उचित समझें उसी ढँगसे अपने देशके लिए संघर्ष करनेकी सलाह-भर नहीं देंगे, बल्कि हम यह भी जानना चाहेंगे कि आप क्या उचित समझते हैं और विशेष रूपसे यह कि आप उस पूर्ण अहिंसाको कैसे उचित बताते हैं जो हमारी समझमें दुष्टताके विरुद्ध सब तरहके सच्चे संघर्षका एक तरहसे त्याग कर देती है और इसीलिए जो स्वयं में बुरी है — इसी तरह जैसे कि हम उस पुलिसवालेको दुष्ट ही कहेंगे जो किसी अपराधीको बिना दण्ड पाये बच जाने देता है।

हमारा विश्वास है कि सबसे पहले तो हमें अपने धर्मका अनुसरण करना चाहिए और इससे भी पूर्व हमें वैसा जीवन जीना चाहिए जो ईश्वरने हमारे लिये गढा है, लेकिन हमें इस अधिकार और कर्त्तव्यका भार भी सौंपा गया है कि हम अपने साथियों-के जीवनमें जब वे हमसे वैसा करनेको कहें, हस्तक्षेप करें, या तब जब हमें उस हस्तक्षेपमें समस्त विश्वके लिए होनेवाली किसी बुराईसे संघर्ष करनेका उपाय दिखाई दे। हमारा मत है कि अन्यथा हस्तक्षेप करना उचित नहीं है, क्योंकि केवल ईश्वर ही मनुष्योंके हृदयकी सारी बात समझ सकता है और यह फैसला कर सकता है कि मनुष्योंके लिए क्या सही रास्ता है। और हमारा विचार है कि इससे बड़ा कोई धर्मकी मर्यादा भंग करनेवाला कार्य नहीं हो सकता कि ईश्वरका स्थान हथिया लिया जाये; और इस धर्म मर्यादा-भंगका दोषी हम अंग्रेजोंको मानते हैं क्योंकि समस्त विश्वमें सर्वत्र लोगोंके जीवनमें हस्तक्षेप करना उनका मिशन मालूम देता है।

इसी कारणसे हमें यह समझमें नहीं आता कि आप विवाहित लोगोंको पारस्परिक समझौतेके बिना एक-दूसरेके वर्जनकी सिफारिश कैसे करते हैं, क्योंकि विवाह द्वारा दिये गये अधिकारोंमें ऐसा हस्तक्षेप मनुष्यको अपराधकी दिशामें ले जा सकता है। ऐसे मामलोंमें तो आपको तलाककी सलाह देनी चाहिए थी।

कृपया हमारे इन प्रश्नोंका उत्तर दीजिए। आपने जीवनकी जो रूपरेखा हमें दी है, उसे पाकर हम इतने प्रसन्न हैं कि हमें आपके उस स्तरके योग्य जीवन जीनेका सही रास्ता खूब अच्छी तरह समझनेकी बड़ी ख्वाहिश है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ८-१०-१९२५

परिशिष्ट ४

यूरोपीय सभ्यता

यूरोप अपनी सभ्यता, अपनी ईसाई सभ्यताकी डींग मारता है।

समस्त विश्वमें सर्वत्र श्वेत-जातिकी विजयिनी गति आजका प्रत्यय वचन है।

जातिकी विजयिनी गति, — यह सच है। परन्तु क्या वह सभ्यता, मानवता और ईसाई धर्मकी भी है? न्याय अपना मुख छिपा लेता है और आँसू बहाने लगता है।

क्या आप जातीय विद्वेष और अमानवताका नरक देखेंगे? तो आप यूरोप जाइए।

चीनमें ईसाई राष्ट्रोंकी सामूहिक नीतिको ही देखिए। पहला काम: यूरोपीय मुनाफाखोरों द्वारा युगोंसे निर्लज्जतापूर्वक जबरन् धनका अपहरण। दूसरा काम: क्रोधमें भड़क उठे वतनियों द्वारा बदलेमें एक जर्मन राजदूतकी हत्या। तीसरा काम: यूरोप अपना 'हूणी धर्मयुद्ध' जर्मन नेतृत्वमें शुरू करता है और उसी प्रत्ययवचनकी भावनामें करता है जिसपर 'सिम्पली सित्तीभरु' व्यंग्य-पत्रने एक जर्मन "आफिसरके काल्पनिक भाषणमें व्यंग्य किया था: अब मैं ईसामसीहके धार्मिक सिद्धान्तोंके साहसपूर्ण प्रसारण और चीनी सुअरों — कुत्तों — को विजयपूर्वक पद-दलित करनेके लिए अपनी शुभ-कामनाएँ समर्पित करता हूँ।"

चीनियोंने हमें 'लाल बालोंवाले बर्बर' या 'लाल बालोंवाले पिशाच' ठीक ही कहा है।

अब हम यूरोपीय होमोसेपियनोंकी कुछ किस्मोंको देखें।

इटालियनोंका नाम सम्मानपूर्वक लेने योग्य हो सकता है क्योंकि ४०० ई० पश्चात्के आसपास ईसाई धर्मने उनसे उनका अपना जंगली जानवरोंका अमानुषिक ढंगसे शिकार करनेका प्रलोभन छुड़वा दिया था। रोमन लोगोंने कितनी अनिच्छापूर्वक अपना यह सर्कसके खेलका आनन्द त्यागा, यह बात एक विचित्र आख्यायिकासे मालूम होती है। एक पादरीको ईसाई-धर्ममें आये हुए लोगोंको सर्कससे दूर रख पाना कठिन प्रतीत हुआ। तब उसने कहा 'प्यारे ईसाइयो! तुम्हें इन खूनी और जंगली खेलोंसे दूर ही रहना चाहिए। तब इसके इनाममें तुम आशा कर सकते हो कि स्वर्गमें शायद एक ऐसा झरोखा झाँकनेके लिए हो जिसमे से तुम इन दण्डित पापियोंको नरककी शाश्वत ज्वालामें पड़े देख सको!' सचमुच कितना सुन्दर और उत्कृष्ट ईसाई विचार है!

नितान्त ईसाई स्पेनिश लोगोंके राष्ट्रकी खूबियोंके स्तरका बखान करनेके लिए इतना ही कहना काफी है कि आज दिनतक भी स्पेन राष्ट्रका प्रिय खेल साँड़की लड़ाई है। साँड़को पछाड़नेवाला व्यक्ति — जानवरोंका क्रूर उत्पीड़क — राष्ट्र-नायक माना जाता है।

फ्रांसने शिकार खेलना जबरन् लाजिमी बना दिया है।

इंग्लैंड उसी उत्तम खेलको अपनाये हुए है। ईसाइयोके शान्ति और दानके पर्व क्रिसमसके उपलक्षमें प्रकाशित सचित्र समाचारपत्रोकी तरफ देखिए। डेन्मार्कमे एक रात्रिभोजमें एक डेनिश महाशयने यों ही एक अंग्रेज महिलासे कह दिया कि मैंने एक लोमड़ी गोलीसे मार दी थी। वह तुरन्त उसके बाजू पकड़कर चीख पड़ी—हे भगवान्। ऐसा मत कहिये कि लोमड़ी गोलीसे मार दी। इसके बाद उस महिलाने घृणासे उसकी तरफ पीठकर ली,—क्योकि एक भद्रपुरुषके लिए यह शोभनीय नही कि वह जानवरको तकलीफ दिये बिना मारे। एक डेनिश पादरीने एक बार लाल समुद्र पर यात्रा करते समय आदिवासियोको सिक्कोके लिए जहाजसे समुद्रमें गोता लगाते देखा। लेकिन अंग्रेज औरतोंको उन्हें जहाजकी छतसे बाहर कूदते देखनेमे सन्तोष नही हो रहा था, उन्होंने उनको मस्तूलकी चोटीसे कूदनेका हुक्म दिया ताकि वह दृश्य और भी सनसनीखेज हो। पिछली शताब्दियोंमें अफीम-युद्ध और आयरलैंडके साथ बरताव अंग्रेजोंकी नैतिकताके अन्य प्रमाण हैं। इग्लैंडके लोगोने अनिवार्य भरतीका विरोध किया जिसके परिणामस्वरूप सौभाग्यसे तोपोंके लिए सिपाहियोंका जबरन् बलि-भोग टल गया। लेकिन विश्व-युद्धमें भारतीय स्वयसेवकोंको उदारता-पूर्वक दिये गये वायदेका पुरस्कार क्या मिला? यहाँ अमृतसरका उल्लेख-मात्र काफी होगा।

कम महत्त्ववाले राष्ट्रोके योजनाबद्ध दमनकी अत्यन्त पाशविक 'स्वामियोकी नैतिकताका' का बोल्शेविज्मसे पूर्व जर्मनीने सृजन किया। १८९५ की पान-जर्मन-योजना 'पूरे जर्मनों' को वोट देनेका, ससदों और अन्य पदोके लिए निर्वाचित होनेका और जमीन-जायदाद खरीदनेका विशेषाधिकार देती है। निम्न कोटिका शारीरिक श्रम करने-वाले लोगोंके रूपमें विदेशियोंको अपने देशमें वे खुशीसे बर्दाश्त कर लेते हैं। एक बार एक जर्मन अस्पतालको देखने आये। एक डेनिश सर्जन (शल्यचिकित्सक)ने एक शरीरसे बदलकर दूसरे शरीरमें जीवित शिरायें लगानेका काम देखा। जब उसने आश्चर्यसे पूछा कि इसके लिए पर्याप्त शिरायें कैसे मुहैया की जा सकेगी, तो जर्मन प्रोफेसरने जवाब दिया कि हमारे पास काफी पौलेण्डके लोग हैं। १९१२के डेलब्रेक कानूनने सन्देह न करनेवाले दूसरे राष्ट्रोंकी प्रामाणिक तौरपर नागरिकता पा लेनेके बाद भी जर्मन प्रवासियोंको गुप्त रूपसे जर्मन साम्राज्यके नागरिक बने रह सकनेकी सुविधा दी,—पान-जर्मनिज्मके हजारो प्रच्छन्न एजेंट तैयार करनेका कितना सुन्दर एव उत्कृष्ट तरीका था। इस अनिवार्य भरतीसे जर्मन लोगोंको उनकी लड़ाईमें सेवा करनेके लिए कम महत्त्ववाले राष्ट्रोंके लाखो बेटे तोपोंकी अग्निके लिए हव्य-स्वरूप मुहैया हुए, जबकि इन विपद्ग्रस्त लोगोंके सम्बन्धियोंका घरोंमे अत्यन्त पाशविक ढँगसे दमन किया गया। इस प्रकार उत्तरी स्लेशविगके ६००० डेन्मार्क निवासी एक विदेशी और जघन्य उद्देश्यके लिए महायुद्धमें मौतके घाट उतार दिये गये। नागरिकोंकी जबरन् भरती द्वारा जर्मनोंने हजारों बेल्जियम निवासियोंको गुलामीमें बाँध दिया, इन बेचारोको कभी-कभी गोलियोंकी बौछारके क्षेत्रमें भी काम करनेको मजबूर किया जाता था।

बोल्शेविज्म अपने शासनकी सौभाग्यशाली नीवके लिए महान् जर्मन अधिकारियों-का ऋणी है। दुर्भाग्यवश झूठ और नृशसताके पान-जर्मन तरीके अभी व्यवहारमें लाये

जाते हैं और अपेक्षाकृत अधिक उग्र रूपमें भी। हम यहूदियों-जैसी कट्टरताका भी कुछ अंश देखते हैं जो कोरा पागलपन बन जाती है। यहाँ हम १९२२में प्रकाशित ए० सम्रूडनीके संग्रह 'टशेक्स उलिवाजेट' से एक बोल्शेविक कविताके भावोंको देखें: "आप प्रेमका राग गाना पसन्द करते हैं। मैं आपको खून, फाँसी और मृत्युके दूसरे गाने सिखाऊँगा। नील कमलकी भीनी सुवास काफी हो चुकी, मैं हत्याके फूल ज्यादा पसन्द करता हूँ। जो व्यक्ति अपने पड़ौसीको प्यार करता है उसे सूलीपर चढ़ाना सबसे बड़ा आनन्द है। एक आदमीके टुकड़े-टुकड़े करनेमें कितना मजा है। देखो वह डरसे कैसे काँपता है! जब जल्लाद उसका धीरे-धीरे गला घोंटता है, उसका तड़पना, ऐंठना देखो। किसीको जख्मी बनानेमें कितना मजा आता है। हमारे मृत्यु दण्डका आदेश वाक्य सुनो — 'एक रस्सा, एक गोली, एक दीवाल, गोली चलाओ — और कब्र तुम्हारी तकदीर है।'

यूरोपीय नैतिकताकी तीन बातोंपर जोर दिया गया है, याने कि मालिकोंकी नैतिकता, झूठ बोलनेकी नीति और हत्याकी नीति। यूरोपीय नैतिक स्तरको स्पष्ट करनेके लिए मैं १९१५में प्रोफेसर कियल बामगार्टनके कीलमें दिये गये भाषणको उद्धृत करता हूँ। (भाषण नार्डीट् शे एलीगेमिन जाइटुंग, १५ मई, १९१५ में छपा था)।

साधु प्रोफेसर कहता है कि ईसाका 'सर्मन आन द माउन्ट' (गिरि-प्रवचन) युद्धका बिलकुल बहिष्कार करता है। लेकिन यह नियम सिर्फ अकेले व्यक्तिके लिए है। 'सर्मन आन द माउन्ट'का आचरण सम्बन्धी तरीका हमारे राष्ट्रीय जीवनके स्तरसे अलग नैतिक जीवनके एक हिस्सेपर लागू होता है। अकेले व्यक्तिके लिए इसके नियम नहीं तोड़े जाते हैं, क्योंकि हम समझते हैं कि एक समयमें वही नियम हमारे राष्ट्रीय और सामाजिक जीवनके लिए साथ-साथ नियम नहीं होता। प्रो० बामगार्टन कहते हैं कि राज्यको ईश्वरने बनाया है और पूरी ताकतसे उसकी रक्षा की जानी चाहिए। एक महान् राष्ट्रकी यह विशेषता होती है कि वह अपने महान् उद्देश्योंको सफल बनानेके लिए नितान्त उग्र उपाय काममें लाता है; यहाँतक कि आक्रमणकारी युद्ध भी करता है।" "हम जर्मन लोग युद्धसे न केवल सहमति रखते हैं, वरन् नितान्त दुस्साहसके साथ उसका नेतृत्व भी करते हैं। इन दिनों जिसने प्रसन्नतासे तालियाँ बजाकर लूसीटेनियाके विनाशकी अभ्यर्थना करनेका और जर्मन शस्त्रास्त्रोंकी अदम्य शक्तिपर खुशियाँ मनानेका निश्चय नहीं कर लिया है वह असली जर्मन नहीं है।"

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ८-१०-१९२५

परिशिष्ट ५

चरखा-यज्ञ

लेखक: रवीन्द्रनाथ ठाकुर

आचार्य प्रफुल्लचन्द्र रायने छापेके अक्षरोंमें मुझे अपनी आलोचनाका लक्ष्य बनाया है क्योंकि मैं चरखा चलानेके मामलेमें उत्साह प्रदर्शित नही कर सका हूँ। लेकिन चूँकि मेरे प्रति निर्मम होना उनके लिए असम्भव है, अतएव उन्होंने मेरे लिये दण्डकी व्यवस्था करते हुए मेरी बदनामीमें भी आचार्य ब्रजेन्द्रनाथ सील जैसे प्रख्यात व्यक्तिको मेरे साथ रखा है। इससे आलोचनाकी पीड़ाका शमन हो गया है और मुझे इस ध्रुव मानवीय सत्यका भी एक नया प्रमाण मिला है कि हम कुछ व्यक्तियोंसे सहमत होते हैं तो कुछसे नहीं होते। इससे यही सिद्ध होता है कि परमात्माने मानव मनका सृजन करते हुए मकड़ी-मनोवृत्तिको अपने साँचेके रूपमें सामने नही रखा, जिसकी एक मात्र नियति एक-रसतासे अपना जाला बुनते जाना है और यह मानव-स्वभावपर अत्याचार है कि उसे जबरन् किसी एक ही सांचेमें ढाला जाये और उसे आकाररूप तथा उद्देश्यमें कोई एक ही स्तरकी वस्तु बना दिया जाये।

* * *

हमारे शास्त्रोंका कथन है कि दैवी शक्ति विविध रूपा है और इसी कारण सृष्टि-निर्माणमें विभिन्न तत्त्व कार्य करते हैं। मृत्युमें सभी तत्त्व एक ही में घुल जाते है क्योंकि केवल विशृंखलता ही एकरूप होती है। परमात्माने मनुष्यको वही बहु-विध शक्ति प्रदान की है, इसीलिए उसकी निर्मित सभ्यताओंमें विविधताकी दैवी-समृद्धि होती है। प्रभुका यही उद्देश्य होता है कि मनुष्य अपने लिए जिन समाजोंका निर्माण करे उनमें यह विविधता एकताकी मालामें मनकोंकी तरह गुँथी रहे। किन्तु हमारे सार्वजनिक जीवनके पीछे मनुष्यकी जो तुच्छ व्यवस्था-बुद्धि काम कर रही है वह अपने मनचीते परिणामोंकी प्राप्तिकी लालसासे प्रेरित होकर यह प्रयत्न करती है कि सभीको एकरूपताके लोंदेमें सान दिया जाये। इसीलिए दुनयवी कामकाजके क्षेत्रमें हम प्रायः बहुतसारे ऐसे समान-वर्दीधारी श्रमिकोंको देखते है, जो मानो यन्त्रके ढले हों, ऐसी कठपुतलियोंको पाते है जिन्हें सूत्रधार एक ही डोरसे नचा रहा है; और दूसरी ओर जहां कहीं मानवात्मा ठिठुर नहीं चुकी है, हमें इस ठोक-पीटकर तैयार की हुई एकरूपताके विरुद्ध सतत विद्रोहकी भावना भी देखनेको मिलती है।

यदि किसी देशमें हमें इस प्रकारके विद्रोहके चिह्न नहीं मिलते, यदि हम किसी देशके लोगोंको दास-भावसे किसी स्वामीके शरीर दण्डसे आतंकित होते या किसी गुरुके आदेशोंकी अन्ध-स्वीकृति द्वारा आत्मतुष्ट होकर धूलि-धूसरित होते देखते हैं, तो वास्तवमें हमें समझना चाहिए कि ऐसे देशको ऐसी स्थितिके लिए शोक मनानेका समय आ गया है।

हमारे देशमें एकरूपता लानेकी यह चिन्तनीय प्रक्रिया दीर्घकालसे चली आ रही है। प्रत्येक जातिके प्रत्येक व्यक्तिके लिए उसके द्वारा करणीय कर्म निर्धारित कर दिया गया है और उसको इस विचारके प्रति भी सम्मोहित कर दिया गया है कि वह चूंकि किसी दैवी आदेशसे बँधा हुआ है जिसे उसके पूर्व पुरुषोंने स्वीकार किया था, उस आदेशसे मुक्ति पानेका प्रयास उसके लिए पापपूर्ण होगा। चींटी-जीवनकी इस सामाजिक व्यवस्थाके अनुकरणसे छोटे-मोटे दैनन्दिन कर्त्तव्योंका पालन तो उसके लिए आसान हो जाता है परन्तु मनुष्यत्वकी स्थिति पा सकना विशेष-रूपसे कठिन हो जाता है। इससे दासवृत्ति वाले व्यक्तिके, जिसके लिए श्रम एक बोझ है, हाथ-पाँव तो कुशलतासे चलते हैं, लेकिन जो व्यक्ति कृती है और जिसका कार्य सृजन है, उसका मन भर जाता है। इस प्रकार भारतमें युगोंसे हमें केवल उसीकी आवृत्ति मिलती है जो बीत चुका है।

* * *

जब हम लोग इस सिद्धान्तको अपनी संस्थामें कार्यान्वित करनेके उपायोंपर विचार कर रहे थे तभी मुझे आयरलैंडके आदर्शवादी लेखक ए० ई० द्वारा लिखित पुस्तक 'द नेशनल बीइंग' (राष्ट्रीय व्यक्तित्व) देखनेको मिली। इस लेखककी कृतिमें काव्य और व्यावहारिक ज्ञानका ऐसा समन्वय है जो कम ही देखनेको मिलता है। उस पुस्तकमें मुझे सहकारी जीवनका महान् और वास्तविक चित्र देखनेको मिला, जिसका मैं स्वप्न देखा करता था। मेरे सामने यह बात बिलकुल साफ हो गई कि ऐसे जीवनके क्या विविध परिणाम निकल सकते हैं और मानव-जीवन कितना पूर्ण हो सकता है। मैं समझ सका कि पृथक्ता ही दासता है और एकता ही मुक्ति है, इस ठोस सत्यका जीवनके किसी भी स्तरपर कितना महत्त्व है। उपनिषद्में कहा गया है कि ब्रह्म विवेक है, ब्रह्म आत्मा है, परन्तु अन्न भी ब्रह्म है जिसका आशय यह है कि अन्न भी अनन्त सत्यका प्रतीक है और इसीलिए यदि हम सही मार्गपर अग्रसर हों तो उसके द्वारा भी हम एक महान् सत्यका साक्षात्कार कर सकते हैं।

* * *

सिद्धान्त या पद्धतिके किसी मामलेमें महात्मा गांधीसे मतभेद रखना मुझे बहुत ही अरुचिकर लगता है। यह बात नहीं कि किसी उच्चतर दृष्टिकोणसे यह कोई गलत बात है, लेकिन ऐसा करते हुए मेरा मन झिझकता है। कारण यह कि जिस व्यक्तिके प्रति मेरे मनमें इतना प्यार और आदर हो उससे किसी भी क्षेत्रमें सहयोग करनेसे बढ़कर और सुख क्या हो सकता है? महात्माजीके महान् नैतिक व्यक्तित्वसे अधिक अद्भुत मेरे लिए और क्या हो सकता है? उनके व्यक्तित्वमें हमें प्रभुने शक्तिका प्रोज्ज्वल तड़ित-प्रकाश दिया है। मेरी प्रार्थना है कि यह शक्ति भारतको अभिभूत न करके सामर्थ्य प्रदान करे। हमारे दृष्टिकोण और मनोवृत्तियोंमें अन्तरके कारण महात्माजी-की दृष्टिमें राममोहन रायका व्यक्तित्व सामान्य है जबकि मैं उनका आदर एक महान् व्यक्तित्वके रूपमें करता हूँ। इसी अन्तरके कारण मैं महात्माजीके कार्य-क्षेत्रको अपनी

आत्माकी भी पुकार मानकर स्वीकार नही कर पाता। इसका खेद मुझे सदा रहेगा; परन्तु यह प्रभुकी इच्छा है कि मनुष्यके प्रयासके पथ विविध हों, अन्यथा मनोवृत्तियोंमें यह अन्तर क्यों होते?

कितनी ही वार आदरकी मेरी व्यक्तिगत भावनाने मुझे बलपूर्वक प्रेरित किया है कि मैं महात्मा गांधीके चरखा-यज्ञका अनुयायी बन जाऊँ, लेकिन जब-जब ऐसा हुआ है, मेरे विवेक और मेरी अन्तरात्माने मुझे रोका है जिससे मैं चरखेको उससे अधिक ऊँचा स्थान न दूं जो उसका प्राप्य है और इस प्रकार सर्वतोमुखी पुनर्निर्माण कार्यसे सम्बन्वित अधिक महत्त्वपूर्ण कार्योंकी ओरसे अपना ध्यान अन्यत्र न मोड़ूं। मुझे विश्वास है कि स्वय महात्माजी अन्यथा न समझेंगे और मेरे प्रति वही सहिष्णुता दिखायेंगे, जो वे सदैव दिखाते रहे हैं। मैं यह भी मानता हूँ कि आचार्य राय मत-स्वातन्त्र्यका आदर करते हैं, भले ही वह मत प्रिय न हो। इसीलिए अपने ही प्रचारके उत्साहमें वह जानेपर यद्यपि वे मुझे कभी-कभी वुरा-भला कह सकते हैं, परन्तु मुझे इस वातपर सन्देह नही है कि उनके मनमें मेरे प्रति कोमल भावना वनी रहती है। जहाँतक मेरे देशवासियोंका, जनताका प्रश्न है, उन्हे अपने मनकी सहज धारामें उनके प्रति की गई सेवाओंको और हानिको भी डुवो देनेका अभ्यास है, अतएव यदि आज वे क्षमादान नही भी करते तो कल भुला अवश्य देंगे। यदि वे ऐसा न भी करे, यदि मेरे प्रति उनकी नाराजी स्थायी ही वनी रहती हो, तो जैसे आज आचार्य सील मेरे अपराधमें मेरे साथी है, वैसे ही कल मुझे अपने पक्षमें ऐसे व्यक्ति मिल सकते है जिन्हे उनके देशने ठुकरा दिया हो, लेकिन जिनके व्यक्तित्वकी आभासे प्रकट होता हो कि लौकिक अरुचिजन्य किसी भी वदनामीकी कालिमा कितनी अवास्तविक होती है।

[अंग्रेजीसे]

माडर्न रिव्यू, सितम्बर १९२५

परिशिष्ट ६

श्रेष्ठताका घुन

१. हमारी समितिका लक्ष्य हमारी जातिकी एकता और पुनरुज्जीवन है।

२. जहाँतक हम समझते हैं, आपका उद्देश्य त्रिमुखी है।

(क) खद्दर और चरखेका प्रचार-प्रसार।

(ख) हिन्दू-मुस्लिम एकता।

(ग) अस्पृश्यता-निवारण।

पहले दो उद्देश्य सभीके लिए समान हैं। हम आपके पास मुख्य रूपसे तीसरे उद्देश्यके लिए आये हैं और आपसे यह कहनेकी अनुमति चाहते हैं कि अस्पृश्यता किस प्रकार बंगालमें हिन्दुओंकी एकताके आड़े आ रही है।

३. बंगालमें हिन्दू-समाजको मुख्यतः दो वर्गोंमें बाँटा जा सकता है:—

(१) जल-आचरणीय (२) अनाचरणीय।

वर्ग (१) के अन्तर्गत निम्नलिखित आते हैं:—

ब्राह्मण
वैद्य
कायस्थ
नवशक (अर्थात् ९ या १० जातियाँ)

वर्ग (२) के अन्तर्गत आते हैं:—

वैश्यशाह
सुवर्णवणिक (सुनार)
सूत्रधार (बढ़ई)
जोगी (बुनकर)
शूंड़ी (शराब विक्रेता)
मछुए
भुईं माली (भंगी)
धोप (धोबी)
मुची या रेशी (चमड़ेका काम करनेवाले व ढोल आदि मढ़नेवाले)
कापालिक
नामशूद्र तथा अन्य

इनमें कुछको जनगणना अधिकारियोंने दलित वर्गोंमें वर्गीकृत किया है।

प्रथम समूहके प्रथम तीन वर्गके लोगोंका दावा है कि वे हिन्दू-समाजके शेष वर्गोंसे श्रेष्ठ हैं और न केवल वे उनके प्रति (विशेषतः वर्ग २ के लोगोंके प्रति) घृणाकी गहरी भावना रखते हैं, वरन् उनका विभिन्न प्रकारसे उत्पीड़न भी करते हैं, जैसे कि (१) सार्वजनिक मन्दिरोंमें पूजा या प्रवेशकी स्वतन्त्रता नहीं दी जाती (२) द्वितीय वर्गके विद्यार्थियोंके लिए मैस और छात्रावास सम्बन्धी कठिनाइयाँ (३) होटलों और मिष्टान्न भण्डारोंमें उनके प्रवेशपर आक्रोश।

बंगालमें जो लोग अस्पृश्यता-निवारणके आन्दोलनका नेतृत्व कर रहे हैं, वे हमारी रायमें सही तरीके नहीं अपना रहे हैं और इस दिशामें सन्तोषजनक प्रगति नहीं कर सके हैं।

१९२१ की जनगणनाके अनुसार बंगालकी कुल लगभग २,०९,४०,००० आबादीमें से ब्राह्मणोंकी संख्या १३,०९,००० अर्थात् १७ प्रतिशत, कायस्थोंकी १२,९७,००० अर्थात् १६ प्रतिशत और वैश्योंकी संख्या १,०३,००० अर्थात् १ प्रतिशत है। तीनोंकी संख्या इस प्रकार कुल लगभग २८,०९,००० है[1]।

१. ऐसा लगता है यहाँ गल्ती हो गई है। जोड़ २७,०९,००० होना चाहिये।

पूर्व बंगाल और सिलहटकी वैश्यशाह जाति, जो बंगालकी प्रमुख व्यवसायी जातियोंमें से एक है, मुख्यतः मैमनसिंह, पबना, बोगरा, राजशाही, फरीदपुर, ढाका, नोआखली, चटगाँव, टिपेरा और सिलहटके क्षेत्रोंमें रहती है और उसकी आबादी ३,६०,००० है, जो बगालकी कुल हिन्दू आबादीका ३½ प्रतिशत है।

वैश्यशाहोंमें प्रति हजार साक्षरता ३४२ है जबकि अन्य जातियोंमें इस प्रकार है :

वैद्य	६६२
ब्राह्मण	४८४
कायस्थ	४१३
सुवर्ण वणिक्	३८३
गंध वणिक्	३४४

अन्य आचरणीय वर्णोंमें साक्षरता इससे भी बहुत कम है। जो अनाचरणीय माने जाते हैं उनका तो कहना ही क्या।

हमारी जाति शिक्षण तथा धर्मार्थ संस्थाओं अर्थात् कालेज, हाईस्कूल और मिडिल स्कूल, धर्मार्थ दवाखाने और अस्पताल, तालाब, पक्के कुएँ आदिकी काफी सख्यामें स्थापनाकी दृष्टिसे तथा शैक्षणिक, धर्मार्थ और धार्मिक संस्थाओंको आर्थिक सहायता देनेके मामलेमें किसीसे पीछे नही है।

तौर-तरीके, रीति-रिवाज और आतिथ्यकी दृष्टिसे यह जाति किसी भी अन्य जातिसे कम नहीं। जहाँतक स्त्री-शिक्षाका प्रश्न है, यह जाति किसी भी तरहसे कम प्रगतिशील नही है।

यह सब-कुछ होते हुए भी हमारे साथ ऐसा व्यवहार किया जाता है मानो हम हिन्दू समाजके बाहर हों। अभीतक हिन्दू-समाजमें हमारे उचित स्थानको मान्यता देनेके लिए ईमानदारीके साथ कोई प्रयत्न नही किया गया हालाँकि हमारी जातिके सदस्य सभी राष्ट्रीय आन्दोलनोंमें भाग लेते रहे हैं। यदि इस जातिको सामाजिक भेदभाव और उससे उत्पन्न कठिनाइयोंका सामना न करना पड़ता तो वह और भी उपयोगी सिद्ध हो सकती थी।

यह जाति शूँडी लोगोंसे बिलकुल भिन्न है। इस बातका लाभ उठाते हुए कि शूँड़ी लोग भी शाहा उपनामका प्रयोग करते है, हिन्दू-समाजके संकीर्ण विचारोंवाले सदस्य हमारी समृद्धिसे डाह करनेके कारण, इस जातिको शूँड़ी (शराब विक्रेताओं) लोगोके वर्गमें शामिल करके इसे द्वेषवश और झूठ-मूठ कलकका टीका लगाते रहे हैं। परन्तु उपर्युक्त भ्रान्त और शरारतपूर्ण धारणाको दूर करनेमें हम काफी हदतक सफल हुए हैं और इतिहासके सहारे यह स्थापित कर सके हैं कि यह जाति वैश्य वर्णकी है और यह समय-समयपर उत्तर-पश्चिम भारतसे व्यापारके उद्देश्यसे आकर पूर्वी बंगाल और सिलहटके कुछ भागोंमें बसती रही हैं और जब ब्राह्मणवादका फिरसे उत्थान हुआ तो यह जाति अन्य जातियोंकी तरह बौद्ध प्रभावको आसानीसे नही छोड़ सकी, इसलिए उसे हिन्दू-समाजमें समुचित स्थान नही दिया गया और उसे घृणास्पद अवस्थामें छोड़ दिया गया।

अपनी दशा सुधारनेके लिए और समाजमें अपने उचित स्थानको मान्यता दिलानेके लिए हमने समितियाँ बनाई हैं जो काफी काम कर रही हैं।

इस जातिकी रायमें हिन्दुओंकी स्थितिको दृढ़ बनानेके लिए और अन्ततः हिन्दू-मुस्लिम एकताके लिए अस्पृश्यताका सम्पूर्ण निवारण आवश्यक है। महात्माजी, हम आपसे यह अनुरोध करना चाहते हैं कि अस्पृश्यताके सम्बन्धमें अपने सार्वजनिक भाषणोंमें आप बंगालके हिन्दू समाजकी इन विशिष्टताओंको, जिनके विषयमें हमने आपको मोटे तौरपर एक अन्दाज देनेका प्रयत्न किया है, अनदेखा नही करेंगे। हिन्दू-समाजके अभिजात-वर्गसे अपने संघर्षमें हम पददलितोंके उद्धारके लिए संघर्षशील एक जन्मजात योद्धाके नाते हम आपका परामर्श चाहते हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ५-११-१९२५

परिशिष्ट ७

अमेरिकामें कताई

यह क्रान्ति स्वाधीन लोगों द्वारा स्वतन्त्रताकी लड़ाई थी क्योंकि इन लोगोंमें प्रवर्तक साहस और शौर्य, विश्वास, धैर्य तथा लक्ष्य-भेदिताके साथ-साथ उनकी तैयारीकी मुख्य शक्ति यह थी कि प्रत्येक घर अपने लिये खाने-पीने, दवादारू, ईंधन, रोशनी, कपड़ा और मकानकी अपनी ही व्यवस्था करता था। यह बात बारूदसे कही अधिक प्रभावशाली थी।

इस सर्द मौसममें अगर हाथ करघा और चरखा, सन तथा भेड़ोंके बाड़े हर घरमें न होते, तो अमेरिकी सैनिक कड़ाकेकी सर्दीमें ठिठुर कर मर जाते।

घरोंमें ऊन और सनका उत्पादन होता था और उनकी कताई और बुनाई होती थी जिससे मोजे, दस्ताने, टोपियाँ और कम्बल बनते थे या कपड़ा तैयार होता था।

पेड़ोंका सफाया करने और ठूँठोंको उखाड़ने तथा बड़े-बड़े पत्थरोंको हटानेके कठिन परिश्रमके बाद सनके पौधे लगा दिये जाते थे। इस सम्पूर्ण कार्यमें इतनी शक्ति खर्च होती थी कि जितनी फुटबालके कई मैचोंमें खर्च होती है और लोगोंको कम संख्यामें चोट आदि सहनी पड़ती थी।

बच्चे भी इस काममें हिस्सा बँटाते थे क्योंकि उन्हें इन खेतोंकी निराई करनी पड़ती थी। जब पौधे उगने लगते थे तो उनके डँठल बहुत कोमल होते थे और बच्चोंको नंगे पाँवों हवाके रुखकी तरफ आगे बढ़ते रहकर काम करना पड़ता था, जिससे यदि कोई पौधे कुचले जाये तो गिरे हुए उन पौधोंको उठाकर हवा फिर यथास्थान खड़ा कर दे।

* * *

लड़कियोंको उन दिनों पैरोंकी मशीनपर काम करने का अभ्यास होता था और वे अक्सर उस समय, जबकि माता दही बिलोती होती थीं' लकड़ीका बना भारी पालना डुलाती रहती थी और उन्हें यह विचार प्रसन्नतासे भर देता था कि

रात आनेपर वह साफ रूमाल सिरपर बाँधकर अपने बालोको सँवारकर चरखा चलाती रहेगी और उसे उसके काममे सहायता भी मिलेगी क्योकि उसका प्रियतम सनकी कुटाईका काम समाप्त करके सूर्यास्तके बाद घर वापस लौट आयेगा। वह तबतक कताई करती रहेगी जबतक कि घड़ीका चक्का एक विशिष्ट और भाग्यसूचक क्षणका सकेत न दे दे, जबतक वह किसी गुच्छीमें एक खास संख्यामें धागोंकी गिनती न कर ले, जो अक्सर चालीस होती थी। तब कताई करनेवाली उस कामको रोक कर धागोमे गाँठ बाँध देती थी और उसका साथी दूसरी तरहकी गाँठ बाँधनेके लिए उन दुर्लभ क्षणोमें जो-कुछ भी कर सकता था, करता था, क्योंकि एक प्राचीन और विलक्षण गाथा-काव्यके अनुसार 'जब घडीके चक्केने ध्वनिकी, तो उसने प्रियतमा पालीको चूम लिया।'

जब आरम्भिक दिनोंमें कोई अमेरिकी स्त्री अपना दिन प्रसन्नतापूर्ण साहचर्यमें बिताना चाहती थी तो वह सूर्योदयके साथ उठती थी, घरका कामकाज पूरा करती थी और फिर घोडेपर सवार होकर, जिसके पीछे सनका चरखा बँधा होता था, अपने बच्चेको एक हाथसे सँभाले पडोसीके घरतक जाती थी और कभी-कभी तो अपने घरसे काफी दूरके स्थानोंमें भी जाया करती थी।

कताई प्रतियोगिताएँ

सन् १७५४में कताई प्रदर्शनियाँ की गईं और ऐसे अवसरोंपर जब कुमारियाँ अपने-अपने चरखे लेकर एकत्रित होती थी तो पादरी उन्हे उपदेश देते थे। इनमें से एक प्रवचनका वर्णन प्राचीन विषयोंके एक अध्येताने विलक्षण शब्दावलीमें किया है: बस्तोकी बहुत-सी सम्भ्रान्त महिलाएँ सूर्योदयके समय एक दिन अपना चरखा लेकर रेवरेड जेडीदिया जैवलके घर कताई प्रतियोगिताके एक स्तुत्य आयोजनमें शरीक होनेके लिए एकत्र हुई।

सूर्यास्तसे एक घटा पहले महिलाएँ घरमें कते कपड़ोंकी साफ-सुथरी पोशाक पहने आ जुटी और अमेरिकी पदार्थोसे तैयार किया गया सुन्दर और प्रचुर नाश्ता उनके लिए सजा दिया गया। इसके बाद महिलाओं और पुरुषोंकी उपस्थितिमें श्री जैवलने 'रोमन्स', १२-२ से एक बोधप्रद प्रवचन दिया: "कामकाजमें आलस्य-त्याग, मनमें उत्साह, प्रभुकी सेवामें तत्पर।"

न्यू इंग्लैंडमें गिरजाघर और देशभक्तिके विषय एक दूसरेसे कभी दूर नही होते थे और इसीलिए जब कताई करनेवाली महिलाएँ न्यू लन्दन, न्यूबरी, इप्सविच या बेवरलीमें एकत्र होती थी, तो उनके सम्मुख प्रसगोचित पाठोंका प्रवचन हुआ करता था। एक प्रिय अश था "विवेकशील सभी महिलाओंने हाथसे कताईकी" 'एक्सोडस', ३५-२५।

"सचमुच यह एक बड़ा ही मनोरम दृश्य होता था। कुछ कताई कर रही हैं, कुछ धागे लपेट रही हैं, कुछ कपासकी धुनाई कर रही हैं और कुछ सनके रेशे सुलझा रही हैं और साथ-साथ प्रवचन चल रहा है—" इन शब्दोंमें एक तत्कालीन लेखकने विवरण प्रस्तुत किया है।

× × ×

सन् १६४०में मैसाच्यूसैट्सकी और कनेक्टीकटकी अदालतोंने दो आदेश जारी किये जिनमें कहा गया था कि सनकी बुनाई की जानी चाहिए और यह जानकारी दी जानी चाहिए कि उपनिवेशोंके कौन लोग कताई और बुनाईमें कुशल हैं। यह आदेश भी दिया गया था कि लड़के-लड़कियोंको कताई सिखाई जाये और जो वस्त्र उपनिवेशमें पैदा की गई कपास या सनकी कताई और बुनाई द्वारा तैयार किया गया हो, उसके लिए पुरस्कारकी व्यवस्था की जाये।

प्रत्येक परिवारको आदेश दिया गया कि वह वर्षभरमें अमुक मात्रामें सनकी कताई करे, नहीं तो उसे जुर्माना देना होगा। मात्रा और गुणके लिए पुरस्कार दिये जाते थे। इस उद्योगको बढ़ावा देनेके लिए और गरीब तथा अमीर सभीके द्वारा खर्चमें किफायत बरतनेके लिए समितियाँ बनाई गई थी।

बादमें बेंजामिन फ्रेंकलिनने 'पुअर रिचर्ड्स आलमेनेक' में लिखा था:

"बहुत-सी जागीरें नष्ट हो गईं क्योंकि महिलाओंने चायकी खातिर कताई और बुनाई त्याग दी।"

आज हम "एक गज चौड़ी शुद्ध ऊनकी जो वस्तुएँ" इतनी आसानीसे खरीद सकते हैं, उनके लिए उपनिवेशोंकी महिलाओंको कई सप्ताह और महीने काम करना पड़ता था।

ऊनकी कताईका काम एक बड़ा कोमल और सावधानीका काम है और आज जिन विविध सावधान ढंगोंसे यह काम होता है, उसके पीछे हमारी सदियोंकी सहज और स्वाभाविक अभिजातपूर्ण कार्यप्रणाली थी।

* * *

सन् १७७५की गर्मियोंमें कांग्रेसने लोगोंसे माँग की कि वे सर्दीके मौसममें सैनिकोंके लिए तेरह हजार गर्म कोट तैयार करें।

उन दिनों कपड़े और पोशाकें सप्लाई करनेके लिए ठेकेदार नहीं हुआ करते थे। लेकिन देशभरमें सैकड़ों चूल्हे, चरखे और करघे सक्रिय हो गये और अमेरिकाकी देशभक्त महिलाओंकी कार्यशीलताके कारण कुल काम पूरा हो गया।

खादीधारी वीर

वाशिंगटनकी सेनाको व्यंग्यमें "हाथ कते कपड़ोंकी वर्दीवाले सैनिक" कहा जाता था लेकिन इस विशेषणके पीछे जो कुछ महत्त्वपूर्ण था उससे कम लोग परिचित थे। जहाँतक स्त्रियोंका प्रश्न है, उन्होंने अपने करघोंको संघर्षके साथीके रूपमें प्यार करना सीखा और कपड़ा बुनते हुए उन्होंने प्रार्थना और प्यारके शब्द भी उसमें बुने।

सन् १७७५ में कोल चेस्टर, कानकी इन देशभक्त महिलाओंमें से एक महिला जिसका नाम एबिगेल फूट था, अपना प्रतिदिनका काम अपनी डायरीमें लिखा करती थी एक दिनके कामका नमूना इस प्रकार हैं:—

"प्रूडके लिए गाउन (लम्बा कोट) ठीक किया, माँके लिए घुड़सवारीकी पोशाककी मरम्मत की, छोटे धागेकी कताई की, बेल्जकी पुत्रियोंके लिए दो गाउन ठीक किये, सनकी धुनाई की, लिनेनकी कताई की, पनीरकी टोकरीपर काम किया,

हैनाके साथ ऊनके रेशोंको सुलझाया, (प्रत्येकने ५१ पौंड रेशे सुलझाये) धागा लपेटा, गायें दुही, लिनेनकी कताई की, पचास गाँठें लगाईं, गियाना गेहूँके डंठलोंकी झाड़ू बनाई, स्वच्छ करनेके लिए धागे बुने, लाल रंग तैयार किया, श्रीमती टेलरके यहाँसे दो विद्यार्थी आये। मैंने दो पौंड शुद्ध ऊनकी धुनाई की, रस्सी बुनी, बर्तनोंकी धुलाई की।"

* * *

चरखा चलानेकी आवाज, कुमारियोंके गीत और घड़ीकी टिक-टिक यह सभी समाप्त हो गये हैं। घरोंमें होनेवाली यह ठक-ठक अब केवल कारखानोंमें सुनाई देती है।

अब किसानोंके घरमें चरखेकी आवाज नहीं गूंजती। लेकिन चरखेकी उस गूंजने हमारे दिलोंमें जो संगीत छेड़ा है, उसके कारण सौन्दर्यके नाते अब शिक्षाके मन्दिरोंमें वह संगीत गूँजना फिर शुरू हो गया है।

यहाँ प्राचीन हैम्स्टेडके घरेलू वातावरणमें चार्टर हाउसमें चरखेका पहिया फिर घूमने लगा है और बुनाईकी घरेलू कला नया जीवन प्राप्त कर रही है और आधुनिक प्रिसीलाएँ अपने प्रिय चरखोंको फिर खोज रही हैं और कताई प्रतियोगिताएँ आरम्भ हो रही हैं।

लाँगफैलोकी कविता 'द कोर्टशिप ऑफ माइल्ज़ स्टैंडिश' में हमें चरखेके गीतके लिए शब्द मिले हैं और इस कवितामें प्रिसीलाने चरखेके जादूके प्रति अपना प्यार उँडेला है।

"वह सुन्दर, पवित्र नारी अपने चरखेसे सीधी उठी और अपने प्रियतमसे अपनी मितव्ययिताकी सराहना सुनकर प्रसन्नभावसे मेजपर रखी रीलसे अपने ही द्वारा कते सूतकी एक बर्फ-सी सफेद लच्छी निकाली।

और इसी बीच आल्डेनकी खुशकरनेवाली प्रशंसाका उत्तर देते हुए बोली—

'आओ यदि मैं गृहणियोंके लिए आदर्श हूँ तो तुम्हें भी बेकार नहीं बैठना चाहिए।

तुम भी दिखा दो कि तुम पत्नियोंके लिए आदर्श पति हो सकते हो। इस लच्छीको पकड़ो जिससे मैं इसे बुनाईके लिए सुलझा सकूँ . . .'

* * *

इस प्रकार हास्य-विनोदके बीच उसने पतिके हाथमें लच्छीको ठीकसे पकड़ाया। वह अकरासके साथ बैठा था, उसके हाथ सामने फैले थे, वह सुघड़तासे सीधी खड़ी थी और उसकी उँगलियोंमें फँसी लच्छीके धागे सुलझा रही थी।

कभी-कभी लच्छी पकड़नेके उसके भद्दे ढंगपर उसे डाँट देती थी, कभी कुशलतासे धागोंकी ऐंठन या गाँठ सुलझाते हुए उसका हाथ छू लेती थी क्योंकि छुए बिना और चारा ही क्या था?"

यदि किसीको प्रसीलाके प्रति पूर्वग्रह है, तो वह यह शान्तिप्रद कविता पढ़े और कताईके पीछे निहित भावना और घरमें होनेवाले इस गुंजनको ठीकसे समझे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १९-११-१९२५

सामग्रीके साधन-सूत्र

गांधी स्मारक संग्रहालय, नई दिल्ली: गांधी साहित्य और सम्बन्धित कागजातका केन्द्रीय संग्रहालय तथा पुस्तकालय। देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३५९।

नेशनल आर्काइव्ज ऑफ इंडिया, नई दिल्ली।

साबरमती संग्रहालय: पुस्तकालय तथा संग्रहालय, जिसमें गांधीजीके दक्षिण आफ्रिकी काल तथा १९३३ तकके भारतीय कालसे सम्बन्धित कागजात रखे हैं, देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३६०

'अमृत बाजार पत्रिका': कलकत्तासे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'आज': वाराणसीसे प्रकाशित हिन्दी दैनिक।

'इंग्लिशमैन': कलकत्तासे प्रकाशित अंग्रेजी समाचारपत्र।

'नवजीवन': (१९१९-१९३१): गांधीजी द्वारा सम्पादित और अहमदाबादसे प्रकाशित गुजराती साप्ताहिक।

'फॉरवर्ड': कलकत्तासे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'बॉम्बे क्रॉनिकल': बम्बईसे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'मॉडर्न रिव्यू': कलकत्तासे प्रकाशित अंग्रेजी मासिक।

'यंग इंडिया' (१९१८-१९३१): अहमदाबादसे प्रकाशित अंग्रेजी साप्ताहिक। सम्पादक: मो० क० गांधी; प्रकाशक: मोहनलाल मगनलाल भट्ट।

'लीडर': इलाहाबादसे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'सर्चलाइट': पटनासे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'हिन्दुस्तान टाइम्स': दिल्लीसे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'हिन्दू': मद्राससे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी: स्वराज्य भवन, बारडोली।

'ए बंच ऑफ ओल्ड लेटर्स': जवाहरलाल नेहरू, एशिया पब्लिशिंग हाउस, १९५८।

कृष्णनाथ कालेज सेन्टेनरी कामेमोरेशन वाल्यूम:

'गांधीजीकी छत्रछायामें': घनश्यामदास बिड़ला, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली।

'बापुना पत्रो — मणिबहेन पटेलने' (गुजराती): सम्पादक: मणिबहन पटेल, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद।

'बापुना पत्रो — सरदार वल्लभभाईने' (गुजराती): सम्पादक: मणिबहन पटेल, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद।

'बापुनी प्रसादी' (गुजराती): मथुरादास त्रिकमजी, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद।

'महादेव भाईनी डायरी', भाग-८ (गुजराती): नरहरि परीख, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद।

तारीखवार जीवन-वृत्तान्त

(१ अगस्त, १९२५ से २२ नवम्बर, १९२५ तक)

१ अगस्तसे पूर्व : कलकत्तामें गांधीजीने "इंग्लिशमैन"के प्रतिनिधिसे भेंट की।

१ अगस्त : तिलककी पुण्यतिथिके अवसरपर दिये भाषणमें स्वराज्य प्राप्तिके लिए खद्दर और चरखा अपनानेका जनतासे आग्रह किया।

२ अगस्त : कांग्रेसकी गतिविधियोंमें राजनीतिको शामिल करनेके बारेमें मोतीलाल नेहरूको लिखे अपने पत्रके आशयको 'नवजीवन' के एक लेखमें स्पष्ट किया।

४ अगस्त : डॉ० मोरेनोसे हुई बातचीतमें अपने हालके इस वक्तव्यका कि आंग्ल भारतीयोंको नकल नहीं करनी चाहिए, स्पष्टीकरण किया।

भारतीय ईसाइयोंकी सभामें भाषण।

६ अगस्त : कृष्णनाथ कालेज, बहरामपुर गये जहाँ उन्हें एक मानपत्र और देशबन्धु स्मारक कोषके लिए थैली भेंट की गई।

७ अगस्त : बैरकपुरमें सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जीका स्वर्गवास। गांधीजी उनके घर संवेदना प्रकट करने गये।

८ अगस्त : टाटा स्टील वर्क्स, जमशेदपुरमें भारतीयों तथा यूरोपीयोंकी सभामें भाषण।

९ अगस्त . टाटा स्टील वर्क्सके अधिकारियोंके समक्ष भाषण।

जमशेदपुरकी एक बड़ी सभामें मजदूरोंसे मद्यपान छोड़नेकी अपील की।

१२ अगस्त : कलकत्तामें 'वसुमती'का कार्यालय देखने गये।

वाई० एम० सी० ए० की चौरंगी स्थित शाखामें "भारतीय ईसाई नवयुवकोंके कर्त्तव्य" पर भाषण।

१४ अगस्त : श्रीरामपुरका हथकरघा कारखाना देखने गये।

१५ अगस्त : कलकत्ताकी सार्वजनिक सभामें सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जीके निधनपर शोक प्रस्ताव पेश करते हुए श्रद्धांजलि अर्पित की तथा सामाजिक सुधारोंकी आवश्यकता-पर जोर दिया।

१६ अगस्त : सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जीके दाह-संस्कारमें सम्मिलित हुए।

१८ अगस्त : गांधीजीने कलकत्ताके रोटरी क्लबकी बैठकमें 'चरखे'पर भाषण दिया।

१९ अगस्त : कटकमें उत्कल चर्मालय देखने गये; सार्वजनिक सभामें भाषण।

२१ अगस्त : कलकत्तामें 'इंग्लिशमैन'के प्रतिनिधिसे हुई भेंटमें सुहरावर्दीके स्वराज्य-दलसे इस्तीफा देनेके सम्बन्धमें अपनी स्थिति स्पष्ट की।

२४ अगस्त : टीटागढ़के दंगोंके बारेमें दोनों सम्प्रदायोंके नेताओंसे बातचीत की।

२५ अगस्त : वाई० एम० सी० ए०की कॉलेज शाखामें भाषण।

२६ अगस्त : भारतीय मनोविश्लेषण संस्थाके सदस्योंके साथ हुई भेंटमें हिन्दू-मुस्लिम समस्याके मूलभूत कारणोंका विश्लेषण किया।

२७ अगस्त: पटनामें होनेवाली अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी आगामी बैठकके सम्बन्धमें समाचारपत्रोंको वक्तव्य जारी किया।

२८ अगस्त: कलकत्ताके ओवरटन हॉलमें "राष्ट्रीयता" पर भाषण।

२९ अगस्त: आशुतोष कॉलेजके विद्यार्थियोंकी सभामें संगठन तथा राष्ट्रीय भावनाके विकासपर जोर दिया।

भारतीय ईसाइयोंकी सभामें भाषण:

१ सितम्बर: गांधीजी कलकत्तासे रवाना हुए।

३ सितम्बर: बम्बई पहुँचे। 'बॉम्बे क्रॉनिकल'के प्रतिनिधिसे हुई अपनी भेंटमें बंगाल-यात्राके अनुभव बताये।

४ सितम्बर: दादाभाई नौरोजीकी शताब्दीके उपलक्ष्यमें आयोजित सार्वजनिक सभाकी अध्यक्षता की।

६ सितम्बर: अहमदाबादके मजदूर संघके सदस्योंसे अपना कार्य विनम्रतासे, सच्चाईसे और ईमानदारीसे करनेका आग्रह किया।

१२ सितम्बर: पुरुलिया (पश्चिमी बंगाल) पहुँचे।

सार्वजनिक सभामे मानपत्र भेंट किये गये। चित्तरंजन दासके चित्रका अनावरण किया।

१६वें बिहार प्रान्तीय राजनैतिक सम्मेलनमें सम्मिलित हुए।

१३ सितम्बर: महिलाओंकी सभामें भाषण। अन्त्यजोंकी सभामें भाषण देते हुए मद्यपान और जुआ आदि दुर्व्यसनोंको छोड़नेकी अपील की।

१५ सितम्बर: चक्रधरपुरकी राष्ट्रीयशालामें भाषण।

१६ सितम्बर: मोटरसे राँची पहुँचे।

नगरपालिका और अन्त्यजोंने मानपत्र भेंट किये। महिलाओंकी सभामें भाषण।

१७ सितम्बर: सार्वजनिक सभामें गांधीजीने कहा कि चरखा ही भारतके करोड़ों लोगोंकी भूख मिटा सकता है।

१८ सितम्बर: हजारीबागकी सार्वजनिक सभामें भाषण।

सेंट कोलम्बस कॉलेजके विद्यार्थियोंकी सभामें भाषण।

२१ सितम्बर: पटनाकी सभामे भाषण।

२२ सितम्बर: अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी बैठककी अध्यक्षता की।

अखिल भारतीय चरखा संघकी स्थापनाका प्रस्ताव पास हुआ।

पटना जिला खिलाफत सम्मेलनकी बैठकमें गांधीजीने हिन्दू-मुस्लिम एकतापर भाषण दिया और लोगोंसे चरखा और खद्दर अपनानेका अनुरोध किया।

२४ सितम्बर: अखिल भारतीय चरखा संघके संविधानको अन्तिम रूप दिया गया।

पटनाकी सार्वजनिक सभामें चरखे और खद्दरकी आवश्यकतापर बल दिया।

खगौलकी राष्ट्रीयशालाकी नई इमारतका शिलान्यास किया।

महिलाओंकी सभामें भाषण।

२५ सितम्बर: समाचारपत्रोंको दिये अपने वक्तव्यमें बिहारका दौरा पूरा न करनेकी अपनी असमर्थतापर दुःख प्रकट किया।

विक्रमकी सार्वजनिक सभामें भाषण :

२९ सितम्बर : पटना नगरपालिका द्वारा दिये गये मानपत्रका उत्तर देते हुए गांधीजीने जनताके प्रति नगरपालिकाओंके कर्त्तव्यपर जोर डाला।

१ अक्तूबर : भागलपुरकी मारवाड़ी अग्रवाल सभामें भाषण।
सार्वजनिक सभामें सभी सम्प्रदायके लोगोंसे अखिल भारतीय चरखा संघमें सम्मिलित होनेका आग्रह किया।

७ अक्तूबर : गिरीडीहकी सभामें भाषण।
दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंके सम्बन्धमें समाचारपत्रोंको वक्तव्य दिया।

१३ अक्तूबर : विशनपुरमें भाषण।

१६ अक्तूबर : बलियाकी जिला परिषद्में भाषण देते हुए गांधीजीने कहा कि भारतकी गरीबी दूर करनेके लिए चरखा ही एकमात्र उपाय है।

१७ अक्तूबर : काशी विद्यापीठके विद्यार्थियोंकी सभामें अनिवार्य रूपसे चरखा कातनेकी अपील की।
लखनऊकी दो सभाओंमें भाषण।
सीतापुर नगरपालिका द्वारा दिये गये मानपत्रका उत्तर दिया। एक अन्य सभामें हिन्दुओंसे मुसलमानोंके प्रति दुर्भाव न रखनेका आग्रह किया।

१८ अक्तूबर : संयुक्तप्रान्त हिन्दी साहित्य सम्मेलनके मानपत्रके उत्तरमें कहा कि हिन्दी ही भारतकी राष्ट्रभाषा हो सकती है।
संयुक्तप्रान्त राजनैतिक सम्मेलनमें मुख्यतः चरखे तथा अस्पृश्यताके विषयमें बोले।
अस्पृश्यता विरोधी सम्मेलनमें भाषण।

२१ अक्तूबर : स्टीमरसे कच्छ जाते समय बम्बईमें विदा करनेके लिए आये लोगोंके सम्मुख भाषण।

२२ अक्तूबर : द्वारकामें नागरिकोंके शिष्टमण्डलने स्टीमरपर गांधीजीको मानपत्र भेंट किया।
भुजकी सार्वजनिक सभामें कहा कि यदि हिन्दूधर्मसे अस्पृश्यता न मिटी तो वह नष्ट हो जायेगा।

२३ अक्तूबर : भुजकी सार्वजनिक सभामें कहा कि गोरक्षाके प्रश्नको तथाकथित गो-रक्षकोंने ही बिगाड़ा है।

३१ अक्तूबर : माण्डवीमें भाषण।

१ नवम्बर : मुन्द्राकी सभामें प्रचलित अस्पृश्यताको देखकर अपनी मनोव्यथा व्यक्त करते हुए लोगोंसे उसे दूर करनेकी मार्मिक अपील की।

२ नवम्बर : अंजारमें भाषण।

६ नवम्बरसे पूर्व : पत्र-प्रतिनिधियोंके साथ हुई अपनी भेंटमें गांधीजीने अपने वचनके अनुसार स्वराज्यवादियोंकी सहायता करनेका निश्चय व्यक्त किया।

२२ नवम्बर : अहमदाबादके विद्यार्थियों द्वारा आयोजित 'युवक सप्ताह' का उद्घाटन करते हुए उनसे आशावादी बननेका तथा त्याग और संयमकी साधनाका आग्रह किया।

शीर्षक-सांकेतिका

विविध

सांकेतिका

ख

च

ज

झ

ट

ठ

ड

य

र

स

ह